सहज समाधि भली

प्रवचन-क्रम

1. सहज समाधि भली...2
2. स्वीकार की आग...21
3. सहज स्वभाव--लोभ और भय से मुक्त...36
4. साधक अर्थात सोया हुआ सिद्ध..48
5. उन्मुक्त जिज्ञासा, खुला हृदय और जीवन-रहस्य................................61
6. समग्रता ही है मार्ग..79
7. दुख-बोध से दुख-निरोध की ओर...96
8. मिटना है द्वार--"होने" का...114
9. जीवन-सूत्रः दर्पणवत, अव्याख्य, तथाता में जीना.........................133 10.....................................अनुग्रहपूर्ण रागशून्यता और मन का अतिक्रमण
.... 148
11..विचार नहीं--अनुभव ही नाव है
.... 164
12...विचार की बोतल और निर्विचार की मछली
.... 179
13..आत्मघाती संदेह और आस्था का अमृत
.... 198
14..एक साधे सब सधै
.... 214
15...बुद्धपुरुष अर्थात जीवित मंदिर--मौन का
.... 232
16...................................ब्राह्मणत्व का निखार--प्रामाणिकता की आग में
.... 251
17.................................अहंकार के तीन रूप--शिकायत, उदासी और प्रसन्नता
.... 268
18...आत्मिक विस्फोट की पात्रता
.... 282
19..................................दायित्व की गरिमा और आत्म-सृजन के लिए विद्रोह
.... 297
20..साक्षित्व, समय-शून्यता और मन की मृत्यु
.... 317
21..सहजै सहजै सब गया
.... 333

सहज समाधि भली
पहला प्रवचन

सहज समाधि भली

गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन-दिन अधिक चली।।
जहं-जहं डोलौं सो परिकरमा जो कछु करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दंडवत, पूजौं और न देवा।।
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खावं पियौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा।।
आंख न मूंदौं कान न रूंधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हंसि-हंसि, सुंदर रूप निहारौं।
शबद निरंतर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहुं न छूटै, ऐसी तारी लागी।।
कह कबीर यह उनमनि रहनी, सो परगट करि गाई।
दुख सुख से कोई परे परमपद, तेहि पद रहा समाई।।
ओशो, संत कबीर के इन प्रसिद्ध पदों को हमारे लिए बोधगम्य बनाने की कृपा करें।

समाधि सहज ही होगी। असहज जो हो, वह समाधि नहीं है। प्रयास और प्रयत्न
से जो हो, वह मन के पार न ले जाएगी, क्योंकि सभी प्रयास मन का है। और जिसे मन से पाया, वह मन के ऊपर नहीं हो सकता। जिसे तुम मेहनत करके पाओगे, वह तुमसे बड़ा नहीं होगा। जिस परमात्मा को "तुम" खोज लोगे, वह परमात्मा तुमसे छोटा होगा। परमात्मा को प्रयास से पाने का कोई भी उपाय नहीं है। उसे तो अप्रयास में ही पाया जा सकता है।
"तुम" उसे न पा सकोगे; तुम मिटोगे, तो ही उसका पाना हो सकेगा। इसलिए परमात्मा की खोज वस्तुतः परमात्मा में खोने की व्यवस्था है। मन की असफलता जहां हो जाती है, वहां समाधि फलित होती है। जब तक मन सफल होता है, तब तक तो "खेल" जारी है, तब तक तो माया जारी है।
तो पहली तो बात यह समझ लें कि समाधि सहज ही होगी। चेष्ठा, प्रयत्न और प्रयास से उसका कोई भी संबंध नहीं है। इसलिए जिन्होंने उसे पाया है, उन्होंने कहा, "प्रसाद से पाया। प्रभु की अनुकंपा से पाया।" जब ऐसा कहते हैं संत कि "प्रभु की अनुकंपा से पाया", तो इसका इतना ही अर्थ है कि हमने तो बहुत दौड़-धुप की; जितने हम दौड़े, उतने ही भटके; जितना हमने खोजा, उतना ही खोया; जितना हमने चाहा कि मिल जाए, उतने ही दूर होते चले गए। हमारी सभी चेष्ठाएं व्यर्थ गई। हम हार गए। और जहां हार हो जाती है "तुम्हारी", वहीं से परमात्मा की विजय शुरू होती है।
तुम्हारी जीत परमात्मा की हार है। क्योंकि तुम्हारी जीत का अर्थ क्या होगा? तुम्हारी जीत का अर्थ होगा--मैं, अहंकार, अस्मिता की जीत। तुम जितने जीतोगे उतनी ही कठिनाई खड़ी होगी। तुम हो, यही तो समस्या है। कैसे वह घड़ी आ जाए कि तुम "न" हो जाओ? तुम्हारे भीतर कोई भी न हो, कोरा सन्नाटा हो। तुम्हारे मंदिर में कोई प्रतिमा न रह जाए; निराकार हो; एक शब्द भी भीतर न गूंजे। ऐसी गहरी चुप्पी लग जाए कि न कोई बोलने वाला हो, न कोई भीतर सुनने वाला हो; उसी क्षण प्रभु का प्रसाद बरसने लगेगा। उसी क्षण तुम तैयार हो। जहां तुम नहीं हो, उसी क्षण तुम तैयार हो।
सभी समाधि सहज होंगी। असहज-समाधि नहीं। लेकिन मन चाहता है--जीतना, हारना नहीं। मन ध्यान में भी "जीतना" चाहता है, मन परमात्मा के साथ भी एक संघर्ष कर रहा है; वहां भी विजय चाहता है, वहां भी परमात्मा को मुट्ठी में चाहता है। तुमने धन कमाया, तुमने यश पाया, तुमने प्रतिष्ठा कमाई, अब तुम चाहते हो कि परमात्मा भी तुम्हारी मुट्ठी में हो; ताकि तुम कह सको कि परमात्मा को भी कमाया! तुम परमात्मा को भी बैंक बैलेंस में कहीं जोड़ लेना चाहते हो। तुम्हारी तिजोड़ी जब तक परमात्मा को भी बंद न कर ले, तब तक तुम्हारे अहंकार की तृप्ति नहीं है। इसलिए ज्ञानी कहते हैं, जो पा लेंगे उसे, वे कभी भूल कर न कहेंगे कि हमने पाया। और जो कहते हैं कि हमने पा लिया

है, समझना कि अभी बहुत दूर हैं, क्योंकि दावेदार बचेगा कैसे! दावेदार का होना ही तो बाधा है। तुम जब तक कहोगे "मैं", तब तक उससे मिलन न होगा।
कबीर ने कहा हैः जब तक खोजता रहा, तब तक वह न मिला। और जब वह मिला, तब मैंने चोंक कर पाया कि मैं तो मिट चुका हूं। खोजने वाला मिट गया, तब मिला। "खोजत-खोजत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ।" निकला था खोजने, निकला था पाने; लेकिन खोजते-खोजते खुद ही घिस गया। दौड़ते-दौड़ते खुद ही मिट गया! और कबीर खो गया। जहां कबीर खोया, वहीं उससे मिलन हुआ।
कबीर का दूसरा वचन भी है, जिसमें कबीर ने कहा हैः जब तक मैं खोजता था,
तब तक तेरे दर्शन न हुए और अब जब कि मैं बचा नहीं, तो तू मेरे पीछे-पीछे भागा-भागा फिरता है। जब तक मैं तुझे खोजता था, तब तक तेरी गंध न मिली, तब तक तेरा सुराग न मिला; कितने दरवाजे खटखटाए; लेकिन कोई दरवाजा तेरा दरवाजा नहीं था। कितने रास्तों पर तेरी तलाश की, लेकिन कोई रास्ता तेरे घर तक न जाता था! और अब जब कि मैं मिट गया हूं, तो विडंबना कि तू मेरे पीछे-पीछे घूमता है--"कहत कबीर-कबीर"! पहले मैं तुझे पुकारता था, अब तू मुझे पुकारता है। और जब मैं पुकारता था, तब तू नहीं था। और अब तू पुकार रहा है और मैं नहीं हूं।
समझ लो कि, तुम्हारा मिलना परमात्मा से कभी भी नहीं होगा। तुम जैसे हो वैसे, परमात्मा से मिलना कभी भी न होगा। जब मिलना होगा, तब तुम, "ऐसे" नहीं होओगे।
तुम जैसे हो, ऐसे ही परमात्मा तक पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। तुम गिर जाओगे, मिट जाओगे; तुम्हारी राख से ही परमात्मा का मंदिर उठता है। तुम्हारी कब्र पर ही उसका घर है। लेकिन मन चाहता है--जीत। जितना तुम जीतते हो, उतना नशा चढ़ता है--अहंकार का।
परमात्मा ऐसा लगता है कि जीतना कठिन है, इसलिए तुम यह मत सोचो कि अक्सर धार्मिक लोग ही परमात्मा की खोज में निकलते हैं; सौ में से निन्यानबे तो अहंकारी होते हैं, जो परमात्मा की खोज में निकलते हैं; क्योंकि अहंकार हमेशा असंभव की आकांक्षा करता है। और परमात्मा से ज्यादा असंभव क्या है? एवरेस्ट पर चढ़ना कठिन होगा, असंभव तो नहीं। आखिर हिलेरी और तेनसिंह चढ़ ही गए। चांद पर पहुंचना कठिन होगा, असंभव तो नहीं। आदमी आखिर चांद पर चला ही गया। मंगल पर भी चलेगा; दूर के तारों पर भी पहुंच जाएगा, लेकिन परमात्मा को पाना एकदम असंभव मालूम होता है। जो पा लेते हैं, वे भी दावा नहीं कर पाते; परमात्मा इतना असंभव है। जो पा लेते हैं, वे भी चुप हो जाते हैं। चांद पर तो जाकर तुम झंडा गाड़ आते हो, परमात्मा पर तुम झंडा न गाड़ सकोगे।
तो अहंकारी का मन परमात्मा को भी जीतना चाहता है। मन कहता है कि वह सबसे ऊंचा शिखर है, वह सबसे असंभव चोटी, उस पर भी मैं झंडा गाड़ दूं। उसको भी मैं कह दूं--"मैंने जीता"।
सौ में से निन्यानवे--धर्म की खोज में गए लोग अहंकारी होते हैं। इसलिए धार्मिक व्यक्तियों में विनम्रता पानी बहुत कठिन है। धार्मिक आदमी अक्सर अहंकारी होगा--भयंकर अहंकारी होगा। संन्यासियों में, साधुओं में विनम्रता खोजनी बड़ी कठिन है। यद्यपि वे निरंतर कहेंगे कि विनम्र बनो, लेकिन वे तुमसे कह रहे हैं, विनम्र बनने को। वे जब तुमसे कह रहे हैं, "विनम्र बनो", तो वे यह कह रहे हैं कि "उनके प्रति विनम्र बनो।" लेकिन उनके अहंकार का कोई अंत नहीं है। दो साधुओं को मिलाना मुश्किल है; दो साधुओं को साथ बैठाना मुश्किल है; क्योंकि सवाल उठता है, "कौन नीचे बैठेगा और कौन ऊपर बैठेगा!"
कलकत्ता में एक सभा में मैं एक दफा निमंत्रित हुआ। एक बड़ा विराट आयोजन था। कोई तीन सौ पंडित, साधु, संन्यासी, महात्मा निमंत्रित थे। और उन्होंने मंच भी ऐसा बनाया था कि तीन सौ लोग बैठ सकें--मंच पर एक साथ। लेकिन एक-एक व्यक्ति ने बैठ कर व्याख्यान दिया। तीन सौ लोग उस पर इकट्ठे नहीं बैठ सके! मैंने पूछा कि बात क्या है? तो उन्होंने कहा, "बड़ी कठिनाई है। शंकराचार्य कहते हैं कि वे अपने सिंहासन के साथ आएंगे और वे अगर सिंहासन पर बैठते हैं, तो दूसरे संन्यासी कहते हैं कि हम नीचे तख्त पर

कैसे बैठ सकते हैं! हम भी उसी ऊंचाई पर बैठेंगे। अब बड़ी मुश्किल है। अगर सबको ऊंचा कर दो, तो वे सब फिर बराबर हो जाते हैं। किसी को ऊंचा छोड़ दो, किसी को नीचा छोड़ दो, तो कष्ट है। यही उपाय मालूम होता है कि एक-एक बैठ कर बोले! उसको जैसे बैठना हो--ऊंचा-नीचा, जहां। सुनने भी कोई दूसरे लोग नहीं आए। जब एक बोला, तब दूसरा सुनने भी नहीं आया! अज्ञानी सुनते हैं, ज्ञानी कहीं सुनने आते हैं? और जब जानते ही हैं, तो सुनना क्या है? अहंकार प्रबल है।
दुनिया में धर्मों का झगड़ा--धर्मों का झगड़ा नहीं है--अहंकारियों का झगड़ा है। धर्म के नाम पर अहंकारियों का बाजार है--कोई चर्च के नाम पर, कोई मस्जिद के नाम पर, कोई गुरुद्वारे के नाम पर, कोई मंदिर के नाम पर; लेकिन सब झगड़े अहंकार के हैं। और अहंकार से बड़ी कोई मादकता नहीं है।
बड़े से बड़ा काम अहंकार कर सकता है--वह यह कि कहे कि ईश्वर को पा लिया। इसलिए इस्लाम में इस तरह के दावेदार को "काफिर" कहा है। कहने में थोड़ी सच्चाई है, क्योंकि सौ में निन्यानबे मौके पर तो गलत आदमी दावा करता है। कभी सौ में एकाध--कोई मंसूर अलहिल्लाज--कभी कोई सही दावेदार होता है। पर उस एक के लिए निन्यानबे को माफ नहीं किया जा सकता है।
यह दावा आता है--श्रम से, चेष्टा से। जब तुम मेहनत करते हो, योग करते हो, आसन करते हो, ध्यान लगाते हो, बड़े कष्ट, बड़ी तपश्चर्या, उपवास करते हो, धूप में खड़े होते हो, रात जागरण करते हो--तो अहंकार मजबूत होता है, नशा बढ़ता है। तुम्हें लगता है, मैं "इतना" कर रहा हूं। तुम्हारे मन में परमात्मा के प्रति धन्यवाद का भाव नहीं आता, शिकायत का भाव आता है। जितनी होगी चेष्टा, उतनी शिकायत का भाव होगा। क्योंकि लगेगा--मैं "इतना" कर रहा हूं, अभी तक मिलन नहीं हुआ? मैं "इतना" कर रहा हूं, तुम अभी तक दूर बने हो? मैं "इतना" कर रहा हूं और अभी तक मंजिल नहीं आई? तो भीतर एक शिकायत का कीड़ा हृदय को काटेगा। और जितना श्रम बढ़ेगा, उतना अहंकार फैलेगा।
वास्तविक समाधि सहजता से फलित होगी। पर सहजता को समझने के पहले अहंकार की इस चेष्टा को समझ लेना चाहिए। और जितना नशा हो जाता है अहंकार का। और ध्यान रहेः अहंकार से बड़ी कोई मादकता नहीं है, उससे बड़ी कोई इंटॉक्सिकेंट नहीं है। फिर तुम अपने होश में नहीं हो, फिर तुम जो भी कहते हो, जो भी बोलते हो, जो भी जीते हो, वह सब होश के बाहर हो जाता है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन हमेशा दांत के डाक्टरों से बचता रहा। हमेशा डरा रहा। लेकिन एक बार मजबूरी इतनी बढ़ गई, पीड़ा इतनी थी दांत में कि जाना ही पड़ा। गया तो डाक्टर से उसने कहा, "वर्षों से टाल रहा हूं, अब उस जगह पहुंच गई है बात कि अब और सहा नहीं जा सकता। न सो सकता, न बैठ सकता। दर्द बहुत है; आना ही पड़ा। लेकिन भयभीत हूं। हाथ-पैर मेरे कांप रहे हैं। स्नायु मेरे तने हैं। हृदय मेरा धड़क रहा है। मैं तुमसे बहुत डरता हूं।" डाक्टर दयालु था; उसने कहा, "तुम घबड़ाओ मत।" भरा हुआ गिलास शराब का नसरुद्दीन को दिया और कहा, "यह पी जाओ।" एक ही घूंट में नसरुद्दीन उसे पी गया। गर्मी आई। आंखों में सुर्खी आ गई। दर्द भी भूल गया। डाक्टर ने थोड़ी देर बाद पूछा, "कैसा लग रहा है? भय गया? थोड़ी निर्भयता आई?" नसरुद्दीन खड़ा हो गया। छाती फुला कर उसने कहा, "निर्भयता! अब मेरे दांत को हाथ लगाओ तो जानूं। देखें, कौन माई का लाल मेरे दांत को हाथ लगाता है।"
अहंकार बड़ी से बड़ी शराब है और जितना ज्यादा अहंकार बढ़ता जाता है, उतना
ही ऐसा मालूम पड़ता है कि तुम्हारी विजय का कोई अंत नहीं है। परमात्मा को भी तुम विजित करके रहोगे। उसे भी जीतोगे!
इस अहंकार ने बहुत से उपाय खोजे हैं--कैसे परमात्मा को पाना। लेकिन ध्यान रहे, किसी उपाय से कभी किसी ने परमात्मा को पाया नहीं है। जिसने उपाय किया, वह भटका और भूला।
सहज-समाधि का अर्थ है कि परमात्मा तो उपलब्ध ही है; तुम्हारे उपाय की जरूरत नहीं है। तुम कैसे पागल हुए हो! पाना तो उसे पड़ता है, जो मिला न हो। तुम उसे पाने की कोशिश कर रहे हो, जो मिला ही हुआ है! जैसे सागर की कोई मछली सागर की तलाश कर रही हो! जैसे आकाश का कोई पक्षी आकाश को खोजने निकला हो! ऐसे तुम परमात्मा को "खोजने" निकले हो, यही भ्रांति है। परमात्मा

तुम्हारे भीतर प्रतिपल है, तुम्हारे बाहर प्रतिपल है, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इस बात को ठीक से समझ लें, तो फिर कबीर की वाणी समझ में आ जाएगी।
पाना नहीं है परमात्मा को, सिर्फ स्मरण करना है। इसलिए कबीर, नानक, दादू एक कीमती शब्द का प्रयोग करते हैं, वह है--सुरति, स्मृति, रिमेंबरिंग। वे सब कहते हैं कि उसे खोया होता तो पाते। उसे खो कैसे सकते हो? क्योंकि परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है--तुम्हारा परम होना है, तुम्हारी आत्मा है। तुम उसे खोओगे कैसे? उसे कहीं भुलाने की कोई संभावना ही नहीं है। तुम जहां भी जाओगे, वह तुम्हारे साथ होगा; क्योंकि तुम वही हो। तुम्हारी श्वास-श्वास में वही बसा है। और तुम्हारी धड़कन-घड़कन में उसी की गूंज है। तुम अच्छे हो तो, तुम बुरे हो तो; और तुम पुण्यात्मा हो तो और तुम पापी हो तो; तुम नरक में जाओ तो भी परमात्मा तुम्हारे भीतर इतना ही होगा; इसमें रत्ती भर फर्क न पड़ेगा; क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही है अस्तित्व। वह तुम्हारी "बीइंग" है, वह तुम्हारा "होना" है। उसे तुम खो नहीं सकते, लेकिन विस्मरण कर सकते हो। तुम भूल सकते हो कि तुम कौन हो। यही हुआ है। इसलिए सवाल खोज का नहीं है, सिर्फ स्मरण का है।
कई बार तुम्हें अनुभव हुआ होगा कि किसी को देखा है सड़क पर, चेहरा याद आता है, नाम जबान पर अटका है। लगता है कि बिल्कुल पहचाना हुआ आदमी है। यह भी लगता है कि नाम यह आया, यह आया। फिर भी नाम आता नहीं; फिर भी पहचान लौटती नहीं, प्रत्यभिज्ञा नहीं होती। तुम परेशान हो जाती हो, माथा सिकोड़ लेते हो, पसीना-पसीना हो जाते हो और तुम्हें पता है कि पता है। तुम भलीभांति जान रहे हो कि नाम कंठ में अटका है। दूर भी नहीं है। लोग कहते हैं, जीभ पर रखा है, लेकिन नहीं आता। फिर तुम चले जाते हो अपने बगीचे में--गड्ढा खोदने लगते हो या अखबार पढ़ने लगते हो या सिगरेट पीने लगते हो और अचानक वह जो नाम नहीं पकड़ में आ रहा था, बबूले की तरह भीतर से उभर कर आ जाता है। वह याद लौट आती है। क्या हुआ?
मनोविज्ञान कहता है कि तुम जब चेष्टा कर रहे थे, तब तुम सिकुड़ गए। जगह
न रही, जिसमें स्मृति लौट आती। जितनी तुमने चेष्टा की, तुम उतने ही तन गए, उतना तनाव हो गया। उस तनाव के कारण स्मृति को आने की जगह न रही। संकरी हो गई गली। जब तुम भूल गए, अखबार पढ़ने लगे, छोड़ दिया ख्याल ही, तो गली पुनः राज-पथ हो गई; संकरापन चला गया, तनाव न रहा; तुम हलके और शिथिल हो गए--उस शिथिलता में जो छिपा था भीतर--वह बाहर आ गया।
सहज-योग का अर्थ हैः परमात्मा को स्मरण करने की चेष्टा भी बाधा बन जाएगी। तो तुम बैठ कर राम-राम, राम-राम, राम-राम जपते रहो। यह राम-राम जपना ही शायद राम से मिलने में दीवाल बन जाए। तुम जप रहे हो, इसका मतलब ही यह है कि तुम्हें पता नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो। अन्यथा जपोगे क्यों? वही सब तरफ है! कौन जपेगा? किसको जपेगा? ये शब्द तुम दोहरा रहे हो! उसका कोई नाम है? तुम इतने जोर से पुकार रहे हो--कि कबीर ने कहा है कि यह मस्जिद से अजान देने वाला पागल, क्या समझता है कि परमात्मा बहरा हो गया है? "बहरा हुआ खुदाय?" इतने जोर से चिल्लाने की क्या जरूरत है? क्या उसके पास कान नहीं हैं? उसके पास कान हैं। तुम चिल्लाओ भी न, तुम बोलो भी न, तुम कहो भी न, तो भी "वह" सुन लेगा। वह तुम्हारे हृदय को सुनता है। तुम्हारे भाव को; भाव को-- जब कि भाव शब्द भी नहीं बना होता है। भाव जब कि विचार भी नहीं बनता, जब भाव की तरंग ही रहती है और शब्दों के जगत में कोई आकार नहीं आता--उसे भी सुन लेता है। तो इतने जोर से चिल्लाने की क्या जरूरत है? तुम राम-राम रटे जा रहे हो, इससे तुम्हारा मन और संकरा हो जाएगा।
पुकारने से कोई कभी उस तक नहीं पहुंचा है। पहुंचा है शांत हो जाने से।
यह चिल्लाना व्यर्थता है। इससे तुम भर जाओगे। खाली हो जाने से कोई उस तक पहुंचता है। जब तुम्हारी गगरी बिल्कुल खाली होती है, जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे होते, तब अचानक स्मृति लौटती है, सुरति आती है।
सहज-योग का अर्थ है कि कुछ करना नहीं है, उसे पाने को--वह मिला ही हुआ है। तुम वही हो, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो। मंजिल कहीं दूर होती, तो खोज लेते। तुम मंजिल पर ही खड़े हो। तुम्हारे पैर के नीचे ही खजाना गड़ा है।

सुना है मैंनेः एक राजपथ पर एक आदमी वर्षों तक भिक्षा मांगता रहा। फिर मर गया। कौड़ी-कौड़ी इकट्ठी करता रहा। और जब मरा तो पड़ोस के लोगों ने सोचा कि बीस-तीस वर्ष तक यह गंदा भिखारी इस जगह पर बैठा रहा--चीथड़े रखे हुए। इन सबको आग लगा दो, सफाई करो। कोई और समझदार था, उसने कहा कि "इतने से काम न होगा। इसने यह जमीन का टुकड़ा भी गंदा कर दिया है। थोड़ी मिट्टी भी यहां से खोद कर फेंक दो। जब मिट्टी खुदी, तो लोग हैरान हो गए, वहां खजाना गड़ा था। वहां हीरे-जवाहरातों से भरी हुई हंडियां गड़ी थीं। सारा गांव कहने लगा, यह भिखारी भी कैसा पागल था! इस मूरख को इतना ख्याल न आया कि जरा नीचे खोद कर देखे!
लेकिन हम सभी ऐसे भिखारी हैं। हम सभी ऐसे मूरख हैं। जब हम मरेंगे, तब दूसरों को शायद पता भी चल जाए कि जहां तुम खड़े थे, वहीं खजाना गड़ा था, लेकिन हमें पता नहीं चलता। उसके कारण हैं; क्योंकि जहां हम खड़े होते हैं, वहां हम कभी देखते ही नहीं हैं। आंखें दूर जाती हैं। वहां तो आंखें कभी भी नहीं खोजतीं--जहां हम होते हैं।
मन सदा दूर जाता है, पास तो मन आता नहीं। जगह चाहिए मन की यात्रा के लिए, स्पेस चाहिए। तो परमात्मा को हम रखते हैं--सातवें आसमान पर; ताकि खोज की सुविधा रहे; ताकि मन विचार करे, साधन करे, सत्संग करे, चेष्टा करे, श्रम करे। और परमात्मा वहां है, जहां तुम खड़े हो--इसी समय तुम जहां हो। तुममें और उसमें रत्ती भर का फासला नहीं है। इसलिए कोई भी श्रम काम का नहीं है। फासला होता, तो हम सेतु बना लेते। "वह किनारा" दूर होता, तो हम कोई न कोई उपाय कर लेते। यही वह किनारा है, इससे सेतु बन नहीं सकता। सिर्फ तुम्हें जागना होगा।
सहज-समाधि का अर्थ हैः जैसे तुम हो, वैसे ही जाग जाना--बिना कुछ किए।
अब हम इन सूत्रों को समझने की कोशिश करें।
मनुष्य-जाति के इतिहास में कबीर के इन सूत्रों का कोई मुकाबला नहीं है। इनसे सरल और सीधे, इनसे स्पष्ट और साफ वचन पृथ्वी पर कभी नहीं बोले गए हैं। तो दुर्भाग्य की बात है कि कबीर भारत के बाहर न के बराबर परिचित हैं अन्यथा झेन फकीर फीके पड़ जाएं; हसीद फकीरों का नाम लोग भूल जाएं; सूफियों की क्या बिसात है! कबीर का एक-एक वचन जैसे हजारों शास्त्रों का सार है। गीता होगी कितनी ही कीमती, लेकिन कबीर के एक शब्द में समा जाए। पर कबीर अपरिचित क्यों रह गए हैं? उसके कई कारण हैं।
एक तो कबीर बेपढ़े-लिखे हैं, पंडित नहीं हैं। इसलिए पंडितों ने उनकी फिकर नहीं की। पंडितों ने उनको हमेशा जमात के बाहर रखा--अछूत की तरह! कबीर जो भाषा बोलते हैं, वह गंवार की है। बड़ी ताजी है, जैसे कि गांव के गंवार की भाषा होती है। बासी नहीं है। पंडित की भाषा तो सदा बासी ही होती है। कितनी ही चमकदार हो, लेकिन भीतर मुर्दा होती है। परिष्कृत भला हो, जीवंत नहीं होती। अलंकृत होती है, लेकिन जीवंत नहीं होती; उसमें चारों तरफ आभूषण होते हैं, लेकिन भीतर आत्मा नहीं होती है। कबीर तो गांव के गंवार हैं। शब्द उनके अनगढ़ पत्थर की भांति हैं। गढ़े हुए पत्थर को तो कोई भी पहचान ले, उसके लिए कोई बड़े पारखी की जरूरत नहीं है। अनगढ़ हीरे को पहचानने के लिए तो बड़ा गहरा पारखी चाहिए।
कबीर अनगढ़ हीरा हैं--सीधे खदान से निकले। अभी बंबई के जौहरियों ने उन
पर काम नहीं किया। अभी उनको निखारा नहीं, साफ नहीं किया। अभी कोहनूर सीधा गोलकुंडा से आया है। उसे पहचानना मुश्किल है। शायद आपको गोलकुंडा के कोहनूर की कहानी पता हो या न हो। जिस आदमी को मिला, वह उसे एक साल तक अपने घर में रखे रहा। बच्चे उससे खेलते रहे; क्योंकि उन्होंने समझा कि कोई रंगीन पत्थर है।
कबीर कोहनूर हीरा हैं। पर सम्राटों के ताज तक पहुंचने के लिए निखार होना जरूरी है--छैनी-हथौड़ी पड़ेगी, काटे जाएंगे। वह नहीं हुआ। और अच्छा हुआ कि नहीं हुआ। क्योंकि जितनी चमक आती है, उतने प्राण खो जाते हैं। इसलिए कबीर पहचाने नहीं गए। पंडितों ने उनकी चिंता नहीं की। और पंडित उनकी चिंता करेंगे भी नहीं, क्योंकि कबीर पंडितों के बड़े ही खिलाफ हैं। कबीर के लिए "पंडित" और "मूरख" एक ही अर्थ रखते हैं।

कबीर कहते हैंः "ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय"। कोई वेद पढ़ने से पंडित नहीं होता। बस, प्रेम के ढाई अक्षर जो पढ़ ले, वह पंडित हो जाता है। कोई शास्त्र के जानने से पंडित नहीं होता, जो प्रज्ञावान हो जाए, वह पंडित हो जाता है।
जिनको हम पंडित की तरह जानते हैं, वे तो मूढ़ हैं। उनकी मूढ़ता शब्दों में छिप गई है। उनकी मूढ़ता शास्त्रों से अलंकृत है। उनकी मूढ़ता में वस्त्र हैं--रंगीन। लेकिन भीतर मूढ़ता है और गहन अंधकार है। तो पंडित कबीर में बहुत रस ले नहीं सकते।
फिर कबीर के जो वचन हैं, वे कोई सिद्धांत नहीं, अनुभव हैं। अनुभव के साथ एक कठिनाई है कि उसे समझना मुश्किल है, जब तक कि वह तुम्हारा अनुभव न बन जाए। कबीर को समझना हो तो कबीर ही होना पड़े इससे पहले समझ में नहीं आएंगे। इसके पहले तो वे बेबूझ मालूम पड़ेंगे। इसलिए लोगों ने कहा कि कबीर की बातें तो उलटी-सुलटी हैं।
कबीर के वचनों को लोगों ने उलटबांसी का नाम दे दिया। कबीर की भाषा का अलग ही नाम रखना पड़ा--सधुक्कड़ी। कोई सुसंस्कृत भाषा नहीं है कबीर की; उसे अलग ही नाम देना पड़ा--सधुक्कड़ी--साधुओं की अनर्गल, बेतुकी बातें, जिनमें न कोई तर्क है, न संगति है।
कबीर को जानना हो तो शब्द से तो पहचाना नहीं जा सकता है, अनुभव से ही पहचाना जा सकता है। कितने कम लोग हैं पृथ्वी पर जो अनुभव से पहचानेंगे! इसलिए कबीर की बात दूर तक नहीं पहुंची। बुद्ध का नाम पहुंच सका।
बुद्ध भी अनुभव की बात बोल रहे हैं, लेकिन वे राजपुत्र हैं। बात अनुभव
की है, लेकिन बड़ी सुसंस्कृत भाषा में है। पंडित भी उसका स्वाद ले सकता है। महावीर का अनुभव भी वही है। लेकिन महावीर भी राजपुत्र हैं। जो श्रेष्ठतम शिक्षा और संस्कृति उपलब्ध थी, वह उन्हें उपलब्ध है। वे पंडित के तर्क, संगति, विचार, सिद्धांत सबको तृप्त कर सकते हैं।
कबीर के शब्द तो लट्ठ की तरह सिर पर पड़ते हैं। जो मिटने को ही राजी हो, वही उनको झेलने को राजी होगा।
कबीर ने कहा हैः "जो घर बारै आपना, चले हमारे संग"। जो अपना घर जलाने
को तैयार हो, वह हमारे साथ हो जाए। इससे कम में वे राजी नहीं हैं। पर अगर प्रेम से कोई, प्रार्थनापूर्ण भाव से कोई उनके शब्दों में देखे, तो मनुष्य ने जो भी श्रेष्ठतम जाना है, उसका सब सार वहां है। उनके शब्दों को समझें। एक-एक शब्द बहुमूल्य है।
"जहं-जहं डोलौं सो परिकरमा"। लोग मंदिर में जाते हैं, परिक्रमा करते हैं। मूर्ति रखी है मंदिर में, उसके चारों तरफ डोल कर वे सोचते हैं-- परमात्मा की परिक्रमा कर रहे हैं! परमात्मा इतना छोटा है, जिसकी तुम परिक्रमा कर सको? जिसे तुम घेर लो? जिसकी तुम परिभाषा कर सको? जिसके चारों तरफ तुम घूम आओ। कबीर कहेंगे, यह अपमान हुआ। तुम समझे ही न कि परमात्मा तुमसे बड़ा है। तुम कैसे उसकी परिक्रमा करोगे? तुम कुछ भी करो, तुम परमात्मा की परिक्रमा कैसे कर पाओगे? इसलिए कबीर किसी मंदिर में नहीं जाते, किसी मस्जिद में नहीं जाते; वे कहते हैंः "जहं-जहं डोलौं सो परिकरमा।" जहां भी जाता हूं, उसी की परिक्रमा हो गयी। और परिक्रमा अंतहीन है। यह पूरी भी नहीं होगी, क्योंकि पूरी तो तभी हो सकती है, जब मैं उससे बड़ा होऊं, मैं उसे घेर लूं।
एक बड़ी मीठी कथा है। शिव के दो पुत्र हैंः कार्तिक और गणेश। और शिव उनके साथ खेल रहे हैं। और शिव ने कहा, "एक काम करो, तुम दोनों जाओ और विश्व की परिक्रमा कर आओ। जो पहले आएगा, वह पुरस्कृत होगा।" कार्तिक होशियार है, दुनियादार है; वह निकल पड़ा तेजी से। फिर वह एक क्षण रुका नहीं। गणेश खड़े ही रहे। एक तो शरीर से स्थूल हैं, इतनी तेजी बरत भी नहीं सकते। शिव ने कहा, "तुम खड़े क्या हो? कार्तिक जा भी चुका और जल्दी ही लौट आएगा!" गणेश ने एक परिक्रमा शिव की लगा ली। और कहा, "मैं आ गया।" और गणेश जीते!
परिक्रमा परमात्मा की--एक भाव है, कोई बाह्य जगत का तथ्य नहीं। कार्तिक चूक गया। वह सच में ही विश्व का परिभ्रमण करने निकल पड़ा। परिक्रमा एक भाव-दशा है। कबीर कह रहे हैंः "जहं-जहं डोलौं सो परिकरमा।" यह

एक भाव है, एक प्रार्थनापूर्ण हृदय है। तो जहां भी डोल रहा हूं, वह उसकी परिक्रमा है। जो भी कर रहा हूं, वह उसका ही काम है।
सहज-योग का यह पहला आधार होगा कि तुम्हारा चौबीस घंटे का जीवन परिक्रमा हो जाए। जीवन खंड-खंड हो भी तो नहीं सकता, लेकिन हमने खंड-खंड किए हैं। हम बड़े होशियार हैं। सुबह जाकर हम प्रार्थना कर आते हैं, फिर दुकान चला लेते हैं; धन कमा लेते हैं, उसी में थोड़ा दान करके धर्म भी कमा लेते हैं। इस प्रकार जीवन को हमने कई हिस्सों में बांट रखा है और सब हिस्से अलग-अलग हैं।
जब एक आदमी मंदिर में जाता है, तब उसका चेहरा देखो, वह अलग आदमी है। वही आदमी बाजार में मिल जाए, तो उसका चेहरा अलग है। वह वही आदमी नहीं है। यह दूसरा ही खंड है। लेकिन जीवन क्या बांटा जा सकता है? जीवन तो अविभाज्य है।
प्रार्थना या तो होगी--तो चौबीस घंटे चलेगी--या नहीं होगी। प्रार्थना घंटे भर नहीं हो सकती। ऐसा तो नहीं हो सकता कि गंगा सिर्फ काशी में बहे, प्रयाग में बहे और बाकी समय न बहे--तो प्रयाग तक पहुंचेगी कैसे? तुम मंदिर में जाकर प्रार्थनापूर्ण हो जाओ और मंदिर के बाहर एक क्षण पहले तुम प्रार्थनापूर्ण नहीं थे, तो मंदिर के भीतर जाकर अचानक प्रार्थना की गंगा बहने कैसे लगेगी? तुम अनहोना चमत्कार कर रहे हो। द्वार तक तुम साधारण दुकानदार हो, द्वार के भीतर तुम प्रविष्ट हुए कि तुम भक्त हो गए। और फिर तुम मंदिर के बाहर निकलते ही दुकानदार हो जाओगे। तुमने मंदिर में धोखा दिया। क्योंकि तुम्हारे तेईस घंटे ही सच होंगे, तुम्हारा एक घंटा सच नहीं हो सकता।
तेईस घंटे तुम बेईमान हो, झूठ बोल रहे हो, चोरी कर रहे हो, धोखा दे रहे
हो और एक घंटे के लिए तुम एकदम सरल हो गए! सरलता कोई खेल है? कि तुमने जब चाहा, तब सम्हाल लिया! यह असंभव है। लेकिन हम होशियार हैं, चालाक हैं। हम दोनों लोक एक साथ सम्हाल लेना चाहते हैं। हम कहते हैंः थोड़ा सा समय परमात्मा को भी दिया, ताकि दोनों नावों पर पैर रहें।
कबीर कहते हैं कि यह असंभव है। धार्मिक आदमी या तो धार्मिक होता है या नहीं होता। तुम यह मत सोचना कि दस परसेंट धार्मिक और बीस परसेंट धार्मिक और आधा घंटा धार्मिक, एक घंटा धार्मिक! यह असंभव है। जैसे तुम श्वास लेते हो, तो चौबीस घंटे--चाहे तुम सोओ, चाहे तुम जागो, चाहे तुम होश में हो, चाहे तुम बेहोश हो। कबीर कहते हैंः परिक्रमा श्वास जैसी हो जाए--तुम जहां-जहां डोलो वहीं-वहीं--भाव परिक्रमा का बना रहे। तुम जिसके पास से भी गुजरो, वहीं परमात्मा दिखाई पड़े। वह चाहे मंदिर हो, चाहे मस्जिद; चाहे सड़क के किनारे पड़ा हुआ पत्थर हो, चाहे वेश्या का घर हो; लेकिन तुम्हें परमात्मा ही दिखाई पड़े। तुम्हारी परिक्रमा जारी रहे।
"जहं-जहं डोलौं सो परिकरमा, जो कछु करौं सो सेवा।" अविभाज्य जीवन का सूत्र है कि तुम उसे बांटो मत। तुम यह मत कहो कि "यह" सेवा है, "यह" काम है; अभी सेवा कर रहा हूं, अब काम करूंगा; अभी प्रेम कर रहा हूं, अब कर्तव्य करूंगा; यह संसार है और यह परमात्मा--ऐसा विभाजन मत करो; क्योंकि जहां विभाजन है, वहीं तुम भटक गए, वहीं तुम भूल गए, वहीं द्वैत आ गया। और जहां दो आ गए, वहीं चूक हो गई, वहीं स्मरण भटक गया, वहीं स्मरण खो गया, वहीं सुरति नष्ट हो गई।
"जब सोवौं तब करौं दंडवत।" अलग से--कहते हैं कबीर--क्या दंडवत करना? अलग से जाकर क्या मंदिर में साष्टांग लेटना? रात जब सोता हूं, तभी दंडवत कर लेता हूं, वही दंडवत है। अलग से और करने का कोई सवाल नहीं। अलग से तो दिखावा हो सकता है। जब थक जाता हूं और जब सोता हूं--तो दंडवत है।
रात सोते वक्त ख्याल रखना। जैसे मंदिर में दंडवत कर रहे हो, ऐसे बिस्तर पर सो जाना। उसी दंडवत के भाव में नींद लग जाए। सुबह उठना, तो परिक्रमा का भाव और जो भी करना उसे उसकी ही सेवा समझना।
कबीर ज्ञानी हो गए--परमज्ञानी हो गए, फिर भी उन्होंने काम जारी रखा। कपड़ा बुनते थे, बुनते रहे; जुलाहे थे--जुलाहे ही बने रहे। रूई धुनते रहे, तार बुनते रहे। लोग कहते किः "यह बंद करो, इसमें क्या सार है! और अब

परमज्ञान को उपलब्ध हुए, अब छोड़ो यह सब।" लेकिन कबीर कहतेः "जो कछु करौं सो सेवा। "राम" बाजार में रास्ता देख रहे होंगे कि कबीर कपड़ा बुन कर लाएगा। और मैं नहीं जाऊं कपड़ा लेकर, तो "राम" निराश लौटेंगे।" तो कपड़ा ही बुनते रहे। लेकिन कपड़ा कबीर ने जैसा बुना, किसी ने नहीं बुना। कपड़ा बुनते तो जैसे भाव बुनते--आनंद से मग्न। जैसे प्रेयसी प्रेमी से मिलने जाती हो, जैसे प्रेमी प्रेयसी से मिलने जाता हो; जैसे बहुत दिन के बाद प्रेमी आता हो और प्रेयसी ने कपड़े तैयार किए हों, कपड़े बुन रही हो। फिर वे भागे हुए बाजार की तरफ जाते और जो भी ग्राहक आता, वह उससे कहते, "राम, बड़ी मेहनत से बुना है। खूब चलेगा।" साधारण दुकानदार कहता कितना ही हो कि "बहुत मजबूत है", लेकिन चाहता यही है कि चले बिल्कुल न, ताकि जल्दी लौट कर आना पड़े। कबीर कहतेः "बड़ी मेहनत से बुना है। जीवन भर चलेगा। तुम्हारे लिए ही बुना है।" सारा कृत्य जब सेवा बन जाए, तो फिर धर्म को संसार से अलग बांटने की जरूरत नहीं रह जाती। तब तुम्हारे जीवन में एक अविभाज्य, एक अखंड ज्योति जलने लगेगी, जिसके टुकड़े नहीं हैं। और जितनी ही तुम्हारी चेतना के टुकड़े हैं, उतने ही तुम मुर्दा हो। जितनी ही तुम्हारी चेतना एक होकर जलेगी, तुम मशाल की तरह हो जाओगे। तुम्हारे जीवन की ज्योति तब अपरंपार होगी, उसकी महिमा का कोई अंत नहीं है।
अभी तुम बुझे--बुझे दीये की भांति हो, क्योंकि तुम इतनी ज्योतियों में बिखर कर जल रहे हो। तुमने इतना बांट रखा है अपने जीवन को--इंच भर यहां, इंच भर वहां। तुम्हारे जीवन में कोई बाढ़ नहीं हो सकती, कोई ओवरफ्लोइंग नहीं हो सकती। तुम प्रेम भी करते हो तो मंदा-मंदा, तुम काम भी करते हो तो फीका- फीका। सब तरफ एक उदासी है। जीवन की ज्योति तो जलती है तब, जब तुममें अतिरेक होता है। जब इतनी ज्योति होती है कि तुम बांट सको और कम न हो, तुम लुटा सको और तुम्हें ऐसा न लगे कि मैं दीन हो रहा हूं--तभी जीवन में समाधि फलित होती है।
तो समाधि के लिए पहला आधार होगा कि तुम अखंड बनो। तुम धर्म को और संसार को अलग-अलग मत करो। इसलिए कबीर संसार और संन्यास को अलग-अलग नहीं करते। कबीर नहीं कहते कि तुम घर छोड़कर भाग जाओ हिमालय। क्योंकि जिसे तुम हिमालय पर पाओगे, वह यहां बाजार में मौजूद था। इतने दूर जाने की जरूरत क्या थी! और जब तुम उसे यहां न पा सके, तो उसे तुम हिमालय पर कैसे पा सकोगे? क्योंकि आंखें तो तुम अपनी ही ले जाओगे। अगर आंखें यहां अंधी थीं, तो हिमालय पर जाकर कैसे तुम देखनेवाले हो जाओगे? बाजार में आंखें अंधी थीं, तो हिमालय पर भी अंधी होंगी। और अगर अपनी पत्नी में तुम न देख सके, अपने बेटे में तुम न देख सके, अपने घर में न देख सके, तो किसी मंदिर में और किसी प्रतिमा में तुम न देख पाओगे। देखेगा कौन?
एक सूफी फकीर एक नदी के किनारे लोगों को नाव से पार कराने का काम करता था। दो-चार पैसे मिल जाते थे, उससे उसका रोज रोटी-पानी चल जाता था। एक युवक आया और उसने कहा, "मुझे पार करा दें। लेकिन पहले ही बता दूं, मेरे पास पैसे नहीं हैं और मैं कुछ दे न सकूंगा।" तो उस फकीर ने कहा, "एक ही पैसा तो मैं लेता हूं!" उस युवक ने कहा, "वह भी मेरे पास नहीं है।" फकीर जैसा बैठा था, वैसा ही बैठा रहा। उस युवक ने कहा, "क्या इरादा नहीं है ले चलने का?" फकीर ने कहा, "लेकिन जाने से फायदा भी क्या? पैसा तुम्हारे पास यहां भी नहीं है, उस किनारे भी नहीं होगा। करोगे क्या? इससे कोई भेद पड़नेवाला नहीं है। जैसे इस किनारे हो, वैसा उस किनारे भी रहोगे! नाहक मुझे तकलीफ दे रहे हो।" तुम्हारे पास अगर आंखें यहां नहीं हैं, तो उस किनारे पर भी आंखें नहीं होंगी। तुम अगर गृहस्थ होकर अंधे हो, तो तुम संन्यासी होकर भी अंधे रहोगे। इसलिए सवाल स्थान बदलना नहीं है। असली सवाल दृष्टि बदलना है। तुम्हारी आंखें खुल जाएं, तो तुम जहां हो, वहीं हिमालय है; तुम जहां हो, वहीं एकांत-- अकेलापन है; ठेठ बाजार में सन्नाटा है। नहीं तो हिमालय पर भी बड़ा शोरगुल रहेगा। तुम्हारा मन तो शोरगुल साथ ले जाएगा। एक बात पक्की है कि तुम कहीं भी जाओ, तुम अपने को तो साथ ले ही जाओगे। अपने को कैसे पीछे छोड़ कर भाग सकोगे! अपने से भागने का कोई रास्ता नहीं है।

तो कबीर संसार और संन्यास को एक ही मानते हैं। कबीर कहते हैंः यहीं संन्यास है, यहीं संसार है। और संन्यास और संसार दो परिस्थितियां नहीं हैं, देखने के दो ढंग हैं। देखने की कला आ जाए, तो सभी जगह संन्यास है। देखने की कला न आए, तो सभी जगह संसार है।
तुम जाओ--आश्रमों में--संन्यासियों की दुनिया में, वहां भी तुम संसार पाओगे। संसार से भागना मुश्किल है। संसार के बाहर कोई जगह हो भी नहीं सकती। सब वही चलेगा; छोटे रूप में, बड़े रूप में--वही चलेगा। मात्रा का भेद होगा, लेकिन गुण का कोई अंतर नहीं हो सकता। आखिर आश्रम में भी भोजन तो करना ही होगा। आश्रम में भी भोजन तो कमाना ही होगा। आश्रम में भी तो लोग होंगे, उनके साथ जीना होगा; संबंध होंगे; राग बनेगा, क्रोध होगा; प्रेम होगा, घृणा होगी; सब होगा। सारा संसार वहां पहुंच जाएगा। जिसे तुम सामने के दरवाजे से छोड़ कर भागे थे, वह पीछे के दरवाजे से प्रवेश कर जाएगा।
कबीर कहते हैंः "जब सोवौं तब करौं दण्डवत, पूजौं और न देवा।" किसी और देव की मैं पूजा नहीं करता। किसी और देव की पूजा का अर्थ ही यह है कि तुम संसार में देव और अदेव का भेद कर रहे हो। राम का नाम स्मरण करने का अर्थ ही यह है कि और नाम उसके नाम नहीं हैं। मंदिर अलग बनाने का अर्थ ही यह है कि सारा संसार मंदिर नहीं हो सकता। उसकी प्रतिमा को रूप देने का अर्थ ही यह हुआ कि यही रूप उसका है, बाकी रूप किसी और के हैं।
कबीर कहते हैंः "पूजौं और न देवा।" किसी और देवता की पूजा का कोई सवाल नहीं है, क्योंकि अकेला वही है। उसके अतिरिक्त कोई भी नहीं है। पूजा भी कौन करे और किसकी करे?
बायजीद बूढ़ा हो गया। निरंतर मस्जिद जाता था। कभी चूका नहीं था। दिन
की पांच नमाज पूरी करता था। लोग इतने आदी हो गए थे--बायजीद को मस्जिद में देखने के कि कोई कभी सोचता ही नहीं था कि ऐसा भी कोई दिन आएगा कि बायजीद मस्जिद में नहीं होगा। वर्षों से, चालीस-पचास साल से हर वक्त--बुखार चढ़ा हो, बीमार हो, तकलीफ हो, वर्षा हो रही हो, धूप हो--बायजीद पांच नमाज पूरी करता। एक दिन अचानक सुबह मस्जिद में लोगों ने देखा, बायजीद मस्जिद नहीं आया था। बात साफ थी कि मर गया; क्योंकि और तो कारण ही नहीं हो सकता। मस्जिद से भागे उसके झोपड़े पर पहुंचे। वह अपने झोपड़े के सामने, वृक्ष के नीचे बैठ कर खंजड़ी बजा रहा था। लोगों ने पूछा, "क्या बुढ़ापे में भ्रष्ट हो गए? जीवन भर की पूजा और यह क्या कर रहे हो? अब आखिरी दिनों में परमात्मा से संबंध छोड़ रहे हो? क्या भूल गए, पांच नमाज पूरी करनी हैं?" बायजीद बोला, "अब तक हम नाहक भटकते रहे। जो यही मौजूद था, उसको हम वहां खोजने जाते थे। अब हम मस्जिद न जाएंगे। अब जहां हम जाएंगे, मस्जिद हमारे साथ रहेगी।"
शायद ही गांव के लोग समझे हों।
"पूजौं और न देवा।" तब तुम स्वयं ही मंदिर हो। तब फिर भक्त और भगवान का
भी फासला न रहा। तब पूजा करने वाले का और पूज्य का भी अंतर न रहा। तब तुम्हारे होने का ढंग ही ऐसा होगा कि वह पूजा होगी। तुम्हारा उठना-बैठना पूजा होगी; तुम्हारा चलना-फिरना पूजा होगी। तुम श्वास भी लोगे तो पूजा का भाव होगा।
"कहौं सो नाम, सुनौं सो सुमिरन, खावं पियौं सो पूजा।" "कहौं सो नाम... ।"
जो बोलता हूं, वह उसी का नाम है; जो भी शब्द बोलता हूं, वह उसी का नाम है। उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, इसलिए सभी रूप उसके हैं। "सुनौं सो सुमिरन... ।" और जो भी सुन लेता हूं, वह उसी की याद है। कठिन है ख्याल में लेना, लेकिन एक दफा ख्याल में आ जाए, तो इससे सरल कुछ भी नहीं है।
पक्षी गाता है वृक्ष पर, सुमिरन करने की और कोई जरूरत है? पक्षी का गीत उसका ही गीत है। हवाएं गुजरती हैं वृक्ष में, पत्ते हिलते हैं, आवाज होती है--हवाएं उसकी, वृक्ष उसके, आवाजें उसकी, अलग से शोरगुल करने की जरूरत क्या है? एक बच्चा हंसता है, एक बच्चा रोने लगता है। रोना भी उसका, हंसना भी उसका है। सारी आवाजें उसकी हैं। और जो व्यक्ति एक दफा इस भाव को ख्याल में ले ले, फिर उसे कोई आवाज बाधा नहीं डाल सकती। वह बीच बाजार में उसी के सुमिरन से भरा हुआ है। सब आवाजें उसी की हैं। कहीं खरीददार की तरह बोल रहा है, कहीं बेचने वाले की तरह बोल रहा है। कहीं दुकानदार हैं, कहीं भिखारी

है; कहीं मालिक है, कहीं मजदूर है। लेकिन आवाजें सब उसी की हैं। खेल एक का है। लहरें बहुत हैं, सागर एक है।
"कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खावं पियौं सो पूजा।"
रामकृष्ण दक्षिणेश्वर में पुजारी नियुक्त हुए, तो बड़ी मुश्किल आई, क्योंकि पूजा के सब नियम तोड़ डाले! रामकृष्ण जैसे आदमी को पुजारी बनाना नहीं चाहिए। ऐसे लोग पुजारी हो नहीं सकते। क्योंकि रीति है, नियम है, मर्यादा है--ऐसे लोग मान नहीं सकते। रामकृष्ण फूल को पहले सूंघते, फिर चढ़ाते। पहले भोग खुद को लगाते, फिर भगवान को लगाते। पता चला कमेटी को। ट्रस्टी बहुत नाराज हुए कि यह बात तो बहुत बेहूदी है! बुलाया रामकृष्ण को और कहा, " यह नहीं चलेगा। यह क्या कर रहे हो? ब्राह्मण होकर तुम्हें इतना भी ख्याल नहीं।" रामकृष्ण ने कहा, "सम्हालो नौकरी। मैं अपनी मां को जानता हूं; जब तक वह खुद न चल लेती, मुझे नहीं देती थी। मैं बिना चखे चढ़ाने वाला नहीं। पता नहीं, देने योग्य है भी या नहीं। स्वाद पहले लूंगा, फिर भगवान को चढ़ाऊंगा।" यह समझ में आना मुश्किल है उसे, जो रीति-नियम से जीता है। लेकिन कबीर इतना भी नहीं करेंगे, जितना रामकृष्ण ने किया। वे चढ़ाएंगे
ही नहीं। वे कहते हैंः "यहां" जिसको चढ़ा रहे हैं, वह वही है। इस पत्थर की मूर्ति के सामने और रखने का क्या नाटक करना! "खावं पियौं सो पूजा।"
"गिरह उजाड़ एक सम लेखौं... । घर हो कि जंगल--एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा" सारी चेष्टा यह है कि दो का भाव मिट जाए। जहां-जहां दो हैं, वहां- वहां कबीर एक करके देखने की कोशिश करते हैं। घर और जंगल, संन्यासी और गृहस्थ, धर्म और अधर्म, संसार और मोक्ष--जहां-जहां दो हैं--"भाव मिटावौं दूजा।" यह दूजे का भाव मिट जाए, एक को ही देखने लगूं।
कठिन नहीं है "एक" को देखना। असल तो मजा यह है कि तुमने कैसे "दो" देखे,
यह चमत्कार है। है तो एक, दो तुमने देखे हैं। इसलिए "एक" को देखना कोई चेष्टा की बात नहीं है।
कैसे तुमने "दो" देखे हैं? जैसे कोई नशा कर लेता है, तो उसे एक के दो दिखाई पड़ने लगते हैं। होश में आ जाने से फिर एक दिखाई पड़ने लगता है। आंखें डांवाडोल हो जाती है नशे में--संतुलन खो जाता है। उस संतुलन की डगमगाई हुई हालत में तुम्हेंचीजें ज्यादा दिखाई पड़ती हैं। जैसे संतुलन वापस लौटता है, भीतर की कंपन की, लहरों की स्थिति विलीन हो जाती है, तुम थिर हो जाते हो--बाहर एक दिखाई पड़ने लगता है।
बाहर "दो" दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि भीतर तुम डगमगा रहे हो, कंप रहे हो। जैसे कोई दर्पण हो और कंप रहा हो। तुम सामने खड़े हो और बहुत सी छवियां दिखाई पड़ रही हैं। जैसे राम पूनम का चांद निकला हो और तुमने एक पत्थर झील पर फेंक दिया हो और झील की सतह कंप रही हो, चांद हजार टुकड़ों में टूट जाता है। फिर धीरे-धीरे लहरें शांत होने लगती है। हजार टुकड़े सौ रह जाते हैं, सौ टुकड़े दस रह जाते हैं। लहरें जैसे-जैसे खोने लगती हैं, वैसे-वैसे टुकड़े खोने लगते हैं। झील फिर शांत हो जाती है, तब एक चांद रह जाता है।
मन जब तक कंपता है तब तक "दो", मन जब निष्कंप हो जाता है तब "एक"।
एक तो है--दो तुमने किए हैं। इसलिए एक को वापस लौटा लेना बहुत कठिन न होगा। सिर्फ समझ चाहिए, सिर्फ थोड़ासा होश चाहिए और थोड़ा--निष्कंप मन। जब भी कहीं देखो, तो कंपते हुए मत देखो। जब भी कुछ देखो, तो विचार के साथ मत देखो; क्योंकि विचार कंपन है, लहर है। निर्विचार देखो; अचानक तुम्हें "एक" दिखाई पड़ेगा। अगर तुम निर्विचार होकर गृहस्थ को और संन्यासी को देख लो, तो तुम पाओगे कि दोनों एक हैं। अगर तुम निर्विचार होकर पदार्थ को और परमात्मा को देख लो तो तुम पाओगे कि दोनों एक हैं। जो भी निर्विचार होकर देखेगा, वह "एक" को ही देख पाएगा। एक का अनुभव निर्विचार का अनुभव है। "गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा।"
"आंख न मूंदौं कान न रूंधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।" बड़ा अदभुत वचन हैः "आंख न मूंदौं, कान न रूंधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।" इंद्रियों को तोड़ने-मरोड़ने से कुछ भी न होगा। लोगों ने आंखें फोड़ ली हैं--इस भय से कि आंखों के कारण रूप आकर्षित करता है, स्त्री मोहित कर लेती है, कि पुरुष

निमंत्रण बन जाता है। आंख ही न होगी, तो न दिखेगा रूप, न होगा आकर्षण, न जगेगी वासना। तर्क बिल्कुल गलत है।
आंख बंद करके देखो। फोड़ने तक जाने की जरूरत नहीं है। आंख बंद करने से रूप खोता नहीं है और भी मधुर और प्रीतिकर हो जाता है। कोई स्त्री इतनी सुंदर नहीं है, जितनी आंख बंद करके दिखाई पड़ती है। कोई पुरुष इतना आकर्षक नहीं है, जितना तुम्हारे सपनों में रंगीन हो जाता है। तुम रंग देते हो, तुम रूप देते हो; तुम्हारी वासना रंगती है, सौंदर्य का निर्माण करती है। सुंदर तुम्हें चीजें दिखाई पड़ती हैं--आंखों के कारण नहीं--तुम्हारी आंखों के माध्यम से तुम्हारी वासना उन पर आरोपित हो रही है। पूरे समय तुम अपनी वासना उंडेल रहे हो।
कभी तुमने ख्याल किया कि वही चीज जो कल सुंदर मालूम पड़ती थी, आज असुंदर मालूम पड़ने लगती है--अगर वासना चली गई। कल तुम उस पर पागल थे; आज कुछ अर्थ न रहा। क्या फर्क पड़ गया? चीज वही की वही है; व्यक्ति वही का वही है। इतना फर्क पड़ गया है कि अब तुम अपनी वासना उस पर नहीं डाल रहे हो। परदा वही है, लेकिन प्रोजेक्टर बंद है। अब तुम "पर्दे" पर कोई चित्र नहीं फेंक रहे हो।
सारा सौंदर्य, सारा रूप, तुम्हारे मन की निर्मिति है। और मन आंखों के पीछे छिपा है; आंख फोड़ने से क्या होगा? अंधे भी वासना से पीड़ित होते हैं-- शायद तुमसे ज्यादा पीड़ित होते हैं, क्योंकि कुछ कर भी नहीं सकते, खोज भी नहीं सकते; वासना को तृप्त करने का उपाय भी थोड़ा कठिन है। लंगड़े क्या दौड़ने की वासना से पीड़ित नहीं होते? क्या उनमें महत्वाकांक्षा नहीं जगती? मनोवैज्ञानिक तो उलटी ही बात कहते हैं। वे कहते हैं कि लंगड़े के मन में जितनी वासना दौड़ने की जगती है, उतनी स्वस्थ पैर वाले के मन में कभी नहीं जगती। और अंधा जितना देखने को आतुर होता है, उतना आंख वाला कभी आतुर नहीं होता है। बहरे की सुनने की आतुरता? तुम क्या मुकाबला करोगे! क्योंकि जो भी अभाव होता है, वह खलता है। जो हमारे पास नहीं होता, उसकी मांग बढ़ती है। इसलिए कबीर कहते हैंः "आंख न मूंदौं कान न रूंधौं, तनिक कष्ट नहि धारौं।" और वे कहते हैंः खुद को कष्ट देने से अगर परमात्मा मिलता होता, तब तो बड़ी आसान बात थी। लेकिन बहुत लोग खुद को कष्ट देकर सोचते हैं कि शायद इस भांति वे परमात्मा को कमाने का सौदा पूरा कर रहे हैं। जैसे कि सिक्के दे रहे हैं वे कष्ट उठाकर। ये लोग रुग्ण हैं। और जिसको मनोविज्ञान इस सदी में जाकर पहचान पाया है, कबीर ने बहुत पहले पहचान लिया था।
कुछ लोग हैं, जो स्वयं को कष्ट देने में रस पाते हैं। उनका चित्त रुग्ण है, पैथालॉजिकल है। जब तक वे अपने को सताएं न, उनको मजा नहीं आता। दो तरह के लोग हैं दुनिया में। एक, जो दूसरों को सताने में मजा लेते हैं। लेकिन दूसरे को सताना हमेशा खतरे का काम है। क्योंकि दूसरे को भी चुनौती दे रहे हैं आप कि वह इसका प्रतिकार करे। जो कायर और कमजोर हैं, वे भी सताना तो चाहते हैं, लेकिन दूसरे को नहीं सता सकते हैं, क्योंकि दूसरे के साथ झंझट हो जाएगी। वे खुद ही को सताते हैं। तो आक्रामक तरह के लोग दूसरे को सताने में रस लेते हैं और कायर तरह के लोग खुद को सताने में रस लेते हैं। पहली तरह के लोग हिंसा में लग जाते हैं और दूसरे तरह के लोग आत्म-हिंसा में लग जाते हैं।
एक आदमी उपवास में पड़ा है, एक आदमी कांटे बिछा कर लेटा हुआ है या एक आदमी दस वर्ष से खड़ा ही हुआ है, वह दस वर्ष से बैठा नहीं है। उसके पैर हाथी- पांव हो गए हैं। अब झुक भी नहीं सकते! या एक आदमी ने अपनी आंखों की पलकें उखाड़ कर फेंक दी हैं, ताकि नींद न आए; ताकि वह आंख खोले ही रखे। ये जो लोग हैं आत्म पीड़क हैं--जिनको मनोविज्ञान कहता है--मैसोचिस्ट; स्वयं को दुख देने में इनका रस है।
कबीर कहते हैंः "तनिक कष्ट नहीं धारौं।" लेकिन मैं अपने को कोई कष्ट नहीं देता। क्योंकि कष्ट देने का कोई सवाल नहीं है। जो न तो खुद को कष्ट देता है, न दूसरे को कष्ट देता है, वही साधु है। यह बड़ा मुश्किल है मामला। आपको भी लगता है कि साधु वही है, जो खुद को कष्ट दे। और असाधु वह है, जो दूसरे को कष्ट दे। तो अगर आप साधु को आराम में देखें, तो आपको तकलीफ शुरू

हो जाती है कि अरे! साधु होकर यह आदमी आराम से बैठा है! अगर साधु को आप ठीक मकान में रहते देख लेते हैं, तो तकलीफ शुरू हो जाती है। छाया में बैठे साधु को देख कर आपको बड़ी बेचैनी होती है। क्योंकि असाधु को तो आप भलीभांति जानते हैं, वह आप हैं। आपको असाधु का पता है कि जब तक दूसरे को धूप में न खड़ा कर दो, तब तक आपके चित्त को शांति नहीं मिलती। तो साधु इससे उलटा होना चाहिए, यह आपका तर्क है।
तर्क सीधा है--आप अपने लिए सुख चाहते हैं, दूसरे के लिए दुख चाहते हैं। अगर दूसरे को दुख देकर भी खुद को सुख मिले, तो आप सुख चाहते हैं। सारी दुनिया को दुख देकर भी खुद को सुख मिले, तो आप सुख चाहते हैं। सारी दुनिया को दुख मिले, तो कोई चिंता नहीं; आपको सुख मिलना चाहिए। सबको दुख मिले तो भी चलेगा। यह असाधु का भाव है। यह असाधु तभी किसी को साधु मानेगा, जब इससे उलटा कोई काम करके दिखाए। खुद को कष्ट देना शुरू कर दे--साधु हो जाएगा। लेकिन यह तो द्वंद्व का ही हिस्सा हुआ।
इसलिए कबीर को समझना बहुत मुश्किल है। क्योंकि कबीर कहते हैंः "तनिक कष्ट नहीं धारौं।" न मैं दूसरे को तकलीफ देता हूं, न खुद को तकलीफ देता हूं। क्योंकि न तो "मैं" हूं, न कोई दूसरा है। वही एक है। तकलीफ किसी को भी दी जाए, उसी को मिलती है। तो न तो दूसरे को भूखा मारना है और न खुद को। न दूसरे को धूप में खड़ा करना है, न खुद को। कष्ट देने की चेष्टा--चाहे दूसरे को या चाहे अपने को--रुग्ण है।
साधु चाहता है कि सुख सब पर बरसे; और अपने को भी उससे वंचित नहीं करता है, क्योंकि अपने साथ भी यह ज्यादती क्यों? और अपने साथ भी यह पक्षपात क्यों? यह भेद क्यों? साधु की आकांक्षा है कि यह सारा जगत सुख से भर जाए। इसमें किसी को भी दुख न हो। इसमें वह अपने को अलग करके नहीं चलता है। वह इसका हिस्सा है। पर साधु को समझना हमें कठिन है। हमारे असाधु के कारण, हमारी कठिनाई है। इसलिए जब भी हम देखेंगे कि साधु सुख में है, हमारे मन में तत्क्षण ख्याल आ जाता है कि यह ठीक साधु नहीं है। उसे कष्ट में होना ही चाहिए।
एक इटालियन विचारक लेंजा देलवास्तो भारत आया, तो रमण महर्षि को देखने गया--अरुणाचल। रमण परम साधु हैं; लेकिन लेंजा देलवास्तो को रमण साधु नहीं मालूम पड़े--बैठे हैं, तकिए से टिके हुए! अक्सर तो वे तकिए से टिके ही रहते थे; बैठे ही रहते थे, बिस्तर पर। वही उनकी जगह थी। लेंजा देलवास्तो दो-चार दिन वहां रहा और उसने अपनी डायरी में लिखा है कि "ये होंगे सिद्ध पुरुष-- पहुंचे हुए, पर अपने लिए नहीं। यह किस तरह की साधुता है?"
अरुणाचल से लेंजा देलवास्तो सीधा आया--सेवाग्राम। गांधी से प्रभावित हुआ। तत्क्षण उसने दीक्षा ली और गांधी का साधु हो गया। गांधी ने उसको नाम दिया--शांतिदास। लेंजा देलवास्तो ने लिखा है कि "गांधी से मैं प्रभावित हुआ।" यह आदमी सही है। मेहनत कर रहा है। चरखा कात रहा है। गरीब के पैर दाब रहा है। कोढ़ी को मालिश कर रहा है। कम से कम भोजन ले रहा है। शरीर हड्डी- हड्डी हो गया है। न कोई तकिया है, न कोई बिस्तर! यह आदमी साधु है।
लेंजा देलवास्तो बुरा आदमी नहीं है, अच्छा आदमी है; सज्जन, विचारशील; लेकिन उसका तर्क! वह कबीर के पास भी जाता, तो भी उसका तर्क यही होता। सुनता अगर वह कबीर को कहते कि "तनिक कष्ट नहीं धारौं", तो लेंजा देलवास्तो कहता कि "यह व्यक्ति अपने काम का नहीं है।" कोई जैन साधु लेंजा देलवास्तो को प्रभावित करता। अगर किसी ने आंख फोड़ ली हो, तो तुम्हें भी प्रभावित करेगा कि इसने कुछ किया है। किसी ने कान फोड़ लिया है, तो तुम्हें भी प्रभावित करेगा।
रूस में एक संप्रदाय था ईसाइयों का, जो जननेंद्रिय काट लेते थे। उनका बड़ा प्रभाव था। वे परम साधु थे। तुम्हारे सूरदासजी ने आंखें फोड़ी होंगी, लेकिन जननेंद्रिय काट डालना और भी बड़ी बात है। वे हजारों की संख्या में थे। और लोग पता लगाते थे कि इस साधु ने जननेंद्रिय काटी कि नहीं। अगर काट ली, तो परम साधु! नहीं काटी, तो क्या पता जीवन में कामवासना चलती हो, भोग चलता हो, कुछ पता नहीं। लेकिन जननेंद्रिय काट डाली तो फिर भोग का कोई कारण नहीं रहा, उपाय नहीं रहा। लेकिन उपाय नहीं रहने से क्या वासना मर जाती है?

जननेंद्रिय काटने से क्या चित्त के रोग चले जाते हैं? बढ़ सकते हैं; जाने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि उससे कोई संबंध ही नहीं है।
जननेंद्रिय कामवासना का आधार नहीं है, कामवासना की अभिव्यक्ति का माध्यम है। अभिव्यक्ति के माध्यम को रोकने से कोई कामवासना नहीं रुकती। नल की टोटी को बंद कर देने से कोई पानी का प्रवाह बंद नहीं होता। नल की टोटी तोड़ भी डाली, तो भी कोई पानी का प्रवाह बंद नहीं होता। झरने के ऊपर पत्थर रख दो, तो झरना रुक भला जाए, नष्ट नहीं होता। वासना तुम्हारे भीतर झर रही है।
कबीर कहते हैंः "आंख न मूंदौं कान न रूंधौं, तनिक कष्ट नहीं धारौं। खुले नैन पहिचानौं हंसि-हंसि, सुंदर रूप निहारौं।" आंख बंद करने की क्या जरूरत है! क्योंकि सभी रूप उसी के हैं। यह एक बहुत क्रांतिकारी दृष्टि है।
एक सुंदर स्त्री गुजरती है राह से--साधारण साधु का ढंग है कि आंख बंद
कर लो। कबीर का ढंग है कि इसमें उसी का रूप देखो--उस एक का ही रूप देखो। कबीर का ढंग महत्वपूर्ण है--सुंदर स्त्री दिखाई ही न पड़े, "वही" दिखाई पड़े। "खुले नैन पहिचानौं हंसि-हंसि, सुंदर रूप निहारौं।" पर हमें बड़ी मुश्किल है। फूल में हम परमात्मा देख भी लें। अगर मैं कहूं कि फूल में परमात्मा है, तो अड़चन नहीं होती है। अगर कहूं कि एक सुंदर स्त्री को देखते हैं, तो घबड़ाएं मत, उसमें भी परमात्मा है, तो अड़चन होती है। क्योंकि फूल से वासना का कोई गहरा संबंध नहीं है। स्त्री को देखते ही वासना जगती है। और वासना जब तक प्रार्थना न बन जाए, तब तक स्त्री में परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। और जब तक दिखाई न पड़े, तब तक तुम भागो कितने ही रेगिस्तानों में, पहाड़ों में, पहाड़ों पर--कुछ फर्क न पड़ेगा; स्त्री तुम्हारा पीछा करेगी। वह तुम्हारे साथ ही रहेगी। तुम जितने भयभीत होओगे, उतने ही सिकुड़ जाओगे, फैलोगे नहीं। और बिना फैले कभी किसी को ब्रह्म का अनुभव हुआ है? ब्रह्म को जाना है किसी ने?
सिकुड़ा हुआ आदमी अहंकार से भर जाएगा, फैला हुआ आदमी मिटता है। तुम जितने फैल जाओगे, अहंकार उतना ही कम हो जाएगा। तुम जितने ही सिकुड़ जाओगे, अहंकार उतना ही ज्यादा हो जाएगा। अहंकार एक तरह का संकुचन है। ब्रह्म-अनुभव एक तरह का विस्तार है।
"खुले नैन पहिचानौं हंसि-हंसि, सुंदर रूप निहारौं।" लेकिन साधु को तो तुम हंसते हुए भी नहीं देख सकते। और अगर वह सुंदर रूप को निहार के हंस रहा हो, तब तो बहुत कठिन हो जाएगा। तब तो तुम पुलिस को खबर कर दोगे। लेकिन कबीर कह रहे हैंः रोने की क्या बात है?
ये साधु इतने उदास क्यों दिखते हैं। इनका रोना, इनके लंबे चेहरे, इनके चित्त की यह इतनी उदासी--यह सब क्यों है? वासना प्रफुल्लता नहीं बन रही है, रोग बन रही है। वासना रूपांतरित होकर प्रार्थना नहीं बन रही है, कहीं न कहीं भीतर घाव बन रही है। उस घाव की वजह से चेहरे उदास हैं, उनमें प्रफुल्लता नहीं है।
हम प्रफुल्लता से भी डरते हैं, हंसने से भी डरते हैं। शराबखाने में तो हंसी सुनी जाती है, मंदिर में नहीं, मंदिर में सच में ऐसी हंसी सुनी जानी चाहिए, कि शराबखाने फीके पड़ जाएं। शराबी क्या हंसेगा। उसका हंसना कैसे गहरा हो सकता है? उसका हंसना तो रोने को छिपाने का एक उपाय ही होगा। मंदिर से हंसी उठनी चाहिए, जो कि कंपा दे।
असाधु क्या हंसेगा? वह हंस भी नहीं सकता; उसकी स्थिति हंसने की नहीं है। सिर्फ साधु ही हंस सकता है। लेकिन यह हंसी तब ही हो सकती है, जब जीवन एक सहज-योग हो। अगर तुमने जबरदस्ती की, तो तुम हंसोगे कैसे? अगर तुमने जबरदस्ती की, तो तुम उदास हो जाओगे। अगर तुमने जबरदस्ती की, तो तुम्हारा पौधा सूखेगा, जड़ें कटेंगी। "खुले नैन पहिचानौं हंसि-हंसि, सुंदर रूप निहारौं।"
"शबद निरंतर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी। ऊठत बैठत कबहुं न छूटै, ऐसी तारी लागी।" यह वचन बड़ा प्यारा है। इसे स्मरण रखना।
"शबद निरंतर से मन लागा।" एक शब्द है, उस शब्द का उच्चारण नहीं किया जा सकता, क्योंकि जो भी हम उच्चारण कर सकते हैं, वह निरंतर नहीं हो सकता। वह

पैदा होगा, नष्ट हो जाएगा। हम बोलेंगे, गूंज होगी, खो जाएगी। वह शाश्वत नहीं हो सकता, वह सदा नहीं हो सकता। एक ऐसा शब्द भी है, जिसे संतों ने जाना है, जो उच्चारित नहीं किया जा सकता, जो गूंज ही रहा है, उसको हमने ओंकार कहा है। उसी शब्द की कबीर बात कर रहे हैं, वे कह रहे हैंः तुम बोलना बंद करो, ताकि तुम्हारे भीतर जो शब्द गूंज ही रहा है, वह तुम्हें ख्याल में आ जाए। तुम इतना बोल रहे हो कि उसे सुन नहीं पाते। तुम इतना शोरगुल मचा रहे
हो कि परमात्मा की वाणी--जो निरंतर कलकल हो रही है, भीतर उसका नाद चल रहा है--वह तुम्हें सुनाई नहीं पड़ रहा है। समाधिस्थ पुरुष को सुनाई पड़ता है-- शब्द, जो निरंतर है। उस शब्द का इन शब्दों से कोई अर्थ नहीं, जो हम बोलते हैं।
कबीर और नानक शबद और शबद की ही बात किए चले जाते हैं। उस शब्द से कोई
भी संबंध हमारे इन शब्दों का नहीं है--जो हम बोलते और सुनते हैं। उस शब्द का उस स्थिति से संबंध है, जब हमारा बोलना बिल्कुल शून्य हो जाता है और भीतर हम सुनते हैं।
जो शब्द हम बोलते हैं, वह तो क्षणिक है। जो शब्द हम सुनेंगे, वह शाश्वत है। जब हम बिल्कुल चुप होंगे, तब वह सुनाई पड़ेगा। परमात्मा से बोलना नहीं है, परमात्मा को सुनना है।
"शबद निरंतर से मन लागा मलिन वासना त्यागी।" और जैसे ही उस निरंतर शब्द की गूंज सुनाई पड़नी शुरू होती है, मलिन वासना अपने आप छूट जाती है। उसे छोड़ना नहीं पड़ता, उसका त्याग हो जाता है। क्योंकि इतना अनाहत आनंद गूंजने लगता है, तो छोटे सुख की मांग कौन करेगा? जहां हीरे-जवाहरात बरस रहे हों, वहां रंगीन कंकड़-पत्थर का हिसाब कौन रखेगा? जहां अमृत झर रहा हो, वहां पानी की पुकार कौन मचाएगा? कौन कहेगा कि मुझे पानी के लिए प्यास लगी है?
"शबद निरंतर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी। ऊठत बैठत कबहुं न छूटै, ऐसी तारी लागी।" "तारी" का अर्थ होता हैः नींद, झपकी। तारी का अर्थ होता हैः तंद्रा। "ऊठत बैठत कबहुं न छूटै, ऐसी तारी लागी।" लेकिन उठता हूं बैठता हूं, चलता हूं, लेकिन कोई एक ऐसा नशा लग गया है, कोई एक ऐसी मस्ती छा गई है, एक ऐसी "तारी" लग गई है कि छूटती नहीं!
परमात्मा शाश्वत नशा है, फिर वैसी कोई शराब नहीं। शराब पीओ, चढ़ेगा नशा, उतरेगा। तारी टूटेगी। थोड़ी देर को खुद को भूल जाओगे फिर याद आएगी। लेकिन एक ऐसी तारी भी है कि तुम भूले, तुम भूले, तो फिर तुम्हारी याद तुम्हें कभी भी नहीं आती।
"ऊठत बैठत कबहूं न छूटै, ऐसी तारी लागी"।
"कह कबीर यह उनमनि रहनी, सो परगट कर गाई। सुख दुख से कोई परे परमपद, तेहि पद रहा समाई।।"
"कह कबीर यह उनमनि रहनी।" "उनमनि" शब्द बड़ा कीमती है। झेन फकीर जिसको "नो-माइंड" कहते हैं, वही इसका अर्थ है। उन्मनि-जहां मन नहीं, जहां मन समाप्त हुआ। " कह कबीर यह उनमनि रहनी।" मन तो समाप्त हो गया, लेकिन रहना जारी है। मन तो गया, लेकिन मैं हूं। नाम तो न रहा, सीमा तो न रही, लेकिन सागर चल रहा है। रूप तो न रहा, लेकिन जीवन अहर्निश बह रहा है। "कह कबीर यह उनमनि रहनी।" एक ऐसा रहना, जिसमें कोई मन नहीं है। एक ऐसी जीवनचर्या जो मन से शून्य है।
"सो परगट कर गाई।" कबीर कह रहे हैंः बस, इसी को गा रहा हूं, इसी को प्रकट कर रहा हूं--यह जो उनमनि रहनी है, यह जो मैंने जाना है, बिना मन के रहने का राज--जिसको वे कह रहे हैंः
जहं-जहं डोलौं सो परिकरमा, जो कछु करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत, पूजौं और न देवा।
कहौं सो नाम सुना सो सुमिरन, खावं पियौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा।।
आंख न मूदौं कान न रूंधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हंसि-हंसि, सुंदर रूप निहारौं।।
शबद निरंतर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी।

ऊठत बैठत कबहूं न छूटै, ऐसी तारी लागी।।
कह कबीर यह उनमनि रहनि, सो परगट कर गाई।
यह प्रकट रूप से गा दी है। जो जाना--बिना मन के रहने का--जो राज, जो रस,
जो नशा, जो मस्ती, उसे गा दिया है।
"सुख दुख से कोई परे परमपद, तेहि पद रहा समाई।" और कबीर गानेवाला अब है नहीं, सिर्फ गीत बचा है। क्योंकि कबीर तो वहां समा गया है, जो सुख दुख के ऊपर कोई परमपद है।
या तो हमारे जीवन में सुख है या दुख है। या कुछ है, जो हम चाहते हैं या कुछ है, जो हम नहीं चाहते हैं। कुछ है, जिसका हम पीछा करते हैं; कुछ है, जिससे हम बचना चाहते हैं। तब तो मन बचेगा, चुनाव जारी रहेगा। और कबीर कह रहे हैं कि एक ऐसा पद भी है--लेकिन मन के पार है वह पद--जहां न सुख है, न दुख है उसी को हमने आनंद कहा है।
आनंद जैसा शब्द दुनिया की और भाषाओं में खोजना मुश्किल है। सुख-दुख
के पर्यायवाची शब्द मिल जाते हैं। आनंद का अर्थ है--जहां न कुछ सुख है, न दुख है।
ध्यान रहे, आनंद का मतलब यह मत समझना कि जहां बहुत सुख है। क्योंकि जहां सुख होगा, वहां दुख भी रहेगा। अगर बहुत सुख होगा, तो बहुत दुख भी रहेगा। उनका अनुपात सदा समान होता है। गरीब के पास सुख कम होता है, दुख भी कम होता है। अमीर के पास सुख ज्यादा होता है, दुख भी ज्यादा होता है। उनकी मात्रा सदा बराबर रहेगी। वह तो संतुलन है। वे बराबर ही होंगे। जैसे साइकिल चलती है--दोनों चाक बराबर होंगे। तुमने एक चाक बड़ा किया, तो दूसरा भी बड़ा करना ही पड़ेगा; नहीं तो गिरोगे। साइकिल चल न पाएगी। सुख दुख दो पहिए हैं, वे सदा बराबर हैं। यही आदमी की मजबूरी है कि वह सुख के पहिए को बड़ा करता है, तो बड़ा हैरान होता है कि दुख का पहिया बड़ा हो गया। उसको यह पता नहीं है कि अगर दुख का पहिया बड़ा न हो, तो तुम गिरोगे; तुम चल ही न पाओगे। इसलिए सुखी आदमी जितना दुखी होता है, उतना दुखी आदमी दुखी नहीं होता। होने का उपाय नहीं है। उसके दोनों पहिए छोटे हैं।
गरीब आदमी का सुख भी छोटा है दुख भी छोटा होता है। अमीर आदमी के दोनों बड़े हैं। इसलिए आज जितना दुख अमेरिका में है, उतना दुख भारत में नहीं है। उसका कारण यह मत सोचना कि तुम सुखी हो। उसका कारण यह है कि वहां ज्यादा सुख है, ज्यादा दुख है। यहां न ज्यादा सुख है, न ज्यादा दुख है। दोनों पहिए बराबर हैं। और वह संतुलन जीवन अपने आप बनाता रहता है। लेकिन जहां तक दो हैं, जहां तक दूजा है, दुजाई है, जहां तक दुई है, वहां तक मन है।
"उनमनि रहनी" तो तब शुरू होगी, जब मन न रह जाए। तो एक और दशा है, जो आनंद
की है।
बुद्ध ने आनंद शब्द का उपयोग नहीं किया, सिर्फ इसीलिए कि आनंद शब्द से सुख की ध्वनि आती है। हम आनंद शब्द के साथ गलत व्यवहार कर रहे हैं। उससे ऐसा लगता है--सुख-महासुख। तो बुद्ध ने शांति शब्द का प्रयोग किया है। जहां दोनों शांत हो गए हैं। उसे आनंद कहो, शांति कहो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन एक बात ध्यान में रखनी जरूरी है कि "सुख दुख से कोई परे परमपद, तेहि पद रहा समाई।" कबीर तो समा गया है वहां। गाने वाला तो नहीं बचा है, लेकिन यह गीत गाया जा रहा है। यह उनमनि रहनी, यह बिना मन के रहने की जो चर्या है--स्वयं एक गीत बन गई है।
इस गीत को समझना हो, तो इन शब्दों को, जो मैंने समझाया है, समझना काफी नहीं है। "निरंतर शब्द" को सुनना पड़े। इन शब्दों से थोड़ा स्वाद पकड़ जाए, बस। इससे थोड़ी भनक पड़ जाए कान में। नींद नहीं टूट जाएगी इससे, लेकिन भनक पड़ जाए, कोई हिला दे और थोड़ा सा ख्याल आ जाए, बस, इतना हो सकता है। फिर खोज शुरू होती है।
खोज या तो प्रयत्न बन सकती है, अगर प्रयत्न बन जाए तो कबीर का सहज-योग
न होगा। और या फिर प्रसाद बन सकती है, अनुकंपा बन सकती है। तब तुम खोजोगे जरूर, लेकिन खोज में कोई श्रम न होगा--प्रार्थना होगी, पूजा होगी। लेकिन तुम्हारा पूरा जीवन पूजा जैसा होगा। प्रार्थना होगी, लेकिन अलग से मंदिर और मस्जिद में नहीं, तुम्हारे होने का ढंग प्रार्थनापूर्ण होगा। तुम

प्रेयरफुल हो जाओगे। एक भावदशा निर्मित होगी और उसी भाव दशा से धीरे-धीरे मन विलीन हो जाएगा।
तुम्हारा कबीर भी जब खो जाए, तभी कबीर को समझने का उपाय है। कबीर जैसा
ही होना पड़े। पर यह हो सकता है। क्योंकि तुम जो कर रहे हो, वही असंभव है। और जो कबीर या मैं करने को कह रहा हूं, वही सहज स्वभाव है।
सहज-समाधि का इतना ही अर्थ हैः जिसे पाने के लिए कुछ भी करने की जरूरत नहीं है, जिसे तुमने पाया हुआ है। जिसे तुमने कभी खोया नहीं, लेकिन तुम्हें ख्याल है कि तुमने खो दिया है। इस ख्याल को छोड़ना।
मैं तो तुमसे कहूंगा कि तुम इस भांति जीना शुरू कर दो कि कुछ भी खोया नहीं है। तुम इस भांति जीना शुरू कर दो कि सब मिला हुआ है। तुम इस भांति जीना शुरू ही कर दो कि तुम पहुंच गए। और तुम पाओगे कि तुम्हारा जीवन बदलना शुरू हो गया है।
इसमें तुम सोचो भी मत। इसमें तुम विचार भी मत करो अन्यथा मन समझाएगा
कि यह "कैसे हो सकता है? मंजिल दूर है?" तुम इस भांति जीना शुरू कर दो कि तुम मंजिल पर हो ही। तुम वहां हो ही, जहां सभी को पहुंचना है। ठीक इससे तुम शुरू करो।
यह बड़ा उलटा मामला है। क्योंकि हम पहले कदम से शुरू करते हैं। और सहज-योग कहता है कि अंतिम कदम से शुरू करो। हम शुरू से शुरू करते है--बिगनिंग फ्रॉम दि बिगनिंग। और सहज-योग कहता हैंः अंत से शुरू करो--जहां जहां पहुंचते हो, वहीं से शुरू करो। और मैं तुमसे कहता हूं कि सहज-योग सही है। अगर कबीर या पतंजलि की सुनना हो तो तुम कबीर की सुनना, पतंजलि की मत। क्योंकि पतंजलि का योग है--असहज योग। साधो, सम्हालो श्रम करो। हालांकि पतंजलि से भी पहुंच जाते हैं लोग। पर पहुंचने का कारण पतंजलि नहीं हैं। पहुंच जाते हैं इसलिए, कि साधते-साधते इतना थक जाते हैं कि एक दिन छोड़ देते हैं। जिस दिन छोड़ देते हैं, उसी दिन पा लेते हैं।
कबीर कहते हैंः यह तो पहले ही हो सकता था! इसके लिए इतनी दूर चलने की जरूरत न थी। इतने नाक-कान बंद करना, शीर्षासन लगाना, इतना सब करने के बाद ही जब छोड़ना था, इसको हम पहले ही दिन छोड़ दिए। इसको हमने उठाया ही नहीं। इस बोझ को हमने कंधे पर रखा ही नहीं।
पर दो ही रास्ते हैंः कबीर या पतंजलि। अगर मन बहुत जोर मारता हो, तो पतंजलि के साथ थोड़े दिन कशमकश करनी ही पड़ती है। अगर मन समझ में हो, तो एक इंच कोशिश करने की जरूरत नहीं है। कबीर के साथ तुम अभी और यहीं सिद्ध हो।
सिद्ध होना तुम्हारा स्वभाव है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
दूसरा प्रवचन

स्वीकार की आग

जोशू ने नानसेन से पूछाः "मार्ग कौन है?"
नानसेन ने कहाः "दैनंदिन जीवन ही मार्ग है।"
जोशू ने फिर पूछाः "क्या उसका अध्ययन हो सकता है?"
नानसेन ने कहाः "यदि अध्ययन करने की कोशिश की, तो तुम उससे दूर भटक जाओगे।"
जोशू ने फिर पूछाः "यदि मैं अध्ययन नहीं करूं, तो कैसे जानूंगा कि यह मार्ग है?"
नानसेन ने उत्तर में कहाः "मार्ग दृष्ट जगत का हिस्सा नहीं है; न ही वह अदृष्ट जगत का हिस्सा है। पहचान भ्रम है और गैर-पहचान व्यर्थ। अगर तुम असंदिग्ध होकर सच्चे मार्ग पर पहुंचना चाहते हो तो आकाश की तरह अपने को उसकी पूरी उन्मुक्तता में, पूरी स्वतंत्रता में छोड़ दो। और उसे न शुभ कहो और न अशुभ।"
कहते हैं कि ये शब्द सुन कर जोशू ज्ञान को उपलब्ध हो गया।
ओशो, कृपापूर्वक इस परिसंवाद का मर्म हमें समझाएं।

यह छोटी सी परिचर्चा--जोशू और नानसेन के बीच--जीवन को बदलने वाली हो सकती है। तुम्हारे जीवन में भी एक अंगार--इस परिचर्चा से पड़ सकता है। तुम भी भभक कर जल सकते हो। और अति कठिनाई होती है समझने में, कि इतनी सी परिचर्चा सुनने वाला ज्ञान को कैसे उपलब्ध हो गया होगा! ये "दो बातें" हैं--गुरु और शिष्य के बीच। इन छोटी सी दो बातों से शिष्य अचानक बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया! ऐसा तुम्हारे जीवन में भी हो सकता है। कभी होगा। ठीक क्षणों की बात है। गुरु और शिष्य के ठीक मिल जाने की बात है। जैसे अंगार बारूद से मिल जाए और विस्फोट हो जाए।
बारूद तैयार ही है--विस्फोट के लिए; तुम तैयार ही हो--बुद्धत्व के लिए। सिर्फ अंगार और तुम्हारे बीच में थोड़ी सी बाधा है, कोई दीवार है, कोई परदा है। अंगार पड़ता भी है तुम्हारे ऊपर, तो तुम्हारी बारूद से मिल नहीं पाता। उस दीवार को ही ज्ञानियों ने विचार कहा है।
तुम गुरु को दूर रखते हो--अपने से, क्योंकि तुम्हारे और गुरु के बीच विचार है। तुम सोचते हो, क्या कहा गया है; इसको तुम विचारते हो। उसी विचार में तुम चूक जाते हो। काश! तुम बिना विचारे सुन सको; बिना विचारे देख सको, तो दीवार हट जाए। तुम भी विस्फोट को उपलब्ध हो सकते हो।
जैसे हर बारूद विस्फोट हो सकती है, वैसे हर व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकता है।
कुछ बुनियादी बातें ख्याल में ले लो, फिर हम इस छोटी सी कथा में प्रवेश करें।
पहली बुनियादी बात कि तुम जैसे हो, परिपूर्ण हो। तुममें कुछ भी किया जाना नहीं है। किए जाने का ख्याल ही तुम्हें मुसीबत में डाले हुए है। यह ख्याल ही कि खुद को सुधारना है, बदलना है, विकसित होना है, सीढ़ियां चढ़नी हैं, सोपान पार करने हैं, कहीं पहुंचना है--यह ख्याल ही तुम्हें आत्म-निंदा से भरे हुए है। और जब तक तुम सोचोगे कि तुम्हें कहीं पहुंचना है, कुछ होना है, बदलना है, तब तक तुम मुसीबत में रहोगे।
तुम्हारी मुसीबत ऐसी ही है, जैसे कोई आदमी अपने ही जूते के बंध से खुद
को उठाने की कोशिश करे। तुम खुद को कैसे बदलोगे? कौन बदलेगा? किसको बदलोगे? तुम ही बदलोगे, तो बदलाहट होगी कैसे? तुम व्यर्थ ही परेशान हो रहे हो।
तुम्हारी परेशानी वैसी है जैसे कि--कभी तुमने किसी कुत्ते को दोपहर किसी छाया में विश्राम करते देखा हो, तो अनेक बार वह छलांग लगा--लगा कर अपनी पूंछ को पकड़ने की कोशिश करता है। लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है, क्योंकि जैसे ही वह छलांग लगाता है, पूंछ भी छलांग लगा जाती है! पूंछ उसकी

ही है। कुत्ते को जोश भी आता है; गुस्सा भी आता है। क्योंकि छोटी सी पूंछ इतना चकमा देती है! और जोर से झपटता है। जितने जोर से झपटता है, पूंछ उतने ही जोर से छलांग लगा जाती है।
जैसा कुत्ता मुसीबत में पड़ा है--छाया में विश्राम नहीं कर पा रहा है-- अपनी ही पूंछ को पकड़ने की चेष्टा में व्यर्थ परेशान हो रहा है, ऐसी ही दशा तुम्हारी है। तुम जिसे पकड़ना चाह रहे हो, वह तुम्हारी "पूंछ" है। और तुम जितने जोर से छलांग लगा कर पकड़ने की कोशिश करते हो, उतनी ही जोर से वह तुम्हारे हाथ से निकल जाती है। इससे तुम बड़े पीड़ित होते हो। इससे तुम सोचते हो कि "शायद छलांग छोटी है; ताकत कम है; समय नहीं आया; भाग्य साथ नहीं देता; कर्मों की बाधा है।" कुछ भी नहीं है। सिर्फ इतनी ही बात जाननी है कि पूंछ तुम्हारी है और पकड़ने की कोई जरूरत नहीं है, वह पकड़ी ही हुई है। तुम कहीं भी जाओ, वह तुम्हारे पीछे ही होगी।
सिद्धत्व, बुद्धत्व पकड़ा ही हुआ है; तुम्हें वहां पहुंचना नहीं है, तुम सदा से वहां रह रहे हो। इसलिए यह घटना घट सकती है एक क्षण में, एक शब्द की चोट किसी को जगा दे।
अगर अनंत जन्मों के कर्म बाधा डाल रहे हों, तो यह कैसे हो सकता है? अगर पापों ने दीवार बनाई हो, तो यह कैसे हो सकता है? और अगर मंजिल बहुत दूर हो और पाने में बड़ा श्रम करना पड़ता हो, तो एक क्षण में निर्वाण कैसे घटित होगा?
एक क्षण में घट जाता है। बस, तुम्हारे शांत, निर्विचार होने की बात है। दीवाल न होगी, घट जाएगा। लेकिन हमारा पूरा जीवन बड़ी उलटी कोशिश में लगा है।
एक दिन सुबह-सुबह मैं घूमने निकला। देखा, एक वृक्ष के नीचे एक बंगले
के बाहर एकांत रास्ते पर इमली का वृक्ष है, एक बच्चा आंख बंद किए इमली खा रहा है। उससे मैंने पूछा कि "आंख क्यों बंद किए हो?" उसने आंख बंद किए ही उत्तर दिया कि "मां ने कहा है कि अगर मैंने इमली का मुंह देखा, तो टांग तोड़ देगी।"
वह आंख बंद किए हुए है, ताकि इमली का मुंह न देखना पड़े!
करीब-करीब जिसको हम साधक कहते हैं, उसकी दशा ऐसी ही है। भयभीत है कि अगर वासनाओं में गया तो नरक, तो दुख। लोलुप है कि अगर वासनाओं में न गया, तो सुख कहां! तो बीच का रास्ता निकाल रहा है। आंख बंद किए इमली चूस रहा है। टांग भी न टूटे, इमली भी न छूटे! पर ऐसी प्रवंचना की दशा में तुम कितना ही समय बिता दो, जागरण घटित न होगा।
ठीक से समझने की बात केवल इतनी ही है कि अपने को धोखा देने का कोई उपाय नहीं है और न अपने को बदलने का कोई उपाय है। बड़ा कठिन है; क्योंकि जब तक लगता है--"अपने को बदल सकते हैं", तो आशा बंधती है। और ऐसा लगता है कि आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों बदल ही लेंगे। इस बदलने की आशा से तुम बदलते नहीं हो, सिर्फ जो घटना अभी घट सकती थी, उसे तुम टाल देते हो।
मन उदास होगा, अगर पता चले कि बदलाहट हो ही नहीं सकती। लेकिन तुम उदासी से बेचैन मत होओ; क्योंकि आशा तुम्हें कहीं भी नहीं ले गई, तो उदासी से घबड़ाते क्यों हो? आशा ने तुम्हें कहीं नहीं पहुंचाया है, तो निराशा से इतनी बेचैनी क्या है? बदल-बदल कर तुम बदल तो नहीं पाए। अगर बदलने से बदलाहट नहीं होती है, इस तथ्य का उदघाटन होता है और आंख खोल कर यह दिखाई पड़ता है, तो तुम इतने ज्यादा चिंतित क्यों होते हो?
लौट कर देखें--बचपन से इस जन्म का तो तुम्हें पता है--तुम जरा भी बदले हो? एक कण भी बदला है? तुम वही के वही हो। तुमने रंग-रोगन थोड़ा सा बदला होगा, कपड़े बदल लिए होंगे; लेकिन अगर तुम थोड़ी सी भी समझपूर्वक देखो, तो तुम पाओगे कि तुम वही के वही हो। जरा भी कुछ बदला नहीं है। लेकिन फिर भी मन में आशा रखते हो कि कभी बदल जाएंगे।
कौन बदलेगा? तुम्हीं बदलोगे, कैसे तुम बदलोगे? "तुम्हारी कोशिश व्यर्थ है, ..." इस बात की प्रतीति हो जाए, तो दूसरी प्रतीति और कर लेनी जरूरी है कि धोखा देने में भी कोई सार नहीं है; क्योंकि किसको धोखा दोगे? आंख बंद करके इमली खाओगे, इससे क्या फर्क पड़ेगा? धोखा भी नहीं दिया जा

सकता और बदलाहट भी नहीं होती। तब क्या बच रहता है? जो बच रहता है, वही झेन का सार है; वही सहज-योग का सार है--जो बच रहता है
क्या बच रहता है? बच रहता है--स्वीकार। जो दैनंदिन जीवन है--उसका स्वीकार। "तुम जैसे हो, वैसे हो", इस तथ्य की सहज स्वीकृति। और इस तथ्य के लिए तुम कुछ भी न करना। अगर तुम आलसी हो, तो आलसी हो। अगर तुम क्रोधी हो, तो क्रोधी हो। अगर तुम बेईमान हो, तो बेईमान हो। अगर यह बेईमान ही बेईमानी को बदलने की कोशिश करेगा, तो बेईमानी करेगा--इसमें भी। चोर अगर चोरी से बचने की कोशिश करेगा, तो उस बचने में भी चोरी कर जाएगा। झूठा आदमी है--अगर सच बोलने की कोशिश करेगा तो उसके सच बोलने में भी झूठ होगा, क्योंकि झूठ उसका स्वभाव है, उसकी आदत है। उसमें से सच भी निकलेगा, तो झूठ हो जाएगा।
स्वयं को स्वीकार जो कर ले, उसके अहंकार के खड़े होने का कोई उपाय नहीं
रह जाता। क्योंकि जैसा तुम अपने को पाओगे, उसमें अहंकार करने जैसी गुंजाइश नहीं है। किस बात का गौरव करना है? क्या है, जिसका गौरव करना है? और जो व्यक्ति स्वयं को स्वीकार कर लेगा--तो न अहंकार उठेगा, न धोखा देना पैदा होगा, न बदलाहट की चेष्टा होगी; फिर क्या होगा? फिर तुम ही बच रहते हो। और तुम जैसे हो, वैसे ही बच रहते हो। यही मार्ग है।
सहज-योग का अर्थ यह है कि कुछ भी करने जैसा नहीं है; सिर्फ स्वीकार की दशा को उपलब्ध हो जाएं; क्रांति घटित होगी। वह तुम्हारे करने से घटित नहीं होगी। वह तुम्हारे इस महान स्वीकार से फलित होगी। क्योंकि जैसे ही तुमने स्वीकार किया, विचार समाप्त हुआ।
तथ्य क्रांति ले आते हैं। सत्य क्रांति है। जैसे ही सत्य दिखाई पड़ता है, क्रांति हो जाती है।
बेईमान आदमी को बेईमानी बदलने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन बेईमान आदमी अगर अपनी बेईमानी को पूरी तरह स्वीकार कर ले, इस स्वीकृति में इतनी अग्नि पैदा होती है कि बेईमानी राख हो जाती है, जल जाती है। लेकिन बेईमान भी धोखा देता है, वह कहता हैः "कल ईमानदार हो जाएंगे। और आज अगर बेईमानी करनी पड़ी, तो परिस्थिति के कारण करनी पड़ी। करना मैं चाहता नहीं था। मजबूरी थी। कोई आदमी मैं बुरा नहीं हूं। आदमी तो भला हूं। और भले होने की पूरी कोशिश कर रहा हूं। कल भी कर रहा था, कल भी करूंगा। आज छोटी सी बेईमानी करनी पड़ी--परिस्थितिवश। बच्चे हैं, पत्नी है, घर-द्वार है--इसको चलाना है--संसार है।"
यह आदमी रोज अपने को धोखा देता रहेगा। क्योंकि यह अपनी बेईमानी को भी देख नहीं रहा है, उसे छुपा रहा है, ढांक रहा है। बदलाहट कैसे होगी?
ढांकने से कहीं कोई बदलाहट हुई है! घाव ढंक लेने से कोई बीमारियों से छुटकारा हुआ है! यह आदमी अगर अपनी बेईमानी को पूरी तरह देखे और देखेगा तभी, जब समझ ले कि न तो बदल सकता हूं, न आंख बंद करके धोखा दे सकता हूं; यह बेईमानी है, यह मैं हूं और इसी के साथ मुझे रहना है, इससे हटने का कोई उपाय नहीं है; यह मेरी छाया है।
क्या होगा? ऐसे क्षण में क्या होगा जब तुम बदल भी नहीं सकते, धोखा भी नहीं दे सकते और तुम्हें अपना पूरा रोग, पूरा मवाद, पूरा घाव दिखाई पड़ता है? क्या होगा? तुम्हारे जीवन में वैसी छलांग लग जाएगी, जैसे तुम्हें अचानक पता लगे कि घर में आग लगी है, चारों तरफ लपटें हैं, तब न तो तुम पूछते हो कि कहां से बाहर जाऊं, न तुम सलाह मांगते हो, न तुम कोई नक्शा खोजते हो, न तुम सोचते हो कि कल निकलेंगे, इतनी जल्दी निकलना कैसे हो सकता है! तुम बस, छलांग लगा जाते हो। तुम सोचते भी नहीं कि खिड़की कहां, द्वार कहां, मार्ग कहां? तुम बस छलांग लगा जाते हो! क्योंकि जब घर में आग लगी हो, तो सोचने की सुविधा नहीं है।
या तुम रास्ते से गुजरते हो और एक सर्प तुम्हें दिखाई पड़ता है, फन उठाए; उस वक्त तुम क्या करते हो? तुम सोचते हो? तुम सर्प से कहते हो कि "रुको। एक-दो क्षण मुझे विचार का मौका दो, ताकि मैं कुछ उपाय कर सकूं? कैसे निकलूं इस घेरे से?" नहीं, तुम बस, छलांग लगा जाते हो। सोच-विचार बाद में आता है; छलांग पहले आती है। अगर ठीक से समझो तो "सांप भी है", यह तुम्हें बाद में पता चलता है--जब तुम छलांग लगा जाते हो। छलांग पहले घट जाती है।

जब जीवन इतने खतरे में होता है, तो क्रांति स्वयं घटित होती है, उसे करना नहीं पड़ता।
दैनंदिन जीवन अगर पूरी तरह स्वीकार हो, तो क्रांति घटित होगी, तुम्हें "करना" न होगा। तुम्हें साधक न बनना पड़ेगा, तुम सिद्ध हो जाओगे।
सहज-योग का सार यही है।
अब हम इस छोटी सी परिचर्चा को लें। इसका एक-एक शब्द महत्वपूर्ण है।
जोशू ने नानसेन से पूछाः "मार्ग कौन है?" कहां है मार्ग? "कहां से चलूं कि पहुंच जाऊं?" नानसेन ने कहाः "दैनंदिन जीवन ही मार्ग है।"
यह रोज की जिंदगी ही मार्ग है। तुम जैसे हो, तुम जहां हो, तुम जो कर रहे हो--वही मार्ग है। उससे अलग तुमने मार्ग सोचा कि तुम धोखे में पड़ोगे। क्योंकि उससे अलग कोई मार्ग है नहीं। तुम्हारी दुकान, तुम्हारा मकान, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे बच्चे, तुम्हारा काम-धंधा, तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी वासना, बस, वहीं मार्ग है। तुमने अगर तरकीब निकाली और कोई सुंदर मार्ग सपने का बनाया, तो वह झूठा होगा। उससे तुम्हारा कोई संबंध ही न होगा।
हम सबने ऐसे मार्ग बना लिए हैं, जिनसे हमारा कोई भी संबंध नहीं, जिन पर
हम चल भी नहीं सकते, क्योंकि, हम चलेंगे वहां, जहां हम हैं। हमने मार्ग बनाए हैं--लोकोत्तर। लोक में जीते हैं--लोकोत्तर मार्ग हैं। जीते साधारण में हैं--असाधारण मार्ग हैं। जीते पृथ्वी पर हैं और हमारे सभी मार्ग स्वर्ग में हैं। तुम्हारे और तुम्हारे मार्ग के बीच कोई सेतु नहीं है। इसलिए मार्ग अपनी जगह, तुम अपनी जगह; जिंदगी चलती जाती है; कोई क्रांति घटित नहीं होती।
नानसेन ने कहा, "दैनंदिन जीवन ही मार्ग है।"
जोशू ने फिर पूछा, "क्या उस मार्ग का अध्ययन हो सकता है?"
मन बड़ा कुशल है। नानसेन का उत्तर बिल्कुल साफ है, लेकिन फिर भी प्रश्न निर्मित होता है। दैनंदिन जीवन ही अगर मार्ग है, तो अध्ययन की जरूरत क्या है? अध्ययन तो उसका करना होता है, जिससे हम अपरिचित हैं। अध्ययन उसका करना होता है, जिसे हम नहीं जानते। अगर करुणा को समझना है, तो अध्ययन करना पड़ेगा; क्रोध का अध्ययन करने की कोई जरूरत है? क्रोध तो है, तुम उसे उघाड़ कर देख सकते हो; रोज-रोज आता है; तुम उसे ढांक-ढांक कर छिपाते हो। तुम अध्ययन से बचते हो। "अध्ययन की क्या जरूरत है?"
अगर ब्रह्मचर्य को समझना हो, तो अध्ययन की जरूरत है। लेकिन कामवासना
को समझने के लिए अध्ययन की क्या जरूरत है? अंधा भी समझ लेगा। क्योंकि कामवासना तो जल रही है, उसकी लपटें तो चारों तरफ हैं।
जोशू ने फिर पूछा, "क्या उस मार्ग का अध्ययन हो सकता है?" मन तरकीब खोज रहा है। क्योंकि अध्ययन अगर करने की सुविधा मिल जाए, तो क्रांति से बचने का उपाय हो जाए। क्योंकि हम कहते हैंः "पहले अध्ययन करेंगे, समझेंगे, फिर आचरण करेंगे; स्वाध्याय होगा, फिर आचरण होगा। अभी इतने जल्दी आचरण तो नहीं हो सकता!" जब समझते नहीं कि करुणा क्या है?
लेकिन नानसेन यह कह रहा है कि करुणा को समझने की जरूरत नहीं, अध्ययन
की जरूरत नहीं; करुणा की तुम बात ही छोड़ दो। तुम क्रोध को ही ठीक से जान लो; वही मौजूद है, अध्ययन क्या करना है? उसे उघड़ जाने दो। अगर वही पूरा उघड़ जाए, तो करुणा फलित होगी।
यह गहरी से गहरी कुंजियों में से एक है।
जैसे पानी गरम हो जाए, तो भाप प्रकट होगी, अगर क्रोध का साक्षात्कार
हो जाए, तो करुणा प्रकट होगी। करुणा क्रोध के विपरीत साधी गई कोई अवस्था नहीं है। क्रोध को जिसने उसकी पूरी विषाक्त दशा में जान लिया, वह छलांग लगा कर बाहर हो जाता है। उसकी छलांग उसे करुणा में ले जाती है।
क्रोध के भीतर बैठे-बैठे करुणा को जो साध रहा है, वह धोखा दे रहा है। कामवासना में दबा हुआ जो ब्रह्मचर्य के विचार कर रहा है, वह धोखा दे रहा है। और इस धोखे के कारण कामवासना मिटेगी नहीं, बढ़ेगी। इसलिए ब्रह्मचारी की कामवासना और भी बढ़ जाती है, घटती नहीं है।

उन लोगों को देखो, जो कि क्रोध पर नियंत्रण कर रहे हैं, उनके क्रोध का कोई मुकाबला नहीं है। उनका क्रोध जलती हुई आग है। तुम्हारा क्रोध कुनकुना है; कुछ भी नहीं है। उनका क्रोध भभकता हुआ है। ऐसे क्रोधियों में से ही दुर्वासा जैसे ऋषि पैदा हुए थे। भभकता हुआ क्रोध है।
ऋषि-मुनियों की वासना का क्या हिसाब है! जब भी ध्यान करने बैठते हैं, अप्सराएं चारों तरफ नाचने लगती हैं। तुमने ब्रह्मचर्य का सोच-विचार किया और कामवासना को छिपाया, तो यह होगा।
नानसेन ने कहा, "यदि अध्ययन करने की कोशिश की, तो तुम उससे बहुत दूर भटक जाओगे।"
अध्ययन के लिए दूरी चाहिए। देखने के लिए दूरी नहीं चाहिए। विचार करने
के लिए दूरी चाहिए। समझने के लिए दूरी नहीं चाहिए। समझ तो तभी फलित होती है, जब दूरी बिल्कुल नहीं होती और विचार तभी चलता है, जब दूरी काफी होती है।
जैसे किसी व्यक्ति को प्रेम का अध्ययन करना हो, तो उसे प्रेम में नहीं पड़ना चाहिए; क्योंकि जो प्रेम में पड़ेगा, वह प्रेम का अध्ययन कैसे करेगा! वह तो इतना उत्तप्त हो जाएगा प्रेम से कि उसका अध्ययन निष्पक्ष नहीं हो सकता। अध्ययन प्रेम का करना हो, तो प्रेम में भूल कर नहीं पड़ना चाहिए। पुस्तकालयों में बैठ कर, प्रयोगशालाओं में बैठ कर अध्ययन करना चाहिए। अगर प्रेम में उतर गए, तो प्रेम की समझ तो आ जाएगी, लेकिन अध्ययन नहीं
हो सकेगा। अध्ययन के लिए दूरी चाहिए और तटस्थता चाहिए और फासला चाहिए। प्रेम के लिए दूरी मिटनी चाहिए, सब फासले गिरने चाहिए। तब प्रेम की समझ का तो उदय होगा, लेकिन उस समझ को हम अध्ययन नहीं कह सकते।
जोशू पूछ रहा है कि "क्या अध्ययन हो सकता है उस मार्ग का?" मन कह रहा
है कि अगर अध्ययन हो सकता है, तो उसको पोस्टपोन किया जा सकता है। तो फिर कुछ दिन अध्ययन करेंगे। और अध्ययन जटिल है, एक जन्म में भी अध्ययन पूरा न होगा। अनेक जन्म लग सकते हैं, फिर समझेंगे, सोचेंगे, विचारेंगे, फिर छलांग लगा लेंगे।
नानसेन ने कहा, "अध्ययन करने की कोशिश की तो तुम उससे बहुत दूर भटक जाओगे।" अगर दूर भटकना हो, तो अध्ययन करना। इसलिए विचारक सत्य से जितने दूर निकल जाते हैं, उतने अज्ञानी भी दूर नहीं होते। अज्ञानी के भी हाथ के पास में सत्य होता है; जब चाहे नजर फेर ले और देख ले। लेकिन विचारक से सत्य बहुत दूर हो जाता है। जितना बड़ा विचारक, सत्य उतना ही दूर हो जाता है। जिनको हम महान दार्शनिक कहते हैं, उनसे तो सत्य का कोई संबंध ही नहीं
रह जाता। वे शब्दों में जीने लगते हैं, सिद्धांतों में जीने लगते हैं, शास्त्रों में जीने लगते हैं।
सत्य से शास्त्र का, शब्द का क्या वास्ता? सिद्धांत का क्या संबंध? नानसेन ने कहा, "अध्ययन करने की कोशिश की तो तुम उससे बहुत दूर भटक जाओगे।" तुमने कभी ख्याल किया है कि जब तुम विचार करते हो, तभी तुम जीवन से भटक जाते हो।
गुलाब का फूल खिला है, तुम उसके पास बैठे हो। तुमने सोचा--और तुम दूर गए। तुमने कहा कि "फूल सुंदर है" और तुम दूर गए। तुमने कहा, "कैसी सुगंध, कैसा प्यारा फूल" और तुम दूर गए। तुमने सोचा कि "क्या नाम है इस फूल का" और तुम दूर गए। तुम्हें कविताएं याद आ जाएंगी, जो फूल के संबंध में तुमने पढ़ी हैं, लेकिन ये फूल इससे तुम दूर हो जाओगे।
अगर फूल के पास होना है, तो एक ही उपाय है कि तुम्हारे भीतर विचार पैदा
न हो। तुम "देखो" तो फूल को, लेकिन सोचो मत। तुम "सुनो" तो फूल को, सोचो मत। तुम सूंघो तो फूल को, लेकिन सोचो मत। तब तुम्हारा मस्तिष्क बाधा न बनेगा और तुम्हारे हृदय के द्वार खुले होंगे। उसी खुले द्वार से फूल तुमसे मिलेगा, तुम फूल से मिलोगे।
जब भी तुम सोचते हो, तभी तुम दूर निकल जाते हो। सोचना एक यात्रा है-- दूर जाने की। इसलिए ज्ञानियों का इतना जोर है--ध्यान पर। ध्यान का अर्थ हैः न सोचना। ध्यान सोचने से विपरीत है। ध्यान सोचने का दुश्मन है।

लेकिन तुम होशियार हो। तुम पूछोगे, "ध्यान के संबंध में भी अध्ययन तो करना ही पड़ेगा। ध्यान के संबंध में भी सोचेंगे तो ही; नहीं तो ध्यान को जानेंगे कैसे!" यही जोशू कह रहा है। वह कह रहा हैः "अध्ययन तो कर सकते हैं?" जोशू ने फिर भी पूछा, "यदि मैं अध्ययन न करूं, तो कैसे जानूंगा कि यही मार्ग है।" विचार की बड़ी कठिनाइयां हैं। क्योंकि विचार अंधे की तरह टटोलता है।
एक अंधा आदमी है, वह लकड़ी से रास्ता खोजता है, टटोलता है, देखता है। दीवार है, तो समझ लेता है; दरवाजा है, तो समझ लेता है। अंधे आदमी की आंख का इलाज करो, तो वह पूछेगा कि इलाज के बाद फिर मैं लकड़ी छोड़ दूंगा या रखूंगा? तो चिकित्सक उससे कहे कि "फिर लकड़ी की कोई जरूरत न रहेगी और अगर लकड़ी फिर भी लेकर तुम टटोलते रहे, तो उसका मतलब होगा कि तुम अभी भी अंधे हो।" क्योंकि अब तक उसने लकड़ी के सहारे ही टटोल कर जाना है। उसे पता ही नहीं है कि आंख का एक देखना भी होता है, जिसमें लकड़ी की कोई जरूरत नहीं होती।
जोशू ने पूछाः "यदि अध्ययन न करूं, अगर सोचूं-विचारूं न, अगर शास्त्रों का ज्ञान न हो, तो जानूंगा कैसे कि यही मार्ग है? कुमार्ग में पड़ जाऊं तो? गलत मार्ग पर चला जाऊं तो? भटक जाऊं तो?"
हमें भी लगेगा कि उसकी बात ठीक है, गलत मार्ग भी हो तो सकता है! लेकिन सहज-योग कहता है कि गलत के होने का सिर्फ एक ही उपाय है और वह है कि तुमने सोचा। बाकी कोई उपाय गलत होने का नहीं है। अगर तुमने नहीं सोचा, तो तुम सही हो। तुम जहां भी जाओगे, सही जाओगे। अगर तुमने सोचा, तो तुम जहां भी जाओगे गलत ही जाओगे।
विचार गलत मार्ग है और ध्यान सही मार्ग है। विचार से तय नहीं होता कि क्या सही है, विचार तो जहां होता है, वहीं गलत हो जाता है। विचार ही गलत है। बड़ी मुसीबत है, क्योंकि हम तो विचार से तय कर रहे हैं कि क्या सही है
और क्या गलत है। विचार जो कि गलत की प्रक्रिया है, जिससे हर चीज गलत होती है, हम उसी से सही को खोजने की कोशिश कर रहे हैं।
हमारी हालत उस सुनार जैसी है, जो अपने सोने के कसने के पत्थर को लेकर बगीचे में आ गया है और फूलों को कस-कस कर देख रहा है कि कौन सा फूल सही है और कौन सा गलत है! और पत्थर पर फूल नहीं कसे जाते। और अगर पत्थर पर तुमने फूल कसे, तो सभी फूल गलत होंगे। इसका कारण यह नहीं है कि सभी फूल गलत हैं, तुम पत्थर ही गलत ले आए हो। पत्थर के लाने में ही गलती हो गई है। पत्थर पर सोना कसा जाता होगा, फूल नहीं कसे जाते हैं। पत्थर पर घिस कर कहीं फूलों का पता चलेगा कि कौन सही है, कौन झूठा? कौन असली है, कौन नकली?
विचार से सही और गलत का कोई संबंध नहीं। अगर विचार का किसी चीज से संबंध है, तो क्या है? विचार का संबंध है--जहां बहुत सी गलतियां हैं, उसमें सबसे कम गलत को चुनना--दि लीस्ट--वह जो सबसे कम गलत है, सबसे कम बुरा है। सबसे कम बुराई को चुनना विचार की प्रक्रिया है। लेकिन सबसे कम बुराई भी बुराई है।
इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुमने एक ठिगने शैतान को चुना है कि एक लंबे शैतान को चुना है। शैतान की मात्रा से उसके गुण में कोई फर्क नहीं पड़ता। दो पैसे की चोरी भी उतनी ही बड़ी होती है, जितनी दो करोड़ की। चोरी चोरी है। छोटी और बड़ी चोरियां नहीं होतीं। छोटी बुराई और बड़ी बुराई नहीं होती।
मैंने सुना है, एक आदमी सेना में भर्ती होने गया। उससे पूछा गया कि "तुम शराब तो नहीं पीते हो?" उसने कहा, "नहीं।" "चोरी की आदत तो नहीं है?" उसने कहा, "नहीं।" सिगरेट धूम्रपान? उसने कहा, "नहीं।" स्त्रियों के पीछे तो नहीं भटकते हो? उसने कहा कि "बिल्कुल नहीं।" आखिर पूछने वाला भी थोड़ा चौंका। उसने कहा कि कोई एकाध तो बुराई होगी! उस सैनिक ने कहा, "सिर्फ एक ही बुराई है कि मैं झूठ बोलता हूं।" मगर एक बुराई काफी है। वह जो सब उसने कहा था, सब व्यर्थ हो गया।
बुराई छोटी-बड़ी नहीं होती। और ध्यान रहे, बुराई एक दो और तीन भी नहीं होती। एक बुराई काफी है। सब बुराइयां उसके पीछे आ जाती हैं। एक से दरवाजा खुल गया कि पूरी भीड़ आ जाती है।

विचार--कम से कम बुराई क्या है, इसको चुनता है। लेकिन वह भी बुराई है। विचार से कभी पता नहीं चलता है कि क्या ठीक है और क्या गलत है। बहुत गलतियों में सबसे कम गलत कौन है, इसके लिए विचार तर्क करता है।
नानसेन ने कहाः "अध्ययन नहीं, विचारण नहीं।" जोशू ने पूछा, "फिर जानेंगे कैसे कि ठीक क्या है?" तो नानसेन ने उत्तर दिया, "मार्ग-दृष्ट जगत का हिस्सा नहीं है; न ही वह अदृष्ट जगत का हिस्सा है। पहचान भ्रम है और गैर-पहचान व्यर्थ है। अगर तुम असंदिग्ध होकर सच्चे मार्ग पर पहुंचना चाहो, तो आकाश की तरह अपने को उसकी पूरी उन्मुक्तता में छोड़ दो, पूरी स्वतंत्रता में छोड़ दो। और उसे न शुभ कहो, न अशुभ।"
बड़े कीमती सूत्र हैं। "मार्ग न तो दृश्य जगत का हिस्सा है।" जिन रास्तों को तुम देखते हो, उन रास्तों में से कोई भी रास्ता आत्मा तक नहीं जाता है। वे सभी रास्ते बाहर ले जाते हैं। उनमें से कोई भी रास्ता भीतर की तरफ नहीं जाता। तुम दुनिया भर के रास्तों पर चलते रहो, तो भी तुम अपने भीतर नहीं पहुंचोगे। रास्ते मात्र जो दिखाई पड़ते हैं--बाहर ले जाते हैं।
तो विचार कहेगा, तो फिर इससे विपरीत सही होगा। अगर दृष्ट रास्ते उस तक नहीं ले जाते, तो वह अदृष्ट का हिस्सा होगा। विचार हमेशा विपरीत में सोचता है। अगर "यही" सही नहीं है, तो इससे उलटा सही होगा। अगर "हां" गलत है, तो "नहीं" सही होगा; अगर "नहीं" गलत है, तो "हां" सही होगा; अगर नास्तिक गलत है, तो आस्तिक ठीक होगा; अगर आस्तिक गलत है, तो नास्तिक ठीक होगा। लेकिन ठीक-- सदा दोनों के पार है। न तो नास्तिक ठीक है, न आस्तिक ठीक है। वे तो एक ही गलती के दो छोर हैं। वे तो एक ही जिद्द के दो हिस्से हैं। वे एक ही नासमझी के दो पहलू हैं। जो परम धार्मिक है, वह न तो आस्तिक होता, न नास्तिक। इसलिए बुद्ध और महावीर के संबंध में बड़ा भ्रम है। बहुत लोग समझते हैं
कि वे आस्तिक हैं, बहुत लोग समझते हैं कि वे नास्तिक हैं। और वे खुद चुप हैं। जैन समझते हैं कि महावीर से बड़ा आस्तिक कहां खोजेंगे! हिंदू समझते हैं कि महावीर से बड़ा नास्तिक और कौन होगा!
बौद्ध सोचते हैं कि बुद्ध महा-आस्तिक हैं। लेकिन गैर-बौद्ध सोचते हैं, कि इस आदमी ने सब भ्रष्ट कर दिया; यह आदमी महा नास्तिक है। यह आदमी बड़ा बहुमूल्य है, इसलिए हिंदुओं ने इसे दसवां अवतार स्वीकार किया। बुद्ध को इनकार करना भी मुश्किल है, आदमी वजनी था। इसको तुम इनकार करोगे, तो तुम्हें खुद लगेगा कि कुछ भूल हो रही है। इतना बड़ा आदमी इस मुल्क में पैदा हुआ, इसे हिंदू अपने अवतारों में से छोड़ भी नहीं सकते थे। क्योंकि छोड़ने से बुद्ध का कोई भी नुकसान नहीं होगा, वरन हिंदुओं की फेहरिस्त कमजोर हो जाएगी। वे जो लिस्ट बनाए हुए हैं--अवतारों की, उसकी ही कीमत गिर जाएगी। बुद्ध का कोई हर्जा नहीं है। लेकिन बुद्ध से ज्यादा जगमगाता आदमी पैदा नहीं हुआ इस जमीन पर, इस मुल्क में। इसको छोड़ना हिंदुओं के लिए दुखद होता। यह "दुकान" के लिए नुकसान होता। इस आदमी के साथ बड़ी क्रेडिट जुड़ी है। तो इसको स्वीकार किया--दसवां अवतार। लेकिन यह आदमी खतरनाक भी है। क्योंकि इसको साधारण अर्थों में आस्तिक नहीं कह सकते। यह कहता है, "कोई ईश्वर नहीं है।" इसको साधारण अर्थों में आत्मवादी भी नहीं कह सकते। यह कहता है, "कोई आत्मा नहीं है।" इस आदमी को साधारण अर्थों में आध्यात्मिक तक नहीं कह सकते; क्योंकि यह कहता है, "न तो मोक्ष है, न कहीं जाना है, कुछ भी नहीं है, परम शून्य है।" आदमी आस्तिक नहीं, आत्मवादी नहीं, अध्यात्मवादी नहीं, लेकिन इसे अवतार मानने से भी बचा नहीं जा सकता है। इसकी कीमत ज्यादा है, इसको छोड़ भी नहीं सकते! तो हिंदुओं ने एक कथा गढ़ी कि बुद्ध अवतार हैं।
बड़ी मीठी कथा है हिंदुओं में कि जब भगवान ने जगत बनाया, तो उसने नरक भी बनाया, स्वर्ग भी बनाया; फिर भगवान के अवतार हुए--नौ अवतार हुए बुद्ध के पहले, और उन्होंने लोगों को धर्म समझाया। और लोग इतने धार्मिक होते गए कि वे सभी स्वर्ग चले गए। नरक में शैतान बैठा है, खाली हाथ। लंबा समय बीतता जाता है, कोई आता नहीं है। शैतान ने भगवान से कहा कि इसका अर्थ क्या है? इसका प्रयोजन क्या है? मुझे किसलिए बिठा रखा है उस दफ्तर में, जो चलता ही नहीं और जहां कोई कभी आता नहीं? तुम्हारे अवतार सभी को मुक्त किए दे रहे हैं! तो बंद करो। मुझे यहां किसलिए बिठा रखा है? तो भगवान ने बुद्ध को

भेजा, ताकि वे लोगों को भटकाएं और लोग नरक जा सकें और शैतान खाली न बैठा रहे! छोटे-मोटे आदमी से यह भटकाना भी नहीं हो सकता; क्योंकि राम ने जिनको चलाया हो रास्ते पर, कृष्ण ने जिनको मार्ग दिखाया हो, तो उनसे भी बड़ी हैसियत का आदमी चाहिए--जो भटकाए। इसलिए दसवां अवतार बुद्ध का हुआ--लोगों को भटकाने के लिए! हिंदू-मन ने बड़ी तरकीब से काम लिया; गणित पूरा ठीक बिठाया। इस आदमी को स्वीकार भी नहीं करना है और इस आदमी को इनकार करके नुकसान भी नहीं उठाना है।
लेकिन बुद्ध के साथ तकलीफ क्या है! तकलीफ यही है कि परम धार्मिक व्यक्ति "हां" और "न" में विभाजित नहीं होता। तुम उसे किसी पक्ष में नहीं रख सकते। तुम उसे विपक्ष में भी नहीं रख सकते, क्योंकि वह निष्पक्ष होता है। उसका कोई पक्षपात नहीं है।
तो मार्ग न तो दृश्य जगत में है। मन तत्काल कहेगा, दृश्य में नहीं है,
तो अदृश्य में होगा। लेकिन नानसेन ने कहाः "नहीं, न तो दृश्य में मार्ग है, न अदृश्य में।" मार्ग तुममें है।
यह बड़े मजे की बात है। तुम न तो दृश्य हो और न अदृश्य। तुम दोनों के पार हो; क्योंकि तुम्हें देखा भी नहीं
जा सकता और तुम यह भी नहीं कह सकते कि मैंने अपने को कभी देखा नहीं है।
ये दोनों बातें गलत होंगी। तुम अपने को जानते तो हो, पहचानते भी हो, क्योंकि तुम अपने को ही नहीं पहचानोगे तो और क्या पहचानोगे! तुम्हारे होने का तुम्हें प्रतिपल पता चल रहा है। लेकिन तुम स्पष्ट रूप से यह भी नहीं कह सकते कि मैंने अपने को जान लिया है; क्योंकि जानने के लिए दूरी चाहिए, जानने के लिए दूसरा चाहिए; स्वयं को कोई कैसे जान लेगा?
आत्मज्ञान की बड़ी कठिनाई है। न तो वह ज्ञान जैसा है और न अज्ञान जैसा है। वह दोनों से भिन्न है। वह ज्ञान जैसा साफ है और अज्ञान जैसा रहस्यपूर्ण है। वह प्रकाश जैसा स्पष्ट है और अंधेरे जैसा गहन है। वह दोनों है। इसलिए आत्मज्ञान न तो दृश्य जगत का हिस्सा है और न अदृश्य जगत का। दोनों को अतिक्रमण कर जाता है; ट्रांसेंडेंटल है; दोनों के पार है। नानसेन ने कहा, "न तो दृष्ट का हिस्सा है और न अदृष्ट का। पहचान भ्रम है।" बड़े मजे की बात कह रहा है नानसेन। "पहचान भ्रम है और गैर-पहचान व्यर्थ है।" अगर तुमने कहा कि मैंने पहचान लिया, तो तुम गलती में हो। क्योंकि पहचानेगा कौन? वहां तुम अकेले हो, दूसरा नहीं है--जो पहचान ले। और अगर तुमने कहा कि "मैं अभी तक पहचान नहीं पाया," तो भी तुम व्यर्थ हो। अगर तुम कहो कि "मैंने जान लिया," तो गलत; अगर तुमने कहा कि "मैंने नहीं जाना", तो भी गलत।
पहली बात समझ लें, तो दूसरी मुश्किल हो जाती है। दूसरी मान लें, तो पहली मुश्किल हो जाती है। यह हमारे मन का द्वंद्व है।
अगर कोई कहता है कि मैंने आत्मा को जान लिया, तो नानसेन कहता है, "यह गलत है; क्योंकि जानने वाला और जाना जाने वाला एक ही है। दावा कौन करेगा?" तो हमारा मन कहता हैः "तब विपरीत बात सही होगी"; उस आदमी को कहना चाहिए कि मैंने उसे अभी तक जाना नहीं है। लेकिन वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि जो कहेः "मैंने उसे अभी तक जाना नहीं"--इस कहने में ही जानना घटित होता है। जिसने इतना जान लिया, उसे जानने को और क्या बचा! इसलिए साक्रेटीज कहता है कि "जिसने जान लिया कि मैं नहीं जानता, वह ज्ञानी हो गया।"
बड़ी उलटी बात हो गई। कहो हां, तो आधा है, कहो न, तो आधा है। और तुम पूरे हो। तुम दोनों हो। तो या तो हां और न एक साथ कहो। या हां और न को एक साथ इनकार कर दो। लेकिन चुनो मत। आधा-आधा मत करो।
"पहचान भ्रम है और गैर-पहचान व्यर्थ।"
"यदि तुम असंदिग्ध होकर सच्चे मार्ग पर पहुंचना चाहते हो, तो आकाश की तरह अपने को उसकी पूरी उन्मुक्तता में छोड़ दो।" अगर तुम सही मार्ग पर पहुंचना चाहते हो तो तुम सही और गलत का विचार मत करो अन्यथा तुम कभी भी न पहुंचोगे; तुम बैठे ही रहोगे--जहां हो, वहीं। "अगर तुम सही मार्ग पर पहुंचना चाहते हो, तो तुम आकाश की तरह अपने को उन्मुक्त छोड़ दो।" तुम खोजो ही मत, तुम चुनो ही मत। तुम पक्षियों की भांति हो जाओ, जिनका कोई मार्ग

नहीं होता। आकाश में कोई मार्ग तो नहीं है, कोई बंधे-बंधाए रास्ते नहीं हैं। पक्षी उड़ता है, पद-चिह्न भी नहीं छूटते।
"तुम आकाश की भांति मुक्त हो जाओ। अपने को पूरी स्वतंत्रता में छोड़ दो
और इसे न शुभ कहो और न अशुभ। क्योंकि जैसे ही स्वतंत्रता का ख्याल आता है, तुम्हारा मन भी तत्काल कहेगा कि कहीं बुराई हो गई, फिर अगर स्वतंत्र छोड़ दिया... ।
मैं लोगों से कहता हूंः "छोड़ दो अपने को स्वतंत्र।" तत्क्षण वे पूछते हैंः फिर नीति-अनीति, फिर शुभ-अशुभ का क्या होगा? अगर चोरी करने का मन हुआ, तो फिर क्या करें? अगर स्वतंत्र छोड़ा और चोरी करने का मन हुआ, तो फिर क्या करें? नियंत्रण तो रखना ही पड़ेगा, नहीं तो चोरी हो जाएगी। नियंत्रण तो रखना ही पड़ेगा, नहीं तो गलत में गति हो जाएगी।" इसलिए तत्क्षण नानसेन कहता हैः "और उसे न शुभ कहो और न अशुभ।" उन्मुक्त छोड़ दो। जैसे तुम नियंता नहीं हो।
बड़ी कठिन बात है। इसका अर्थ हुआ कि क्रोध आए, तो आने दो। इसका अर्थ हुआः घृणा आए, तो आने दो; तुम रोको मत। तुम होने दो, जो होता है। निश्चित ही जो भी फल होगा, वह भी भोगो। हमारी कठिनाई क्या है?
क्रोध से हमें तकलीफ नहीं है, उसके फल से तकलीफ है। अगर तुम क्रोध करो
और पुरस्कृत किए जाओ और तुम जिस पर क्रोध करो, वही तुम्हारे चरण छुए और तुम जिस पर क्रोध करो, वही फूलमालाएं पहनाए, तो तुम कभी भूल कर न सोचोगे कि क्रोध पाप है या क्रोध बुरा है। तब तो तुम क्रोध का शिक्षण लोगे। तब तुम गुरुओं के पास जाओगे और उनसे कहोगे कि हमें दीक्षित करो--ऐसे क्रोध में। न, क्रोध से तुम्हें तकलीफ नहीं हो रही है; तकलीफ तुम्हें हो रही है क्रोध के परिणाम से। क्रोध का परिणाम दुख है। अगर तुम उन्मुक्त अपने को छोड़ते हो, तो उसका अर्थ हुआः जो तुम कृत्य कर रहे हो, वह भी और जो तुम फल भोगोगे वह भी--दोनों में उन्मुक्त रहो।
क्रोध किया, तो क्रोध हुआ; फिर क्रोध का फल भी भोगना पड़ेगा। उसे भी तुम पूरी उन्मुक्तता से भोग लो, तुम बाधा न डालो। तुम्हारे जीवन में क्रांति निश्चित घट जाएगी। क्योंकि तुमने अगर क्रोध किया और उसका फल भी भोगा और उन दोनों को तुमने देखा और नियंत्रण न किया; क्योंकि तुम जब नियंत्रण में लग जाते हो, तभी तुम देखने से चूक जाते हो, तब तुम्हें इनका जहर पूरा दिखाई पड़ेगा। यह तीर तुम्हारी छाती में छिदा हुआ दिखाई पड़ेगा। देर न लगेगी--तुम इस तीर को निकाल कर फेंक दोगे; तुम सोचोगे भी नहीं। क्रोध और उसके परिणाम दोनों तुमसे गिर जाएंगे। लेकिन यह क्रांति तुम्हारे किए न होगी। यह क्रांति तो तुम जब अपने को उन्मुक्त छोड़ोगे, तभी घटित होगी।
उन्मुक्तता अंत में परम आनंद लाएगी। प्रारंभ में बहुत दुख लाएगी। उस दुख से बचने के लिए तुम नियंत्रण करते हो। तुम डरे-डरे जीते हो कि क्या होगा--घर का? क्या होगा--गृहस्थी का? अगर किसी के प्रेम में पड़ गए, तो क्या होगा पत्नी का? क्या होगा पति का? तुम डरे-डरे जी रहे हो। तुम इतने डरे हुए जी रहे हो कि तुम्हारे जीने को "जीना" कहा ही नहीं जा सकता। तब तुम डरे-डरे मरोगे।
तुम न तो ठीक से जीए और न ठीक से मरोगे। न तुम्हारे इस जीवन में कोई ज्योति थी और न तुम्हारे मरने में कोई त्वरा होगी। न तो तुम्हारा जीवन तूफान था, न तो तुम्हारी मृत्यु में कोई गति होगी। तुम एक लाश की भांति हो, जो घसीटे जा रहे हो।
जब नानसेन कहता हैः "छोड़ दो अपने को आकाश की तरह उसकी पूरी उन्मुक्तता में, पूरी स्वतंत्रता में। और न तो उसे शुभ कहो और न अशुभ।" न तो कहो कि यह ठीक है, न कहो कि यह गलत है। सिर्फ इतना ही जानो कि यही नियति है। यही मेरे होने का स्वभाव है। यही मेरा ढंग है। और इससे अन्यथा न कभी मैं हो सकता हूं और न कभी होने की कोई बात उठा सकता हूं। यह मेरा ढंग है।
शुरू में बड़ी अड़चन आएगी, वही संन्यास की अड़चन है। वही साधक की तकलीफ है। शुरू में बड़ी अड़चन आएगी, क्योंकि सब तरफ तुमने झूठ बोल रखा है। सब तरफ तुमने अपना नियंत्रित चेहरा दिखलाया है। तुमने अपना असली चेहरा तो प्रकट ही नहीं किया। तुम कभी सच तो बोले नहीं। जब तुम्हें रोना था, तब तुम हंसे।

जब तुम्हें गाली देनी थी, तब तुमने प्रशंसा की। तुमने चारों तरफ ऐसा असत्य का जाल फैला रखा है, कि आज अचानक तुम भी घबड़ाओगे कि कैसे उन्मुक्त हो जाएं! यह जाल अगर किसी और ने बनाया होता, तो शायद तुम छलांग भी लगा जाते; यह तुमने ही रचा है--बड़ी मेहनत से रचा है। अब तुम उसी में घुटे जा रहे हो। उसी में तुम्हारी गरदन दबी जा रही है।
संन्यास का अर्थ हैः बिना भय के, बिना परिणाम की चिंता के, बिना ठीक और गलत के विचार के जीवन जहां ले जाए, वहां जाने की तैयारी। नरक ले जाए, तो नरक जाएंगे। लेकिन अगर तुम इतने उन्मुक्त हो, तो तुम्हारे लिए नरक नहीं है। अगर तुम इतने स्वच्छंद हो, इतने स्वतंत्र हो, तब तुम्हारे लिए पूरा आकाश खुला है, तुम्हारे लिए कोई कारागृह नहीं है।
"कहते हैं कि ये शब्द सुन कर (सिर्फ शब्द सुन कर) जोशू ज्ञान को उपलब्ध
हो गया।" तुम भी हो सकते हो। पर मैंने कहा और तुमने सोचना शुरू कर दिया। "देखो, अभी तुम सोच रहे हो।" मैंने कहा, "स्वतंत्र हो जाओ" और तुम भीतर संकुचित हो गए। तुमने कहा, "बात भला ठीक हो, अपने काम की नहीं। घर-गृहस्थी वाले आदमी हैं। समाज है; दूसरे क्या कहते हैं, इसको भी सोचना पड़ता है। सुना है मैंने कि एक रेगिस्तान में दो ऊंट यात्रा कर रहे थे। तो दोनों पसीने से तरबतर थे, कंठ प्यास से अवरुद्ध थे, लेकिन दोनों प्रतीक्षा कर रहे थे कि दूसरा कहे कि प्यास लगी है; क्योंकि इज्जत का सवाल है। किताबों में आदमियों ने लिखा है--ऊंटों ने तो किताबें लिखी नहीं--आदमियों ने लिखा है कि ऊंट छत्तीस-छत्तीस घंटे तक बिना पानी पीए चल सकता है। तो इज्जत का भी सवाल है। और जो पहले कहे, वह हार स्वीकार करे। आखिर एक ने कहाः "बहुत हो गया। नाऊ आई डोंट केअर व्हाट अदर्स से, आई एम थर्सटी। अब मैं फिकर नहीं करता कि दुनिया क्या कहती है; मुझे प्यास लगी है।"
कब तुम हिम्मत जुटाओगे? कब तुम कहोगे कि "दुनिया क्या कहती है, इसकी
अब मैं चिंता न करूंगा? अब मैं तुम्हारे ढंग से अपने को बनाऊंगा नहीं, अब जो मैं हूं, उसे मैं स्वीकार करता हूं। मुझे प्यास लगी है।" तो पहली दफा ईमानदारी तुम्हारे जीवन में पैदा होगी। पहली दफा प्रामाणिक आत्मा का जन्म होगा। अन्यथा तुम एक लंबा झूठ हो।
कोई स्वीकार नहीं करना चाहता कि मुझसे कोई भूल हुई है। तुम सोचते हो निरंतर कि कोई और दूसरा कारण है, जिसकी वजह से तुम दुख में हो। यह तुम कभी स्वीकार नहीं करना चाहते कि तुम्हारी ही भूलों का इकट्ठा जोड़ है तुम्हारा दुख। भूल तो कोई स्वीकार करना ही नहीं चाहता।
मुल्ला नसरुद्दीन का पूरा परिवार उससे परेशान था। दफ्तर के आदमी परेशान थे। मुहल्ला भर परेशान था, क्योंकि वह अपने को इनफालिबल समझता था कि मुझसे कभी कोई भूल ही नहीं हुई और न हो सकती है। ऐसा आदमी बहुत दुष्ट हो जाता है, जिसको ऐसा ख्याल हो; उसके पास रहना बड़ा कठिन मामला है। क्योंकि उससे भूल कभी होती ही नहीं। जब भी भूल हो, तुम्हीं से होगी। उसकी भूलें भी तुम्हारे कंधों पर पड़ेंगी।
आखिर एक दिन एक आदमी बहुत ही परेशान हो गया। और उसने कहा, "नसरुद्दीन
एक सवाल पूछूं? जिंदगी में कभी एकाध बार भी तुमसे भूल हुई?" नसरुद्दीन ने कहा, "हां, एक बार मुझसे भूल हुई।" वह आदमी सुन कर चौंका कि इतना भी स्वीकार कर लिया, इसकी आशा नहीं थी! उसने बहुत उत्तेजित होकर पूछा, "वह कौन सी घटना है, जरूर कहो।" नसरुद्दीन ने कहा, "एक बार मैंने सोचा कि मुझसे भूल हुई, लेकिन हुई नहीं। बस, वही एक भूल है।"
तुम्हारे चारों तरफ भूलों का तांता है और भूलों के तांते का आधार यह
है कि तुम जो हो, उससे अन्यथा दिखलाने की कोशिश कर रहे हो।
चोर-साधु की तरह अपने को प्रकट कर रहा है। बेईमान-ईमानदार की तरह अपने
को प्रकट कर रहा है। धोखेबाज-भोलेपन का आवरण लिए है। लेकिन तुम किसी और को कष्ट नहीं दे रहे हो; पक्का समझ लेना। यह सब झूठ तुम्हारी ही गरदन पर कस गया है। जब नानसेन कहता है कि "छोड़ दो उन्मुक्त आकाश में अपने को", तो वह यह कह रहा है कि तुम फिकर छोड़ो कि लोग क्या कहते हैं। तुम फिकर छोड़ो कि सही क्या है, गलत क्या है। तुम इतनी ही फिकर करो कि तुम्हारे लिए स्वाभाविक क्या है। तुम अपने स्वभाव के पीछे चलो।

स्वभाव का अनुकरण संन्यास है। और स्वभाव में लीन होने की प्रक्रिया
का नाम सहज-योग है।
वह जो कबीर कह रहे हैंः "साधो सहज समाधि भली", तो वे यही कह रहे हैं कि असहज होकर तुम बड़े कष्ट में पड़ गए हो, व्यर्थ कष्ट झेल रहे हो। एक झूठ से दस झूठ पैदा होते हैं। एक को बचाओ, तो दस झूठ खड़े करने पड़ते हैं। एक में फंसे, फिर दस में फंस जाते हो। यह जाल अंतहीन है। कब तुम साहस करोगे और प्रामाणिक हो पाओगे?
ध्यान रहे, प्रामाणिक होना कोई नियंत्रण नहीं है। प्रामाणिक होने का मतलब यह नहीं है कि तुम बेईमानी छोड़ो और ईमानदार हो जाओ; चोरी छोड़ो और साधु हो जाओ। प्रामाणिक होने का अर्थ है कि तुम जो हो--अगर तुम चोर हो, तो स्वीकार कर लो कि ठीक, मैं चोर हूं। "मुझे प्यास लगी है।" तुम अपने हृदय को खोल दो, ढांको मत। जिस दिन तुम अपने हृदय को खोल दोगे और ढांकोगे नहीं-- चाहे शुरू में तुम्हें कितनी ही अड़चन हो--जल्दी ही तुम पाओगे कि तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित हो गई।
और जब कोई इतना प्रामाणिक हो जाता है, तो सारे जगत से, चारों तरफ से उस
पर फूल बरसने लगते हैं।
प्रामाणिक का सम्मान है, झूठ का कोई सम्मान हो नहीं सकता। तुम कितना
ही इंतजाम करो, तुम जिस कोशिश में लगे हो, उसमें तुम हारोगे। झूठ जीत नहीं सकता, उसके पास पैर नहीं हैं--चलने को; प्राण भी नहीं हैं--श्वास लेने को। "उन्मुक्त छोड़ दो स्वयं को, पूरी स्वतंत्रता में छोड़ दो। और उसे न शुभ कहो, न अशुभ।" कहते हैं, ये शब्द सुन कर जोशू ज्ञान को उपलब्ध हो गया। तुम भी हो सकते हो। जो जोशू के साथ घटा, वह तुम्हारे भीतर भी घट सकता है।
क्या घटा जोशू को? उसे दिखाई पड़ गई यह बात कि सत्य क्या है, जीवन का दुख क्या है कि मैं जो हूं, उससे अन्यथा होने की कोशिश कर रहा हूं। कमल का फूल गुलाब होना चाह रहा है, गुलाब का फूल कमल होना चाह रहा है। दोनों कष्ट में पड़े हैं। जो मैं हूं, उससे अन्यथा की कोशिश नरक है। जो मैं हूं, उसका स्वीकार मोक्ष है।
भय क्या है? कौन क्या बिगाड़ लेगा? किसके हाथ में क्या है बिगाड़ने को? तुमसे कोई क्या छीन लेगा? लेकिन चारों तरफ से तुम डराए गए हो। पूरा समाज भय पर खड़ा है और इतना भय कि तुम इंच भर भी कदम नहीं हिला सकते। सब तरफ से भयभीत हो, कंप रहे हो। इस कंपन से कहीं सत्य का कोई मिलन हो सकेगा? मत कंपो। और इस कंपन ने तुम्हें कुछ दिया भी नहीं है, इस भय से तुम्हें कुछ मिला भी नहीं है; कोई मिट्टी भी मिल गई होती, तो भी कुछ था। कुछ भी नहीं मिला; सिर्फ तुमने खोया ही खोया है।
अगर सोचो मत, तो इसी क्षण तुम उतार कर रख दे सकते हो सब; क्योंकि जिसको तुम समझ रहे हो, उसने तुम्हें पकड़ा है, उसने तुम्हें पकड़ा नहीं है, तुम्हीं उसे जोर से पकड़ हुए हो। तुम्हारे छोड़ते ही संसार गिर जाएगा।
"कहते हैं, ये शब्द सुन कर जोशू ज्ञान को उपलब्ध हो गया!" मुश्किल लगता है। मात्र सुन कर! पर उसने "सुना" होगा और अगर तुम न हो पाओ सुन कर, तो समझना कि तुमने सुना नहीं; तुम सोचने लगे। तुम ज्यादा होशियार हो, जोशू से। होशियारी में तुम चूकोगे। जोशू भोलाभाला रहा होगा। उसने थोड़े हाथ-पैर तड़फड़ाए। उसने कहा कि अध्ययन करेंगे; उसने कहा कि अध्ययन न करेंगे तो भटक न जाएंगे! लेकिन नानसेन की बात उसे दिखाई पड़ गई।
सत्य एक क्षण में दिखाई पड़ सकता है। बस, एक ही शर्त है कि उस क्षण तुम सोचो मत। जरा सा विचार और वर्तुल शुरू हो जाता है। तुम दूर निकलना शुरू हो गए। तुम बड़ी दूर पहुंच गए। जरा सा सोच बड़ी दूर ले जाता है। जरा सा अ-सोच तत्क्षण तुम्हें स्वयं से मिला देता है।
न सोचने की कला ध्यान है; सोचने की कला संसार है।
जोशू ने सोचा नहीं, सुना, देखा, नानसेन की गंध ली। यह आदमी एक उन्मुक्त आकाश था। यह आदमी एक महाशून्य था। सामने बैठे आदमी से यह कोई सिद्धांत नहीं बोल रहा था। यह किन्हीं शास्त्रों के लिए गवाहियां नहीं दे रहा था।
यह आदमी अपने अनुभव जोशू से कह रहा था। ऐसे ही इसने भी जीवन के सत्य को पाया है। ऐसे ही एक दिन थक कर, ऊब कर इसने सब बंधन उतार कर रख दिए थे।

जिन्हें इसने अब तक आभूषण समझा था, पहचान लिया था कि वे जंजीरें हैं, तो उनको गिरा दिया था और खुले आकाश की तरह हो गया था। सोचना बंद कर दिया कि कोई क्या कहेगा। प्यास थी, तो प्यास थी; भूख थी, तो भूख थी; वासना थी, तो वासना थी; क्रोध था, तो क्रोध था; इसने अंगीकार कर लिया अपने को; इसने स्वयं को बदलने की व्यर्थ कोशिश छोड़ दी। यह सहज-योगी हो गया था। और जैसे ही कोई सहज-योग को उपलब्ध होता है, क्रांति घटित हो जाती है। जो जन्मों-जन्मों से नहीं घटा है, वह दो शब्दों को सुन कर घटित हो जाता है। क्योंकि तब तुम देखते हो अपने पूरे तथ्य कोः आग लगा हुआ भवन--सब तरफ जलता हुआ। फिर क्षण की देरी नहीं लगती, समय नहीं लगता; तुम कूद कर बाहर हो जाते हो। तुम देखते हो सामने ही खड़ी मृत्यु को; तुम छलांग लगा कर मार्ग से हट जाते हो।
यह घट सकता है।
तुमसे निरंतर कहे जाता हूं कुछ। वह सिर्फ इसी आशा में कि किसी दिन तुम सुनोगे। तब करने को कुछ भी न बचेगा।
ध्यान रखनाः तुम सोचते हो कि सुन कर फिर कुछ करना है। सुनेंगे, फिर हिसाब लगाएंगे। फिर अपने काम का चुनेंगे, फिर उसके अनुसार आचरण बनाएंगे। तब तुम गलती में हो। मैं तुमसे कहता हूं, सुन कर ही घट सकता है। कुछ और करने को नहीं बच रह जाता। पर सुनना; सुनते वक्त--बस, सुनना। वहां विचार की छोटी सी भी तरंग न हो, जो विकृत करे।
"कहते हैं, ये शब्द सुन कर जोशू ज्ञान को उपलब्ध हो गया।" तुमने भी ये शब्द सुने। अपने भीतर देखना, तुम सोचने लगे और ये शब्द ऐसे हैं कि सोच पैदा होता है। ये शब्द जटिल हैं, चोट करने वाले हैं। नानसेन जैसे लोग हमेशा शॉक ट्रीटमेंट में भरोसा करते हैं।
एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा, "आप कहते हैं कि सब स्वीकार कर लो!
और मैं वेश्यागामी हूं।"
मैंने कहा, "स्वीकार कर लो। मत छिपाओ। अंगीकार कर लो कि वेश्यागामी हो। छिपाने से मिटता भी नहीं है। मिटाने की कोई जरूरत भी नहीं है। वेश्या का क्या कसूर है? और तुम भी क्या कर सकते हो? जैसे हो, हो। अगर कोई कसूरवार है, तो भगवान होगा। तुम स्वीकार कर लो।"
उस आदमी ने कहा, "यह आप क्या कहते हैं? वेश्यागामी बना रहूं?" वह भी स्वीकार करने को राजी नहीं है, वेश्यागामी होने को राजी है। उसमें कोई तकलीफ नहीं है, लेकिन स्वीकार करने को राजी नहीं है। उसने कहा, "आप क्या कहते हैं? फिर तो मैं नष्ट ही हो जाऊंगा। यही तो एक आशा है कि आज नहीं कल सम्हाल लूंगा; और आप कहते हैंः "स्वीकार कर लो?"
"कब से सम्हाल रहे हो?" मैंने पूछा। उसने कहा, "कोई बीस साल तो हो ही गए।" मैंने कहा, "ताकत पहले ज्यादा थी, अब कम होती जा रही है। ज्यादा ताकत में बाहर न निकल पाए; कम ताकत में कैसे निकल पाओगे?" उसने कहा, "कुछ भी हो, लेकिन आप आशा तोड़ देते हैं?"
मैं आशा तोड़ना चाहता हूं, क्योंकि आशा ही तुम्हारे पाप का मूल है। इसलिए तुम कल के भरोसे आज वेश्यागामी हो, क्योंकि हर्जा क्या है; कल ठीक हो लेंगे। जल्दी भी क्या है!
एक शराबी शराब पी रहा था, किसी ने उससे कहा कि "जानते हो क्या कर रहे हो? पता है कि यह तुम क्या पी रहे हो? दिस इ.ज स्लो पाय.जन। यह आहिस्ता- आहिस्ता मारने वाला जहर है!
उस आदमी ने कहा, "बट आई एम नॉट इन हरी। मैं कोई जल्दी में नहीं हूं। होगा धीरे-धीरे मारने वाला, लेकिन मैं जल्दी में कहां हूं!"
तुम अगर स्थगित कर पाओ, तो तुम्हें सुविधा मिल जाती है। कल-कल तुम्हारा सुरक्षा का आधार है। चोर आज हो, कल अचोर हो जाओगे। आज असाधु हो, कल साधु हो जाओगे। आज पापी हो, कल पुण्यात्मा हो जाओगे। यह "कल" ही तुम्हारे सारे पापों को बचा रहा है। इसकी आशा में ही तुम आज पापी होने की सुविधा पा सके हो।
मैं तुमसे कहता हूं, कल भी तुम होने वाले में। तुम पापी हो, तो पापी हो,
और आज के अतिरिक्त तुम्हारे पास कोई समय नहीं है। जब पापी ही हो, तो कम से

कम पूरी तरह तुम पापी ही हो जाओ। कल पुण्यात्मा होना है, तो जब कल आएगा तब देख लेंगे। कल के पुण्यात्मा को आज क्यों बीच में लाते हो?
कल के पुण्यात्मा को आज बीच में लाने से आज के पापी को पापी का दंश कम
हो जाता है, पीड़ा कम हो जाती है, आग फीकी पड़ जाती है, अंगारा राख में दब जाता है। छलांग नहीं हो पाती है।
आज के पापी को पूरा पापी होने दो। मत कहो बुरा, मत कहो भला। "जो है है।"
इस तथ्य को पूरी तरह जी लो और मैं तुमसे कहता हूं कि जो जोशू को घटा, वह तुम्हें भी घट सकता है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
तीसरा प्रवचन

सहज स्वभाव--लोभ और भय से मुक्त

मरियम के बेटे ईसा एक गांव से गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि कुछ लोग राह के किनारे एक दीवाल पर बहुत संतापग्रस्त होकर मुंह लटकाए हुए बैठे हैं।
ईसा ने उनसे पूछाः "यह हालत कैसे हुई तुम्हारी?"
उन्होंने कहाः "नरक के भय से हम ऐसे हो रहे हैं।"
थोड़ा आगे बढ़ने पर ईसा ने कुछ और लोगों को देखा, जो राह के किनारे तरह-तरह के आसनों और मुद्राओं में बैठे हैं। और वे भी बहुत-बहुत उदास हैं। ईसा ने उनसे भी पूछाः "तुम्हारी तकलीफ क्या है?"
उन्होंने कहाः "स्वर्ग की आकांक्षा ने हमें ऐसा बना दिया है।"
उसी गांव में ईसा और आगे बढ़े; फिर कुछ लोग उन्हें मिले। उन्हें देख कर लगा कि जीवन में उन्होंने बहुत-कुछ झेला है; लेकिन वे आनंद-मग्न हैं। पूछने पर उन्होंने बतायाः "हमने हकीकत देख ली; इसलिए और मंजिलें भूल गईं।"
ओशो, इस सूफी कहानी का अभिप्राय क्या है?

जीवन जीने का ढंग तीन प्रकार का हो सकता है। या तो तुम भय के कारण जीओ,
तब जीवन एक
दुख होगा--एक पीड़ा, एक संताप। वैसे जीवन में आनंद के फूल खिलने का कोई उपाय नहीं, वैसे जीवन में शांति भी संभव नहीं; भयभीत--कंपता ही रहेगा। संतुलन बनाना भी कठिन होगा। और भयभीत चाहेगा कि पैदा ही न हुआ होता, तो अच्छा था।
दूसरा ढंग है--लोभ--कि तुम महत्वाकांक्षा से जीओ। कुछ पाने की दौड़-- वासना, कुछ उपलब्ध कर लेने का स्वप्न तुम्हें चलाए। तब भयभीत आदमी से तो तुम्हारी हालत थोड़ी बेहतर होगी, लेकिन बहुत बेहतर नहीं; क्योंकि तुम्हारे जीवन में थोड़ी सी आशा की किरण होगी। तुम कभी-कभी मुस्कुरा सकोगे। लेकिन तुम्हारी मुस्कुराहट के पीछे भी दुख ही छिपा होगा। तुम्हारी मुस्कुराहट भी झूठी ही होगी; वह भी सच नहीं हो सकती। तुम्हारी हर हंसी आंसुओं को छिपाने का ढंग होगी। क्योंकि लोभ भय का ही उलटा रूप है।
भय अतीत से बंधा है, लोभ भविष्य से। भय तुम उसका करते हो, जो हो गया। लोभ तुम उसका करते हो, जो होना चाहिए। लेकिन भय या लोभ दोनों ही स्थिति में तुम यहां नहीं होते, वर्तमान में नहीं होते। लोभी व्यक्ति भी उत्तेजित रहता है, क्योंकि उसके भी सारे स्वर्ग "कल" घटने वाले हैं, अभी घटे नहीं। उसके जीवन में भी शांति, विश्राम, विराम नहीं होता। क्योंकि दौड़ धक्के दिये जाती है। लोभी एक ज्वर में जीता है--एक बुखार में।
एक तीसरा ढंग भी है जीने का, बहुत थोड़े से लोगों को उपलब्ध होता है; उन लोगों को जो न तो भय से पीड़ित हैं और न लोभ से आकर्षित हैं, जिन्होंने जीवन का सत्य देख लिया। और जीवन में सत्य यहीं और अभी है। न तो अतीत में है और न भविष्य में।
न तो कुछ डरने को है यहां, क्योंकि कुछ खोने को नहीं है। भय किस बात का? तुम खो क्या सकते हो? कभी तुम सोचते ही नहीं कि खोने को कुछ भी नहीं है, फिर भी तुम इतने भयभीत हो रहे हो! तुम्हारी हालत उस भिखारी जैसी है, जो रात भर जागता है कि कहीं कोई चोरी न कर ले। और है उसके पास कुछ भी नहीं, जिसकी चोरी हो सके। या तुम्हारी हालत उस नंगे आदमी जैसी है, जो स्नान नहीं करता, क्योंकि वह कहता था कि स्नान कर लूं, तो कपड़े कहां सुखाऊंगा? और कपड़े उसके पास थे ही नहीं!
तुम भयभीत किस बात से हो? तुम्हारे पास कुछ होता, तो डर भी हो सकता था--
खो जाने का। तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। लेकिन जिनके पास कुछ भी नहीं है, वे भी सोचते हैं कि "कुछ है" और भय है। कम से कम भय के कारण ऐसा भरोसा बना रहता है कि कुछ हमारे पास है।

जिसने सत्य को देख लिया, वह अपनी शून्यता को भी देख लेगा कि मेरे पास कुछ भी नहीं है। न चोरी हो सकती है, न छीन-झपट हो सकती है, न मैं लूटा जा सकता हूं। मेरे पास कुछ नहीं है। मेरा दिवाला निकलने का उपाय नहीं है। मैं व्यर्थ ही भयभीत हूं।
और जिस दिन तुम जान लेते हो कि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, उसी दिन तुम यह भी जान लेते हो कि इस जगत में कुछ पाने का रास्ता भी नहीं है। अन्यथा अभी तक तुमने पा ही लिया होता।
कितने ही जन्मों से तुम दौड़ रहे हो--लोभ की आकांक्षा में। भयभीत हो कि कुछ खो न जाए जो तुम्हारे पास नहीं है! और आकांक्षा कर रहे हो, कुछ पाने की, जो कि तुम्हारे पास कभी भी नहीं होगा, क्योंकि "तुम्हारे" अतिरिक्त तुम्हारे पास कुछ भी नहीं हो सकता। तुम ही तुम्हारी संपदा हो सकते हो। वह तुम हो--इसी वक्त। उसे पाने के लिए कल तक रुकने की कोई जरूरत नहीं है।
भय और लोभ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भय मानता है कि कुछ है, जो खो न जाए; लोभ मानता है कि कुछ है नहीं, मिल जाए। लेकिन न तुम्हारे पास कुछ खोने को है, और न तुम कुछ पा सकोगे। यह हकीकत है। तुम शून्य हो और शून्य ही रहोगे। शून्यता तुम्हारा स्वभाव है।
जिसने हकीकत जान ली, जिसने सत्य को देख लिया, वह भय और लोभ दोनों से मुक्त हो जाता है। और शून्य गगन में, कबीर ने कहा हैः अमृत की वर्षा होती है।
जिस दिन तुम जान लेते हो कि न कुछ खोने को है, न कुछ पाने को, उस दिन भय
भी गया, लोभ भी गया। उस दिन तुम्हारे जीवन में जो थिरक आती है, वह जो शून्य का नृत्य पैदा होता है, वही समाधिस्थ संत, प्रबुद्ध, की दशा है।
उस दिन तुम नाचते हो, इसलिए नहीं कि तुमने कुछ पा लिया है; उस दिन तुम नाचते हो--कि न कुछ खोने का उपाय है, न कुछ पाने का। इसलिए मैं व्यर्थ ही चिंतित था, चिंता मेरी भ्रांति थी। उस दिन "तुम नाचते हो", ऐसा कहना भी ठीक नहीं, उस दिन शून्य ही नाचता है।
बुद्ध जिस शांति में बैठे हैं--बोधिवृक्ष के नीचे, वह शांति क्या है? लोभ और भय का विसर्जन। इसलिए बुद्ध ने तो यह भी कहा कि तुम मुझसे मत पूछो कि यदि तुम अच्छा करोगे, तो क्या मिलेगा। कुछ भी नहीं मिलेगा। तुम मुझसे यह भी मत पूछो कि अगर हम बुरा करेंगे, तो क्या खो जाएगा? कुछ भी नहीं खो जाएगा।
न तुम्हारे पुण्य से कुछ मिलनेवाला है, न तुम्हारे पाप से कुछ खोने वाला है। तुम जैसे हो, तुम वैसे ही रहोगे। इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लें, तो इस कहानी की पृष्ठभूमि बन जाए।
यह कहानी बड़ी कीमत की है। ईसाइयों ने तो इस कहानी का उल्लेख ही नहीं किया--ईसा के जीवन में। यह बड़े मजे की बात है। ईसा को मानने वालों ने इस कहानी का उल्लेख ही नहीं किया--ईसा के जीवन में। यह तो मुसलमानों ने, सूफियों ने इस कहानी का उल्लेख किया है। क्यों ईसा के माननेवालों ने यह कहानी छोड़ दी होगी?
यह कहानी बड़ी खतरनाक है; क्योंकि इसका मतलब है कि न स्वर्ग का लोभ अर्थपूर्ण है, न नरक का भय। अगर यह सच है, तो सारी ईसाइयत के आधार गिर जाएंगे। क्योंकि ईसाइयत नरक के भय और स्वर्ग के लोभ पर ही खड़ी है। डराया जा रहा है कि अगर तुमने बुरा किया, तो नरक में सड़ोगे।
और ईसाइयत का नरक बड़ा खतरनाक है। ऐसा नरक किसी का भी नहीं। हिंदुओं का, मुसलमानों का--सबका नरक है; लेकिन ईसाइयों के नरक से बचना। कहीं भी चले जाएं, इतना खतरा नहीं है। क्योंकि ईसाइयों का नरक इटरनल है, शाश्वत है। हिंदुओं का नरक तो गणित का हिसाब है। तुमने जितना पाप किया है, उतना दुख। लेकिन ईसाइयत का नरक तुम्हारे पाप के अनुपात में नहीं है। तुमने कितना पाप किया है, यह सवाल नहीं है; तुमने पाप किया, कि तुम अनंत काल तक नरक में सड़ोगे।
ईसाइयों का जो ईश्वर है, वह कोई न्यायाधीश नहीं मालूम होता। वह तुमसे प्रतिकार लेगा। तुमने पाप किया, तुम उसके शत्रु हो गए। अब यह सवाल न्याय का नहीं है कि तुम्हें कितना दंड दिया जाए। अब तुम सड़ाए जाओगे नरक में।

एक बड़ी अनूठी यहूदी कथा है। एक यहूदी फकीर से किसी ने पूछा कि क्या एक
ही नरक से काम न चल सकता था! क्योंकि यहूदियों ने सात नरक सोचे हैं। जैनों के भी सात नरक हैं! यहूदी फकीर ने कहा, "नहीं, एक से काम नहीं चल सकता।" उस आदमी ने कहा, "कष्ट ही देना है, तो एक में ही इंतजाम हो सकता है। सात-सात की क्या जरूरत है?" उस फकीर ने कहा, "ऐसा है कि अगर एक ही नरक हो, तो कुछ दिन कष्ट पाने के बाद तुम उसके आदी हो जाओगे। फिर उसमें कष्ट न मालूम पड़ेगा; आदत बन जाएगी। जैसे ही आदत बन जाएगी दूसरे नरक में तुम्हें भेजा जाएगा। वहां नए तरह के दुख होंगे; पुरानी आदत टूटेगी; फिर तुम कष्ट पाओगे।
इसलिए सात नरक हैं, ताकि अदल-बदल की जा सके और तुम कहीं भी आदी होकर दुख को झेलने में समर्थ न हो जाओ। जैसे ही आदत बनी वैसे ही नरक बदला! परमात्मा प्रतिकार लेता मालूम पड़ता है--यहूदी, ईसाइयों का। तुमने क्या और कितना पाप किया है, इस हिसाब से कष्ट नहीं दिया जा रहा है। तुमने इनकार किया, तुम विरोधी थे, तुम परमात्मा के पीछे न चले या परमात्मा के पैगंबर को न माना--इससे शत्रुता बनती जा रही है।
ईसाइयों ने यह कहानी छोड़ ही दी। जीसस के जीवन में जो भी कहानियां हैं, उनमें यह सबसे ज्यादा प्यारी है। लेकिन इसका उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। क्योंकि अगर इसका उल्लेख हो, तो ईसाइयत का आधार गिर जाता।
कहानी खतरनाक और क्रांतिकारी है। यह कह रही है कि तुम अगर स्वर्ग के लोभ से भी पीड़ित हो, तो तुम संसारी हो। अगर तुम इसलिए दान कर रहे हो कि स्वर्ग में इसका प्रतिफल मिलेगा, तो तुम दुकानदार हो। तुम सौदा कर रहे हो। अगर तुम इसलिए वेश्या के द्वार से आंख बंद करके निकल जाते हो कि नरक जाना पड़ेगा, तो तुम वेश्या के घर जा ही चुके। अगर तुम इसलिए हत्या नहीं करते हो कि तुम सड़ाए जाओगे नरक के कढ़ाओं में, तो तुमने हत्या कर ही दी। हत्या से तुम्हें विरोध नहीं, परिणाम से तुम भयभीत हो! तुम धार्मिक आदमी नहीं हो; तुम व्यवसायी हो। तुम्हारे सोचने का ढंग चालाकी का है--सरलता का नहीं। अगर तुम्हें पक्का पता चल जाए कि कोई नरक नहीं है, तो अचानक तुम पाओगे
कि तुम्हारे पैर वेश्या के घर की तरफ बढ़ने लगे। अगर तुम्हें कहीं यह पता चल जाए कि वेश्यागामियों को स्वर्ग मिल रहा है--विधान में परिवर्तन हो गया है, कानून बदल गया है, विरोधी दल सत्ता में आ गया है--तो तुम्हें अपने बनाए हुए मंदिरों को वेश्यालयों में बदलने में कितनी देर लगेगी! क्षण भी तो नहीं लगेगा।
अगर तुम भय के कारण धार्मिक हो, तो तुम्हारी धार्मिकता वास्तविक नहीं है। अगर तुम लोभ के कारण धार्मिक हो, तो भी तुम्हारी धार्मिकता वास्तविक नहीं है।
धार्मिक आदमी तो वह है कि अगर उसकी सरलता के कारण उसे यदि नरक भी मिलता हो, तो वह नरक स्वीकार करेगा, लेकिन सरलता को नहीं छोड़ सकता। धार्मिक आदमी वह है कि अगर उसके भलेपन के कारण उसे अनंत काल तक कष्ट भोगना पड़ेगा, तो कष्ट भोगने को राजी होगा, लेकिन भलेपन को नहीं छोड़ेगा। तब भलेपन का गुण, तब भलेपन की इंट्रेंजिक वैल्यू, उसका भीतरी मूल्य प्रकट होता है। किसी ने एडमंड बर्क को पूछा कि "तुम न कभी चर्च जाते हो, न तुम्हें कभी प्रार्थना करते किसी ने देखा। तुम भयभीत नहीं हो? भविष्य के लिए चिंतित नहीं हो?" बर्क ने कहा, "जो भी भला है, वह मैं कर रहा हूं। अगर भले का परिणाम भला होगा, तो ठीक है। अगर भले का परिणाम बुरा होगा, तो भी ठीक है। क्योंकि परिणाम की चिंता मैं नहीं कर रहा हूं। मुझे भला करने में इतना आनंद आ रहा है कि अब और किसी परिणाम की कोई जरूरत ही नहीं है। यह काफी है।"
धार्मिक व्यक्ति के लिए साधन ही साध्य हो जाता है, यात्रा ही मंजिल हो जाती है। चलना ही इतना सुखद है कि पहुंचने की चिंता कौन करता है? यह रास्ता ही इतना प्यारा है कि मंजिल के सपने कौन देखता है? और तब ऐसे व्यक्ति के लिए यही जगह मंजिल हो गई। क्योंकि मंजिल का मतलब क्या है? -- जहां विश्राम हो सके। मंजिल का मतलब क्या है? जहां तुम आराम कर सको। ऐसा यात्री यहीं आराम कर रहा है। इसके कदम-कदम पर मंजिल है, इसको कहीं पहुंचना नहीं है, यह पहुंचा ही हुआ है।

लेकिन अधार्मिक चित्त हमेशा लोभ और भय की भाषा में सोचता है। चर्च, मंदिर, मस्जिद तुम्हारे भय का शोषण करते हैं तुम्हारे लोभ का शोषण करते हैं इसलिए इनका कोई संबंध धर्म से नहीं है। धर्म का एक भी मंदिर पृथ्वी पर नहीं है। कोई चर्च धर्म का नहीं है, क्योंकि तुम दुकानदार हो। सब चर्च तुम्हारे हैं, सब मंदिर तुम्हारे हैं। तुमने उन्हें बनाया है; पुजारियों ने उन्हें बनाया है और उन सब की आधारशिला लोभ या भय है।
अंग्रेजी में एक शब्द हैः गॉड-फियरिंग, हिंदी में भी शब्द हैः ईश्वर-भीरु। यह बेहूदा शब्द है। अगर ईश्वर से भी डरना पड़े, तो फिर तुम निर्भय कहां हो सकोगे! अगर ईश्वर का भी भय रखना पड़े, तो फिर निर्भय होने का उपाय न रहा? तो "इस" संसार में भी तुम भयभीत रहोगे, "उस" संसार में भी, क्योंकि ईश्वर सब जगह है। फिर तुम निर्भय कब हो सकोगे? और जब तक तुम निर्भय न हो जाओ, तब तक जीवन का रस, जीवन का झरना कैसे फूटेगा? जब तक तुम अभय न हो जाओ, तब तक तुम्हारी आत्मा का पूरा खिलाव, तुम्हारी आत्मा के फूल कैसे खिलेंगे? नहीं, धार्मिक आदमी ईश्वर से डरता नहीं। डरने का कोई सवाल ही नहीं है।
और ध्यान रहेः जिससे तुम डरते हो, उससे तुम प्रेम कैसे करोगे? जिससे तुम डरते हो, उससे तुम घृणा कर सकते हो, प्रेम नहीं। तुम्हारी प्रार्थना अगर भय के कारण है, तो तुम्हारे हृदय की गहराई में ईश्वर के प्रति नफरत होगी। क्योंकि जो भी तुम्हें डराता है, वह दुश्मन है, वह मित्र नहीं है।
जिससे हम प्रेम करते हैं, उससे हम बिल्कुल नहीं डरते हैं। यही तो प्रेम का लक्षण है। जिससे हम प्रेम करते हैं, उसका भय खो जाता है; उससे रत्ती भर भय नहीं होता। उसके सामने हम नग्न हो सकते हैं, उसके सामने हम अपने हृदय को पूरा खोल सकते हैं, उसके सामने कोई चीज गुप्त रखने की जरूरत नहीं है। वह हमारा इतना अपना है कि अब छिपाने का कोई सवाल नहीं है। लेकिन धार्मिक, पुरोहित, मंदिर, पुजारी--वे समझाते हैं कि ईश्वर का भय रखो!
ऐसा धार्मिक आदमी खोजना कठिन है, और ऐसा धार्मिक आदमी अगर हो, तो वह मंदिर की तलाश में नहीं आएगा। वह जहां है, वहीं मंदिर है।
जो मंदिर की तलाश में आते हैं, वे तो दुकानदार हैं; वे तो हिसाब लगा रहे हैं। और पुजारी उनसे कहता है कि "डरो। ईश्वर से भय खाओ।" पुजारी उनको समझाता है कि ध्यान रखो, तुम कितने ही अकेले हो, लेकिन ईश्वर तुम्हें देख रहा है। एकांत में भी पाप मत करना, क्योंकि उसकी नजरें तुम्हारे पीछे लगी हैं। ईश्वर जैसे एक कॉ.जमिक जासूस है, जो सब तरफ से तुम्हारे पीछे पड़ा है! तुम कुछ भी करो, वह जान रहा है; उसकी किताब में तुम्हारे पाप-पुण्य लिखे जा रहे हैं। और आखिर में तुम्हें हिसाब चुकाना पड़ेगा।
यह जीवन को देखने की दुकानदार की नजर है। और दुकानदार की नजर से ज्यादा गलत नजर दूसरी नहीं होती। दुकानदार की भी कोई नजर होती है? उसकी भी कोई दृष्टि होती है? वह सदा इकट्ठा करना धन, पूंजी खो न जाए, उसकी व्यवस्था करना--उसी में लगा रहता है। वह जीवन को खो देता है--सिक्कों में। फिर इन्हीं सिक्कों का विस्तार कर लेता है। पुण्य एक सिक्का है, जो स्वर्ग में भी चलता है; वह प्रामिसरी नोट है। ऊपर जो बैंक है--स्वर्ग में, वह भी उसे स्वीकार करती है। वह इकट्ठे करता है--पुण्य के सिक्के। वह पाप से डरता है। इसलिए नरकों की ऐसी तस्वीरें खींची गई हैं, जिनसे तुम घबड़ाओ। स्वर्ग
के बड़े मनमोहक चित्र छापे गए हैं, जिनसे तुम्हारी वासना जगे। यह बड़ी हैरानी की बात है।
सब धर्म कहते हैं कि वासना से मुक्त होना है; लेकिन उनसे पूछो, "तुम्हारे स्वर्ग में मिलेगा क्या?" तो उनकी सारी दीन दशा प्रकट हो जाती है। स्वर्ग में वे उन्हीं बातों को तुम्हें देने का वायदा करते हैं, जिनको वे तुमसे कहते हैं कि यहां छोड़ो। यह बड़ी अजीब बात है।

यहां कहते हैंः स्त्री को मत देखो और स्वर्ग में कहते हैंः अप्सराएं हैं। यहां वे कहते हैंः स्त्री से बचो। मिलेगा क्या? फल क्या है? फल यही है कि तुम्हें अप्सराएं मिलेंगी। स्त्रियां तो कुछ भी नहीं हैं--अप्सराओं के मुकाबले। अप्सराओं की उम्र सोलह साल पर रुक जाती है, उससे आगे नहीं बढ़ती।

स्त्रियां भी कोशिश तो करती हैं--सोलह साल पर रुकने की, परंतु कोशिश सफल नहीं होती।
मैंने सुना है, एक ट्रेन में तीन स्त्रियां एक बैंच पर बैठ कर बातें
कर रही थीं। एक स्त्री जो करीब साठ साल की होगी, वह अपनी उम्र चालीस साल बता रही थी। उसकी हिम्मत देख कर दूसरी, जो करीब चालीस साल की होगी, उसने अपनी उम्र तीस साल बताई। तीसरी ने जिसकी उम्र तीस ही साल थी, उन दोनों की हिम्मत देख कर अपनी उम्र सोलह बताई। मुल्ला नसरुद्दीन ऊपर बैठा सुन रहा था। आखिर उसकी सीमा के, बरदाश्त के बाहर हो गया। वह एकदम छलांग लगा कर नीचे कूद पड़ा। उन स्त्रियों ने कहा, "अरे! तुम कहां से आ पड़े?" उसने कहा, "मैं अभी पैदा हुआ हूं। तुम्हारी बातें सुन कर मेरी हिम्मत भी बढ़ गयी।"
कुछ स्त्रियां कोशिश तो करती हैं--सदा शोडशी बने रहने की, सफल नहीं हो पाती हैं। अप्सराएं सफल हो गई हैं, वे हमेशा सोलह साल की हैं; उनकी उम्र यहां-वहां नहीं होती। उनके पास स्वर्णकायाएं हैं, जिनसे पसीना नहीं बहता। जो-जो तुम स्त्री में यहां चाहते हो और मिलता नहीं--वह सब ऊपर स्वर्ग में आयोजित है।
इस्लाम ने तो व्यवस्था की है, शराब के चश्मों की। यहां शराब छोड़ने को इस्लाम कहती है। शराब यहां गुनाह है। फल क्या होगा? फल यह है कि स्वर्ग में चश्मे बह रहे हैं--शराब के। पीओ भी मत-नहाओ, तैरो!
जिन दिनों इस्लाम पैदा हुआ, जिन दिनों इस्लाम की मिथ निर्मित हो रही थी, उन दिनों अरब, ईरान--उन मुल्कों में होमोसेक्सुआलिटी (समलैंगिक यौन संबंध) बहुत जोरों से थी, अतिशय थी। जवान लड़कों को खरीदा और बेचा जाता था-- संभोग के लिए। बड़ी हैरानी की बात है--इस्लाम की बहिश्त में उसका भी इंतजाम है। हूरें तो वहां होंगी ही, गिलमें भी होंगे--खूबसूरत लड़के, जवान लड़के भी होंगे।
किस तरह की धार्मिक दृष्टि है? शराब के चश्मे होंगे? यहां तुम संत हो--अगर शराब छोड़ोगे। पर मिलेगा क्या? एक बोतल छूटेगी और झरना मिलेगा! साधारण स्त्री छूटेगी--जिसके बदन से पसीना भी आता है, जो कभी बूढ़ी भी होती है, कभी बीमार भी पड़ती है, अंततः कुरूप हो जाती है, जिसका सौंदर्य क्षण भर का है और धोखा है। पास जाओ, तो नष्ट हो जाता है। उसे छोड़ कर बदले में अप्सराएं मिलेंगी!
तो स्वर्ग में सारी व्यवस्था हमने की है--मनुष्य के लोभ की सभी इच्छाएं पूरी करने की।
हिंदू और भी ज्यादा कुशल हैं। होना भी चाहिए, क्योंकि वह सब से पुरानी दुकान है। वह सनातन है। उन्होंने फुट कर बातें नहीं की हैं। उन्होंने स्वर्ग में कल्पवृक्ष का इंतजाम कर दिया है। उन्होंने सोचा कि एक-एक वासना का कहां हिसाब रखेंगे? अनंत लोभ हैं, अनंत वासनाएं हैं। तो स्वर्ग में कल्पवृक्ष हैं। उनके नीचे बैठो, तुम्हारे मन में यहां वासना उठी नहीं कि वहां पूरी हो जाती है, समय का व्यवधान नहीं है। एक क्षण भी नहीं खोता बीच में।
संसार की सबसे बड़ी पीड़ा समय है। इसलिए हिंदुओं ने उसको काट दिया-- मोक्ष में। सबसे बड़ी पीड़ा समय है।
एक खूबसूरत स्त्री रास्ते पर दिखाई पड़ती है--वासना उठती है। काश! तुम इसी वक्त उसे पूरी कर लेते! लेकिन यह नहीं हो सकता। समय लगेगा। खोज करनी पड़ेगी, रास्ता बनाना पड़ेगा, व्यवधान हटाने पड़ेंगे। वह किसी की पत्नी होगी; किसी की बेटी होगी। लंबी यात्रा होगी।
एक महल तुम देखते हो, तुम उसमें रहना चाहते हो, लेकिन अभी रह नहीं सकते। द्वार पर द्वारपाल खड़ा है। बड़ी कशमकश करनी पड़ेगी--धन कमाना पड़ेगा, चोरी-बेईमानी लूट-खसोट करनी पड़ेगी, तब तुम आशा कर सकते हो, वह भी पक्का नहीं है। बहुत समय बीतेगा, तब तुम कहीं महल में पहुंच पाओगे। करीब-करीब ऐसा होता है कि जब तक तुम महल में पहुंचते हो, तब तक तुम इतने थक गए होते हो--महल में पहुंचने की यात्रा में ही--कि महल तुम्हारी कब्र ही बनता है। तुम कुछ भोग नहीं पाते। समय चूस लेता है। किसी दिन इस स्त्री को तुम पा भी

लोगे तो तब, जब तक तुम हड्डी-हड्डी हो गए होगे, स्त्री भी हड्डी-हड्डी हो गयी होगी।
तो हिंदुओं ने समय को काट ही दिया है--स्वर्ग में, क्योंकि समय संसार
की सबसे बड़ी पीड़ा है।
इसी वक्त चाहता है मन, लेकिन देर लगती है। देर में सब बासा हो जाता है।
कल्पवृक्ष के नीचे समय नहीं लगता। कल्पवृक्ष के नीचे इधर उठी वासना, उधर पूरी हुई। तुमने चाहा--कि फलां। उसमें रत्ती भर का भी अंतराल नहीं है, इंटरवल नहीं है।
मैंने सुना है, एक बार एक आदमी भूल से कल्पवृक्ष के नीचे पहुंच गया। उसे कुछ पता नहीं था कि वह कहां है। बड़ी भूख लगी थी, थका-मांदा था, विश्राम करने के लिए रुक गया था--कल्पवृक्ष के नीचे। उसे लगा कि इस समय अगर कहीं से भोजन मिल जाता ऐसा मन में ख्याल उठा; एकदम हैरान हुआ--थाल चारों तरफ उतर गए। भूख इतनी ज्यादा थी कि सोचने की सुविधा भी न थी। जल्दी उसने भोजन किया। भोजन करके उसे लगा--लेकिन अब पानी कौन देगा? इतना ख्याल भर उठा कि चारों तरफ पानी की सुराहियां आ गईं।
अब पेट भी भर गया था, पानी भी पी लिया, तो विचार उठने शुरू हुए। वह थोड़ा डरा कि मामला क्या है? कोई भूत-प्रेत तो नहीं हैं? चारों तरफ भूत-प्रेत खड़े हो गए। उसने कहा, "अब गए, मारे गए!" कि वह मारा गया। क्षण भर का व्यवधान नहीं है।
हिंदुओं ने विस्तार की बातें नहीं कीं। वह पुरानी अनुभवी दुकान है। उन्होंने कहाः एक एक वासना का कहां हिसाब रखोगे! अनंत वासनाएं हैं, किस-किस की तय करोगे? शराब का चश्मा भी बहा दोगे, उससे भी फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि किसी को व्हिस्की चाहिए, किसी को ब्रांडी चाहिए और किसी को कुछ और चाहिए! हजार तरह की शराबें हैं। किस-किस का तय करोगे?
हिंदुओं ने व्यवस्था वैज्ञानिक की। उन्होंने कल्पवृक्ष निर्मित किया है। उसके नीचे तुम बैठे कि सब इच्छाएं पूरी हो जाएंगी और इच्छा तुम कर नहीं पाते कि तत्क्षण पूरी हो जाएगी। समय का कोई अवरोध न होगा।
इस लोभ से न मालूम कितने लोग धार्मिक होते हैं।
पर बहुत लोग हैं, जिनको लोभ से प्रभावित नहीं किया जा सकता। जो बहुत चालाक हैं; वे कहेंगे कि "देखेंगे। भविष्य अभी कहां है। अभी तो हाथ की आधी रोटी ही ठीक है, उसे भविष्य की पूरी रोटी के लिए कौन छोड़े! अभी जो हाथ में शराब की बोतल है, इसको तो पी लें। झरना जब होगा, तब झरने का पी लेंगे। जब झरना होगा, तब देखेंगे। अभी बहुत दूर है, पता नहीं, हो भी या न हो।"
और फिर उमर खय्याम ने कहा है कि अगर वहां झरना है, तो यहां बोतल से दोस्ती रखना; नहीं तो आदत ही टूट गयी, तो झरने का क्या करोगे? थोड़ा स्वाद बनाए रखना; नहीं तो झरना भी होगा सामने, तो क्या करोगे? ऋषि-मुनि की तरह वहां बैठ जाओगे! होगा क्या? थोड़ा स्वाद बनाए रखना। स्त्री में रस कायम रखना, नहीं तो जब तक अप्सराएं आएंगी, तब तक तुम्हारा रस सूख चुका होगा। हरे रहना, तुममें पत्ते निकलते रहें, नहीं तो जब वर्षा के दिन आएंगे, तब तक अगर जड़ें ही सूख गईं, तो फिर हरे कैसे हो पाओगे? इसलिए जड़ों को फैलाए रखना। तो उमर खय्याम ने कहा है कि यहां हम उसी का अभ्यास कर रहे हैं--थोड़ी मात्रा में--जो परमात्मा वहां देगा। अभ्यास जारी रखना।
वह जो चालाक है, वह इस बात में नहीं पड़ेगा। और चालाक तो कहेगाः "अभी जो हाथ में है, उसे निपटा लें। कल का कल देखेंगे।" उसको डराने के लिए भय चाहिए। उसको लुभाने के लिए लोभ काफी नहीं है।
चालाक डरता है--भय से। उसे तो खूब डर पैदा कर दिया जाए, जो कि नरकों के द्वारा पैदा किया गया है। आग जल रही है, कढ़ाइयां चढ़ी हैं, तेल उबल रहा है। तुम फेंके जा रहे हो, निकाले जा रहे हो। और मजा यह है कि तुम फेंके जाओगे, पर मरोगे नहीं। क्योंकि अगर मर गए तो शांति मिल जाएगी। इसलिए नरक में मौत नहीं होती--ध्यान रखना।
यहां मौत होती है, नरक में मौत नहीं होती। क्योंकि मौत बड़ी शांति है, नरक में जाकर तुमको पता चलेगा। वहां जिंदगी इतनी कठिन है कि मौत का सहारा तुम खोजना चाहोगे। लेकिन नरक में कोई आत्महत्या नहीं कर सकता। वह होती ही

नहीं हैं। पहाड़ से गिरो, हड्डी-पसली टूट जाएगी, मरोगे नहीं। आग में जलाए जाओगे; जल जाओगे, झुलस जाओगे, सड़ जाओगे, पर मरोगे नहीं। छेद किए जाएंगे-- शरीर में कीड़े-मकोड़े छेदों से निकलेंगे, गुजरेंगे, लेकिन मरोगे नहीं। बड़े वीभत्स चित्र नरक के खींचे गए हैं।
जो चालाक आदमी है, वह अगर स्वर्ग से लोभित न हो, तो उसके लिए डर है कि
वह कंप जाए और थोड़ा सोचने लगे कि पैर सम्हाल के रखो, कहीं चूक गए तो!
हाथ में जो शराब की बोतल है, उसे छुड़ाने के दो उपाय हैं। एक, अगर चूके, ज्यादा पी गए और डगमगा गए, तो नीचे नरक है--वह भय तुम्हें रोकेगा। और आगे स्वर्ग है, अगर छोड़ दिया अपनी मौज से, तो वहां स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं।
स्वर्ग और नरक-लोभ और भय के बीच में आदमी को कसा गया है। इसलिए तुम मंदिर में सिर झुकाते हो--गौर से देखना--कभी लोभ के कारण, कभी भय के कारण! साधु को नमस्कार करते हो--कभी भय के कारण, कभी लोभ के कारण।
एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन एक वृक्ष पर चढ़ रहा था। बेर पक गए थे। बड़ा लंबा वृक्ष था। चढ़ने के पहले उसने कहा, "परमात्मा, जरा ध्यान रखना। अगर ठीक से बेरों तक पहुंच गया तो आज चार आने मस्जिद में चढ़ाऊंगा।" वह आधे वृक्ष पर पहुंच गया, तो उसने कहा, "इतने से बेरों के लिए चार आने ज्यादा हैं, यह तो तुम भी मानोगे। चार आने इतने से बेरों के लिए! और मैंने श्रम किया; चार आने तुम्हें चढ़ेंगे? और कोई भिखमंगे मजा लेंगे--उन चार आनों का। दो आने ठीक रहेंगे।" लेकिन जब वह करीब-करीब बेरों के पास पहुंच गया, तो उसने कहा, "साफ कह देना ही ठीक है। ये बेर एक आने से ज्यादा के नहीं हैं।" जब वह बेर तोड़ ही रहा था, तो उसने सोचा कि मैं भी क्यों फिजूल की बातों में पड़ा हूं। जब कोई पूछ ही नहीं रहा है, कोई मांग ही नहीं रहा है, तो मैं अपने हाथ से ही क्यों फंसा जा रहा हूं! तत्क्षण डाल टूटी और वह नीचे गिरा। हड्डी-पसली टूट गई। नीचे उसने उतर कर कहा, "हद्द हो गई! जरा तो धैर्य रखते। तुम्हें कुछ चढ़ा ही देता। इतनी जल्दी भी क्या थी?"
तुम कभी भय से, कभी लोभ से झुक रहे हो, और जब तक तुम भय और लोभ से झुक रहे हो, तब तक तुम मंदिर के द्वार पर नहीं पहुंचे।
ईसाइयों ने यह कहानी उल्लेख नहीं की, क्योंकि इस कहानी को उल्लेख करने के बाद रोम का साम्राज्य खड़ा नहीं हो सकता; पोप का साम्राज्य गिर जाएगा। पुरोहित जीता ही भय और लोभ पर है। और ईसाइयों के पास सबसे ज्यादा बड़ा पुरोहितों का वर्ग है। तुम जान कर हैरान होओगे--दस लाख ईसाई पुरोहित हैं--कैथेलिक सिर्फ। फिर, प्रोटेस्टेंट अलग। और फिर अनेक छोटे-मोटे संप्रदाय हैं, वे अलग। दस लाख दीक्षित पुरोहित कैथेलिक्स हैं। और जो रोज बढ़ते जाते हैं। हजारों कालेज हैं पृथ्वी पर, जो सिर्फ पुरोहितों को तैयार करते हैं। लाखों चर्च हैं। जितना बड़ा साम्राज्य पोप का है, वस्तुतः किसी का भी नहीं है। और यह सारा साम्राज्य भय और लोभ पर खड़ा है।
अब इस कहानी को समझने की कोशिश करें।
इस कहानी का ईसा से संबंध है--ईसाइयत से नहीं। और यह ध्यान में रहे कि किसी धर्म का संबंध "धर्म" से नहीं रह जाता। धर्म का जो मूल उदगम होता है, उसका तो संबंध होता है--कृष्ण का संबंध है, महावीर का संबंध है, बुद्ध का संबंध है, क्राइस्ट का संबंध है--जैन, हिंदू, बौद्ध, ईसाई--इनका कोई संबंध नहीं है। ए दुकानें हैं। ए तुम्हारे बाजार के ही हिस्से हैं। ए तुम्हीं ने अपनी तृप्ति के लिए पैदा किए हैं। ए उसी अर्थशास्त्र के नियम का अनुसरण करते हैं, जिसमें कहा गया है कि अगर बाजार में मांग हो तो कोई न कोई पूर्ति करने वाला पैदा हो जाएगा। इफ देयर इ.ज डिमांड, देअर विल बी सप्लाई। तुम भयभीत हो, तुम लोभ से भरे हो--कोई न कोई सप्लाई करने को तैयार हो जाता है। कोई तुम्हें स्वर्ग पकड़ा देता है, कोई तुम्हें नरक पकड़ा देता है। लेकिन जीसस, कृष्ण, बुद्ध, राम, महावीर, तुमसे नरक और स्वर्ग दोनों छीन लेना चाहते हैं। वे तुम्हें निर्भय, वे तुम्हें निर्लोभ करना चाहते हैं। क्योंकि जिस दिन न भय होगा, न लोभ, उसी दिन तुम्हारे जीवन में परम प्रकाश होगा।

"मरियम के बेटे ईसा एक गांव से गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि कुछ लोग राह के किनारे दीवार पर बहुत संतापग्रस्त होकर मुंह लटकाए बैठे हैं। ईसा ने उनसे पूछा, "यह हालत कैसे हुई है तुम्हारी? इतने मुंह क्यों लटके हुए हैं? ऐसी उदासी क्या? ऐसा क्या दुख तुम्हारे ऊपर बरस गया है?"
जाकर देखो तुम मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजाघरों में--मुंह लटकाए लोग तुम्हें बैठे मिल जाएंगे। हंसता हुआ आदमी तो तुम पाओगे ही नहीं वहां। और कोई हंस देगा चर्च में, तो लोग कहेंगे कि कोई नासमझ आ गयाः "निकलो, बाहर हो जाओ; यह चर्च है। यहां हंसना गुनाह है।" अगर मंदिर में तुम हंसोगे, तो लोग समझेंगे कि तुमने अपमान किया है। वहां रोना नियम है। वहां उदासी सबूत है कि तुम धार्मिक हो। तुम जितने मरे-मराए वहां बैठो, लोग मानेंगे कि हां, तुम उतने ही पहुंच गए हो।
मगर ईसा ने पूछा, "तुम मुंह लटकाए बैठे हो--संतापग्रस्त; यह हालत तुम्हारी हुई कैसे? किसने तुम्हें इस दुख में डाल दिया?" उन्होंने कहा, "नरक के भय से हम ऐसे हो गए हैं।" हम डरे हुए हैं। नरक करीब है।
ध्यान रहे, भारत में तो अनेक जन्मों की सुविधा है। यहां जन्म, और जन्म,
और जन्म--लंबी यात्रा है। ईसाई, यहूदी और मुसलमान एक ही जन्म को मानते हैं। इसलिए भय भी बड़ा भयंकर हो जाता है। इसलिए हर मौत आखिरी मौत है। फिर उसके बाद कुछ करने का उपाय नहीं है। जो कुछ कर सको, अभी कर लो और वही फिर निर्णायक सिद्ध होगा। तो जितना मुसलमान डर सकता है, उतना हिंदू नहीं डरेगा; क्योंकि हिंदू कहेगा, जल्दी कुछ है नहीं। अगर अभी पाप करते हैं, अगले जन्म में फिर पुण्य कर लेंगे। हिसाब-किताब बराबर हो जाएगा। और फिर कभी भी गंगा जाकर स्नान कर सकते हैं। ऐसा कोई डर नहीं है। और फिर जन्मों- जन्मों का लंबा मामला है। कोई हिसाब एक दिन में तो चुकता हो नहीं रहा है। और फिर हिंदुओं के पास कोई जजमेंट, कोई कयामत, कोई आखिरी निर्णय का दिन नहीं है। वे कहते हैं कि यह जीवन एक अंतहीन यात्रा है। इसमें कभी आखिरी दिन नहीं है, जिसमें तुम्हारा निर्णय किया जाएगा। लेकिन मुसलमान और ईसाई आखिरी दिन में मानते हैं। वे मानते हैं कि कब्र से उठाए जाओगे। और एक ही जीवन है। इसलिए जो तुमने किया, वह आखिरी हो गया। फिर उसको बदलने का उपाय नहीं है। फिर लौट कर तुम यह नहीं कह सकते कि "माफ करो। भूल हो गई। अब कभी ऐसा न करेंगे।" जो किया, वह पत्थर की लकीर हो गई। उसे मिटाने का फिर कोई मार्ग नहीं है। इसलिए भय जैसा मुसलमान और ईसाई में पैदा हो सकता है, वैसा हिंदू में पैदा नहीं हो सकता है।
"नरक के भय से हम ऐसे हो गए हैं," कहा उन्होंने। ईसा ने सुना और आगे बढ़ गए। आगे बढ़ने पर उन्होंने फिर कुछ लोगों को देखा, जो एक राह के किनारे तरह-तरह के आसनों और मुद्राओं में बैठे हैं। प्रकार-प्रकार की विधियां कर रहे हैं और बहुत-बहुत उदास थे। ईसा ने पूछा, "तुम्हारी तकलीफ क्या है?" उन्होंने कहा, "स्वर्ग की आकांक्षा ने हमें ऐसे बना दिया है।"
जैन हैं, उनके मंदिरों, स्थानकों में जाकर देखो, तो पहली तरह के लोग मिलेंगे, जो भयभीत हैं। इसलिए जैन मुनि का चेहरा देख कर भय की प्रतिमा याद आ सकती है। कंपा हुआ है; हर चीज पाप है। हर चीज से भयभीत है। पानी पीए तो डर; सांस ले तो भय; रात प्यास लग जाए तो नरक; यह न खाए, वह न खाए; यह न पहने, ऐसा न उठे, वैसा न बैठे--एकदम भयभीत है। चारों तरफ नरक है और बीच में अपने को किसी तरह सम्हाल कर खड़ा है। पांव कंपते हैं; कभी नींद आती है, कभी झपकी लगती है, तो डर लगता है। कभी भी गिरा, तो नरक है।
पहली तरह के लोग तुम्हें जैन मंदिरों में मिल जाएंगे--भय से भयभीत। दूसरी तरह के लोग तुम्हें हिंदुओं के आश्रमों में मिलेंगे। कोई शीर्षासन कर रहा है, कोई उलटी-सीधी मुद्राएं बना रहा है, कोई नाक बंद किए है, कोई कान रुंधे है, किसी ने भोजन छोड़ दिया है, कोई खड़ा ही हुआ है।
एक आदमी को मैं मिला, वह दस साल से खड़ा ही हुआ है। उनका नाम "खड़े श्री बाबा" हो गया है। वे बैठते ही नहीं। वे तब तक न बैठेंगे, जब तक स्वर्ग उन्हें उपलब्ध न हो जाए। उन्होंने कसम खा ली है। उनसे पूछो, "खड़े श्री बाबा! यह गति तुम्हारी किसने की? किसने तुम्हें कहा कि खड़े रहो? भगवान ने पैर झुकने के लिए, बैठने के लिए बनाए हैं, लेकिन यह निर्णय तुमने कैसे

लिया?" तो वे कहेंगे, "यह तकलीफ? स्वर्ग की आकांक्षा ने हमें ऐसा बना दिया है। स्वर्ग कोई मुफ्त में तो मिलेगा नहीं। दाम चुकाना पड़ेगा। अर्जित करना होगा स्वर्ग।" वे अर्जित करने में परेशान हैं।
ईसा उसी गांव में और आगे बढ़े। और ध्यान रखना, वह तुम्हारा ही गांव है। किसी और गांव की बात नहीं है। हर गांव वही गांव है। पूरी पृथ्वी वही गांव है और वहां तीन तरह के लोग हैं। और फिर कुछ लोग उन्हें मिले। उन्हें देख कर लगा कि जीवन में उन्होंने बहुत कुछ झेला है, अनुभव किया है। जीवन में उनके एक प्रौढ़ता आई है--एक निखार। जैसे सोना आग से निकलता है और शुद्ध हो जाता है--ऐसी चमक है, सोने पर खबर है कि आग से गुजरा है। संताप उन्होंने भी झेले हैं, दुख उन्होंने भी पाए हैं। लेकिन दुख और संताप उन्हें मुरझा नहीं गए। दुख और संताप उन्हें अनुभवी बना गए हैं। उन्होंने बाल अपने धूप में नहीं पकाए, जीवन की प्रक्रिया से वे पके हैं। बहुत कुछ झेला है उन्होंने, लेकिन वे आनंदमग्न हैं। दुख आए हैं, तूफान उठे हैं, आंधियां आई हैं। वासनाएं उन्होंने झेली हैं; सुख-दुख के परिणाम उन्होंने भी भोगे हैं। रास्ते के कष्ट देखे हैं--पैर पर चिह्न हैं, कांटे उन्हें भी गड़े हैं। फूल की सुगंध उन्होंने भी ली है, लेकिन वे आनंदमग्न हैं। जीवन उन्हें परिपक्व कर गया है। जीवन उन्हें इंटिग्रेट कर गया है। वे भीतर जैसे एक हो गए हैं। जीवन ने उन्हें केंद्रित किया है। वे जीवन से हार नहीं गए हैं, जैसे जीत गए हैं। वे आनंदमग्न हैं।
पूछने पर उन्होंने बताया, "हमने हकीकत देख ली, हमने सत्य देख लिया। इससे और मंजिलें भूल गईं।" जिसने हकीकत देख ली, उसे सभी कुछ भूल जाता है। क्या हकीकत है? क्या सत्य है? सत्य है कि न तो भय करने को कुछ है, न तो लोभ करने को कुछ है। सत्य है कि जो भी मैं हो सकता हूं, मैं हूं।
तुम जैसे हो, परिपूर्ण हो। तुम जैसे हो, पूरे हो। रत्ती भर भी तुम्हारे सुधार की कोई जरूरत नहीं। और तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, जो छीना जा सके। या तुम्हारे पास जो कुछ भी है, उसे छीनने का भी मार्ग नहीं है। वह तुम्हारा है, तुम्हारा स्वभाव है। जैसे आग से कोई गर्मी नहीं छीन सकता है--वैसे तुमसे कोई तुम्हारा स्वभाव नहीं छीन सकता। जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है--कोई उससे नीचे की तरफ बहना नहीं छीन सकता--वैसे ही तुम जो भी हो, वह तुमसे छीना नहीं जा सकता है। और न तुममें कुछ जोड़ा जा सकता है। यह हकीकत है। यह हकीकत बड़ी कठिन है।
इसका मतलब हुआ कि तुम जैसे हो, बस, ऐसा होना ही तुम्हारी नियति है। यही तुम्हारी डेस्टिनी है। "हमने हकीकत देख ली", उन्होंने कहा, "और सब मंजिलें भूल गईं।" "अब न हम स्वर्ग जाना चाहते हैं, न हम नरक से बचना चाहते हैं। न तो अब हमें कहीं पहुंचना है और न हमें अब कुछ छोड़ना है। इस अनुभव से हम आनंदित हैं।"
तुम भी तब तक आनंदित न हो पाओगे, जब तक तुम्हें कुछ छोड़ना है। जब तक तुम्हें किसी जगह से बचना है, तब तक भय रहेगा और भय सिकोड़ेगा। जब तक तुम्हें कुछ पाना है, तब तक वासना रहेगी और लोभ तुम्हें दौड़ाएगा।
जिस दिन तुम्हें न कुछ पाना है, न कुछ खोना है--न कोई स्वर्ग है, न कोई नरक है; न तुम परमात्मा से कह रहे हो कि बचाओ, न तुम परमात्मा से मांग रहे हो कुछ--सब मंजिलें खो गईं, बस, उस दिन--उस दिन ही तुम्हारे जीवन में पहली दफा आनंद की वर्षा होगी।
जब कोई मंजिल न होगी, तो बस, शून्य जैसे हो जाओगे। तब तुम क्या हो? तुम
तब एक कोरे आकाश की भांति हो। आकाश न तो कहीं जाता और न आता। हवाएं कहीं आती हैं, कहीं जाती हैं, वृक्ष उगते हैं, गिरते हैं, मनुष्य पैदा होता है, मरता है, वासनाएं पकती हैं, लगती हैं, झरती हैं--आकाश वहीं का वहीं है; न कहीं आता है, न कहीं जाता है। क्योंकि आकाश शून्य है।
ज्ञानियों ने आत्मा को "अंतर-आकाश" कहा है--भीतर का आकाश। जैसे आकाश बाहर है, ऐसा ही आकाश भीतर है। वही आकाश तुम हो। जिसने उसे देख लिया, उसने हकीकत देख ली। और जिसने उसे देख लिया, वह नाच उठा। फिर उसकी बांसुरी के स्वर कभी बंद नहीं होते। फिर उसके पैरों की पायल बजती ही रहती है। फिर एक

अहर्निश नाद है। फिर सनातन संगीत है। फिर ओंकार की धुन गूंजती ही रहती है। फिर क्षण भर भी इस सत्य से कोई विलगाव नहीं है।
तुम टूट गए हो इससे; क्योंकि तुम देख रहे हो--या तो उसे, जिससे तुम डरे हो--शत्रु। या कि तुम्हारी आंखें खोज रही हैं--उसे, जिससे तुम लोभित हो-- मित्र। जो शत्रु को देख रहा है, वह स्वयं को न देख सकेगा। जो मित्र को देख रहा है, वह भी स्वयं को न देख सकेगा। और जिसे स्वयं को देखना हो, उसे शत्रु- मित्र सभी को भूल जाना जरूरी है, ताकि वह निश्चिंत भाव से अपने को देख सके। जिसने "अपने को" देखा, उसने हकीकत देखी।
जीसस तुम्हारे गांव से गुजरे हैं। तुममें से ही कुछ को उन्होंने बैठे देखा है--दीवार पर, जो संतापग्रस्त हैं, क्योंकि नरक से डरे हुए हैं। तुम्हारे गांव में उन्होंने कुछ लोगों को बैठे देखा है, दूसरे मकान के आंगन में, जो उलटे-सीधे उपाय कर रहे हैं।
कभी सोचा तुमने तो बहुत बातें हंसी-मजाक की लगेंगी कि कोई एक नाक से सांस लेकर सोच रहा है कि ब्रह्मज्ञान हो जाएगा। ब्रह्मज्ञान इतना सस्ता? तुम्हारी एक नाक से सांस लेने पर निर्भर है? तुम बच्चों से भी गई-बीती बातें कर रहे हो। बच्चे भी हंसेंगे कि एक नाक से सांस लेने पर कहीं ब्रह्मज्ञान होता है! तो दो नाक से लेने पर तो दोहरा होगा। कि तुम सिर के बल खड़े हो, इससे क्या समाधि लग जाएगी! काश, इतना आसान होता, तो सारी पृथ्वी कभी के सिर के बल खड़ी हो गई होती। और जब पैर के बल खड़े होने से समाधि न लगी, तो सिर के बल खड़े होने से समाधि कैसे लग जाएगी? नहीं लेकिन क्लिष्ट--कठिन को करने में ही रस आता है। क्योंकि कठिन, जो दूसरे नहीं कर रहे हैं, उसे करके तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है।
तुम कहते होः "देखो, मेरी तरफ, मैं सिर के बल खड़ा हूं। तुम नहीं खड़े हो सकते हो।" घंटों लोग सिर के बल खड़े हैं; उससे कोई मोक्ष नहीं मिलता, केवल सिर के भीतर के सूक्ष्म तंतु टूट जाते हैं। इसलिए तुम लंबे शीर्षासन करने वालों में बुद्धिमान लोग न पा सकोगे। तुम्हारे लंबे शीर्षासन करने वालों में से एक को भी नोबल प्राइज मिलती नहीं; मिल सकती नहीं। उनमें से एक भी कोई बड़ा वैज्ञानिक नहीं होता; न कोई पिकासो पैदा होता है, न कोई आइंस्टीन पैदा होता है। कितने दिन से तुम शीर्षासन कर रहे हो? पर शीर्षासन करने वालों में तुम्हें मंद-बुद्धि वाले लोग मिलेंगे। यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर खून बहुत ज्यादा जाएगा--मस्तिष्क में, तो जो उसके सूक्ष्म तंतु हैं, वे टूट जाएंगे; उतनी बड़ी ऊर्जा के बाढ़ को वे झेल नहीं सकते। और जितने सूक्ष्म तंतु होते हैं, उतनी प्रज्ञा विकसित होती है। जानवर इसलिए तो बुद्धि में पिछड़ गए हैं; क्योंकि उनके सिर में तुमसे ज्यादा खून जा रहा है--इसलिए सूक्ष्म तंतु विकसित नहीं हो पाते। तुमने अगर कभी पागलखाने में जाकर देखा हो, तो जो इडिएट्स हैं, जो बिल्कुल मंदबुद्धि हैं, वे सदा सिर को झुकाए मिलेंगे। दोनों पैरों के बीच में सिर को झुका कर बैठे मिलेंगे। सिर को सीधा किए नहीं मिलेंगे। इडिएट के बैठने का ढंग वही है। वह एक खास आसन है उसका। उस आसन में तुम भी बैठो, तो शायद तुम्हें ऐसी भ्रांति पैदा हो कि मन शांत हो रहा है। मन शांत नहीं हो रहा है, केवल बुद्धि खो रही है, मंद हो रही है।
उलटे-सीधे साधन करने से परमात्मा नहीं मिलता है। सच पूछो तो परमात्मा
को मिलने के लिए कोई भी उपाय करना जरूरी नहीं है। क्योंकि वह तो मिला ही हुआ है। तुम्हारे हृदय की धड़कन है वह। तुम्हारे सांस की सांस है। तुम्हारे भीतर से वही देखता है, वही सुनता है। तुम्हारे भीतर वही चलता है, वही सोता है। पर यह तो तुम्हें तभी दिखाई पड़ेगा, जब न भय हो और न लोभ।
कहा उन्होंने, "हमने हकीकत देख ली। इससे और मंजिलें भूल गईं।" तुम भी हकीकत देख लोगे तो मंजिलें भूल जाएंगी--एक। या मंजिलों को भूल जाओगे, तो तुम हकीकत देख लोगे। ए दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं। कहां से शुरू करोगे? दोनों तरफ से शुरू हो सकती है--बात।
हकीकत देख लोः क्या है तुम्हारे पास खोने को? क्यों डरते हो? नरक में
भी तुम्हें कौन सा कष्ट दिया जा सकता है, जो तुम नहीं पा रहे हो? क्या भय है नरक का? और एक बोतल से जब सुख न मिला, तो चश्मे से कैसे सुख मिल जाएगा? और

क्षण भर जो सुंदर थी स्त्री, जब वह आनंद न दे सकी और उसने काफी दुख दिया, तो अप्सराओं से सावधान रहना। क्षणभर के लिए जो सुंदर थी, वह इतना कष्ट दे गई, तो गणित साफ है। कि जो सदा सोलह साल की रहेगी, वह फांसी बन जाएगी। इससे तो बचने का भी उपाय था, उससे तो बचने का भी उपाय न होगा। इससे तुम भाग भी सकते थे, उससे तुम भागोगे भी कहां?
जब इस जगत में सुख सुख सिद्ध न हुए, तो स्वर्ग के महासुख भी सुख सिद्ध
न होंगे। अगर सुख में दुख पाया, तो महासुख में महादुख पाओगे।
ठीक से देखोगे तो हकीकत साफ है। सत्य पर परदा नहीं है, सिर्फ तुम्हारी आंखों पर परदा है। सत्य तो उघड़ा हुआ है, सिर्फ तुम आंखें बंद किए बैठे हो। खोलो आंखें और या फिर अगर तुम्हें यह हकीकत देखनी कठिन मालूम पड़ती हो, कष्टपूर्ण मालूम पड़ती हो, तो फिर तुम्हारे लिए दो ही रास्ते रह जाते हैं। या तो पहली दीवार पर बैठे लोग--उनमें तुम सम्मिलित हो जाओ। बहुत से लोग सम्मिलित हो गए हैं। या फिर दूसरे आंगन में बैठे हुए लोग--उसमें सम्मिलित हो जाओ; उसमें भी बहुत से लोग सम्मिलित हो गए हैं। वह आसान है। लेकिन आसान से ही कोई सत्य तक पहुंच जाता है, ऐसा मत समझ लेना।
नरक से डरना आसान है। स्वर्ग से लोभित होना आसान है। हकीकत को जानना कठिन है। पर जो हकीकत को जानता है, वही मुक्त होता है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
चौथा प्रवचन

साधक अर्थात सोया हुआ सिद्ध

एक शिष्य ने केम्बो से पूछाः "क्या सभी बुद्ध-पुरुष निर्वाण के एक ही मार्ग पर अग्रसर होते हैं और सभी युगों में?"
केम्बो ने अपनी छड़ी उठा कर हवा में शून्य की आकृति बनाते हुए कहाः "यह रहा वह मार्ग। यहीं से वह शुरू होता है।"
वह शिष्य फिर उमोन के पास गया और उनसे भी वही सवाल पूछा। दोपहरी थी और उमोन के हाथ में पंखा था। उसने सभी दिशाओं में पंखा हिला कर कहाः "वह मार्ग कहां नहीं है? उसका आरंभ कहां नहीं है?"
और फिर जब किसी ने ममोन से इसी घटना का राज पूछा, तब उसने कहाः "इसके पहले कि पहला कदम उठे, मंजिल आ जाती है। और इसके पूर्व कि जीभ हिले, वक्तव्य पूरा हो जाता है।"
ओशो, इस झेन परिचर्चा का अभिप्राय क्या है?

साधक और सिद्ध में रत्ती भर भी भेद नहीं है। भेद दिखाई पड़ रहा है--साधक
की भ्रांति के कारण। साधक भी सिद्ध है; अभी उसे इसका पता नहीं चला है। सिद्ध भी साधक था, जब तक पता नहीं था। जैसे ही पता चला, सिद्ध हो गया। तो भेद आत्मा में नहीं है, सिर्फ प्रतीति में है। साधक भी सिद्ध है; सिर्फ उसे होश नहीं है; कौन है--इसका पता नहीं है।
साधक अपने ही हाथ भिखारी बना है। सम्राट होना उसकी नियति है। सम्राट
वह अभी भी है। इस क्षण भी साम्राज्य खोया नहीं, क्योंकि यह साम्राज्य ऐसा नहीं है, जो खोया जा सके। स्वभावतः साम्राज्य खोया नहीं जा सकता।
साधक और सिद्ध में रत्ती भर भी फासला नहीं है; हो नहीं सकता। तुम सिद्ध हो ही। यह दूसरी बात है कि कितनी देर तुम इस बात का पता लगाने में लगाओगे। कितना समय गंवाओगे, यह बात दूसरी है।
तुमसे और सिद्ध तक कोई यात्रा नहीं होनी है। तुमसे और सिद्ध तक सिर्फ स्मरण का फासला है। जैसे एक आदमी सोया है और एक आदमी जाग कर उसके पास बैठा है। दोनों चैतन्य हैं, पर पहला आदमी गहरी नींद में है। और उसे कुछ भी पता नहीं है और वह सपनों में खोया है। और दूसरा जाग कर बैठा है। उसे सब पता है। उसके सपने टूट गए हैं। पर क्या दोनों में वस्तुतः भेद है? जरा सा हिलाना, जरा सा डुलाना या घड़ी का अलार्म भी सोए को जगा देगा। जैसे ही जागेगा, वैसे ही उसमें और जागने वाले में जरा भी फर्क न रह जाएगा। फर्क पहले भी न था। बस, ढंका पड़ा था--तंद्रा में। और दूसरे की तंद्रा टूट गई थी। दूसरे व्यक्ति को स्मरण आ गया था और पहले को अभी स्मरण नहीं आया था। पर दोनों की अंतरात्मा में भेद नहीं है।
पहले तो यह बात ठीक से समझ लें, अन्यथा अक्सर ऐसा होता है कि साधक यह सोच कर कि मैं तो साधक हूं, सिद्ध के वचनों से वंचित रह जाता है। सोचता हैः "यह तो बहुत ऊपर की बात है--अपनी समझ के पार। यह तो आकाश की बात है; हम तो पृथ्वी पर खड़े हैं। यह हमारे लिए नहीं है।" लेकिन तुम चाहे कितने ही पृथ्वी पर खड़े रहो, तुम्हारा सिर सदा आकाश को छू रहा है। एक क्षण को भी इससे बचने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि पृथ्वी भी आकाश में है। और तुम जहां भी हो, आकाश से घिरे हो।
बहुत बार यह सोच कर कि ये वचन हमसे बहुत ऊपर के हैं, हम अकारण ही अपने
को नीचे रखने का कारण बन जाते हैं। कोई वचन तुमसे ऊपर नहीं है, क्योंकि कोई अनुभव तुमसे पार नहीं है। और ब्रह्म अगर कहीं सातवें आकाश में होता, तो शायद फासला भी होता। लेकिन ब्रह्म तुम्हारे भीतर है। सीढ़ी लगा कर उस तक पहुंचना नहीं है, सिर्फ आंख खोल कर उस तक पहुंचना है।
मैंने सुना हैः एक शराबी एक रास्ते से गुजर रहा है; गहरे नशे में है, पैर डगमगाते हैं। कुछ पता नहीं कि कहां जा रहा है और एक स्त्री--एक नीतिवादी स्त्री जो शरीर से अति कुरूप और भयंकर दीखती थी, उसने शराबी को रोका और कहा कि "क्या कर रहे हो यह? यह आंतरिक कुरूपता छोड़ो; यह बेहोशी

हटाओ। तुम निंदा के योग्य हो, पापी हो।" शराबी ने आवाज सुन कर आंख खोली। देखा इस कुरूप स्त्री को, सामने खड़े। उसने कहाः "मैं तो सुबह होश में आ जाऊंगा, लेकिन तेरी कुरूपता का क्या होगा? यह सुबह भी ऐसी ही रहेगी।" सिद्ध और साधक के बीच जो फर्क है, वह शराबी और उसके होश में आने के बीच
का फर्क है। सुबह जागकर तुम भी पाओगे कि तुम सिद्ध हो। वह फासला ऐसा नहीं है कि कुरूपता जैसा हो कि सुबह भी वैसी ही रहेगी--चाहे तुम जागो, चाहे तुम सोओ।
स्मरण का हलका सा झोंका तुम्हारे सारे संसार को बहा ले जाएगा। इस संसार की जगह तुम पाओगे--एक स्वच्छ आकाश। इसलिए पहली बात तो यह ख्याल में ले लें कि सिद्ध और साधक के बीच कोई अंतर नहीं है। भक्त और भगवान में रत्ती भर का फासला नहीं है। और अगर फासला है, तो वह भक्त के ख्याल में है, भगवान के ख्याल में नहीं है। वह भक्त की ही भ्रांति है।
दूसरी बातः चाहे सिद्ध कैसे ही मार्गों से पहुंचे हों और चाहे उन मार्गों के नाम अनेक हों, लेकिन मार्ग एक ही है। मार्ग दो हो नहीं सकते। इसे समझना पड़े; थोड़ा कठिन है, थोड़ा सूक्ष्म है। अगर हम प्रतिमाएं बनाएं, तो लाख तरह की प्रतिमाएं बन सकती हैं। लेकिन हम प्रतिमाएं मिटाएं, तो मिटाना तो एक ही तरह का होगा। तुम मकान बनाओ तो आर्किटेक्ट्स हजार रास्ते बताएंगे मकान बनाने के, लेकिन अगर मकान गिराना हो तो किसी आर्किटेक्ट से कुछ पूछने की जरूरत नहीं है। और मकान किसी भी ढंग का बना हो, गिराने का ढंग तो एक ही होगा। गिराने में क्या फर्क होगा?
सिद्धत्व को पाना, बुद्धत्व को पाना, संसार को मिटाने की प्रक्रिया है--कुछ बनाने की नहीं। बनाने में भेद होते हैं; मिटाने में क्या भेद होता है? आकार भिन्न होते हैं। निराकार कैसे भिन्न होगा! तुम्हारे खीसे में रुपये हों, मेरे खीसे में रुपये हों, तो फर्क हो सकता है। तुम्हारे पास करोड़ हो सकते हैं। मेरे पास अंगुलियों पर गिने जा सकें, इतने रुपये हो सकते हैं; फर्क हो सकता है। लेकिन तुम्हारा भी खीसा खाली हो, मेरा भी खीसा खाली हो, तो खालीपन में क्या फर्क होंगे? भरेपन में फर्क हो सकते हैं। मात्रा का भेद हो सकता है, लेकिन खाली की तो कोई मात्रा नहीं होती। खाली तो सिर्फ खाली होता है।
वस्तुओं में अंतर होगा, शून्यों में कैसे अंतर होगा? सभी शून्य समान होते हैं--शायद तुमने सोचा भी न होगा। तुम छोटा शून्य बनाओ कि बहुत बड़ा शून्य बनाओ। क्या दोनों में कोई भेद होगा? शून्य का मूल्य तो शून्य है। एक में भेद है, दो में भेद है, तीन में भेद है। संख्याओं में अंतर है; शून्य अभेद है।
सिद्धत्व को पाना मिटने की प्रक्रिया है, खोने की प्रक्रिया है। गंगा अलग है, यमुना अलग है। नर्मदा अलग है। मिल जाएं तो भी दोनों का पानी अलग दिखाई पड़ता है। कोई नदी पूरब की तरफ बह रही है, कोई पश्चिम की तरफ बह रही है। सबका ढंग अलग है, सबके किनारे--यात्रा-पथ अलग हैं। लेकिन सागर में-- जहां नदियां मिल जाती हैं, रूप मिट जाते हैं, वहां कौन सा जल गंगाजल है? वहां सभी खारा हो जाता है। वहां गंगा, यमुना, और नर्मदा के भेद नहीं रह जाते।
बुद्धत्व सागर में खोने का नाम है। वहां व्यक्तित्व शून्य होता है। इसलिए मार्ग कितने ही अलग मालूम होते हों, अलग हो नहीं सकते। मिटने का मार्ग तो एक ही होगा। तुम नाम अलग-अलग रख सकते हो, वह तुम्हारी मरजी है। बस, नाम का ही भेद होगा, यथार्थ भिन्न नहीं हो सकता। लेकिन उस यथार्थ को कहने के ढंग भिन्न हो सकते हैं। और दो मूल ढंग हैं--कहने के। वह ख्याल में ले लो, तो यह छोटा सा संवाद बड़ा अदभुत हो जाएगा।
दो ढंग हैं उसे कहने के। एक ढंग तो है--पूर्ण निषेध का और एक ढंग है-- पूर्ण विधेय का। एक है--निगेटिविटी का। और एक है--पाजिटिविटी का। या तो तुम कह सकते हो कि वह शून्य है। या तुम कह सकते हो कि वह पूर्ण है। मगर दोनों का मतलब एक है। क्योंकि पूर्ण भी शून्य है।
पूर्ण कोई संख्या नहीं है। पूर्ण की कोई मात्रा नहीं है। शून्य भी कोई संख्या नहीं है; उसकी भी कोई मात्रा नहीं है। शून्य वहां है, जहां

संख्याएं शून्य हैं। और पूर्ण वहां है, जहां संख्याएं समाप्त हो गई हैं। शून्य संख्याओं के पहले का नाम है और पूर्ण संख्याओं के बाद का। लेकिन एक मामले में बात साफ है कि संख्या वहां दोनों में नहीं है। दोनों संख्या-- शून्य हैं, संख्या-रहित हैं या कहें असंख्य हैं। और यह भी हमारे ख्याल में है कि एक संख्या के पहले है और दूसरी संख्या के बाद। लेकिन संख्या के पहले जो है, वही तो संख्या के बाद बचेगा। जब संख्याएं शून्य ही होती हैं, तब शून्य है और जब संख्याएं समाप्त हो जाती हैं, तब जो बचता है, उसे हम पूर्ण कहते हैं। लेकिन बचेगा तो वही जो संख्याओं के पहले था। संख्याएं डाल दी थीं। संख्याएं निकाल लीं। बचेगा क्या? तुम्हारा खीसा खाली था--शून्य था। हमने रुपये डाल दिए, फिर हमने रुपये निकाल लिए। बचेगा क्या? बचेगा वही, जो रुपये डालने के पहले था।
तो पूर्ण हमारे कहने का ढंग है, अन्यथा शून्य ही है। न शून्य की कोई सीमा है, न पूर्ण की कोई सीमा है। दोनों के बीच में सब सीमाएं हैं और ये दोनों असीम हैं। लेकिन दो असीम हो नहीं सकते। यह थोड़ा गणित का गहरा सवाल है।
असीम तो एक ही हो सकता है। क्योंकि अगर दो असीम हों, तो वे एक दूसरे की सीमा बनाएंगे। दो असीम नहीं हो सकते हैं, सीमित अनंत हो सकते हैं। इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि दो ईश्वर नहीं हो सकते। क्योंकि अगर दो होंगे, तो वे एक दूसरे की सीमा बनाएंगे। "दूसरे" से सीमा निर्मित हो जाएगी। दो असीम न हो पाएंगे। असीम तो एक ही होगा। इनफिनिट एक ही होगा। संख्या के पहले हम उसे शून्य कहते हैं; संख्या के बाद पूर्ण कहते हैं, लेकिन वह एक है। पर प्रगट दो ढंग से किया जा सकता है। और दो ही तरह के चित्त हैं।
एक चित्त है, जो शून्य में आनंद लेता है और एक चित्त है, जो पूर्ण में आनंद लेता है। इसलिए दुनिया के सारे धर्म अभिव्यक्तियों के भेद हैं। बुद्ध शून्य में रस लेते हैं--संख्या के पहले। वे कहते हैं--संख्या की उलझन में ही क्यों जाना? संख्या के पहले जो है, उसी में उनका रस है। तो वे शून्य का प्रयोग करते हैं। शंकर पूर्ण का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं-- संख्या के पार। लेकिन जो लोग जानते हैं, वे जानते हैं कि शंकर और बुद्ध एक ही बात कह रहे हैं। इसलिए रामानुज ने शंकर की आलोचना में एक शब्द उपयोग किया है, वह हैः "प्रच्छन्न बौद्ध"--छिपा हुआ बौद्ध। शंकर से बड़ा आलोचक खोजना मुश्किल है--बुद्ध का। शंकर ने बड़ी गहरी आलोचना की है। क्योंकि शंकर पूर्ण के आग्रही हैं। शून्य की भाषा उन्हें जंचती नहीं। वे कहते हैंः "शून्य तो नकार है; और परमात्मा? परमात्मा नकार नहीं है, वह पूर्ण है। वह सब कुछ है। उसे मत कहो--"कुछ भी नहीं"। उसे कहोः "सब कुछ"। वह सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है, सर्वव्यापक है। वह शून्य नहीं है, पूर्ण है।" तो शंकर आलोचना करते हैं बुद्ध की, लेकिन रामानुज ने कहा है कि शंकर छिपे हुए बौद्ध हैं। इनमें जरा भी भेद नहीं है--बुद्ध में और शंकर में। है भी नहीं। क्योंकि तुम पूर्ण की कोई भी परिभाषा करो, वह शून्य की ही परिभाषा होगी। तुम शून्य के लिए कुछ भी कहो, वह पूर्ण ही होगा।
अब हम इस संवाद में प्रवेश करें।
एक शिष्य ने केम्बो से पूछा, "क्या सभी बुद्ध-पुरुष निर्वाण के एक ही मार्ग पर अग्रसर होते हैं और सभी युगों में, सभी युगों से, सदा से?" केम्बो एक बुद्ध-पुरुष है--एक जाग्रत चैतन्य। "क्या सभी बुद्ध-पुरुष निर्वाण के एक ही मार्ग पर अग्रसर होते हैं? और सभी युगों से, सदा से?" केम्बो ने अपनी छड़ी उठा कर हवा में शून्य की आकृति बनाते हुए कहा, "यह रहा वह मार्ग। यहीं से वह शुरू होता है।" छड़ी उठा कर हवा में शून्य की आकृति बना दी केम्बो ने और कहाः "यह रहा वह मार्ग। यहीं से सब शुरू होता है। यहीं से सब बुद्ध जाते हैं।"
उत्तर बड़ा बारीक है और ठीक किया केम्बो ने कि जमीन पर खड़िया से आकृति
न बनाई। क्योंकि जमीन पर खड़िया से बनाई गई आकृति शून्य नहीं हो सकती। आकृति बन जाए, तो निराधार खो जाता है। ठीक किया केम्बो ने; खाली आकाश में छड़ी से आकृति बना दी। बन भी न पाई और खो गई।

तीन तरह की आकृतियां हैं। पत्थर पर आकृति बनाओ, सदियों तक टिकती है। पानी पर आकृति बनाओ, बनती है, मिट जाती है। आकाश में आकृति बनाओ, बनती ही नहीं। इसलिए इस्लाम विरोध में है--पत्थर की मूर्ति के। क्योंकि वह कहताः "पत्थर में तुम आकृति बना रहे हो, निराकार की? मत बनाओ आकृति। मस्जिद को खाली रहने दो; मंदिर शून्य रहने दो। क्योंकि पत्थर में बनाई आकृति मिट जाएगी, और परमात्मा कभी मिटता नहीं है।" इसलिए इस्लाम मूर्तियों को मिटाता रहा है। क्योंकि तुम मूर्तियां बना कर परमात्मा को मिटा रहे हो। हटाओ मूर्तियों को। मूर्त वह नहीं है, उसे अमूर्त ही रहने दो।
इस्लाम पसंद करेगा केम्बो की बात, कि उसने शून्य में आकृति बनाई है।
पानी पर आकृति बनाओ तो खिंचती है, मिट जाती है। पत्थर पर बनाओ, टिकती है। आकाश में बनाओ, न बनती है, न मिटने का कोई सवाल है।
और केम्बो ने कहा कि "यह रहा वह मार्ग।" जिस दिन तुम भी--तुम्हारा अहंकार, तुम्हारी अस्मिता, तुम्हारा होना आकाश में खिंची हुई शून्य की आकृति की भांति हो जाएगा, उसी दिन तुम बुद्ध हो जाओगे। बुद्ध तो तुम अभी भी हो। लेकिन तुमने खड़िया--मिट्टी से अपनी आकृति खींच ली है। या तुम कोशिश कर रहे हो, पत्थर पर आकृति बनाने की।
लोग मरते हैं, तो पत्थर पर नाम खोद जाते हैं। लोग पहाड़ों पर जाते हैं-- यात्रा को, पत्थरों पर नाम खोद आते हैं। बड़ा मोह है--बने रहने का। किसी भी तरह मैं बचूं, खो न जाऊं। कुछ भी नाम-रेखा रह जाए। तो मंदिर बनाते हैं, मस्जिद बनाते हैं, लेकिन सारी चेष्टा अहंकार की है। और अहंकार का अर्थ हुआः "जहां रेखा नहीं खींचनी थी, वहां तुमने रेखा खींच ली और आकृति बना ली।" बस, यही सिद्ध और साधक का फर्क है--कि साधक आकृतियां खींच रहा है और सिद्ध समझ गया है कि आकृतियां व्यर्थ हैं; निराकार होना मेरा स्वभाव है। केम्बो ने अपनी छड़ी उठा कर हवा में शून्य की आकृति बनाते हुए कहा, "यह रहा वह मार्ग।" हो जाओ शून्य, बन जाओगे बुद्ध। हो जाओ खाली। तुम्हारी नाव में कोई यात्री न रहे। तुम सूने घर हो जाओ, जहां कोई भी नहीं है। एक सन्नाटा है--एक मौन, जहां शब्द भी नहीं उठते। जहां लहरें तरंगें नहीं लेतीं, जहां कोई आकृति निर्मित नहीं होती। जहां सिर्फ सन्नाटा है। जहां कोई प्रतिध्वनि भी नहीं गूंजती। तुम हो जाओ ऐसे, बस, यहीं से मार्ग शुरू होता है।
शून्य हो जाने की कला ही महाकला है। जिसने जान लिया मिटना, उसने पाने
का राज पा लिया।
मलूक ने कहा है, "राम द्वारे जो मरे, बहुरि न मरना होय।" राम के दरवाजे
पर जो मर जाना सीख जाता है, फिर उसकी मृत्यु नहीं होती। उसने अमृत का सूत्र पा लिया है। पर "राम के द्वार पर।"
तुम्हारी हालत उलटी है, तुम्हारे द्वार पर राम मरे पड़े हैं। तुम कितना ही राम-राम जपते हो, लेकिन राम को तुम सेवक बनाने की कोशिश में लगे हो। राम को भी तुम नियोजित कर रहे हो, अपने काम में। तुम परमात्मा को भी काम में लगाने की कोशिश में हो। तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं मांगें हैंः लड़का पैदा हो जाए, कि धन मिल जाए, कि नौकरी बड़ी हो जाए। तुम परमात्मा से भी शोषण का संबंध रखना चाहते हो। तुम उसकी हत्या कर रहे हो।
नीत्शे ने एक अदभुत किताब लिखी हैः "दस स्पेक जरथुस्त्र"। उस किताब में एक बड़ी मीठी कहानी है कि जरथुस्त्र पहाड़ से नीचे उतरा, बाजार में गया भागता हुआ। चीख उसने लगाई और कहा कि "सुनो, तुम अपने काम में लगे हो, दुकान खोले धंधा कर रहे हो! तुम्हें पता नहीं कि ईश्वर मर गया!" लोग हंसने लगे। उन्होंने कहाः "तुम्हारा दिमाग खराब हुआ है?" किसी ने उसकी बात सुनी नहीं, मानी नहीं। लोग अपने काम में लगे रहे। तो जरथुस्त्र ने स्वयं से कहाः "ऐसा मालूम होता है, इन तक अभी खबर पहुंची नहीं है।" लेकिन तब जरथुस्त्र सोचने लगा, "यह कैसे हो सकता है, क्योंकि इन्होंने ही तो उसकी हत्या की है! और इन तक ही उसकी खबर नहीं पहुंची है।" तो सोचा जरथुस्त्र ने कि "शायद पुजारियों को पता होगा। क्योंकि वे परमात्मा के प्रतिनिधि हैं। उसने मंदिरों के द्वारों पर दस्तक दी, पुजारियों को हिलाया और कहा कि "सुनो, किसकी पूजा कर रहे हो? वह मर चुका।" पुजारियों ने कहाः "बाहर हटो, इस तरह की नास्तिकता की

बात मत करो।" तब जरथुस्त्र ने कहाः "हद हो गई! तुम्हीं ने उसकी गरदन दबाई और तुम्हीं को उसका पता नहीं है? खूब भोले बने बैठे हो!"
तुम पूछते फिरते हो, ईश्वर कहां है और तुमने ही उसे मार डाला है-- दरवाजे पर ही। अहंकार ईश्वर की हत्या है। क्योंकि अहंकार यह कह रहा हैः "मैं हूं-तू नहीं। और अगर तू भी है, तो मेरे लिए है।" निर-अहंकार का अर्थ है कि तू है, मैं नहीं। "राम द्वारे जो मरै, बहुरि न मरना होय।"
निर-अहंकार का अर्थ है--शून्यता--कि मैं अपने को छोड़ता हूं तेरे द्वार पर; अब मैं नहीं हूं। और जिस क्षण तुम नहीं हो, उसी क्षण परमात्मा जीवंत है। तुम दोनों में से एक ही जी सकता है। अगर तुम जी रहे हो, तो परमात्मा मरेगा। अगर परमात्मा जी रहा है, तो तुम मिटोगे। तुम दोनों का एक साथ होना संभव नहीं है। तुम दोनों विपरीत हो।
केम्बो ने शून्य बनाया आकाश में; वह बना भी नहीं है, क्योंकि तुम पकड़ना चाहो इस केम्बो के शून्य को, तो पकड़ न पाओगे। तुम मुट्ठी में बांधना चाहोगे, तो बांध न पाओगे। तुम किसी को दिखाना चाहो कि यह बनाया है मार्ग केम्बो ने, तो तुम दिखा न पाओगे। लेकिन इशारा कीमती है।
केम्बो ने कहा, "यह रहा वह मार्ग। यहीं से वह शुरू होता है।" और जो इसमें प्रविष्ट हो गया, वह बुद्ध हो गया।
मिटने के मार्ग दो कैसे हो सकते हैं? मिटने का मार्ग तो एक ही हो सकता है। यह भी हो सकता है कि कोई आदमी पहाड़ से कूद कर मरे, कोई आदमी जहर पीकर मरे, कोई आदमी ट्रेन के नीचे दब कर मरे। लेकिन फिर भी क्या तुम कहोगे कि मरने के मार्ग अलग हो सकते हैं? क्योंकि मरने की घटना तो भीतर एक ही होगी। चाहे तुम पहाड़ से कूदो, चाहे तुम जहर पीओ, चाहे तुम ट्रेन के नीचे दब जाओ, लेकिन मरने की जो घटना है, प्रक्रिया है, वह तो एक ही होगी।
फर्क यह हो सकता है कि किसी ने लाल छड़ी से आकाश में शून्य बनाया है, किसी ने हरी छड़ी से आकाश में शून्य बनाया है, किसी ने पीली छड़ी से आकाश में शून्य बनाया है, लेकिन छड़ी का रंग क्या शून्य में प्रवेश कर सकता है? शून्य तो निराकार रहेगा, शून्य तो निर्गुण रहेगा, शून्य तो निरंग रहेगा, तुम्हारी छड़ी का रंग तो शून्य में नहीं उतर सकता!
तो तुम जहर पीकर मरे, कि तुम पहाड़ से कूद कर मरे, कि तुम सागर में डूब
कर मरे, इससे क्या फर्क पड़ता है। जब शरीर से आत्मा अलग होगी, तो वह घटना एक ही होने वाली है। तुम कैसे अलग हुए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। तुम मस्जिद के सामने टूटे, कि तुम मंदिर के सामने टूटे, कि तुमने राम के द्वार पर अपने को मिटाया, कि तुमने बुद्ध के द्वार पर अपने को मिटाया--क्या फर्क पड़ता है? छड़ी के रंग शून्य में नहीं उतरेंगे। जब तुम मिट जाओगे तो न मस्जिद रहेंगे, न मंदिर रहेंगे, न राम रहेंगे, न कृष्ण, न बुद्ध। शून्य ही रह जाएगा।
उस शून्य का कोई भी नाम नहीं है। इसलिए केम्बो ने ज्यादा बात नहीं की। केम्बो ने कहा, "यह रहा मार्ग। यहीं से वह शुरू होता है।" मार्ग अलग-अलग दिखाई पड़ते हों, अलग-अलग हो नहीं सकते। शून्यों में भेद हो नहीं सकता।
वह शिष्य तृप्त न हुआ होगा। अन्यथा कहीं और जाने की जरूरत न थी। शिष्य बड़े कठिन प्राणी हैं! उनकी बीमारी बड़ी उलझन भरी है। केम्बो जैसे व्यक्ति के पास पहुंच कर भी यह शिष्य तृप्त न हुआ! कुएं से प्यासा लौट गया। इसको कुआं दिखाई ही न पड़ा। बल्कि शायद इसे कुएं में और समस्याएं दिखाई पड़ीं। यह जो सवाल लेकर आया था, वह तो बना ही रहा। यह केम्बो और एक सवाल बन गया। इसकी छड़ी, इसका आकाश में शून्य का बनाना--और नई समस्याएं खड़ी हो गईं कि "केम्बो का प्रयोजन क्या है?" मैंने तो सीधा सा सवाल पूछा था, इसने और पहेली खड़ी कर दी।"
वह शिष्य दूसरे गुरु के पास पहुंचा। शिष्य एक गुरु से दूसरे गुरु के पास भटकते हैं और इस तरह भटकने की अगर आदत बन जाए, तो गुरु से मिलना असंभव हो जाएगा। क्योंकि वे पहुंच भी नहीं पाते कि वे दूसरे के पास पहुंचने के लिए बिस्तर बांधने लगते हैं। वे जहां भी पहुंचते हैं, "भीतर" नहीं पहुंच पाते, बाहर से ही लौट जाते हैं।

अगर शिष्य में थोड़ी भी समझ होती तो केम्बो की छड़ी पकड़ लेनी था। अब कहीं जाने की बात नहीं रही। "राम" का द्वार आ गया, यहीं मरना था।
इस आदमी ने जो बात कही थी, इसमें और परिष्कार किया नहीं जा सकता। यह आखिरी है। लेकिन शिष्य लौट गया। वह शिष्य उमोन के पास गया--दूसरे बुद्ध-पुरुष के पास पहुंचा और उसने उससे भी यही सवाल पूछा। दोपहर थी और उमोन के हाथ में पंखा था। उसने सभी दिशाओं में पंखा हिला कर कहा, "वह मार्ग कहां नहीं है? उसका आरंभ कहां नहीं है?"
केम्बो शून्य का पक्षपाती रहा होगा, उमोन पूर्ण का पक्षपाती। केम्बो बुद्ध जैसा था, उमोन शंकर जैसा। उसने कहाः "चारों तरफ मार्ग ही मार्ग हैं। सभी कुछ मार्ग है।" केम्बो ने तो शून्य खींचा था आकाश में, जगह बताई थी कि "यह रहा मार्ग"। उमोन ने अपने पंखे को सब दिशाओं में घुमाया और कहाः "सभी दिशाएं उसका मार्ग हैं।" यह सारा आकाश उसका मार्ग है। इससे छोटे से काम न चलेगा। वही वही है। तुम जहां खड़े हो, वहीं से मार्ग है। कहीं और जाने की जरूरत नहीं है। तुम जो हो, वही मार्ग है। क्योंकि तुम पूर्ण हो।
शून्य की भाषा में मार्ग की तरफ इंगित हो सकता है; पूर्ण की भाषा में इंगित भी नहीं हो सकता। अगर शून्य को बताना हो तो उंगली उठाई जा सकती है; पूर्ण को बताना हो तो मुट्ठी बांधकर ही बताया जा सकता है। सब दिशाएं उसी की हैं।
नानक मक्का गए। रात सोए, तो पैर उन्होंने पवित्र पत्थर की तरफ कर दिए थे। पुजारियों को खबर लगी, वे बहुत नाराज हुए। पुजारियों से ज्यादा अंधे लोग खोजना कठिन है। नानक आया था, इसको तो नहीं पहचान पाए वे। यह वही था, जो मुहम्मद थे। जरा भी फर्क न था। लेकिन उन्होंने देखे इसके पैर और कहाः "अपने पैर दूसरी दिशा में करो! पवित्र मंदिर की तरफ--परमात्मा की तरफ पैर! शर्म नहीं आती! और ज्ञानी होने का दावा करते हो?" तो नानक ने कहा, "तुम्हीं मेरे पैर उस तरफ कर दो, जहां परमात्मा न हो!"
पुजारी मुश्किल में पड़ गए होंगे। अब पैर कहां करें--जहां परमात्मा न हो! कहानी तो यह कहती है कि उन्होंने पैर सब दिशाओं में करके देखे, लेकिन जिस तरफ पैर किए, उसी तरफ मक्का का मंदिर घूम गया। मगर यह तो प्रतीक है, मंदिरों का घूमना इतना आसान नहीं है; पुजारी नहीं घूमते, मंदिर क्या घूमेंगे? पुजारी पत्थर है। तो पत्थरों के मंदिर क्या घूमेंगे? लेकिन बात सच है।
पुजारियों को समझ में आ गई होगी इतनी बात कि पैर कहीं करना व्यर्थ है, क्योंकि मंदिर तो उसका सभी तरफ है। वह किस दिशा में नहीं है? और जिस तरफ हम इसके पैर करेंगे, तो यह कहेगाः क्या यहां परमात्मा नहीं है?" और यह भी तो कहना उचित नहीं कि इस दिशा में थोड़ा ज्यादा है, उस दिशा में थोड़ा कम है। क्योंकि परमात्मा क्या कम-ज्यादा हो सकता है? या तो है या नहीं है।
उमोन नानक जैसा आदमी रहा होगा। उसने पंखे को चारों तरफ घुमाकर कहा, "कहां नहीं है उसका मार्ग?" कहां नहीं है उसका आरंभ?
शिष्य और भी मुश्किल में पड़ गया होगा। अगर कभी कोई बुद्ध-पुरुष मिल जाए, तो जहां तक बने उसी में डूब जाना उचित है। दूसरा बुद्ध-पुरुष मिल जाए तो तुम्हारा कंफ्यूजन और बढ़ेगा, घटेगा नहीं। क्योंकि दूसरा बुद्ध-पुरुष दूसरी भाषा बोलेगा। पहली भाषा भारी पड़ गई थी; केम्बो ही समझ में नहीं आया था। अब और मुसीबत हो गई। क्योंकि यह बिल्कुल विपरीत भाषा है। केम्बो ने दिशा बताई थी, इशारा साफ किया था। इस आदमी ने सब दिशाएं छीन लीं। इशारा और धूमिल हो गया।
केम्बो ने कहा था, "यह रहा।" इस आदमी ने कहा, "कहां नहीं है?" दोनों एक
ही बात कहते हैं। लेकिन यह शिष्य बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा।
दो बुद्धों के बीच अगर शिष्य पड़ जाए तो पिस जाएगा। एक बुद्ध काफी है। ऐसा हुआ। एक यहूदी सिद्ध-पुरुष हुआ--बालसेम। एक शिष्य उसके पास आता था। उस शिष्य के लिए यही रबाई था, यही गुरु था। शिष्य पापी भी था, उपद्रवी भी था, शराबी था, सब तरह के दुराचरण उसमें थे। एक दिन बालसेम को पता चला कि वह शिष्य दूसरे गांव गया है, दूसरे रबाई, दूसरे गुरु के पास। जब वह लौट कर आया, तो बालसेम ने पूछा कि "क्या मैं अकेला काफी नहीं था?" तो शिष्य ने (जो कि

सिर्फ एक छोटा सा गाड़ीवान था।) कहा कि ऐसा है कि अगर कीचड़ बहुत हो, तो एक घोड़े से काम नहीं चलता है। दो घोड़ा जोतना पड़ता है। और कीचड़ बहुत है, वह आप भलीभांति जानते हैं। तो मैंने सोचा कि अच्छा होगा--दो गुरु, दो घोड़े! कीचड़ से आप अकेले शायद न निकाल पाएं, क्योंकि बहुत कीचड़ है। आपका कसूर नहीं है।" बालसेम ने कहा कि "तू ठीक कहता है, लेकिन इस जगत में जहां तू गुरुओं की खोज कर रहा है, यहां अक्सर "घोड़े" विपरीत दिशाओं में खड़े हैं। तो दो घोड़े अगर एक गाड़ी में दो तरफ जोत दिए तो कीचड़ से निकलना कभी संभव ही न हो पाएगा। एक बाहर खींचेगा, दूसरा भीतर खींच लेगा।"
दो बुद्धों से बचना। एक काफी है। क्योंकि कभी-कभी दवाइयां बीमारी से
भी ज्यादा खतरनाक सिद्ध होती हैं। और दो तरह की दवाइयां तो बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं। सभी दवाइयां जहर हैं। और जहर को अमृत में बदलना कला है। लेकिन दो विपरीत जहर ले जाने पर बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाती है।
पृथ्वी पर बहुत बुद्धों के कारण बहुत कठिनाई है। कसूर उनका नहीं है। क्योंकि हर बुद्ध-पुरुष अपने ढंग का है। वह अपने ही ढंग से बोलेगा। अपने ही ढंग से कहेगा। वह तुमसे समझौता भी नहीं कर सकता है। उसने जिस ढंग से जाना है, वह उसी को प्रामाणिक रूप से कह भी सकता है, दूसरे ढंग की बात कर भी नहीं सकता।
केम्बो ने शून्य से जाना, तो शून्य की बात कही। उमोन ने पूर्ण से जाना,
तो पूर्ण की बात कही। तुम्हारी बुद्धि के लिए बड़ी कठिनाई हो जाएगी, क्योंकि ये दो विपरीत बातें हो गईं--तुम्हारे लिए। ये विपरीत नहीं हैं सिद्ध के लिए। लेकिन तुम अगर सिद्ध होते, तो तुम चिंता में ही क्यों पड़ते? तुम अगर सिद्ध होते, तो इन बुद्धों के पास जाते ही क्यों? तुम गए ही इसलिए की तुम अभी स्मरण से भरे हुए नहीं हो। तुम्हारी बुद्धि बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगी।
वह शिष्य उमोन के पास गया और उससे भी वही सवाल पूछा। फिर कहानी नहीं कहती है कि कहीं गया कि नहीं। वह जाने की हालत में ही नहीं रहा होगा। उसका विभ्रम भारी हो गया होगा। शायद उसने यह तलाश ही छोड़ दी होगी कि यह तो पागलपन का मामला है। एक कहता है, "यह रहा"। और एक कहता है, "कहां नहीं है?" इससे ज्यादा विपरीत छोर और क्या होंगे! शायद वह अपनी दुकान पर वापस लौट गया होगा। उसने सोचा होगाः अपनी दुकान करो, अपना धंधा करो।
लेकिन पीछे किसी और ने, जो अध्ययन कर रहा होगा इन घटनाओं का, और शिष्य
के लिए दिए गए दो उत्तर जिसने पढ़े होंगे, उसने ममोन से--एक तीसरे बुद्ध-पुरुष से पूछा कि "इस घटना का राज क्या है?"
अब यह और एक खतरनाक बात है। इसमें तुम एक तीसरे बुद्ध-पुरुष को प्रवेश करवा रहे हो। उसकी व्याख्या तुम्हें हल नहीं करवाएगी। उसकी व्याख्या एक तीसरे सूत्र को भीतर ले आएगी।
ममोन से इस घटना का राज जब किसी ने पूछा, तो उसने कहा, "इसके पहले कि पहला कदम उठे, मंजिल आ जाती है। और इसके पूर्व कि जीभ हिले, वक्तव्य पूरा हो जाता है।" उसने न तो शून्य की तरफ इशारा किया, न पूर्ण की तरफ इशारा किया। उसने कुछ और ही बात कही। उसने दोनों घटनाओं के संबंध में कुछ कहा जो कि अति जटिल है। इससे ज्यादा वक्तव्य नहीं हो सकता है।
उसने कहा कि "इसके पहले कि पहला कदम उठे, मंजिल आ जाती है।" मंजिल इतनी पास है! तुम मार्ग की बकवास ही क्यों कर रहे हो? तुम मार्ग को पूछते ही क्यों हो? तुम पूछोगे गलत सवाल, तो मुश्किल में पड़ोगे।
तुमने पूछा, "मार्ग कहां है?" केम्बो ने शून्य बना दिया; कहा, "यह रहा।" तुम इतने से राजी न हुए। तुमने फिर भी पूछा, "मार्ग कहां है?" उमोन ने कहा, "कहां नहीं है? सब तरफ है।" और अब तुम पूछते हो, इन दोनों का राज क्या है? तो ममोन कह रहा है, "इसके पहले कि पहला कदम उठे, मंजिल आ जाती है।" मार्ग की बात ही बकवास है। पहला कदम उठता नहीं है कि मंजिल आ जाती है। पहले कदम के उठने में मंजिल है। मार्ग तो तब होता है, जब मंजिल में और तुम में फासला हो। तो फिर हजार कदम उठाना पड़े, दस हजार कदम उठाना पड़े, तब मंजिल आए। लेकिन तुमने पहला कदम उठाया नहीं, पहला कदम जमीन को छू भी नहीं पाता कि मंजिल आ जाती है।

यह तो बड़े मजे की बात हो गई। उसने कहा कि "उठना ही, पहले कदम का, मंजिल
का आ जाना है।" तुम दूर नहीं हो, सिर्फ ख्याल की बात है।
साधक ने उठाया कदम कि सिद्ध हो गया। कदम उठाने की वजह से सिद्ध नहीं होता, क्योंकि उतना भी फासला नहीं है। कदम उठाने का ख्याल, संकल्प--बस, काफी है। तुमने तय किया कि ध्यान--कि ध्यान--ध्यान हो जाएगा। और नहीं हो रहा है, तो उसका मतलब है कि तुमने तय ही नहीं किया है, तुम खेल खेल रहे हो अपने साथ।
एक मस्जिद में एक फकीर पूछ रहा था। उसने स्वर्ग के बड़े सुंदर चित्र खींचे और कहा कि "जिन-जिन को स्वर्ग जाना है, वे खड़े हो जाएं।" उसकी वाणी में बल था। आंखों में तेज था--जादू था। करीब-करीब नब्बे प्रतिशत लोग खड़े गए। फिर भी दस प्रतिशत लोग बैठे थे। उसने कहा कि "बैठ जाओ।" फिर उसने नरक की तस्वीर खींची--इतनी भयानक कि लोगों के रोएं खड़े हो गए। लोगों को लगने लगा कि लपटें आस-पास जल रही हैं। लोगों के हृदय धड़कने लगे। और तब उस फकीर ने पूछा कि "अब खड़े हो जाएं--कौन-कौन स्वर्ग में जाना चाहते हैं?" सभी लोग खड़े हो गए, सिर्फ एक आदमी छोड़ कर। उस फकीर ने पूछाः "हद हो गई! तुम्हारा क्या इरादा है? तुम स्वर्ग नहीं जाना चाहते हो?" उसने कहाः "जाना तो चाहता हूं, लेकिन इतनी जल्दी नहीं। और आपकी बातचीत से ऐसा लगता है कि बस बिल्कुल तैयार है, बाहर खड़ी है बस, यहां हां कहा कि वहां बस में बिठाया! इतनी जल्दी नहीं।"
तुम जब भी ध्यान करने जाते हो, तो तुम अपने मन से पूछना; तुम्हारा मन पूरे वक्त कह रहा है कि "इतनी जल्दी नहीं।" अगर तुम ध्यान में असफल होते हो, इसलिए नहीं कि ध्यान कठिन है। ध्यान में असफल होते हो, क्योंकि तुम पहला कदम भी उठाते नहीं। तुम अपने को ही धोखा दे रहे हो। तुम सिर्फ खेल कर रहे हो--पैर उठाने का, उठाते नहीं, क्योंकि तुम्हारा मन भीतर से कह रहा है कि इतनी जल्दी नहीं। अभी संसार में और रस बाकी है। अभी कुछ भोगने को शेष है, अभी कुछ जानने को बाकी है। इतनी जल्दी नहीं। अभी वक्त है। इतनी जल्दी भी क्या है!
तुम अगर सच में ही पहला कदम उठाने को राजी हो, तो ममोन ने ठीक कहा कि रास्ता? सब बकवास है। कोई रास्ता नहीं है। न छड़ी से खींच कर रास्ता बताया जा सकता है, न पंखे से हिला कर रास्ता बताया जा सकता। रास्ता है नहीं पागल! पहला कदम उठा नहीं कि मंजिल आ जाती है। उठा नहीं कि मंजिल आ जाती है। उठने से नहीं आती; बस, उठने का ख्याल काफी है। तुम साधक हो, तुम्हारे विचार के कारण। तुम सिद्ध हो जाते हो, तुम्हारे निर्विचार के कारण। बस, एक हलका सा कदम--वह भी पूरा नहीं उठाते।
"और इसके पहले की जीभ हिले वक्तव्य पूरा हो जाता है।" क्योंकि जीभ के हिलने से जो भी कहा जाएगा, वह सत्य नहीं हो सकता। फिर चाहे कोई छड़ी को हिला कर बताए, उसने भी बाहर के जगत का प्रयोग किया। और भीतर की घटना को बताने के लिए बाहर के जगत का संकेत काम भी नहीं कर सकता। फिर चाहे पंखा हिलाए, उसने भी स्थूल का उपयोग किया--सूक्ष्म को दर्शाने के लिए। कोई स्थूल सूक्ष्म को दर्शा नहीं सकता।
"शब्द बोले जाएं, उसके पहले ही वक्तव्य पूरा हो जाता है।" ममोन कह रहा हैः इसके पहले कि केम्बो की छड़ी घूमी, रास्ता बता दिया गया। और इसके पहले कि ममोन का पंखा भटका--सब दिशाओं को दिखाने, इसके पहले कि पंखा हिला, उसी वक्त समझ लेना था।
वह जो सत्य का वक्तव्य है, वह व्यक्ति के भीतर है, वह उसकी अंतरात्मा है। जब तुम बुद्ध-पुरुष के पास जाओ, तो प्रश्न मत पूछना, उसे देखना। वह जब बोलता नहीं है, तब उसे देखना। क्योंकि वहीं असली वक्तव्य है। जब उसकी छड़ी नहीं हिलती, तभी वह शून्य है। छड़ी भी हिली, तो शून्य में आकृति आ गई। कुछ तो "हो" गया। कंपन हो गया। बात झूठी हो गई।
जब बुद्ध पुरुष के पास जाओ, तो उसके पंखे के लिए रास्ता मत देखना--जब
वह सब दिशाएं दिखाए। क्योंकि जिसे दिखाना पड़े, वह सब दिशाओं में नहीं हो सकता। सब दिशाओं में हम अभिव्यक्त कैसे कर सकते हैं! जिसको हम अभिव्यक्त करेंगे, वह सीमित हो जाएगा। अभिव्यक्ति सीमा है, परिभाषा है।

ममोन ने बात और भी उलझा दी। सच यह है कि जितना सुलझाओ, उतनी बात उलझती है। क्योंकि सुलझाते तुम बुद्धि से हो। और बुद्धि उलझने का उपकरण है। जिस दिन बुद्धि को छोड़ते हो, उस दिन बात सुलझ जाती है। बात सुलझी ही थी।
यह मामला कुछ ऐसा है कि तुम एक रंगीन चश्मा लगा कर जगत को देख रहे हो।
सब तुम्हें नीला-नीला दिखाई पड़ता है। और तुम उसी चश्मे से और गौर से देखने की कोशिश करते हो, ताकि नीला न दिखाई पड़े! तुम जितने ही गौर से उस चश्मे से देखते हो, जगत और नीला दिखाई पड़ता है। "चश्मा" उतारकर तुम नीचे रख दो, जगत का नीलापन खो जाता है।
बुद्धि से जब तक देखोगे, जगत एक समस्या है। जगत समस्या नहीं है। बुद्धि से देखने में सारा उपद्रव है। बुद्धि रंग देती है। और बुद्धि का रंग समस्या है। वह हर चीज में से समस्या उठाती है।
बुद्धि का स्वभाव प्रश्न निर्मित करना है। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे बुद्धि में सवाल लगते हैं, प्रश्न लगते हैं। बुद्धि को हटा दो। सनातन से कभी कोई प्रश्न नहीं रहा है।
कभी कोई प्रश्न था ही नहीं अस्तित्व में। अस्तित्व निष्प्रश्न है। अस्तित्व साफ है, रहस्य खुला है। वहां कुछ भी उलझा नहीं है। तुमने पूछा, कि तुम उलझे।
बुद्ध के पास कोई आया... सवाल लेकर आया था। बुद्ध ने कहाः "अगर तुमने पूछा, तो फिर सुलझाना मुश्किल है। तुम चुप रहो। तुम पूछो ही मत। साल भर रुक जाओ। साल भर बिल्कुल चुप रहो और पूछो मत। फिर साल भर बाद पूछ लेना, फिर मैं जवाब दे दूंगा।"
वह आदमी बहुत जगह भटक चुका था। बहुत जवाब उसने पाए थे। लेकिन जवाब अभी मिला नहीं था। भटकन अभी जारी थी। सुलझाए थे लोगों ने हल, लेकिन समाधान हुआ नहीं था। समस्या कायम थी। उसने सोचाः "चलो, यह भी प्रयोग करके देख लो। साल भर की ही बात है।" उसने कहाः "ठीक, तो साल भर बाद आप जवाब देंगे?" बुद्ध ने कहाः "निश्चित।"
जब यह बात ही चल रही थी, तब एक भिक्षु पास के वृक्ष के नीचे बैठा खिलखिला कर हंसने लगा। उस आदमी ने पूछाः "क्या बात है?" उसने कहाः "धोखे में मत पड़ना। इसी चक्कर में हम पड़ गए थे। कई साल बीत गए, इस आदमी ने जवाब न दिया!" उस आदमी ने बुद्ध से कहाः "यह आदमी क्या कह रहा है?" बुद्ध ने कहाः "इसने पूछा ही कहां साल भर के बाद। शर्त यह थी कि तुम पूछोगे साल भर बाद, हम जवाब देंगे।" उस आदमी ने कहाः "यही चाबी है इनकी। पूछना हो, तो अभी पूछ लो। क्योंकि साल भर अगर चुप रह गया, तो चुप्पी आ जाती है। फिर कोई पूछता ही नहीं।" बुद्ध ने कहाः "मैं अपने वचन पर दृढ़ रहूंगा। जब तू पूछेगा, जवाब दूंगा।"
साल भर बीता। और बुद्ध ने ठीक साल भर के बाद सुबह की भिक्षुओं की सभा में उस भिक्षु को कहाः "तू खड़ा हो जा, और पूछ।" वह हंसने लगा। उसने कहाः "कुछ पूछने को नहीं है। और अब मैं जानता हूं भलीभांति, कि जो भी जानने को था, वह चुप होकर मिल जाता है।"
ममोन ने कहा, "इससे पहले कि पहला कदम उठे, मंजिल आ जाती है। और इससे पूर्व कि जीभ हिले वक्तव्य पूरा हो जाता है।"
गुरु के पास उत्तर की खोज में मत जाना। अगर गए तो तुम गुरु के पास में पहुंच न पाओगे। गुरु के पास चुप्पी की खोज में जाना--कि कैसे मन को हटा कर रख दो, कैसे बिना मन के जीवन को तुम देख सको। वहां कभी कोई प्रश्न नहीं रहा है। वहां कोई उलझन ही नहीं है। वहां सब सुलझा हुआ है। वहां एक रत्ती भर भी कोई जटिलता नहीं है। वहां सब कुछ सीधा, साफ और सरल है।
जैसे सूर्य की किरण कांच के टुकड़े से निकलती है, प्रिज्म से निकलती है, तो सात हिस्सों में बंट जाती है; सात रंग पैदा हो जाते हैं। सूरज की किरण सफेद है--रंगहीन है। ध्यान रहे, सफेद कोई रंग नहीं है। सफेद रंगहीनता है। काला भी कोई रंग नहीं है। काला सभी रंगों का अभाव है। मिश्रण नहीं, सभी रंगों का अभाव। सफेद सभी रंगों का भाव है। दोनों रंग नहीं हैं। काला शून्य की भांति है, सफेद पूर्ण की भांति है। दोनों, रंगों के दो तरफ हैं। बीच में

सात रंगों का इंद्रधनुष है। अगर तुम सातों रंगों को जोर से मिला दो तो सफेद बन जाएगा।
छोटे बच्चों को स्कूलों में समझाने के लिए एक वर्तुलाकार चाक बना देते हैं। उस चाक में सात रंग होते हैं। फिर उस चक्के को जोर से घुमाते हैं। घूमने पर वह चक्का सफेद हो जाता है।
तुम अपने बिजली के पंखे में सात रंग लगा दो, फिर उसे चला दो--पंखा सफेद
हो जाएगा। जब सातों रंग जोर से घूमेंगे और मिल जाएंगे तो सफेद हो जाएंगे। सूरज की किरण सफेद है। सभी रंगों की पूर्णता है वहां। कोई रंग नहीं है वहां। क्योंकि सभी रंग एक दूसरे को काट देते हैं, अभाव रह जाता है।
सूरज की किरण शंकर के ब्रह्म जैसी है। या फिर तुम जब सभी रंगों को अलग
कर लो तो काला बचता है। इसलिए जहां प्रकाश नहीं होता, वहां काला है। काला इसलिए बच रहता है कि प्रकाश न हो तो रंग पैदा नहीं हो सकते। वह भी अभाव है। वह बुद्ध के शून्य जैसा है। इन दोनों के बीच में सात रंगों की दुनिया है-- इंद्रधनुष का फैलाव है। और इंद्रधनुष से ज्यादा झूठी तुमने कोई चीज देखी है? दीखता है आकाश में--एक कोने से दूसरे कोने तक फैला हुआ। और अगर तुम पास जाओ, तो खो जाता है। मुट्ठी बांधो, तो पकड़ में नहीं आता।
इंद्रधनुष भ्रम का प्रतीक हो गया है। तो ज्ञानियों ने कहा कि जो संसार में भटक रहा है, वह वासनाओं के इंद्रधनुष पकड़ने की कोशिश कर रहा है। जितने तुम पास जाते हो, उतने ही वे हट जाते हैं। सदा दिखाई पड़ते हैं--बड़े रंगीन कि अगर घर में ले आएं, तो घर रंगीन हो जाएगा। फूल ही फूल खिल जाएंगे घर में। लेकिन इंद्रधनुष को पकड़ने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि वह है नहीं। वर्षा के दिनों में जब आकाश में पानी की बूंदें लटकी होती हैं वायुमंडल में, तो सूरज की किरण पानी की बूंदों से निकलकर टूट जाती हैं--सात हिस्सों में, इंद्रधनुष निर्मित हो जाता है।
मन एक प्रिज्म है। इस जगत में इतने रंग दिखाई पड़ रहे हैं, वे तुम्हारे
मन के प्रिज्म से टूट कर बन रहे हैं। मन की बूंद से सारा इंद्रधनुष निर्मित हो रहा है। तुम मन को हटाओ--इंद्रधनुष खो जाता है। मन के हटते ही या तो सफेद रह जाता है, वह तुम्हारी व्याख्या है। या काला रह जाता है, वह भी तुम्हारी व्याख्या है।
कुछ ज्ञानियों ने कहाः "परमात्मा प्रकाश की तरह है।" कुछ ज्ञानियों
ने कहाः "परमात्मा महान अंधकार की भांति है।" तुम्हारी पसंद की बात है। तुम अगर थोड़े भयभीत व्यक्ति हो, तो तुम कहोगेः "परमात्मा प्रकाश की भांति है।" अगर तुम थोड़े निर्भीक व्यक्ति हो, तो तुम कहोगेः "परमात्मा गहन अंधकार की भांति है।" चूंकि दुनिया में भयभीत लोग ज्यादा हैं, इसलिए परमात्मा को प्रकाश की भांति मानने वाले लोग ज्यादा हैं। अंधकार की भांति मानने में तुम्हें डर लगेगा। लेकिन दोनों संभावनाएं हैंः शून्य--अंधकार; पूर्ण--प्रकाश।
और तुम्हारे मन के द्वारा अगर तुम देखो तो फिर रंग ही रंग फैल जाते हैं, फिर बड़ी उलझन खड़ी होती है। फिर इंद्रधनुष खड़े हो जाते हैं। मन को हटाते ही सात खो जाते हैं और एक रह जाता है।
यह जो ममोन ने कहा, इसे बहुत गहरे में डूब जाने देना। "इसके पहले कि पहला कदम उठे मंजिल आ जाती है।" तुम्हें कहीं जाना नहीं है; मार्ग पूछो मत। तुम वहीं खड़े हो, जहां मंजिल है। "तुम जैसे हो।"
इससे ज्यादा कठिन बात नहीं हो सकती, क्योंकि हम सब अपनी निंदा में लगे हुए हैं और तुम्हारे धर्म-गुरु तुम्हें निंदा सिखा रहे हैं। वे कह रहे हैंः "तुम पापी हो।" वे कह रहे हैंः "तुम अधर्मी हो, तुम नारकीय जीव हो।" तुम्हारे धर्म-गुरु तुम्हारी जितनी निंदा कर रहे हैं, उतनी निंदा कहीं और नहीं हो रही है।
तुम्हारे मंदिर तुम्हें ग्लानि से भर रहे हैं। तुम्हारे धर्म शास्त्र तुम्हें गहरी आत्म-पीड़ा, आत्म-आलोचना से भर रहे हैं। जब कि सच्चाई बिल्कुल दूसरी है। सच्चाई यह है कि तुम जहां हो, वहां रत्ती भर कुछ करने की जरूरत नहीं है। बस, जरा सा होश, जरा सा स्मरण, कि तुम कौन हो।

कभी रास्ते के किनारे खड़े होकर एक छोटा सा प्रयोग करना। रास्ता चलता है, लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं। तुम उन्हें देख रहे हो और तुम सोचते हो कि तुम उन्हें देख रहे हो। लेकिन तुमने कभी उन्हें देखा? तुम उन्हें देखोगे कैसे! रास्ते के किनारे खड़े हो जाना और सोचना कि वे भी तुम्हें देख रहे हैं, जैसे तुम उन्हें देख रहे हो। लेकिन क्या वे तुम्हें देख सकते हैं? तुम्हारे शरीर को ही देख सकते हैं, तुम्हें तो नहीं; तुम्हारे रूप को देख सकते हैं, तुम्हें तो नहीं। तुम्हारी बाहर की परिधि को देख सकते हैं, तुम्हें तो नहीं। रास्ते के किनारे खड़े होकर देखना कि तुम्हें कोई भी नहीं देख सकता है। तुम अदृश्य हो। और जिसे वे देख रहे हैं, तुम्हारी दृश्य खोल है। तुम्हें कोई भी नहीं देख सकता। ये इतनी आंखें, जो रास्ते से गुजर रही हैं--तुम्हें नहीं देखतीं, सिर्फ परिधि को छूती हैं। तुम अस्पर्शित रह जाते हो।
तुम कौन हो? --यह जो दिखाई नहीं पड़ रहा है, किसी को भी। रास्ते पर खड़े हो, भरे बाजार में और तुम्हारे भीतर जो चेतना है, वह किसी को भी दिखाई नहीं पड़ रही है--अदृश्य है। इसका स्मरण थोड़ा भरने देना कि मैं अदृश्य हूं, मुझे कोई भी नहीं देख रहा है। मुझे कोई देखना भी चाहे तो देख नहीं सकता। और जिसे लोग देख रहे हैं, वह मैं नहीं हूं। वह तो केवल देह है, जो कल जवान थी, आज बूढ़ी है। कल थी, कल नहीं हो जाएगी। ऊपर की खोल है, मेरा वस्त्र है।
"मैं कौन हूं?" उस भरे बाजार में तुम अपने पर ख्याल करना, अचानक जैसे सारा फोकस बदल जाए, जैसे ज्ञान की सारी की सारी प्रक्रिया बदल जाए--शरीर से आत्मा की तरफ तुम्हारा रुख हो जाएगा। एक क्षण को भी अगर ऐसा हुआ, तो उस भरे बाजार में तुम अकेले हो जाओगे। सब खो जाता है। तुम्हीं हो--अत्यंत अकेले। यह जो स्थिति है तुम्हारी--यह स्थिति सिद्ध की है। यह तुम्हें क्षण भर रहेगी, फिर चूक जाओगे तुम। फिर झपकी लग जाएगी। फिर तुम लोगों को देखने लगोगे। फिर तुम समझने लगोगे कि लोग तुम्हें देख रहे हैं। सिद्ध की यह स्थिति सदा बनी रहती है। तुम्हारी यह स्थिति कभी क्षण भर को बनती है और खो जाती है। लेकिन यह स्थिति तुम्हारे भीतर है। तुम भूल जाओ, तो भी उसे खो नहीं सकते।
तुम जैसे हो, वैसे परिपूर्ण हो। कमी तुममें जरा भी नहीं है। सिर्फ स्मरण चाहिए। और इस स्मरण को लाने के लिए जरूरी है कि तुम थोड़ा अपने को हिलाओ और जगाओ। ध्यान के प्रयोग जागरण के प्रयोग हैं--होश, अवेयरनेस के प्रयोग हैं।
तुम बाजार में यह प्रयोग करना। बाजार से अच्छी जगह तुम हिमालय पर भी न
पा सकोगे। बाजार में तुम दूसरों पर ध्यान रखना और देखना कि वे तुम्हें देख रहे हैं और फिर भी कोई तुम्हें नहीं देख रहा है। कोई तुम्हें देख नहीं सकता। तुम अदृश्य हो। यहां, इस बीच बाजार में खड़े बिल्कुल अकेले हो, इस भीड़ के बीच अत्यंत एकाकी हो। धीरे-धीरे भीड़ दूर होती जाएगी। जैसे सपना हो गई। जैसे-जैसे तुम अपने करीब आओगे, भीड़ दूर होती जाएगी। कई बार तुम्हें ऐसा लगेगा कि भीड़ करीब आई, दूर हुई; करीब आई, दूर हुई। कई बार बाजार की आवाजें बहुत दूर सुनाई पड़ने लगेंगी, जैसे कहीं किसी दूसरे गांव में! जब तुम अपने करीब हो जाओगे, बाजार दूर हो जाएगा। जब तुम अपने से दूर होओगे, बाजार करीब आ जाएगा। और पूरे समय तुम्हारा फोकस बदलेगा। एक क्षण को भी अगर--जिसको कबीर ने कहा है कि ऐसी तारी लागी--अगर एक क्षण को भी वहां भीतर जागना हो जाए, तो बाहर तुम "सो" जाओगे। इसलिए कबीर ने कहा है--तारी। क्योंकि तुम बाहर जगे हुए हो, भीतर सोए हो। जब भीतर जागोगे, बाहर सो जाओगे।
जैसे ही भीतर की तारी लगी तुम सिद्ध हो। जैसे ही तुम बाहर जागे और भीतर सो गए, तुम साधक हो।
साधक और सिद्ध में जो फासला है, वह, बस इतना ही है। तुम्हारी आंखें जब बाहर को देखती हैं, तब तुम साधक हो; जब भीतर को देखती हैं, तब तुम सिद्ध हो।
"पहला कदम उठता नहीं है कि मंजिल आ जाती है। जीभ हिलती नहीं कि वक्तव्य पूरा हो जाता है।"

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
पांचवां प्रवचन

उन्मुक्त जिज्ञासा, खुला हृदय और जीवन-रहस्य

मरियम का बेटा जीसस एक दिन, अपने छुटपन में, तालाब के किनारे बैठ कर मिट्टी के पक्षी बना रहा था। दूसरे बच्चे, जो ऐसा नहीं कर सके, ईर्ष्या से भर कर अपने बड़े-बूढ़ों के पास जीसस की शिकायत ले गए। उस दिन शनिवार था; इसलिए बूढ़ों ने कहाः "सॅबथ के दिन ऐसा नहीं होने दिया जा सकता।"
फिर बड़े-बूढ़े तालाब पर पहुंच गए और उन्होंने जीसस से अपने पक्षी दिखाने की मांग की। जीसस ने अपने बनाए पक्षियों की ओर इशारा किया, और वे पक्षी उड़ गए।
बुजुर्गों में से एक बोलाः "उड़ने वाले पक्षी कोई कैसे बना सकता है; इसलिए सॅबथ का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है।"
दूसरे ने कहाः "मैं यह कला सीखना चाहता हूं।"
और तीसरा बोलाः "यह कोई कला नहीं, सिर्फ धोखा है।"
फिर एक दिन एक लड़का जोसेफ बढ़ई के कारखाने में बैठा था। जब लकड़ी का एक तख्त छोटा पड़ गया, तब उसने उसे तान कर लम्बा कर दिया।
यह बात भी जब लोगों ने सुनी, तब कुछ ने कहाः "यह चमत्कार है, इसलिए यह लड़का संत होगा।"
कुछ दूसरों ने कहाः "इस पर हमें भरोसा नहीं आता, इसलिए दुबारा, तिबारा करो।"
और तीसरा दल बोलाः "यह कभी सच नहीं हो सकता; इस बात को किताब से अलग रखो।"
ओशो, कृपापूर्वक इस सूफी कथा का मर्म बताएं।

कुछ बातें, कथा में प्रवेश के पहले समझ लें।
एकः यहूदी मानते हैं कि परमात्मा ने जगत का निर्माण किया--छह दिनों में और सातवें दिन फिर उसने विश्राम किया। सातवां दिन पवित्र-दिन है, उस दिन कोई काम न करे। जब परमात्मा ने स्वयं काम नहीं किया, तो कोई भी व्यक्ति उस सातवें दिन काम न करे।
जैसा कि सभी नियम जड़ हो जाते हैं, यह नियम भी जड़ हो गया। "सातवें दिन काम न किया जाए", यह बात अंधा जैसे पकड़ ले एक लीक को और फिर उसी पर चलता रहे, क्योंकि उसके साथ अपनी कोई आंख नहीं है--ऐसा यहूदियों ने पकड़ ली यह बात कि सातवें दिन जो काम करता है, वह पापी है; वह दंडित किया जाए। लेकिन इस सातवें दिन का अर्थ बड़ा बहुमूल्य था। और जीसस ने बाद में कहाः "सॅबथ का दिन--यह पवित्र दिन आदमी के लिए बनाया गया है, आदमी सॅबथ के दिन के लिए नहीं है।" नियम मनुष्य के लिए हैं, मनुष्य नियम के लिए नहीं। लेकिन अक्सर ऐसा होता कि नियम मनुष्य से भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। मनुष्य का बलिदान चाहे हो जाए, लेकिन नियम पूरा होना चाहिए!
नियम बनते हैं--मनुष्य की सेवा के लिए, लेकिन जल्दी ही मनुष्य की छाती
पर सवार हो जाते हैं और मनुष्य उनका सेवक हो जाता है। जब भी ऐसा हो, तब नियम आत्मघाती हो जाते हैं।
जीसस ने सॅबथ के नियम को तोड़ा, क्योंकि नियम आदमी की छाती पर सवार हो गया था।
जो लोग भी वस्तुतः धार्मिक हैं, वे नियम का पालन नहीं करते। नियम ही उनका अनुसरण करता है; अधार्मिक व्यक्ति नियम का पालन करता है; नियम उसका अनुसरण नहीं करता है। वह किसी चीज को पूरा करता है, क्योंकि ऐसा करना जरूरी है। उसका आविर्भाव उसकी अंतस्चेतना से नहीं होता है। नियम बाहर ही बाहर होते हैं।
जीसस ने कहा है कि अगर धार्मिक होना हो, तो तथाकथित धार्मिक आदमी की सच्चाई से तुम्हारी सच्चाई को गहरा होना पड़ेगा। अगर धार्मिक होना हो, तो तथाकथित धार्मिक आदमी के आचरण से तुम्हारे आचरण को ज्यादा गहरा होना पड़ेगा।

तथाकथित धार्मिक आदमी नियम को मानता है--ऊपर-ऊपर। लेकिन भीतर तो नियम
का विरोध चलता है।
सॅबथ का दिन आ जाए, सातवां दिन आ जाए, पवित्र दिन आ जाए, तुम भला काम बंद कर दो, तुम्हारा मन तो काम बंद नहीं करेगा। शायद उस दिन और भी ज्यादा काम करेगा। रोज तो तुम्हारी शक्ति काम में लग जाती थी, उस दिन तुम्हारी सारी शक्ति मन में भटकेगी। तुम न मालूम कितने काम की योजनाएं बनाओगे, न मालूम कितने सपने देखोगे! तुम प्रतीक्षा कर रहे हो कल की, कि कब काम का दिन आ जाए और तुम्हारी वासनाएं काम में संलग्न हों।
तथाकथित धार्मिक आदमी ऊपर-ऊपर से धार्मिक होता है। वास्तविक धार्मिक आदमी भीतर से धार्मिक होता है।
तथाकथित धार्मिक यहूदियों ने इतना नियम मान लिया, कि "सातवें दिन काम नहीं करना है। जो काम करे, वह पकड़ा जाए, दंडित किया जाए।" लेकिन "सातवें दिन परमात्मा ने विश्राम किया" इसका भीतरी अर्थ क्या है? इसका भीतरी अर्थ समझे बिना नियम व्यर्थ होगा। भीतरी अर्थ है कि काम की निष्पत्ति है-- निष्काम में।
छह दिन काम किया, वह तैयारी थी; सातवें दिन विश्राम किया, वह पूर्णाहुति है। काम तभी पूरा है जब निष्काम फलित हो। तुम जीवन भर दौड़े-- काम किया, लेकिन अगर तुम "न-किए" पर न पहुंचे, अगर तुम्हारी दौड़ ठहरने के बिंदु पर न आई, तो तुम फल के बिना ही रह गए। तुम्हारी सारी यात्रा निष्फल हुई।
काम साधन है, निष्कामता साध्य है। हम सब इतने कर्म में लीन हैं, ताकि
हम अकर्म को उपलब्ध हो सकें; तो ही हमारा कर्म अर्थपूर्ण हुआ।
यह बड़ी उलटी बात हैः काम इसलिए, ताकि मनुष्य निष्काम हो सके। वासना की दौड़ इसलिए, ताकि निर्वासना आ सके। दौड़ इसलिए, ताकि रुकना हो सके। श्रम इसलिए, ताकि विश्राम हो सके। विपरीत लक्ष्य है और वही पूर्णाहुति है। तुम चलते ही इसलिए हो, ताकि पहुंच जाओ। चलने के लिए तो कोई नहीं चलता है। और जो चलने के लिए चलता रहता है, वह पागल है। पहुंचने के लिए आदमी चलता है। और पहुंचने का अर्थ है--वहां रुकना हो जाए और वहां चलना समाप्त हो जाए। साध्य जब फलित होगा, तब साधन विसर्जित हो जाएंगे।
परमात्मा ने छह दिन में जगत को निर्मित किया, ताकि सातवां दिन--पवित्र दिन फलित हो सके। उस दिन फिर कोई काम नहीं है।
तुम्हारा जीवन भी सिर्फ छह दिन में पूरा न हो जाए; सातवें दिन तक पहुंचे। तुम श्रम करो, लेकिन तुम्हारे सारे श्रम का सार अंत में विश्राम बन जाए। तुम्हारा मन सोचे, लेकिन सोचने का यह अंतिम फल हो कि तुम निर्विचार में, अ-सोच में, ध्यान में उतर जाओ।
कर्म संसार है, अकर्म मोक्ष है। छह दिन परमात्मा ने संसार निर्मित किया, सातवें दिन मोक्ष में प्रविष्ट हो गया।
तो सातवें दिन काम बंद कर देना काफी नहीं है। सातवें दिन निष्कामता फलित होनी चाहिए। तुम छह दिन बाजार में हो, दौड़-धूप में हो--यह काम है, वह काम है, बड़ा जाल है, बड़ा प्रपंच है। सातवें दिन सारे प्रपंच के बाहर हो। न कोई दुकान है तुम्हारी, न कोई संसार है, न कोई पत्नी है, न कोई पिता है, न कोई मां है। सारा प्रपंच शांत है। तुम बाहर हो। यह पवित्र दिन है।
और अगर यह पवित्र दिन फलित हो सके, तो तुम छह दिन भी संसार में होकर संसार के बाहर ही रहोगे। क्योंकि यह सातवां दिन जिसको समझ में आ गया, वह कर्म करते हुए भी अपने को अकर्ता मानेगा। वह दौड़ेगा, तो भी समझेगाः "मैं ठहरा हुआ हूं।" श्रम भी करेगा, तो भी तनाव न लेगा। परिवार में होगा, फिर भी बाहर होगा; संसार में होगा, लेकिन संसार उसके भीतर नहीं होगा। यह तो भीतर की बात होगी। बाहर की बात कुल इतनी होगी कि काम-धाम छोड़ कर सातवें दिन बैठे रहो।
दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि जिस व्यक्ति को भी निष्कामता का सार समझ में आ गया उसके स्पर्श में जादू है। जो भी निष्काम हो गया, वह मृतक को भी छुएगा, तो मृतक जीवित हो जाएगा। मिट्टी के बनाए हुए पक्षी भी उड़

जाएंगे। और जो कामना से जिएगा, वह जीवित को भी छुएगा, तो जीवित भी मृत हो जाएगा। जीवित पक्षी भी मिट्टी के ढेले होकर गिर जाएंगे।
कथा का तो सार ही शब्दों में नहीं होता। शब्द तो इशारे हैं। "तुम जो भी छूते हो, वह मर जाता है"--तुमने इस पर ध्यान दिया हो, तो जीसस की कहानी समझ में आ जाएगी।
तुम जहां भी छूते हो, वहीं मृत्यु फलित हो जाती है। तुम्हारे हाथ में
जो भी आया--मरा। तुम्हारे स्पर्श से जीवित व्यक्ति वस्तु बन जाते हैं। एक स्त्री के तुम प्रेम में पड़े। और स्त्री वस्तु बननी शुरू हो गई। आज नहीं कल वह पत्नी होकर घर का एकशृंगार हो जाएगी।
तुम जिसे भी छूते हो, जहां भी छूते हो, व्यक्तितत्व खो जाता है, प्राण सिकुड़ जाते हैं; पंख बंद हो जाते हैं। हाथ में पत्थर रह जाते हैं। प्राण खो जाता है। क्योंकि प्राण तो वहीं हो सकता है, जहां निष्कामता हो। कामना जहर है--मारती है। निष्कामता अमृत है--जिलाती है।
निष्काम व्यक्ति को करीब पाकर तुम पाओगे कि तुम और भी जीवित हो उठे हो। तुम्हारी जीवन-ज्वाला धधक कर जल उठी है। बुद्ध के पास तुम्हारे अंगार की सारी राख झड़ जाएगी। अज्ञानियों के पास तुम्हारा अंगारा, तुम्हारा अज्ञान, तुम्हारे जीवन का अंगारा और भी राख से दब जाएगा। यह एक इशारा ख्याल में लें।
दूसरा इशाराः जब भी ऐसा फलित होता है कि कोई निष्कामता को उपलब्ध व्यक्ति कुछ करता है, तो हम उसके कृत्य को देख पाते हैं--जो वह कर रहा है। हम उसे नहीं देख पाते--जो वह है। इस कहानी में उस तरफ भी इशारा है। हम कृत्य के पार देख ही नहीं पाते हैं। हमारी आंखें अंधी हैं। बस, हम कर्म पर रुक जाते हैं; भीतर जो है, उसे नहीं देख पाते हैं। और जब तक हम निष्काम व्यक्ति को न देखें, तब तक हम उसे पहचान न पाएंगे। इसलिए जीसस को सूली लगी। सूली लगना सकारण है।
लोगों ने कर्म देखे, लेकिन कर्म को "देखना" बड़ा कठिन है, उसकी व्याख्या मुश्किल है।
कोई तो व्याख्या करेगा कि ये पक्षी जो उड़ गए, जीसस ने बनाए ही न होंगे। क्योंकि उड़ने वाले पक्षी कोई कैसे बना सकता है। कोई व्याख्या करेगा कि धोखा हैः हमें भ्रम में डाला जा रहा है। जो हो नहीं सकता, उसका जीसस दावा कर रहे हैं। कोई कहेगाः इस तरह की घटनाओं को किताब के बाहर रखना। क्योंकि इस तरह की घटनाएं या तो घटी ही नहीं या अगर घटी हों, तो उनके पीछे कोई जालसाजी थी--धोखा था। और अगर वस्तुतः घटी हैं--तो वे इतनी रहस्यपूर्ण हैं कि उन्हें लिखना खतरनाक है। लोग उनसे भटकेंगे। किताबें तो लोगों का रास्ता साफ करने के लिए हैं। किताबें तो लोगों को रहस्य में ले जाने के लिए नहीं हैं। किताबें तो व्याख्या देने के लिए हैं।
अब हम इस कहानी में प्रवेश करें और एक-एक चरण को समझने की कोशिश करें।
यह एक सूफी पैरेबल है, एक सूफी बोध-प्रसंग है:
मरियम का बेटा जीसस एक दिन, अपने छुटपन में, तालाब के किनारे बैठ कर मिट्टी के पक्षी बना रहा था। दूसरे बच्चे, जो ऐसा नहीं कर सके, ईर्ष्या से भर कर अपने बड़े-बूढ़ों के पास जीसस की शिकायत लेकर गए।
यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है। अक्सर तुम दूसरे की निंदा इसलिए नहीं करते हो कि वह गलत कर रहा है। अक्सर तुम दूसरे की निंदा इसलिए करते हो कि तुम ईर्ष्या से भर गए हो। तुम नहीं कर पा रहे हो और वह कर रहा है। अपने मन में झांक कर देखना कि तुम्हारी निंदा में, तुम्हारी शिकायत में--तुम्हारी ईर्ष्या तो नहीं है!
एक आदमी शराब पी रहा है। एक आदमी वेश्या के घर जा रहा है। तुम मंदिर की तरफ जा रहे हो। तुम्हारे मन में बड़ी घृणा उठती है; बड़ी निंदा उठती है। लेकिन सच में ही क्या तुम्हारी निंदा इसलिए है कि वह आदमी गलत कर रहा है? या तुम्हारे मन में बड़ी ईर्ष्या है कि तुम वेश्या के घर नहीं जा रहे हो, तुम शराब नहीं पी रहे हो, तुम कमजोर हो, तुम डरे हुए हो, तुम मंदिर की तरफ जा रहे हो।

मंदिरों में बैठे हुए लोग दूसरों के पापों की निंदा कर रहे हैं। उस निंदा में गहरी ईर्ष्या है। क्योंकि वास्तविक अगर कोई धार्मिक हो जाए, तो निंदा विलीन हो जाती है। उसके मन में कोई शिकायत नहीं रह जाती।
तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों के पास भी तुम सिवाय निंदा के और शिकायत के और कुछ भी न पाओगे। तुम उनके सामने खड़े होओ, तो वे तुम्हें इस भांति देखते हैं कि तुम महापापी हो। उनकी आंखों में तुम्हारे प्रति निंदा के सिवाय कोई भी भाव नहीं होता है। "तुम घृणित हो", यह निंदा बताती है कि उनके मन में तुमसे ईर्ष्या है। चाहा तो उन्होंने भी था कि तुम जैसे महलों में वे भी होते। चाहा तो उन्होंने भी था कि तुम जैसे सुंदर स्त्रियों को भोगते हो, उन्होंने भी भोगा होता। चाहा तो उन्होंने भी था कि तुम्हारा जैसा संसार का विस्तार है, उनका भी होता। लेकिन वे कमजोर सिद्ध हुए। वे इस दौड़ में टिक न पाए। यह दौड़ कठिन थी। वे इसके योग्य न थे। वे इस दौड़ के बाहर हो गए। और ध्यान रहे, जो व्यक्ति भी दौड़ के बाहर हो जाता है--वह सहज ही आलोचक हो जाता है।
साहित्यकारों का अनुभव है कि साहित्य के क्षेत्र में वे ही लोग आलोचक
हो जाते हैं, जो साहित्य का निर्माण नहीं कर पाते। चाहा तो था उन्होंने भी कि कालिदास हो जाएं, कि शेक्सपीयर हो जाएं। वह उनसे नहीं हो सका। कालिदास होना कुछ आसान नहीं है। शेक्सपीयर होना कुछ आसान नहीं हैः तब एक ही उपाय है कि वे रास्ते के नीचे उतर जाएं और जो शेक्सपीयर हो सकते हैं, उनकी आलोचना और शिकायत में लग जाएं। यह बहुत आसान है। आलोचक होने से सस्ता कृत्य जगत में दूसरा नहीं है। चेखोव की एक छोटी सी कहानी है। एक गांव में एक महामूर्ख था। सभी उस पर हंसते, सभी उसकी मजाक करते। फिर गांव में एक ज्ञानी आया। उस महामूर्ख ने कहा, "मुझे भी कुछ रास्ता बताओ। मैं अत्यंत पीड़ित हूं। जहां जाता हूं, वहीं निंदा; जो देखता है, वही हंसता है।" उस ज्ञानी ने कहा, "इसमें क्या अड़चन है? छोटी सी बात है। कान में समझ ले। कल से शुरू कर दे। पंद्रह दिन के भीतर तू ज्ञानी हो जाएगा।" और पंद्रह दिन के भीतर वह महामूर्ख ज्ञानी हो गया! गांव में लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। जो भी देखता, वही सहम जाता और कहता कि "महाज्ञानी है!"
क्या सूत्र दिया उस ज्ञानी ने, उस महामूर्ख को? उसने कहा, "तू एक काम कर। बस, तू आलोचना करना सीख जा। कहीं लोग कह रहे हों कि "देखो, चांद कितना सुंदर है!" तू जोर से चिल्ला कर कह कि "क्या है सौंदर्य इसमें, यह सिद्ध करो। साधारण चांद निकला है; बकवास कर रहे हो? रोज निकलता है। सौंदर्य कहां है? परिभाषा क्या है सौंदर्य की? लोग सहम जाएंगे, क्योंकि कौन परिभाषा कर पाया है सौंदर्य की। सिद्ध करना मुश्किल है। लोग किसी कविता की प्रशंसा करें, तो तू कहना कि यह तुकबंदी है। इसमें काव्य कहां है? कौन सिद्ध कर सकता है कि काव्य है। लोग किसी चित्र की प्रशंसा करते हों, तो कहना कि यह क्या है? बच्चों का खेल है, रंग पोत दिया है। दो पैसा इसका मूल्य नहीं है। इसमें कौन सी महानता है? बस, तू कुछ करना मत। क्योंकि किया तो फंसा। तू सिर्फ आलोचना करना, निंदा करना। जहां भी कोई किसी चीज को श्रेष्ठ कहे, तू उसे निकृष्ट कहना। लोग सहम जाएंगे। जल्दी ही स्वीकृत हो जाएगा।"
निश्चित ऐसा ही हुआ। दो सप्ताह के भीतर गांव में उस महामूर्ख को लोग ज्ञानी कहने लगे! लोग कहने लगे कि "उसकी समझ बड़ी गहरी है। जबकि हम सब साधारण जन कह रहे थे कि यह कविता है; उसने कहा कि तुकबंदी है। और कोई भी सिद्ध न कर पाया कि कविता है! जब हम कह रहे थे कि चांद सुंदर है, तो उसने कहा कि कौन कहता हैः चांद सुंदर है? कहां है सौंदर्य इसमें? कोई भी सिद्ध न कर पाया कि सौंदर्य कहां है!" वह आदमी एक-छत्र राज्य करने लगा।
अक्सर कमजोर आलोचक बन जाते हैं। जिनके पास शक्ति है, वे स्रष्टा होते हैं; जो नपुंसक हैं, वे निंदा से भर जाते हैं। जहां भी तुम निंदा पाओ, समझ लेना कि कोई गहरी नपुंसकता निंदा के पीछे छिपी है।
और भी बच्चे पक्षी तो बनाना चाहते थे, लेकिन उनसे बन नहीं रहे थे। कोई उन्हें परेशानी न थी कि सॅबथ के दिन, पवित्र दिन पर जीसस पक्षी न बनाए मिट्टी के। वे भी बनाना चाहते थे लेकिन पक्षी उभर नहीं रहे थे, बन नहीं रहे थे। और जीसस के पक्षी जीवंत मालूम हो रहे थे।

ईर्ष्या से भरे उन्होंने बड़े-बूढ़ों के पास जाकर कहा कि "सॅबथ के दिन, पवित्र दिन पर जीसस काम में लगा है--पक्षी बना रहा है।" पहले तो यह बात ही गलत थी। क्योंकि खेल काम नहीं है। काम का अर्थ ही हैः जिसमें फल की आकांक्षा हो।
जीसस अगर पक्षी भी बना रहा था मिट्टी के, तो वह खेल था, वह काम नहीं था। उसमें कोई फल की आकांक्षा न थी। ऊपर से देखने पर तो वह भी काम है। क्योंकि वह काम में लगा है। लेकिन भीतर से देखने पर वह खेल है--काम नहीं है।
तुम दफ्तर जा रहे हो। मैं घूमने निकला हूं--उसी रास्ते पर। हम दोनों
के पैर चलते हैं। हम दोनों यात्रा कर रहे हैं। बाहर से देखने वाला कहेगाः "दोनों चल रहे हैं।" लेकिन मैं तुमसे कहूंगाः "तुम चल रहे हो, मैं नहीं चल रहा हूं। मैं सिर्फ घूम रहा हूं। मैं सिर्फ सुबह के घूमने के लिए निकला हूं। मुझे कहीं पहुंचना नहीं है। मैं कहीं से भी वापस लौट सकता हूं। मैं कहीं भी रुक सकता हूं। मेरी कोई मंजिल नहीं है। लेकिन तुम कहीं से वापस नहीं लौट सकते। तुम कहीं ठहर नहीं सकते। तुम्हें दफ्तर तक पहुंचना है।" ऊपर से देखने पर दोनों कृत्य एक जैसे हैं। भीतर से देखने पर एक "खेल" है, एक "काम" है।
काम में और खेल में बड़ा फर्क है। हिंदुओं ने कहा है कि परमात्मा ने जगत को "बनाया" नहीं--यह उसका "खेल" है। ईसाइयों की कहानी में छह दिन परमात्मा ने जगत को बनाया, सातवें दिन विश्राम किया। हिंदुओं का परमात्मा सदा से विश्राम में है। क्योंकि खेल है; थकान नहीं लाता।
तुमने अनुभव किया है! दिन भर का थका हुआ आदमी शाम को घर लौटता है, फिर कहता हैः "बैडमिंटन खेलने जा रहा हूं, ताकि थकान मिट जाए।" बड़ी हैरानी की बात है। यह दिन भर का थका हुआ है और बैडमिंटन खेलेगा तो और थकेगा! लेकिन खेल थकाता नहीं; खेल जिलाता है। खेल शक्ति को वापस लौटा देता है। खेल पुनरुज्जीवन है।
ईसाइयों का परमात्मा छह दिन के बाद निश्चित थक गया होगा, क्योंकि छह दिन का काम परमात्मा तक को थका देता है, तुम्हें तो क्या नहीं थकाएगा! तुम्हें तो थका ही देगा। काम थकाता है। लेकिन हिंदुओं का परमात्मा अभी तक नहीं थका; कभी नहीं थकेगा। थकने का कोई कारण नहीं है। इसलिए हिंदुओं की कथाओं में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि उसने विश्राम किया। वह विश्राम कर ही रहा है। क्योंकि खेल कभी थकाता नहीं है।
हिंदू कहते हैंः यह जगत परमात्मा की लीला है। लेकिन सात दिन में एक दिन भी तुम लीला को उपलब्ध नहीं हो सकते, तो सातों दिन कैसे उपलब्ध होओगे? जीसस "खेल" रहा था। बच्चों ने गलत खबर दी और बूढ़ों ने भी गलत खबर मान ली। क्योंकि हमारे बच्चों और बूढ़ों में बहुत फर्क नहीं है। उनके पास बुद्धि एक जैसी है। सबके पास बचकानी बुद्धि है। अन्यथा वे कहते कि "खेल कोई काम नहीं है। जीसस खेल रहा है--खेलने दो।"
बच्चे काम करते ही नहीं, बच्चे तो खेलते हैं। इसलिए बच्चों पर कोई नियम लागू नहीं हो सकता। संतों पर भी कोई नियम लागू नहीं हो सकता, क्योंकि वे पुनः बच्चे हो जाते हैं। नियम तो बीच में लागू है; नियम तो समझदारों पर लागू है। बच्चे नासमझ हैं। संत भी पुनः नासमझ हो जाते हैं। उन पर नियम नहीं लागू होता।
अदालतें तक बच्चों को छोड़ देती हैं। क्योंकि बच्चा है, नासमझ है; अभी बालिग नहीं हुआ है। बालिग हुए कि मुसीबत शुरू होती है। बालिग होने में ही मुसीबत है; क्योंकि अहंकार मजबूत हो गया, पक गया। अब तुम खेल नहीं सकते, अब तुम काम ही करते हो।
तुम अगर खेलते हो, तो भी काम है। तुमने देखा हैः लोग ताश खेलते हैं, तो तलवारें निकल आती हैं! शतरंज खेलते हैं, तो कुश्तियां हो जाती हैं। वे खेल भी खेल नहीं हैं! वे भी काम हैं। उनमें भी कुछ पीछे पाने की आकांक्षा है-- हार-जीत!
लेकिन एक बच्चा--जीसस मिट्टी के खिलौने बना रहा है। कैसी हार, कैसी जीत! कोई बाजार में बेचने भी नहीं जाने वाला है कि उससे कोई धन मिलेगा!

थोड़ी देर बाद उन खिलौनों को यहीं छोड़ कर घर चला जाएगा, पीछे लौट कर भी नहीं देखेगा।
बुद्ध ने कहा है कि राह से गुजरते वक्त मैंने देखा कि नदी के तट पर कुछ बच्चे खेल रहे हैं। वे रेत के घर बना रहे हैं। बड़ा झगड़ा भी हो रहा है, क्योंकि किसी के धक्के से, किसी का रेत का घर गिर गया है। बड़ा विवाद छिड़ा हुआ है। बच्चे बड़े नाराज हैं। फिर सांझ हो गयी। किनारे से कोई चिल्लाया कि भागो, तुम्हारी माताएं तुम्हें याद कर रही हैं। वे बच्चे, जो रेत के घर बना रहे थे--बड़े श्रम से और बड़ी लगन से, और जिनके कारण बड़ा विवाद और संघर्ष था, वे अपने ही घरों पर कूदने लगे। उन्होंने रेत में वापस रेत मिला दी। हंसते हुए घर वापस लौट गए। बुद्ध ने कहाः "ऐसा ही संन्यासी है।"
जहां संसारी बड़े घर बना रहे हैं, बड़े मोहग्रस्त--श्रम में लीन हैं, विवाद कर रहे हैं, अदालतों में मुकदमे लड़ रहे हैं, दावे कर रहे हैं--वहां संन्यासी को घर की याद आ जाती है कि मां बुला रही है। मूलस्रोत का स्मरण आ जाता है। सांझ हो गयी। और अपने ही घरों को अपने ही हाथ से रौंदकर हंसता हुआ, नाचता हुआ वापस लौट जाता है।
जीसस खेल खेल रहे थे। बच्चों ने ईर्ष्या के कारण शिकायत की। बूढ़ों ने अज्ञान के कारण शिकायत स्वीकार कर ली। बच्चों और बूढ़ों में बहुत फर्क नहीं मालूम पड़ता। दोनों के पास बुद्धि छोटी है, ओछी है। अन्यथा बूढ़े कहतेः "खेल खेल है। खेल पर नियंत्रण लागू नहीं होते। बच्चे खेल सकते हैं। बच्चों पर नियम नहीं लागू होते।"
हिंदुओं के सूत्र साफ हैं। हिंदुओं ने संन्यासी को नियम के बाहर रखा है। हिंदू कहते हैंः संन्यासी पर समाज का कोई नियम लागू नहीं है। क्योंकि जो बच्चों जैसा सरल ही हो गया, वह नियम के बाहर हो गया।
तुम्हें पता है हिंदुओं के चार वर्ण हैं। संन्यासी का कोई वर्ण नहीं है। शूद्र भी संन्यासी हो जाए, ब्राह्मण भी संन्यासी हो जाए, तो संन्यासी होते ही वर्ण समाप्त हो जाते हैं, क्योंकि वर्ण समाज के नियम थे। वह काम की दुनिया की बात थी। जब कोई आदमी संन्यस्त हो गया, फिर कैसा काम! लेकिन तुम्हारी बुद्धि में चलता रहता है। कठिनाई बनी रहती है।
विवेकानंद शूद्र हैं। कायस्थ हैं। शूद्र और कायस्थ शब्द में बड़ा गहरा संबंध है। कायस्थ का मतलब हैः जो काया में स्थित है, जो शरीर से बंधा है। इसलिए कायस्थ को शूद्र में गिना गया है। विवेकानंद कायस्थ हैं। लेकिन संन्यस्त होते ही ब्राह्मण उनके चरण छुए। संन्यस्त होते ही बात समाप्त हो गयी। वे कौन थे, यह सवाल न रहा।
रामकृष्ण ब्राह्मण हैं--संन्यास के पहले--विवेकानंद शूद्र हैं-- संन्यास के पहले। संन्यास के बाद न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र। संन्यासी नियम के बाहर है। उस पर कोई नियम लागू नहीं होते। बच्चे भी नियम के बाहर हैं। सिर्फ अहंकार नियम के भीतर आता है। और अहंकार को नियम के भीतर लाना पड़ेगा, क्योंकि वह उपद्रव की जड़ है। अहंकार पर पुलिस तैनात करनी ही होगी; अदालतें बनानी ही होंगी। क्योंकि अहंकार खतरनाक विष है, वह विष-बीज है।
लेकिन बूढ़ों ने भी स्वीकार कर ली--बच्चों की शिकायत। फिर बड़े-बूढ़े तालाब पर गए और उन्होंने जीसस से अपने पक्षी दिखाने की मांग की। जीसस ने अपने बनाए पक्षियों की ओर इशारा किया और वे पक्षी उड़ गए। "जीसस जैसे व्यक्ति मिट्टी को भी छू दें तो प्राण आ जाता है।" बस, कहानी का अर्थ इतना ही है। जीसस जैसे व्यक्ति खेल-खेल में भी पक्षी बना लें, तो वैसा पक्षी उड़ जाता है। तुम खेल-खेल में पक्षी को पिंजड़े में बंद कर दोगे।
कई लोग तोतों के प्रेमी हैं, और उन्हें पिंजड़े में बंद किए हुए हैं। खेल-खेल में उनकी जान निकली जा रही है। तुम्हारे लिए खेल है। तुमने उनका आकाश छीन लिया है। खेल तुम्हारा बहुत दुष्टता से भरा है।
अगर आदमी अज्ञानी है, तो उसके खेल में भी हिंसा होगी। अगर आदमी अज्ञानी है, तो उसके खेल से भी युद्ध निकलेगा। अगर आदमी अज्ञानी है, तो उसके खेल से भी मौत फलित होगी। और आदमी अगर ज्ञानी है, तो उसके मिट्टी से बनाए हुए पक्षी भी आकाश में उड़ जाएंगे।

यह बात मीठी है, समझ लेने जैसी है। इसको शाब्दिक अर्थों में मत समझना
कि पक्षी सच में उड़ गए। मिट्टी के पक्षी कैसे उड़ेंगे! असली पक्षी तक उड़ने में इतनी मुसीबत अनुभव करते हैं! तुम उड़ना चाहते हो, नहीं उड़ पाते। मिट्टी के पक्षी, तो कैसे उड़ेंगे? लेकिन अर्थ साफ है कि जीसस जैसे व्यक्ति जहां भी चलते हैं, जहां भी उठते हैं, बैठते हैं, वहीं जीवन को गति मिलती है। वहीं सोए हुए प्राण जग उठते हैं।
और ये मिट्टी के पक्षी ही जीसस के छूने से नहीं उड़े थे और पक्षी भी उड़े--जिनको हम आदमी कहते हैं, उनमें से भी बहुत "पक्षी" उड़े। वे भी मिट्टी थे। वे भी जीसस को मिलने के पहले मुरदा थे।
बहुत कथाएं हैं कि जीसस ने मुरदों को जिलाया। मरे हुए को छुआ और आवाज
दी कि उठ। और मुरदा उठ कर बैठ गया। बीमारों की बीमारियां छीन लीं, अंधों की आंखों पर हाथ रखा और आंखें ठीक हो गयीं और देखने लगीं। बहरों के कान छुए और बहरे सुनने लगे। अगर इनका लिटरल--शाब्दिक अर्थ लगाया जाए, तो जीसस एक मदारी मालूम पड़ते हैं--एक चमत्कारी। लेकिन जीसस जैसे व्यक्ति चमत्कारी नहीं होते। जीसस जैसे व्यक्ति का पूरा जीवन चमत्कार है--चमत्कारी नहीं हैं वे।
बड़े से बड़ा चमत्कार यह नहीं है कि अंधे की आंखें छूने से ठीक हो जाएं। क्योंकि आंखें भी होते हुए, कहां तुम देख पाते हो? कान सुनते भी हों तो भी तुम कहां सुन पाते हो? बड़ा चमत्कार यह है कि तुम "सुन" पाओ। बड़ा चमत्कार यह है कि तुम "देख" पाओ।
तो जीसस अपने हर वचन के पहले लोगों से कहते हैंः "जिनके पास कान हों,
वे सुन लें। और जिनके पास आंखें हैं, वे देख लें।" जीसस ने अंधों को आंखें दी होतीं, तो यह चमत्कार होता। जीसस ने आंख वालों को आंखें दीं, यह महा- चमत्कार है। जीसस ने बहरों को कान दिए होते, तो इसे मेडिकल साइंस के इतिहास में लिखा जाता कि एक बड़े चिकित्सक थे वे, कुछ गहरे सूत्र उनके पास होंगे। लेकिन इससे जीसस ईश्वर नहीं हो सकते थे। और अंधों को आंख देने का काम तो चिकित्सा-शास्त्र कर रहा है। बहरों को कान देने का काम चिकित्सा- शास्त्र कर रहा है। इस काम के लिए जीसस को बीच में उतरने की जरूरत नहीं है। जीसस ने आंख वालों को "आंखें" दीं, कान वालों को "कान" दिए, हृदय वालों
को "हृदय" दिया। जो जीवित ही थे, उन्हें "जीवन" दिया। क्योंकि वे करीब-करीब अपने को मृत मान चुके थे, अंधा और बहरा मान चुके थे।
बड़े-बूढ़े जीसस के पास गए, और पक्षी दिखाने की मांग की; जीसस ने अपने बनाए पक्षियों की ओर इशारा किया और वे पक्षी उड़ गए। बुजुर्गों में से एक बोलाः "उड़ने वाले पक्षी कोई बना नहीं सकता। इसलिए इसमें सॅबथ का कोई उल्लंघन नहीं है।"
बुद्धि के जवाब! बड़े-बूढ़े यानी बुद्धि। बुजुर्ग यानी अनुभव। और अनुभव जीवन के रहस्य को जरा भी नहीं समझ पाता है। तुम्हारी उम्र कितनी है, तुमने कितना जाना है, इससे तुम्हारे ज्ञान का कोई भी संबंध नहीं है।
अक्सर तो ऐसा होता है कि बड़े-बूढ़े देख ही नहीं पाते हैं, समझ नहीं पाते हैं। उनका अनुभव ही बाधा बन जाता है। उन्होंने इतना जान लिया है कि वे सुन भी नहीं पाते हैं।
बुजुर्गों में से एक बोला कि "उड़ने वाले पक्षी कोई भी नहीं बना सकता। इसलिए इसमें सॅबथ का कोई उल्लंघन नहीं है। बच्चों ने गलत खबर दी है। ये जो पक्षी बैठे थे, ये कोई मिट्टी के बनाए हुए पक्षी नहीं थे।" दूसरे ने कहा, "मैं यह कला सीखना चाहता हूं।"
अनुभव पहले तो रहस्य से इनकार करता है। इसलिए बड़े-बूढ़ों के जीवन में कोई रहस्य नहीं होता है। बच्चों के चारों तरफ रहस्य का नर्तन चलता है। एक तितली उड़ती है, तो इतना बड़ा रहस्य है। फूल खिलता है, तो इतना बड़ा रहस्य है। इसलिए बच्चे सतत पूछते रहते हैं कि "ऐसा क्यों हो रहा है? ऐसा क्यों हो रहा है?" यह इसलिए नहीं कि वे उत्तर चाहते हैं। असल में वे अवाक हैं; वे अपने रहस्य को प्रकट कर रहे हैं। वे आश्चर्यचकित हैं। सब तरफ उन्हें आश्चर्य दिखाई पड़ रहा है। तुम उत्तरों से उन्हें चुप करने की कोशिश मत करना। वे उत्तर मांग भी नहीं रहे हैं। वे तो सिर्फ अपने आश्चर्य को अभिव्यक्त कर

रहे हैं। उनके प्रश्नवाचक चिह्न वस्तुतः आश्चर्यसूचक चिह्न हैं। वे प्रश्न नहीं हैं। तुमसे उत्तर की अपेक्षा नहीं है। वे सिर्फ तुम्हें भी साझीदार बनाना चाहते हैं--उसमें जिस रहस्य को वे अनुभव कर रहे हैं, जो परियों का जगत चारों तरफ खुला हुआ है। एक छोटी सी छाया हिलती है--वृक्ष के नीचे; तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं हिलता; बच्चे के लिए न मालूम कितने लोक हिल जाते हैं; न मालूम कितने स्वप्न पैदा हो जाते हैं!
बच्चा जीता है--जैसा कि शुद्ध काव्य। उत्तर कहीं नहीं है, सब तरफ प्रश्न ही प्रश्न हैं; सब तरफ जिज्ञासा है। लेकिन बूढ़े आदमी की जिज्ञासा मर जाती है। बूढ़ा सब जानता है! उसके उठने में, बैठने में वह खबर देता है कि "मुझे सब पता है।" बूढ़े को तुम चकित नहीं कर सकते--यह बुढ़ापे का लक्षण है। यू कॅन नॉट सरप्राइज हिम। उसे चकित नहीं किया जा सकता। तुम प्रश्न भी करो, वह कहेगाः "मुझे सब पता है।"
मैंने सुना हैः एक आदमी एक घोड़े को जबरदस्ती अपने घर के भीतर ले जा रहा था। दो आदमी रास्ते से गुजरते थे; वे सहायता करने लगे; क्योंकि घोड़ा भीतर जा नहीं रहा था। लेकिन जब वह आदमी घोड़े को सीढ़ियों के ऊपर चढ़ाने लगा, तब उन आदमियों ने कहाः "मतलब! तुम कर क्या रहे हो? कहां ले जा रहे हो घोड़े को?" उसने कहाः "तुम साथ दे सकते हो, तो दो। बातचीत मत करो। ऊपर चलकर बताऊंगा।" बा-मुश्किल घोड़े को ऊपर चढ़ा कर वह एक बाथरूम में ले गया और दरवाजा बंद किया, तब उन दो आदमियों ने कहा कि "रहस्य तो बताओ? हमें बहुत तुमने चकित कर दिया है!" तो उस आदमी ने कहा, "मेरे एक बूढ़े मित्र हैं। उनसे कुछ भी कहो, वे कहते हैंः "मुझे पता है।" वे आज आने वाले हैं। उनको मैं चकित करना चाहता हूं। एक दफा यह सुनना चाहता हूं कि "अरे! यह क्या!" बस, एक दफा जीवन में उनके मुंह से यह सुन लूं। जब वे बाथरूम में हाथ-पैर धोने जाएंगे और घोड़े को वहां देखेंगे।" लेकिन वह आदमी गलती में था।
जब वह बूढ़ा आया और उसने दरवाजा खोला तो वह जरा भी चकित नहीं हुआ! उसने कोई आवाज न की; वापस नीचे आ गया। यह मित्र राह देख रहा है कि वह कुछ कहे, उसने कुछ भी न कहा। इस मित्र को आखिर खुद ही पूछना पड़ा कि "आपको कुछ... ?" उस आदमी ने कहा, "मैंने जिंदगी में इतनी चीजें देखी हैं और घोड़े इतने स्थानों में देखे हैं कि इसमें चकित होने जैसा कुछ भी नहीं है। यह संयोग भी हो सकता है।"
बूढ़े को चकित नहीं किया जा सकता है। जिस दिन तुम चकित होना बंद हो जाओ, समझना कि तुम बूढ़े हो गए। जिस दिन आश्चर्य मर जाए, समझना कि तुम बूढ़े हो गए। जब तक तुम चकित हो सकते हो--जब तक कोई चीज तुम्हें चौंका सकती है--जब तक किसी चीज के लिए तुम पूछ सकते हो--"यह क्या है?" जब तक कुछ है, जो नया बना रहता है और रहस्यपूर्ण है, तब तक तुम बच्चे हो, तब तक तुम शुद्ध हो, तब तक तुम सरल हो, तब तक तुम्हारा जीवन निर्दोष है।
एक बूढ़े ने कहा कि "यह हो नहीं सकता है। उड़नेवाले पक्षी कोई बना ही नहीं सकता। इसलिए बात ही व्यर्थ है। सॅबथ का उल्लंघन नहीं हुआ।"
इतना बड़ा चमत्कार सामने देख कर भी बूढ़ा अंधा रहा। मिट्टी के पक्षी भी उड़ा दो, तो भी अनुभवी को तुम जगा नहीं सकते। तुम चमत्कार भी करो, तो उसमें से कोई रास्ता निकाल लेगा। वह कहेगा कि "इसमें कुछ ऐसी खास बात नहीं है।" उसने रास्ता निकाल लिया--सीधा, कि "उड़ने वाले पक्षी कोई बना नहीं सकता, इसलिए इसका उल्लंघन हुआ नहीं। इसने कुछ किया नहीं।"
दूसरे ने कहाः "मैं यह कला सीखना चाहता हूं।" दूसरा भी बूढ़ा है। बूढ़े
का एक ढंग तो है कि वह इनकार कर दे--कि चमत्कार है ही नहीं, रहस्य है ही नहीं। बूढ़े का ही दूसरा ढंग है कि वह सोचता है कि अगर चमत्कार है, तो ऊपर-ऊपर होगा, भीतर इसका सूत्र होगा, जो सीखा जा सकता है। कोई ट्रिक-कला! "कैसे किया जाता है", इसका कोई ढंग होगा, जिसे कि खोजा जा सकता है। रहस्य नहीं है। सिर्फ हमें तरकीब का पता नहीं है।
दूसरा भी रहस्य को इनकार कर रहा है। वह कह रहा हैः "इसकी कला क्या है,
वह हमें सिखा दो।" तुम जानते हो, हम नहीं जानते हैं। बस, इतना ही फर्क है।
हम भी सीख लेंगे, हम भी जान लेंगे।

ध्यान रहेः रहस्य वह है, जिसे सीखा न जा सके, जिसे कोई सिखा न सके। रहस्य वह है, जिसको खोलने की कोई कुंजी है ही नहीं। रहस्य को कला नहीं बनाया जा सकता। और जो चीज कला बन सकती है, वह रहस्य नहीं है।
यह दूसरा भी रहस्य को मार रहा है। यह दूसरा थोड़ा वैज्ञानिक है। यह कहता है कि चलो, कोई तरकीब होगी। तुमने किया है, तो तुम कुछ करना जानते हो, वह हमें भी बता दो। "मैं भी सीखना चाहता हूं।"
और तीसरा बोलाः "यह कला भी नहीं है; सिर्फ धोखा है।"
ये तीन रुख हैं, जो बुढ़ापा लेता है। एक रुख है--सीधा इनकार कर देना कि कुछ हुआ ही नहीं है। आंख बिल्कुल बंद कर ली। अपने अनुभव से उत्तर दे दिया और रहस्य को अस्वीकार कर दिया। दूसरी तरकीब हैः "कुछ होगा, जो मुझे पता नहीं है, लेकिन पता हो सकता है। अज्ञेय कुछ भी नहीं है, अज्ञात है; मैं भी जान लूं, तो ज्ञात हो जाएगा।"
दूसरा व्यक्ति जीवन को कला की दृष्टि से देखता है। पहला व्यक्ति जीवन
को सामान्य मनुष्य की--कॉमन सेंस की दृष्टि से देखता है। दूसरा व्यक्ति जीवन को आर्टिस्ट की दृष्टि से देखता है। और तीसरा व्यक्ति कहता है कि "सिर्फ धोखा है; कोई कला भी नहीं है।" तीसरा व्यक्ति जीवन को विज्ञान की दृष्टि से देखता है।
बस, ये तीन दृष्टियां हैं। एक सामान्य आदमी की दृष्टि है; एक वैज्ञानिक-बुद्धि की दृष्टि है; और एक कलात्मक दृष्टि है।
तीसरे ने कहाः "यह धोखा है।" क्योंकि यह हो ही नहीं सकता है। यह विज्ञान के नियम के विपरीत है, इसमें कोई कला नहीं है--यह डिसेप्शन है। जैसा मदारी कबूतर निकालता है--टोप में से, तो इसमें कोई कला नहीं है, सिर्फ धोखा है। पहले कबूतर छिपाए गए होंगे। छिपाने का राज है। कोई कबूतर पैदा नहीं हो रहे हैं। कैसे छिपाया, यह बात अलग है। लेकिन धोखा है। इसकी कोई कुंजी नहीं है।
निपटारा हो गया। इतना महान चमत्कार घटा कि मिट्टी के पक्षी आकाश में
उड़ गए; बूढ़ों ने निपटारा कर दिया।
मैं छोटा था, तो मेरे पिता के पिता अक्सर अगर मुझे ध्यान करते पकड़ लेते, तो कहतेः "बंद करो यह धोखा। सोना चाहते हो! ध्यान की तरकीब निकाली है!" वे कभी मान नहीं सके कि ध्यान किया जा सकता है। वे समझते कि मैं सो रहा हूं--आंख बंद किए। और अपनी नींद को ध्यान का नाम देता हूं।
वे अनुभवी थे। जीवन को उन्होंने जाना था। और जीवन जानकर उन्होंने निष्कर्ष निकाला था कि ध्यान वगैरह कुछ होता नहीं है।
बूढ़ा मन सभी उत्तर जानता है; तुम उसे चौंका नहीं सकते। तुम मुरदे को
भी जिला दो, तुम मिट्टी के पक्षियों को उड़ा दो, तो भी तुम उसे हिला नहीं सकते। वह बिल्कुल मर चुका है। उसके भीतर चौंकने वाली जीवंत ऊर्जा ही नहीं बची है।
निपटारा हो गया। फिर दूसरे दिन... एक दिन यही लड़का अपने बाप जोसेफ के कारखाने में बैठा था--यही जीसस अपने बढ़ई के कारखाने में बैठा था। लकड़ी का एक तख्ता थोड़ा छोटा पड़ गया, तो उसने उसे तानकर लम्बा कर दिया। यह बात भी लोगों ने सुनी, तब कुछ ने कहाः "यह चमत्कार है। इसलिए यह लड़का संत होगा।" और कुछ दूसरों ने कहाः "इस पर हमें विश्वास ही नहीं आता है। दुबारा करके दिखाओ।" और तीसरा दल बोलाः "यह सच हो नहीं सकता है। इस बात को किताब से बाहर रख लो।" यह बात कहीं लिखी न जाए कि इस तरह की घटना घटी।
बाप के कारखाने में... जीसस बढ़ई के बेटे हैं... । गांव में खबर आई कि तख्ता छोटा पड़ गया; इसने तानकर बड़ा कर दिया। भरोसे का नहीं है। कैसे तुम लकड़ी के तख्ते को तानकर बड़ा करोगे! लकड़ी के तख्ते किसी की मानते नहीं। जीवन के नियम अंधे हैं और निरपवाद हैं। उनमें कहीं कोई अपवाद नहीं होता, ऐसी हमारी मान्यता है। लेकिन यह सच नहीं है। और यह सच नहीं है मान्यता, इसीकी खबर देने को ये छोटी कहानियां हैं।
जीवन भी अपवाद कर रहा है। जीवन भी अपने नियम कभी-कभी छोड़ता है।
प्रकृति भी कभी-कभी रास्ते से उतर कर चलती है। बुद्ध या जीसस या महावीर

जैसा व्यक्ति जब घटित होता है, तो प्रकृति भी विनम्र हो जाती है। और कभी- कभी नियम को छोड़ देती है।
ऐसा नहीं है कि ऐसा व्यक्ति--जीसस जैसा व्यक्ति नियम को छुड़वाना चाहता है। उसे नियम का ख्याल नहीं है। वह इतना सरल और सीधा है कि जैसे नियम का उसे पता ही नहीं है। उसकी सरलता में ही कभी-कभी नियम टूट जाते हैं। उसके इस भरोसे में ही कभी-कभी नियम टूट जाते हैं।
जीसस का साथी, पुराना मित्र, लेजारस मर गया। जीसस गए और कहाः "लेजारस उठ!" कहते हैं, लेजोरस उठ आया। या तो हम कह दें कि बात कोरी कल्पना है, कथा है, झूठ है; कोई धोखा है, कि लेजारस बना हुआ लेटा रहा हो, गांव में खबर कर दी हो कि मर गया। यह तरकीब है। वह लेटा रहा--बना हुआ। और जब जीसस ने आकर आवाज दी, तो वह उठ कर बैठ गया। लेजारस और जीसस की साझेदारी है।
बात हल हो जाती है, हम चमत्कार से बच जाते हैं; चौंकने से रुक जाते हैं! लेकिन जो लोग गहरा सोचते हैं, वे कहते हैंः "यह संभव है।" क्योंकि पूरा जीवन मृत्यु से तो अपरिचित है। जब लेजारस मरता है, तब भी मरता तो कोई भी नहीं। केवल चेतना इस देह को छोड़ती है। लेकिन जो इस मकान को छोड़ कर गया, वह वापस मकान में क्यों नहीं बुलाया जा सकता है? अगर कोई हृदयपूर्वक आवाज दे, तो चेतना वापस लौट सकती है--अगर यह सच है कि शरीर केवल घर है तो। तुम बाहर चले गए, और तुम्हारी पत्नी ने भीतर से आवाज दी कि सुनो! तुम घर में वापस लौट आए।
सारी पृथ्वी पर ऐसी कथाएं हैं। कि सावित्री ने पीछा किया यमदूतों का
और अपने मृत पति सत्यवान को वापस ले आई। कि जीसस ने आवाज दी, "लेजारस उठ।" लेजारस उठ आया। जैसे कि घर के बिल्कुल बाहर ही निकला था; अभी द्वार पर ही खड़ा था; अभी आवाज सुनी जा सकती है। लेकिन आवाज हृदय की होनी चाहिए। क्योंकि बुद्धि तो बंद हो जाती है--जैसे ही कोई शरीर को छोड़ता है। तो अगर तुम बुद्धि से कहो, तो नहीं सुना जा सकेगा। क्योंकि वे संबंध तो छूट गए। लेकिन हृदय तो साथ जाता है। हृदय शरीर का अंग नहीं है। इसलिए वैज्ञानिक हृदय को खोज ही नहीं पाते। वे कहते हैंः "लंग्ज हैं, हार्ट जैसी कोई चीज नहीं है। फुफ्फुस--फेफड़े हैं; हृदय कहां है?" हृदय आत्मा का हिस्सा है। जब तुम इस घर को भी छोड़ते हो, तब भी तुम्हारा हृदय तो होता ही है। धड़कन शरीर का हिस्सा है; हृदय बड़ी अलग बात है। वह तुम्हारी भाव-दशा है।
जीसस ने जब कहा कि "लेजारस उठ", तो यह हृदय से कही बात थी और हृदय उसे सुन लेगा। इस बात की पूरी संभावना है कि जो बाहर चला गया है, वह भीतर लौट आए। जीसस जैसा व्यक्ति बुलाए और वापस न लौटना हो, यह असंभव है। मुरदा उठ सकता है।
क्या लकड़ी का टुकड़ा भी तानकर बड़ा किया जा सकता है? हमारी तकलीफ यह है
कि हमारे लिए विज्ञान के नियम सब कुछ हैं। और विज्ञान के अतिरिक्त भी गहरे नियमों का संसार है, वह हमारे लिए कुछ भी नहीं है।
रूस में एक औरत अभी जिंदा है, जो आवाज देकर वस्तुओं को बुला लेती है।
जब पुकारती है, तो दूर रखा हुआ गमला खिंच कर पास आने लगता है। इसके बहुत परीक्षण किए गए हैं। और हर बार वह सफल हुई है। और सब तरह की वैज्ञानिक जांच-पड़ताल की गई, क्योंकि रूस न तो किसी ईश्वर को मानता है और न किसी आत्मा को। लेकिन यह स्त्री सभी वैज्ञानिक परीक्षणों से सही सिद्ध निकली है। कोई धोखा नहीं है। तब एक ही उपाय है कि किसी गहरे नियम का उपयोग हो रहा है। क्योंकि पौधा भी जीवंत है। वह भी सुन सकता है। वह खींचा जा सकता है। वह भी पुकारा जा सकता है।
और अभी पौधों पर बड़ी खोज चल रही है और उनसे पाया जा रहा है कि पौधों के पास तुमसे भी ज्यादा सरल हृदय है; तुमसे भी ज्यादा गहन हृदय है। और उनके हृदय को भी आंदोलित किया जा सकता है।
रविशंकर के सितार के साथ पौधों का कोई प्रयोग केनाडा में किया गया। कुछ बीज बोए गए--कुछ गमलों में, जिनके पास रविशंकर सितार बजाता। कुछ बीज दूर बोए गए--बगीचे में, ठीक उसी तरह के गमलों में। वही पानी, वही धूप, वही खाद। लेकिन उनके पास कोई सितार न बजता। कुछ गमले रविशंकर के बाएं रखे गए और कुछ गमले दाएं, कुछ दूर रखे गए। जब पौधे आने शुरू हुए तो बड़ी हैरानी हुई

कि जिन बीजों के पास सितार बजता था, उन बीज से जो पौधे पैदा हुए, वे सब सितार की तरफ झुके हुए पैदा हुए। जैसे कि तुम बहरे हो और सुनने के लिए कान को पास बढ़ा दो! सब पौधे सितार की तरफ झुके थे। जो बाएं रखे थे, वे दाएं झुके थे और जो दाएं रखे थे, वे बाएं झुके थे। लेकिन जो पौधे दूर थे, जिनको सितार सुनाई नहीं पड़ रहा था, वे सीधे बढ़े।
पौधे भी सुनते हैं।
धर्म की प्रतीति यह है कि पूरा जगत जीवंत ऊर्जा है। यहां मृत कुछ है
ही नहीं। जो तुम्हें मृत दिखाई पड़ता है, वह भी तुम्हारा देखना है, क्योंकि तुम जीवंत को पहचान नहीं पाते, पकड़ नहीं पाते।
यह हो सकता है कि लकड़ी का टुकड़ा अभी-अभी जंगल से लाया गया हो और अभी जीवन की धारा उसमें परिपूर्ण बह रही हो--वह खींच कर बड़ा कर दिया गया है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। इस बात की संभावना है।
और हजारों तरह के चमत्कार रोज पृथ्वी पर घट रहे हैं--इस तरह के चमत्कार भी। लेकिन जो इस तरह के चमत्कार के साथ लोगों की प्रतिक्रिया है, वही उनके साथ भी हुई।
कुछ बूढ़ों ने कहा, "यह चमत्कार है। यह लड़का संत होगा।" उन्होंने भी व्याख्या कर दी। मामला हल हो गया। वे भी चौंके नहीं। यह बड़े मजे की बात है। उन्होंने कहा, "यह मिरेकल है। यह लड़का संत होगा।" बात खत्म हो गई। अध्याय बंद हो गया। इससे भी कोई चौंके नहीं वे। उन्होंने शास्त्रों में पढ़ा है कि इस तरह के चमत्कार होते हैं। और जो इस तरह के चमत्कार करता है, वह संत हो जाता है। बात खत्म हो गई!
बूढ़ा मन चमत्कार से भी नहीं चौंकता है। वह उसमें भी व्याख्या निकाल लेता है। वह कहता हैः "यह लड़का संत होगा।" उत्तर उसके पास तैयार है। वह किसी चीज से भी डांवाडोल नहीं होता है। फिर ये बूढ़े अपने काम पर चले गए होंगे। फिर दुबारा इन्होंने सोचा भी नहीं होगा कि क्या हुआ। तुम भी बहुत बार जीवन में वक्तव्य देते हो, जिनका तुम्हें पता नहीं है। तुम उत्तर देते हो, जो मृत हैं। और तुम समझते हो कि बात समाप्त हो गई।
ठीक जिज्ञासु व्यक्ति प्रश्न के साथ जीना पसंद करेगा--कोरा, खाली उत्तर देना पसंद नहीं करेगा। क्योंकि प्रश्न शायद कभी द्वार को खोल भी दे; उत्तर तो द्वार को बंद कर लेता है।
ये बूढ़े शायद जीसस को देखने भी न गए हों। उन्हें पता ही है। और जिन्हें पता है, वे क्यों देखने जाएं। उन्हें मालूम है कि लड़का संत होगा। बात खत्म हो गई। एक नियम--उन्होंने चमत्कार को भी एक नियम बना दिया।
जो जानता है, उसके लिए सारे नियम चमत्कार हैं। और जो नहीं जानता है, उसके लिए चमत्कार भी नियम बन जाते हैं। नियम मरी हुई बात है।
कुछ दूसरों ने कहाः "इस पर भी हमें विश्वास नहीं आता; दुबारा करके दिखाओ।" यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। क्योंकि जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है--चमत्कारपूर्ण है, वह दुबारा नहीं किया जा सकता। दुबारा तो वही किया जा सकता है, जो रुटीन है, क्रमबद्ध है। दुबारा हम उसी को दुहरा सकते हैं, पुनरुक्ति उसी की हो सकती है, जो नियम के--सामान्य नियम के अनुसार है। चमत्कार कभी-कभी घटते हैं--नियम के बाहर घटते हैं। और हम सब कहते हैं। "दुबारा करके दिखाओ।"
बहुत बार ऐसी घटनाएं पश्चिम में घटती हैं, पूरब में घटती हैं। वैज्ञानिकों को खबर मिलती हैः वे कहते हैंः "दुबारा करके दिखाओ, तो ही हम मानेंगे अन्यथा हम कैसे मानेंगे!" उनका कहना भी ठीक है। क्योंकि विज्ञान बार-बार परीक्षण करे, तभी नियम को मानता है। लेकिन दुबारा चमत्कार को घटाया नहीं जा सकता। चमत्कार का अर्थ ही यह है कि तुम्हें पता ही न था, तब वह घटा।
समझो कि जीसस के पिता ने कहा कि "यह लकड़ी का तख्ता छोटा है। बड़े की जरूरत है। अब क्या होगा?" जीसस वहां बैठा था चुपचाप, जैसाकि ध्यानमग्न जीसस रहा होगा। वह उठा, बिना कुछ सोचे, बिना कुछ जाने, बिना कुछ ख्याल किए; उसने लकड़ी के तख्ते को ताना। वह तन गया और बड़ा हो गया।

अगर इसी लड़के को तुम दुबारा कहो कि तानो, तो दुबारा वही स्थिति तो आ ही नहीं सकती, जो पहले थी। क्योंकि दुबारा यह जानकर करेगा। दुबारा इसे पता है कि ऐसा हो सकता है, यह निर्दोष न रहा। अब यह चालाक है। अब गणित साफ है। और अगर घटना निर्दोषता के कारण घटी थी, तो अब नहीं घट सकती है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः "पहले दिन जो ध्यान में रस आया, वह दूसरे दिन नहीं आया।" अनेक बार यह होता है। पहली दफा जो ध्यान में रस आता है, पहली दफा जो रस आया, वह दूसरे दिन नहीं आया। वे कहते हैंः "क्या करें?" दूसरे दिन तुम चालाक हो गए; पहले दिन तुम सरल थे। पहले दिन तुम्हें कुछ पता न था कि क्या होगा। अब तुम्हें पता है। पहले दिन तुम कोरे कागज थे। तुम अनजाने में जा रहे थे। नक्शा हाथ में न था। कोई अपेक्षा न थी, तुम सहज किए थे। अचानक घटना घटी थी। लेकिन आज तुम पहले से नियम मानकर चल रहे हो। आज तुम पहले से अपेक्षा किए हो, आज तुम चाहते हो कि घटना घटे। यह नया तत्व है। कल अपेक्षा न थी, आज अपेक्षा है। तुम्हारा चित्त कल जैसा नहीं है।
अगर कोई जीसस को कहे कि दुबारा करके दिखाओ, यह कहने के कारण ही घटना दुबारा नहीं घटेगी।
तुम्हारे जीवन में भी कई बार घटना घटती है, जो चमत्कार जैसी है। लेकिन कोई कहेः "दुबारा करके दिखाओ, चूक जाओगे; वह नहीं घटेगी। इसलिए जानने वाले कहते हैं कि "पहले प्रेम" जैसा प्रेम कभी नहीं घटता है। पहले प्रेम की बात ही और है; रस ही और है। क्योंकि वह अनुभव-शून्य है। तुम्हें पता ही नहीं कि क्या हो रहा है। कुछ हो रहा है जो तुमसे बड़ा है। दूसरा प्रेम वैसा नहीं हो सकता। अब तुम्हें पता है। अब तुम कदम सम्हाल कर रख रहे हो। अब तुम नियंत्रण में हो। तीसरा प्रेम तो बिल्कुल साधारण हो जाएगा। चौथा प्रेम तो काम-काज की दुनिया का हिस्सा होगा। इसलिए दुनिया के सारे पुराने धर्म तलाक के विरोध में हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि विवाह तो एक ही बार घट सकता है। वह "घटना" है। प्रेम का जो अंकुरण है, वह एक ही बार घट सकता है। उसे तुमने दुबारा घटाया, तो बस, बासा हो जाएगा। वह दुबारा घटता नहीं है।
जिस चीज को भी तुम दुबारा चाहते हो, तुम उसे सामान्य वस्तुओं के नियम
के भीतर ला रहे हो। चमत्कार नियम के भीतर नहीं आता। तब बड़ी कठिनाई है, क्योंकि बहुत बार ऐसा हुआ है।
कुछ वर्षों पहले सारे मुल्क में योगी राव का नाम था--जोर से--कि वह पानी पर चलेगा। घटना बड़ी सोचने जैसी है। क्योंकि महीनों उसने तैयारी की, वर्षों उसने तैयारी की। और एकांत में वह पानी पर चल सका था, इसलिए दावा किया। अकेले में वह पानी पर चल सका था इसलिए दावा किया। क्योंकि इस तरह के दावे... ! आखिर तुम फंस ही जाओगे। इस तरह का दावा करने में आखिर असफलता हाथ लगने ही वाली है।
सारे मुल्क में प्रचार हुआ। हजारों लोग देखने इकट्ठे हुए। और यह आदमी आश्वस्त था। या तो पागल हो--इस तरह का आदमी। और या तो आश्वस्त हो। पागल तो यह आदमी नहीं था। पागलपन का कोई लक्षण न था। सारी तैयारियां हुईं। पानी का तालाब बनाया गया, खर्च हुआ। और इस आदमी ने कदम उठाया और यह डूब गया!
क्या घटना क्या हुई? सभी ने समझा कि यह धोखेबाज था। लेकिन थोड़ा तुम भी सोचो कि धोखा भी कोई देगा, तो इस तरह का धोखा देने जाएगा, जिसमें कि फंसना निश्चित है! तुम सोचो, खुद अगर तुम धोखा देने जा रहे, तो तुम पानी पर चलने की कोशिश करोगे? यह हो सकता था कि वह आखिर तक धोखा देता और ऐन वक्त पर भाग गया होता। लेकिन यह आदमी भागा भी नहीं।
बड़े-बड़े कैमरे लगाए गए थे कि चित्र लिया जाए, क्योंकि अनोखी घटना होगी; ऐतिहासिक घटना होगी। हजारों लोग देखने को इकट्ठे थे। सारी दुनिया का प्रेस मौजूद था। फिल्में ली जाने वाली थीं। सब व्यवस्था थी। यह आदमी एक क्षण पहले भाग गया होता, तो हम समझते कि धोखा था। लेकिन यह आदमी भागा भी नहीं। यह आया। इसने आकर यह कह दिया होता कि "नहीं, यह मुझसे नहीं हो सकेगा। गलत दावा किया। मैं माफी मांग लेता हूं।" तो भी समझ में आता। यह आदमी चला, अपनी तरफ से यह आश्वस्त था। यह किसी अनुभव पर निर्भर था--इसका आश्वासन--कि वह चल सकता है। लेकिन पानी में डूब गया। नहीं चल पाया।

किसी ने भी इस घटना का ठीक से अध्ययन नहीं किया कि मामला क्या है! मामला इतना ही है कि कुछ घटनाएं हैं, जो पुनरुक्त नहीं कि जा सकतीं, क्योंकि तुम्हारे चित्त की दशा बदल जाती है।
यह आदमी किसी निर्दोष क्षण में पानी पर चल सका है। बस, भूल वहीं हो गई
है कि इसने सोचा कि "पानी पर चल सका हूं--एकांत में, अकेले में, निर्जन में, तो सबके सामने भी चल लूंगा।" पर सबके सामने स्थिति बदल गई। अब यह होश से भरा हुआ है। अब यह चलने के लिए आयोजन कर रहा है; नियंत्रण में है। चमत्कार नियंत्रण में नहीं होते। इसलिए जिन-जिन लोगों ने चमत्कार को पुनरुक्त करने की कोशिश की है, वे सभी असफल सिद्ध होते हैं। और जब वे असफल सिद्ध होते हैं, तो लोग कहते हैं कि यह सब धोखा-धड़ी है। क्योंकि प्रमाण कहां है! चमत्कार का अर्थ है कि वह पुनरुक्त नहीं किया जा सकता। कोई उपाय ही नहीं है--उसे पुनरुक्त करने का। क्योंकि चित्त की जिस दशा में वह घटित होता है, वही दशा पुनरुक्त करते समय नहीं रह जाती। तो इसका अर्थ हुआ कि जो चमत्कार पुनरुक्त किए जाते हैं, वे चमत्कार नहीं है। तो सत्य साईं बाबा रोज हाथ से राख निकाल रहे हैं वह चमत्कार नहीं हैं। क्योंकि चमत्कार पुनरुक्त होते ही नहीं हैं। अगर रोज हाथ से ताबीज निकाला जा रहा है, तो वह चमत्कार नहीं है। अगर स्विटजरलैंड में बनी हुई घड़ियां रोज हाथ से निकाली जा रही हों, तो तुम थोड़ी ही तलाश करो, सूटकेसों में उन्हें तुम पा लोगे। वे चमत्कार नहीं हैं।
चमत्कार को दुहराया नहीं जा सकता है। चमत्कार तो जैसे एक बार घटता है। कभी दुहर सकता है, लेकिन "दुहाराया" नहीं जा सकता है। इस फर्क को समझ लेना।
कभी दुहर सकता है--कभी फिर वैसी दशा में। लेकिन तुम उसके मालिक नहीं
हो सकते। जिसके तुम मालिक हो सकते हो, वह विज्ञान है। जिसके तुम मालिक नहीं हो सकते हो, वह धर्म है।
कुछ बूढ़ों ने कहाः दुबारा करके दिखाओ, तो हम मानें।" जीसस ने दुबारा करके नहीं दिखाया। दुबारा करके दिखाया नहीं जा सकता। जो हो गया, हो गया। कभी फिर होना होगा--हो जाएगा। तुम उसके नियंता नहीं हो। तुम सिर्फ क्षेत्र हो, जहां वह घटता है। तुम मालिक नहीं हो, तुम उसे घटा नहीं सकते।
और तीसरा दल बोलाः "यह सच हो ही नहीं सकता।" यह बात ही गलत है, झूठ है। ऐसा हो ही कैसे सकता है! क्योंकि अनुभव में नहीं है। और जो हमारे अनुभव में नहीं है, वह हो कैसे सकता है?
हर व्यक्ति अपने अनुभव को सत्य की सीमा बना लेता है। तुम्हारा अनुभव कितना छोटा है! सत्य निश्चित ही तुम्हारे अनुभव से बड़ा है। सत्य बहुत बड़ा है। तुम कितना अनुभव करोगे? फिर अनुभव के बाहर बहुत कुछ रह जाएगा। इसलिए जिसको थोड़ा भी होश है, वह कभी अपने अनुभव से सत्य को न तोलेगा। वह कहेगाः "मुझे ऐसा नहीं हुआ; लेकिन यह सच हो सकता है। क्योंकि सारा अनुभव मेरा नहीं है। अनंत अनुभव बाकी हैं। जिन रास्तों पर मैं कभी नहीं गया, जिन मार्गों से मैं कभी गुजरा नहीं, हो सकता है, उन रास्तों पर ऐसे फूल भी खिलते हों! और जिन रास्तों से मैं गुजरा हूं, उन पर ऐसे फूल न खिले हों।"
रास्ते अनंत हैं, फूल अनंत हैं। और अनुभव का कोई पारावार नहीं है। लेकिन हर व्यक्ति अपने अनुभव को सीमा बना लेता है। वह कहता हैः "जो मैं जानता हूं, अगर उसके अनुकूल घटता हो, तो घटा। अगर उससे भिन्न घटा हो, तो नहीं घटा। वह झूठ है।" तुम सत्य हो जैसे! और तुम्हीं सत्य की परिभाषा हो! तुम जहां समाप्त होते हो, वहीं सत्य समाप्त हो जाता है? तो तुम जब नहीं थे, तब सत्य भी नहीं था। तुम्हारे अनुभव अगर मिट जाएं, तो सत्य भी मिट जाएगा। नहीं, सत्य इतना छोटा नहीं है।
लेकिन, तीसरे दल ने कहा, "यह सच नहीं हो सकता है। इसलिए ध्यान रखो, इस बात को किताब से अलग रखना।"
किताब में वही बात आनी चाहिए जो पुनरुक्त हो सकती है। किताब में वही बात आनी चाहिए, जो नियम के अनुसार हो। किताब में वही बात आनी चाहिए, जिसको प्रमाण और प्रयोग से सिद्ध किया जा सके। इसलिए बहुत सी घटनाएं घटती हैं रोज, और किताब के बाहर रह जाती हैं। और बड़ी कीमती घटनाएं किताब के बाहर रह

जाती हैं। क्योंकि उनके लिए पुनरुक्त करने का कोई उपाय नहीं है। तुमने अपनी आंख से भी देखा हो, तो भी पुनरुक्त करने का कोई उपाय नहीं है। कितना ही छाती पीटो और चिल्लाओ कि यह मेरा अपना अनुभव है, मैंने देखा है, लेकिन दूसरे कहेंगेः "हम कैसे मान लें?"
रोज चमत्कार घटता है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसके जीवन में एकाध नियम के बाहर की कोई घटना न घटी हो--क्योंकि जीवन बिल्कुल नियम से मुक्त और बाहर है। तुम कितने ही मुरदा हो जाओ, कभी न कभी जीवन को संध मिल जाती है। और नियम के बाहर कुछ घटता है।
कभी तुम बैठे हो अपने कमरे में, अचानक तुम्हें किसी अपने मित्र का ख्याल आता है, जिसे तुमने दस वर्षों से ख्याल नहीं किया है। और तुम आंख खोलते हो, और वह दरवाजे पर खड़ा है। तुम कहते होः "संयोग है।" किताब के बाहर कर देते हो। तुम सोच भी नहीं सकते कि "इस मित्र को दस साल से नहीं सोचा था। आज अचानक इसका स्मरण आया। इसके स्मरण में और इसके दरवाजे पर मौजूद होने में कोई संबंध होना चाहिए।" इसके आने के पहले उसकी टेलिग्रैफिक, टेलिपैथिक खबर तुम्हें मिल गई। लेकिन तुम कहते होः "संयोग है।" तुम इसे नियम के बाहर कर देते हो।
ऐसा हुआ है। सिगमंड फ्रायड अपने कमरे में बैठा था। और उसका उन दिनों सबसे बड़ा शिष्य जुंग उसके सामने बैठा था। वह अपनी लाइब्ररी में बैठा था। फ्रायड वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी था। और जुंग धार्मिक बुद्धि का आदमी था। दोनों में बड़े विरोध थे। फिर बाद में विरोध प्रकट हुए धीरे-धीरे। और इस दिन--इस घटना के दिन--विरोध की शुरुआत हुई। फ्रायड ने कहा कि "मैं कोई चमत्कार नहीं मानता हूं।" चमत्कार की बात हो रही थी। मैं कोई अपवाद नहीं मानता। लेकिन जुंग ने कहा, "सुनो!" और अचानक लाइब्रेरी की किताबों की अलमारी में जोर का धड़ाका हुआ। फ्रायड भी चौंक गए कि धड़ाका कैसे हुआ! जुंग ने कहा कि "ऐसा कई दफा हुआ है। जब भी कोई ऐसा धड़ाका होता है, तो मेरे पेट में बड़ा खिंचाव होता है। और जब भी खिंचाव होता है, तो मैं कह सकता हूं कि धड़ाका होगा--आस-पास कहीं न कहीं जोर का धड़ाका होगा।"
फ्रायड ने कहा, "दुहराओ तो समझूं, क्योंकि में कैसे... ? अब यह संयोग की बात हो सकती है कि तुम्हारे पेट में कुछ हो रहा था और तुमने बोल दिया और धड़ाका हो गया।"
फिर वे बातचीत में लग गए। दुहराने का तो कोई उपाय न था। अचानक आधा घंटे बाद जुंग ने फिर कहा कि "सुनो!" फिर धड़ाका हुआ। उसने कहा कि "मुझे फिर वही खिंचाव पेट में मालूम पड़ा।"
जुंग ने अपने संस्मरण में लिखा है कि फ्रायड ने मुझे इस तरह देखा, जैसे मैं कोई भूत-प्रेत हूं। और उसी दिन से हमारे संबंध खराब हो गए।" क्योंकि फ्रायड यह मान ही नहीं सकता। "यह किताब के भीतर... ।" फ्रायड ने अपने संस्मरणों में इसे नहीं लिखा। यह घटना उसमें छोड़ दी। जुंग ने अपने मैमायर्स में, अपने संस्मरणों में लिखा है। लेकिन जुंग को लोग समझते हैं कि झक्की है। थोड़ा दिमाग इसका फिरा हुआ है। इसकी बातों का कोई भरोसा नहीं है। अब इस तरह की बातों का भरोसा भी क्या हो सकता है!
मेरे एक मित्र हैं, वे गांव के बाहर गए थे। रात दो बजे होटल में, जहां ठहरे थे, उन्होंने जोर की आवाज सुनी कि कोई दरवाजा खटखटा रहा है। और किसी ने जोर से कहाः "मुन्ना!" तो वे बहुत हैरान हुए क्योंकि "मुन्ना" उनके पिता ही सिर्फ उनसे कहते थे। उनकी उम्र काफी है, बड़े फोफेसर हैं, बड़े ख्यातिनाम लेखक हैं। तो और तो कोई मुन्ना उनको कहता नहीं, सिर्फ पिता ही कहते हैं। पिता की आवाज इतनी साफ मालूम पड़ी कि उन्होंने दरवाजा खोला, लेकिन बाहर कुछ नहीं है, सिवाय सन्नाती हवा के!
वर्षा की अंधेरी रात है, थोड़ी-थोड़ी बूंदें पड़ रही हैं। कोई नहीं है आस-पास। तो दरवाजा बंद करके समझा कि कोई ख्याल होगा मन का। या कोई आवाज होगी, मैंने भ्रांति समझी या कोई सपना होगा। और वे फिर सो जाते हैं।
आधे घंटे बाद फिर दरवाजे पर दस्तक और "मुन्ना" की आवाज! अब आवाज इतनी साफ है कि उन्होंने फिर दरवाजा खोल कर सब तरफ देखा, लेकिन वहां कोई भी नहीं था, तो उन्होंने नीचे फोन किया। मैनेजर को कहा कि "बात क्या है, मुझे बार-

66

बार आवाज सुनाई पड़ती है।" मैंनेजर ने कहा, यहां तो कोई भी नहीं है। आवाज होने का कोई कारण नहीं है।" साढ़े चार बजे रात फोन आया कि पिता ढाई बजे चल बसे। और ठीक ढाई बजे उन्होंने पहली आवाज सुनी थी।
जब वे मुझे यह घटना बता रहे थे, तो कहने लगे कि "किसी से आप कहना मत। क्योंकि लोग मुझे पागल समझेंगे। आपसे कह रहा हूं, क्योंकि आपसे हृदय की बातें कहीं जा सकती हैं। मैं भी इसमें भरोसा नहीं करता। कोई न कोई भांति है।"
अब इसको पुनरुक्त तो किया नहीं जा सकता। अब इसको दुहराने का क्या उपाय है? प्रयोगशाला में इसको कैसे सिद्ध करिएगा? लेकिन यह बहुत बार हुआ है; पृथ्वी पर अनेक बार रोज हो रहा है। कोई निकट का प्रियजन मरता है और तुम्हारे द्वार पर दस्तक लगती है। आवाज भी सुनाई पड़ती है। कभी-कभी उसकी प्रतिमा भी सामने प्रकट हो जाती है। लेकिन हम इसे किताब के बाहर रखते हैं, क्योंकि इस जीवन के हिसाब से जोड़ नहीं है इसका कोई। फिर इसको दुहराने का उपाय नहीं है। और अगर तुम किसी को कहो, तो वह कहेगा कि "तुम पागल हो।" तुमसे ही कोई यह कहेगा, तो तुम कहोगे कि "तुम पागल हो। तुम्हें कोई भ्रांति हो गई है।"
तो तीसरे वर्ग ने कहा, "इसे किताब से बाहर रखना।" जीवन बंधे-बंधाए नियमों का नाम नहीं है। बंधे-बंधाए नियम तो हमने खोज लिए हैं--जीवन चलाने को। जीवन उनसे बहुत बड़ा है। जैसे कोई बहुत घना जंगल हो, और हमने छोटी सी जमीन साफ कर ली, वृक्ष काट दिए; वहां हमने अपना घर बना लिया है। लेकिन थोड़ी ही दूर हमारे घर के पार, घना जंगल है। इस छोटी सी जमीन को हमने साफ कर लिया है। ऐसे ही हमने जीवन के छोटे से हिस्से को साफ कर लिया है। जिसे हम विज्ञान कहते हैं। पार विराट जंगल है। उस जंगल के अपने रहस्य हैं, उस जंगल की अपनी दौड़ती हुई चमत्कारिक छायाएं हैं, अदभुत सूत्र हैं। कभी-कभी तुम उस जंगल में, अपने घर को छोड़ कर, भटक जाते हो, तो तुम जल्दी ही वापस लौट आते हो, क्योंकि वहां डर लगता है। कभी-कभी वह जंगल भी अपनी खबरें तुम्हारे घर तक ले आता है। लेकिन तब तुम द्वार बंद कर लेते हो और तुम उन्हें अनसुनी कर देते हो, उन्हें किताब के बाहर रखते हो।
और यह जंगल अगर बाहर ही होता, तो आसान था। तुम्हारे भीतर भी ऐसा ही है। तुमने अपनी चेतना के छोटे से हिस्से को साथ-सुथरा कर लिया है, जो हमारा चेतन मन है, कांशस माइंड है। और उसके ही नीचे विराट अचेतन का जंगल है। उस अचेतन से कई दफा चीजें तुम्हारे चेतन में आती हैं। तुम उन्हें धक्का देकर पीछे कर देते हो। क्योंकि बाजार, गणित और तर्क से उनका मेल नहीं होता है। लेकिन चमत्कार तुम्हें चारों तरफ से घिरे हुए हैं।
पूरा जीवन चमत्कार है।
और तुम इन बूढ़ों की तरह व्यवहार मत करना। तुम चमत्कार के द्वार बंद मत करना। तुम मत कहना कि "दुबारा करो" तो हम मानेंगे। तुम सुनी को अनसुनी मत करना। तुम अपने हृदय की किताब में उसको भी अनुबद्ध कर लेना, जो एक ही बार घटता है और दुहराया नहीं जा सकता। और तुम यह मत कहना कि "जो मैं जानता हूं, वही सीमा है--सत्य की।" तुम जानते ही क्या हो? जानने को अंनत सदा शेष है। और तुम कोई व्याख्या मत खोजना; तुम यह मत कहना कि "यह चमत्कार है; यह लड़का संत होगा।" तुम सस्ती व्याख्याओं में मत बंद हो जाना। तुम जीवन की जिज्ञासा को खुली और उन्मुक्त रखना। और जो व्यक्ति अपने जीवन की जिज्ञासा को खुली और उन्मुक्त रख पाता है, आज नहीं कल, परमात्मा उसके द्वार पर दस्तक देता है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
छठवां प्रवचन

समग्रता ही है मार्ग

एक शिष्य ने गुरु उमोन से कहा, "बुद्ध का प्रकाश समस्त विश्व को प्रकाशित करता है; बुद्ध की प्रज्ञा सारे जगत को आलोकित करती है।"
लेकिन वह अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि गुरु ने कहा, "आह! क्या तुम किसी दूसरे की पंक्तियां नहीं दुहरा रहे हो?"
शिष्य झिझका, तो उमोन ने उसकी आंखों में ध्यान से देखा। घबड़ा कर शिष्य
ने कहा, "हां।"
उमोन बोला, "तब तुम मार्गच्युत हो गए।"
कुछ समय बाद एक दूसरे गुरु शिशिन ने अपने शिष्यों से पूछा, "किस बिंदु
पर उमोन का शिष्य मार्गच्युत हुआ था?"
ओशो, इस रहस्य भरी परिचर्चा पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

बुद्ध के अंतिम शब्द, जो उन्होंने इस पृथ्वी पर कहे, वे सदा स्मरण रखने जैसे हैं। वे तीन छोटे से शब्द हैं--"अप्प दीपो भव"--अपना दीया स्वयं ही बनो; खुद के प्रकाश स्वयं ही बनो; बी ए लाइट अनटु दाई सेल्फ।
जैसे ही बुद्ध ने कहा--छोड़ता हूं इस शरीर को, आनंद रोने लगा। और उसने कहा, "हमारा क्या होगा? हम जो तुम्हारे पीछे चलते थे, हमने बड़ी आशाएं बांध रखी थीं। और अब सब अंधकार हो जाएगा। प्रकाश बुझा जाता है।" बुद्ध ने कहा, "अगर तुमने मुझे अपना प्रकाश समझा था, तो तुम भूल में थे। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही अपना प्रकाश हो सकता है।"
प्रकाश खोजना हो, तो भीतर खोजो। जिसने बाहर प्रकाश खोजा, वह अंधकार में ही भटकता रहेगा। "अप्प दीपो भव"--अपने प्रकाश खुद ही बनो।
और बड़ी अनूठा घटना है कि बुद्ध के जीते-जी आनंद ज्ञान को उपलब्ध न हुआ। बुद्ध के मर जाने के एक दिन बाद ही ज्ञान को उपलब्ध हो गया। चालीस साल तक बुद्ध के साथ रह कर ज्ञान को उपलब्ध न हुआ और एक दिन--केवल एक दिन बुद्ध के अभाव में--ज्ञान को उपलब्ध हो गया!
कहां अड़चन थी? बुद्ध की मौजूदगी उसे स्वयं को नहीं देखने देती थी। बुद्ध की मौजूदगी में वह बुद्ध की तरफ देख रहा था; आंखें बाहर लगी थीं। बुद्ध के हटते ही बाहर देखने योग्य कुछ भी न रहा। और जिसने बुद्ध को देखा हो, बुद्ध के हटने के बाद, उसे बाहर देखने योग्य रह भी क्या जाएगा! उसने सब कुछ देख लिया--जो इस जगत में देखने योग्य था। और इस जगत के पार जो था, अदृश्य जो था, उसकी भी झलक पा ली।
बुद्ध के मिटते ही आनंद की आंखें निश्चित ही बंद हो गई होंगी। संसार में देखने योग्य कुछ भी न बचा। उसी क्षण उसने स्वयं को देखा। और जैसे ही कोई स्वयं को देख ले, वैसे ही मार्ग पर आ जाता है। स्वयं का होना ही मार्ग है।
लेकिन मन कोशिश करता है--दूसरे के अनुसरण की। क्योंकि नकल आसान है; वास्तविक होना कठिन है। यह सदा सरल है कि तुम किसी और का अभिनय करो। क्योंकि अभिनय तो ऊपर होता है। भीतर तो तुम जो थे, वही बने रहते हो। इसलिए मन अक्सर अनुकरण को चुनता है; प्रभावित होता है; किसी दूसरे के ढंग से जीना शुरू करता है।
कितनी ही तुम चेष्टा करो, अगर तुम दूसरे के पीछे चल रहे हो, तो मंजिल भटक जाएगी। और इसलिए जीवन की गहरी से गहरी कला यह है--बुद्ध-पुरुषों के पास होकर भी उनके अनुकरण से बचना। उनके पास न हुए, तो भी न चलेगा। उनके पास होकर नकल में पड़ गए, तो भी न चलेगा, दोनों के मध्य में एक बिंदु है--जहां मार्ग है।
बुद्ध-पुरुषों के पास होना सौभाग्य है। लेकिन उनकी लीक पर चल पड़ना दुर्भाग्य है। उनसे तुम बुद्धत्व सीखना, आचरण नहीं। उनके जीवन की बाह्य रूपरेखा को तुम अपने जीवन का नक्शा मत बनाना। क्योंकि एक व्यक्ति के जीवन

की बाह्य रूपरेखा दूसरे के लिए कारागृह सिद्ध होती है। क्योंकि तुम पृथक हो, तुम भिन्न हो। तुम बस, तुम ही जैसे हो।
तो किसी भी दूसरे के नक्शे से अगर तुमने अपने जीवन का ढांचा बनाया, तो तुम्हारा अपना ढांचा कुंद हो जाएगा। तुम्हारे अपने विकसित होने की संभावनाएं क्षीण हो जाएंगी। वह दूसरा तुम्हारे लिए कारागृह बन जाएगा। और पत्नी क्या कारागृह बनेगी? पति क्या कारागृह बनेंगे? बुद्ध-पुरुषों के पास कारागृह निर्मित कर लेना बहुत आसान है। दुनिया के सभी कीमती कारागृह बुद्ध-पुरुषों के आसपास निर्मित हुए हैं। उनका नाम चाहे इस्लाम हो, चाहे हिंदू हो, बौद्ध हो, चाहे जैन हो। ये जो बड़े-बड़े कारागृह हैं--संप्रदायों के, ये बुद्ध-पुरुषों के पास निर्मित हुए हैं।
और बुद्ध-पुरुषों के पास जब कोई कारागृह निर्मित होता है, तो वह करीब-करीब स्वर्ण का है। उसे छोड़ने का मन भी न होगा। उससे तुम चिपटोगे, उसे तुम पकड़ोगे। और इन कारागृहों के बाहर किसी भी संतरी को खड़ा करने की जरूरत नहीं है। तुम खुद ही भागना न चाहोगे।
इस बात को स्मरण रखना।
लेकिन मध्य का बिंदु क्या होगा? प्रभावित भी होना, अनुकरण भी मत करना। बड़ी विरोधाभासी बात है। क्योंकि तुम तो जैसे ही प्रभावित होते हो, वैसे ही अंधानुकरण पैदा हो जाता है। तुम्हारे लिए तो प्रभावित होने का अर्थ ही यह होता है कि अनुकरण करो।
बुद्ध-पुरुषों से जो भी तुम लेना, बस वैसे ही ज्योति लेना, जैसे एक दीया--बुझा हुआ दीया दूसरे जलते हुए दीये से ज्योति ले लेता है, फिर स्वयं चल पड़ता है--अपनी यात्रा पर। फिर उसकी ज्योति-धारा अपनी ही होती है; अपना ही तेल जलता है, अपना ही दीया होता है।
एक झलक, एक छलांग और आग एक दीये से दूसरे दीये में प्रवेश कर जाती है। प्रभावित होने का इतना ही अर्थ है कि बुद्ध पुरुषों के पास तुम्हारी प्यास जग जाए, आग पकड़ जाए।
जीसस ने कहा हैः "जो मेरे पास हैं, वे आग के पास हैं। और जो मेरे पास नहीं हैं, परमात्मा का राज्य उनसे बहुत दूर है।... जो मेरे पास हैं, वे आग के पास हैं। जो मेरे पास नहीं हैं, परमात्मा का राज्य उनसे बहुत दूर है।" आग के पास होना, बस, इतने ही अर्थ में उपयोगी है कि एक छलांग लगे और आग तुम्हें पकड़ जाए। लेकिन तुम नकल मत करना, क्योंकि नकल की आग झूठी होगी। उसे तुम ऊपर से तो धारण करोगे, भीतर तुम अंधेरे रहोगे।
कितना आसान है--बुद्ध-पुरुषों जैसे वस्त्र पहन लेना। कितना आसान है-- उनके जैसे उठना, बैठना, चलना, और कितना कठिन है, उनके जैसा हो जाना! वह जो भीतर है, वह जो जीवंत ज्योति भीतर है, उसके जैसा हो जाना अति कठिन है। इसलिए हम सुगम मार्ग खोजते हैं।
मन सदा ही लीस्ट रेसिस्टेंस--जहां कम से कम असुविधा हो, उसको चुनता है। असुविधा इसमें कुछ भी नहीं है कि तुम बुद्ध जैसा वस्त्र पहन लो, कि तुम बुद्ध जैसे उठो--बैठो; बुद्ध जो भोजन करें, तुम भी करो; बुद्ध जब सोएं, तब तुम भी सो जाओ। तुम बाहर से बिल्कुल अभिनय करो।
अभिनेता हो जाना सबसे सरल है। लेकिन अभिनेता प्रामाणिक नहीं है। अभिनेता एक झूठ है। और तुम भलीभांति जानते रहोगे कि अभिनय बाहर-बाहर है। भीतर तुम्हें अपना अंधकार, अपनी नग्नता, अपनी सड़ी-गली स्थिति दिखाई पड़ती रहेगी।
तुम उसे कैसे छिपाओगे? वस्त्र कितने ही सुंदर हों, और आभूषण कितने ही मूल्यवान, लेकिन तुम्हारे भीतर के नासूर उनसे मिटेंगे नहीं, छिपेंगे भी नहीं।
तो बुद्ध-पुरुषों से यह सीखना कि तुम अपने मार्ग पर कैसे चलो। बुद्ध-पुरुषों से अनुकरण मत सीखना। उनसे तुम यह सीखना कि तुम्हारा बुद्धत्व कैसे जगे। आंख बंद करके अंधे की भांति उनके पीछे मत चलना। क्योंकि उनका मार्ग, तुम्हारा मार्ग कभी भी होने वाला नहीं है। इसलिए जो अनुकरण करेगा, वह भटक जाएगा। यह पहली बात समझ लें।

और दूसरी बात यह समझ लेकिन केवल तुम आचरण में अनुकरण करते हो, तुम ज्ञान में भी पुनरुक्ति करते हो! तुम सुन लेते हो और दुहराने लगते हो। तुम्हारा दुहराया हुआ, तुम्हारे हृदय से नहीं आता है--तुम्हारे कंठ तक से नहीं आता। बस, तुम्हारे ओंठों पर ही होता है। तुम्हारे कान तुम्हारे ओंठों को दान देते रहते हैं। तुम सुनते हो और तुम्हारे ओंठ बोलते रहते हैं। तुम्हारे कान और तुम्हारे ओंठ के बीच सीधा द्वार है। तुम्हारे हृदय को वह द्वार छूता भी नहीं है।
तुम जो बुद्ध-पुरुषों से सुनो, तुम बुद्ध-पुरुषों के संबंध में सुनो, उसे तुम दुहराना मत। तुम तोते मत बन जाना। तुम उसे हृदय से गुजरने देना। और जब भी कोई ज्ञान की किरण हृदय से गुजरती है, तब वह तुम्हारी अपनी हो जाती है। तब तुम दुहराते नहीं हो, तब तुम्हारा जानना बाधा नहीं होता। तब उसमें वही ताजगी होती है, जो सुबह की पहली किरण में होती है; वही नयापन होता है, जो सुबह की ओस में होता है।
शास्त्रों से जिसने सुन लिया, सदगुरुओं से जिसने सुन लिया और फिर उसे दुहराने लगा, वह पंडित हो जाएगा--ज्ञानी नहीं। और पंडित मार्गच्युत है; उसका रास्ता खो गया है। अज्ञानी भी पहुंच जाएंगे, पंडित कभी पहुंचते नहीं सुने गए हैं।
अब हम इस छोटी सी वार्ता में प्रवेश करें।
एक शिष्य ने गुरु उमोन से कहा, "बुद्ध का प्रकाश समस्त विश्व को प्रकाशित करता है। बुद्ध की प्रज्ञा सारे जगत को आलोकित करती है।"
पढ़े होंगे कहीं उसने ये शब्द, क्योंकि कहां हैं वे आंखें, जो देख पाएं
कि "बुद्ध का प्रकाश समस्त जगत को प्रकाशित करता है?" और जो यह देख लेगा, वह स्वयं ही बुद्ध हो गया। कहां है वह हृदय, जो अनुभव कर पाए कि "बुद्ध की प्रज्ञा सारे जगत को आलोकित करती है?" और जिसने यह अनुभव कर लिया, वह स्वयं ही बुद्ध हो गया।
बुद्ध हुए बिना बुद्धत्व की घटना को समझना आसान नहीं है। बौद्ध होने
से न चलेगा; "बुद्ध" होना पड़ेगा। जैन होने से नहीं चलेगा; "जिन" होना पड़ेगा। क्रिश्चियन होने से काम चलता होता, तो आधी दुनिया स्वर्ग में प्रवेश कर गई होती; "क्राइस्ट" होना पड़ेगा।
क्रिश्चियन होना कितना आसान है, क्राइस्ट होना कितना मुश्किल है! क्रिश्चियन होने में कुछ भी तो नहीं खोना पड़ता है। वह सौदा बिल्कुल सस्ता है। तुम गंवाते कुछ भी नहीं हो और पाने की पूरी आशा है। दांव पर तुम कुछ भी नहीं लगाते और जीत का पूरा सपना है!
जीसस ने कहा हैः "जो समझना चाहें, उसे--जिसकी मैं बात कह रहा हूं, उसे मेरे ही जैसे सूली अपने कंधों पर ढोनी पड़ेगी।" और जीसस ने कहा हैः "जब तक सूली पर न लटक जाओ, तब तक वह स्वर्ग का राज्य तुम्हारे लिए खुलेगा नहीं।" बड़ी विचित्र घटना मनुष्य के इतिहास में घटती है। जीसस को ढोनी पड़ी अपनी सूली गोलगोठा तक--जहां उनको सूली लगाई गई। जिस कारागृह में उन्हें बंद किया गया था, उस कारागृह से जब सिपाही उन्हें ले चले, तो उन्होंने उनकी सूली को उनके ही कंधे पर रख दिया। जीसस गोलगोठा की पहाड़ी पर चढ़ रहे हैं-- पसीने से लथपथ। लोग पत्थर फेंक रहे हैं, गालियां दे रहे हैं। और जीसस सूली भी अपनी, अपने कंधे पर ढो रहे हैं।
फिर ईसाई पादरी हैं, पुरोहित हैं; वे भी सूली अपने कंधे पर टांगे हुए हैं। उनकी सूली स्वर्ण की है। ईसाई पादरी सोने का क्रास अपने गले में लटकाए हुए हैं! एक सूली थी लकड़ी की, जो भारी थी, वजनी थी; पहाड़ की चढ़ाई थी, चारों तरफ अपमान और गाली थी। और अपनी ही सूली पर क्षण भर बाद जीसस को लटक कर मर जाना था। और एक सूली सोने की है, जो बड़ी कीमती है; जो भारी नहीं है; और जिसके कारण अपमान नहीं मिलता, प्रतिष्ठा मिलती है, सम्मान मिलता है, सत्कार मिलता है!
आदमी बड़ा कुशल है, लकड़ी की असली सूलियों को सोने की नकली सूलियों में बदल लेता है। क्रिश्चियन होना हो तो यह ठीक है, लेकिन क्राइस्ट होने के लिए यह काफी नहीं है। शायद क्राइस्ट होने के लिए यही बाधा है।

जब उमोन के शिष्य ने यह कहा, तो उमोन को देखने में क्षण भर भी देर न लगी होगी। देखने की जरूरत भी नहीं है। ज्ञानी-पुरुष के सामने अगर तुम उधार ज्ञान प्रकट करो, तो वह आंखें बंद किए भी देख लेगा। टटोलने की भी जरूरत नहीं है।
तुम्हारे शब्द इतने बासे और सड़े होते हैं, ऐसे ही जैसे किसी चेहरे पर रंग-रोगन किया गया होता है। उससे किसको धोखा होता है? कौन धोखे में पड़ता है? शायद तुम ही दर्पण के सामने खड़े होकर अपने को सुंदर समझ लेते हो, तो बात दूसरी है। अन्यथा तुम्हारे चेहरे पर लगा हुआ रंग-रोगन, सिर्फ तुम्हारी कुरूपता का प्रदर्शन होता है।
उमोन को देखने में क्षण भर की भी देर न लगी होगी कि ये शब्द किसी और के हैं। ये होंगे ही--किसी और के। क्योंकि उस शिष्य को वह भलीभांति जानता है। जो अभी अंधेरे में भटक रहा है, उसे कैसे दिखाई पड़ा कि "सारा जगत बुद्ध के प्रकाश से आलोकित है?" और जिसके हृदय की पहली धड़कन भी अभी नहीं खुली, उसे कैसे समझ में आया कि बुद्ध की प्रज्ञा से सारा जगत आंदोलित है?
ये शब्द उधार हैं। उधार ज्ञान बड़ा जहरीला है। किसी और को नहीं मारता है, तुम्हीं को मारता है। तुम ही उधार ज्ञान के नीचे दबते हो, सड़ते हो, भटकते हो।
अज्ञान नहीं भटकाता है, उधार ज्ञान निश्चित भटकाता है। अज्ञान तो विनम्र होता है कि "मुझे पता नहीं है।" इसलिए जानने की संभावना रहती है। उधार ज्ञान विनम्र नहीं होता है; उधार ज्ञान अकड़ से भरा होता है कि "मुझे पता है।"
और जब इस शिष्य ने कहा होगा उमोन के सामने कि "बुद्ध का प्रकाश समस्त विश्व को प्रकाशित करता है; बुद्ध की प्रज्ञा सारे जगत को आलोकित करती है", तो बड़ी अकड़ से कहा होगा। लेकिन अकड़ न हो, तो ऐसे शब्द कहे ही नहीं जा सकते। और उमोन के सामने इन शब्दों को कहने की जरूरत क्या थी? उमोन खुद बुद्धपुरुष है। उमोन के सामने ये शब्द शिष्य कह रहा है--ज्ञान के प्रदर्शन के लिए। वह बताना चाहता है कि उमोन स्वीकार करे कि मैं भी जानता हूं, मुझे भी पता है। यह एक आत्म-प्रदर्शन है।
लेकिन उमोन जैसे गुरुओं से बचने का उपाय नहीं है। वे तुम्हें वहां तक देख लेंगे, जहां तक तुमने भी स्वयं को नहीं देखा है। तुम उनके पास जाते हो, तो वे तुम्हारे आर-पार देख पाते हैं। तुम उनके लिए ट्रांस्पेरेंट हो। तुम्हारे छिपने का कोई उपाय नहीं है। तुम्हारी सब नग्नता उनके सामने उघड़ जाती है।
काश! यह शिष्य चुप बैठा रहता, तो बेहतर था। बोल कर ही यह फंसा।
ज्ञानियों ने कहा है कि ज्ञानी तो "चुप हो" जाते हैं। अज्ञानी को "चुप रहना" चाहिए। ज्ञानी चुप हो जाते हैं, अज्ञानी को चुप रहना चाहिए; क्योंकि अज्ञानी बोला कि फंसा। तुम बोले नहीं, कि तुम गलत हुए नहीं। तुम्हारे मौन में तुम ठीक हो। लेकिन बोलते ही तुम उपद्रव मोल लेते हो।
ज्ञानी चुप हो जाते हैं, अज्ञानी को चुप्पी साधनी चाहिए। और सदगुरुओं
के पास--उमोन जैसे सदगुरुओं के पास अगर तुम बोल रहे हो, तो तुम बिल्कुल पागल हो। उनके पास बोल कर तुम क्या सीखोगे? उनके पास बोल कर तुम भटकोगे। उनके पास तुम्हें ऐसे हो जाना चाहिए, जैसे तुम हो ही नहीं। ताकि तुम्हारे न--होने में उनका होना पूरा का पूरा परिव्याप्त हो सके, ताकि तुम्हारी शून्यता उनकी ध्वनि से भरे, ताकि तुम्हारे निर्जन एकांत में उनका प्रकाश तुम्हें जगा सके।
जब तुम बोलते हो, ध्यान रहे--बोलना और चुप होना विपरीत प्रक्रियाएं हैं। जब तुम बोलते हो, तब आक्रमण है। जब तुम चुप होते हो, तब ग्रहण है। गुरु बोले--समझ में आता है, क्योंकि तुम्हारे भीतर कुछ मिटाना है, तोड़ना है। गुरु आक्रामक होगा, अन्यथा वह तुम्हें बदल भी न पाएगा। शिष्य बोले--समझ में नहीं आता है। क्योंकि शिष्य अगर बोले, तो ग्रहण बंद हो जाता है। तब यह रिसेप्टिव नहीं है, तब वह आक्रामक हो गया।
उमोन के सामने "चुप" होना था। उमोन के सामने बोल कर तुम सिर्फ अपना अज्ञान ही प्रकट करोगे। लेकिन चुप होना बड़ा कठिन है।

मैंने सुना हैः रमजान के दिन थे। लोग उपवास कर रहे थे और दिन-दिन भर लोग मस्जिदों में नमाज पढ़ रहे थे। रमजान के दिनों में मस्जिदों में चुप होना जरूरी है। जहां भी धर्म है, वहां चुप होना जरूरी है। क्योंकि तुम जब तुम चुप हो, तभी धर्म बोल पाता है। जब तुम बोलते हो, तब धर्म चुप हो जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन भी मस्जिद गया था। जाना तो नहीं था, जाने का कोई मन
भी न था, लेकिन प्रतिष्ठा का सवाल था। जो मस्जिद न जाएगा--रमजान के दिनों में--गांव उसे अधार्मिक मानता है। और अधार्मिक होना जरा महंगा सौदा है। रेस्पैक्टीबिलिटी चाहिए--समाज में जीना हो, तो धार्मिक होना--कम से कम दिखाई पड़े, इतना तो चाहिए। क्योंकि जब तुम्हें लोग धार्मिक समझते हैं, तब तुम धोखा आसानी से दे सकते हो। जब लोग तुम्हें अधार्मिक समझते हैं, तब तुम्हारी दुकान का चलना बहुत मुश्किल हो जाता है। चोर को भी यहां मस्जिद में जाकर नमाज पढ़नी पड़ती है। बेईमान को भी मंदिर की तरफ जाना पड़ता है। इससे बेईमानी करने में सुविधा होती है।
सारा गांव जा रहा था, तो मुल्ला नसरुद्दीन को भी जाना पड़ा। एक कोने में बैठकर वह भी आंख बंद करके नमाज कर रहा है। उसके पास बैठे एक आदमी ने कहा--बोलना नहीं था, नियम के विपरीत था--उस आदमी ने कहा, "पता नहीं, मैं घर में ताला लगा पाया या नहीं।" दूसरे आदमी ने सुना, उसने कहा, "बोले! सब खराब कर डाला। अब फिर से नमाज पढ़नी पड़ेगी।" नसरुद्दीन ने कहा, "थैंक गॉड। आई हैव नॉट स्पोकन येट, परमात्मा का धन्यवाद। मैं अभी तक नहीं बोला; मैं चुप ही हूं।"
वह जो आक्रामक चित्त है, वह बोलता ही चला जाता है। उसे होश भी नहीं है
कि वह बोल रहा है। जब तुम बाहर से चुप दिखाई पड़ते हो, तब भी वह भीतर बोलता जाता है। उमोन के सामने बोलने की कोई जरूरत न थी। उमोन के सामने तो मस्जिद में हो। वह तो नमाज वक्त है। मंदिर में हो; वह तो पूजा का स्थल है, वहां तुम्हें चुप होना चाहिए। गुरु के पास केवल वही पहुंच पाता है, जो चुप है। देखा होगा उमोन ने कि बोलता है! निश्चित ही उधार बोल रहा है।
लेकिन वह अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया और गुरु ने कहा, "आह! क्या तुम किसी दूसरे की पंक्तियां नहीं दुहरा रहे हो?"
बात अभी भी पूरी नहीं हो पाई थी, इसलिए यह निर्णय बात को सुन कर नहीं लिया गया है। क्योंकि बात को अगर सुनकर निर्णय लेना था, तो कम से कम शिष्य को पूरा बोल तो लेने देते! अभी वह क्या कहना चाहता था, यह भी पूरा नहीं हो पाया है। अभी उसने पंक्ति शुरू ही की थी। लेकिन उमोन को निर्णय--कोई सुन कर लेने का सवाल नहीं है। शिष्य बोला, इसी में निर्णय हो गया। शिष्य बोला, इतने में ही बात तय हो गई।
गुरु के सामने प्रदर्शन की जो वृत्ति है, वह अज्ञान से ही उठ सकती है। गुरु के सामने अपने को ज्ञान में ढांकने की कोशिश आत्मघाती है। यह वैसे है, जैसे कोई मरीज डाक्टर के पास जाए और बीमारी बताने से इनकार करे या छिपाए। लेकिन तुम डाक्टर के पास जाकर सारी बीमारियां बता देते हो। लेकिन यही तुम गुरु के पास नहीं करते हो। गुरु के पास तुम कोशिश करते हो--दिखाने की, कि तुम स्वस्थ हो। इलाज कैसे होगा? और फिर तुम चाहते हो इलाज!
मेरा रोज का अनुभव है। मैं लोगों से पूछता हूं, "क्या है तकलीफ?" वे कहते हैं, "कोई तकलीफ नहीं है।" तकलीफ साफ है! तकलीफ से ज्यादा और कुछ भी साफ नहीं है। तकलीफ ही तकलीफ है। पर वे कहते हैं, "कोई तकलीफ नहीं है। सब ठीक है।" अगर मैं इंगित करूं कि यह बीमारी है, तो वे बुरा मानेंगे। और अगर मैं इंगित भी करता हूं, तो मैं पाता हूं, वे इनकार करते हैं कि "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है!"
तुम क्यों छिपाते हो--अपने को? और बीमारियां कहीं छिपाने से मिटी हैं? उन्हें उघाड़ना ही होगा। और जहां सर्जरी करनी हो, वहां उन्हें पूरा ही उघाड़ना होगा; उनकी जड़ तक जाना होगा। और तुम्हारी हड्डियों तक जड़ है। तुम्हारी मांस-मज्जा--सभी में जड़ है। तुम्हारी पूरी भूमि को खोदना पड़ेगा; तुम्हारी बीमारियों के बीज मूल से अलग करने होंगे।

तुम छिपाओगे तो कैसे होगा? लेकिन तुम शरीर के संबंध में ज्यादा होशियार हो। तुम चिकित्सक के पास जाकर सब खोल कर बता देते हो। आत्मा के संबंध में तुम्हारी होशियार इतनी नहीं है; तुम छिपाते हो।
मैंने सुना है, स्टैलिन के संबंध में एक कहानी प्रचलित है। उसकी पुलिस--खुफिया पुलिस का प्रधान था--बेरिया। और स्टैलिन उसकी परीक्षा लेना चाहता था कि वह योग्य भी है या नहीं। एक सांझ वह मास्को में गया, कार में बैठ कर--बिना किसी को बताए। और वह सौ कार्ड टाइप किए हुए, मास्को की अलग-अलग सड़कों पर फेंक आया। किसी कार्ड में लिखा थाः "स्टैलिन बदमाश है।" किसी कार्ड में लिखा थाः "स्टैलिन पागल है।" किसी कार्ड में लिखा थाः "स्टैलिन व्यभिचारी है।" किसी कार्ड में कुछ। स्टैलिन को जितनी गालियां दी जा सकती थीं, सब सौ कार्डों पर लिख कर वह जगह-जगह फेंक आया।
सुबह स्टैलिन उठा ही था, चाय पी ही रहा था कि बेरिया मौजूद हुआ। उसने
सौ कार्ड टेबल पर लाकर रख दिए। स्टैलिन भीतर खुश हुआ कि आदमी कुशल है। ऊपर से नाराजगी दिखाई और कहा, "ये किसने लिखे हैं? कौन है, उसे पकड़ो। क्या तुमने पता लगाया है कि यह कौन आदमी है, जिसने ये कार्ड शहर में फेंके हैं?" बेरिया ने कहा, "महानुभाव वह आप ही हैं।" तब तो स्टैलिन भीतर और भी खुश हुआ। उसने कहा, "लेकिन तुमने पता कैसे लगाया?" बेरिया ने कहा, "आपके संबंध में इतनी सही बातें आपके सिवाय और किसी को पता भी कैसे हो सकती हैं!" लेकिन जब तुम गुरु के पास जाते हो, तो जो तुम्हें भी पता नहीं है, वह भी उसे पता हो जाता है। गुरु का अर्थ ही है कि वह एक्सरे है; वह तुम्हें आर-पार देखेगा। नहीं तो वह गुरु ही नहीं है। तुम्हारे कहने के लिए थोड़ी प्रतीक्षा करेगा, कि जब तुम कहोगे, तब वह पहचानेगा।
गुरु कोई एलोपैथिक डाक्टर नहीं है कि तुम कहोगे, तब पहचानेगा। वह पुराना आयुर्वेदिक है। तुम कमरे में प्रवेश नहीं किए कि उसने जाना कि कौन सी बीमारी है। तुमने सांस नहीं ली कि उसने पहचाना कि कौन सा रोग है। उसने तुम्हारी आंखों में देखा नहीं कि पकड़ा।
पुराने आयुर्वेदिक वैद्य का यही लक्षण था कि वह तुमसे पूछे न। तुमसे पूछा तो क्या वैद्य! तुमसे पूछा, फिर निदान किया, तो क्या वैद्य? बीमार से पूछकर क्या निदान होगा!
एलोपैथी मरीज को पूछती है; आयुर्वेद मरीज को "देखता" है। गुरु आयुर्वेदिक है--एलोपैथिक नहीं। तुम गए नहीं कि उसने पहचाना नहीं। तुम्हारा उठाना, तुम्हारा बैठना, तुम्हारी आंखें सब कह रही हैं। क्योंकि तुम एक खुली हुई अभिव्यक्ति हो। तुम पूरे क्षण अपने आपको ब्राडकास्ट कर रहे हो और कोई उपाय भी नहीं है।
तुम्हारी झिझक, तुम्हारी अकड़, तुम्हारा अहंकार, तुम्हारी झूठी विनम्रता, तुम्हारी छिपाने की कोशिश--सब प्रकट कर रही है। तुम प्रतिक्षण अपनी घोषणा कर रहे हो। तुम्हारी घोषणा एक क्षण को भी रुकती नहीं है; वह जारी है।
उमोन ने बात पूरी सुनी भी नहीं और बोला, "आह! तो क्या तुम किसी दूसरे
की पंक्तियां नहीं दुहरा रहे हो?" अभी पंक्तियां कही भी नहीं गई थीं। लेकिन पंक्तियां कहने की जरूरत नहीं है। तुम झूठे हो; तुम दुहराओगे।
तुम्हारे ओंठ झूठे हैं, उन पर जो भी आएगा, वह दुहराया हुआ होगा। तुम्हारी आंखें झूठी हैं, उनसे तुम जो भी देखोगे, वह प्रवंचना होगी।
शिष्य झिझका। अभी तो बात पूरी भी न हुई थी और निर्णय हो गया। शिष्य झिझका... ! अभी उसने सोचा भी नहीं था कि पकड़ा जाएगा और पकड़ लिया गया।
तो उमोन ने उसकी आंखों में गौर से देखा, ध्यान से देखा। क्योंकि जब तुम झिझकते हो, तब तुम्हारे जीवन की सरिता पूरी की पूरी झकझोर उठती है। जब तुम झिझकते हो, तब तुम्हारे चित्त का पूरा दर्पण कंप उठता है। क्योंकि झिझकने का क्या अर्थ होता है? --झिझकने का अर्थ होता है कि तुम्हारे भीतर द्वैत है, द्वंद्व है। एक हिस्से पर तुम जानते हो कि गुरु ने जो कहा, वह ठीक है। और दूसरे हिस्से पर तुम झुठलाना चाहते हो कि "नहीं, यह ठीक नहीं है।" तुम दो हो गए। जहां तुम दो हुए, वहां तुम झिझके। जहां तुम एक हो, वहां झिझक नहीं है।

तुम जितने बंटे हो, उतनी झिझक होगी। तुम जितने अनबंटे हो, उतनी झिझक नहीं होगी। जब तुम एक होते हो, तब कोई झिझक नहीं होती है।
इस झिझक के आधार पर पश्चिम में लाई डिटेक्टर विकसित किया गया है। अब
तो अदालतों में उसका उपयोग करते हैं--झूठ पकड़ने के लिए। लेकिन सदगुरु सदा से जानते रहे हैं कि झिझक द्वंद्व की खबर है।
अभी पिछले पचास वर्षों में वैज्ञानिकों ने एक यंत्र विकसित किया है। तुम्हें पता नहीं होता; अदालत में तुम जाते हो; तुम मंच पर खड़े किए गए-- कटघरे में--और तुमसे कुछ पूछा गया है। नीचे यंत्र लगा हुआ है। वह यंत्र तुम्हारी झिझक पकड़ेगा। जब भी तुम झिझकोगे, तब वह यंत्र खबर दे देगा कि यहां यह आदमी झिझका। और जहां तुम झिझके, वहीं झूठ है।
जब तुम झिझकते हो, तो तुम्हारे हृदय की धड़कन एक क्षण को रुक जाती है। एकाध धड़कन बीच में खो जाती है। गैप बड़ा होता है। जब तुम झिझकते हो, तब तुम्हारे खून की गति बदल जाती है। जब तुम झिझकते हो, तब तुम्हारे मन में एक झंझावात आ जाता है। जब तुम झिझकते हो, तब तुम्हारे भीतर दो उत्तर होते हैं--हां भी और न भी।
जैसे कि तुम खड़े हो अदालत में और तुमसे पूछा गया, "इस समय घड़ी में कितना बजा है?" झिझकने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि घड़ी में अगर नौ बजा है, तो नौ बजा है। घड़ी अदालत में लगी है। तुम कहते हो, "नौ बजे हैं।" तुम्हारा उत्तर इकहरा होता है। तुम्हारे भीतर कोई भी नहीं कहता है कि "नौ नहीं बजे हैं।" तुम दो नहीं होते।
फिर तुमसे पूछा गया, "अदालत में कितने लोग हैं?" तो तुम गिनती करके बात देते हो, कि दस लोग हैं। कोई झूठ का कारण नहीं है। नीचे मशीन तुम्हारे हृदय की धड़कन को, तुम्हारे श्वासों की गति को, तुम्हारे खून के प्रवाह को, तुम्हारे व्यक्तित्व की बेझिझक स्थिति को अंकित कर रही है। जैसे कार्डियोग्राम करता है, वैसे ही; नीचे लकीरें बन रही हैं। तुम एक स्वरबद्ध हो।
फिर तुमसे पूछा गया, "क्या तुमने हत्या की?" एक झटका लगा। तुम जानते हो
कि तुमने की इसलिए कोई उपाय नहीं है कि तुम्हें झटका न लगे। तुम भलीभांति जानते हो कि तुमने हत्या की है। इसलिए तुम्हारे भीतर का प्राण तो कहता हैः "हां।" परंतु तुम भलीभांति जानते हो कि अगर तुमने "हां" कहा, तो तुम्हारी मौत करीब है। तो तुम्हारा मन कहता है--"नहीं।" तुम्हारा हृदय कहता है--"हां।" भीतर एक द्वंद्व खड़ा हो जाता है। एक ही साथ विपरीत उत्तर आते हैं। इन विपरीत उत्तरों के कारण नीचे की मशीन अंकित करती है कि तुम डांवाडोल हो गए, झिझक गए। बस इसी बिंदु पर तुम पकड़ लिए जाते हो।
जब भी तुम झूठ बोलते हो, तब तुम झिझकते हो। इसलिए जो लोग झूठ बोलते हैं--निरंतर, अगर वे हृदय की बीमारी से पीड़ित हों, तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि निरंतर अगर इस तरह के झटके लगेंगे, तो हृदय की बीमारी बढ़ जाएगी। दुनिया में जितना झूठ बढ़ा है, उतनी हृदय की बीमारी बढ़ी है। गांव के गरीब आदिवासी हृदय की बीमारी से नहीं मरते। जितना सफल आदमी होगा, उतना ज्यादा हृदय की बीमारी से मरता है। पोलिटीशियन, बड़ा राजनीतिज्ञ, बड़ा नेता, बड़ा धनपति--ऐसे लोग हृदय की बीमारी से मरते हैं। कारण साफ-साफ हैः इतना झूठ बोलना पड़ता है! सुबह से शाम तक झूठ ही झूठ बोलना पड़ता है। हृदय को इतने धक्के लगते हैं कि हृदय की जो सहज स्वाभाविकता है, वह नष्ट हो जाती है। पश्चिम में तो एक मजाक है अब, कि जो व्यक्ति चालीस या पैंतालीस साल की उम्र तक हृदय के आघात से पीड़ित नहीं हुआ, उसका जीवन बेकार गया। वह सफल आदमी नहीं है। वह असफल है।
एक राजनीतिज्ञ चुनाव के लिए खड़ा हुआ था। वह मुझसे पूछने आया कि "क्या मैं उसे वोट करूंगा?" तो मैंने कहा, "तुम जरा देर से आए। तुम्हारा विरोधी पहले आ गया। और मैंने उसे वचन दे दिया है।" उस राजनीतिज्ञ ने कहा, "आप भी कहां की बातों में पड़े हैं! राजनीति में वचन देना और उसे पालन करने का कोई सवाल नहीं है। वचन और कृत्य में राजनीति में बड़ा फर्क है।" तो मैंने उससे कहा, "अगर यह नियम है, तो मैं तुम्हें भी वचन दे देता हूं। तब कोई अड़चन नहीं है!"

राजनीति झूठ का जाल है; बाजार भी झूठ का जाल है। वहां सफल होने का अर्थ है--हृदय की दुर्बलता को खरीद लेना। सफल व्यक्ति हृदय की बीमारी से मरेंगे।
सदगुरु के सामने तुम जैसे ही झिझके, तुम्हारी चेतना में जरा सा कंपन हुआ कि उसे अनुभव होता है। सदगुरु से ज्यादा बड़ा "लाई डिटेक्टर" खोजना बहुत मुश्किल है। लाई डिटेक्टर को तो धोखा भी दिया जा सकता है। कुछ लोगों ने धोखा देकर दिखाया है। क्योंकि अगर तुम ठीक से अभ्यास करो, तो तुम धोखा दे सकते हो। मशीन मशीन है। और जो बहुत ख्यातिनाम चोर हैं, वे उस पर अभ्यास करेंगे ही, क्योंकि आज नहीं कल अदालत में अगर मशीन ही पकड़ने वाली है, तो मशीन पर अभ्यास किया जा सकता है। निरंतर अभ्यास से ऐसी स्थिति आ सकती है कि मशीन न पकड़ पाए। तुम झूठ इतनी सरलता से बोल सकते हो कि झटका न लगे। यह झटका इतना बारीक हो कि मशीन की पकड़ के बाहर हो जाए। लेकिन गुरु कोई यंत्र नहीं है। तुम कितने ही बारीक रहो, तुम पकड़ लिए जाओगे। झिझक सब कह जाएगी। झिझक सब कह जाती है।
शिष्य झिझका, तो उमोन ने उसकी आंखों में ध्यान से देखा। उमोन की यह चुप्पी शिष्य को बड़ी महंगी पड़ी होगी--बड़ी गहरी हुई होगी। शिष्य पसीने से तरबतर हो गया होगा। बहुत बार मन हुआ होगा कि कह दे कि "नहीं, ये मेरे ही वचन हैं। यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं।" इसीलिए गुरु ने आंख में गौर से देखा। ताकि शिष्य को धोखा देने की संभावना न रहे।
जब कोई ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति, कोई प्रबुद्ध-पुरुष आंख में गहरे देखता है, तो तुम्हारे झूठ की तरफ झुकने की संभावना कम हो जाती है। वह तुम्हें धक्का दे रहा है--सत्य की तरफ। उसका ध्यान तुम्हें सहारा दे रहा है--ध्यानी होने की तरफ। उसकी सच्चाई तुम्हें सरका रही है--सच्चाई की तरफ। उमोन ने ध्यान से देखा। घबरा कर शिष्य ने कहाः "हां।" यह "हां" भी घबड़ाहट में ही निकला। वह डर गया होगा। उसे यह भी समझ में आया होगा कि बात तो पकड़ ली गई है। पहचान तो मैं लिया गया हूं। धोखा अब दिया नहीं जा सकता। मुल्ला नसरुद्दीन एक बार पकड़ा गया। चोरी का मामला था। उसने चारों तरफ देखा। जूरी में बारह स्त्रियां थीं। उसने मजिस्ट्रेट से कहा, "मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूं।" मजिस्ट्रेट ने कहा, "लेकिन अभी हमने कुछ पूछा ही नहीं है। तुमने अपराध स्वीकार कर लिया!" उसने कहा, "अपने घर मैं एक औरत को धोखा नहीं दे पात हूं, यहां बारह हैं। यह असंभव है। पहले से ही स्वीकार कर लेना ठीक है।"
अगर कोई तुम्हारी आंखों में गौर से देखे, तो धोखा देना मुश्किल हो जाता है। पुरुष स्त्रियों को धोखा नहीं दे पाते। कारण क्या होगा? बहुत कोशिश करते हैं, लेकिन स्त्री बुनियादी रूप से पकड़ लेती है। कारण है-- स्त्री का प्रेम। वह तुम्हें सीधी आंख में देख सकती है।
क्या तुमने कभी ख्याल किया कि जब भी तुम प्रेमपूर्ण नहीं होते, तो तुम दूसरे की आंख में देखने से बचते हो। या जब भी तुम झूठे होते हो, तब तुम इस बाजू, उस बाजू देखते हो; तुम सीधा नहीं देखते। पति को पता भी नहीं कि जब भी वह सीधा नहीं देखता, तभी पत्नी उसको पकड़ लेती है कि मामला कुछ गड़बड़ है--पति यहां-वहां देखता है!
आंख दर्पण है। और आंख में सब कुछ है। तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व है। स्त्रियां आंख देखने में कुशल हैं। तुम्हारा पूरा शरीर धोखा दे सकता है, क्योंकि वह बहुत स्थूल है। आंखें बहुत सूक्ष्म हैं; वे धोखा नहीं दे सकतीं। और आंखों को धोखा देना सिखाना बड़ी लंबी प्रक्रिया है--कि आंखें भी धोखा दें।
और चूंकि स्त्री तुम्हें प्रेम करती है, इसलिए तुम धोखा नहीं दे पाते। गुरु को तो तुम धोखा दे ही नहीं पाओगे, क्योंकि उस जैसा प्रेम तुम्हें कोई भी नहीं कर सकता। वह असंभव है, वह घटना कभी नहीं घटी। इस जगत के सभी प्रेम बहुत छोटे-छोटे हैं; गुरु के प्रेम का तो कोई मुकाबला नहीं है।
गुरु के सामने तुम, तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व ही आंख जैसा--निर्मल दर्पण की तरह साफ दिखाई पड़ने लगता है। तुम सब तरफ से दिखाई पड़ते हो। तुम

यहां-वहां देख कर भाग नहीं सकते हो। तुम कहीं भी भागोगे, गुरु से बचना असंभव है। एक बार तुम गुरु के पास पहुंच जाओ, तो भागने का उपाय नहीं है। वह तुम्हारा पीछा करेगा।
शिष्य ने घबड़ा कर कहा, "हां।" चाहा तो होगा कि कह दे "नहीं।" इसलिए घबड़ाहट पैदा हुई। क्योंकि जब तुम सत्य को स्वीकार करने को जो राजी होते हो, तो कोई घबड़ाहट पैदा नहीं होती है। घबड़ाहट पैदा ही तब होती है, जब तुम सत्य को स्वीकार करने को राजी नहीं होते हो। जब तुम सत्य को स्वीकार करते हो, तब तुम क्यों घबड़ाओगे? घबड़ाना किससे है?
सब घबड़ाना--अपने ही झूठ से घबड़ाना है। इसलिए जो आदमी झूठ बोल रहा है वह
न तो ठीक से सो सकता है, न आराम कर सकता है, न ध्यान कर सकता है, न प्रेम कर सकता है। क्योंकि ये सब चीजें तभी संभव हैं, जब घबड़ाहट न हो। जो आदमी झूठ बोल रहा है, वह प्रतिपल घबड़ाया हुआ है।
सत्य धर्म है--इसलिए नहीं कि सत्य से भविष्य से स्वर्ग मिलेगा; सत्य धर्म है--इसलिए कि सत्य के कारण तुम्हें यहीं और अभी स्वर्ग मिल जाएगा। झूठ पाप है--इसलिए नहीं कि नरक ले जाएगा; झूठ में तुम हुए कि तुम नरक में पहुंच ही गए। झूठ में जीने वाला व्यक्ति प्रतिपल नरक में जीता है। कोई दूसरा पैदा नहीं करता नरक। तुम्हारा झूठ ही तुम्हारे व्यक्तित्व को इतनी घबड़ाहट से भर देता है कि तुम नरक में जीते हो।
नरक का अर्थ है--घबड़ाए हुए जीना। स्वर्ग का अर्थ है--निश्चित जीना। स्वर्ग का अर्थ है--ऐसे जीना कि जीवन में, जीवन के अंतस्तलों में जरा सी भी लहर बेचैनी की न हो; एक गहन विश्राम हो।
जीसस अपने शिष्यों को बार-बार कहते हैं, "आओ मेरे पास, मैं तुम्हें विश्राम दूंगा।" कैसे जीसस विश्राम देंगे? सत्य विश्राम का मार्ग है--झूठ तनाव का।
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, "मेरे मन में बड़ा तनाव है। मन में बड़ी बेचैनी है। आप कुछ करें।" मन में तनाव है--इसका मतलब है, तुम झूठ हो। अब मैं क्या करूं! मन में बेचैनी है, तो उसका अर्थ है कि तुम जो भी कर रहे हो, उससे जीवन तुम्हारा कंपित हो रहा है। और अगर मैं उनसे कहूं कि तुम वह सब छोड़ दो, जिससे जीवन में बेचैनी है, तो वे कहते हैं, "यह तो मुश्किल है। आप ऐसी कोई तरकीब बताएं कि मैं शांत हो जाऊं।"
इस फर्क को आप समझ लें।
अशांत न हों, उसकी तरकीब है। शांत होने की कोई तरकीब नहीं है। स्वस्थ होने की कोई तरकीब नहीं है दुनिया में; बीमारी कैसे न हों--इसकी तरकीब है। बस, जो बीमार नहीं है, वह स्वस्थ है।
लेकिन तुम, अपनी बीमारी का जो-जो लाभ है, वह लेना चाहते हो और शांत भी होना चाहते हो। तुम असंभव की मांग कर रहे हो। तुम चाहते होः "दुकान भी चलती रहे, झूठ भी चलता रहे; धोखा भी चलता रहे और तुम शांत भी हो जाओ!"
तुम जहर भी पीना चाहते हो और मरना भी नहीं चाहते हो! तब तुम गुरुओं की तलाश में जाते हो। तुम्हारी गुरुओं से आकांक्षा यह है कि वे असंभव कर दें। तुम जहर भी पीओ और वे तुम्हें मरने भी न दें!
तुम जब भी अशांत हो, उसका अर्थ है कि तुमने व्यक्तित्व के गलत आधार रखे हैं। तुमने मकान अपना रेत पर बनाया है, इसलिए जरा से हवा के झोंके में वह कंपता है और गिरने का डर होता है। या तुमने ताश का घर बना लिया है, जो गिरेगा ही। ताश का घर बना कर कोई मुझसे पूछता है कि "इसको मजबूत कैसे करें!" इसे गिरा ही दो। यह मजबूत होने वाला नहीं है। दूसरा ही घर बनाना होगा।
तुम्हारे चित्त अशांति केवल इतना ही बताती है कि तुम्हारा व्यक्तित्व गलत है।
शिष्य झिझका, घबड़ाया। घबड़ाहट में उसने कहा, "हां।" उसकी "हां" आधी थी।
और अगर ठीक से समझो, तो यह "हां" भी गुरु की आंखों ने--झांकती हुई आंखों ने निकलवा ली थी। अन्यथा वह "ना" कह देता। यह "हां" भी उसकी अपनी नहीं थी।
क्योंकि जब तुम्हारी अपनी "हां" निकलती है, तब तुम प्रसन्न हो जाते हो।

"हां" से बड़ी प्रसन्नता जगत में दूसरी नहीं है। क्योंकि तत्क्षण तुम एक हो जाते हो। तुम्हारे भीतर के सब द्वंद्व खो जाते हैं, जब तुम कहते हो--"हां।" लेकिन यह "हां" भी गुरु की झांकती हुई आंखों ने निकलवाई है। गुरु देख रहा है। गुरु का देखना इतना तीखा और पैना था कि शिष्य "ना", नहीं कह सका। चाहता तो "ना" ही कहना था। इसलिए मजबूरी में कहा उसने--"हां"। यह "हां" बहुत आनंदपूर्ण नहीं हो सकी। उमोन बोला, "तब तुम मार्गच्युत हो गए।" तुम्हारी "हां" भी अधूरी है। इसलिए तुम मार्गच्युत हो गए। काश! यह "हां" पूरी होती, तो भी मार्ग मिल जाता। पहले तो तुम झूठ बोले; पहले तो तुमने दूसरों के शब्द दुहराए; पहले तो तुमने जो ज्ञान तुम्हारा नहीं था, उसे अपना बताया। मैंने तुम्हारी आंखों में झांका, तो तुमने "हां" कहा। वह "हां" भी ऐसे, जैसे तुमने भय से कहा हो।
सुना है मैंनेः एक अदालत में एक मुकदमा है। जो मुकदमा है, वह एक कार एक्सिडेंट का है। एक गाड़ीवान अपनी गाड़ी लेकर रास्ते से जा रहा है और एक कार ने आकर उसे उलट दिया। अदालत में कार के मालिक के वकील ने इस गाड़ीवान से पूछा--जिसके हाथ-पैर टूट गए हैं, पलस्तर बंधा हुआ है, फ्रैक्चर हो गए हैं-- उससे पूछा, "क्या तुम्हें याद है कि दुर्घटना के ठीक बाद, कार के मालिक ने तुमसे पूछा था कि, "चोट तो नहीं लगी।" तो तुमने कहा था कि "नहीं लगी।" और अब तुम कह रहे हो कि तुम्हें बड़ी भयंकर चोट लगी!" उस आदमी ने कहाः "हां, मुझे भलीभांति याद है कि मैंने दुर्घटना के बाद कहा था कि मुझे चोट नहीं लगी। पर तुम पूरी कहानी सुन लो, फिर निर्णय लेना। मेरी गाड़ी उलटी; गाड़ी का एक बैल गड्ढे में गिरा, दूसरा बैल गिरते ही मर गया। एक बैल उलटा--चारों पैर ऊपर किए पड़ा था। सिर से लहूलुहान--खून बह रहा था। मैं भी गड्ढे में पड़ा था। हाथ-पैर टूट गए थे। उठने तक की हिम्मत नहीं थी। और तब उस कार का मालिक बाहर निकला। बैल तड़प रहा था। इसने अपनी बंदूक निकाली कार से; तड़पते हुए बैल को गोली मारी। वह वहीं ठंडा हो गया। और फिर इसने मुझसे पूछा, "तुम्हें भी तो चोट नहीं लगी?" तो मैंने कहा, "नहीं।" मैंने जरूर कहा थाः "नहीं", लेकिन परिस्थिति... ! नहीं तो मैं आज यहां होता ही नहीं।"
इस उमोन के शिष्य ने "हां" तो कहा, लेकिन गुरु की आंखों की वजह से "हां" कहा। यह "हां" अपने कारण न थी। इस "हां" में कोई प्रसन्नता न थी, कोई प्रफुल्लता न थी, घबड़ाहट थी। शायद "नहीं" कह कर ही यह ज्यादा प्रसन्न हुआ होता। क्योंकि इसके अहंकार की ज्यादा पूर्ति होती। "हां" कह कर तो इसका अहंकार धूल-धूसरित हो गया। "हां" कह कर तो यह फंस गया, पकड़ा गया--रंगे-हाथ पकड़ा गया। जैसे ही शिष्य ने "हां" कहा, उमोन बोला, "तब तुम मार्गच्युत हो गए।"
कुछ समय बाद एक दूसरे गुरु शिशिन ने अपने शिष्य से पूछा, "किस बिंदु पर उमोन का शिष्य मार्गच्युत हुआ था?"
झेन फकीरों की यह पुरानी परंपरा है कि वे एक छोटी सी कहानी को गूंथते चले जाते हैं; सदियों तक पूछते हैं। और उस कहानी को आधार बना लेते हैं-- अंतर-खोज का।
शिशिन ने अपने शिष्यों से पूछा कि "बताओ, किस बिंदु पर उमोन का शिष्य मार्गच्युत हुआ था?"
साधारणतः जो ऊपर-ऊपर सोचेंगे, उन्हें लगेगा कि शिष्य वहीं मार्गच्युत हो गया, जहां उसने कहा कि "बुद्ध का प्रकाश सारे जगत को आलोकित कर रहा है।" उसे उधार बात दुहरानी ही नहीं थी। वहीं मार्गच्युत हो गया। यात्रा शुरू से गलत हो गई।
ऊपर से देखने पर ऐसा लगेगा। लेकिन यह ठीक नहीं है। क्योंकि, तुम चाहे कहो या न कहो... । जो उमोन के शिष्य ने कहा, वह न भी कहता, तो भी मन में उसके गूंजता रहता। वह उसकी दशा थी। वहां मार्गच्युत नहीं हुआ। वहां तो वह मार्ग पर था ही नहीं। मार्गच्युत तो कोई तब होता है, जब मार्ग पर हो। इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लें।
मार्ग-भ्रष्ट होना सिर्फ सौभाग्यशालियों को मिलता है। तुम्हारे तो मार्ग-भ्रष्ट होने का उपाय भी नहीं है। अगर तुम मार्ग पर हो ही नहीं, तो

तुम भ्रष्ट कैसे हो जाओगे? भ्रष्ट तो वह होता है, जो मार्ग पर हो--और मार्ग से भटक जाए। सिर्फ थोड़े से सौभाग्यशाली लोग मार्ग-भ्रष्ट होते हैं। हिंदू ज्योतिष में--जहां बच्चों कि जन्म-कुंडली तय की जाती है। इस बात
को सौभाग्य का लक्षण समझा जाता है कि अगर ज्योतिषी कह दे कि यह बच्चा पिछले जन्म का योग-भ्रष्ट है; यह बड़े सौभाग्य की बात है। इसका पहला तो मतलब हुआ कि यह मार्ग पर था; और भटक गया है। और जो भटक गया है, वापस पहुंच सकता है। लेकिन जो मार्ग पर रहा ही न हो, उसका पहुंचना बड़ा मुश्किल है।
पहली घटना में तो शिष्य मार्ग पर था ही नहीं। इसलिए भटकने का कोई सवाल नहीं है। खोता तो वही है, जिसे मिल गया हो। छूटता तो उसी से है, जिसके हाथ में हो। पहली स्थिति में तो शिष्य के पास कुछ था नहीं--न मार्ग था, न संपदा थी--उधारी थी। उधारी की कोई भटकन नहीं होती। बोलता, न बोलता।
भटका शिष्य कहां? भटका शिष्य वहां-जहां गुरु ने उसकी आंखों में झांका। जब गुरु आंखों में झांक रहा था, तब भी उसकी "हां" पूरी नहीं हो पायी। भटका वहां। गुरु की आंखें--मार्ग थीं। गुरु की आंखों से उतरती हुई ज्योति-मार्ग थी। उस समय वह हृदयपूर्वक "हां" कह सकता था और मार्ग पर हो जाता। शायद जन्मों-जन्मों की यात्रा पूरी हो जाती।
बड़ा मुश्किल है गुरु पाना, जो तुम्हारी आंखों में झांके। बड़ा मुश्किल है--गुरु पाना, जिसकी करुणा तुम्हारे भीतर उतरे और तुम्हें मार्ग पर लाने की चेष्टा करे।
वह शिष्य के भीतर झांक रहा था। वह उस क्षण को भी चूक गया, जो दुर्लभ है;
जब कि रास्ता साफ था; गुरु की आंखें खुली थीं।
गुरु जब उसके भीतर झांक रहा था, तब वह गुरु के भीतर भी झांक सकता था। क्योंकि वह मिलन का क्षण था। लेकिन गुरु को उसकी आंखों में झांकता रहा; रास्ता साफ रहा; वह बच गया। उसने "हां" भी कहा, तो आधे मन से कहा--यहां-वहां देख कर कहा। सीधा गुरु की आंखों में नहीं देखा।
जरूरत भी न थी, "हां" कहने की। यदि वह गुरु की आंखों में ही ठीक से देख लेता, तो गुरु उसे सुन लेता--जो नहीं कहा गया। यह कहा हुआ बेकार था, अधमरा था। इसमें कोई प्राण न थे। वह कह रहा था--बेबसी में; क्योंकि गुरु सामने था और वह बच नहीं सकता था। मुसीबत थी; गुरु एक कोने में ले आया था। और "हां" कहना ही पड़ा। यह "हां" हृदय से नहीं निकला। यह भीतर हृदय का खिलना न था। एक मजबूरी थी, उपाय न देखकर बेबसी में उसने "हां" कहा।
काश! वह प्रफुल्लित हो जाता। काश! वह गुरु की आंखों में देखता--जैसा गुरु ने उसकी आंखों में देखा। दोनों की आंखें अगर मिल जातीं, तो शिष्य मार्ग पर हो जाता। जहां गुरु और शिष्य की आंखें मिलती हैं--वहीं मार्ग है। चूक गया। कहां हुआ च्युत?
शिशिन अपने शिष्यों से पूछ रहा है, "बताओ किस बिंदु पर उमोन का शिष्य मार्गच्युत हुआ था?"
एक महान घटना घटते-घटते नहीं घट पाई! अघट घटने के करीब था और नहीं घट पाया। गुरु ने झांका, मार्ग दिया। ठीक हृदय तक रास्ता साफ था। कहीं कोई अवरोध न था। गुरु खुला था। क्योंकि जब तुम किसी की आंखों में झांकते हो-- पूरी तरह झांकते हो, तब अगर वह चाहे तो तुममें झांक सकता है और तुम्हारे हृदय तक पहुंच सकता है।
गुरु तो शिष्य के हृदय तक पहुंच रहा था, लेकिन शिष्य छिटक गया। उसने "हां" भी कहा, तो वह आधा था। झिझकते हुए कहा; डरते हुए कहा। उसकी "हां" भी उसे खिला न पाई। उसकी "हां" झूठी थी।
तुम्हारी आस्तिकता तुम्हें समाधिस्थ नहीं कर पाई है। तुमने ईश्वर को "हां" कहा है वह भी झूठा है; वह भी आधा-आधा है। "हां" शायद मजबूरी में कहा गया है। तुमसे तो बेहतर वह नास्तिक है, जिसने पूरे हृदय से "ना" कहा है। कम से कम हृदय तो पूरा है। तुमने "हां" भी कहा है, लेकिन पूरे हृदय से नहीं कहा है। किसी भय से, किसी लोभ से तुमने "हां" कह दिया है। तुम्हारा आधा हिस्सा "नहीं" कहता ही रहेगा।

जैसे ही गुरु की आंखें हट गई होंगी, शिष्य फिर अपनी जगह वापस लौट आया होगा। डगमगाया था, हिला था, फिर उसने अपनी स्थिति वापस ले ली होगी। और उसने सोचा होगाः "इस आदमी ने डरा दिया। और डर की वजह से मैंने "हां" कह दी।"
ऐसा अक्सर होता है; रोज का मेरा अनुभव है। कोई आता है, उसकी आंख में मैं देखता हूं। पूछता हूं, "क्या कहते हो? संन्यास की तैयारी है?" कभी-कभी कोई मेरे डर में कह देता है कि "हां"। लेकिन वह "हां" पूरी नहीं है। यह मार्गच्युत हो गया। अच्छा होता, वह "ना कह देता। कभी-कभी ऐसा घटता है कि कोई प्रफुल्लित हो जाता है। कोई पूरे आनंद से कहता है कि "हां"। उसका रोआं- रोआं कहता है--"हां"। उसके भीतर एक भी विपरीत स्वर नहीं होता, कोई द्वंद्व नहीं होता, कोई विरोध नहीं होता। समग्रता से कहता है--"हां"।
संन्यास और क्या है? संन्यास--कुछ और देने को है भी नहीं। यह जो पूरी "हां" है, संन्यास हो गया। अब तो सब ऊपरी बात है। भीतरी बात घट गई। वह व्यक्ति संन्यस्त न भी हो, तो भी कोई हर्ज नहीं। यह अब जैसा भी है-- संन्यासी ही होगा।
अगर तुमने एक बार भी पूरी तरह "हां" कहने का आनंद जान लिया, तो तुम आस्तिक हो जाओगे। क्योंकि जब एक बार पूरी "हां" कहने से इतना आनंद मिलता है, तो पूरा जीवन--प्रतिपल "हां" कहने के महा-आनंद को तुम न चूकोगे फिर, तुम न छोड़ोगे।
आस्तिक का अर्थ है--जिसने पूरे अस्तित्व को कहा--"हां"। जिसने "ना" कहना बंद कर दिया। मौत आए तो भी आस्तिक कहेगा--"हां"। सुख आए तो भी कहेगा--"हां"। दुख आए, तो भी कहेगा--"हां"। "ना" कहना ही उसने छोड़ दिया। वह मार्ग पर आ गया है। "हां" मार्ग है।
शिष्य कहां च्युत हुआ? जहां उसने "हां" भी कही, और मुरदा।
आस्तिक मत बनना मरे-मरे।
किसी तर्क के आधार पर आस्तिक मत बनना। अन्यथा तुम्हारी आस्तिकता बेजान होगी। तर्क में कोई प्राण थोड़े ही होते हैं। आस्तिक मत बनना--किसी भय के कारण।
चाहे बुद्ध ही क्यों न खड़े हों सामने; और अगर तुम्हारे भीतर "ना" हो,
तो "ना" ही कहना; "हां" मत कहना। क्योंकि झूठी "हां" कहीं भी न ले जाएगी। सच्ची "ना" भी बुद्ध से जोड़ सकती है, झूठी "हां" भी नहीं जोड़ सकती है।
तुम वही कहना, जो ठीक तुम्हारे भीतर हो। तुम अपनी प्रामाणिकता से मत हटना। यह शिष्य प्रामाणिकता से हट गया। अगर "ना" कहना था, तो "ना" ही कहना था; लेकिन बिना घबड़ाए--परिपूर्णता से। इसने "हां" भी कही--बेजान कही, डरते हुए कही। फूल खिल नहीं पाया; कली ही रह गई।
कहां हुआ च्युत--किस बिंदु पर? जहां गुरु देख रहा था--इसके भीतर और इस अपूर्व क्षण को भी यह चूक गया। "हां" और "ना" कहने का सवाल ही न था। गुरु ने एक मौका दिया था। ऐसे मौके कभी-कभी दिए जा सकते हैं; रोज नहीं दिए जा सकते हैं। क्योंकि ऐसे संयोग का क्षण बहुत मुश्किल से आता है।
बोधिधर्म नौ वर्ष चीन में रहा। और जब वह चीन छोड़ने लगा--वापस भारत की तरफ यात्रा शुरू करने लगा, तो उसने अपने शिष्यों को इकट्ठा किया। उनमें चार थे--जो बड़े कीमती थे।
उसने पहले शिष्य को पूछा, "सार में कह दो कि मेरे तुम्हारे साथ रहने से क्या हुआ?" तो उस शिष्य ने कहा, "सभी तरफ एक का ही राज्य है। अद्वैत है।" बोधिधर्म न कहा, "तुम्हारे पास मेरी चमड़ी है।"
दूसरे शिष्य से पूछा, "क्या हुआ मेरे साथ रहने से?" तो उस शिष्य ने कहां है! जब दो न हों, तो एक भी कैसे हो सकता है? बस, है। एक या दो में कहने का कोई उपाय नहीं है।" बोधिधर्म ने कहा, "तेरे पास मेरी हड्डियां हैं।"
और तीसरे शिष्य की तरफ देखा और पूछा, "क्या हुआ मेरे साथ रहने से?" तो तीसरे शिष्य ने कहा, "न तो एक है, न दो हैं। न दोनों का अभाव है। सर्वत्र-सब दिशाओं में परम शून्य है। शून्यता ही सत्य है। अभाव सत्य है।" बोधिधर्म ने कहा, "तेरे पास मेरी मज्जा है।"
बोधिधर्म ने चौथे शिष्य की तरफ देखा और पूछा "क्या हुआ मेरे साथ रहने
से तुझे?" चौथा शिष्य सिर्फ बोधिधर्म की तरफ देखता रह गया। फिर झुका और

उसके चरण छुए। बोधिधर्म ने कहा, "तेरे पास मैं हूं; मेरी आत्मा है।" चौथा शिष्य कुछ बोला नहीं, उसने कोई उत्तर न दिया।
तीन च्युत हो गए।
बोधिधर्म जैसा व्यक्ति जब प्रश्न पूछता है, तो उत्तर पाने के लिए नहीं। तुम्हारा पूरा "होना" उत्तर होना चाहिए। तुम क्या बोलते हो, उसका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि बोला हुआ बुद्धि से होगा।
इसलिए बोधिधर्म ने कहा कि पहले शिष्य के पास मेरी चमड़ी है--ऊपर-ऊपर।
दूसरे के पास थोड़ा सा भीतर का है--हड्डियां हैं। लेकिन हैं शरीर की ही। तीसरे के पास और जरा भीतर का है--मज्जा है। लेकिन है शरीर की ही, आत्मा नहीं। आत्मा उसके पास थी जो चुप ही रहा। जिसने जवाब भी न दिया, उसी ने जवाब दिया। उसने अपने पूरे "होने" से जवाब दिया।
चौथे शिष्य ने बोधिधर्म की आंखों में देखा। दो आंखें मिलीं। दो आत्माएं एक दूसरे में लीन हुईं। दो सीमाएं टूटीं। वह झुका, उसने पैर छुए। धन्यवाद दिया, उत्तर न दिया। कृतज्ञता प्रकट की, सिद्धांत न बताया।
कृतज्ञता को प्रकट करने का शब्दों में कोई उपाय भी तो नहीं है।
और उत्तर बोधिधर्म मांग भी नहीं रहा था। यह कोई परीक्षा न थी, जहां तुम्हें शास्त्रों का उल्लेख करना था, जहां तुम्हें शब्दों के जाल रचने थे। यह अग्नि-परीक्षा थी, जहां "तुम्हें" उत्तर होना था। वहां तुम चूक गए। चौथा शिष्य झुका, बोधिधर्म के चरण छुए। कुछ बोला नहीं। मार्ग पर चल पड़ा। यह यात्रा मंजिल तक पहुंच गई। यह सरिता सागर तक पहुंच गई।
शिशिन ने अपने शिष्यों से पूछा, "किस बिंदु पर उमोन का शिष्य मार्गच्युत हुआ था?"
मैं भी तुमसे यही पूछता हूं "किस बिंदु पर उमोन का शिष्य मार्गच्युत हुआ था?" और अगर तुमने सोचा, तो तुम भी मार्गच्युत हुए।
सोचना मत, देखना।
देखो, तो चीजें साफ हैं; सोचो, तो सब धुंधला हो जाता है। सोचना अंधेपन
का एक ढंग है, देखना आंख है। सोचना उलझन है। इसलिए कहानी यहीं पूरी हो जाती है।
शिष्यों ने क्या उत्तर दिया शिशिन को--कहानी नहीं कहती। गजब के शिष्य रहे होंगे। जहां उमोन का शिष्य चूक गया, वहां शिशिन के शिष्य नहीं चूके। कहानी प्रश्न पर ही पूरी हो जाती है। शिशिन ने पूछा और कहानी कुछ आगे नहीं कहती है कि शिष्यों ने क्या कहा। कहते तो भटक जाते। उत्तर दिया कि गलत हुआ। बोले--कि चूके।
जहां उमोन का शिष्य हार गया, वहां शिशिन के शिष्य जीत गए। इसलिए आगे कोई उत्तर नहीं है।
मैं भी तुमसे यही पूछता हूं।
सोचना मत--देखना। देखना समग्रता है। तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व आंख
बन जाता है।
सोचना हमेशा खंड-खंड है। खोपड़ी सोचती है। और ध्यान रहे, तुम खोपड़ी के बाहर हो, खोपड़ी के भीतर नहीं। काश! तुम खोपड़ी के भीतर होते, तो दर्शनशास्त्र काफी था। उत्तर किताबों में लिखे हैं। तुम खोपड़ी के बाहर हो, खोपड़ी से बहुत बड़े हो। खोपड़ी तुम्हारे भीतर है, तुम खोपड़ी में नहीं। तुम उसका उपयोग कर सकते हो--एक सेवक की भांति। जैसे ही तुमने उसे मालिक बनाया कि तुम चूके।
और बुद्धि का लक्षण है कि वह खंड-खंड है। न तो वह कभी "हां" पूरा कहती
है और न तो कभी "ना" पूरा कहती है। वह दोनों साथ-साथ कहती है। अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम्हारे सब बौद्धिक उत्तर, "हां" और "ना" दोनों को साथ-साथ लिए होते हैं। कभी "हां" ज्यादा प्रकट होता है--"ना" छिपा होता है। कभी "ना" ज्यादा प्रकट होता है--"हां" छिपा होता है।
आस्तिक के भीतर नास्तिक बैठा रहता है। नास्तिक के भीतर आस्तिक बैठा रहता है। दोनों में बहुत ज्यादा फर्क नहीं है। कोई ऊपर है, कोई नीचे है। बस, इतना ही फर्क है। बाकी दोनों मौजूद हैं। और जो आज भीतर छिपा है, वह कल

बाहर आ सकता है। जो आज बाहर बैठा है, वह कल भीतर जा सकता है। यह समय की बात है, परिस्थिति बदल सकती है।
लेकिन एक और ढंग है--उत्तर देने का। वह हैः समग्रता से--विचार से नहीं।
सुनी तुमने यह कहानी। क्या तुम्हें दिखाई पड़ता है कि कहां चूक गया-- शिष्य? गुरु ने देखा और शिष्य ने आंखें बचा लीं। बस, वहीं।
प्रतीक्षा करना तुम कि गुरु कब देखे।
बड़ी पुरानी कथा है कि सूफी फकीर बायजीद अपने गुरु के पास था। एक साल बीत गया, गुरु ने उसकी तरफ देखा ही नहीं। पूछा भी नहीं कि कैसे आए! तुम होते तो कभी के भाग गए होते। एक साल? एक साल बाद गुरु ने पूछा, "कैसे आए?" बायजीद ने कहा, "आप भलीभांति जानते हैं। मेरा उत्तर कुछ ज्यादा अर्थ का न होगा।" फिर और एक वर्ष बीत गया। गुरु ने पूछा, "क्या करना है?" बायजीद ने कहा, "राह देख रहा हूं। जब आप कहेंगे, करना शुरू कर दूंगा। और आप भलीभांति जानते हैं। मेरा उत्तर कुछ ज्यादा अर्थ का न होगा।"
एक साल फिर बीत गया। और गुरु ने बायजीद के कंधे पर हाथ रखा, आंखों में आंख डाली और कहा, "सब हो गया। तू तीन साल चुप बैठा रहा, यही काफी है।" तीन साल में क्या हुआ बायजीद को? ठहरा, शांत हुआ, तनाव छोड़े, प्रश्न गिरे, गुरु के पास होने की कला सीखी। और हर कदम पर जहां जरूरत हुई, गुरु ने कुछ पूछा, उस पूछने में उत्तर की अपेक्षा न थी। उस पूछने में सिर्फ स्वीकार था कि तू ठीक चल रहा है।
साल भर बाद पूछाः "कैसे आया?" तो गुरु ने केवल सूचना दी कि तेरा आना सार्थक है। तू आया है, तो कुछ लेकर जाएगा। साल भर बाद पूछाः "क्या करना है!" क्योंकि दो साल जो चुप बैठा रहा, वह करने के योग्य हो गया। उसकी क्षमता है अब। अब उससे कुछ करने को कहा जा सकता है। लेकिन तब भी शिष्य ने यह न कहा कि मुझे "यह" करना है। क्योंकि जब तक तुम बताओगे कि "यह करना है", तब तक तुम्हारा मन जारी रहेगा। तुम्हारी मांगी हुई मांग पूरी भी हो जाए, तो भी तुम भटकोगे। तुम जो भी चाहते हो, वह गलत ही होगा। उसने कहा कि "मैं क्या कहूं? आप जो कहेंगे, करूंगा।"
जो इतना छोड़ने को राजी है--जिसका समर्पण इतना भारी है... । तीन साल बीत जाने के बाद गुरु ने उसके कंधे पर हाथ रखा, उसकी आंखों में देखा और कहा, "सब हो गया। अब कुछ करने को बाकी नहीं है। और तू जा; जो मैंने तेरे साथ किया, वही तू दूसरों के साथ कर।"
क्या हुआ? जहां उमोन का शिष्य चूक गया, वहां बायजीद नहीं चूका। उसने प्रतीक्षा की उस क्षण की, जब गुरु देखेगा।
जब किसी प्रज्ञा-पुरुष की आंख तुम्हारी आंख में झांकती है, तब उसका दीया तुम्हारे बुझे हुए दीये के करीब आ रहा है। तुम अपनी ज्योति को यहां- वहां मत बचा लेना। तुम अपनी बाती को यहां-वहां मत हिला लेना। तब सध कर अपनी बाती को उसके सामने कर देना। क्योंकि एक क्षण में दीए के पास आने में ज्योति का स्फुलिंग छलांग लगा लेगा। घटना घट जाएगी।
फिर तुम अपनी हैसियत से जलोगे। फिर तुम अपने तेल से जलोगे। फिर तुम्हारी अपनी बाती होगी।
कोई न तो बुद्ध जैसा हो सकता है, न उमोन जैसा हो सकता है। कोई जरूरत भी नहीं है। तुम तुम जैसे ही होओगे। लेकिन च्युत हो सकते हो--क्षण से। यह क्षण सत्संग का है।
उमोन का शिष्य वहां चूक गया, जहां गुरु ने मौका दिया था--सत्संग का। वहीं चूक गया है।
इसे सोचना मत। इसे एक सुगंध की भांति अपने चारों तरफ घूमने देना। एक ध्वनि की भांति इसे अपने भीतर गूंजने देना। सोचना मत--सिर्फ देखना। ताकि किसी दिन जब वह क्षण तुम्हारे लिए आए और गुरु तुम्हारी आंख में झांके तो तुम मत चूक जाओ।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
सातवां प्रवचन

दुख-बोध से दुख-निरोध की ओर

ओशो, क्रांति-बीज में आपने कहा हैः
"गौतम बुद्ध ने चार आर्य-सत्य कहे हैं--दुख, दुख का कारण, दुख-निरोध और दुख-निरोध का मार्ग। जीवन में दुख है। दुख का कारण है। इस दुख का निरोध भी हो सकता है। और दुख-निरोध का मार्ग है।"
"मैं पांचवां आर्य-सत्य भी देखता हूं। और यह पांचवां इन चारों के पूर्व है। वह न हो, तो ये चारों भी नहीं रह सकते हैं।
"यह पांचवां या प्रथम आर्य-सत्य क्या है--वह है दुख के प्रति मूर्च्छा।"
ओशो, इस पांचवें या प्रथम आर्य-सत्य की विशद व्याख्या करने की करुणा करें।

जो जानते हैं, उनके लिए यह जीवन दुख से ज्यादा नहीं है। जो नहीं जानते हैं, उनके लिए यह जीवन सुख की एक आशा है। जो नहीं जानते हैं, वे भी दुख भोगते हैं; लेकिन दुख को बिना देखे भोगते हैं। दुख भोगते हैं सुख की आशा में। और वही आशा उनकी आंखों पर धुंध बन जाती है।
आज दुख भोगते हैं, क्योंकि लगता हैः कल सुख मिलेगा। कल का सपना आज के
सच को छिपा लेता है। नरक में भी गुजार देते हैं जीवन, क्योंकि लगता है कभी न कभी स्वर्ग उपलब्ध होगा। आशा से बड़ा अंधकार नहीं है। और आशा से बड़ी कोई मूर्च्छा नहीं है।
जो व्यक्ति आशा को छोड़ कर जीवन को देखेगा, उसे दुख ही दिखाई पड़ेगा। दुख है। लेकिन अज्ञानी दुख को समझता है सीढ़ी--सुख तक पहुंचने की। दूर कहीं भविष्य में सुख है। यात्रा में होगा दुख, लेकिन मंजिल सुख की है। उस मंजिल के लिए अज्ञानी कुछ भी झेलने को तैयार हो जाता है। लेकिन संसार सिर्फ सीढ़ियां ही सीढ़ियां है, यहां मंजिल है ही नहीं। यहां रास्ता ही रास्ता है, यहां मुकाम है ही नहीं। और जो मुकाम नहीं है, उसके लिए हम उस रास्ते की व्यर्थ तकलीफें झेल लेते हैं। जो सीढ़ियां कहीं पहुंचती ही नहीं हैं, हम उन पर व्यर्थ ही चढ़ते हैं, थकते हैं, परेशान होते हैं। लेकिन सीढ़ियां अंतहीन हैं, इसलिए तुम उनके अंत पर भी कभी नहीं आ पाते हो।
ध्यान रहेः मंजिल होती तो सीढ़ियों का अंत भी आ जाता। चूंकि मंजिल नहीं है, इसलिए सीढ़ियां अंतहीन हैं। तुम चलते ही जाते हो; कितना ही तुम चलो, तुम पाते हो कि आगे सीढ़ियां बाकी हैं। लगता हैः बस, अब मंजिल आई ही। बुद्ध एक गांव के पास से गुजरते थे। जल्दी में थे। पहुंचना था दूसरे गांव--सांझ होने के पहले। पूछा एक किसान से, "कितना दूर होगा गांव?" उसने कहाः "बस, दो ही मील; चले नहीं कि पहुंचे!" बुद्ध दो मील चल चुके। सूरज ढलने के करीब आ गया। एक दूसरा ग्रामीण गुजरता था, उससे पूछाः "गांव कितनी दूर होगा?" उसने कहाः "बस, कोई दो मील है, चले नहीं कि पहुंचे!"
बुद्ध मुस्कुराए; उन्होंने अपने शिष्यों को कहाः "ठीक से सुन लेना इनकी बात। पहला ग्रामीण हमें दो मील चला गया!" शिष्य फिर भी न समझे।
दो मील चल चुके, रात पड़ने लगी। एक तीसरे ग्रामीण से पूछा, "कितनी दूर होगा गांव?" उसने कहाः "घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। बस, दो मील है।" बुद्ध ने कहाः "सुनते हो? ऐसे ही मन की आशा चलाए जाती है--कि मंजिल, बस पास है। ये ग्रामीण बुद्धिमान हैं। ये झूठ नहीं बोल रहे हैं। ये मन के सूत्र को समझते हैं।"
दो मील चलना आसान है--दो मील की आशा में आदमी दो हजार मील भी चल लेता है। पहले से ही पता हो कि दो हजार मील चलना है, तो थक कर गिर जाए, टूट जाए, वहीं मिट जाए।
तुम कितने जीवन तक चलते आए हो, तुमने सिवाय सीढ़ियों के कुछ भी पाया नहीं है। हर सीढ़ी नई सीढ़ी को शुरू करती है। कोई सीढ़ी मंजिल पर नहीं आती है।

सब रास्ते नया मोड़ ले लेते हैं, फिर रास्ता बन जाता है। कोई रास्ता पूरा नहीं होता, समाप्त नहीं होता।
संसार मार्ग है। मोक्ष में कोई मार्ग नहीं है, वहां मंजिल ही मंजिल है। संसार में मार्ग ही मार्ग है, वहां कोई मंजिल नहीं है।
सम्राट अकबर ने अपनी विजय की बड़ी यात्राओं के बाद एक छोटा सा नगर बसाया-फतेहपुर। फतेहपुर का मतलब; "विजय का नगर"। सारे जीवन की विजय यात्रा के बाद उसने एक विजय की नगरी बनानी चाही, तो सीकरी नाम के छोटे से गांव को फतेहपुर में बदल दिया। करोड़ों रुपये खर्च किए। बड़ी खूबसूरत नगरी बनाई। और जब वह बूढ़ा हो रहा था, तो उसने एक फकीर को पूछा कि इस नगरी के द्वार पर मुझे कोई वचन लिखना है; कोई बहुमूल्य वचन लिखना है--कि यात्री जब इस फतेहपुर सीकरी में पहुंचे, तो वह वचन सब कुछ कह दे। उस सूफी फकीर ने जीसस का एक वचन अकबर को खुदवाने के लिए कहा। वह अभी भी फतेहपुर सीकरी के द्वार पर खुदा है। वह वचन बाइबिल में कहीं मिलता नहीं। लेकिन सूफियों की परंपरा में उस वचन का उल्लेख है। वह वचन बड़ा कीमती है। वह वचन हैः "यह संसार एक सेतु है; चलना जरूर, गुजरना जरूर, पर इस पर कहीं भूल कर भी मकान मत बनाना।" दिस वर्ल्ड इ.ज ए ब्रिज, पास थ्रू इट बट डोंट मेक ए डवेलिंग ऑन इट।
अकबर ने वचन तो खुदवा दिया, लेकिन चिंतित हुआ। और उसने फकीर को कहा, "मुसीबत में डाल दिया। क्योंकि मैं सोचता था--विजय की नगरी बनवा रहा हूं। तुम कहते हो, संसार एक सेतु है। इस संसार में फिर विजय की नगरी बन ही नहीं सकती। यहां कोई विजय होती ही नहीं।"
और अकबर का रस फतेहपुर सीकरी में समाप्त हो गया। नगर बना भी और बिना बसे रह गया। फतेहपुर सीकरी कभी आबाद नहीं हुआ। वह जिस दिन से बना है, उसी दिन से खंडहर पड़ा है। उसमें कभी कोई बसने नहीं गया। वह बात ही खत्म हो गई। अकबर को भी दिखाई पड़ गया कि इस संसार में कोई विजय संभव नहीं है। यहां कोई मंजिल ही उपलब्ध नहीं होती।
मनुष्य जितना दुख झेल लेता है--असह्य दुख झेल लेता है। तरकीब क्या है? दुख झेलने की आदमी की तरकीब क्या है? जागता क्यों नहीं, इतनी पीड़ा भी उसे उठाती क्यों नहीं है? इतनी पीड़ा भी उसे चौंकाती क्यों नहीं है? कोई गहरी तंद्रा है। और वह तंद्रा है--आशा। आशा से लगता है कि सुख मिलेगा, लेकिन सच्चाई यह है कि आशा से केवल तुम दुख झेलने में समर्थ हो जाते हो।
कोलंबस भारत की खोज में निकला था। तीन बड़ी नावें लेकर--कोई सौ नाविक लेकर। कोई तीन महीने के भोजन का इंतजाम था। ज्यादा से ज्यादा जितना भोजन ले जा सकता था, साथ ले लिया था। लेकिन भोजन चुकने के करीब आ गया। केवल तीन दिन का भोजन बचा। नाविक क्रोध से भर गए। मंजिल कहीं पहुंचती मालूम नहीं होती। यात्रा भटक गई लगती है। सिर्फ सागर, सिर्फ सागर--कोई कूल-किनारा दिखाई नहीं पड़ता है।
तो उन नाविकों ने, जब रात कोलंबस सोया था, तो एक बैठक की। और उस बैठक में तय किया कि "हम कोलंबस को उठा कर समुद्र में फेंक दें और वापस लौट जाएं। क्योंकि यह आदमी तो मुसीबत में डाले हुए है! मरेंगे; भोजन चुक गया है। कहीं पहुंचते हुए लगते नहीं। इस आदमी ने अटका दी जिंदगी।"
कोलंबस ने सुना; वह सिर्फ बना हुआ सो रहा था। उसे भी डर था कि अब खतरा है। और जब तक कोलंबस जिंदा है, तब तक नावें वापस नहीं होंगी, यह भी नाविकों को पता है। क्योंकि कोलंबस वापस होना जानता ही नहीं; जिद्दी है, अहंकारी है। मर जाएगा, लौटेगा नहीं। क्योंकि क्या कहेगा लौटकर-अपने देश में? पहले ही लोगों ने कहा था कि तुम मूढ़ हो। किन बातों में पड़े हो? सिद्धांतों के चक्कर में आ गए हो! लोग कहते हैंः पृथ्वी गोल है। और तुमने मान लिया? और जीसस की बाइबिल तो कहती है कि पृथ्वी चपटी है। लौटने पर लोग कहेंगे, आ गए वापस! नहीं पहुंच पाए! पृथ्वी अगर गोल है, तो तुम पहुंच ही जाते! कहीं न पहुंचते, तो यहीं लौट आते।
कोलंबस जाग रहा था। जैसे ही उसने सुना कि उन्होंने तय कर लिया है--एक
मत से--उसे फेंक देने का, तो वह उठा और उसने कहा, "एक बात मुझे भी पूछनी है! वह यह कि तीन महीने का सामान था, वह समाप्त हो गया है। तीन दिन का बचा है। अगर तुम लौटे भी तो पहुंच पाओगे? क्योंकि लौटने में कम से कम तीन महीने तो

लगेंगे ही। अगर तुम ठीक उसी रास्ते से लौट सको, जिससे हम आए हैं। और समुद्र में कहीं कोई रास्ता नहीं बना है। अगर तुम लौटे तो तीन दिन ही लौट पाओगे न? बाकी दिनों का क्या होगा? और जब लौट कर ही मरना है, तो आगे बढ़ने की हिम्मत रखो। जब मरना ही है, तो पीछे क्या जाना! मैं तुमसे कहता हूं कि पीछे लौटने में तो तीन महीने लगेंगे, आगे हो सकता है कि तीन दिन में ही हम पहुंच जाएं। इसकी संभावना है।"
आशा बंधी; बात तो सीधी थी; गणित साफ था। आगे शायद तीन दिन में ही पहुंच जाएं, क्योंकि पता नहीं, किनारा कितनी दूर हो। पीछे तो तीन महीने से कम में पहुंचने वाले नहीं हैं। इसलिए मौत निश्चित है। आशा बंधी; नाविक फिर श्रम में लग गए।
जैसे ही आशा बंधती है, वैसे ही तुम श्रम लग जाते हो। जैसे ही आशा छूटती है, वैसे ही तुम्हारे हाथ-पैर शिथिल हो जाते हैं। जैसे आशा छूटती है, दुख दिखाई देने लगता है। जैसे ही आशा बंधती है, सुख का स्वाद आने लगता है। संसार आदमी को नहीं बांधे हुए है। संसार से ज्यादा जगाने वाली जगह खोजनी कठिन है। चौबीस घंटे दुख है। सब तरफ से दुख है। हर घड़ी कांटा चुभता है। लेकिन तुम यहां हो ही नहीं, जिसको कांटा चुभे। तुम आशाओं के किसी लोक में भटके हुए हो।
सुना है मैंनेः एक सूफी फकीर मरा और स्वर्ग में पहुंचा। देख कर हैरान हुआ कि स्वर्ग में द्वार पर ही चार लोग जंजीरों से बंधे हैं। थोड़ा चौंका कि भीतर प्रवेश करूं या न करूं! क्योंकि मैंने तो सुना थाः संसार में बंधन होते हैं! स्वर्ग में लोग जंजीरों से बंधे हैं! उसने पूछा द्वारपाल को कि "यह क्या राज है? इन लोगों को क्यों बांधा गया है?" उसने कहा कि "पहले तुम भीतर तो जाओ, फिर सारी बात समझ लेना। इनकी आशा टूट गई है; ये स्वर्ग में भी रुकने को राजी नहीं हैं। तुम संसार में भी रुके थे--आशा थी। इनको रोकने के लिए जंजीरें बांधनी पड़ी।
स्वर्ग भी आशा है--आखिरी आशा है। अगर वह भी टूट जाए, तो तुम्हारे मुक्त होने के लिए कोई भी बाधा नहीं रह गई। फिर तुम्हें रोकना हो तो जंजीरों से बांधकर रोकना पड़ेगा।
इस एक बात को बहुत ठीक से समझ लेना कि तुम्हारी आंखों पर जो धुंध है,
वह तुम्हारी अपनी आशाओं की है। इसलिए बुद्ध के चार आर्य-सत्यों में मैं एक और आर्य-सत्य जोड़ता हूं--जो ज्यादा प्राथमिक है।
बुद्ध कहते हैंः "सारा जगत दुख है, सारा जीवन दुख है।" तुम सुनते हो, लेकिन ऐसा अनुभव नहीं होता। तुम्हें लगता है, दुख जरूर हैं, लेकिन सीढ़ियों की भांति हैं। और जो श्रम न लेगा यात्रा का, वह सुख तक पहुंचेगा कैसे! कष्ट झेलना होगा। कीमत चुकानी होगी। यह कीमत है दुख, फल सुख का है।
लेकिन ध्यान रहेः जब बीच में ही दुख हो, तो फल में सुख नहीं हो सकता।
और जब यात्रा कष्ट की हो, तो अंतिम परिणाम सुख का नहीं हो सकता। क्योंकि अंतिम परिणाम तो सारी यात्रा का जोड़ होगा। तुम मरते समय सुखी कैसे हो सकते हो, अगर तुम जीवन भर दुखी रहे हो? क्योंकि तुम्हारे जीवन भर की दुख की रात ही मरते क्षण में पूरी होगी।
मृत्यु से इतना दुख क्यों लगता है? मृत्यु उसका कारण नहीं है। मृत्यु
से इतना दुख इसलिए लगता है कि जीवन भर के दुख इकट्ठे हो जाएंगे। और मृत्यु का अर्थ हैः अब कोई भविष्य नहीं है। इसलिए आशा बचेगी नहीं छिपाने को। नशा टूटेगा और जीवन भर के दुखों का जोड़ इकट्ठा होगा। सीढ़ियां, सीढ़ियां, सीढ़ियां... यात्रा के पथ पर न मालूम कितने कष्ट--आगे जाने को कोई जगह नहीं, आशा का कोई उपाय नहीं। क्योंकि मृत्यु का अर्थ हैः अब आशा नहीं; समय समाप्त हुआ। अब कल बचा नहीं कि तुम कह सको कि कल सुख मिलेगा।
मौत वर्तमान में खड़ा कर देगी। और सदा से तुम जिए थे--भविष्य में। मौत तुम्हें झटके से ले आएगी वर्तमान में। देखोगे तुम दुख और दुख को छिपाने का कोई नशा तुम्हारे पास न होगा।
मौत में जो इतना दुख मालूम पड़ता है, वह मौत का नहीं है; वह जीवन के सत्य
के प्रकट हो जाने का है।

मौत बड़ी उदबोधक है। वह तुम्हें चौंकाती है-जगाती है। तुम्हारी अनस्थेसिया से-तुम्हारी गहरी बेहोशी से, तुम्हें बाहर ले आती है। इसलिए ज्ञानियों ने मौत को सदगुरु कहा है।
अगर मृत्यु न होती, तो तुम कभी शायद जागते ही नहीं। इसलिए ज्ञानियों
ने कहा है कि "अगर मृत्यु न होगी, तो दुनिया में कोई आदमी धार्मिक न होगा।" ठीक कहा है। क्योंकि जिंदगी में तो तुम सोए ही रहते हो। और सोने की तरकीब सीधी है--कल की आशा। फिर तुम कुछ भी झेल लेते हो। फिर कोई भी कष्ट बड़ा नहीं है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन पहली दफा समुद्र की यात्रा पर गया। उसे फिट, उल्टियां, वमन, नॉसिया पैदा हुई। वह इतना घबड़ा गया, इतना परेशान हो गया कि कप्तान जहाज का उसे समझाने आया और उसने कहा, "सुनो नसरुद्दीन, तुम्हें मैं एक अनुभव की बात कहता हूं। तकलीफ कितनी ही हो--तकलीफ है--लेकिन पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में कोई भी सी-सिकनेस से मरा नहीं। यह जो तकलीफ तुम्हें हो रही है--वमन आदि की, यह सब ठीक है; लेकिन कभी कोई मरता नहीं है इससे। इसलिए घबड़ाओ मत।"
नसरुद्दीन ने छाती पीट ली। उसने कहा "इसी एक आशा से तो हम जी रहे थे कि मरे कि झंझट मिटी। तुमने वह भी छीन ली!"
आदमी अदभुत है। जीवन में तो आशा रखता ही है; मौत में भी आशा रखता है। इसलिए तो लोग आत्महत्या करते हैं। आत्महत्या मौत से भी आशा बांधनी है। आत्महत्या का अर्थ हैः मौत से भी हम कुछ आशा रखते हैं। दुख से छुटकारा हो जाएगा; इस जिंदगी का अंत होगा। शायद इससे कुछ बेहतर शुरू हो। इससे बुरा तो कुछ हो नहीं सकता।
आत्महत्या मृत्यु से भी आशा बांधने का नाम है। और ज्ञानी कहते हैंः तुम जीवन से भी आशा छोड़ देना। और अज्ञानी कहते हैंः मृत्यु से भी तुम आशा बांधे रखना।
इसलिए कोई ज्ञानी आत्महत्या नहीं कर सकता। ज्ञानी जीने तक को तैयार नहीं है, मरने को क्यों तैयार होगा! ज्ञानी की कोई आशा नहीं है। उसे जीवन का सत्य जैसा है, वैसा दिखाई पड़ गया है। इससे लगता है कि ज्ञानी दुखवादी है, जो कि भ्रांति है।
पश्चिम में बुद्ध को लोग पेसिमिस्ट समझते हैं--निराशावादी समझते हैं,
जो गलत है। बुद्ध निराशावादी नहीं हैं। ज्ञानी दुखवादी नहीं है; केवल तथ्यवादी है। ऐसा है।
बुद्ध जीवन में दुख को "देख" नहीं रहे हैं; दुख जीवन में है। कुशल तो तुम हो कि जहां दुख है, वहां तुम सुख देख रहे हो! तुमने कोई इंतजाम किया हुआ है; तुमने कोई मानसिक ढांचा बनाया है कि दुख बाहर ही रुक जाता है। दुख भीतर तक नहीं आ पाता।
मैंने सुना हैः एक फकीर यात्रा कर रहा है-एक जहाज से। तूफान आया बड़ा; नाव डूबने को होने लगी। अब डूबी, तब डूबी। सारे नाविक घुटने टेक कर परमात्मा से प्रार्थना करने लगे। सिर्फ वह फकीर चुपचाप खड़ा रहा। आखिर कप्तान को क्रोध आ गया। उसने कहा, "तुम क्यों खड़े हो? धार्मिक आदमी होकर तुमसे इतना भी नहीं बनता कि तुम प्रार्थना में सम्मिलित हो जाओ?" उसे फकीर ने कहा, "यह नाव क्या मेरे बाप की है? जिसकी हैः वह फिकर करे।"
अजीब लगता है उसका वक्तव्य। लेकिन बड़ा सोचने जैसा है।
कप्तान ने सीधा कहाः "न हो नाव तुम्हारी, लेकिन डूबोगे तो तुम भी?" उस फकीर ने कहाः "जिसको समझ में आ गया है कि नाव मेरी नहीं है, वह कभी डूबता नहीं। "मेरापन" ही डूबता है। न नाव मेरी है, न शरीर मेरा है, न जीवन मेरा है। जिसकी हो वह रोए, चिल्लाए, प्रार्थना करे। हम कुछ बचाने को उत्सुक नहीं हैं। क्योंकि बचाने योग्य कुछ है भी नहीं। हम राजी हैं; जो हो जाए।" आशा के दो रुख हैं। जो है--आशा उससे तुम्हें कभी राजी नहीं होने देती।
और जो नहीं है और जो कभी नहीं होगा, उसका भ्रम बनाए रखती है।
आशा टूटते से ही धार्मिक व्यक्ति का जन्म होता है। आशा खोई आंख से कि आंखें निर्मल हो जाती है। और दिखाई पड़ने लगता है, वह--जो है।

बुद्ध ने कहे हैं--चार आर्य-सत्यः दुख, दुख का कारण, दुख-निरोध और दुख-निरोध का मार्ग। पहला, कि जीवन में दुख है। दूसरा, कि दुख अकारण नहीं है। क्योंकि जो अकारण हो, उसको मिटाया नहीं जा सकता है।
अगर कोई दीया बिना बाती, बिना तेल के जल रहा हो, तो तुम उसे बुझा नहीं सकते हो! हां, अगर तेल बाती से जल रहा हो, बुझा सकते हो। तेल हटा लो, बुझ जाएगा। लेकिन अगर कोई दीया "बिन बाती बिन तेल" जल रहा हो, फिर तुम उसे कैसे बुझाओगे? जिस आग के जलने का कारण न हो, उस आग को बुझाने का उपाय भी न होगा।
"अकारण" को मिटाया नहीं जा सकता है।
बुद्ध कहते हैंः "लेकिन दुख का कारण है, इसलिए भयभीत मत हो जाओ। दुख का कारण है और दुख मिटाया जा सकता है।
दुख-निरोध की स्थिति, ऐसी चेतना की स्थिति है, जहां दुख नहीं होता। क्योंकि यह भी हो सकता है कि तुम एक दुख मिटाओ, लेकिन दुख-निरोध की स्थिति बनती ही न हो। तो दूसरा दुख पैदा होगा--तीसरा दुख पैदा होगा। तुम एक दीया बुझाओ, दूसरा पैदा होगा। तुम तीसरा बुझाओ, चौथा पैदा होगा। तो बुद्ध कहते हैं कि ऐसी भी चेतना की अवस्था है, जहां दुख नहीं होता। इसलिए दुख मिटाया जा सकता है और निर्दुख की अवस्था में रहा जा सकता है। और दुख-निरोध का मार्ग है। और वह रास्ता भी है, जिससे कारण समाप्त किए जाते हैं, उसकी जड़ें काटी जाती हैं।
बुद्ध ने अपने पूरे धर्म को चार हिस्सों में विभाजित किया है। वे ये चार हिस्से हैं। पहला धर्म है-दुख को जानना। दूसरा धर्म है--दुख के कारण को पहचानना। तीसरा धर्म है--दुख के निरोध की संभावना को जानना। और चौथा धर्म है--दुख-निरोध के जितने उपाय हैं, उनकी साधना। इन चार चरणों में, बुद्ध कहते हैं, पूरा धर्म समाहित हो जाता है। इसलिए इनको उन्होंने चार आर्य-सत्य कहा है। आर्य का अर्थ हैः श्रेष्ठ। इनसे ऊपर कोई सत्य नहीं है। लेकिन मैं कहता हूं कि एक और भी सत्य है, जो इन चारों के पूर्व है। मैं पांचवां सत्य भी देखता हूं और यह पांचवां इन चारों के पूर्व है। वह न हो तो ये चारों भी नहीं रह सकते। पांचवां या प्रथम आर्य-सत्य है--दुख के प्रति मूर्च्छा।
वही भेद है--बुद्ध में और तुम में।
तुम में और बुद्ध में क्या फासला है! जरा सा फासला है। जो बुद्ध देख रहे हैं, वह तुम नहीं देख रहे हो। जो बुद्ध को दिखाई पड़ता है, वह तुम्हें सुनाई भी पड़ जाए तो भी दिखाई नहीं पड़ता। तुम सुन भी लो, समझ भी लो, फिर भी पकड़ में नहीं आता; फिर भी तुम्हारा अपनी प्रत्यभिज्ञा नहीं बनती, तुम्हारी पहचान उससे निर्मित नहीं होती।
क्या कारण है कि बुद्ध चिल्लाए चले जाते हैं और तुम नहीं सुन पाते? शायद तुम्हारी आंख पर कोई परदा है, जिसके कारण जो भी तुम देखते हो, वह विकृत हो जाता है। जैसे पीलिया का मरीज होता है, उसे सब पीला दिखाई पड़ने लगता है।
मेरे दादा निरंतर कहा करते थे कि "सावन के अंधे को हरा-हरा सूझता है।" सावन में अगर कोई अंधा हो जाए, तो फिर उसे जिंदगी भर हरा-हरा ही सूझता है। क्योंकि सावन का वह हरापन आंखों में रह जाता है; और आंख बंद हो गई।
जिंदगी में हमें जो हरा-हरा सूझता है, उसके सूत्र को अगर समझ लें, तो बुद्ध में और तुम में क्या अंतर है, वह साफ हो जाएगा। अंतर जरा सा है। जैसे कोई सोता हो और कोई जगता हो; बस उतना ही अंतर है।
तुम्हें दुख दिखाई नहीं पड़ रहा है। बुद्ध को सिवाय दुख के कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है। तुम्हारी संख्या बड़ी है। बुद्धों की कोई संख्या नहीं है। तुम्हारी भीड़ महान है, अनगिनत है। तुम एक दूसरे की भ्रांति को मजबूत करते हो। बुद्ध की आवाज जैसे शून्य में खो जाती है।
किसी ने जॉन बैप्टिस्ट को पूछा कि "तुम कौन हो?" बप्तिस्मा वाले जॉन
ने ही जीसस को दीक्षा दी थी। वह जीसस का गुरु था। उसने जीसस को बप्तिस्मा दिया, इसलिए वह जॉन बप्तिस्मा वाला कहलाता था। वह अनूठा फकीर था। उससे किसी ने पूछा कि "तुम कौन हो? क्या तुम वही मसीहा हो, जिसके आने का शास्त्रों में उल्लेख है?" उसने कहा कि "नहीं, मैं तो सिर्फ सूने

रेगिस्तान में गूंजती हुई एक आवाज हूं। जस्ट ए वायस इन वाइल्डरनेस। बस, एक आवाज--जंगल में गूंजती हुई।" बड़ा ठीक उत्तर दिया। बुद्धों की आवाज जंगल में गूंजती हुई आवाज है। कोई सुननेवाला नहीं है। लोग सुन भी लेते हैं, तो फिर, अपने रास्ते पर चले जाते हैं। उनके चलने से पता चलता है कि वे चूक गए; उन्होंने सुना नहीं।
आंख पर कोई ऐसा परदा है कि हर चीज को विकृत कर जाता है! बुद्ध की बात को सुनकर उसको भी हम विकृत कर लेते हैं। जब हम सुनते हैंः "जीवन में दुख है", तो तत्क्षण हमारे मन में यह आशा बंधती है कि शायद बुद्ध के पास हमें कोई उपाय मिल जाए, जिससे जीवन का दुख मिट जाए। तत्क्षण हम बुद्ध के चरण पकड़ लेते हैं कि "बताओ मार्ग, जीवन का दुख मिट जाए।"
दुख को मिटाने का कोई मार्ग नहीं है। वस्तुतः दुख मिटाने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारी आशा टूट जाए, तो आशा के साथ ही सुख-दुख सब विलीन हो जाते हैं।
आशा के दो पहलू हैं--भविष्य में सुख और अभी दुख। जैसे ही आशा टूटी कि भविष्य का सुख खो जाता है और अभी का दुख खो जाता है। क्योंकि जो तुम्हें दुख दिखाई पड़ता है, वह इसीलिए तो दुख दिखाई पड़ता है, क्योंकि तुमने सुख के कोई सपने संजो रखे हैं; उनकी तुलना में ही, उनकी अपेक्षा में ही दुख है। तुम्हारे सभी दुख तुम्हारे सुख की अपेक्षा से निर्मित होते हैं। इसलिए जितनी बड़ी अपेक्षा, उतना दुखी आदमी। जिसकी कोई अपेक्षा नहीं, उसका कोई दुख नहीं। लेकिन तुम बुद्ध को सुन कर फिर सुख के सपने बनाते हो। तुम बुद्ध से भी सपना निकाल लेते हो। तुम बुद्ध को भी अपने नींद की दवा बना लेते हो। तुम बुद्ध से भी पूछते हो, "बताओ रास्ता--सुख को पाने का।"
और ध्यान रहेः बुद्ध केवल तुम्हें दुख को देखने का रास्ता बता सकते हैं। सुख को पाने का कोई सवाल ही नहीं है। जिस दिन तुम दुख देखें लेते हो, जिस दिन कोई सुख तुम्हें लुभाता नहीं है; जिस दिन तुम लोभ की वृत्ति से मुक्त हो जाते हो और जान लेते हो कि सब भ्रांति है, जिस दिन तुम दुख के लिए राजी हो जाते हो, उसी दिन दुख विसर्जित हो जाते हैं।
दुख इतना घना होता है कि तुम्हें जगा देता है। एक आदमी की सर्जरी करनी
हो अस्पताल में, तो हमें उसे बेहोश करना पड़ता है। बेहोश करके फिर हड्डी- पसलियां काटो, हाथ-पैर तोड़ो, हृदय खोलो, उसे कुछ पता नहीं चलता। वह इतना बेहोश है कि दुख पता नहीं चलता।
बेहोशी दुख को झेलने में समर्थ बनाती है। और जितना बड़ा दुख झेलना हो, उतनी बड़ी बेहोशी चाहिए। अन्यथा बीच में टूट जाए बेहोशी, तो कठिन हो जाए। बड़े दुख के लिए बड़ी बेहोशी चाहिए और छोटे दुख के लिए छोटी बेहोशी। और अगर बिल्कुल दुख न झेलना हो, तो पूर्ण होश चाहिए।
होश आते ही जैसे सारे जीवन का रूपांतरण हो जाता है। जहां कल दुख दिखाई पड़ता था, जहां कल सुख दिखाई पड़ता था, वे दोनों एक साथ खो जाते हैं। धूप-छांव दोनों एक साथ खो जाते हैं; रह जाते हो तुम--अकेले। और तुम्हारा वह अकेलापन ही मुक्ति है। तुम्हारे उस अकेलेपन में ही आनंद की वर्षा होती है।
तुम्हारे उस अकेलेपन में ही अमृत का पहली बार अनुभव होता है।
जिस दिन कोई आशा नहीं--भविष्य की, उसी दिन वर्तमान की कोई पीड़ा नहीं; भविष्य और वर्तमान एक साथ समाप्त हो जाते हैं।
मैं निरंतर कहता हूंः "वर्तमान में जीओ।" लेकिन यह बात थोड़ी गलत है। लेकिन तुम गलत हो और तुमसे गलत भाषा में बोलना पड़ता है। तुमसे मैं कहता हूंः "वर्तमान में जीओ।" लेकिन कभी तुमने पूछा नहीं, सोचा भी नहीं कि अगर भविष्य नहीं है और अतीत भी जा चुका है और भविष्य अभी आया नहीं, तो वर्तमान कैसे हो सकता है! नदी का "वह" किनारा भी नहीं है, नदी का "यह" किनारा भी नहीं है, तो बीच का सेतु कैसे खड़ा हो सकता है! यह जो वर्तमान का क्षण है, यह हो ही तब सकता है, जब अतीत का क्षण इसे पीछे से सम्हालता हो। और भविष्य का क्षण इसे आगे से सम्हालता हो। दो किनारे हों--अतीत और भविष्य के, तो वर्तमान का सेतु होगा।
तुमसे मैं निरंतर कहता हूंः वर्तमान में जीओ, लेकिन जिस दिन तुम जीओगे, उस दिन अतीत और भविष्य तो खो ही जाएंगे, वर्तमान भी खो जाएगा।

क्योंकि जब किनारे ही न रहे, तो बीच का सेतु कैसे रहेगा; उस दिन अचानक तुम पाओगे, कि समय खो गया। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है कि समाधि कालातीत है। वह वर्तमान में भी नहीं है, क्योंकि वर्तमान तो अतीत और भविष्य के ही बीच की लकीर है।
अगर अतीत और भविष्य दोनों झूठ हैं, तो वर्तमान भी झूठ है। और मध्य कैसे बच सकता है, जब दोनों छोर खो जाएं! मध्य कहां बचेगा? दोनों छोर के खोते ही मध्य भी खो जाता है।
जिस दिन तुम भविष्य की आशा नहीं रखते, जिस दिन तुम अतीत की स्मृति नहीं सम्हालते, उस दिन तुम वर्तमान में रहोगे, यह कहना गलत है। क्योंकि वर्तमान भी नहीं बचेगा। उस दिन तत्क्षण समय खो जाएगा; तुम समयातीत हो जाओगे। तुम अपने को अचानक पाओगे--वहां, जहां कोई समय नहीं है; जहां न कुछ कभी हुआ, न जहां कभी कुछ होने वाला है; न जहां कुछ हो रहा है।
यह जो अवस्था है, यह अवस्था बुद्ध की अवस्था है। इस अवस्था में कोई दुख नहीं है, क्योंकि इस अवस्था में सुख की कोई वासना नहीं है। इस अवस्था में कोई विषाद नहीं है, क्योंकि इस अवस्था में कोई आशा नहीं है। इस अवस्था में तुम कुछ पाना नहीं चाहते, इसलिए तुम पीड़ित भी नहीं हो सकते। इस अवस्था में तुम ही बचते हो--निपट तुम--तुम्हारा "होना" बचता है।
इस अवस्था को बुद्ध मोक्ष कहते हैं, महावीर कैवल्य कहते हैं, क्योंकि केवल तुम ही बच रहते हो। इसे हिंदू ब्रह्म कहते हैं, क्योंकि तुम तो खो जाते हो, केवल समग्र की सत्ता शेष रह जाती है।
ये चार आर्य-सत्य तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहे हैं, क्योंकि इन चारों के पहले एक परदा तुम्हारी आंख पर है-दुख के प्रति मूर्च्छा का।
तुम दुख को देखती ही नहीं। तुम कभी दुख को आंख भरकर नहीं देखते। तुम सदा दुख से आंखें छिपाते हो। तुमने कभी दुख का आमना-सामना किया है? घर में कोई मर गया हो, तब तुमने उसके पास बैठ कर उसकी मृत्यु का आमना-सामना किया है? तुम छाती पीटोगे, रोओगे, चिल्लाओगे--सब करोगे। लेकिन यह सब "बचने" की तरकीबें हैं।
एक घटना घटी है--मृत्यु की, उसको तुम भुलाने के उपाय कर रहे हो। तुम जाओगे सुनोगे ज्ञानियों को, कि "आत्मा अमर है, कोई मरता नहीं; शरीर ही मरता है। पंचतत्व पंच-तत्वों में मिल गए और भी भीतर छिपा था, वह तो शाश्वत अजन्मा--अभी भी है।" तुम ये सब बातें सुनोगे। तुम रोओगे, दुखी होओगे, पीड़ित होओगे, सांत्वना इकट्ठी करोगे। लेकिन एक बात तुम कभी न करोगे कि मौत सामने खड़ी है, अभी घट रही है, तुम इसे देख लो। क्योंकि उससे तो तुम्हें घबड़ाहट लगेगी।
अगर तुम मौत को एक बार भी देख लो--समय बिना खोए, बिना दूसरी बातों को बीच में लाए-तो तुम्हें दिखाई पड़ जाएंगे बुद्ध के चार आर्यसत्य। क्योंकि मौत तुम्हारी तंद्रा को तोड़ देगी।
यूनान में हुआ--एक बहुत बड़ा विचारशील सम्राट। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि "नासमझ दूसरे के अनुभवों से सीख नहीं सकता। नासमझ अपने अनुभवों से भी मुश्किल से सीख पाता है। समझदार अपने अनुभव के लिए नहीं रुकता है; दूसरे के अनुभव से भी वह सीख लेता है।"
इस सम्राट का नाम था--मारकस आरेलियस। दुनिया में जो विचारशील सम्राट हुए हैं, उनमें इसका कोई मुकाबला नहीं है। न अशोक, न अकबर--कोई उसके मुकाबले नहीं पहुंच सकते। उसकी छोटी सी किताब "मेडिटेशंस" बहुत गहन रूप से पढ़ने जैसी है। वह कह रहा है कि "नासमझ अपने अनुभव से भी नहीं सीख पाता। नासमझ मरेगा तब भी छाती पीटते हुए, शोरगुल मचाते हुए मर जाएगा, ताकि मौत को देख न पाए। समझदार दूसरे के अनुभव से भी सीख लेता है; दूसरा भी मरेगा तो भी समझदार उसी पीड़ा को अनुभव कर लेगा, जो मृत्यु की पीड़ा है।"
बुद्ध के साथ यही हुआ। दूसरे की लाश देखना बुद्ध को पर्याप्त हो गया। उन्होंने कहाः बस, अब जीवन व्यर्थ है। जब वह आदमी मर गया है और मुझे भी मरना है, तो इन बीच के थोड़े से दिनों को व्यर्थ खोना उचित नहीं है। मैं इन्हें "खोज" में लगाऊंगा। जब मौत आने ही वाली है, दिन दो-दिन की बात है, दिन चार-दिन की बात है--मौत आने ही वाली है, तो इस बचे हुए जीवन को मैं जीवन

की खोज में लगाऊंगा। इसके पहले कि मौत आए, कम से कम मैं जान तो लूं कि जीवन क्या है! इसके पहले कि मेरे हाथ से अवसर छीन लिया जाए, मैं झांक तो लूं कि मुझे किस जगत में भेजा गया था और वहां क्या था!
दूसरे की मृत्यु से बुद्ध को ज्ञान हुआ। तुम्हें "तुम्हारी मृत्यु"
से भी "ज्ञान" न होगा। और यह दूसरा अजनबी था, परिचित भी न था। तुम्हारे प्रियजन भी मरते हैं, तो भी तुम्हें ज्ञान नहीं होता; क्योंकि तुम बचने की तरकीब जानते हो। तुम आंखें चुराना जानते हो। जहां भी दुख हुआ, तुम तत्क्षण आंख चुराते हो।
तुम कभी अस्पताल गए हो? तो तुम इस भांति निकलते हो, जैसे कि मरीज दिखाई
न पड़े। किसी की टांग बंधी है, किसी का सिर लटका है, किसी का हाथ टूटा है; तुम अस्पताल से तेजी से गुजरते हो। अस्पताल कोई जाना नहीं चाहता!
और मरघट? मरघट से तुम गुजरना पसंद नहीं करते हो; कभी मजबूरी में जाना पड़ता है। तुमने कभी ख्याल किया है कि मरघट पर बैठ कर लोग बड़ी बातचीत में संलग्न हो जाते हैं; जमाने भर की बातचीत वहां चलाते हैं, ताकि वह जो तथ्य मरघट का है, वह ख्याल में न आए।
मरघट पर लोग जैसी गप्पबाजी करते हैं, वैसी और कहीं भी नहीं करते! सारे गांव के जीवन की चर्चा उठाते हैं। घंटे, डेढ़-घंटे उनको वहां बैठना पड़ता है, उतनी देर बड़ी बेचैनी की है। काश, उतनी देर ध्यानस्थ होकर बैठ जाएं; बोलें न, चुपचाप रहें, तो बड़ी कठिनाई होगी। घर वही आदमी वापस न लौटेगा--जो गया था। क्योंकि दूसरे की मौत तुम्हारी मौत की खबर है। हर मौत तुम्हारी मौत है। और तुम्हें अगर अपनी मौत दिखाई पड़े, तो तुम जीवन से आशा बांधनी बंद कर दोगे। बुद्ध ने कहा हैः "मृत्यु को जिसने देख लिया है, उसे फिर संसार में कोई
भी बांध नहीं सकता है।" इसलिए हम मृत्यु को जीवन की परिधि के बाहर रखते हैं, मरघट को गांव के बाहर बनाते हैं। कोई मर जाए तो मां बच्चे को घर में वापस बुला लेती है कि "भीतर आ जाओ।" ताकि बच्चा मरे हुए को न देख ले!
पर तुम्हारे छिपाने से मौत रुकती नहीं है। तुम कितना ही अपने को समझाओ, मौत आएगी। जितनी जल्दी तुम पहचान लो, उतना ही बेहतर है। क्योंकि मौत को अगर आमने-सामने देख लो, तो तुम्हें "जीवन दुख है", यह दिखाई पड़ जाए, मूर्च्छा टूट जाए।
मौत तो दूर है, तुम छोटे दुखों को भी आमने-सामने करके नहीं देखते। दुख
को देखने की प्रक्रिया का नाम तपश्चर्या है। भूख लगी है और तुम उस भूख को देखते हो। भूख को देखने का नाम उपवास है; भूखे मरने का नाम उपवास नहीं है। क्योंकि जब भूख लगी है, तब तुम राम-राम, राम-राम करके अपने को उलझाए रखो, यह उपवास नहीं है।
भूख लगी है, उसे तुम देखते हो, तुम उसी पर ध्यान करते हो। भूख फैलती जाती है--रोएं-रोएं में; शरीर के कोने-कोने में चोट करती है। पूरी काया मांग करती है और उसे तुम देखते हो, तुम साक्षात्कार करते हो। तुम कुछ करते नहीं हो; उसे मिटाने का, उसको बुझाने का, उससे मुक्त होने का, उसे भुलाने का--तुम कोई उपाय नहीं करते हो। तुम सीधा देखते हो--आंख में आंख डाल कर देखते हो कि "भूख क्या है" और जिसने भूख को देख लिया, वह उपवास को उपलब्ध हो गया। फिर उसे कभी भूख न लगेगी। यह नहीं कि वह भोजन नहीं करेगा। भोजन करेगा, पानी पीएगा; लेकिन उसे भूख अब कभी न लगेगी। अब यह कृत्य शरीर का होगा, वह अलग होगा।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर में आग लगी। रात उसकी पत्नी ने जोर से उसकी रजाई हिलाई और कहा, "उठो, नसरुद्दीन, घर में आग लगी है।" उसने कहा, "तू क्यों फिकर करती है! कोई हमारा मकान है? किराए से रहते हैं!" वापस रजाई ओढ़ कर वह सो गया। किराएदार को इतनी क्या चिंता है!
अगर तुम भूख को ठीक से देख लो तो तुम पाओगे कि तुम जिस मकान में रह रहे हो, उस मकान की जरूरतें हैं ये। ये तुम्हारी जरूरतें नहीं हैं। ठीक है, तुम रहते हो, इंतजाम कर लेते हो, लेकिन चिंता का कोई कारण नहीं है। जब तक हो, सम्हाल लेते हो। लेकिन बोझ ढोने की कोई जरूरत नहीं है। शरीर कल के बदले आज गिरता हो, तो तुम यह न कहोगे कि कल तक रुक जाओ! तुम्हारे मन में इससे कोई बेचैनी पैदा न होगी।

दुख को देखो तो तुम तपश्चर्या में लीन हो गए।
सिर में दर्द हो, तो उसे देखो। तुम अचानक पाओगे कि तुम अलग हो गए हो, दर्द अलग हो गया है। जिसे भी तुम देखोगे, उससे तुम अलग होने लगोगे। दृष्टि अलग करती है क्योंकि जिसे तुम देखते हो, वह दृश्य हो जाता है और तुम देखने वाले हो जाते हो। तादात्म्य टूटता है।
सिर में दर्द है; देखो। इस कीमती अवसर को खोओ मत। जितनी भी सिरदर्द की दवाएं हैं, वे केवल बेहोशी की दवाएं हैं। एस्पिरिन हो, एस्प्रो हो--कुछ और हो; उनसे सिर दर्द मिटता नहीं है, सिर्फ भूलता है। अच्छा हो कि तुम देखो। दर्द को जिसने देखा, वह दर्द के बाहर हो गया। जो दर्द के बाहर हो गया, वह हंसने लगेगा। तब जिंदगी एक जाल मालूम पड़ेगी, जिसे तुमने अपने हाथ से रचा हुआ है और भाग-भाग कर रचा हुआ है।
जिस-जिस चीज से तुम आंख चुरा रहे हो, वही तुम्हारा पीछा कर रही है।
दिवालिया हो गए हो तुम। भागो मत, गौर से देखो, तो तुम पाओगे कि दिवालिया तुम सदा से थे। यह बैंकरप्सी कोई आज नहीं हो गई, तुम सदा से थे।
यही भ्रांति थी कि तुम्हारे पास कुछ है। यह भ्रांति टूट गई। एक तथ्य का उदघाटन हुआ। तुम्हारे पास कभी भी न कुछ न था।
तुम कुछ लेकर आए नहीं, तुम कुछ लेकर जाओगे भी नहीं। तो बीच में तुम मालिक कैसे हो सकते हो? तुम्हारी मालकियत धोखे की है।
जब भी जीवन में दुख आए, पीड़ा आए, मृत्यु आए--तुम्हारे पास आए, तुम्हारे मित्रों के पास आए, प्रियजनों के पास आए, अजनबी पर घटे--तुम उसे देखना। तुम यहां-वहां आंख को मत डांवाडोल करना। आंख बंद मत करना। तुमने आंख बंद की कि तुम एक बहुमूल्य अवसर से चूक गए। और जो आंख खोल कर देखेगा--उसे बुद्ध के चार आर्य-सत्य दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे।
बुद्ध ने कोई सिद्धांत नहीं दिया है--जगत को कोई शास्त्र नहीं दिया है। यह तो जीवन का सीधा अनुभव है। यह सत्य वैसे ही है, जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने से पानी बनता है। यह कोई सिद्धांत नहीं है। ये सत्य जीवन के आधार हैं। दुख है। हर दुख का कारण है।
बुद्ध की दृष्टि बड़ी वैज्ञानिक है। वे एक वैज्ञानिक की तरह जीवन का विश्लेषण करते हैं। इसलिए बुद्ध के धर्म को लोगों ने विश्लेषण का धर्म कहा है--तर्क का, बुद्धि का धर्म कहा है। साफ-साफ हिसाब बांटा है बुद्ध ने। बुद्ध कोई रहस्यवादी नहीं हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें रहस्य का अनुभव नहीं है। उन्हें रहस्य का अनुभव है, लेकिन उस रहस्य की वे बात नहीं करते। वे तुम्हारे जगत का विश्लेषण करते हैं। जिस दिन तुम्हारा जगत विश्लिष्ट हो जाएगा, तुम रहस्य का जन्म होगा। उस रहस्य को कहा नहीं जा सकता। इसलिए बुद्ध रहस्य के संबंध में चुप हैं। सिर्फ प्रक्रिया के संबंध में बताते हैं। मंजिल के संबंध में मौन हैं। रास्ते का पूरा का पूरा नक्शा दे देते हैं।
बुद्ध ने जाग कर देखा कि जीवन दुख है। इसका तुम्हें अब तक पता क्यों न चला? तुम किसी भांति आंख चुराते रहे। जब भी दुख आया, तब तुमने कुछ कह कर अपने को समझा लिया। तुमने कभी स्वीकार न किया कि दुख है। तुम इतने डरे हुए हो, भयभीत हो।
लेकिन ध्यान रहे, अगर तुम भयभीत हो, और अगर एक दुख से बचोगे, तो तुम उससे भी बड़े दुख में गिरोगे। क्योंकि बचाव यहां हो नहीं सकता। एक तरफ कुआं है, दूसरी तरफ खाई है। यह हो सकता है कि एक दुख से बचने को तुम दूसरे दुख में उतर जाओ। थोड़ी देर को भूले रहो, फिर तीसरे दुख में उतर जाओ; फिर थोड़ी देर को भूले रहो, फिर तीसरे दुख में उतर जाओ; फिर थोड़ी देर को भूले रहो। जिंदगी भर तुम दुख बदलते रहो!
लोग मरघट ले जाते हैं-किसी की लाश को, तो कंधा बदलते रहते हैं। थक जाता
है एक कंधा, तो दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। बोझ उतना ही बना रहता है। दूसरा कंधा थोड़ी देर खींचता है, थक जाता है। फिर कंधा बदल लेते हैं। जिंदगी भर तुम दुखों से "कंधा बदलते" रहे हो।
एक पत्नी से थक जाते हो, दूसरे विवाह का विचार मन में उठना शुरू हो जाता है। एक कंधे से ऊब जाते हो, मन दूसरे धंधे की योजनाएं बनाने लगता है।

एक वासना मुंह को तिक्त कर जाती है, तत्क्षण तुम दूसरी वासना से मुंह के स्वाद को वापस ले लेना चाहते हो। बाकी तुम बदलते दुख हो--एक दुख से दूसरा, दूसरे से तीसरा।
जीवन भर तुम कंधे बदलते हो। और जब मौत सामने आती है, तब तुम पाते हो कि तुम्हारा जीवन दुख की एक राशि है। उससे घबड़ाहट होती है। इसलिए आदमी मौत से डरता है। मृत्यु का डर नहीं है वह, जीवन भर के दुखों की राशि का दर्शन होता है--उसका डर है। यह कमाई है। इतनी मेहनत, इतने श्रम, इतनी संलग्नता, इतने संकल्प से यह पाया है।
मृत्यु सभी को दिवालिया छोड़ जाती है। सिर्फ उन थोड़े लोगों को छोड़कर, जिन्होंने मृत्यु के पहले ही जीवन के दुख का साक्षात्कार कर लिया है। बुद्ध घर छोड़ कर जा रहे हैं। जिस एक सारथी को साथ ले आए हैं, वह सारथी बूढ़ा था-जब उन्होंने विदा किया--तो उस सारथी ने कहा, "मत करो ऐसा। तुम अभी युवा हो। तुम्हें जीवन का कोई अनुभव नहीं है। भागो मत, छोड़ो मत। जीवन में बड़े सुख हैं। और तुम्हें कमी क्या है? अगर हम गरीब छोड़ें, तो छोड़ने जैसा भी है। तुम सम्राट हो, पीछे लौटकर देखोः राजमहल में क्या कमी है?"
बुद्ध ने पीछे लौट कर देखा और सारथी से कहा, "वहां सिवाय लपटों के मुझे
और कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। और तुम जहां सोचते हो सुख है, वहां मैंने बहुत गहरे में देखा और दुख पाया। वहां सिर्फ दुख छिपा है।"
गरीब के जीवन में भी दुख है, छिपाने का साधन गरीब है। अमीर के जीवन में
भी दुख है, पर छिपाने का साधन कीमती है। कोई झोपड़े में छिपा रहा है, कोई महल में। पर दुख सब जगह है। और तुम भलीभांति जानते हो। तुमने भी दुख को अनेक बार पाया है और भाग खड़े हुए हो। लेकिन धर्म की शुरुआत उसी दिन होगी, जिस दिन दुख मिले तो वहीं खड़े हो जाओ और दुख की आंख में आंख डाल कर देख लो।
अगर तुम दुख का साक्षात्कार कर सको, तो पहला अनुभव होगा कि जीवन दुख है--पूरा जीवन दुख है; बेशर्त दुख है।
बुद्ध कहते हैंः "जन्म दुख है, जीवन दुख है, जरा दुख है, मरण दुख है। सारा जीवन एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक दुख से भरा है।"
और जैसे ही तुम देख पाओगे कि "जीवन दुख है", तुम्हें दूसरी पर्त दिखाई पड़ेगी कि "दुख का कारण है।"
दुख का कारण क्या है? कारण है कि तुमने सुख मांगा। दुख का कारण है कि तुमने कुछ चाहा; जो नहीं हो सकता, उसकी तुमने मांग की। दुख का कारण है कि तुमने असंभव की वासना की। यहां सभी क्षणभंगुर है, यहां तुमने शाश्वत की मांग की। यहां नदी का बहना स्वभाव है, तुमने चाहा कि नदी ठहर जाए।
यहां प्रेम भी क्षणभंगुर है और तुमने चाहा कि प्रेम शाश्वत हो जाए। इसलिए प्रेम से जितना दुख पैदा होता है, उतना किसी और चीज से पैदा नहीं होता।
वे लोग तो अभागे हैं, ही, जिनके जीवन में प्रेम नहीं है, क्योंकि वे अभाव का दुख झेल रहे हैं। वे लोग भी अभागे हैं, जिन्होंने जीवन प्रेम को जाना। क्योंकि वे प्रेम के कारण दुख भोग रहे हैं। यहां ब्रह्मचारी का दुख है, यहां शादीशुदा के दुख हैं।
एक युवती डूबती थी नदी में और एक आदमी ने दौड़कर उसे बचाया। सुंदर युवती, गांव के सबसे बड़े धनपति की बेटी--इकलौती बेटी। बाप ने इस जवान को धन्यवाद दिया--पुरस्कृत करना चाहा और कहा कि "तू हिम्मती है, साहसी है, बहादुर है। तूने इतनी जोखिम उठाई।" उसने कहा कि "माफ करें। यह कोई जोखिम नहीं है। मैं पहले से ही शादीशुदा हूं।"
शादीशुदा भी जोखिम उठा रहा है। और ब्रह्मचारी स्त्री से परिचित होने में भी भयभीत है; वह भी जोखिम उठा रहा है।
जिनके पास है--वे दुखी हैं। जिनके पास नहीं है--वे भी दुखी हैं। गरीब दुखी हैं कि धन नहीं है। अमीर दुखी हैं कि धन है--अब धन का क्या करें!
जीसस एक गांव से निकले और उन्होंने एक आदमी को दौड़ते देखा--एक वेश्या
के पीछे। पकड़ा और कहा, "यह तू क्या कर रहा है! क्या परमात्मा ने आंखें इसलिए दी हैं?" उस आदमी ने कहा, "तुम भूल गए! परमात्मा ने तो मुझे अंधा पैदा किया था। तुमने ही छूकर मेरी आंखें ठीक कर दी थीं। जीसस, क्या तुम मुझे भूल

गए! मैं अंधा था; तुमने ही मेरी आंखें ठीक कीं। लेकिन अब आंखों का मैं क्या करूं? इससे तो अंधा ही बेहतर था। आंख से रूप दिखाई पड़ता है। रूप पकड़ में नहीं आता। तुमने कृपा क्या मेरे ऊपर? तुमने मुझे कष्ट में डाल दिया।" जीसस बहुत उदास हो गए।
जीसस वापस लौटने लगे गांव से, तो उन्होंने छत पर देखा कि एक आदमी आधा
छत से बाहर लटक रहा है। उसके मुंह से फसू कर गिर रहा है। उन्होंने उसे आवाज दी कि हद हो गई! क्या इतना नशा करते हो? उस आदमी ने आंख खोली; उसने कहा, "क्या तुम जीसस हो? मैं तो मर गया था, तुमने मुझे जिलाया। अब मैं जीवन का क्या करूं? तुम मेरे मित्र नहीं, दुश्मन हो। मैं मर गया था, तुमने मुझे जीवन दिया। अब मैं जीवन का क्या करूं? इसे भुलाने की कोशिश कर रहा हूं।" जिनके पास है--वे दुखी हैं। जिनके पास नहीं है-वे दुखी हैं। तुमने सुखी आदमी देखा है? सुखी आदमी तुम्हें कहीं मिलेगा नहीं। और कभी मिल जाएगा, तो तुम भरोसा न करोगे कि यह आदमी हो सकता है। इसलिए कोई भरोसा नहीं करता है कि जीसस कभी हुए! कोई भरोसा नहीं करता है कि बुद्ध कभी हुए। कोई भरोसा नहीं करता कि कृष्ण कभी हुए। हमारा मन यही होता है कि सब कपोल-कल्पनाएं हैं। हम भलीभांति जानते हैं कि सुख हो कैसे सकता है! दुख ही दुख है। पर एक बार अगर तुम दुख में आंख गड़ा कर देखोगे, तो तुम्हें दुख का कारण दिखाई पड़ जाएगा।
तुम्हारी निराशा का कारण--तुम्हारी आशा है। सोचो, कोई आशा न हो, तो क्या तुम्हें कोई निराश कर सकेगा? तुम्हारी गरीबी का कारण--धन की वासना है। अगर धन की वासना न हो, तो क्या तुम्हें कोई गरीब कर सकेगा? तुम्हारा अपमान तुम्हारे सम्मान की आकांक्षा है। सम्मान की आकांक्षा न हो, तो कौन तुम्हें अपमानित कर सकता है?
हर दुख के पीछे--तुम्हीं कारण हो। तुमने कुछ मांगा है, उससे तुम दुखी हो। तुम मांग छोड़ दो, दुख खो जाएगा।
तो बुद्ध ने कहा है, "तृष्णा दुष्पूर है।" वह कभी भरती नहीं। और न भरे होने से सदा दुख बना रहता है। तुम तृष्णा छोड़ दो। तृष्णा दुख का मूल है। और अगर तुम तृष्णा को एक क्षण को भी छोड़ दो, तो तुम्हें पता चल जाएगा कि दुख निरोध का मार्ग तुम्हारे हाथ में आ गया है। तृष्णा दुख का मार्ग है; तृष्णा-मुक्त, तृष्णा-रिक्त, तृष्णा-शून्य चेतना दुख-निरोध का मार्ग है। तुमने अब तक वासना के रास्ते पर ही यात्रा की है। और तुम जब भी चले-- लोभ से चले। जब भी उठे-लोभ से उठे। तुमने प्रार्थना भी की, तो कुछ मांगा! तुम्हारी प्रार्थना भी वासना थी। तुमने ध्यान भी किया, तो आकांक्षा थी; तुमने ध्यान से भी कुछ फल पाना चाहा। तुम्हारे सभी कृत्य तृष्णा के रास्ते पर सीढ़ियां बनते हैं।
तुम्हारा एक भी कृत्य ऐसा नहीं है, जिसे तुमने तृष्णा के रास्ते को छोड़ कर किया हो। और जिस दिन तुम ऐसा एक भी कृत्य कर सकोगे--छोटे से छोटा कृत्य--सांस लेने का भी--तृष्णा से शून्य, उस दिन तुम्हें चौथी दशा का पता चल जाएगा कि दुख-निरोध है। उसे बुद्ध निर्वाण कहते हैं, महावीर कैवल्य कहते हैं।
पहला तो काम है कि मूर्च्छा टूटे; तुम दुख को देख पाओ। दूसरा काम हैः दुख का साक्षात्कार-तप। तीसरा काम है; दुख के कारणों की तलाश। और बहुत कारण नहीं हैं। एक ही कारण है। सभी दुखों के मूल में एक ही कारण है, वह है- तुम्हारी तृष्णा। और तब तृष्णा का विसर्जन-मार्ग है।
और जिस दिन तृष्णा, शून्य हो जाती है-एक क्षण को भी ऐसी घड़ी आ जाती है
कि आकाश में कोई बादल न हो, तुम्हारे मन में कोई तृष्णा न हो, अचानक तुम पाते हो कि तुम मुक्त हो। उस दिन तुम भरोसा करोगे कि बुद्ध हुए हैं। उस दिन तुम्हें हैरानी होगी कि इतने लोग हैं, इतने थोड़े बुद्ध क्यों हुए! इतना बड़ा है संसार, इतने थोड़े लोग निर्वाण को क्यों उपलब्ध हुए? उस दिन तुम्हें चिंता यही होगी।
जीसस का एक बहुत अनूठा वचन है। ईसाइयों ने इसका भी उल्लेख नहीं किया है। सूफियों ने उसको इकट्ठा किया है। सूफियों के पास जीसस के कई बहुमूल्य वचन हैं। एक वचन है कि "जिस दिन तुम पाओगे, बहुत बेचैन हो जाओगे। बेचैनी के

बाद फिर चित्त शांत होगा।"... जिस दिन तुम पाओगे, बहुत बेचैन हो जाओगे। शब्द बड़े कठिन हैं। क्योंकि तुम तो सोचते हो, जब तक नहीं पाया, तब तक बेचैनी है। जिस दिन पाओगे, बहुत बेचैन हो जाओगे; फिर बेचैन आएगा। बेचैनी यह होगी
कि जिस दिन तुम पा लोगे-तृष्णा-शून्य क्षण, उस दिन तुम बेचैन हो जाओगे-सारे जगत के लिए कि यह क्या हो रहा है! यह क्या पागलपन हो रहा है? ये लोग क्या कर रहे हैं? जो बुद्ध हो सकते हैं, जो महा-बुद्धत्व को पा सकते हैं, जिनकी संपदा जिनके भीतर है, वे भिखारी बने रास्तों पर खड़े हैं; वे रो रहे हैं, उनकी आंखें.जार-.जार आंसू गिरा रही हैं। उनका हृदय सिवाय पीड़ा के और किसी चीज से भरा नहीं है, जो कि आनंद के सागर हो सकते हैं!
जिस दिन तुम पाओगे-जीसस ठीक कहते हैं-बड़ी बेचैनी होगी। तुम हैरान होओगे चारों तरफ देखकर कि यह क्या हो रहा है! यह संसार क्या है?-एक महान विक्षिप्तता। फिर धीरे-धीरे तुम चैन को उपलब्ध होओगे। पहला आघात तो बड़ा बेचैन करने वाला होगा।
अभी तुम विश्वास नहीं कर पाते कि बुद्ध हुए हैं। लगता है कि पुराण-पुरुष हैं। कहानी है; हुए नहीं होंगे, गढ़े। वैज्ञानिक यही कहते हैं। पदार्थवादी यही कहते हैं-कि ये सिर्फ मनुष्य की आकांक्षाएं हैं। ऐसा, मनुष्य चाहता है। बुद्ध कभी हुए नहीं हैं। यह गौतम सिद्धार्थ नाम का व्यक्ति हुआ भी हो। लेकिन यह जो महानिर्वाण की बात है, यह कल्पना है। आदमी ऐसा चाहता है, इसलिए उसने यह आरोपित कर लिया है!
मनोवैज्ञानिक कहते हैंः यह घटना घटी नहीं। फ्रायड कहता है कि सुख हो
ही नहीं सकता।
और जहां तक तुम्हारा संबंध है, फ्रायड सही है। और जहां तक तुम्हारा संबंध है, बुद्ध कल्पित हैं, पुराण-पुरुष हैं, मिथ-ऐतिहासिक नहीं हैं, भरोसे योग्य नहीं हैं। कैसे भरोसा करोगे? तुम जानते हो अपने को, पड़ोसियों को, मित्रों को, प्रियजनों को। यहां कहीं भी सुख की एक किरण नहीं फूटती। और बुद्ध कहते हैं, "सुख का महासूर्य, आनंद का महासूर्य उदित हुआ है।" भरोसा नहीं आता है। क्योंकि भरोसा हमें उसी पर आता है, जिसका हमें थोड़ा-सा स्वाद है।
जिस दिन तुम तृष्णा से शून्य एक क्षण को भी हो जाओगे-वही ध्यान का क्षण है, उसी क्षण तुम पाओगे कि बुद्ध हुए। उस दिन शेष सब इतिहास फीका और पागलों का हो जाता है; सिर्फ बुद्ध का होना ही शाश्वत, सिर्फ बुद्ध का होना ही सत्य रह जाता है।
लेकिन बुद्ध के चार आर्य-सत्यों में मैं पांचवां जोड़ता हूं। वह इसलिए जोड़ता हूं क्योंकि वे चार अगर तुमने पांचवें के बिना समझे, तो तुम समझ ही न पाओगे।
अगर ये चार सिद्धांत होते-दर्शन-शास्त्र के, तब कोई कठिनाई न थी। समझ लेते-गणित की तरह। लेकिन ये चार अनुभव हैं-सिद्धांत नहीं। इनकी प्रयोगशाला तुम्हें बनना पड़े। यह कोई शास्त्र और तर्क तुम्हें नहीं समझा सकते। यह तुम ही जानोगे तो पहचानोगे। और उसके लिए पांचवां आर्य-सत्य मैं जोड़ता हूं कि तुम जागो; तुम जागने का उपाय करो।
तुम्हारी मूर्च्छा इतनी गहरी है कि तुम दुख में भी सोए रहते हो, सुख में भी सोए रहते हो। तुम सोए-सोए ही चलते हो। तुम्हारा जीवन एक लंबी निद्रा है। तुमने कभी ख्याल किया! तुमने सोए-सोए किए गए कुछ कृत्यों का ख्याल किया है? ... कभी तुम कोई एक किताब पढ़ते हो, पूरा पेज पढ़ जाते हो। पढ़ा तुमने जरूर। अचानक तुम्हें ख्याल आता है कि बिल्कुल नहीं पढ़ा, जैसे तुम नींद में गुजर गए! "पढ़ा नहीं" यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि तुम एक-एक शब्द पढ़े। "पढ़ा", यह भी नहीं सकते, क्योंकि एक भी शब्द याद नहीं आता। पूरा पृष्ठ जैसे कोरा छूट गया। आंखें तो गुजरीं, लेकिन तुम कहीं सोए रहे।
कई बार लगता है कि तुम किसी से बात कर रहे हो। सुनते मालूम पड़ते हो। घड़ी भर बाद में ख्याल आता है कि तुमने कुछ भी नहीं सुना। क्या हो रहा था, क्या कहा जा रहा था, चूक गया। तुम नींद में थे।
तुम भोजन करते हो-नींद में; चलते हो, उठते हो, बैठते हो-तुम सब कुछ नींद में कर सकते हो। ऐसा कोई कृत्य नहीं है-सामान्य जीवन का, जो नींद में न

किया जा सके। सिर्फ एक घटना है-ध्यान की, जो नींद में नहीं की जा सकती। बाकी सब किया जा सकता है। इसलिए "ध्यान" सूत्र है। नींद की दुनिया से जागरण की दुनिया में जाने की वही एकमात्र किरण है।
जैसे अंधेरे घर में छपरैल के किसी छेद से सूरज की एक किरण भीतर आती हो,
सब अंधकार है-ऐसा ही तुम्हारा पूरा जीवन निद्रा है। बस, एक छोटी-सी किरण ध्यान की अगर तुम पकड़ लो, तो तुम उस अंधकार के बाहर हो सकोगे।
ध्यान यानी अमूर्च्छा।
ध्यान भी तुम मूर्च्छित कर सकते हो। बहुत लोग कर रहे हैं। बैठे माला फेरते रहते हैं। अंगुलियां चलती रहती हैं; मन कहीं और भटकता रहता है।
अचानक घड़ी भर बाद ख्याल आता है कि क्या कर रहे थे, उसका कुछ पता नहीं।
कितनी माला, कितने गुरिए, उसका कुछ पता नहीं।
लोग गीता पढ़ रहे हैं, मंदिर-मस्जिदों में प्रार्थना, नमाज कर रहे हैं-
सब नींद में चल रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन नमाज पढ़ने गया। लोग नमाज के लिए झुके, तो उसने सामने वाले आदमी का कुरता झटका। उस आदमी ने कहा, "क्या करते हो?" उसने कहा, "मैं क्या करूं। मेरे पीछे वाला मेरा कुरता झटक रहा है, तो मैंने समझा कि शायद, इस मस्जिद में ऐसा नियम हो!" नसरुद्दीन का कुरता जरा ऊपर था, तो पीछे वाले ने उसे ठीक कर दिया था, तो उसने सामने वाले का झटका। उसने कहा, "पूछना हो कारण, तो पीछे वाले से पूछो।"
बस, लोग अंधे की तरह अनुकरण कर रहे हैं। तुम मंदिर भी चले जाते हो-किसी
के पीछे। तुम किसी के पीछे मंदिर के दुश्मन भी हो जाते हो। कोई तुम्हें आस्तिक बना देता है; कोई तुम्हें नास्तिक बना देता है। तुम नींद में कितनी यात्रा करते हो! कोई कुछ कह देता है, वह तुम्हें पकड़ लेता है। कोई उसके विपरीत कह देता है, वह तुम्हें पकड़ लेता है।
तुम एक गुरु के द्वार के दूसरे, दूसरे से तीसरे-भटकते रहते हो। ऐसा जन्मों से चल रहा है। यह यात्रा कोई नई नहीं है। तुमने बहुत द्वार खटखटाए। सिर्फ एक द्वार तुमने कभी नहीं खटखटाया-वह तुम्हारा अपना द्वार है। तुमने बहुतों की सुनी, सिर्फ एक की तुमने कभी नहीं सुनी-वह तुम्हारे भीतर छिपी हुई जागृति की संभावना है। तुमने सब किया, सिर्फ एक काम तुमने कभी नहीं किया-होश से तुमने कभी कुछ नहीं किया। और उसके बिना सब किया व्यर्थ है; किया न किया बराबर है।
जागो। और जागने के लिए सबसे सुगम स्थिति दुख की है। क्योंकि सुख में ज्यादा बेहोशी है। सुख में तो जागना बड़ा मुश्किल है। इसलिए लोग कहते हैंः "दुख में तो ईश्वर याद भी आ जाए, सुख में कभी याद नहीं आता।"
जब तुम सुखी होते हो, तो ईश्वर को बिल्कुल भूल जाते हो। दुख में, शायद पीड़ा में, आदमी थोड़ा चौंकता है; नींद थोड़ी टूटती है; करवट थोड़ी बदलती है। इसलिए दुख का उपयोग करो।
सभी ज्ञानियों ने दुख का उपयोग किया है-जागने के लिए। दुख का ऐसे ही उपयोग करो, जैसे पैर में कांटा लग जाए, तो तुम दूसरे कांटे से उस कांटे को निकाल लेते हो। फिर तुम दोनों कांटे फेंक देते हो। दुख कांटा है, उसका उपयोग करो-कांटे को निकालने के लिए।
दुख में जागो। दुख में तुम न जागोगे, तो फिर कोई उपाय जागने का नहीं है। जब शरीर दीन-हीन है, पीड़ा से भरा हो, अस्वस्थ हो, बीमार हो, बिस्तर पर पड़े हो, तब तुम न जागे, तो तुम जब स्वस्थ होओगे, शरीर वासना से भरेगा, आकांक्षाएं बल लेंगी, शक्ति भीतर होगी-तृष्णा में दौड़ने की, तब बहुत मुश्किल होगी।
छोटे बच्चे से लेकर बूढ़े तक-तृष्णा का खेल चल रहा है।
एक दुकान में ऐसा हुआ। एक स्त्री ने बहुत सामान खरीदा। छोटा बच्चा उसके साथ था। दुकानदार बड़ा प्रसन्न था; उसने छोटे बच्चे को कहा, "पप्पू ये चिलगोजे रखे हैं, मुट्ठी भर कर ले लो।" वह लड़का खड़ा राह, उसने चिलगोजे लिए नहीं। उस दुकानदार ने कहा, "अरे, तुम्हारी मां कुछ भी न कहेगी। तुम ले लो। और जब मैं कह रहा हूं, तो तुम क्या रुके हो?" फिर भी वह रुका रहा। दुकानदार ने कहा, "ऐसा बच्चा मैंने नहीं देखा! बच्चे तो बिना कहे मुट्ठियां भर लेते

हैं!" तो उसने खुद मुट्ठी भर कर चिलगोजे बच्चे के खीसे में भर दिए। बाहर आकर बच्चे की मां ने पूछा, "पप्पू, चिलगोजे तुझे बहुत प्रिय हैं। हद कर दी तूने-संयम की। तू कैसे संयम साधे रहा!" उसने कहा, "उसकी मुट्ठी बड़ी थी। वह कह रहा था, मुट्ठी भर लो। मेरी मुट्ठी में कम आते।"
छोटे बच्चे हैं, लेकिन गणित तो वासना का ही है। छोटे से छोटे बच्चे की
भी तृष्णा शुरू हो गई। फिर मरते दम तक "मुट्ठी बड़ी" का गणित चलता जाता है। कितनी बड़ी मुट्ठी हो जाए-तुम मर जाते हो-मुट्ठी खाली ही रहती है। जागो-दुख में। इसलिए जनक जैसे लोग पृथ्वी पर बहुत कम हुए। महावीर जैसे लोग काफी हुए। इस बात से तुम्हें समझ में आ जाएगा। क्योंकि दुख में जागना आसान हैः महावीर की प्रक्रिया आसान है। जनक की प्रक्रिया बहुत कठिन है; सुख में जागना बहुत कठिन है। इसलिए जनक जैसे आदमी अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। एक कोई जनक, कोई कृष्ण-ऐसे एक-दो नाम हैं पृथ्वी पर, जिन्होंने महल नहीं छोड़ा, जिन्होंने साम्राज्य नहीं छोड़ा, जो स्वर्ण की दुनिया में खड़े-खड़े जागे। बुद्ध और महावीर ने छोड़ा घर-द्वार। जैनों के सभी तीर्थंकर घर छोड़ कर गए।
प्रक्रिया क्या है? छोड़ कर जाने का अर्थ हैः सुख से हटे, दुख में प्रविष्ट हुए। ताकि दुख सब तरफ से जगाने में सहयोगी हो जाए। तब जाग पाए। जनक जैसा व्यक्ति अद्वितीय है। महावीर और बुद्ध अद्वितीय हैं, लेकिन महावीर और बुद्धों में जनक जैसा व्यक्ति अद्वितीय है; सुख में जागा।
तुम थोड़ा सोचना, जब तुम सुख में हो, तब तो जागना... । कोई जागना भी चाहे,
तो तुम कहोगेः "अभी ठहरो। बड़ा सुख का सपना देख रहा हूं, थोड़ी देर बाद जगाना। इतनी जल्दी भी क्या है?"
जब दुख-स्वप्न होता है, तब तुम नहीं जाग रहे हो। नाइटमेयर चल रहा है- भयंकर राक्षस छाती पर चढ़े हैं, तब तुम नहीं जाग रहे हो, तो जब किसी सुंदरी के साथ तुम सपने में सो रहे हो, तब तुम कैसे जागोगे? तब मुश्किल होगा। इसलिए जनक जैसे उल्लेख कम हैं। पर ध्यान रहेः जनक की साधना ज्यादा कठिन है। महावीर की साधना कितनी ही कठिन मालूम पड़े, जनक की साधना के मुकाबले में कठिन नहीं हो सकती।
क्योंकि सुख तो महातंद्रा है। सुख में तो जागने का मन नहीं होता; ख्याल भी नहीं उठता। दुख तपश्चर्या बन जाता है। लेकिन कोई चाहे तो सुख को भी तपश्चर्या बना सकता है। इसलिए मैं निरंतर कहता रहा हूं कि दुख का भी उपयोग करो, सुख का भी उपयोग करो। कौन जाने, क्या तुम्हारी नियति हो-महावीर की या जनक की। इसलिए मैं कहता हूं कि संभोग के क्षण भी जागने की कोशिश करो। क्योंकि वह सुख का गहरे से गहरा क्षण है। और अगर तुम उसमें जाग गए, तो दुनिया में फिर तुम्हें कोई भी सुला न सकेगा। फिर सोने का कोई उपाय न रहा। दुख का भी उपयोग करो, सुख का भी उपयोग करो। कौन जाने, कैसी तुम्हारी नियति हो, कैसा तुम्हारा स्वभाव हो। चुनने की भी कोई जरूरत नहीं हैं। जीवन में दोनों हैं-दोनों काफी है। बीमारी भी है, स्वास्थ्य भी है, रोग भी है; सुंदर भी है, कुरूप भी है-दोनों में जागो। सुख-दुख दोनों को किनारा बना लो- तुम्हारी नदी जागरण की, दोनों के बीच बहे।
इसलिए कहीं भी जाने की जरूरत नहीं है। न जंगल जाने की... । दुख की तलाश क्या करनी है? काफी है-वैसे ही काफी है। सुख की झलकें हैं, दुख की झलकें हैं, दोनों घट रही हैं। तुम दोनों का एक ही उपयोग करो-कि तुम दोनों से अपने होश को संभालो। जो भी आए, तुम से आंख बचाकर न निकल पाए। लेकिन आंख बंद कर लेने का मन होता है।
एक अदालत में एक स्त्री भागी हुई पहुंची और उसने कहा, "पकड़ो उस आदमी को; वह अभी बाहर ही है। उसने मुझे रास्ते पर पकड़ लिया; मेरा आलिंगन किया और चुंबन किया। और ठीक अदालत के सामने?" मजिस्ट्रेट ने पूछा, "उसका हुलिया? वह आदमी कैसा लगता है? कितना ऊंचा है? कैसी आंख, कैसा हाथ-पैर?" उस स्त्री ने कहा, "यह बहुत मुश्किल है बताना।" उस मजिस्ट्रेट ने कहा, "उसने तुम्हें आलिंगन किया और चूमा और तू उसकी खबर भी नहीं दे सकती?" उसने कहा, "जब उसने चुंबन किया, तब पुरानी आदत के हिसाब से-मैंने आंखें बंद कर लीं। क्योंकि जब भी मुझे कोई चुंबन करता है, तो मैं आंख बंद कर लेती हूं।"

आम तौर से स्त्रियां आंख बंद कर लेती हैं। सुख इतना मधुर है कि आंख बंद करके ही उसका स्वाद ठीक से लिया जा सकता है।
सुख में सभी आंख बंद कर लेते हैं। पर तुम सुख में भी आंख खुली रखो; दुख में तो रखो ही।
आंख खुली रखना तुम्हारी साधना बन जाए। जल्दी ही बुद्ध के चार सत्य तुम्हें दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि पहला सत्य-जागने का-तुमने पूरा कर दिया। क्रांति असंभव नहीं है। कठिन बहुत है। क्योंकि नींद में तुम्हारा बहुत इनवेस्टमेंट है; बहुत तुमने न्यस्त किया है।
नसरुद्दीन को उसकी पत्नी उठा रही है। वह कहता है, "अभी नहीं। ठहर, अभी नहीं।" फिर घड़ी भर बाद उसने उठाया। मुल्ला ने कहा, "सब नष्ट कर दिया। एक आदमी सपने में मुझे निन्यानबे रुपये दे रहा था। और मैं जिद पर अड़ा था कि सौ। और बेवक्त तूने जगा दिया। फिर कितनी ही आंख बंद की, वह दिखाई नहीं पड़ता। वे निन्यानबे भी गए। मैंने उससे बाद में यह भी कहा, कि अच्छा चलो, निन्यानबे ही सही, अट्ठानबे ही सही! आखिर एक तक आ गया। पर वह दिखाई नहीं पड़ता। बेवक्त तूने जगा दिया। जरा रुक जाती-लेकिन तेरी पुरानी आदत है- बेवक्त... ।"
जब तुम सपना मधुर देखते हो, तब तुम बुद्ध की बात सुनना भी न चाहोगे। क्योंकि अभी निन्यानबे... सौ के करीब पहुंच रहे हो! सपना पूर्णाहुति पर आ रहा था। लेकिन सपना सपना है-चाहे सुखद हो, चाहे दुखद। सपना झूठ है। झूठ के सुखद होने का कोई अर्थ नहीं है। झूठ अंततः दुखद है। झूठ का कोई मूल्य नहीं है। वह सिर्फ जीवन को व्यर्थ करने का उपाय है।
ऐसा पांचवां सत्य-जागरण का-स्मरण रहे; वह तुम्हारी जीवनचर्या का मूलसूत्र बन जाए। जैसे माला के मनके में धागा पिरोया होता है, ऐसे तुम्हारे सब कृत्यों में जागरण की चेष्टा पिरो जाए। उठो, तो चेष्टा रहे कि होश से चलूं; पढ़ो तो चेष्टा रहे कि होश से पढूं; सुनो तो चेष्टा रहे कि होश से सुनूं। जो भी तुम करो... क्षुद्र काम हैं जीवन में-क्षुद्र के अतिरिक्त और कोई काम है भी नहीं-इन्हीं सभी क्षुद्रताओं का जोड़ जीवन है। तुम जो भी करो, होश से करो। एक दिन... किसी भी दिन यह घट सकता है कि तुम्हारी आंखें होश से भरी हों, तो प्रकाशित हो जाएंगी।
उस प्रकाश के क्षण में तुम्हें बुद्ध के चार आर्य सत्य दिखाई पड़ जाएंगे। फिर वे सत्य बुद्ध के नहीं होंगे, तुम्हारे अपने होंगे। और जब तक कोई सत्य तुम्हारा अपना न हो जाए, तब तक शब्द है, तब तक सत्य नहीं है।
जैसे ही कोई सत्य तुम्हारे अपने अनुभव का सत्य हुआ, वैसे ही तुम दूसरे
हो गए।
जीसस ने कहा हैः "सत्य तुम्हें मुक्त कर देगा।" सिद्धांत तुम्हें बांध लेते हैं, सत्य तुम्हें मुक्त कर देगा। लेकिन सत्य को अपने अनुभव से पाया जाता है; सिद्धांत दूसरों से मिल सकते हैं।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
आठवां प्रवचन

मिटना है द्वार--"होने" का

एक नदी दूर पहाड़ों से निकल कर यात्रा करती हुई, किसी मरुभूमि में जा फंसी। वहां उसकी धाराएं दहकते बालू में खोने लगीं। नदी घबड़ाई, क्योंकि उसकी जीवन-यात्रा ही समाप्त होने को आ गई।
तभी नेपथ्य से एक आवाज आईः "जैसे हवा रेगिस्तान पार करती है, वैसे ही नदी भी कर सकती है। बजाय इसके कि तुम बालू में सूख कर समाप्त हो जाओ, अच्छा होगा कि भाप बन कर तुम बन कर तुम भी हवा के साथ मरुस्थल के पार हो जाओ।"
यह सुन कर नदी बोलीः "हवा में घुल जाने पर मैं कैसे जानूंगी कि मैं ही हूं? मेरा तो रूप ही बदल जाएगा! फिर मेरी पहचान क्या रहेगी?"
नेपथ्य की आवाज ने कहाः "तुम्हारे स्वरूप को हवा सम्हाल लेगी और वर्षा के द्वारा उतार कर फिर तुम्हें नदी बना देगी।"
नदी ने वही किया। पहाड़ों पर फिर वर्षा हुई और फिर नदी नदी हो गई। और नदी सीख भी गई कि मेरा स्वरूप क्या है। नदी इधर सीखती रही और उधर बालू ने कहाः "हम जानते हैं, यही हम रोज होते देखते हैं; क्योंकि नदी-तट से पहाड़ों तक हम ही फैले हैं।"
इसलिए कहा जाता है कि "जीवन की नदी" कैसे बहे, यह बात बालुओं में लिखी पड़ी है।
ओशो, कृपापूर्वक इस बोध-कथा का अर्थ समझाएं।

जीवन को जीने के दो ही ढंग हैं। एक ढंग तो है--संघर्ष का, एक ढंग है-- समर्पण का। संघर्ष का ढंग वस्तुतः कोई ढंग नहीं है। क्योंकि सिवाय पीड़ा और दुख के उससे कुछ हाथ आता नहीं है। समर्पण का ढंग ही ढंग है। और परिणाम-- संघर्ष कर-कर के हाथ खाली रह जाते हैं। और समर्पण करते ही हाथ भर जाते हैं; सब खालीपन भर जाता है।
यह बात बड़ी उलटी लगेगी। ऐसा कहने पर बड़ा विरोधाभास लगेगा कि जो लड़ते हैं, वे हार जाते हैं। और जो पहले चरण में ही हारे हुए हैं, उनके हारने का कोई उपाय नहीं है। जीतने का ढंग हार जाना है।
प्रेम में तो, हमने सुना है कि, जीतने का ढंग हार जाना है; प्रार्थना में भी वही ढंग लागू होगा। क्योंकि प्रार्थना प्रेम का ही विस्तीर्ण रूप है। प्रार्थना प्रेम ही है।
संसार में जीतने का ढंग लड़ना है, मोक्ष में जीतने का ढंग हारना है। और
यह ठीक ही है कि संसार का रास्ता और मोक्ष का रास्ता विपरीत है।
मुल्ला नसरुद्दीन मरने के करीब था। आखिरी चरण, आखिरी श्वास। मित्रों
ने पूछा, "नसरुद्दीन, हम तुम्हें कैसे दफनाएं--इस संबंध में कुछ सूचना दे दो।" तो नसरुद्दीन ने कहा, "एक काम करना, वही मैं सदा से सोचता रहा हूं कि मुझे तुम सिर के बल दफना देना; शीर्षासन करता हुआ दफना देना।" मित्रों ने कहा चकित होकर, "कभी सुना नहीं कि किसी को सिर के बल दफनाया गया हो! यह उलटी बात तुम क्यों करते हो?" नसरुद्दीन ने कहा, "पैर के बल खड़े होकर देख लिया, सिवाय दुख के कुछ भी न पाया। अब इससे उलटे होकर देख लेना चाहता हूं; उस दूसरी दुनिया में, इस दुनिया से उलटे होकर देख लेना चाहता हूं, क्योंकि ज्ञानियों से मैंने सुना है कि दोनों के ढंग। विपरीत हैं। इस दुनिया में पैर के बल खड़े होकर देखा और हार गया। अब सिर के बल खड़े होकर देखना चाहता हूं--उस दुनिया में, ताकि और हार न मिले।"
बात उसने ठीक ही कही। इस जगत और उस जगत के नियम ठीक विपरीत हैं। "यहां" लड़ो तो ही जीत सकोगे; तब भी जीतना पक्का नहीं है; संभावना है। "वहां" लड़े कि हारोगे। हारना--संभावना नहीं है--बिल्कुल सुनिश्चित है। वहां हारने की तैयारी हो, तो जीतोगे। वहां जो मिट सकता है--खो सकता है--वही सब कुछ पाने का अधिकारी हो जाता है।
जीसस ने कहा है, "मिट जाओ--बीज की भांति, तो तुम अंकुरित होओगे; तुममें परमात्मा के फूल खिलेंगे।" जीसस ने यह भी कहा है कि "जो अपने को बचाएंगे,

वे खो देंगे। और जो अपने को खो देंगे, वे ही केवल अपने को बचाने में सफल हो पाते हैं।"
यह कहानी इसी राज को कहने वाली कहानी है। इस छोटी सी कथा में जीवन के
ये दो बिंदु प्रकट हुए हैं। कहानी हम पढ़ें और एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करें।
"एक नदी दूर पहाड़ों से निकल कर यात्रा करती, किसी मरुभूमि में जा पहुंची। वहां उसकी धाराएं दहकते बालू में खोने लगीं। नदी घबड़ाई, क्योंकि अचानक उसकी जीवन-यात्रा समाप्त होने को आ गई!"
सभी नदियां रेगिस्तान में पहुंचती हैं; पहुंचना ही पड़ेगा। क्योंकि रेगिस्तान ही अनुभव है। सभी जीवन-यात्राएं दुख में पहुंचती हैं। क्योंकि दुख के बिना कब कोई कभी निखरा है? सभी स्वर्णों को अग्नि से गुजरना पड़ता है। क्योंकि कचरे के जलने का और स्वर्ण के निखरने का--वही उपाय है।
तुम भी रेगिस्तान में पहुंच गए हो; रोज पहुंचते हो--जहां सब तपता है।
और जहां लगता है--अब मिटे, अब मिटे। और जहां बचने का कोई मार्ग नहीं सूझता; जहां सब मार्ग खो जाते हैं। "रेगिस्तान" का अर्थ हैः जहां कोई मार्ग नहीं बचता और जहां कुछ भी करो, बचने की कोई सुविधा नहीं दिखाई पड़ती।
ठीक से समझो तो हमारा पूरा जीवन ही एक रेगिस्तान है। जैसे ही हम शरीर में प्रविष्ट होते हैं, रेगिस्तान में प्रविष्ट हो गए। इसलिए तो ज्ञानी निरंतर पुकारते रहे--एक ही बात--कि "आवागमन से छुटकारा मिले। हे प्रभु, कैसे आवागमन से छुटकारा मिले? नदी कैसे रेगिस्तान से मुक्त हो?"
शरीर रेगिस्तान है--उसमें तुम खो रहे हो। तुम्हारी जीवन-धारा सूख रही है। इसलिए तो बच्चा पैदा होता है, तो जीवन-धारा से जगमगाता होता है। फिर रोज-रोज जीवन-धारा सूखती जाती है। बूढ़ा रसहीन हो जाता है। सब ज्योति खो जाती है। सब ऊर्जा नष्ट हो जाती है।
आखिर जिसको हम जीवन कहते हैं, वह क्या है? --एक रेगिस्तान में खोते जाना। एक दिन नदी बिल्कुल सूख जाती है और लाश हाथ में रह जाती है।
जिसे हम जीवन कहते हैं, वही रेगिस्तान है। और नदी की चर्चा हो रही है,
वह तुम ही हो। यह किसी नदी की बात नहीं है। यह "चेतना की नदी" की बात है। "एक नदी दूर पहाड़ों से निकल कर यात्रा करती, किसी मरुभूमि में जो पहुंची।" सभी नदियां पहुंचती हैं; पहुंचना ही पड़ेगा। बिना मरुभूमि से निकले, नदी की कसौटी कहां होगी?
लोग मुझसे पूछते हैं--लोग सदा से पूछते रहे हैं कि "आखिर जीवन में दुख क्यों है?" पर उन्हें पता नहीं कि अगर दुख न हो तो जीवन के निखरने का, संवरने का, जीवन के प्रौढ़ होने का उपाय क्या होगा! यह तो ऐसे है, जैसे पत्थर का टुकड़ा मूर्तिकार को पूछे कि तुम छेनी क्यों चलाते हो? मेरे ऊपर छेनी क्यों काम में लाते हो? उस पत्थर के टुकड़े को पता भी नहीं है कि अगर छेनी न हो, तो अनगढ़ पत्थर अनगढ़ ही रह जाएगा। छेनी काटती लगती है। लेकिन जो काटती है, वही बनाती है। व्यर्थ टुकड़े कटेंगे, गिरेंगे--मूर्ति उभरेगी। राह के किनारे पड़ा हुआ पत्थर मंदिर में विराजमान हो जाएगा। जो उकसे ऊपर पैर रखते थे, वे ही उसके सामने सिर झुकाने लगेंगे। जिन्होंने कभी उसकी तरफ देखा भी नहीं था, वे ही उसके सामने आरती उतारने लगेंगे। पर छेनी से गुजरना जरूरी था।
दुख छेनी है। जिन्हें मिलता है, वे सौभाग्यशाली हैं। जिन्हें नहीं मिलता है, वे अभागे हैं। लेकिन जिन्हें दुख मिलता है, वे सोचते हैं कि हम अभागे हैं, क्योंकि वे दुख का मूल्य नहीं समझते हैं। वे दुख की सृजनात्मकता नहीं समझते। कि दुख एक क्रिएटिव फोर्स है--छेनी।

दुख को अगर तुम ठीक से देख पाओ, तो तुम दुख के लिए भी परमात्मा को धन्यवाद दोगे। और अगर तुम्हारे पास देखने की आंखें न हों, तो तुम सुख के लिए भी परमात्मा से शिकायत करते हो। आंख हो देखने की, तो दुख के लिए भी धन्यवाद उठता है, क्योंकि तुम जानते हो कि दुख से गुजर कर ही तुम उभरोगे, प्रकट होओगे; तुम्हारा व्यर्थ कटेगा, सार्थक निकलेगा; असार गिरेगा, सार बचेगा।

सूफी फकीर बायजीद ने कहा हैः "नरक से जो न निकले, वे कभी स्वर्ग न पहुंचे। और जिन्होंने अंधेरी रात न जानी, उनके लिए कोई प्रभात नहीं है। हो भी नहीं सकता। और जिसने यह देख लिया कि "हर अंधेरी रात के पीछे सुबह छिपी है", वह रात के लिए भी परमात्मा को धन्यवाद देता है। फिर उसके जीवन में शिकायत नहीं रह जाती। और जिस जीवन में शिकायत नहीं है, वही प्रार्थनापूर्ण जीवन है।"
तुम राम-राम जपते हो या नहीं, इससे प्रार्थना का कोई संबंध नहीं है। क्योंकि तुम्हारे राम-राम जपने के पीछे भी शिकायत हो सकती है। तुम मंदिर और मस्जिद जाते हो या नहीं, अप्रासंगिक है, क्योंकि तुम जा सकते हो--इसलिए कि--शिकायत करने और कहां जाओगे!
तुम जाओ मंदिर या न जाओ, अगर तुम्हारे जीवन से शिकायत समाप्त हो जाए, तुम प्रार्थना करो या न करो, प्रार्थना शुरू हो गई। शिकायत का अभाव प्रार्थना है। और जब तुम्हें जीवन में सब तरफ धन्यवाद देने का अवसर मिल जाता है, तब तुम दुख के लिए भी अनुगृहीत हो। क्योंकि तुम जानते हो कि दुख निखारता है। तब तुम जानते हो, दुख मांजता है। जब तुम जानते हो कि दुख छिपे को उघाड़ता है। असार को जलाता है, सार को बचाता है। दुख तुम्हारे भीतर जो मरणधर्मा है, उसी को तोड़ पाएगा; जो अमृत है, उसे प्रकट कर जाएगा। दुख की पृष्ठभूमि के बिना इसके होने का कोई भी उपाय नहीं है।
सभी नदियां रेगिस्तान में पहुंच जाती हैं। और अब जब तुम्हारी नदी रेगिस्तान में पहुंचे तो घबड़ाना मत। इस कहानी को थोड़ा समझना।
"वहां उसकी धाराएं दहकते बालू में खोने लगीं। नदी घबड़ाई, क्योंकि अचानक उसकी जीवन-यात्रा समाप्त होने को आ गई।"
मरुस्थल परीक्षा है--अंत नहीं। दुख समाप्ति नहीं है, यात्रा है।
एक महत्वपूर्ण बात इस संबंध में समझ लेनी चाहिए।
पूरब में--भारत में विशेष कर--ट्रैजिडीज नहीं लिखी गईं; नाटक नहीं लिखे गए। भारत ने बड़ा अनूठा साहित्य पैदा किया है, लेकिन सभी सुखांत है, सभी कॉमेडीज हैं; ट्रैजिडी लिखी ही नहीं गई। पश्चिम के साहित्यकार बड़े चिंतित होते हैं और सोचते हैंः "बात क्या है?" इतनी बड़ी परंपरा है भारत की, फिर भी दुखांत नाटक नहीं लिखे गए। सब सुखांत है। क्या कारण होगा? क्या भारतीयों को दुखांत नाटक नहीं लिखना आता? और पश्चिम में जो भी नाटक लिखे गए हैं, वे सभी दुखांत हैं। पश्चिम तो सोच ही नहीं सकता है कि सुखांत नाटक लिख कर तुम कैसे महान नाटककार हो सकते हो! लेकिन कारण है। भारत में दुखांत नाटक न लिखने का कारण है।
भारत मानता हैः "अंत दुख पर कभी होता ही नहीं। मध्य में दुख हो सकता है, यात्रा में दुख हो सकता है, मंजिल पर कोई दुख नहीं है।" यह एक गहरी भीतर की खोज है कि मंजिल पर तो परमात्मा है, वहां महासुख है, वहां आनंद है। नदी कितनी ही रेगिस्तानों से भटके और कितनी ही बार लगे कि--खोई, अब खोई, नष्ट हुई--कभी नष्ट होती नहीं। दुख ही नष्ट हो जाते हैं; चेतना उनके पार निकल जाती है। रेगिस्तान ही खो जाते हैं, नदी सदा बचती है। नदी को मिटाने का कोई उपाय नहीं है।
तुमने न मालूम कितने रेगिस्तान देखे हैं। तुम्हारी नदी न मालूम कितने दुखों को पार कर आई है। और तब तक चलती ही रहेगी, जब तक कि महासुख को उपलब्ध न हो जाए। इसलिए बहुत अनूठी बात है कि भारत में जीवन-यात्रा आनंद पर पूर्ण होती है। इसलिए जो आनंद को उपलब्ध हो जाता है उसकी जीवन-यात्रा समाप्त हो जाती है। इसलिए हम कहते हैंः बुद्ध फिर नहीं जन्मते। कृष्ण दुबारा पैदा नहीं होते। ज्ञानी का पुनर्जन्म नहीं है। क्योंकि यात्रा समाप्त हो गई।" यह बड़े मजे की बात है। दुख न मिटा पाया, लेकिन सुख ने मिटा दिया! बड़े दुख थे, बड़े रेगिस्तान थे, उनमें नदी न खो पाई! जन्मों-जन्मों तक पीड़ा झेली, लेकिन पीड़ा से कोई भी कभी मिटा नहीं है। महा-आनंद में मिट जाता है। बुद्ध खोते हैं, तुम नहीं खोते!
बुद्ध से बार-बार पूछा जाता है कि "जब तथागत--जब कोई बुद्ध-पुरुष मरता है, तो क्या होता है! वह कहां जाता है? कैसे बचता है? फिर उसकी जीवन-यात्रा कैसी होती है?" बुद्ध कहते हैंः "मत पूछो ये बातें। जब कोई दीए को बुझा

देता है, तो तुम पूछते हो, ज्योति कहां गई? ज्योति सिर्फ खो जाती है-- महाशून्य में। ऐसे ही बुद्ध-पुरुष खो जाते हैं--महाशून्य में।"
अज्ञानी नहीं खोते, ज्ञानी खोते हैं! इसलिए तुम खोने से मत डरना। तुम
तो खो भी नहीं सकते हो। खोना तो परम सौभाग्य है। सिर्फ परम ज्ञानी खोते हैं। और आनंद के पहले यात्रा चलती ही रहती है। क्योंकि जब तक मंजिल न मिले, तब तक यात्रा पूरी कैसे होगी? मध्य में कोई यात्रा कभी पूरी नहीं होती। इसलिए भारत ने सुखांत नाटक लिखे हैं, दुखांत नहीं।
अंतिम क्षण में भारत का नाटक सुख पर पूरा होता है। दुख पर पूरा होने
का अर्थ तो यह होगा कि जीवन एक ट्रेजेडी है, जीवन एक दुख है। सुख पर पूरे होने का अर्थ यह है कि दुख होगा जीवन के मार्ग में, सीढ़ियां होंगी--दुख की, लेकिन वे सभी सीढ़ियां महासुख की तरफ ले जाती हैं। कष्ट होगा पथ पर, लेकिन वह कष्ट केवल मंजिल के सुख को बढ़ाता है। प्यास होगी, लेकिन वह प्यास भी, जल से जब प्यास बुझती है, तो उसकी तृप्ति का निर्माण करती है।
हमने दुख को भी--आनंद को पैदा करने में एक उपकरण माना है। हमने दुख का
भी आनंद के लिए उपयोग किया है। वह साधन है। हमने दुख को भी नियोजित कर दिया है कि वह महासुख में हमें ले जाए। हमने मृत्यु को भी अमृत्यु का द्वार माना है। और यह कोई मान्यता नहीं है; यह अनुभव है।
नदी घबड़ाई, जैसा कि तुम घबड़ाओगे। तपती बालू, दहकता मरुस्थल, चारों तरफ जैसे आग लगी हो, नदी खोने लगी। अचानक उसे लगा जीवन-यात्रा समाप्त हो गई। नदी को पूरी जीवन-यात्रा का पता भी नहीं है। तुम्हें पता नहीं कि तुम कहां से आए हो। तुम्हें भी पता नहीं कि तुम कैसे आए हो। काश! तुम्हें अपने मूलस्रोत का पता हो, तो तुम इतने भयभीत न होओ। अगर तुम्हें यह पता हो कि तुम कहां से आ रहे हो, तो तुम इतने जल्दी डरो भी न। "तुम कौन हो", अगर तुम पहचान लो, तो तुम निर्भय हो जाओ, अभय हो जाओ। तब मौत सामने खड़ी रहे, रेगिस्तान जलता हुआ--मृत्यु का ही रूप हो जाए, तो भी तुम्हारे भीतर कुछ कंपेगा नहीं--अगर तुम जानते हो कि तुम कौन हो। लेकिन न तुम जानते हो, न नदी जानती है।
नदी को इतना पता है कि दूर पहाड़ों से आ रही है। लेकिन पहाड़ों पर नदी कहां से आई थी? आकाश से बरसी थी, बादलों से उतरी थी। सागर से चढ़ी थी। सागर कहां से पहुंची थी? पहाड़ों से उतरी थी। और तब जीवन एक वर्तुल बन गया। तब जीवन एक वर्तुल हैः एक रेखा नहीं है--सीधी। इसलिए हम इस देश में कहते रहेः "न जीवन का कोई अंत है, न प्रारंभ। क्योंकि वर्तुल का कोई अंत और प्रारंभ नहीं होता। रेखा का अंत होता है, प्रारंभ होता है; वर्तुल का न कोई अंत होता है, न प्रारंभ होता है।
जीवन एक वर्तुल है। जहां अंत है, वहीं से फिर प्रारंभ हो जाता है। जहां प्रारंभ है, वहीं फिर अंत हो जाता है। जीवन एक घूमता हुआ वर्तुल है, साइकिल है। नदी को पता नहीं है। नदी को शायद इतना ही पता है कि हिमालय से आती हूं, गंगा हूं। लेकिन हिमालय पर कोई शून्य से तो नदी उतरेगी नहीं; शून्य से तो कुछ पैदा नहीं होता! अस्तित्व ही अस्तित्व से जाता है। और अगर शून्य से अस्तित्व आता हो, तो उसका अर्थ हुआ कि शून्य महा अस्तित्व है। क्योंकि जो नहीं है, उससे कुछ पैदा नहीं होगा।
गंगोत्री पर गंगा अचानक कहां से आ जाएगी! अचानक कुछ भी नहीं घटता। अकस्मात कुछ भी नहीं घटता। हमें दिखाई पड़ती है कि गंगोत्री पर गंगा अचानक प्रकट हो गई; लेकिन अप्रकट थी। खोज जारी रखनी चाहिए। तो हम बादलों में खोजेंगे, वहां दिखाई नहीं पड़ती थी।
तुम अचानक अपनी मां के पेट से पैदा नहीं हो गए। वह गंगोत्री है। उसके पहले तुम्हारे भी बादल थे, तुम्हारा भी आकाश था। मां के पेट से तुम अचानक कैसे पैदा हो जाओगे? बात बेहूदी है। अचानक कुछ भी पैदा नहीं होता। जमीन पर अंकुर आता है तो बीज से आता है। बीज किसी वृक्ष से आया। अगर तुम खोज पर निकलोगे, तो तुम पाओगेः "हर वृक्ष के पीछे बीज है। और फिर वृक्ष में बीज लग जाते हैं। वर्तुल पूरा हो जाता है।"
तुम मां के पेट से अचानक पैदा नहीं हो गए हो। मां का पेट भी एक पड़ाव था। प्रारंभ नहीं। वहां तुम थोड़ी देर रुके और विश्राम किया। वहां तुमने

इस जीवन-यात्रा का आयोजन किया, पाथेय जुटाया। सत्तर वर्ष चल सको, इसके लायक जीवन ऊर्जा इकट्ठी की। वह तुम्हारा मूलस्रोत नहीं है। वह भी तुम्हारा यात्रा-पथ है। लेकिन तुम्हें पता नहीं है, तो सोचो नदी को कैसे पता होगा! तुम्हें भी पता नहीं है। तुम भी सोचते हो यही जन्म सब कुछ है। तुम्हें भी भूल गए पिछले जन्म, तुम्हें भी आकाश-पथ की कोई याद न रही। गंगा को कैसे रहेगी! वह भी सोचती हैः "गंगोत्री से मैं पैदा हुई और यह आ गया मरुस्थल; मिटने का क्षण आ गया!"
स्रोत को खोज लो, तो तुमने अंत को खोज लिया। प्रथम को तुमने जान लिया,
तो तुमने अंतिम को पहचान लिया। और जब तक तुम प्रथम को न जान लोगे, तब तक तुम अंतिम को न पहचान सकोगे। क्योंकि अंतिम और प्रथम एक के ही नाम हैं। जीवन एक वर्तुल है।
नदी घबड़ाई कि जीवन-यात्रा समाप्त हुई। इतना आसान है--जीवन का समाप्त होना? जीवन कभी समाप्त होता ही नहीं। जीवन कभी समाप्त हुआ ही नहीं है। जीवन उसी का नाम है, जो कभी समाप्त नहीं होता। जो समाप्त होता है, उसका नाम तो जीवन नहीं है।
तुमने कोई ऐसी चीज देखी है, जो समाप्त होती है? रूपांतरण होते हैं, रूप बदलते हैं। समाप्त तो कुछ भी नहीं होता। बर्फ पिघल कर पानी बन जाती है, पानी उड़ कर भाप बन जाता है। रूप बदलते हैं। लेकिन जो जीवन ऊर्जा है, वह तो समाप्त नहीं होती।
वैज्ञानिक से पूछो; वह तो पदार्थवादी है, लेकिन वह भी कहता हैः "इस जगत में कुछ समाप्त नहीं होता। इस जगत की जो ऊर्जा है, वह सदा उतनी ही है। न तो ज्यादा हो सकती है, क्योंकि ज्यादा कहां से आएगी? न तो कम हो सकती है, क्योंकि कम होने के लिए कहां जाएगी!" यह हो सकता है कि जो पत्थर राह के इस किनारे पड़ा था, अब दूसरे किनारे पड़ा हो। यह हो सकता है कि पानी का जो डबरा यहां था, अब आकाश में उड़ गया हो; सागर में उतर गया हो। लेकिन इस पूरे अस्तित्व के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है। न भीतर आने का उपाय है, न बाहर जाने का उपाय है।

यहां कुछ मिटता नहीं है। यहां कुछ बनता भी नहीं। यहां केवल रूपांतरण होता है।
जन्म और मृत्यु झूठे शब्द हैं। जन्म और मृत्यु गलत शब्द हैं। न तो तुम कभी पैदा हुए हो, न तुम कभी मर सकते हो। तुम सदा थे, तुम्हारे रूप बदले हैं।
कल तुम्हारा कोई और रूप था, आज तुम्हारा कोई और रूप है। रूप जन्मा है, रूप मरेगा भी। जन्म भी रूप का होता है, मृत्यु भी रूप की होती है। तुम अरूप में हो। आज इस लहर में हो तुम, कल दूसरी लहर में हो जाओगे। यह लहर मिट जाएगी। दूसरी लहर होगी, पर तुम न मिटोगे, मिटना असंभव है।
वैज्ञानिक कहते हैंः किसी भी वस्तु का न तो क्रिएशन, सृजन हो सकता है
और न तो डिस्ट्रक्शन, विनाश हो सकता है। एक छोटे से रेत कण को भी मिटाने का कोई उपाय नहीं है। बनाने का भी कोई उपाय नहीं है। तुम जोड़-तोड़ कर सकते हो। चीजों को यहां से वहां कर सकते हो। संयोग बदल सकते हो।
तुम्हें भी मौत का डर लगता है, तो नदी घबड़ा गई हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं! लगाः जीवन-यात्रा समाप्त हुई। जीवन से जो परिचित नहीं हैं, उन्हें ही यह घबड़ाहट पकड़ती है कि जीवन-यात्रा समाप्त हुई। जो जीवन से परिचित हैं, वे मौत के सामने भी हंसते रहेंगे।
जीवन की कभी कोई मृत्यु नहीं हो सकती। मृत्यु का कभी कोई जीवन नहीं हो सकता। मृत्यु का अर्थ है--जो नहीं है। जीवन का अर्थ है--जो है। इन दोनों का कभी कोई संबंध नहीं हुआ है। कभी संबंध हो भी नहीं सकता। इनके मिलने का कोई उपाय नहीं है।
तभी नेपथ्य से एक आवाज आईः जैसे हवा रेगिस्तान पर आवाज करती है। नदी
को लगा कि हवा कुछ बोली। नदी को लगा कि रेगिस्तान कुछ बोला। "जैसे हवा रेगिस्तान पार करती है, वैसे ही नदी भी कर सकती है।" हवा तो पार हो जाती है रेगिस्तान के, कभी खोती नहीं, चाहे रेगिस्तान कितना ही जलता हो, दहकता हो।

आती है हवा, रेगिस्तान के पार निकल जाती है। रेगिस्तान हवा को लीन नहीं कर पाता, मिटा नहीं पाता।
आवाज आई नेपथ्य से कि "नदी, घबड़ा मत, जैसे हवा पार कर जाती है रेगिस्तान को, वैसे ही तू भी पार कर जा सकती है।"
बुद्ध का एक वचन हैः "संत हवा की भांति होते हैं।" बुद्ध का एक नाम है-- तथागत। यह नाम बड़ा प्यारा है। बुद्ध को बहुत नाम हमने दिए, इससे प्यारा दूसरा नाम नहीं है। "तथागत" का अर्थ होता हैः हवा के झोंके की तरह जो आया, हवा के झोंके की तरह जो चला गया। दस केम दस गॉन--ऐसा आया, जैसे हवा आए; ऐसा ही चला गया, जैसे हवा चली जाए। न कोई पीछे पद-चिह्न छूटे, न कोई रेखा छूटी। न हमें पता चला कि कब आया, न पता चला कि कब गया। जैसे उसके आने-जाने की कोई ध्वनि न हुई। जैसे उसने कोई शोरगुल न मचाया। शोरगुल तो अहंकार मचाता है। शोरगुल तो "मैं" का भाव मचाता है।
शून्य की भांति आया और शून्य की भांति चला गया। जिनके पास शून्य को समझने की क्षमता थी, वे पहचान पाए। लेकिन जो शोरगुल के आदी थे, उनको सुनाई ही न पड़ा।
"तथागत" बड़ा प्यारा शब्द है; ऐसे आया, ऐसे चला गया--किसी को पता भी न चला। इसीलिए बुद्ध-पुरुषों का नाम इतिहास में लिखा भी नहीं जाता, छूट ही जाता है--अक्सर छूट जाता है। क्योंकि कोई शोरगुल नहीं मचता।
अखबार में खबर छापने वाले उसको ही पकड़ पाते हैं, जो शोरगुल करता है।
जो उपद्रव करता है, वह इतिहास में सम्मिलित हो जाता है। जो उपद्रव नहीं करता, उसका क्या इतिहास? न तुमने किसी को मारा, न तुमने किसी को पीटा, न तुमने कहीं आग लगाई--तुम इतिहास में नाम कैसे छोड़ोगे! सिकंदर, तैमूर, चंगिज, हिटलर--उनके नाम इतिहास में छूटते हैं! बुद्ध का क्या नाम है? क्या कथा है? कुछ भी नहीं है। हवा के झोंके की भांति आया और गया।
"नेपथ्य से एक आवाज आई कि तू डर मत, जैसे हवा पार कर जाती है रेगिस्तान को, ऐसे ही तू भी कर सकती है। बजाय इसके कि तू बालू में सूख कर समाप्त हो, अच्छा होगा भाप बनकर हवा के साथ तू भी मरुस्थल के पार हो जा। क्यों न हवा की सवारी कर ले। बजाए इसके कि तू सड़े।"
इसे थोड़ा समझना है; थोड़ा बारीक है। क्योंकि नदी अगर सूखे भी तो हवा पर सवार तो हो जाएगी; चाहे उसे पता न हो। अगर रेगिस्तान में सूखे भी तो भी क्या होगा? सूखने का मतलब क्या होता है? --नदी भाप बन जाएगी। हवा पर सवार तो होगी ही। फर्क क्या होगा? फर्क इतना ही होगा कि पीड़ित होती हुई हवा पर सवार होगी। नदी यही समझेगी कि मैं मिट रही हूं, मर रही हूं, सड़ रही हूं। गई-- खो गई--मेरी जीवन-यात्रा बंद हुई। कहीं जीवन-यात्रा बंद हुई है! तुम्हारे अज्ञान के कारण कहीं जीवन नष्ट हो सकता है! सिर्फ तुम दुख में मरोगे।
जब मृत्यु के क्षण में कोई तड़फता है, मरता है, घबड़ाता है, रोता है, चीखता है, छाती पीटता है, तब मर थोड़े ही रहा है। उसके छाती पीटने से, रोने से कोई जीवन-यात्रा समाप्त थोड़े ही हो जाएगी! आत्मा तो नये शरीर लेती ही रहेगी। यह व्यर्थ ही रो रहा है। यह अकारण ही परेशान हो रहा है। ज्ञानी भी मरता है; वह हंसता हुआ मरता है। क्योंकि वह देखता है कि जीवन-यात्रा चलती रहेगी।
रामकृष्ण मरने के करीब थे, तो पत्नी रोने लगी। घड़ी भर पहले जब सांस छूटने को थी, तो रामकृष्ण बोले, "तू रो मत, क्योंकि मैं सिर्फ वस्त्र बदल रहा हूं। ये कपड़े ही छूटते हैं; नये कपड़े पहन लूंगा। मैं रहूंगा।" रामकृष्ण की पत्नी--बड़ी सादी--भोली; स्वीकार कर लिया उसने। रामकृष्ण
मर गए, तो नियम के अनुसार विधवा को चूड़ी तोड़नी चाहिए। उसने चूड़ी तोड़ने से इनकार कर दिया। उसने कहा, "उन्होंने कहा थाः मैं रहूंगा।" उनकी मानूं, कि तुम्हारी?" उन्होंने तो कहा था, "मैं वस्त्र बदल रहा हूं। मैं रहूंगा।" तो वे होंगे, मैं सधवा हूं। मुझे दिखाई पड़ें, न दिखाई पड़ें, लेकिन कहीं होंगे। मैं विधवा नहीं हूं। उनका होना ही मेरा सधवा होना है। मुझे नहीं दिखाई पड़ते, यह मेरा अज्ञान होगा, लेकिन उनका होना नहीं समाप्त हुआ है।"
शायद भारत में अकेली विधवा है--शारदा, जो चूड़ी पहन कर जी। लेकिन कभी रोई भी नहीं फिर। उसकी आंख में कभी आंसू नहीं देखे गए। उसका क्रम वैसा ही

जारी रहा, जैसा पहले था। वह रोज रात रामकृष्ण की मसहरी बांधती, तकिया लगाती। बिस्तर सम्हालती। और उनसे कहती, "अब परमहंस देव तुम सो जाओ।" रोज सुबह थाली लगाती, बैठक में जाती--जहां वे बैठते थे और उनसे कहती "अब परमहंस देव, चलो भोजन तैयार हो गया है।" उन्हें थाली पर बिठालती, पंखा झलती रहती। जैसा कृत्य चलता था, वैसा ही चलता रहा।
रामकृष्ण के निकटतम शिष्य भी समझने लगे कि इसका दिमाग खराब हो गया है। साफ ही है! निकटतम शिष्यों को भी यह तो दिखाई नहीं पड़ता! निकटतम शिष्यों ने भी कहा, "लोग हंसेंगे, शारदा मां! यह बंद करो। लोग समझेंगे, कि शारदा पागल है!" पर शारदा ने कहा, "मुझे भी समझ में आता है कि यह पागलपन है, क्योंकि मेरे पास आंखें नहीं हैं। मैं अज्ञानी हूं, मुझे वे दिखाई नहीं पड़ते। जब मैं बिस्तर लगाती हूं, तो वे मुझे दिखाई नहीं पड़ते। जब मैं भोजन के लिए बुलाती हूं, तब भी मुझे दिखाई नहीं पड़ते। लेकिन यह कसूर मेरा है, क्योंकि उन्होंने कहा था कि "मैं सिर्फ वस्त्र बदल रहा हूं। मैं मिटूंगा नहीं।" भरोसा उनके ज्ञान का करूं या अपने अज्ञान का? तो दुनिया मुझे पागल कहे, लेकिन वे मुझे समझेंगे--वे जहां भी हैं।"
ज्ञानी भी मरता है, अज्ञानी भी मरता है। अज्ञानी रो-रो कर मरता है। मृत्यु को दुख बना लेता है, अपने ही हाथ से। ज्ञानी हंसता हुआ मरता है जैसे मृत्यु एक द्वार है। इस तरफ संसार रह जाता है, उस तरफ नया संसार शुरू हो जाता है। मृत्यु भी जन्म का दूसरा नाम है। इधर जो मृत्यु है, उधर वही जन्म है। इधर तुम मरे, कि कहीं तुम जन्मे। पानी आग में पड़ा--पानी की तरह मिटा-- भाप हो गया। इधर मृत्यु हुई, उधर जन्म हुआ। दरवाजे के इस तरफ "मृत्यु" लिखा है, उस तरफ "जन्म" लिखा है। बस, बीच का दरवाजा वस्त्र है। वस्त्र ही बदले जाते हैं।
नदी सड़ती तो भी भाप पर तो सवार हो जाती, लेकिन अज्ञान में। उस नेपथ्य
की आवाज ने कहाः "बजाय इसके कि तुम बालू में सूख कर समाप्त हो, अच्छा होगा कि भाप बन कर हवा के साथ तू भी मरुस्थल के पार हो जा। बजाय इसके कि मरुस्थल तुझे मिटाए, तू खुद ही मिट जा।" बस, यही राज है। बजाय इसके कि मौत तुझे मारे, तू खुद ही मर जा। मौत को यह मौका मत दे। बजाए इसके कि तू पीड़ित हो--हो कर सूखे, तू आनंद भाव से नाचती हुई सूख जा। बजाय इसके कि तू समझे कि मैं नदी की तरह मिट रही हूं, तू यह समझ कि मैं हवा पर सवारी कर रही हूं। तू हवा पर सवार हो जा। हवा घोड़े की तरह है। तुझे मरुस्थल के पार ले जाएगी। हवा सदा पार होती रही है। तू इसका सहारा ले ले। इसके साथ हो जा। यह "साथ" शब्द समझने जैसा है।
जिस चीज के भी हम साथ हो जाएं, वहीं दुख मिट जाता है। और जिस चीज के हम विरोध में हो जाएं वहीं दुख पैदा हो जाता है। "साथ होना" साधु की कला है। बस, साधु की कला ही इतना है--सार में, वह साथ होना जानता है। सिर में दर्द हो, तो वह सिरदर्द के साथ हो जाता है। हाथ कट जाएं, तो वह कटे हाथ के साथ हो जाता है। हार जाए, तो वह हार के साथ हो जाता है। तुम उसे जमीन पर पटक दो, तो वह तुम्हें गिराने का मौका नहीं देता है, वह खुद ही लेट जाता है। साथ होना जानता है।
जापान में एक कला है--जूडो। जूडो की कला, बस, यही है--साथ होने की कला। "कोई तुम्हारे ऊपर हमला करता है, तो तुम उससे लड़ो मत," जूडो का गुरु कहता है। वह कहता है कि कोई तुम पर हमला करता है, तो तुम उसके साथ हो जाओ। तुम उसे "पीटने" मत दो, तुम पिटो। और बड़ी हैरानी की बात है कि जूडो सीखने में बहुत वर्ष लगते हैं। क्योंकि यह कठिन से कठिन बात है। कोई जब तुम पर घूंसा मारता है, तो तुम अकड़ कर घूंसे के खिलाफ खड़े हो जाते हो। चाहे तुम घूंसा न भी मारो, तो भी तुम्हारी हड्डियां घूंसे को झेलने को तैयार हो जाती हैं। जूडो की कला यह है कि तुम घूंसे को पी जाओ--उसके साथ हो जाओ। जैसे कोई घूंसा मारता हो तकिए में, तो क्या होगा? तकिया लड़ेगा नहीं, तकिया जगह दे देगा। हाथ में ही चोट आएगी, तकिए को चोट न आएगी।
जूडो के गुरु कहते हैं, कि तुम तकिए की भांति हो जाओ। जब कोई तुमको चोट मारे, तो तुम उसके हाथ को जगह दे दो--साथ हो जाओ। और वे कहते हैंः बड़ा अनूठा रहस्य है कि अगर तुम घूंसे मारने वाले के साथ हो जाओ, तो उसके घूंसे से

जितनी ऊर्जा, जितनी शक्ति तुम्हारे ऊपर आती है, वह तुम्हारी हो जाती है। क्योंकि तुम लड़ते तो नहीं, उसकी शक्ति तुम पी लेते हो। इसलिए वे कहते हैंः अगर जूडो की कला कोई ठीक से जानता हो, तो बड़े से बड़ा शक्तिशाली व्यक्ति कमजोर से कमजोर आदमी को नहीं हरा सकता। क्योंकि वह कमजोर अपनी शक्ति नहीं खोता और शक्तिशाली अपनी शक्ति खोता है और कमजोर उसकी शक्ति पीता जाता है। और वह शक्तिशाली गिरेगा, हारेगा--अपनी ही शक्ति के अपव्यय से। कहते हैंः अगर दो व्यक्ति एक समान जूडो के कलाकार हैं, तो हार-जीत का निर्णय नहीं होता है। बड़ा कठिन है।
जूडो की कला अध्यात्म का सार है। जरूरी नहीं है कि तुम किसी से कुश्ती लड़ने में यह कला सीखो, आवश्यक भी नहीं है। तुम्हारा पूरा जीवन एक कुश्ती है--मल्लयुद्ध। वहां तुम लड़ ही रहे हो--हर घड़ी। वहां तुम लड़ो मत।
एक वृक्ष खड़ा है। तूफान आता है। बड़ा वृक्ष अकड़ कर खड़ा रहता है, लड़ता है। जड़ें उखड़ जाती हैं। क्या तुम सोचते हो कि तूफान उखाड़ रहा है उसकी जड़ें? तूफान उखाड़ रहा है, वृक्ष की जड़ें या वृक्ष अकड़ कर खड़ा है, इसलिए जड़ें उखड़ रही हैं? तूफान को इस वृक्ष का पता भी न होगा। तूफान इस वृक्ष के लिए आया भी नहीं। तूफान कोई पता-ठिकाना लाया है? तूफान सिर्फ गुजर रहा था। संयोग की बात थी कि ये बीच में अकड़े खड़े थे। छोटे घास के तिनके भी लगे हैं, वृक्ष के नीचे। तूफान उन पर से भी गुजर रहा है। घास का तिनका झुक जाता है, तूफान के साथ हो जाता है; आंधी के साथ झुक जाता है। बड़ा वृक्ष गिर जाएगा, घास का तिनका फिर खड़ा हो जाएगा।
वह जो घास तिनका जानता है, वही सीखना जूडो है। वही सीखना अध्यात्म है-- साथ होने की कला।
तुम नाहक लड़ रहे हो। तुम सोचते होः "तूफान तुमसे लड़ने आया है!" तूफान अपने स्वभाव से गुजर रहा है। तुम अकारण दुश्मनी ले लेते होः तुमसे कोई संबंध भी न था। तुम्हारा--तूफान को कुछ पता भी नहीं है। तुमसे कोई राग-विराग का नाता-रिश्ता भी नहीं है। तूफान को पता भी नहीं चलेगा कि तुम झुके कि अकड़े रहे। पर घास का तिनका तूफान से जीत जाएगा। और बड़े वृक्ष टूटेंगे और नष्ट हो जाएंगे।
बड़े वृक्ष की क्या कमजोरी थी? बड़ा वृक्ष ताकतवर था--तिनके से ज्यादा; घास के पौधे से बहुत ज्यादा ताकतवर था। पर ताकतवर हार गया, कमजोर जीत गया! वृक्ष ताकतवर था, लेकिन लड़ने में सब ताकत नष्ट हो गई, जड़ें उखड़ गईं। फिर इतनी भी ताकत न बची कि वापस खड़ा हो जाए।
कमजोर था--घास का तिनका, उसने संघर्ष ही न लिया। वह झुक गया। तूफान जा चुका, वह फिर खड़ा हो गया; और भी ज्यादा ताजा। सिर्फ धूल झड़ गई--तूफान के साथ। और कुछ मिटा नहीं। सूखे-साखे पत्ते होंगे, वे गिर गए। वह--और ताजा, और नया होकर खड़ा हो गया।
तूफान के बाद घास के तिनकों से पूछो; वे आनंदित थे कि तूफान आया। क्योंकि वे साथ हो गए थे।
इस नेपथ्य की आवाज ने कहाः "तू लड़ मत।" और जहां भय है, वहां लड़ाई शुरू
हो जाती है। भयभीत आदमी के पास दो ही उपाय हैंः या तो लड़ो या भागो। या तो बचो या लड़ो।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को घूंसेबाजी सिखा रहा था। पड़ोसियों ने पूछा, "यह क्या सिखा रहे हो!" उसने कहा, "सिखाना जरूरी है। मुहल्ले में बदमाश लड़के हैं। स्कूल भी जाना पड़ता है। रास्ते में कलह भी हो जाती है। इसलिए घूंसे बाजी सिखा रहा हूं।" किसी ने कहा, "पर इससे तगड़े, मजबूत लड़के हैं, वे पहले से घूंसेबाजी सीखे हैं, उनके सामने यह क्या करेगा?" नसरुद्दीन ने कहा, "क्या तुमने मुझे नासमझ समझा है? भागने की कला पहले ही सिखा चुका हूं कि जब अपने से मजबूत देखो, तो भाग ही खड़ा होना। अपने से कमजोर देखो, मौका मत देना उसे मारने का। और इसकी भी बहुत फिकर मत करना कि किसने तुझ पर हमला किया। तू कमजोर पर हमला करना और जो तुझ पर हमला कर सकता हो, तुझसे ताकतवर हो, उससे बचना। इसे मैं दोनों सिखाये दे रहा हूं।"
ये दो ही उपाय हैं। या तो भागो या लड़ो। लेकिन जिंदगी में--जिंदगी की गहराई में लौटने का उपाय है कहां? भागोगे कहां? नदी अगर रेगिस्तान में आ

गई, तो लौटेगी कैसे? तुम अगर दुख में पहुंच गए, तो वापस कैसे जाओगे? अतीत में लौटने की जगह ही नहीं है। अतीत बचता नहीं; वापस लौटने का मार्ग नहीं है।
तब जीवन की गहराई में क्या उपाय है? भागना तो हो नहीं सकता। एस्केप संभव नहीं है, पलायन तुम कर नहीं सकते। करोगे क्या? जब दुख आ जाएगा तो तुम करोगे क्या? वहां दूसरे दो उपाय हैंः या तो दुखी मन से लड़ो या सुखी मन से साथ हो जाओ। अगर तुम दुखी मन से लड़े, तो भी वही होगा--जो होना है। तुम सुखी मन से साथ हुए, तो भी वही होगा--जो होना है। यही नियति का सिद्धांत है। भाग्य का यही गहरा अर्थ है।
जो होना है--वह होगा; तुम्हारे करने, न करने से बहुत फर्क नहीं पड़ता, फिर तुम नाहक ही परेशान हो रहे हो। जब तुम्हारे करने से फर्क ही नहीं पड़नेवाला है--नदी सूखेगी ही रेगिस्तान में, भाप बनेगी ही--तो अब नदी के हाथ में क्या बचा है? दृष्टि। नदी के हाथ में बचा है--रुख, सोचने का ढंग, निर्णय, व्याख्या। कृत्य तो जो होना है, वह होगा। अब तुम क्या सोचते हो उस संबंध में, वही तुम्हारे हाथ में बचा है।
कृष्ण अर्जुन को गीता में, बस, इतनी ही बात कहे हैं, जो इस कहानी में नेपथ्य की आवाज ने नदी से कही। अर्जुन खड़ा है युद्ध में; लौटने का कोई उपाय नहीं है। जीवन में लौटने का उपाय होता ही नहीं। भागोगे कहां, जाओगे कहां? जहां जाओगे, वहीं संघर्ष पाओगे। भागने से कुछ दुश्मन पीछा छोड़ देगा? डटे रहो, तो शायद पीछा भी छोड़ दे। भागे कि और पीछा करेगा।
तुम जिस-जिस से भागते हो, वही तुम्हारा पीछा करता है। तुम जिससे डरते हो, वह तुम्हें और डराता है। तुम जिससे भयभीत हो गए हो, वह भूत-प्रेत की भांति हो जाता है; वह चारों तरफ मंडराता है।
अगर यह अर्जुन भाग जाता, तो कौरव सदा के लिए इसका पीछा करते। तो शत्रु सदा इसको जगह-जगह मिलते। और आत्मग्लानि, पराजय, हार की पीड़ा और संताप--सब इसका पीछा करते। कृष्ण ने इसे कहा कि उपाय यह नहीं है। युद्ध तो होगा ही। कृष्ण ने बड़ी अदभुत बात कही है कि तू यह सोच ही मत कि तू इन्हें मार रहा है। मैं देखता हूं कि ये मारे जा चुके हैं। नियति इन्हें समाप्त कर चुकी है। ये जिंदा नहीं हैं, ये लाशें खड़ी हैं। तू सिर्फ धक्का देगा, तेरे धक्के की जरूरत है, ये गिर जाएंगे। ये गरदनें कट चुकी हैं, ये अपने ही हाथ से अपने को काट चुके हैं। नियति में खेल पूरा हो चुका है। तू तो सिर्फ निमित्त है। तू कर्ता मत बन। और तू यह भी मत सोच कि तू लड़ रहा है। तू तो सिर्फ नियति के हाथ एक उपकरण है--उसके साथ हो जा। तू परमात्मा को बाधा मत दे, परमात्मा को तेरे भीतर से बहने दे। और वह जो चाहता है, होने दे। तू साथ हो जा।
पूरा गीता इस एक छोटे से शब्द में समा सकती है--"तू साथ हो जा।" जो हो रहा है, उससे तू विपरीत मत जा। जो हो रहा है, तू उसमें लीन हो जा। तू अपने को इतना महत्वपूर्ण मत मान कि तेरे किए कुछ भिन्न हो सकेगा।
अहंकार की यही मान्यता है। इसलिए अहंकार भाग्य को कभी स्वीकार नहीं
कर पाता। दुनिया में जितने अहंकारी हैं, वे सदा जोर देंगे कि तुम कुछ कर सकते हो। क्योंकि "करने" से अहंकार खड़ा होता है। अगर यह पक्का हो जाए कि कुछ किया ही नहीं जा सकता, तो अहंकार को खड़े होने की भूमि नहीं बचती। कहां खड़े होओगे अगर तुम कुछ कर ही नहीं सकते, तो तुम हो ही नहीं। कुछ कर सकते हो, तो ही तुम हो। तुम्हारे होने की अकड़ "करने" में ही निर्भर है।
नियति या भाग्य के सिद्धांत का गहरा अर्थ इतना ही है कि तुम कुछ भी करो--जो होना है, वही होगा। लेकिन तुम्हारे निर्णय और तुम्हारी दृष्टि और तुम्हारे रुख के कारण तुम अकारण दुखी या सुखी हो सकते हो सकते हो।
नदी दुखी हो सकती है--अगर सोचे कि मैं खो जाऊंगी। नदी सुखी हो सकती है-- अगर सोचे कि मैं हवा पर सवार होकर रेगिस्तान को पार कर जाऊंगी।
इसलिए असाधु सदा दुखी है और साधु सदा सुखी, क्योंकि साधु साथ होने की कला जान गया है। और असाधु लड़ रहा है। असाधु का मतलब बुरा आदमी नहीं है।
असाधु अच्छा आदमी भी हो सकता है। असाधु का गहरा अर्थ--लड़ने वाला है। अवरोध

खड़े कर रहा है। प्रतिशोध ले रहा है। असाधु का गहरा अर्थ--कर्ता का भाव है।
साधु का अर्थ हैः कर्ता परमात्मा है, मैं सिर्फ निमित्त हूं।
इसलिए तुम साधु-असाधु से बुरे और अच्छे का अर्थ मत लेना। वह है नहीं।
असाधु बहुत बार अच्छा हो सकता है। लेकिन अच्छे में भी वह कर्ता रहेगा।
"मैंने दान किया, मैंने अहिंसा की, मैंने सेवा की, मैंने यह किया, मैंने वह किया।" वह अपने "मैं" के आस-पास कर्तृत्व के बड़े-बड़े मकान खड़े करेगा। मैंने सुना हैः स्वर्ग के द्वार पर दो आदमियों ने एक साथ दस्तक दी। एक
ही साथ जमीन पर मरे होंगे। द्वारपाल ने द्वार खोला। और पहला आदमी जो शराबी रहा था--जमीन पर, व्यभिचारी रहा था; ऐसा कोई पाप न था, जो उसने न किया हो; अभी तक उसके पैर लड़खड़ा रहे थे, इतनी शराब पी गया था। ऐसा लड़खड़ाता भीतर प्रविष्ट हुआ।
दूसरा आदमी जो एक धार्मिक आदमी था, पुण्यात्मा था; मंदिर बनाए थे, दान-दक्षिणा की थी; उसका नशा भी अभी उतरा नहीं था; अकड़ से प्रविष्ट हुआ। उसकी चाल देख कर तुम कह सकते थे कि यह आदमी कोई साधारण आदमी नहीं है। जाति का मुखिया रहा होगा, पंचायत का प्रमुख रहा होगा! कई मंदिरों पर इसका नाम खुदा है। इसके कृत्यों की गाथा नीचे जमीन पर अभी भी चल रही होगी। मरघट पर जो लोग इसको बिदा देने गए होंगे, वे इसका यशोगान कर रहे होंगे।
और दूसरे आदमी को--इसे देख कर तुम कह सकते थे कि मरघट शायद इसको कोई पहुंचाने गया भी न होगा। शायद म्युनिसिपल की गाड़ी ने इसको मरघट पहुंचाया होः अभी तक नशे में था और पैर लड़खड़ा रहे थे।
द्वारपाल ने पूछा इस शराबी से, "तूने क्या किया है जगत में, बता। उस हिसाब से हम तुझे भेज दें--स्वर्ग या नरक?" उसने कहा, "किया कुछ भी नहीं-- कहने योग्य कुछ भी नहीं किया। और मुझे जैसा पापी खोजना कठिन है। इसलिए पूछने की कोई जरूरत नहीं है; हिसाब लगाओ मत; नरक का रास्ता कहां है--मुझे बता दो। मैं खुद ही चला जाऊंगा। तुम्हें कोई पहुंचाने का कष्ट भी लेने की जरूरत नहीं है। पक्का ही है--नरक मेरा; यह मुझे पहले से ही पता है।"
पूछा दूसरे आदमी से, उसने पूरी फेहरिस्त गिनाई कि इतने मंदिर बनाए, इतने साधुओं को इतनी बार भोजन कराया, इतने उपवास किए, इतनी माला जपी, इतने लाख बार राम का नाम लिखा--यह सब! उसने लिस्ट बताई। उसने भी कहा, "पूछने की कोई जरूरत नहीं है। जैसे यह आदमी कहता है कि "नरक कहां है, रास्ता बता दो", वैसा मुझे बता दो कि स्वर्ग कहां है।"
और जब वे दोनों पहुंचाए गए, तो शराबी स्वर्ग में था और दानी नरक में था। क्योंकि जिसने यह स्वीकार कर लिया कि मैंने कुछ किया ही नहीं; जिसने यह स्वीकार कर लिया कि मैं ना-कुछ हूं, उसके सब पाप शून्य हो गए। क्योंकि बिना अहंकार के कोई पाप रुक ही नहीं सकता। जगह ही नहीं बचती, जहां रुके-- उसके सब पाप डूब गए। और जिसने यह कहा कि मैंने किया, उसके सब पुण्य डूब गए। क्योंकि पुण्य का अहंकार से संबंध जुड़ा कि सब पुण्य पाप हो जाते हैं। इसलिए साधु-असाधु से अच्छे-बुरे का कोई भी संबंध नहीं है। जो जानते हैं, वे कहते हैंः साधु वह है, जो साथ हो गया। असाधु वह है, जो लड़ा। असाधु वह है, जिसने जिद्द की। बड़े वृक्ष, आंधियों में जो खड़े रह जाते हैं, वे असाधु हैं। झुक जाने वाले पौधे साधु हैं।
कहा उस आवाज ने नेपथ्य सेः "नदी, तू घबड़ा मत और बालू में सूख कर समाप्त
हो इससे अच्छा है कि भाप बन कर हवा के साथ तू मरुस्थल के पार हो जा।" सुन कर नदी बोलीः "हवा में घुल जाने पर मैं कैसे जानूंगी कि मैं, मैं ही हूं?" वही पीड़ा है। एक ही पीड़ा, एक ही कांटा चुभा है--सभी की छाती में, वह चाहे नदी हो, चाहे आदमी हो। नदी ने कहाः "यह सब तो ठीक है, लेकिन हवा में घुल जाने पर मैं कैसे जानूंगी कि मैं, मैं ही हूं? मेरा तो रूप बदल जाएगा, फिर मेरी पहचान क्या रहेगी?" पहचान--इस शब्द को समझ लेना, यह पाप का सार है। पहचान--लोग कैसे रिकग्नाइज करेंगे? मेरी आइडेंटिटी, मेरी पहचान खो जाएगी। गंगा का एक नाम है, यमुना का एक नाम है। हवा में खोकर तो नाम नहीं रह जाएगा। गंगा का जल यह दावा नहीं कर सकेगा कि मैं पवित्र गंगा का जल हूं।
गंदे डबरे के जल के साथ एक हो जाएगा। गंगा का जल यह न कह सकेगा कि मेरे

किनारे हजारों-हजारों लोग मोक्ष को उपलब्ध हुए हैं। दावेदार खो जाएगा, पहचान न रह जाएगी, नाम-रूप मिट जाएगा।
नाम-रूप को बचाने की आकांक्षा संसार है। तुम बचाना चाहते हो--किसी तरह--नाम बचे, रूप बचे, मैं बचूं। चाहे दुख ही रहे, तो भी चलेगा, लेकिन मैं बचूं। तुम नरक भी पसंद करोगे, अगर तुम्हारी पहचान हो--रास्ते पर लोग तुम्हें नमस्कार करते हों।
बर्नार्ड शॉ ने कहा है, गहरे व्यंग्य में कहा है, लेकिन सत्य है; हर आदमी के भीतर की बात है। बर्नार्ड शॉ ने कहा कि "मैं नरक पसंद करूंगा, लेकिन "नंबर एक" होना चाहता हूं। स्वर्ग में नंबर दो होना, वह मेरी पसंद नहीं है। कि खड़े हैं क्यू में--वह नहीं। नरक सही, लेकिन नंबर एक...!" क्योंकि "पहचान" में नंबर एक का रस है।
जब तुम "नंबर एक" खड़े होते हो, चाहे नरक सही, लेकिन राष्ट्रपति... और तुम्हारे सब राष्ट्रपति नरकों में हैं। और कहीं हो भी नहीं सकते। लेकिन "नंबर एक" होने का मजा इतना ज्यादा है कि आदमी नरक झेलने को तैयार हो जाता है।
जीसस ने कहा है कि "जो पंक्ति में प्रथम खड़े हैं, ध्यान रहे, स्वर्ग के राज्य में वे अंतिम होंगे। और जो पंक्ति में अंतिम खड़े हैं, स्वर्ग का राज्य उन्हें प्रथम खड़ा करेगा।" लेकिन अंतिम खड़ा होना कौन चाहता है? अंतिम होने की बात ही पीड़ा देती है। सोच कर ही दुख होता है। पहचान खो जाएगी, रूप न होगा, रंग न होगा, काया न बचेगी। ये किनारे न होंगे। यह ढंग न होगा।
तो नदी ने कहाः "मैं, मैं ही हूं, इसका पता कैसे चलेगा?" इसीलिए तो हम शरीर को इतने जोर से पकड़ते हैं। कितने ही ज्ञानी चिल्लाते हों कि "तुम आत्मा हो", लेकिन तुम उनकी सुनकर भी शराब को जोर से पकड़ते हो, क्योंकि वह तुम्हारा किनारा है। उनके बीच तुम्हें पक्का पता है कि तुम कौन हो। ज्ञानियों की मानी तो आत्मा हवा हो जाएगी। उसका न कोई रूप है, न कोई रंग है; न कोई नाम है, न कोई परिचय। न कोई पता और न कोई ठिकाना; वह अरूप है। "अरूप आत्मा"--सुन लेते हैं हम, लेकिन मन हमारा रूप को पकड़ता है; क्योंकि रूप के साथ पहचान बनी रहती है। पहचान बड़ी क्षुद्र है कोई बहुत गहरी नहीं है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक गांव में आया। मेला भरा था गांव में और कहीं जगह ठहरने को न मिली। बामुश्किल एक होटल का मालिक राजी हुआ। उसने कहा "तुम्हें दूसरे के कमरे में साथ ही सोना पड़ेगा। और कोई उपाय नहीं है।" नसरुद्दीन ने कहा, "सोना तो है ही।" तो वह उस कमरे में गया। दूसरा आदमी वहां पहले से मौजूद था। नसरुद्दीन ने उससे कहा, "और सब तो ठीक है। एक ही तकलीफ है। लेकिन कोई बात नहीं... ।"
वह जूता पहने, पगड़ी बांधे, कपड़ा--कोट पहने बिस्तर पर सो गया। फिर करवटें बदलने लगा। उस दूसरे आदमी को भी नींद न लगी। यह भी अजीब आदमी है। पगड़ी भी नहीं उतारी, जूता भी नहीं उतारा! नींद इसको लगेगी कैसे? और यह करवट बदलता रहे तो मुझे भी नींद नहीं आ सकती है। तो उसने कहा, "मेरे भाई, यह कपड़ा तो कम से कम उतार दो; जूता-पगड़ी?" नसरुद्दीन ने कहा, "फिर सुबह मैं पहचानूंगा कैसे कि मैं कौन हूं? यह पगड़ी, यह जूता, यह कोट-इनसे मेरी पहचान है। और सुबह झंझट खड़ी होगी फिर!" उस दूसरे आदमी ने कहा, "इसमें क्या! कोई रास्ता हम निकाल लेते हैं। यह उचित नहीं कि रात भर न तुम सो पाओ, न मुझे सोने दो।" तो पहले जो लोग कमरे में रुके होंगे, उनके बच्चे एक खिलौना छोड़ गए थे, एक फुग्गा छोड़ गए थे, वह कमरे में पड़ा था। उस दूसरे आदमी ने कहा, "तुम ऐसा करो, तुम कपड़े उतार दो; यह फुग्गा मैं तुम्हारी टांग से बांध देता हूं। यह तुम्हारी पहचान रहेगी सुबह--कि तुम तुम्हें हो" नसरुद्दीन ने कहा, "यह ठीक है, इससे काम चलेगा। कोई पहचान--छोटी ही सही--फुग्गा ही सही।"
उस आदमी को रात मजाक सूझी। क्योंकि यह आदमी कुछ अजीब सा लगा। लेकिन सभी आदमी इसी तरह के हैं। सभी को पहचान... । और पगड़ी आसान है उतारना? पगड़ी के लिए तो सारा खेल चल रहा है। तो जब तुम्हारी इज्जत चली जाती है, तो लोग

कहते हैंः "पगड़ी उतर गई।" जब किसी को किसी की इज्जत लेनी रहती है, तो पगड़ी गिरा देता है, पगड़ी उतार लेता है।
यह कहानी तो बिल्कुल ठीक है, आदमी की ही कहानी है।
उस आदमी को रात मजाक सूझी। उसने फिर फुग्गा काट लिया--जब नसरुद्दीन खर्राटे लेने लगा! और अपनी टांग में बांध कर सो गया। सुबह नसरुद्दीन उठा; उसने घबड़ा कर दूसरे व्यक्ति को उठाया और उससे कहा, "मैंने पहले ही कहा था कि इससे झंझट होगी। अब बड़ी मुसीबत हो गई! इतना तो पक्का है कि मैं, मैं नहीं हूं, क्योंकि फुग्गा नहीं है! लेकिन यह भी मुझे मानने में बड़ी मुसीबत हो रही है कि तुम मैं हूं। यह और मुसीबत की बात है।"
हमारी सारी पहचान शरीर से है, इसीलिए हमें पिछले जन्म की याद भूल जाती है।
लोग मुझसे पूछते हैं--निरंतर आकर--कि पिछले जन्म की याद क्यों नहीं रहती? याद रहेगी कैसे? पिछले जन्म में जो शरीर था, वह अब नहीं है। जो फुग्गा बंधा था, वह अब नहीं बंधा है। जो नाम था, वह अब नहीं है। जो रंग-रूप था वह अब नहीं है। नाक कुछ और थी, हाथ कुछ और थे, पैर कुछ और थे; ढंग कुछ और था। सब बात बदल गई। और पहचान तुम्हारी--उसी का जोड़ थी। इसलिए पिछले जन्म की याद नहीं रह जाती। क्योंकि याद रहने के लिए पहचान का आधार ही खो गया। आइडेंटिटी कार्ड जो पिछले जन्म में तुम्हारा था, अब नहीं है। उसी को देख कर तुम पहचानते थे कि यह मैं हूं, तो स्मृति जुड़ी रहती थी। सारी स्मृति पहचान के सेतु को चाहती है, नहीं तो स्मृति खो जाएगी।
जब तक तुमने भीतर न झांका हो, जब तक न देख लिया हो--जिससे फुग्गे बंधे हैं, तब तक तुम झंझट में पडोगे; हर बार स्मृति खोयेगी। हर बार तुम भटक जाओगे। इसलिए पिछले जन्म की याददाश्त नहीं रहती।
नदी ने घबड़ा कर कहा कि "बात तो ठीक है कि मैं साथ हो जाऊं, लेकिन यह तो आत्मघात मालूम होता है। ध्यान रहे, अहंकार को धर्म सदा आत्मघात मालूम होता है, स्युसाइड मालूम होता है। उसका मतलब यह हुआ कि हम मिटे। साथ होने का मतलब है कि हमारी पहचान खो जाएगी। हम झुके कि हम गए। फिर हमारी प्रतिष्ठा क्या? हमारा गुण-गौरव क्या?
नदी को भी लगा कि यह तो आत्महत्या है। अपने हाथ से मर जाना है। इससे तो बेहतर है, लड़ते रहो। कुछ देर तो रहेंगे। डबरे बन जाएंगे, सूखेंगे, लेकिन लड़ाई तो रहेगी। रेगिस्तान कम से कम इतना तो जानेगा कि हम ऐसे ही न मिट गए। हमने ऐसे ही हथियार न डाल दिए; लड़े थे।
"मेरा रूप बदल जाएगा, फिर मेरी पहचान क्या रहेगी?" नेपथ्य की आवाज ने कहा, "तुम्हारे स्वरूप को हवा सम्हाल लेगी।"
ध्यान रखना, रूप और स्वरूप में बड़ा फर्क है। रूप का अर्थ है--वह जो तुम्हारे बाहर है। स्वरूप का अर्थ है--वह जो तुम्हारे भीतर है। रूप तो बदल जाता है--हर जन्म में, स्वरूप नहीं बदलता। और अगर तुमने रूप को ही समझा है कि मैं हूं, तो तुम हर बार मुसीबत में पड़ोगे। किनारे बदल जाते हैं, नदी नहीं बदलती। किनारे खो भी जाते हैं, तो भी नदी नहीं बदलती। वह जो भीतर का स्वरूप है, वह तो सदा वही बना रहता है। लेकिन उससे तुम्हारा कोई संबंध नहीं है। उसे तुमने कभी देखा नहीं है।
रूप को खोने का डर है, क्योंकि स्वरूप की पहचान नहीं है। जिसने स्वरूप
को पहचान, उसे रूप को खोने का कोई भी डर नहीं रहता।
नेपथ्य की आवाज ने कहाः "तुम्हारे स्वरूप को हवा सम्हाल लेगी।" घबड़ा मत। भयभीत न हो। वर्षा के द्वारा तेरे स्वरूप को हवा ऊपर उठा लेगी--उठा लेगी आकाश में। और फिर वापस पहाड़ों पर उतार देगी।
नदी ने वही किया। बड़ी समझदार नदी मालूम पड़ती है--इतने समझदार तुम नहीं हो--कि नदी ने इतनी जल्दी मान ली बात।
तुमसे नेपथ्य से कितनी बार नहीं कहा गया है! कितनी बार बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट--तुम्हारे चारों तरफ--नहीं कह गए हैं--कि छोड़ो रूप की पकड़, ताकि स्वरूप की पहचान आ जाए। वह कभी नहीं मिटेगा। फिर तुम कभी भयभीत न होओगे। लेकिन तुमने अब तक इसे नहीं सुना।

नदी ने वही किया। पहाड़ों पर फिर वर्षा हुई, और फिर नदी, हो गई। और नदी सीख भी गई कि मेरा स्वरूप क्या है।
बिना मिटे कोई सीखता भी नहीं। बिना गुजरे--अनुभव से, कोई जानता भी नहीं। कितनी ही नेपथ्य की आवाज कहे, वह दूसरे पर भरोसा है।
बुद्ध कितना ही कहें, तुम भला उन पर भरोसा कर लो, क्योंकि वे आदमी प्रामाणिक हैं, उनकी आंख में प्रमाण है। लेकिन अनुभव तो तुम्हें स्वयं ही करना पड़ेगा। तुम जब स्वयं गुजरोगे--मिटने की कला से, जब तुम्हारी नदी रेगिस्तान में खो जाएगी--हवा पर सवार होगी--फिर वर्षा होगी पहाड़ों पर--तब तुम पहचानोगे कि कोई रेगिस्तान तुम्हें मिटा नहीं सकता। कोई मृत्यु तुम्हें मिटा नहीं सकती। तुम शाश्वत हो, तुम अजर-अमर हो।
फिर नदी, नदी हो गई; और नदी सीख भी गई कि मेरा स्वरूप क्या है। और अब उसने जाना कि नदी होना तो मेरा ढंग है--मेरा स्वरूप नहीं। वह तो मेरा आवरण है, मेरी आत्मा नहीं। नदी होना मेरा एक आचरण है, मेरा अंतस नहीं। नदी होना मेरा बाहर का वस्त्र है, वह मेरे भीतर का स्वरूप नहीं है। वह मैं नहीं हूं। मैं तो वही थी, जब नदी खो गई--तब भी थी। जब आकाश में उड़ गई, तब भी थी। जब पहाड़ों पर फिर बरसी, तो तब भी वही हूं।
तुम सदा से वही हो--एक रस। बीच में जो भी हुआ है, वह सब लहरों का उठना और गिरना है। उससे तुम्हारे भीतर जरा भी अंतर नहीं हुए हैं। तुम्हारे स्वभाव में कोई भी भेद नहीं पड़ा है। तुम्हारा ब्रह्म होना अछूता है, अस्पर्शित है, कुंवारा है। उस पर कोई दाग नहीं आया है।
और नदी सीख भी गई है कि मेरा स्वरूप क्या है। नदी तो इधर सीखती रही और उधर बालू ने कहाः "हम जानते हैं, यही हम रोज होते देखते हैं। क्योंकि नदी- तट से पहाड़ों तक हम ही फैले हैं।"
इधर नदी सीखती रही, इधर नदी नये अनुभव से गुजरती रही--मिटने और होने के, मृत्यु और अमृत के। इधर नदी ने रूप खोया और स्वरूप पाया। इधर नदी की आंखें बाहर से भीतर की तरफ मुड़ीं, उसने खुद को पहचाना।
एक पहचान है तुम्हारी, जो बाहर से आती है। तुम्हारा नाम है, उसे तुम लेकर नहीं आए। वह तुम्हें बाहर से दिया गया है। तुम जब पैदा हुए, तब तुम अनाम थे। तुम जब आए, तब तुमने बताया नहीं कि तुम्हारा नाम क्या है। किसी ने पूछा भी नहीं तुमसे कि तुम्हारा नाम क्या है। लोगों ने तुम्हें नाम दे दिया। तुम्हारी मां ने, तुम्हारे पिता ने, परिवार ने, समाज ने तुम्हें नाम दिया। वह बाहर से दिया गया है। वह तुम्हारी पहचान नहीं है।
जिन्होंने तुम्हें नाम दिया है, उन्हें पता है कि तुम्हारा नाम क्या है। अलिलटप्पू है, अनुमान है, कामचलाऊ है, एक लेबल है। उसके बिना दिक्कत होगी तुम्हें पुकारने में, बुलाने में। एक कानूनी जरूरत है। और कुछ उसका मूल्य नहीं है। वह तुम नहीं हो।
फिर उनमें से ही किसी ने कहा कि "तुम बड़े सुंदर हो।" वह भी किसी ने कहा, तुम्हें पता नहीं है। तुमने उसे भी मान लिया। किसी ने कहा कि "बड़े बुद्धिमान हो" या किसीने कहा कि "बड़े बुद्ध हो", वह भी तुमने मान लिया। तुम मानते चले गए--जो-जो तुम्हें बाहर से कहा गयाः तुम उसी के जोड़ हो। उसको तुम अपनी पहचान कहते हो! और उसको खोने से तुम डर रहे हो कि कहीं खो न जाए। तुम सम्हाल रहे हो। बड़ी जद्दोजहद करते हो--बचाने की। इससे ज्यादा नासमझी क्या होगी? कचरा जो दूसरों ने तुम्हें दिया, जो तुम लेकर नहीं आए... ।
दूसरे तुम्हें जानते हैं? वे खुद अपने को नहीं जानते हैं, वे तुम्हें कैसे जानेंगे! जो स्वयं को नहीं जानता, वह दूसरे को कैसे जान पाएगा? जो नहीं जानते, वे तुम्हें रास्ता दिखा रहे हैं! जीसस ने कहा है, अंधे अंधों को मार्ग दिखाते हैं। कबीर ने कहा है कि अंधा अंधों को मार्ग पर ले जाता है। "अंधे अंधा ठेलिया, दोनों कूप पडंत।" वे दोनों कुएं में गिर गए। जिनको अपनी पहचान नहीं है, वे तुम्हें तुम्हारी पहचान बता रहे हैं कि तुम्हारा यह नाम है, कि तुम सुंदर हो!
और ध्यान रहे, तुम किसी को सुंदर लगते हो, किसी को कुरूप लगते हो। किसी
को प्रीतिकर लगते हो, किसी को प्रीतिकर नहीं लगते हो। इसलिए तुम्हारी

पहचान बड़ी कनफ्यूज्ड है--होने वाली है। क्योंकि किसी के तुम मित्र हो, किसी के तुम दुश्मन हो। दुश्मन कहता है कि तुम बिल्कुल दुष्ट हो। मित्र कहता है कि तुमसे करुणावान कोई नहीं। तुम्हारी पत्नी कहती है कि तुम सुंदर हो। तुमसे ज्यादा सुंदर कोई पुरुष नहीं। तुम्हारा पति कहता है कि तुम बड़ी सुंदर हो, तुम जैसी स्त्री पृथ्वी पर नहीं है। पर यह बात सभी के लिए सच नहीं है। कोई तुम्हें कुरूप समझाता है। कोई सोचता है कि यह पति इस पत्नी को कैसे झेल रहा है? कैसे ढो रहा है? ऐसी स्त्री के साथ कैसे जी रहा है! इसने अब तक आत्महत्या क्यों नहीं कर ली!
तो चारों तरफ हजार तरह के लोग हैं और हजार तरह की बातें तुम्हारे बाबत कहते हैं। इसलिए तुम्हारी पहचान कनफ्यूज्ड है। तुम अपने संबंध में विपरीत बातें माने बैठे हो। किसी ने तुम्हें बुद्ध कहा, किसी ने बुद्धिमान कहा। दोनों बातें तुम्हारे भीतर घुस गई हैं। इसलिए तुम एक भीड़ हो। बाजार में सुनी गई खबरें हो। इसलिए तुम्हें भीतर कभी भी शांति मालूम नहीं पड़ती। तुम किसी भी बात में, संबंध में, निश्चित नहीं हो सकते। होओगे कैसे? चारों तरफ लोग अलग-अलग बातें कर हरे हैं। तम निश्चित तो तभी हो पाओगे, जब तुम भीतर देखोगे और दूसरों की न सुनोगे।
जब तक आदमी दूसरों की सुनता है, तब तक उसकी पहचान भ्रांत होगी; तब तक उसकी पहचान उलझन से भरी होगी; तब तक उसकी पहचान एक पहेली होगी। जैसे ही व्यक्ति आंख बंद करता है और भीतर देखता है और स्वयं को पहचानता है, उस दिन उसकी पहचान सुनिश्चित हो जाती है। फिर उसे कोई डगमगा नहीं सकता। फिर वह वही जानता है, जो वह है। इसे हमने आत्मज्ञान कहा है।
इधर नदी सीखती रही, उधर बालू ने कहाः "हम जानते हैं, यही हम रोज होते देखते हैं। क्योंकि नदी तट से पहाड़ों तक हम ही फैले हैं। बहुत नदियां आती हैं। बालू ने सबकी कहानियां देखी हैं। बहुत नदियां भटकती हैं मरुस्थल में; लड़ती हैं, उनको भी जाना है। साथ हो जाती हैं, उनको भी जाना है।
ज्ञानी कहते हैं कि पृथ्वियां बदलती हैं, आकाश नहीं बदलता। आज पृथ्वी है, कल मिट जाएगी। हजारों पृथ्वियां हैं, हजारों पृथ्वियों पर हजारों तरह के लोग हैं, लेकिन आकाश एक है। इस आकाश को सबका पता है--अज्ञानियों का भी और ज्ञानियों का भी। इसने उनको भी देखा है, जो लड़ते-लड़ते मरते हैं--अनेकों बार, अनंतों बार। इस आकाश ने बुद्धों को भी। इसने उनको भी देखा है, जो लड़ते- लड़ते मरते हैं--अनेकों बार, अनंतों बार। इस आकाश ने बुद्धों को भी देखा है, जो हंसते हुए लीन हो जाते हैं।
इस आकाश ने बड़े वृक्ष भी देखे हैं, जो लड़ कर टूटते हैं। इस आकाश ने छोटे, झुकने वाले घास के पौधे भी देखे हैं, जो ताओ की कला, जूडो की कला जानते हैं, जो झुकते हैं। इस आकाश ने सब जाना है। इसलिए समस्त पृथ्वी के धर्मों में इस बात की सूचना है कि अगर तुम्हें जीवन का परम रहस्य पूछना है, तो आकाश से पूछना। क्योंकि इसने सब बुद्धों को जाना है--सब ज्ञानियों को, सब अज्ञानियों को।
थिओसॉफी ने--इस सदी में पैदा हुए एक महत्वपूर्ण विचार की परंपरा ने-- आकाशिक रेकार्ड का उल्लेख किया है कि जो कुछ घटता है, वह सब आकाश में अंकित हो जाता है। जो भी महत्वपूर्ण है, वह खोता नहीं है।
इस कहानी में जो रेत है, तुम्हारी कहानी में वही आकाश है। और रेत ने कहाः "हमें पता ही है, हम रोज ही यही देखते हैं। क्योंकि नदी तट से पहाड़ों तक हम ही फैले हैं।" तुम्हारी गंगोत्री से लेकर तुम्हारे गंगासागर तक, तुम्हारे जन्म से तुम्हारी मृत्यु तक, तुम्हारे अनंत जन्मों, अनंत मृत्युओं तक आकाश फैला है। तुम्हारी कथा, तुम्हारा सार आकाश में छिपा है। आकाश सब जानता है और जब तक तुम आकाश जैसे न हो जाओ, तब तक तुम सब न जान सकोगे। इसलिए सर्वज्ञ आकाश जैसा हो जाता है। वह आकाश के साथ एक हो जाता है। वह इतना मिट जाता है, शून्य हो जाता है कि आकाश और उसके बीच कोई दीवाल नहीं रह जाती, कोई परदा, कोई ओट नहीं रह जाती।

जिस दिन तुम शून्य हो जाते हो, भीतर का आकाश बाहर के आकाश से मिल जाता है, उस दिन तुम सर्वज्ञ हो; उस दिन तुम वह सब जान लेते हो, जो आकाश जानता है। उस दिन आकाश अपने सारे रहस्य तुममें उंडेल देता है।
"इसलिए कहा जाता है कि जीवन की नदी कैसे बहे, यह बात बालुओं में लिखी पड़ी है।" यह सूफियों का एक गहन सिद्धांत है कि "जीवन की नदी" कैसे बहे, यह बात बालुओं में लिखी पड़ी है। लेकिन बड़ी मुसीबत है। नदी और बालू की भाषा अलग-अलग है। बालू बोलती रहे, नदी सुन नहीं पाती। नदी और बालू की भाषा अलग है।
आकाश बोलता रहता है और तुम सुन नहीं पाते हो। तुम्हारी और आकाश की भाषा अलग है। आकाश की भाषा मौन है और जब तक तुम मौन होना न सीख जाओ, तब तक तुम आकाश के वचन न समझ पाओगे।
नेपथ्य में आवाज रोज ही गूंजती है। नेपथ्य में आवाज रोज ही तुमसे कहती है, डरो मत, तुम मरोगे नहीं। भयभीत न होओ। दुख तुम्हारे आस-पास है, तुम्हारे भीतर नहीं है। असफल तुम कितने ही हो जाओ, जीवन में तुम कितने ही पराजित हो जाओ, तुम्हारी आंतरिक विजय सुनिश्चित है। वहां कभी कोई हार प्रवेश नहीं करती। वहां तुम अमृत हो। वहां तुम सच्चिदानंद हो। लेकिन नेपथ्य की आवाज हमें सुनाई नहीं पड़ती। हमारी भाषा अलग है।
जमीन पर कोई तीन सौ भाषाएं हैं। आकाश की भाषा तो एक ही है--तीन सौ नहीं। जब तक तुम आकाश की भाषा न सीखोगे, तब तक "बालुएं" अपने रहस्य को "नदी" से नहीं कह सकेंगी।
आकाश की भाषा का नाम ध्यान है--मौन है। जैसा आकाश शून्य सन्नाटे में है, ऐसे ही तुम शून्य सन्नाटे हो जाओ। जब तुम कुछ न बोलोगे, तभी बालू अपने रहस्य को तुमसे कहना शुरू कर देगी।
और क्या है रहस्य? यही है रहस्य कि जीवन अनंत है। यहां कोई नदी कभी मिटती नहीं। यही है रहस्य कि जीवन अनादि है। यही है रहस्य कि जीवन सनातन है।
मृत्यु का भय इसलिए है कि तुमने गलत "पहचान" बना ली है अपनी। तुम्हारी गलत पहचान मरेगी, तुम नहीं मरोगे। तुमने रूप से अपने को जोड़ लिया है, स्वरूप से नहीं। और तुम इतने भयभीत हो कि तुम्हारे इस रूप के कहीं भी टूट जाने से, छोटा सा टूट जाए... । तुम्हें बेचैनी होती है।
तुम घर में आए और बेटा उठ कर खड़ा न हुआ। तुम बाप हो। बस, कठिनाई खड़ी हो गई, उपद्रव शुरू हुआ। सम्मान नहीं मिला। तुम स्कूल में शिक्षक हो; तुम गए और विद्यार्थी मुस्कुरा दिए या हंस दिए। बस, कठिनाई शुरू हो गई। तुम बाजार गए, जो लोग नमस्कार करते थे, उन्होंने नमस्कार न किया, बस चिंता व्याप्त हो गई।
छोटी-छोटी बात में जहां भी तुम्हारा रूप, तुम्हारी पहचान टूटती लगती है, वहीं तुम मुश्किल में पड़ जाते हो। तो जहां पूरा रूप ही टूटता लगेगा, वहां तो तुम कंप जाओगे--तूफान में, आंधी में।
कहते हैंः दूध का जला छाछ फूंक-फूंक कर पीने लगता है।
मुल्ला नसरुद्दीन जल्दी में था एक दिन। दौड़ कर सीढ़ियां उतर कर बाहर बगीचे में खड़ा हो गया, तब उसे ख्याल आया कि घड़ी और रूमाल ऊपर भूल आया। उसने चिल्ला कर आवाज दी अपनी पत्नी को कि "मैं घड़ी और रूमाल भूल आया हूं। जल्दी में हूं।" तो पत्नी उन्हें लेकर सीढ़ियां उतरने लगी तो उसने कहा, "मैं जल्दी में हूं, तू वहीं से सम्हाल कर फेंक दे।" पत्नी ने घड़ी फेंकी; चूक गई। जमीन पर गिरी। घड़ी के टुकड़े-टुकड़े हो गए। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "मूरख अब रुक, घड़ी तो टूट ही गई, अब रूमाल और न फेंक देना। मैं खुद ही आता हूं।"
दूध का जला छाछ फूंक-फूंक कर पीने लगता है।
तुम्हें जीवन भर का यही अनुभव है कि तुम्हारी पहचान जरा-जरा में टूट जाती है। तो तुम कैसे मानोगे कि मौत में न टूटेगी!
कोई नमस्कार नहीं करता, तुम मिटने लगते हो, पिघलने लगते हो। कोई हंस देता है, तुम्हारी प्रतिष्ठा खो जाती है। कोई तुम्हारे संबंध में कुछ कह देता है, अपमान कर देता है, कि बस, तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जाते हैं। तो

तुम कैसे मानोगे कि मौत तुम्हें न मिटा पाएगी! लोगों के विचार मिटा देते हैं, जरा से शब्द तुम्हें हिला देते हैं, तो रेगिस्तान जब जाएगा, तब भी तुम बचोगे? नहीं, तुम्हारी यह पहचान तो नहीं बचेगी। इस पहचान से अगर तुमने नाता तोड़ लिया, तो ही तुम बच सकोगे।
इस "पहचान" से जो अपना नाता रेगिस्तान में पहुंचने के पहले तोड़ लेता है, उसके आनंद का अंत नहीं है। रेगिस्तान भी उसे आनंद ही देता है। वहां भी वह नाचते हुए ही प्रवेश करता है। मृत्यु भी उसे नृत्य करता हुआ पाती है। उसके पद में घुंघरू बंधे होते हैं--जब मौत द्वार पर आती है।
साधु-असाधु की यही पहचान है कि मौत को तुमने कैसे स्वीकार किया। तुम उसके हाथ हो गए, या तुम उससे लड़ने लगे? तुम उस पर सवार हो गए, तुम उठ कर तैयार हो गए कि "चलो, राजी हूं" या कि तुम झगड़े, कि तुमने पूरी चेष्टा की कि थोड़ी देर और बच जाऊं?
असाधु--चाहे वह दिखाई साधु पड़ता हो--डरेगा। उसकी पहचान उधार है। साधु--उसकी पहचान स्वरूप की है। उसे कोई भी कभी मिटा नहीं सकता। "नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि"--उसे कोई शस्त्र छेद नहीं सकते। "नैनं दहति पावकः"-- उसे आग जला नहीं सकती। उसके मिटने का कोई उपाय नहीं है। अमिटता--अमृत उसका स्वरूप है, उसका स्वभाव है।
इस कहानी को गहरे में उतरने देना क्योंकि ज्यादा देर नहीं है, तुम्हारी नदी भी रेगिस्तान में पहुंचेगी। तैयार करना अपने को, ताकि तुम नेपथ्य की आवाज सुन सको।
इधर जो मैं तुमसे कह रहा हूं, वह नेपथ्य की आवाज है। अगर तुम तैयार हो,
तो ही सुन सकोगे।
और नेपथ्य की आवाज सुन कर अगर तुम "साथ" जाने को राजी हो गए तो तुम्हारा सौभाग्य। अगर जरा सी भी झिझक बनी रही, तुम बहे नहीं--लड़े, तो तुम यह जीवन भी चूक जाओगे।
बहुत जीवन तुम वैसे ही चूक चुके हो। हर बार तुम लड़े हो और हारे हो। इस बार ऐसा करना--लड़ना मत, साथ हो जाना।
साथ जो हुआ वह जीत गया। साथ जो हुआ, उसे कोई मिटा नहीं सकता, क्योंकि
वह खुद ही मिट गया। उसने पहचान अपनी खुद ही उतार कर रख दी। उसने संघर्ष छोड़ दिया।
संघर्ष संसार है, समर्पण धर्म है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
नौवां प्रवचन

जीवन-सूत्रः दर्पणवत, अव्याख्य, तथाता में जीना

कहीं एक मंदिर बन रहा था। तीन श्रमिक वहां धूप में बैठ कर पत्थर तोड़ रहे थे। एक राहगीर वहां से गुजर रहा था। बारी-बारी से उसने श्रमिकों से पूछाः "क्या कर रहे हो?"
एक से पूछा। वह बोलाः "पत्थर तोड़ रहा हूं।" उसके कहने में बड़ी पीड़ा थी
और स्वर भी भारी था।
दूसरे से पूछा। वह बोलाः "आजीविका कमा रहा हूं।" वह दुखी तो नहीं था; लेकिन उसकी उदासी कम भारी नहीं थी।
अजनबी तब तीसरे श्रमिक के पास गया और उससे भी वही सवाल पूछा। वह व्यक्ति गीत गा रहा था, उसकी आंखों में चमक थी और वह आनंदमग्न था। गीत रोक कर उसने कहाः "मैं मंदिर बना रहा हूं।" और फिर वह गीत गुनगुनाने लगा।
ओशो, जीवन और धर्म के संबंध में इशारे करने वाली अपनी इस प्रिय कहानी
पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

जीवन गीत भी हो सकता है, रुदन भी। क्योंकि जीवन अपने आप में कुछ भी नहीं है--कोरा कागज है। जो भी हम उस पर लिखते हैं, जीवन वही हो जाता है। जीवन हमारी लिखावट है। हमारी दृष्टि, देखने का ढंग, सोचने की प्रक्रिया जीवन के अर्थ को निर्धारित करती है।
जीवन में कोई अर्थ नहीं है; जो हम डालते हैं, वही अर्थ उससे निकल आता है। इसलिए हिंदुओं ने जीवन को "माया" कहा है। इस शब्द को समझना--बड़ा कीमती है।
"माया" का अर्थ होता हैः जादू। जादूगर को तुमने देखा होगा; खाली टोकरी
से कबूतर निकाल देता है! खाली टोकरी से सांप निकल आता है। लेकिन तुम भलीभांति जानते हो कि खाली टोकरी से कबूतर या सांप निकल नहीं सकता; पहले डाला होगा। जो डाला है, वही निकलता है। टोकरी खाली है नहीं; दिखाई पड़ती है। बस, उस दिखने में ही सारी कला है। जो डाला है, वह निकाल लिया जाता है। हिंदुओं ने इस पूरे जीवन को, संसार को, माया कहा है। माया का अर्थ हैः
इस जीवन में भी तुम जो डालते हो, वही निकल आता है। यह भी जादू का खेल है। और जादू के खेल में तो कोई और तुम्हें धोखा देता है, इस खेल में तो तुम अपने को ही धोखा देते हो।
जीवन का अपने आप में अगर कोई अर्थ होता, तब आदमी स्वतंत्र नहीं हो सकता था। तब आदमी होता परतंत्र; अर्थ से बंधा होता। जीवन में कोई भी अर्थ नहीं है--परम स्वतंत्रता है। तुम जो भी अर्थ निकालना चाहो, निकाल सकते हो। सब अर्थ तुम्हारी व्याख्याएं हैं।
नीत्शे का बहुत प्रसिद्ध वचन है कि "जगत में तथ्य कोई भी नहीं है; सभी व्याख्याएं हैं।"
फूल देख कर तुम कहते होः "सुंदर है" यह तथ्य है या व्याख्या है? तुम कहते होः "फूल सुंदर है"; तुम्हारे पास ही कोई खड़ा है, उसे फूल दिखाई ही नहीं पड़ता है। सौंदर्य का उसे पता ही नहीं चलता। तुम जब फूल को सुंदर कहते हो, तब वह भी सुन लेता है--बहरे की भांति। और अगर कोई भी जमीन पर न हो, तो फूल सुंदर होगा या नहीं? कोई भी जमीन पर न हो तो फूल होगा, लेकिन न सुंदर होगा, न कुरूप होगा। "होना" खाली रह जाएगा।
"होना" कोरा कागज है। अर्थ तुम लिखते हो। सब अर्थ तुम्हारे हस्ताक्षर हैं। इस बात को हमें ठीक से समझ लेना चाहिए; क्योंकि इस पर बहुत कुछ निर्भर है।
पश्चिम में आधुनिक युग के करीब-करीब सभी विचारक एक बात से बहुत पीड़ित हैं, और वह है कि "जीवन अर्थहीन, मीनिंगलेस मालूम होता है।" और अगर खोज में लगते... और जितना ही तुम खोजते हो, उतना ही तुम पाते हो कि कोई अर्थ नहीं है। खोजने वाला कभी जीवन में अर्थ नहीं पाएगा; अर्थ है नहीं वहां। अर्थ डालना पड़ता है--खोजना नहीं पड़ता। अगर तुम रोना चाहते हो, तो ऐसा अर्थ डालो

कि जीवन उदासी बन जाए। अगर तुम हंसना चाहते हो, तो ऐसा अर्थ डालो कि जीवन हंसी बन जाए। और अगर तुम मुक्त होना चाहते हो, तो जीवन में अर्थ डालो ही मत; तुम अर्थहीनता से राजी हो जाओ।
वह चौथी बात इस कथा में नहीं है। कथा में चौथी बात आ ही नहीं सकती। तीन बातें इस कथा में हैं, उन्हें हम समझेंगे। चौथी इसमें नहीं है। चौथी कुछ ऐसी है कि कथा में डालना कठिन है।
तीन मजदूर हैं। धूप एक जैसी है; दोपहर एक जैसी है। तीनों ही पत्थर तोड़ते हैं; पत्थर तोड़ना भी एक जैसा है। लेकिन तीनों की दृष्टियां अलग-अलग हैं।
एक से पूछे जाने पर उसने उदासी और दुख से कहाः "पत्थर तोड़ रहा हूं।" इसमें क्रोध भी रहा होगा। यह उदासी आक्रामक है। यह बड़े बे-मन से तोड़ रहा है। यह बड़ी मजबूरी में तोड़ रहा है। यह बड़ी गुलामी में तोड़ रहा है। तोड़ना पड़ रहा है, इससे बहुत पीड़ित है। यह एक जबरदस्ती है। जैसे कोई कारागृह में पत्थर तोड़ रहा हो।
पत्थर तोड़ने पड़ रहे हैं; तोड़ने की कोई आकांक्षा, कोई इच्छा, कोई रस नहीं है। इसलिए जिसने पूछा, उस पर यह क्रोधित भी हुआ। उसने कहाः "पत्थर तोड़ रहा हूं।" शायद कहा हो कि दिखाई नहीं पड़ता? अंधे हो? साफ है कि पत्थर तोड़ रहा हूं। और क्या पूछने को है? ?
उदासी के दो ढंग हैं। एक उदासी का पाजिटिव, विधायक ढंग है, तब उदासी क्रोध बन जाती है। और एक उदासी का निगेटिव, पैसिव, निष्क्रिय ढंग है, तब उदासी केवल बोझिलता होती है--एक उपेक्षा, एक निष्क्रियता। तब उससे क्रोध नहीं निकलता, तब सिर्फ शिथिलता छा जाती है।
क्रोध उदासी का आक्रामक रूप है और उदासी क्रोध का अनाक्रमक रूप है।
जो लोग हमला कर सकते हैं, वे क्रोध करते हैं; जो लोग हमला नहीं कर सकते हैं, वे रोते हैं, उदास होते हैं।
दूसरे मजदूर की उदासी अनाक्रमक है। उसने यह नहीं कहा कि पत्थर तोड़ रहा हूं; अंधे हो, दिखाई नहीं पड़ता? उसने कहाः "आजीविका कमा रहा हूं।" मजबूरी में वह भी है। लेकिन मजबूरी जैसे किसी और ने नहीं थोपी है; अपने हाथ से चुनी है। कारागृह में वह भी है, लेकिन किसी ने धक्के देकर कारागृह में नहीं डाला है। खुद ही चला आया है। आजीविका तो कमानी ही होगी। रोटी-रोजी तो कमानी ही होगी। बच्चे हैं; पत्नी है। अपने हाथ से जो जाल खड़ा किया है, उसका कर्तव्य तो निभाना ही होगा।
पहला मजदूर पत्थर तोड़ रहा है। दूसरा मजदूर रोटी-रोजी कमा रहा है।
और तीसरे मजदूर ने अपने गीत की गुनगुनाहट को रोक कर कहाः "मंदिर बना रहा हूं।" वह भी पत्थर तोड़ रहा है।
बाहर के तथ्य में कोई भेद नहीं है। रत्ती भर अंतर नहीं है। धूप एक सी है। पत्थर तोड़ने का श्रम एक सा है। तीनों का पसीना बह रहा है। लेकिन पहला आक्रामक रूप से उदास है, दुखी है। दूसरा अनाक्रमक रूप से दुखी है--उदास है। तीसरा प्रफुल्लित है। वह पत्थर नहीं तोड़ रहा है, मंदिर बना रहा है। उसका कृत्य किसी विराट कृत्य से जुड़ा हुआ है। वह कोई छोटा काम नहीं कर रहा है। एक विराट मंदिर बन रहा है, उसका भागीदार है, उसका निर्माता है, उसका स्रष्टा है। उसके पत्थरों के बिना यह मंदिर बन न सकेगा। उसका हाथ इस मंदिर के बनने में है।
तीसरा प्रफुल्लित है, क्योंकि अपने से बड़ी किसी चीज से जुड़ा है। तीसरा खुश है, आनंदित है, क्योंकि कुछ सार्थक काम हो रहा है।
रोटी कमानी कोई बड़ी सार्थकता नहीं है। तुम जीवन में सौ में से निन्यानबे लोगों को उदास देख रहे हो; क्योंकि वे सब रोटी-रोजी कमा रहे हैं। जाते हैं दफ्तर, दुकान; काम करते हैं; कमाते हैं; वे तो रोटी-रोजी कमा रहे हैं।
रोटी-रोजी कमाने वाला चित्त बहुत प्रसन्न नहीं हो सकता है। भरना है पेट किसी तरह; चाहते थे कि अगर पेट न होता तो अच्छा था। राह देख रहे हैं कि मर जाएं तो छुटकारा मिले।

दो दुकानदार साझीदार थे। धंधा बुरा जा रहा था। और धंधा वस्तुतः कभी
भी अच्छा नहीं जाता। क्योंकि आकांक्षाएं सदा ज्यादा हैं। सभी व्यवसाय पीछे छूट जाते हैं। कमाई सदा कम होती है--वासना से। धंधे सदा ही बुरे जाते हैं। कितना ही कमाओ, "पेट" भरता नहीं है! पेट के भरने का कोई उपाय नहीं है। तो दोनों रोना रो रहे थे कि धंधा बुरा जा रहा है। ग्राहक दिखाई नहीं पड़ते। और एक तो इतना उदास था कि उसने कहा, "इससे अच्छा था कि मैं पैदा ही नहीं होता। यह जिंदगी होती ही न, तो अच्छा था। बेहतर था, मैं पैदा ही न होता। किस दुर्भाग्य के क्षण में मैं पैदा हुआ!"
दूसरे आदमी ने कहाः "छोड़ो भी, नो बडि हैज दैट काइंड ऑफ लक। ऐसा सौभाग्य बहुत कम लोगों का होता है कि वे पैदा ही न हों। यह होता ही किसका है? यह बात ही नहीं उठाओ। इतना भाग्यशाली कौन है--कि पैदा ही न हो! यह तो बड़े सौभाग्य की घटना है।"
पैदा होगा; दुर्भाग्य शुरू हो गया। पेट भरना ही होगा। रोटी-रोजी कमानी ही होगी। काम करना ही होगा।
चित्त उदास होता है, क्योंकि तुम जो कर रहे हो, वह इतना छोटा मालूम पड़ता है। और कर-कर के भी उससे कोई अर्थ, कोई निष्पत्ति को निकलती नहीं, कोई सार तो निकलता नहीं।
रोज उठोगे, दफ्तर जाओगे, लौट आओगे। रोज फिर उठोगे, फिर दफ्तर जाओगे, फिर लौट आओगे। जीवन एक बंधी हुई लीक हो जाता है। जैसे मालगाड़ी के डब्बे शंटिंग करते रहते हैं--अर्थहीन; ऐसा ही जीवन है। दुकान-बाजार, घर-बाजार; शंटिंग होती रहती है। एक दिन तुम मर जाते हो; कहीं कोई मंजिल उपलब्ध नहीं होती!
तीसरे मजदूर ने कहाः "मंदिर बना रहा हूं।" इसके कृत्य में एक सार्थकता है। वह तो मिट जाएगा, लेकिन मंदिर रहेगा। वह तो नहीं रहेगा, लेकिन उसका कृत्य बचेगा। समय की धारा में यह तो खो जाएगा, लेकिन वह कुछ बना जा रहा है, जो बड़ा स्थायी है; हजारों लोग पूजा करेंगे।
जिन लोगों के जीवन में भी तुम्हें प्रफुल्लता दिखाई पड़ती हो, तुम फौरन समझ जाना कि वे कोई मंदिर बना रहे हैं। चाहे वह मंदिर सच हो कि झूठ, यह सवाल नहीं है। कौन सा मंदिर सच है।
लेकिन जिस आदमी को भी तुम प्रसन्न देखो, प्रफुल्ल देखो, समझ लेना कि
वह कोई मंदिर बना रहा है। वह किसी ऐसे कृत्य में लगा है, जो उससे बड़ा है। राष्ट्र की सेवा कर रहा है, कि समाजवाद ला रहा है, कि स्वतंत्रता का अभियान चला रहा है, कि शहीद होने की तैयारी किए बैठा है, कि गरीबी मिटा कर रहेगा।
तुम पाओगे कि उसकी आंखों में एक चमक है, एक प्रफुल्लता है।
भगतसिंह सूली पर भी इतने प्रसन्न हैं, जितने तुम दुकान पर नहीं हो। और वैज्ञानिक कहते हैं कि शहीदों का वजन बढ़ जाता है--सूली के वक्त, जो कि बड़ी अदभुत घटना है। भगतसिंह का भी एक पौंड वजन बढ़ गया। एक दिन पहले वजन और है। सूली के ठीक घड़ी भर पहले वजन और हो गया। सूली पर वे इतने प्रफुल्लित हो गए कि एक पौंड वजन बढ़ गया। कुछ खाया-पिया नहीं है अभी। पानी भी नहीं पीया है। वजन बढ़ने का कोई भौतिक आधार नहीं है। लेकिन जब कोई बहुत प्रफुल्लित होता है, तो जैसे चारों तरफ जो ऊर्जा से भरा हुआ विराट आकाश है, उससे "कुछ" उसे मिल जाता है। वह भूखा भी प्रफुल्लित होता है।
जब तुम उदास होते हो, तब तुम भोजन भी करते हो, लेकिन वजन बढ़ता। लोग कहते हैं कि क्रोधी, दुखी क्षीण होता जाता है। खाए-पीए, सुख-सुविधा हो, कुछ फल नहीं होता। वजन गिरता जाता है।
तुमने शायद देखा हो--छोटे बच्चों को दिखाई पड़ता है, बड़े लोग उसको इनकार कर देते हैं... । छोटे बच्चों को--कभी-कभी तुम्हें भी--जब तुम खुले आकाश में शांत बैठे हो, तो तुम्हें प्रकाश के छोटे-छोटे बिंदु आकाश में तैरते हुए दिखाई पड़ते हैं। आंख को नीचे लाओ तो नीचे आते हैं, आंख ऊपर ले जाओ तो ऊपर जाते हैं। छोटे बच्चों को बहुत दिखाई पड़ते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि वह प्राण ऊर्जा है। उसी तत्व को हिंदुओं ने प्राण कहा है। वह चारों तरफ व्याप्त है। और जब कोई व्यक्ति बहुत प्रफुल्लित होता है, तो वे जो छोटे-छोटे प्रकाश-बिंदु चारों तरफ हैं, वे उसके शरीर में प्रविष्ट हो

जाते हैं। उसका वजन बढ़ जाता है। या जब कोई व्यक्ति बहुत उदास होता है, तो उसके भीतर संगृहीत प्रकाश के बिंदु-ऊर्जा के कण आकाश में निकल जाते हैं। वह क्षीण हो जाता है। उसका वजन कम हो जाता है।
भगतसिंह सूली पर चढ़ कर इतने खुश हैं, तुम दुकान पर चढ़ कर इतने खुश नहीं। दुकान तुम्हारी सूली से बदतर मालूम होती है। जीसस सूली पर दुखी नहीं हैं। तुम शैया पर भी दुखी हो। बात क्या है?
जीसस एक विराट मंदिर को बना रहे हैं। एक बड़ी अर्थपूर्ण घटना चारों तरफ घट रही है। उनके हाथ से कोई कृत्य हो रहा है जो मूल्यवान है और उसका मूल्य जीसस से ज्यादा है। भगतसिंह कोई आजादी का सपना पूरा कर रहा है। खुद मिट जाएगा इसकी चिंता नहीं। उससे बड़ा कुछ रहेगा, कुछ घटेगा। वह निमित्त बन रहा है, विराट के एक आयोजन का।
जब भी कोई व्यक्ति अपने से बड़े से संयुक्त होता है, तभी प्रफुल्लित हो जाता है। अक्सर तुमने देखा होगा कि भीड़ में लोग प्रफुल्लित हो जाते हैं। एक भीड़ चली जा रही है। हिंदू-मुस्लिम दंगा है। तुम पाओगे हिंदू भी प्रफुल्लित हैं, मुसलमान भी प्रफुल्लित हैं। ये कभी प्रफुल्लित नहीं थे। ये वही साधारण जन हैं जो रोज दफ्तर और दुकान जाते थे और आज इनकी आंखों में एक चमक है, पैरों में एक गति है। रोज ये घसीटते से चलते थे और आज ये दौड़े जा रहे हैं। आज ये छोटे नहीं हैं, बड़ी भीड़ का हिस्सा हो गए हैं। हिंदू धर्म, इस्लाम--कोई बड़ा लक्ष्य इनको पकड़ लिया है। इसी कारण दुनिया में बहुत उपद्रव घटित होता है।
हिटलर ने जर्मनी को प्रसन्न कर दिया। क्योंकि उसने एक सपना दिया, एक आदर्श दिया, एक भविष्य की कल्पना दी। और लोग उस कल्पना से इतने आनंदित हो गए--सपने इतने साकार हो गए, कि मंदिर बनने लगा। लोग तैयार हो गए--कोई भी कृत्य करने को, कोई भी पाप करने को।
हिटलर का सम्मोहन क्या है? हिटलर का सम्मोहन यही है कि तुम अपनी क्षुद्रता में बंद थे; तुम्हारे काम में कोई अर्थ न था; उसने तुम्हारे जीवन को अर्थ दे दिया। तुम गुनगुनाने लगे।
जब भी जीवन में कोई अर्थ की झलक तुम्हें मिलेगी, गुनगुनाहट आ जाएगी, गीत आ जाएगा। जिसको भी तुम प्रसन्न देखो, समझना कि वह "मंदिर" बना रहा है। वह तीसरा व्यक्ति गीत गा रहा था। उत्तर देने के लिए रुका, उसने कहाः "देखते हो, मंदिर बना रहा हूं।" तब पसीना, पसीना नहीं है। तब धूप, धूप नहीं है। तब पत्थर का तोड़ना कोई श्रम नहीं है; पूजा हो गई--प्रार्थना हो गई--एक बड़ा मंदिर बन रहा है। "मैं क्षुद्र भी सार्थक हुआ जा रहा हूं।"
तुम अपनी क्षुद्रता को जब भी किसी विराटता से जोड़ लेते हो, तभी तुम सार्थक मालूम पड़ने लगते हो। जब तुम अकेले हो, तब बिल्कुल क्षुद्र हो; जब तुम किसी चीज से भी जुड़ जाते हो, तभी तुम प्रसन्न हो जाते हो।
आज का आदमी उतना प्रसन्न नहीं है, जितना अतीत में था। क्योंकि अतीत के आदमी ने बहुत मंदिर बनाए। आज का आदमी मंदिर बनाता ही नहीं। हालांकि बहुत बड़े मकान बनाता है--आकाश छूने वाले। मंदिर फीके पड़ जाते हैं; लेकिन फिर भी वे मकान--मंदिर नहीं। सौ-सौ मंजिल के मकान हैं--गगनचुंबी, जिनके नीचे बदलियां छूट जाती हैं। कोई मंदिर इतना ऊंचा नहीं है। लेकिन फिर भी ये "मकान" हैं। ये तुम ही रहने के लिए बना रहे हो, तुमसे विराट के लिए इनमें निमंत्रण नहीं है।
छोटे-छोटे मकान जो मंदिर थे, मकान भी नहीं थे--कहीं झाड़ के नीचे, पत्थर जोड़ कर छोटा सा मंदिर बना लिया था, छोटा सा शिवालय बना लिया था। ये मूर्ति भी न थे, पत्थर थे। पत्थर रंग कर हनुमान की या शिव की मूर्ति बना ली थी। और उस मूर्ति से भी आदमी प्रफुल्लित था।
अतीत के लोग प्रसन्न थे, प्रफुल्लित थे, क्योंकि परमात्मा बहुत निकट मालूम होता था। सच या झूठ--यह सवाल नहीं था। जीवन की व्याख्या सुंदर थी। जो भी कर रहे थे, वह करना ऐसे ही शून्य में नहीं खो रहा था। उसकी कोई निष्पत्ति थी, उसका कोई तार्किक अंत था।
जब कभी तुम प्रेम में होते हो, तो तुम्हें थोड़ी सी झलक मिलती है। एक युवक आज प्रेम में पड़ जाता है, उसकी कल की और आज की चाल में फर्क होता है।

कल चलता था, जैसे पैरों में पत्थर बंधे थे। आज चलता है, जैसे पैरों में पंख लग गए। कल भी कपड़े बदलता था, आज भी कपड़े बदले हैं। लेकिन आज कपड़े की बात ही और है। कल भी हाथ-मुंह धोया था, आज भी धोया है। लेकिन आज की बात ही और है। आज किसी के लिए तैयार हो रहा है, कोई युवती उसकी प्रतीक्षा कर रही है।
अपनी क्षुद्रता से बाहर एक और नये व्यक्ति से संबंध जुड़ गया है। कोई आंखें उसे सुंदर देखना चाहेंगी। उन आंखों में अर्थ मिलेगा। कल तक अपनी शक्ल खुद ही देखते थे; कोई ज्यादा अर्थ नहीं था। आज कोई और भी प्रशंसा करेगा। आज कोई और भी आह्लादित होगा। तुम बड़े हो गए।
तो थोड़ा सोचोः जब एक व्यक्ति प्रेम में पड़ता है, तब कितना प्रसन्न हो जाता है, तो जो व्यक्ति प्रार्थना में पड़ जाता होगा, उसकी प्रसन्नता कितनी बड़ी होगी! क्योंकि प्रेम तो दो व्यक्तियों का संबंध है। प्रार्थना तुम्हारे और पूरे अस्तित्व के संबंध का नाम है।
यह तीसरा मजदूर निश्चित आनंदित था, प्रसन्न था; मंदिर बना रहा था। वह
जो परमप्रिय है, उसका मंदिर बना रहा था। यह कोई पत्थर तोड़ना न था, यह सेवा थी। यह धूप में गिरता हुआ पसीना--यह पूजा थी। यह त्याग कर रहा था। प्रसन्न था।
लेकिन ये तीन अवस्थाएं हैं। एक चौथी और अवस्था है, जब व्यक्ति शांत होता है--न तो दुखी होता है, न उदास होता है, न सुखी होता है; जब सब शांत होता है।
तुम सोचो कि इन तीन के पास बुद्ध भी पत्थर तोड़ रहे हैं। एक चौथा मजदूर--गौतम बुद्ध भी पत्थर तोड़ रहा है। और इस कहानी के नायक ने उससे भी पूछा होता। तो बुद्ध क्या कहते? बुद्ध चुप ही रहते। बुद्ध गीत नहीं गुनगुनाते। क्योंकि अगर उदासी व्याख्या है, तो प्रसन्नता भी व्याख्या है। अगर तुम उदास हो तो अपने कारण, अगर प्रसन्न हो तो अपने कारण। अगर उदासी भ्रांति है, तो प्रसन्नता भी भ्रांति है।
बुद्ध कोई अर्थ नहीं डालते जीवन जैसा है, उसे वैसा ही देख लेते हैं-- कोरा। उसमें कुछ भी नहीं जोड़ते। उस कोरे जीवन से राजी हैं। इस कोरे जीवन से न तो उदासी आती है; क्योंकि उदासी उदासी भी तुम जोड़ो तो आती है; न उससे प्रसन्नता आती है, क्योंकि प्रसन्नता भी तुम जोड़ो तो आती है।
बुद्ध न तो पत्थर तोड़ते, न बुद्ध रोटी-रोजी कमाते, न बुद्ध मंदिर बनाते। बुद्ध कुछ भी जोड़ते नहीं; जैसा है, जो है, उसी को बुद्ध सत्य कहते हैं। वे उससे राजी हैं। इस राजीपन से एक शांति घटित होती है।
उदासी एक बेचैनी है, प्रसन्नता भी एक बेचैनी है। इसीलिए तुम ज्यादा दिन उदास रहोगे, तब भी थक जाओगे। और ज्यादा दिन प्रसन्न रहोगे, तो भी थक जाओगे।
कभी तुमने बहुत देर हंस कर देखा है? तब तुम्हें थकान आने लगती है। तब तुम चाहते हो कि अब छुटकारा मिले। अब और हंसना न पड़े। तब ओंठ थक जाते हैं। मुंह खिंचा हो जाता है, तनाव हो जाता है।
ज्यादा देर हंस कर हंसी भी व्यर्थ हो जाती है। कितनी देर गीत गुनगुनाओगे? गुनगुनाना भी थका देता है। आखिर गुनगुनाहट भी उदास हो जाती है; उस पर भी धूल जम जाती है। गीत भी सब फीके हो जाते हैं। जितना दुहराओगे, उतने ही मुर्दा हो जाते हैं। प्रेम भी बासा हो जाता है। प्रार्थना भी पुनरुक्ति हो जाती है।
पहले दिन जब तुम मंदिर गए थे तब पैरों की जो चाल थी, वह रोज-रोज नहीं रहेगी। धीरे-धीरे मंदिर भी रूटीन, रोज के क्रिया-कर्म का हिस्सा हो जाएगा। पहले दिन तुम प्रेम में पड़े थे, तब तुम्हारी चाल में जो पंख लगे थे, वे रोज-रोज नहीं लगेंगे। थोड़े दिन में वह स्त्री दिखाई पड़नी बंद हो जाएगी। थोड़े दिन में तुम आदी हो जाओगे। थोड़े दिन में चिंता छोड़ दोगे कि वह क्या सोचती है, क्या नहीं सोचती। थोड़े दिन में तुम भूल ही जाओगे; वह पास बैठी रहेगी और तुम अकेले रहोगे--तुम अपने भीतर बंद, वह अपने भीतर बंद। कुछ वर्षों बाद शायद तुम एक दूसरे को देखे भी न पाओगे। देखना भी बंद हो जाएगा। आंखें बिल्कुल धूल से ढंक जाएंगी। तब पैरों की गति, वह पंख, वह गुनगुनाहट-- सब बंद हो जाएगी।

चौथा भी एक मजदूर है, जो दिखाई नहीं पड़ता--इस कहानी में। क्योंकि चौथे मजदूर का दिखाई पड़ना बहुत कठिन है। वह जीता है--और जीवन की निरर्थकता को स्वीकार करके जीता है; उसमें कोई अर्थ नहीं डालता। अर्थ डाला कि माया शुरू हुई।
तीन संसारी के ढंग हैं, वह चौथा गैर-संसारी का ढंग है; वह संन्यासी का ढंग है। तो तुम यह मत सोचना कि तीसरा संन्यासी है; तीसरा भी संसारी है। और अगर होना हो संसारी, तीसरे के ढंग के होना। क्योंकि जब चुनना ही हो, तो गुनगुनाना ही चुनना, उदासी क्या चुननी! जब मानना ही हो कुछ झूठ, तो गीत का मानना; आंसुओं का क्यों मानना!
इस कहानी में तीनों ही संसारी हैं। लेकिन एक चौथा व्यक्ति भी है, जो संसारी नहीं है--जो कहता ही नहीं है कि जीवन में कोई अर्थ है। जो पूछता भी नहीं है कि जीवन का कोई प्रयोजन है; जो स्वीकार कर लेता है। फूल को देखता है, लेकिन नहीं कहता है कि सुंदर है, नहीं कहता है कि कुरूप है। सुंदर स्त्री गुजरती हैः न कहता है--सुंदर है, न कहता है--कुरूप है। देखता है और कोरे कागज को कोरा ही रह जाने देता है; उस पर कुछ भी लिखता नहीं है। उसकी कोई व्याख्या नहीं करता है। वह निर्व्याख्य जीता है। तथ्य को तथ्य ही रहने देता है; उसमें कुछ भी जोड़ता नहीं है। वह कुछ भी बदलने को राजी नहीं है। वह कहता हैः "जो जैसा है--है। और मैं उससे राजी हूं।" इस राजीपन का नाम तथाता है। लेकिन ऐसे आदमी को न तुम उदास पाओगे, न गीत गुनगुनाते पाओगे। बुद्ध को किसी ने उदास नहीं देखा। बुद्ध को किसी ने गीत गुनगुनाते भी नहीं देखा। बुद्ध न तो प्रसन्न हैं और न दुखी हैं, क्योंकि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
और ध्यान रहे; जो हंसेगा, उसे कभी उदास भी होना पड़ेगा। जो उदास है, वह कभी न कभी हंसेगा भी। क्योंकि एक ही स्वाद ज्यादा दिन तक नहीं खींचा जा सकता; स्वाद बदलना पड़ता है। और जीवन में सब चीजें बदलती हैं; कोई भी स्थिर नहीं हैं।
यह कहानी तो इतने में ही पूरी हो जाती है, लेकिन अगर तुम जिंदगी में पकड़ो, तो जिसको तुमने गुनगुनाते पाया था--मंदिर के बाहर क्योंकि वह मंदिर बना रहा था। अगर तुम इसका पीछा करो तो तुम जल्दी ही इसे रोते हुए भी पाओगे। कहीं न कहीं यह तुम्हें उदास भी मिल जाएगा। क्योंकि मंदिर कितनी देर बनाओगे? चौबीस घंटे मंदिर नहीं बनाए जा सकते।
शहीदों की जिंदगी में भी उदासी के क्षण हैं। त्यागियों की जिंदगी में
भी भोग के क्षण हैं; विपरीत प्रवेश कर जाता है। जो प्रार्थना करता है, वह भी वासना से भरता है। जो रोज-रोज मंदिर जाता है, अगर उसे मंदिर जाना जारी ही रखना हो, तो कभी उसे वेश्यालय के दरवाजे पर भी जाकर दस्तक देनी पड़ती है! तब मंदिर में फिर रस आ जाता है।
पश्चिम में मनोवैज्ञानिक सुझाव दे रहे हैं कि जो पति अपनी पत्नी में
रस जारी रखना चाहते हों, उन्हें कभी-कभी दूसरी स्त्रियों से भी प्रेम कर लेना चाहिए। तो पत्नी फिर से सार्थक हो जाएगी। इसलिए पत्नियां बदलने का आंदोलन पश्चिम में चलता है। मित्र अपनी पत्नियां बदल लेते हैं--एक दो दिन के लिए--सप्ताह दो सप्ताह के लिए। और जिन लोगों ने ऐसे प्रयोग किए हैं, वे कहते हैं कि इससे एक लाभ होता है कि पत्नी में फिर से रस आ जाता है। स्वाद बदल जाता है। पत्नी को पति में फिर से रस आ जाता है।
मन तो हर वक्त नये को चाहता है। पुराने से मन बिल्कुल राजी नहीं है।
वह नई संवेदना चाहता है, नई चोट चाहता है, नया गीत चाहता है।
मंदिर भी पुराना हो जाएगा। नये-नये मंदिर रोज कैसे बनाओगे? नया-नया प्रेमी रोज कैसे खोजोगे? इसलिए सब बासा हो जाता है और सभी से उदासी आ जाती है।
और यह जो आदमी क्रोध से पत्थर तोड़ रहा है, अगर तुम इसका भी पीछा करो, तो कहीं तुम इसे भी खिलखिलाते पाओगे। क्योंकि आदमी क्रोधित भी तो चौबीस घंटे नहीं रह सकता है! चौबीस घंटे रहना--एक दशा में--महयोगी की क्षमता है।
अगर तुम्हें क्रोधित रहना हो चौबीस घंटे... । कभी तुमने सोचा कि क्या तुम रह सकते हो चौबीस घंटे क्रोधित? सम्हालना असंभव होगा। वह तो महायोगी

की क्षमता है कि वह चौबीस घंटे एक दशा में रहे। साधारण आदमी क्षण भर भी एक दशा में नहीं रह सकता। इधर क्रोध आया नहीं, उधर गया नहीं। इधर हंसी आयी नहीं कि वहां निकली नहीं। दोनों दरवाजे बिल्कुल पास-पास हैं। हवा का एक झोंका एक कोने से आता है, दूसरे कोने से निकल जाता है। यह आदमी भी तुम्हें कहीं खिखिलाता मिलेगा। यह आदमी भी हंसता मिलेगा।
वह जो आदमी बिल्कुल उदास बैठा है, जो कहता हैः "रोटी-रोजी कमा रहा हूं", यह भी तो सांझ रोटी-रोजी कमा कर घर वापस लौटेगा। तुम इसे शतरंज पर बैठे हुए देखना, तो तुम पाओगे कि यह उदास नहीं है। तुम इसे ताश खेलते हुए देखना, तुम पाओगे--यह उदास नहीं है।
इन तीनों आदमियों का अगर तुम जिंदगी में पीछा करोगे तो तुम पाओगेः ये
सब बदल जाते हैं। जो हंस रहा है, वह रोता है। जो हंसता है, वह उदास होता है। जो उदास है, वह हंसता है। जो क्रोधित है, वह कभी गीत भी गुनगुनाता है। जिंदगी सतत परिवर्तन है, प्रवाह है। एक चौथा आदमी है--जो प्रवाह के पार है, वही लक्ष्य है। वह चौथा आदमी जैसा है, वैसा है। चूंकि वह कोई अर्थ डालता नहीं है, इसलिए बदलाहट भी कभी नहीं आती। तुम बुद्ध को सदा वैसा ही पाओगे।
बुद्ध ने कहाः "मैं वैसा हूं, जैसा सागर का पानी। तुम कहीं से भी चखो, तुम मुझे खारा ही पाओगे।"
ठीक कहा है। बुद्ध का स्वाद सदा एक सा ही रहेगा; कहीं से भी उन्हें चखो। तुम सोते समय उन्हें उठाओ, तो भी तुम उन्हें वही पाओगे। क्योंकि जिसने कोई अर्थ अपनी तरफ से नहीं जोड़ा है, उसकी जिंदगी शाश्वत हो जाती है। अगर भगतसिंह को तुम कब्र से उठाओ, तो तुम उसे दुखी पाओगे। क्योंकि जिस आजादी के लिए बेचारे ने जान गंवाई, वह आजादी दो कौड़ी की साबित हुई। तुम शहीदों को उठाओ कब्रों से और पूछो, "इसी आजादी के लिए तुम मरे थे, इतने प्रसन्न हुए थे? इन्हीं राजनीतिज्ञों के हाथ में ताकत देने के लिए तुमने कुरबानी दी थी?" तो भगतसिंह छाती पीट कर रोएगा कि हमें क्या पता था भविष्य का।
गांधी तो जिंदा थे--आजादी आई। और आजादी आने के बाद गांधी छाती पीटने लगे थे। गांधी बार-बार कहते थेः "मेरी कोई नहीं सुनता। मैं खोटा सिक्का हो गया हूं। मेरा कोई चलन नहीं है।" गांधी दुखी हैं।
गांधी सोचते थेः एक सौ पच्चीस वर्ष जीऊंगा। लेकिन आजादी के थोड़े ही महीनों बाद, उन्होंने कहा कि अब मेरी एक सौ पच्चीस वर्ष जीने की कोई इच्छा नहीं है।
यह बड़ी हैरानी की बात है।
लेनिन को उठाओ कब्र से और पूछो कि "इसी सोवियत रूस के लिए तुम मरे और जीए?" सन यात-सेन को कब्र से उठा कर पूछो कि "यह वह चीन है, जिसके लिए तुमने जीवन कुरबान किया!" तुम इन सबको उदास पाओगे। वे कहीं भी होंगे, छाती पीटकर रो रहे होंगे।
शहीदों की चिताओं पर भले मेले भर रहे हों, लेकिन शहीदों की चिताओं के भीतर आंसू बह रहे होंगे! क्योंकि कुछ भी करो, जो किया है, उसका परिणाम कभी कुछ आता नहीं मालूम पड़ता। कुछ उलटा ही हो जाता है।
कोई भेद नहीं पड़ता। जिंदगी वैसे ही चाल से चलती चली जाती है। सफेद चमड़ी की जगह काली चमड़ी बैठ जाती है। वह सफेद चमड़ी से बेहतर सिद्ध नहीं होती। अक्सर बदतर सिद्ध होती है। हर क्रांति और गड़्ढे में ले जाती है। सब बदलाहट--थोड़े ही दिन बाद बेकार सिद्ध होती है। फिर चीजें थिर हो जाती हैं, सब वैसे ही चलने लगता है।
यह जो आदमी, मंदिर बना कर प्रसन्न हो रहा था, इसको पता नहीं कि इस मंदिर पर पुजारी कब्जा कर लेंगे। इस मंदिर को लोग दुकान बना लेंगे। यह मंदिर शोषण की जगह हो जाएगी!
तुम जिस मंदिर को बना रहे हो, वह भगवान का मंदिर कब बन पाता है? कुछ भी बनाओ, आदमी सब पर कब्जा कर लेता है! अभी यह तीसरा मजदूर प्रसन्न है, क्योंकि इसे पता नहीं है।

बुद्ध ने कहा हैः "मेरे मरने के बाद मेरा कोई मंदिर न बने; मेरी कोई प्रतिमा न बनाई जाए, क्योंकि जितनी प्रतिमाएं बनीं, जितने मंदिर बने, उतना आदमी का शोषण हुआ है।" पर इससे क्या फर्क पड़ता है! जितने मंदिर बुद्ध के बने, उतने किसी के भी नहीं बने और जितनी प्रतिमाएं बुद्ध की आज पृथ्वी पर हैं, किसी दूसरे व्यक्ति की नहीं हैं।
जीसस ने यहूदियों से संघर्ष किया ताकि परमात्मा का राज्य पृथ्वी पर स्थापित हो सके। परमात्मा का राज्य स्थापित नहीं हुआ, पोप का राज्य स्थापित हुआ! और पोप बदतर है--उस पुरोहित से, जिसके खिलाफ जीसस लड़े थे। नाम बदल गए, आदमी वही के वही हैं। शकलें बदल जाती हैं, नाटक वही का वही जारी रहता है। शोषण चलता ही रहता है।
ये जो तीन हैं, ये साधारण तीन जन हैं। चौथे पर ध्यान देना। वह चौथा इस कहानी में नहीं है, क्योंकि उस चौथे को देख पाना बहुत कठिन है; वह अदृश्य है। और जिस दिन तुमको चौथा दिखाई पड़ जाए, उसी दिन तुम्हारे जीवन में आंतरिक क्रांति शुरू होगी।
क्या तुम "जीवन जैसा है", उससे राजी नहीं हो सकते हो--बिना उदास हुए? क्या उदास होना जरूरी है? क्या जीवन जैसा है, तुम उससे राजी नहीं हो सकते हो--बिना कोई कल्पना जोड़े? क्योंकि कल्पना तुम्हें प्रसन्न करती है। क्या तुम तथ्य के साथ नहीं खड़े हो सकते? तुम सपना जोड़ोगे ही--अच्छा या बुरा? तुम कोई व्याख्या करोगे ही? क्या तुम निर्व्याख्य नहीं हो सकते हो? अगर तुम हो सको, तो बुद्ध हो जाओ। जब तुम न उदास हो, न क्रोधित हो, न तुम प्रफुल्लित हो; तुम सिर्फ शांत हो; तुम परम शांत हो; तुम परम शून्य हो। और वही शून्य उपलब्धि के योग्य है।
"अर्थ" नहीं--शून्य उपलब्धि के योग्य है। अर्थ तो सब डाले हुए हैं। और
जब तक तुम अर्थ डालोगे--माया जारी रहेगी। तुम जो डालोगे, वही तुम निकाल लोगे।
पहले तुम डालते हो, फिर तुम निकालते हो। पहले तुम एक व्यक्ति को कहते होः "कितना सुंदर!" फिर इस सौंदर्य पर तुम मोहित होते हो। पहले तुम कहते होः "कितना महान!" फिर तुम इस महानता के दीवाने हो जाते हो। तुम ही डालते हो, तुम ही निकालते हो। तुम अपनी ही व्याख्या में बंध जाते हो।
क्या निर्व्याख्या का जीवन संभव नहीं? क्या सिर्फ तथ्य के साथ रुक जाना संभव नहीं है? --संभव है। जो रुक गए हैं, उन्होंने जीवन का परम-जीवन का गुह्य-शून्य उपलब्ध कर लिया है।
कोई अर्थ नहीं है जीवन में। जीवन है; "अर्थ" नहीं है। जीवन कहीं जा नहीं रहा है। इसका कोई गंतव्य नहीं है। जीवन जैसा है, वैसा ही रहेगा। तुम्हारी आंखें क्या कहती हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम कैसे रंग के चश्मे पहन लेते हो, इससे जीवन का रंग नहीं बदलता। इससे सिर्फ तुम्हारी आंखों का परदा बदलता है।
ये तीनों ही आदमी आंखों पर परदा डाले हुए हैं।
संसार का अर्थ हैः आंखों पर परदा डाले हुए लोगों की भीड़! फिर जो परदा होता है, वही हमें दिखाई पड़ता है। एक आदमी धन की तलाश में लगा है, तो उसे चारों तरफ धन दिखाई पड़ता है। उसे कुछ और दिखाई नहीं पड़ता। वह एक मित्र भी बनाता है, तो मित्र में धन की खदान दिखाई पड़ती है--तो बनाता है। वह रास्ते पर किसी को नमस्कार भी करता है, तो भी अगर उसको रुपयों की झनकार सुनाई पड़ती है, तो नमस्कार करता है। उसके चारों तरफ रुपए का परदा है।
मैंने सुना हैः मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन नदी के किनारे बैठा था। वर्षा के दिन हैं--नदी बाढ़ में है। और दस अंधे आए और वे पार होना चाहते हैं। नसरुद्दीन ने कहा, "पार करवा दूंगा। सस्ते जमाने की कहानी है। एक-एक पैसा एक-एक अंधे का लूंगा।" अंधे राजी हो गए।
एक-एक अंधे को नसरुद्दीन कंधे पर उस पार ले गया। नौ को तो पार करवा दिया, तब तक थक भी गया और दसवां थोड़ा वजनी भी था; पैर फिसल गया और दसवां अंधा हाथ से छूट गया। बाढ़ थी तेज; दसवें को बहा ले गई।

आवाज और शोरगुल सुन कर नौ अंधे चौंके कि कुछ गड़बड़ है। उन्होंने पूछा, "क्या बात है नसरुद्दीन!" उसने कहा, "कुछ भी नहीं; तुम्हारे फायदे में ही है; एक पैसा कम देना पड़ेगा।"
"आदमी मर गया"--यह दिखाई नहीं पड़ता उसे; वह पैसे की तलाश में है। उसने कहा कि "एक पैसा कम देना पड़ेगा!" वह उदास है कि नौ पैसे मिलेंगे! दस पार करवाता तो दस मिलते!
जिनकी आंख पर भी पैसा है, उन्हें सब तरफ पैसा दिखाई पड़ता है। उनके जीवन की सारी व्यवस्था पैसे के इर्द-गिर्द खड़ी होती है।
जिनको प्रतिष्ठा का मोह है, उनके चारों तरफ हर चीज प्रतिष्ठा की सीढ़ी
बन जाती है। वे तुम्हारे ऊपर पैर रख कर ऊपर चढ़ सकते हैं; बस इतना ही तुम्हारा मूल्य है। उनके लिए सारे लोग साधन हैं और साध्य है--उनकी प्रतिष्ठा--उनका सिंहासन।
इमेनुएल कांट ने एक बहुमूल्य वचन लिखा है। उसने लिखा है कि नैतिक व्यक्ति वह है, जो दूसरे व्यक्ति का साधन की तरह उपयोग नहीं करता है। तब तुम्हें ऐसा व्यक्ति खोजना बहुत मुश्किल है। क्योंकि सभी लोग एक-दूसरे का साधन की तरह उपयोग करते हैं।
एक राजनीतिज्ञ तुम्हारे द्वार पर आता है। तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करता है। लेकिन वह तुम्हें राजी कर रहा है--सीढ़ी बनने को कि तुम जरा कंधा झुकाओ, ताकि मैं पैर रखूं और ऊपर जाऊं। ऊपर चढ़ते ही वह तुम्हें भूल जाएगा। वह तुम्हें पहचानेगा भी नहीं। सीढ़ियों को कौन पहचानता है? न केवल इतना ही, बल्कि ऊपर चढ़ते ही लोग सीढ़ियों को मिटाने में लग जाते हैं। क्योंकि जिस सीढ़ी से तुम चढ़े हो, उससे दूसरे भी चढ़ सकते हैं। इसलिए जैसे ही कोई राजनीतिज्ञ ऊपर पहुंचता है, सीढ़ियों को मिटाता है। जिन सीढ़ियों से चढ़ा है, उन्हीं को पहले मिटाता है। क्योंकि वे खतरनाक सीढ़ियां हैं; उनसे ही यहां तक आना संभव हुआ है। दूसरे भी उनसे यहां आ सकते हैं।
जिन-जिन का तुम शोषण करते हो, उनके प्रति तुम्हारी मैत्री धोखा है। तुम वस्तुतः शत्रु हो।
सब तरफ शोषण चलता है। सब संबंधों के नाम पर शोषण चलता है। तुम प्रेम
भी करते हो तो भी शोषण है। तुम प्रेम इसलिए नहीं करते कि दूसरा मूल्यवान है। उपनिषदों ने कहा है कि काई पति पत्नी को इसलिए प्रेम नहीं करता है कि पत्नी मूल्यवान है। पति पत्नी को इसलिए प्रेम करता है कि उसका स्वार्थ है, उसका सुख है। पत्नी से सुख मिलता है, इसलिए प्रेम करता है; जिस दिन सुख नहीं मिलेगा, उसी दिन प्रेम समाप्त हो जाएगा।
तुम्हारा प्रेम, तुम्हारे संबंध, तुम्हारी मित्रता--सब सीढ़ियां हैं।
और दूसरे का साधन की तरह उपयोग करना अनीति अगर है, तो इस जगत में नैतिक व्यक्ति खोजना बहुत मुश्किल है, जो तुम्हारा उपयोग न कर रहा हो।
जो भी हमारी आंख पर चढ़ा हो नशा--धन का, पद का, प्रतिष्ठा का, अहंकार का,
बस, हम उसी से देखते हैं। सारी दुनिया हमें उसी रंग में रंगी हुई दिखाई पड़ती है और सत्य हमें तब तक दिखाई नहीं पड़ सकता, जब तक कोई भी "चश्मा" हमारी आंख पर है।
इसलिए ज्ञानी पुरुषों ने कहा हैः जब तक तुम्हारी वासना है, तब तक तुम सत्य को न देख सकोगे। क्योंकि तुम रंगोगे; तुम्हारी वासना रंग देगी।
संस्कृत में जो शब्द है--वासना के लिए, वह बड़ा बहुमूल्य है। वह है-- राग। और राग का एक अर्थ रंग भी होता है।
जब तक तुम्हारे मन में राग है, तब तक तुम्हारी आंखों में रंग है।
वैराग्य तो उसी का फलित होगा, जिसकी आंखों के सब रंग खो जाएं।
विराग का अर्थ हैः रंगहीन, रंगशून्य दृष्टि। जब तक तुम्हारी आंख में कोई भी वासना है, वही तुम्हारी आंख का रंग है। तुम उसी से देख रहे हो। तुमने कभी ख्याल कियाः अगर तुमने उपवास किया हो, और तुम बाजार से निकलो, उस दिन तुम्हें रेस्टोरेंट, होटल, भोजन की, मिठाई की दुकानें अतिरेक से दिखाई पड़ेंगी। वे सदा से वहां थी। लेकिन रोज तुम भर-पेट निकले थे। तब तुमने कभी उन पर ध्यान नहीं दिया था। उनको चुना नहीं था। आज वे तुम्हें अतिरेक से दिखाई पड़ेंगी। उनकी मात्रा बहुत ज्यादा मालूम पड़ेगी।

बीच की और दुकानें खो जाएंगी। जूते की दुकानें, कपड़ों की दुकानें--वे सब बीच से खो जाएंगी। सारा बाजार ऐसा लगेगा कि मिष्ठान्न का है। क्योंकि तुम उपवासे हो; तुम्हारी आंखों पर भोजन का रंग है।
ब्रह्मचारी निकले रास्ते से, तो उसे पुरुष नहीं दिखाई पड़ते, सिर्फ स्त्रियां दिखाई पड़ती हैं। उसकी आंखों पर एक रंग है। तुम जो भी आंख में लिए हो, वही रंग तुम्हारे चारों तरफ प्रोजेक्ट होता है। इसको हमने माया कहा है।
तथ्य को रंग कर देखना माया है। तथ्य को तथ्य की तरह देख लेना ब्रह्म है। तब तुम बाजार से गुजरते हो, तुम्हारी आंखें खाली हैं। तब तुम चुनते नहीं। तब "जो है", वह तुम्हें दिखाई पड़ता है। तब तुम जगत में कुछ डालते नहीं। तुम सिर्फ साक्षी होते हो।
ये तीनों मजदूर रागी हैं। और अगर राग ही चुनना हो, तो तीसरे मजदूर का चुनना। अगर राग में ही पड़ना हो, तो धार्मिक व्यक्ति का राग पड़ने जैसा है। अगर बीमारी ही चुननी हो, तो धार्मिक आदमी की बीमारी सबसे बेहतर है।
अगर कहीं जाना ही हो, तो मंदिर की तरफ जाना। कम से कम गुनगुनाओगे तो!
कम से कम प्रफुल्लित तो होओगे! वह भी भ्रम है; वास्तविक नहीं है। लेकिन सपना ही देखना हो, तो अच्छा देखना। बुरा क्या देखना? सपना ही देखना हो, तो भिखारी का क्या देखना! सम्राट का देखना। लेकिन सपने भी तुम्हारे हाथ में तो नहीं हैं।
तुम अपना सपना भी तो नहीं बदल सकते। तुम लाख उपाय करो कि सम्राट होने
का सपना देखूं, इससे क्या फर्क पड़ता है। सपने पर तुम्हारा कोई काबू नहीं है। सपने पर काबू तो उसका होता है, जिसका वासना पर काबू होता है। तब वह अपने सपनों का मालिक होता है, वह कोई सपना नहीं देखता है। वह सपना देखेगा ही क्यों? क्योंकि वह जानता है कि सपने में सम्राट होना, उतना ही फिजूल है, जितना सपने में भिखारी होना। मंदिर के सामने बैठकर पत्थर तोड़ना है, तो दुखी होना भी व्यर्थ है, उदास होना भी व्यर्थ है, प्रफुल्लित होना भी व्यर्थ है।
तथ्य न तो उदास करता है, न दुखी करता है, न प्रफुल्लित करता है। तथ्य केवल शांत कर जाता है। और शांति बड़ी अलग दशा है। वह अनुत्तेजना की स्थिति है। तब तुम ठीक संतुलित हो। न तुम यहां झुके हो, इस तरफ--दुख, उदासी। न झुके उस तरफ--प्रफुल्लता, सुख। तब तुम झुके ही नहीं हो; तुम बीच में खड़े हो; तुम संतुलित हो। इसको गीता में स्थितप्रज्ञ कहा है।
तब तुम्हारी चेतना ऐसे थिर हो गई है, जैसे किसी भवन में--जहां हवा का झोंका न आता हो--कोई दीया थिर हो जाए; दीये की ज्योति निष्कंप हो जाए।
वह चौथा आदमी इस कहानी में नहीं है; उसे मैं जोड़ देता हूं। लेकिन अगर चौथा तुम्हारी समझ में न आए, तो तुम तीसरे को चुनना। अगर तीसरा तुम्हें बहुत मुश्किल पड़े, तो दूसरे को चुनना। और पहले को तो चुनने का सवाल नहीं है। वह तुम हो।
तुम्हारा जीवन एक क्रोध है; एक आक्रामक हिंसा है। ऐसा नहीं है कि तुम कभी-कभी क्रुद्ध होते हो; तुम क्रोध में हो। उठते हो, बैठते हो, चलते हो, लेकिन तुम क्रुद्ध हो। तुम सारे जीवन के प्रति क्रोध से भरे हो, प्रतिशोध से भरे हो, जैसे कोई बदला लेना है। जैसे कि तुम पैदा हुए, यह तुम पर बड़ा अन्याय हो गया! तुम शिकायत से भरे हो।
दोस्तोवस्की का एक बहुत प्रसिद्ध उपन्यास हैः "ब्रदर्स कर्माजोव"।
इस पृथ्वी पर कम ही ऐसे उपन्यास हैं, जैसा "ब्रदर्स कर्माजोव" है। इसका कोई मुकाबला नहीं है। मुझसे अगर कोई कहे कि "नंबर एक" किसी उपन्यास को रखूं, तो "कर्माजोव" को रखूंगा। यह बाइबिल जैसी कीमत, गीता जैसी कीमत का उपन्यास है। उसमें एक पात्र ईश्वर से कहता है कि "अगर तू मुझे मिल जाए, तो धन्यवाद देने का कोई सवाल ही नहीं है। शिकायत करने योग्य भी नहीं है। जिंदगी इतनी फिजूल है कि शिकायत भी क्या करनी! शिकायत में भी थोड़ा ख्याल रहता है कि शायद इससे बेहतर हो सकती थी। शिकायत की भी इच्छा नहीं होती। बस, तूने जो टिकट इस जगत में आने के लिए दी थी, वह मैं वापस करना चाहता हूं। यह तू सम्हाल। मुझे बाहर कर-अस्तित्व के।"

तुम क्रुद्ध हो, दुखी हो, आक्रामक हो--पहले मजदूर की तुम्हारी दशा है। पत्थर तोड़ रहे हो। अगर कुछ न बन सके, तो कम से कम दूसरे की तरफ सरकना। पत्थर तोड़ने को कम से कम रोटी-रोजी बनाना। क्रोध को कम से कम अनाक्रमक बनाना। उदास रहोगे, बोझिल रहोगे, लेकिन कम से कम दूसरे पर आक्रमक न करोगे। दुख पाओगे लेकिन दूसरे को दुख न दोगे। यह भी काफी है। लेकिन अगर थोड़ी हिम्मत और हो, तो तीसरे की तरफ जाना।
जब पत्थर तोड़ने ही हैं, तो गुनगुनाने में हर्ज क्या है? जब पत्थर तोड़ने हैं, तो गुनगुना कर ही तोड़ना। पत्थर भी बेहतर टूटेंगे और तुम टूटने से बचोगे। सोचना, मंदिर बना रहा हूं।
जीवन को एक सुंदर सपना बनाना। लेकिन अगर मेरी मानो तो ये तीनों एक जैसे हैं। इनमें अंतर बड़े ऊपर हैं। भीतर कोई बहुत भेद नहीं है।
समाज चाहेगा कि तुम तीसरे पत्थर तोड़ने वाले हो जाओ। ताकि तुम पत्थर
भी तोड़ो, गीत भी गुनगुनाओ, कोई अड़चन भी खड़ी न करो।
मनोवैज्ञानिक कहते हैंः "दूसरे" से आगे जाना असंभव है। बस, तुम ज्यादा से ज्यादा इतना कर सकते हो क्रोध न करो, उदास हो जाओ। फ्रायड के जीवन भर का निष्कर्ष यह है कि आदमी सुखी नहीं हो सकता है। यह उसकी नियति नहीं है। उसका स्वभाव ऐसा है कि ज्यादा से ज्यादा वह, कम से कम दुखी हो सकता है--बस, सुखी तो हो ही नहीं सकता।
मनोवैज्ञानिक दूसरे पर रुक जाते हैं। लेकिन साधारण आदमी पहले से आगे
ही नहीं बढ़ता है।
पहला आदमी साधारण आदमी है। जैसा संसार में सब तरफ पाया जाता है।
दूसरा आदमी थोड़ा मनोवैज्ञानिक चिंतक है। थोड़ा सोचता है--मनस के बाबत।
तीसरा आदमी धार्मिक है। चौथा आदमी आध्यात्मिक है।
अध्यात्म में और धर्म में बड़ा फर्क है। धर्म के मंदिर हैं, अध्यात्म
का कोई मंदिर नहीं है। धर्म के शास्त्र हैं, अध्यात्म का कोई शास्त्र नहीं है।
तीसरे आदमी पर सब धर्म समाप्त हो जाते हैं; सब मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे--तीसरे आदमी पर समाप्त हो जाते हैं। और असली आदमी चौथा है--दि फोर्थ। वह जो चौथा--तुरीय है, वह जो चौथा आदमी है, वह जो बुद्ध-पुरुष है-- खोज तो उसकी करना। वह परम लक्ष्य है। वहां तुम जैसे हो, वैसे ही बचोगे। संसार जैसा है, वैसा ही बचेगा--दो कोरे दर्पण हों।
किसी ने पूछा रिंझाई को कि "जब तुम ज्ञान को उपलब्ध हुए तो तुम्हें कैसा लगा?" तो उसने कहा कि "जैसे एक दर्पण दूसरे दर्पण के समाने है और एक दर्पण दूसरे दर्पण की निर्मलता को प्रतिबिंबित करता है। दूसरा पहले की निर्मलता को प्रतिबिंबित करता है। निर्मलता अनंत गुना होती चली जाती है। क्योंकि एक दर्पण के सामने दूसरा दर्पण, चित्र कोई बनता नहीं है, निर्मलता ही प्रतिफलित होती है।
जिस दिन तुम चौथा आदमी हो जाओगे--तुम दर्पण की तरह कोरे, यह जगत भी दर्पण की तरह कोरा। और ये दोनों दर्पण एक दूसरे को प्रतिफलित करते हैं-- करते चले जाते हैं। अनंतगुना निर्दोष, निर्मलता--अनंत अनंत होती चली जाती है। कहीं कोई रूप नहीं बनता, कोई आकृति नहीं बनती। यह अनंत गुना निर्मलता निराकार बन जाती है।
चौथे की खोज करना; वही खोज है; वही परम लक्ष्य है। लेकिन अगर चौथे को असंभव पाओ, तो पहले से राजी मत होना।
मंदिर के भी ऊपर जाना है। मंदिर कोई गंतव्य नहीं है। लेकिन घर से तुम मंदिर तक पहुंच जाओ, तो भी काफी है। फिर मंदिर को भी पार कर जाना है।
इस कहानी को दुहरा देता हूंः
कहीं एक मंदिर बन रहा था। तीन श्रमिक वहां धूप में बैठ कर पत्थर तोड़ रहे थे। एक राहगीर गुजरा; बारी-बारी से उसने श्रमिकों से पूछाः "क्या कर रहे हैं?"
एक से पूछा! वह बोलाः "पत्थर तोड़ रहा हूं।" उसके कहने में बड़ी पीड़ा थी
और स्वर भारी था।

दूसरे से पूछा। वह बोलाः "आजीविका कमा रहा हूं।" वह दुखी तो नहीं था; लेकिन उसकी उदासी कम भारी नहीं थी।
अजनबी तीसरे श्रमिक के पास गया और उससे भी वही सवाल पूछा। वह व्यक्ति गीत गा रहा था, उसकी आंखों में चमक थी, वह आनंदमग्न था। गीत रोककर उसने कहाः "मंदिर बना रहा हूं।" और फिर वह गीत गुनगुनाने लगा।
ये तीन आदमी हैं। इनमें से भी तीसरा बहुत मुश्किल है--मिल जाना। इनमें
से दूसरा तक--आसान नहीं है मिलना। पहला सुगम है; सब तरफ है। तुम वही हो। तुम्हारा परिवार वही है। तुम्हारा समाज वही है।
पहला अति साधारण है। तुम इससे राजी मत हो जाना। पहले से--कदम दूसरे की तरफ उठाना।
जो क्रोध सब के प्रति मालूम पड़ता है उसे तुम सब के प्रति आक्रमक मत बनाना। हिंसा छोड़ देना। अगर दुखी भी हो, तो अपने कारण दुखी होना। क्रोध का मतलब होता हैः "दूसरा जिम्मेवार है", दुख का मतलब होता हैः "मैं ही जिम्मेवार हूं।" इस फर्क को समझ लो।
क्रोध हमेशा कहता हैः दूसरा जिम्मेवार है। "तुमने ऐसा किया है, इसलिए मैं परेशान हूं।" उदासी सदा कहती है कि "मैं अपने ही कारण उदास हूंः मैं ही जिम्मेवार हूं।" क्रोध पत्थर तोड़ता है। उदासी रोटी-रोजी कमाती है। उदासी कहती है कि जिम्मेवारी मेरी ही है। पत्नी है, बच्चे हैं। यह मैंने घर-संसार बनाया है। अब मुझे ही पूरा करना है।
कम से कम "दूसरे" से हट कर "अपने" पर आना है। यह भी बड़ा कदम है। हिंसक
से अहिंसक हो जाना, यह भी बड़ा कदम है। दूसरे पर हमला न करके अपने पर ही राजी हो जाना, यह भी बड़ी बात है।
जिनको तुम मंदिरों में बैठे देख रहे हो, स्थानकों में बैठे देख रहे हो--जैनों, बौद्धों के विहारों में--उनको तुम पाओगे, वे दूसरी तरह के लोग हैं। उन्होंने समाज छोड़ दिया है। क्योंकि उन्होंने दूसरे को जिम्मा देना छोड़ दिया है। अब वे नंबर दो के आदमी हो गए हैं। उन्होंने सब उदासी अपने ऊपर ले ली है।
इसलिए जैन मुनि को तुम प्रसन्न नहीं पाओगे; उदास पाओगे। यह "नंबर दो"
का आदमी है। उसने घर छोड़ा है। क्योंकि दूसरे से इसने जिम्मेवारी हटा ली। अब यह सारा बोझ अपने सिर पर लेकर बैठ गया है। यह उदास है।
यह भी कोई लक्ष्य नहीं है। क्योंकि जीवन में फूल तो इसके भी नहीं खिलेंगे। यह भी त्रिशंकु की तरह लटक गया है। जमीन भी छूट गई, आकाश भी न मिला! संसार भी छूट गया और मोक्ष भी नहीं मिला। इसका स्थानक, इसका विहार, इसका मंदिर बीच में अटका हुआ है।
तीसरे तरह का आदमी तुम्हें कभी मस्जिद में, कभी हिंदुओं के मंदिर में मिलेगा--गीत गाता, पूजा करता, नाचता। इस फर्क को ख्याल में ले लो।
हिंदुओं ने तीसरे आदमी के आधार पर मंदिर को बनाया है। जैनों ने दूसरे में मिलेगा--गीत गाता, पूजा करता, नाचता। इस फर्क को ख्याल में ले लो। हिंदुओं ने तीसरे आदमी के आधार पर मंदिर को बनाया है। जैनों ने दूसरे आदमी के आधार पर मंदिर को बनाया है। इसलिए जैन साधु उदास दिखेगा। हिंदू साधु प्रसन्न दिखेगा।
जैन साधु को हिंदू साधु की प्रसन्नता भी गलत मालूम पड़ती है। क्योंकि साधु को उदास होना चाहिए! साधु का अर्थ हैः संसार से विराग होना चाहिए। इसमें क्या प्रसन्नता? इसमें हिंदू साधु की प्रसन्नता में लगता है कि थोड़ा बहुत संसार से राग-रंग बाकी है। थोड़ा रस ले रहा है।
वैष्णव भक्त हैंः वे तीसरे आदमी पर चल रहे हैं। गीत गा रहे हैं, प्रसन्न हैं।
अगर बन सके तो तुम तीसरे तरह के आदमी बनना। अगर रहना ही है इस नासमझी में, तो गीत गाते हुए रहना। गुजारना ही है यह रास्ता, तो गुनगुनाते हुए गुजारना। रोते हुए गुजारने का क्या प्रयोजन है? रास्ते से बच नहीं सकते रोकर, तो हंसते हुए निकल जाना ठीक है।
मगर ध्यान रहे, मेरा चुनाव तीनों का नहीं है। मेरे लिए तीनों बराबर हैं। यह मैं तुमसे कह रहा हूं कि चुनना ही हो... । यह ऐसा ही है जैसा कोई कहे

कि अगर बीमारी ही चुननी हो, तो फिर "यह" बीमारी चुन लेना। लेकिन बीमारी बीमारी है। चुनना ही क्यों बीमारी? स्वास्थ्य क्यों न चुनना! अगर स्वास्थ्य और बीमारी में चुनना हो तो ये तीनों ही बीमारियां हैं।
चौथा आदमी--उसके आस-पास कोई धर्म निर्मित नहीं हो सकता। बुद्ध, महावीर, लाओत्सु जैसा व्यक्ति--उसके आस-पास कोई धर्म निर्मित नहीं होता है। सब धर्म इन तीन के आस-पास कहीं बन जाते हैं।
वह चौथा आदमी निराकार जैसा है। तुम उसे समझ भी लोगे, फिर भी पकड़ न पाओगे। वह तुम्हारी मुट्ठी में नहीं आता है। वह परम स्वतंत्र है। लेकिन उस पर ध्यान रखना। ऐसा हो जाना है कि जहां न उदासी हो, न जहां क्रोध हो, न जहां प्रसन्नता हो--जहां ये सभी रोग छूट जाएं। जहां कोई भी तरंग न उठे। न आंसू बहें और न हंसना पड़े। जहां गहन सन्नाटा हो, शून्य हो, शांति हो--वही सम्यकत्व है। वही सम अवस्था है। वहीं तुम पूरे संतुलित हुए। वहीं बैलेंस आया। उस क्षण ही तुम इस संसार के बाहर हो जाते हो।
जैसे ही तुम संतुलित हुए, शांत हुए, तुम्हारी आंखें शून्य हुईं, तुम्हारा कोई राग न रहा, कोई रंग न रहा, तुम्हारी कोई व्याख्या न रही--सत्य प्रकट हो जाता है।
जिस दिन तुम व्याख्या-शून्य हो, उसी दिन सत्य प्रकट हो जाएगा। इसलिए कृष्णमूर्ति निरंतर दुहराते हैंः तुम किसी सत्य के सिद्धांत को लेकर सत्य के पास मत जाना। तुम कोई सिद्धांत लेकर मत जाना; क्योंकि सिद्धांत सत्य को विकृत कर देगा। तुम व्याख्या मत करना। तुम कोरे, नग्न, शून्य--उसके पास जाना।
यह चौथी ही ध्यान धारणा है। यह चौथी ही समाधिस्थ होने की कला है।
यह कहानी तुम्हारे बाबत है। यह चौथी ही समाधिस्थ होने की कला।
यह कहानी तुम्हारे बाबत है। और इस कहानी से पार जाना है--तभी तुम्हारा
जो सार-जीवन का निचोड़ है, जो फूल है, जो सुगंध है, वह उठेगी। तभी तुम्हारा दीया जलेगा।
मुझसे पूछा तो इन तीनों को छोड़ना; चौथे की तलाश करना।
और ध्यान रहे, ये तीनों कितने ही सरल दिखाई पड़ते हों, बहुत कठिन हैं। क्योंकि तीनों झूठ हैं। झूठ से कठिन और कुछ भी नहीं हो सकता है। और वह चौथा कितना ही कठिन दिखाई पड़े, बहुत सरल है, सहज है; क्योंकि स्वभाव सहज ही हो सकता है। जो कबीर गुनगुनाते हैंः "साधो सहज समाधि भली"--वह चौथा सहज आदमी है। ये तीनों असहज हैं।
सहज का अर्थ हैः जैसा तुम्हारा स्वभाव है, जिसमें कुछ भी न जोड़ना पड़े।
जोड़ा कि असहज हुआ। रंग पोता कि असहज हुआ। जैसे तुम तुम्हारी नग्नता में हो--तुम्हारी दिगंबरत्व, तुम्हारी नग्नता--वही सहजता है, वही समाधि है।
इस कहानी को सोचना और इस कहानी के पार चलने की कोशिश करना।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
दसवां प्रवचन

अनुग्रहपूर्ण रागशून्यता और मन का अतिक्रमण

सदगुरु जोशू ने एक बार अपने शिष्यों को यह चेतावनी दीः "जहां बुद्ध पुरुष हों वहां ज्यादा देर मत टिकना; और जहां बुद्ध पुरुष नहीं हों, वहां से तुरंत खिसक जाना।" इसी महान गुरु ने दूसरी बार कहाः "यदि बुद्ध का नाम लेना तो पीछे ठीक से मुंह धो लेना।"
और यही जोशू प्रायः संध्या समय बुद्ध की प्रतिमा के सामने फूल चढ़ाते, सुगंध जलाते और सिर टेकते भी देख जाते थे।
ओशो, अंतर्विरोधों से भरे वचन और आचरण को स्पष्ट करने की कृपा करें।

अमृत भी अज्ञान में जहर बन सकता है। ज्ञानी जहर को भी अमृत बना लेता है। न तो अमृत में अमृत है और न जहर में जहर। ज्ञान या अज्ञान पर सब निर्भर करता है। जो जानते हैं, उनके लिए कारागृह भी मुक्त आकाश है; और जो नहीं जानते, उनके लिए मुक्त आकाश भी कारागृह है।
तुम कहां हो, यह सवाल नहीं है; तुम क्या हो, यही सवाल है। और तुम अगर अज्ञान से भरे हो, तो घर बदलने से कुछ भी न होगा। तुम जहां जाओगे, तुम्हारा कारागृह तुम्हारे साथ ही रहेगा। तुम जेल की दीवालें तोड़ कर भाग न सकोगे, क्योंकि दीवालें बाहर नहीं हैं। तुम इस जेल से निकल जाओ, देर नहीं लगेगी कि तुम दूसरी जेल में प्रवेश कर जाओगे। तुम क्षण भर प्रतीक्षा भी न करोगे। बिना कारागृह के तुम रह ही न पाओगे।
इसलिए असली सवाल स्वतंत्रता उपलब्ध करना नहीं है, असली सवाल स्वतंत्र होने की क्षमता उपलब्ध करना है, जो कि बड़ी दूसरी बात है।
स्वतंत्र होना तो बाहरी घटना है--कि तुम्हारे हाथों में जंजीरें नहीं हैं। लेकिन अगर भीतर तुम परतंत्र होने के आदी हो, तो तुम कितनी देर जंजीरों से बचोगे? तुम नई जंजीरें बना लोगे। और अगर जंजीरें बनानी ही हैं, तो पुरानी क्या बुरी हैं!
धर्म और राजनीति का यही भेद है। राजनीति कहती हैः बंधन बाहर है; तोड़ डालो, तुम स्वतंत्र हो जाओगे। धर्म कहता हैः बंधन भीतर है। कितना ही तुम बाहर से तोड़ो, तुम स्वतंत्र न होओगे।
परतंत्रता कुछ ऐसी है कि तुम उसे निर्मित करते हो। तुम बिना परतंत्रता के रह ही न सकोगे। परतंत्रता में तुम्हारा रस है। इसलिए अगर एक तरफ से तुम किसी तरह दीवाल तोड़ दोगे, तो तुम दूसरी तरफ से दीवाल बना लोगे। यह अगर समझ में आ जाए कि अमृत भी जहर बन सकता है, जहर भी अमृत--तुम पर निर्भर है--तो जोशू के ये वचन समझ में आ जाएंगे, और जोशू का अंतर्विरोधों से भरा आचरण भी।
बुद्ध ने स्वयं भी निरंतर, बार-बार कहा हैः "तुम मेरे पास आओ जरूर, पर मुझसे बंध मत जाओ।" और बुद्ध से बंधने की आकांक्षा इतनी प्रबल होती है कि उसे जीतना बहुत कठिन है।
तुम साधारण व्यक्तियों से बंध जाते हो--जिनमें बंधने जैसा भी कुछ न था। तुम हथकड़ियां लोहे की बना लेते हो, जिसमें सिवाय बोझ ढोने के और कोई अर्थ नहीं है। बुद्ध जैसे व्यक्ति को पाकर तो तुम बंधना ही चाहोगे; "हथकड़ियां" सोने की हैं--हीरे-जवाहरात से जड़ी हैं।
तुम किसी को भी अपना बंधन बना लेते हो; पत्नी है, पति है, बेटे हैं। बुद्ध को पाकर तुम कैसे बचोगे? तुम बुद्ध को अपना बड़े से बड़ा कारागृह बना लोगे।
पत्नियों से पति मुक्त हो जाते हैं--बड़ी आसानी से; पतियों से पत्नियों मुक्त हो जाती हैं बड़ी आसानी से; लेकिन बुद्धों से मुक्त होने में हजारों साल लग जाते हैं। और करोड़ों लोग तो कभी मुक्त नहीं हो पाते, बंधे ही रहते हैं।

जिनको तुम धर्म कहते हो, वे किन लोगों की भीड़ हैं? कौन हैं हिंदू? वही
जो अब तक राम और कृष्ण से मुक्त नहीं हो पाए हैं। कौन हैं जैन? --जो महावीर से छुटकारा अभी तक नहीं पा सके। कौन हैं बौद्ध? --बुद्ध का कारागृह है। सारे धर्म कारागृह बन गए हैं। इसलिए नहीं कि वे कारागृह थे, बल्कि इसलिए कि तुम आदमी ऐसे हो कि तुम जहां भी जाओगे, वहां बंधन निर्मित करोगे। तुम्हारे जीने का ढंग ऐसा है कि तुम सिर्फ हथकड़ियां ही ढालते हो-- अनजाने-निश्चित ही। क्योंकि जान कर तो तुम स्वतंत्रता चाहते हो, जान कर तो तुम मुक्ति चाहते हो। लेकिन अनजाने तुम ऐसा कुछ चाहते हो, जिससे मुक्ति घट नहीं पाती, स्वतंत्रता हो नहीं पाती।
बुद्ध ने कहा हैः "मेरे पास आना, लेकिन मुझसे बंध मत जाना। तुम मुझे सम्मान देना, सिर्फ इसलिए कि मैं तुम्हारा भविष्य हूं; तुम भी मेरे जैसे हो सकते हो, इसकी सूचना हूं। तुम मुझे सम्मान दो, तो यह तुम्हारा बुद्धत्व को ही दिया गया सम्मान है। लेकिन तुम मेरा अंधानुकरण मत करना। क्योंकि तुम अंधे होकर मेरे पीछे चले तो तुम बुद्ध कैसे हो पाओगे?"
बुद्धत्व तो खुली आंखों उपलब्ध होता है--बंद आंखों नहीं। और बुद्धत्व
तो तभी उपलब्ध होता है, जब तुम किसी के पीछे नहीं चलते, खुद के भीतर जाते हो।
किसी के पीछे आना तो सदा बाहर जाना है। क्योंकि किसी के पीछे चलो, चाहे वह कोई भी हो, वह बाहर ही होगा। बुद्ध के पीछे चलो, तो भी यात्रा बाहर होगी। महावीर के पीछे चलो, तो भी यात्रा बाहर होगी। भीतर तुम कब जाओगे? भीतर तो तुम जाओगे तब, जब तुम बाहर चलोगे ही नहीं। आंख बंद करोगे और भीतर की तरफ चलोगे।
भीतर तुम किसका अनुकरण करोगे? वहां तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। इसलिए आत्म अनुभव तो उसे होगा, जो सभी अनुकरण से मुक्त हो जाएगा।
तो, बुद्ध कहते हैंः "तुम सम्मान मुझे देना, लेकिन अंधी-श्रद्धा नहीं। सम्मान तुम सिर्फ इसलिए देना कि मैं तुम्हारा भविष्य का इशारा हूं।" जैसे एक बीज पड़ा है, और पास में एक वृक्ष उगा है। जो बीज में छिपा है, वह वृक्ष में प्रकट हो गया है। यह बीज इस वृक्ष को सम्मान दे सकता है, क्योंकि यह वृक्ष खबर देता है कि मैं भी वृक्ष हो सकता हूं। इस वृक्ष का धन्यवाद भी हो सकता है, कि तूने मुझे जगाया; तूने मुझे ख्याल दिया कि क्या हो सकता है; तूने संभावनाओं के प्रति मुझे सचेत किया। मैं तो बंद अपने में पड़ा था--एक कंकड़ की तरह। मुझे तो पता ही न था कि मैं बीज हूं। कंकड़ों की जमात में था; कंकड़ ही मैंने अपने को समझा था। तुझे देख कर मुझे खबर आई, चेत हुआ, मेरी नींद टूटी; मुझे लगा कि यह मैं भी हो सकता हूं। तूने ही मुझे जगाया किः "कभी मैं भी बीज था और वृक्ष हो गया हूं; आज तू बीज है, कभी तू वृक्ष हो सकता है।" बुद्धों के प्रति जो हमारा समादर है, वह समादर उनके इस इशारे के लिए है, क्योंकि उन्होंने हमें हमारी संभावनाओं के प्रति सचेत किया; जो छिपा था, उसे उघाड़ा। जिसका हमें भी पता न था, उसकी खबर दी।
जो हम हैं, वह हमारा पूरा होना नहीं है। हम और बहुत कुछ हो सकते हैं। बुद्धों को देख कर हमें उस "बहुत कुछ" होने का सपना पैदा होता है। वह आदर्श की एक झलक मिलती है। जैसे अंधेरे में बिजली कौंध गई हो, और हमने रास्ता देख लिया हो। ऐसे बुद्ध की सन्निधि में, सत्संग में, उनकी झलक में हमें रास्ता दिखाई पड़ा। अनुगृहीत हम हैं। तो बुद्ध ने कहाः "अनुग्रह ठीक है, अंधानुकरण ठीक नहीं है।"
यह बड़ा मुश्किल है। या तो तुम अंधानुकरण कर सकते हो या अंध विरोध कर सकते हो। यह बिल्कुल आसान है। और बुद्धों के साथ लोग दो ही व्यवहार करते हैं। एक तो उनके अनुयायी होते हैं और एक उनके शत्रु। एक उनके पीछे चलते हैं--आंख बंद करके, और एक उनसे भागते हैं--आंख बंद करके। दोनों अंधे हैं; दोनों समान हैं; इनमें बहुत भेद नहीं है।
तीसरा आदमी खोजना मुश्किल है। और वही तीसरा आदमी बुद्ध को समझ पाता है। वह आदमी जोशू जैसा होगा। वह सुबह फूल भी चढ़ाएगा मंदिर में बुद्ध के; सिर भी झुकाएगा। और दोपहर अपने शिष्यों से कहेगा कि "ध्यान रखना, बुद्ध से

सावधान रहना। और अगर मुंह में बुद्ध का नाम आ जाए, तो कुल्ला करके मुंह साफ कर लेना।"
जोशू ने कहा है कि "अगर ध्यान करते बुद्ध बीच में दिखाई पड़ जाएं, तो उठा कर तलवार, दो टुकड़े कर देना; खड़े मत होने देना--बुद्ध को ध्यान में खड़े मत होने देना।"
इस जोशू जैसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो बुद्ध के चरणों में सिर भी झुकाता है और जो यह भी कहता है कि बुद्ध को ध्यान में खड़े मत होने देना, तलवार उठा कर दो टुकड़े कर देना!
यह समझ गया है सार। यह न तो अंधानुकरण करता है और न अंध विरोधी है। दोनों के मध्य चलता है। इसलिए सुबह फूल चढ़ाता है, सांझ इनकार भी करता है। शिष्यों को समझाता है कि नाम, शब्द--सभी अपवित्र हैं।
वेश्या का नाम ही अपवित्र नहीं है, बुद्ध का नाम भी अपवित्र है।
क्योंकि जब शब्द मुंह में आता है तो मन आ गया। जहां मन आया, वहां अपवित्रता आ गई। जब कोई शब्द भीतर नहीं उठता, तो मन शून्य होगा। जहां शून्य है, वहीं पुनीत पवित्रता है। शून्यता एकमात्र पवित्रता है।

तो तुमने अगर मन में दोहरायाः "बुद्धं शरणं गच्छामि--मैं बुद्ध की शरण जाता हूं"--तो शब्द आ गया, मन निर्मित हो गया।
कौन दोहरा रहा है यह? आत्मा कुछ भी नहीं दोहराती। चेतना कोई पुनरुक्ति नहीं करती। यह तो मन ही दोहरा रहा है।
कौन कह रहा हैः "बुद्धं शरणं गच्छामि? --यह कौन बुद्ध की शरण जा रहा है? यह तुम हो या तुम्हारा मन हैं? अगर तुम जरा ही खोजबीन करोगे तो पा लोगे कि यह तुम्हारा मन है। और मन अपवित्र है।
शब्द बदलने से कुछ भी नहीं होता है। तुम "वेश्या" कहो या "बुद्ध" कहो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम गाली दो कि मंत्र पढ़ो, कोई फर्क नहीं पड़ता है। मन दोनों तरफ से आ जाता है। मन शब्द के साथ ही प्रवेश कर जाता है। और जहां मन आया--जोशू कहता है--मुंह साफ कर लेना। भूल मत जाना। और प्यारे शब्दों के साथ बड़ा खतरा है, और शब्दों का बड़ा खेल है।
मैंने सुना हैः एक सम्राट गरीबों की पीड़ा से बहुत परेशान था। थोड़े से लोग समृद्ध थे, सारा राज्य गरीब था। दूध नहीं मिलता, मक्खन नहीं मिलता; गरीब को छाछ से ही गुजारा करना पड़ता। उसने अपने बुद्धिमानों को बुलाया और उनसे कहा, "कोई रास्ता निकालो, ताकि गरीब भी दूध पी सके।" बहुत सोचा बुद्धिमानों ने, लेकिन रास्ता क्या निकले? बुद्धिमान कितने जमाने से सोच रहे हैं, रास्ता निकला नहीं। और बुद्धिमानों ने बहुत उपाय किए, सब व्यर्थ गए।
लेकिन पुराने जमाने में हर राजा के दरबार में एक मूर्ख भी राजा रखते थे--एक महामूर्ख भी रखते थे। यह बड़े मजे की बात है कि कई बार बुद्धिमान जो नहीं खोज पाता, वह मूर्ख खोज लेता है। क्योंकि बुद्धिमान सोचता ही रहता है; मूर्ख छलांग लगा जाता है।
कहावत है कि जहां बुद्धिमान चलने में डरते हैं, वहां मूर्ख आंख बंद करके प्रवेश कर जाता है। कभी कभी वह पहुंच भी जाता है। कभी कभी वह ऐसी चोट करता है कि बुद्धिमान तिलमिला जाएं।
बुद्धिमान तो कुछ उत्तर न ला सके। उस मूर्ख ने एक दिन सुबह चिल्लाते हुए कहा, "मिल गया सूत्र; आ गई बात पकड़ में; निकाल लाया राज।"
दरबार इकट्ठा हो गया। उन्होंने पूछा, "क्या हल तूने निकाला है?" उसने कहा, "बड़ी सरल तरकीब है। कल से हर आदमी दूध पीएगा।" राजा भी चकित हुआ; उसने कहा, "एक छोटी सी बात है। एक फरमान निकाला जाए कि अब से छाछ दूध कहा जाएगा, दूध छाछ कही जाएगी। इतनी सी बात है। हर गरीब दूध पाएगा, हर अमीर छाछ पीएगा। जरा से एक फरमान की जरूरत है; नाम बदल देने की जरूरत है। इसमें इतना परेशान होने की बात ही कहां है!"
और जिंदगी में अक्सर हम इसी मूर्ख की सलाह मान कर चलते हैं--नाम बदल लेते हैं, शब्द बदल लेते हैं। शब्द बदल लिए और सोचते हैं कि सब हल हो गया!

कल संसार के शब्द चलते थे, आज धर्म के शब्द चलने लगे। सोचते हैंः "सब
हल हो गया!" लेकिन शब्द बदलने से न तो दूध छाछ होता है, और न छाछ दूध होती है। शब्द बदलने से मन आत्मा नहीं हो जाता। शब्द बदलने से मन, मन ही रहता है। जोशू यही कह रहा है।
जोशू सचेत कर रहा है। पर बड़ी बारीक है बात। कह रहा है कि बुद्ध के पास
तो जाना, लेकिन सावधान रहना कि कहीं बुद्ध को कारागृह न बना लो। इसके पहले कि बुद्ध कारागृह की तरह तुम्हें घेरने लगें--बुद्ध तुम्हें नहीं घेरते हैं, तुम्हीं घिरते हो। इसके पहले कि तुम बुद्ध की जंजीरें अपने हाथ में डाल लो--भाग खड़े होना।
और जब बुद्ध से इतना खतरा है, तो बुद्धुओं से कितना होगा?
जब जोशू कह रहा हैः बुद्ध के पास से भाग खड़े होना तत्क्षण, तो जो बुद्ध नहीं है, उनके तो पास ही मत जाना। क्योंकि बुद्ध तो तुम्हें सचेत भी करेंगे; जब उनका कारागृह बनाने लगोगे, तो तुम्हें चेताएंगे, वे तुम्हें समझायेंगे।
बड़ी मीठी कथा है; मीठी भी, कठोर भी। और अनेक अनेक पहलू हैं--इस कथा के।
एक पहलू आज समझने जैसा है।
बुद्ध ने बहुत वर्षों तक स्त्रियों को संघ में प्रवेश नहीं दिया; सख्त रहे। उन्होंने कहाः "स्त्रियों को दीक्षा मैं न दूंगा।" संघ मूलतः पुरुषों का रहा। लेकिन यह बात बड़ी बेचैनी की हो गई। स्त्रियां आधी हैं, आधा जगत उनका है। और स्त्रियों ने बार-बार निवेदन किया। लेकिन बुद्ध सख्त रहे। फिर कृपा गौतमी ने निवेदन किया।
एक दिन कृषा गौतमी निवेदन लेकर आई--रोती थी, चीखती थी, चिल्लाती थी। उसने कहा, "यह कैसी बात है कि मोक्ष का द्वार सिर्फ पुरुषों के लिए खुला है! हम स्त्रियों का क्या कसूर है?"
आनंद को बहुत दया आ गई और आनंद ने बुद्ध से कहा, "अब बहुत हो गया; स्त्रियों को भी आज्ञा देनी ही पड़ेगी।" और बुद्ध झुके और उन्होंने स्त्रियों को आज्ञा दी कि वे संघ में सम्मिलित हो जाएं, उनकी भी दीक्षा होगी। लेकिन उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें सावधान किए देता हूं; मेरा धर्म जो पांच हजार साल तक चलता, अब पांच सौ साल तक ही चलेगा। तुम नहीं मानते, तो स्त्रियों को मैं आज्ञा देता हूं। लेकिन जो प्रक्रिया पांच हजार साल तक शुद्ध रहती, अब वह केवल पांच सौ साल तक शुद्ध रहेगी।
इसके बहुत अर्थ निकाले गए हैं। बुद्ध ने इससे ज्यादा कुछ इस संबंध में कहा नहीं। लेकिन आज इस कहानी के संदर्भ में एक अर्थ समझ लेने जैसा है। स्त्रियों को रोकने का केवल एक ही कारण था--गहरे में, कि स्त्रियों को मोह में गिरने से बचाना बहुत मुश्किल है। वे बुद्ध का ही कारागृह बना लेंगी-- पुरुषों से ज्यादा जल्दी।
कारागृह बनाने में स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा कुशल हैं। क्योंकि स्त्री--जीवन का ढंग तर्क का कम और प्रेम का ज्यादा है। और प्रेम की ऊंचाई तक पहुंचना तो बहुत मुश्किल है, राग की नीचाई तक गिर जाना बहुत आसान है। पुरुष तो सोचता है बुद्धि से, स्त्री जीती है हृदय से। और जितने कारागृह निर्मित होते हैं, उनमें से निन्यानबे प्रतिशत हृदय से निर्मित होते हैं, एक प्रतिशत बुद्धि से निर्मित होते हैं। और बुद्धि को तो समझाया भी जा सकता है कि सचेत हो जाओ, हृदय सुनता ही नहीं।
स्त्री की जो जीवन प्रक्रिया है, पहुंचने का जो ढंग है, किसी बात को समझने की जो उसकी व्यवस्था है, वह रागात्मक है। और बुद्ध का पूरा का पूरा धर्म--विराग है। बुद्ध के धर्म में राग के लिए कोई जगह नहीं है, क्योंकि राग कारागृह बन जाएगा।
राग के भी धर्म हैं, जिन्होंने राग को इतना शुद्ध किया है कि वह प्रेम
बन जाए--जैसे कृष्ण का, मीरा का, चैतन्य का।
अगर ठीक से समझा जाए तो चैतन्य, मीरा और कृष्ण के धर्म में जब भी कोई पुरुष-चित्त प्रवेश करेगा, तभी वह परंपरा अशुद्ध हो जाएगी। क्योंकि जहां राग को ही शुद्ध करना है और प्रेम की ऊंचाई तक ले जाना है, वहां पुरुष बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा।

प्रेम की ऊंचाई पाना पुरुष को बड़ा कठिन है। कारागृह तोड़ना बहुत आसान है--पुरुष के लिए। लेकिन कारागृह को इस ऊंचाई तक ले जाना कि वह मंदिर हो जाए, बहुत मुश्किल है।
बुद्ध का धर्म मौलिक अर्थों में पुरुष का धर्म है। और इसलिए वे रोकते रहे कि स्त्री को मत आने दो। क्योंकि उसे समझाना मुश्किल होगा। और उससे यह कहना तो बिल्कुल ही कठिन हो जाएगा कि बुद्ध के राग में मत पड़ना। वह तो बुद्ध के पास राग में पड़ कर ही आएगी।
इधर मैं निरंतर अनुभव करता हूंः जब भी कोई पुरुष मेरे पास आता है दीक्षित होने--संन्यास में, ध्यान में, किसी अंतर्यात्रा पर निकलने, तो वह मेरी बातों से प्रभावित होकर आता है। वह कहता हैः "आपकी बातें ठीक लगती हैं।" जब भी कोई स्त्री आती है, वह कहती हैः "आप ठीक लगते हैं।" यह "आप ठीक लगना" खतरनाक है।
स्त्री को मेरी बातें ठीक लगती हैं, क्योंकि मैं ठीक लगता हूं। पुरुष
को मैं ठीक लगता हूं, क्योंकि मेरी बातें ठीक लगती हैं। दोनों बातों में बड़ा बुनियादी भेद है।
पुरुष को मैं ठीक लगूंगा, अगर मेरी बात ठीक लगती है; लेकिन मैं गौण हूं। जिस दिन मेरी बात ठीक नहीं लगेगी, उसी दिन मैं गैर-ठीक जाऊंगा। आधार मेरी बात पर है। संबंध बुद्धि का है।
स्त्री को पहले मैं ठीक लगता हूं। इस लिए मेरी बातें ठीक लगती हैं। इसलिए आप किसी स्त्री को, मैं क्या कहता हूं--उस संबंध में कितना ही खंडन करें--उसे बदल नहीं सकते, क्योंकि तर्क से उसका कोई संबंध ही नहीं है। कितना ही तर्क दें कि मेरी बातें गलत हैं, किसी स्त्री को आप नहीं बदल सकते। क्योंकि इसको उसने आधार ही नहीं बनाया है। यह उसके संबंध का सूत्र ही नहीं है। जिस दिन मैं गलत हो जाऊंगा उस दिन मेरी बातें भी गलत हो जाएंगी।
स्त्री का संबंध हार्दिक है, बौद्धिक नहीं है। संबंध राग का है, विचार
का नहीं है। इसलिए बुद्ध ने कहा कि स्त्रियों को जितनी देर रोका जा सके, ठीक है।
जोशू जो कह रहा है, यह स्त्रियों को समझना बड़ा कठिन होगा। यह तो ख्याल में भी लाना मुश्किल होगा, कि बुद्ध का नाम--और मुंह को धो लो! कि बुद्ध के पास जाओ और भाग खड़े होओ! रुकना मत ज्यादा देर!
दुनिया में दो ही तरह के धर्म हैं। एक धर्म है जो मूल रूप से स्त्रैण है; मीरा और चैतन्य, सूफी, वैष्णव--स्त्रैण हैं। इनका मूलस्रोत स्त्री है। पुरुष गौण है। और पुरुष अगर आता भी है, तो उसको स्त्रैण होकर ही आना पड़ेगा। एक संप्रदाय भारत में रहा--अनूठा। ऐसा संप्रदाय दुनिया में कहीं पैदा नहीं हुआ। उस संप्रदाय का नाम हैः सखी-संप्रदाय। बंगाल में अभी भी उसको मानने वालों का एक वर्ग है। लेकिन वे इतने संकोच से भर गए हैं कि वे जाहिर नहीं कर सकते कि वे सखी-संप्रदाय को मानते हैं। क्योंकि लोग हंसते हैं। सखी-संप्रदाय में पुरुष भी अपने को स्त्री मानता है, कृष्ण की सखी मानता है। और रात सोता है तो कृष्ण की मूर्ति अपनी छाती से लगा कर सोता है। पुरुषों को समझना बहुत कठिन हो जाएगा। यह बात ही बेहूदी लगेगी। लेकिन सखी- संप्रदाय से भी लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। उन्होंने वहां से भी परम शिखर छुआ है।
इसे थोड़ा सोचो कि पुरुष अपने को इतना स्त्रैण मान ले तो उसका अहंकार
तो खो ही जाएगा। और यह भाव इतना गहरा जा सकता है कि--ऐसा कहा जाता है कि रामकृष्ण ने जब सखी-संप्रदाय की साधना की तो उन्हें मासिक-धर्म शुरू हो गया। यह ऐतिहासिक तथ्य है। उनके स्तन बड़े हो गए। और उनकी चाल स्त्रैण हो गई। छह महीने तक वे सखी-संप्रदाय की साधना करते थे, तो वे चलते थे, तो जैसे स्त्री चलती है। बैठते तो स्त्री के ढंग से। उनकी आवाज बदल गई। और यह तो बहुत गहरा बायोलॉजिक, जैविक चमत्कार घटित हुआ कि उनको मासिक-धर्म शुरू हो गया। जब उन्होंने सखी-संप्रदाय की साधना पूरी कर ली तो कोई साल भर तक स्त्रैण लक्षण उनके ऊपर जारी रहे।

भाव इतना गहरा हो सकता है कि क्रांति ले आए। पर इतना गहरा होना चाहिए
कि तुम बचो ही न, भाव ही रह जाए। तब कारागृह नहीं बनेगा।
इसे समझ लें, क्योंकि बारीक है। दो चीजें चाहिए कारागृह के बनने के लिएः तुम चाहिए, अहंकार चाहिए। अगर जंजीरें अकेली हों और तुम न हो, तो भी कारागृह नहीं हो सकता, क्योंकि बंधेगा कौन? या तुम और जंजीरें न हों तो भी कारागृह नहीं होगा, क्योंकि बांधेगा कौन?
बुद्ध और महावीर के धर्म कहते हैंः तुम तो रहो, कारागृह न रहे। इसलिए जहां भी तुम्हें कारागृह का डर पैदा हो कि यहां कारागृह बन सकता है, रोग जन्मता है, राग जन्मता है--वहां से हट जाना। बुद्ध पुरुषों से भी सावधान रहना। क्योंकि उनका प्रबल आकर्षण है, महा-आकर्षण है। वे मैग्नेटिक फोर्सेज हैं। उनसे बचना, अन्यथा तुम बह जाओगे--उनके प्रवाह में; तुम एक तिनके हो जाओगे--उनकी बाढ़ में।
कृष्ण, मीरा और चैतन्य की परंपरा कहती है कि तुम भाव में इतने डूब जाना कि तुम बचो ही न। फिर जंजीरें किसको बांधेंगी। बांधने दो कृष्ण को, कौन बंधेगा? वे भी पहुंच जाते हैं।
दो ही मार्ग हैं। तो बुद्ध के मार्ग पर चलने वाले जोशू की कहानी अब तुम्हें समझ में आ सकेगी और उसके आचरण का अंतर्विरोध भी स्पष्ट हो सकेगा। सदगुरु जोशू ने एक बार अपने शिष्यों को यह चेतावनी दीः "जहां बुद्ध पुरुष हों, वहां ज्यादा देर मत टिकना।" जाना जरूर, रुकना भी, पर ज्यादा देर मत रुकना।
ज्यादा देर रुकने का क्या मतलब है? और क्या सीमा है--ज्यादा देर की? कितनी देर को ज्यादा देर कहोगे? हर आदमी के लिए अलग होगी। पर एक मापदंड सब के लिए लागू होगा। जहां राग पैदा होने लगे, समझना कि ज्यादा देर हो गई; भागो। जहां प्रेम जन्मने लगे, जहां बुद्ध प्रीतिकर लगने लगें-श्रेयस्कर नहीं, प्रीतिकर लगने लगें; जहां बुद्ध में श्रेय नहीं, प्रेम दिखाई पड़ने लगे, जहां बुद्ध से तुम्हारा प्रेम जन्मने लगे, जहां नाता ध्यान का न रहे, राग का हो जाए; बस, ज्यादा देर हो गई। हर आदमी के लिए अलग होगी, इसलिए समय नहीं कहा है, कि कितनी देर रुकना। ज्यादा देर मत रुकना।
कुछ लोग ऐसे हैं कि साल भर रहेंगे और भाव पैदा न होगा। कुछ लोग ऐसे हैं, बारह साल भी रहेंगे, भाव पैदा न होगा। कुछ लोग ऐसे हैं कि बारह क्षण में भी भाव पैदा हो जाएगा। व्यक्तियों पर निर्भर है कि कितनी सरलता है, कितनी हार्दिकता है। जैसे ही लगे कि राग पैदा हो रहा है, भाग खड़े होना। यही बुद्ध की शिक्षा है कि राग पैदा न हो। क्योंकि राग ही बंधन है।
जोशू ने चेतावनी दीः "जहां बुद्ध पुरुष हों, वहां ज्यादा देर मत टिकना। और जहां बुद्ध पुरुष न हों, वहां से तुरंत ही हट जाना।"
तुम्हारे भीतर राग को फैलाने की सुविधा है। राग तुम्हारे भीतर है। न
तो बुद्ध से कुछ लेना-देना है, न तो गैर-बुद्ध से कुछ लेना-देना है। तुम्हारे भीतर राग की क्षमता है। वह राग की भूख तुम्हारे भीतर है। ज्यादा देर तुम भूखे नहीं रह सकते। तुम कितना ही अच्छा भोजन करते रहे हो, लेकिन अगर अकाल पड़ जाए, या तुम एक रेगिस्तान में भटक जाओ और भोजन न मिले, तो तुम घास-पात खाने को भी राजी हो जाओगे। तुम सदा ही स्वच्छ जल पीते रहे हो और एक रेगिस्तान में गिर पड़ो और जल न मिले, तो तुम गंदे डबरे से भी पानी पीने के लिए राजी हो जाओगे। लोग खुद अपनी पेशाब भी पी जाते हैं रेगिस्तान में--कोई और उपाय न हो तो।
तो समय रहते हट जाना बुद्ध पुरुष के पास ले, लेकिन गैर-बुद्ध पुरुष के पास जाना ही मत। क्योंकि तुम्हारे भीतर राग की एक क्षमता है, अगर बुद्ध न मिलें, अगर ठीक भोजन न मिले, तो तुम भोजन से भी अपना संबंध जोड़ लोगे। भूख तुम्हारे भीतर है! स्वच्छ जल न मिले तो, तुम गंदा पानी भी पी सकते हो। गैर-बुद्ध पुरुष के पास तो रुकना ही मत। जैसे ही पता चले, तुरंत ही हट जाना। डर तुम्हारे भीतर है; डर बाहर नहीं है।
इसे थोड़ा समझ लें।
तुम सोचते हो कि सुंदर स्त्री है, इसलिए वासना उठती है, तो तुम गलती में हो। पुराने शास्त्रों ने, पुराने ब्रह्मचर्य के साधकों को कहा है कि

बूढ़ी, अपंग, अंधी, कोढ़ी स्त्री के साथ भी ज्यादा देर मत रहना। और अच्छी स्त्रियां अगर उपलब्ध न हों, तो यह कोढ़ी, अंधी, बूढ़ी स्त्री भी धीरे-धीरे सुंदर दिखाई पड़ने लगेगी। क्योंकि सौंदर्य बाहर नहीं है, तुम्हारे भीतर ही छिपा है। वह तुम्हारी वासना है। जब स्वच्छ जल न मिलेगा तो गंदा जल भी स्वच्छ मालूम पड़ने लगेगा।
सुंदर स्त्री सुंदर दिखाई पड़ती है, ऐसा नहीं है। बस, तुम्हारे भीतर की वासना है, उसके कारण सुंदर दिखाई पड़ती है। जिस दिन वासना न होगी, उस दिन सुंदरतम स्त्री भी, क्लियोपेट्रा भी साधारण हो जाएगी। उस दिन सुंदरतम स्त्री भी हड्डी, मांस, मज्जा का ढेर होगी। और अभी? अभी मृत स्त्री भी वासना को जगा सकती है।
क्लियोपेट्रा के संबंध में कथा है कि जब वह मर गई-वह मिश्र की सुंदरतम स्त्री थी। और लोग कहते हैं, इतिहास की सबसे सुंदरतम स्त्री थी। जब वह मर गई तो उसकी लाश तीन दिन के लिए खो गई। उसकी ताबूत से लाश चुरा ली गई। और तीन दिन बाद गांव के बाहर उसकी लाश मिली, तो पाया गया कि लोगों ने उसके मुर्दा शरीर से संभोग किया है, इसलिए लाश चुरा ली गई। दरबारी तड़पते रहे होंगे। क्योंकि दरबारी ही केवल उसकी लाश चुरा सकते थे, वह महल से चुराई गई थी। साधारण आदमी की तो वहां पहुंच भी न थी। लेकिन वे तड़पे रहे होंगे जिंदगी भर। और उनकी वासना इतनी तड़प रही होगी, इतने रेगिस्तान की प्यास हो गई कि वे यह भूल गए कि स्त्री मर चुकी है। मरी स्त्री से संभोग किया गया! हड्डी-मांस-मज्जा है, अगर वासना न हो। अगर वासना हो तो मरा हुआ शरीर, सड़ती काया भी स्वर्ण-काया हो सकती है।
सारा खेल तुम्हारे भीतर है।
अगर तुम ज्यादा देर गैर-बुद्ध पुरुष के पास रह गए तो वहां भी तुम राग बना लोगे।
लोग मुझसे पूछते हैं कि यह कैसे घटता है कि अज्ञानी लोग भी गुरु बन जाते हैं! और अनेक लोग उनका भी अनुकरण करते हैं? यह इसलिए घटता हैः अगर तुम अज्ञानी गुरु के पास भी ज्यादा देर रह गए, तो तुम्हारा राग जुड़ जाएगा। फिर तुम्हें वह अज्ञानी दिखाई न पड़ेगा। कुरूप स्त्री हो जाएगी, अज्ञानी ज्ञानी मालूम पड़ने लगेगा। राग का ही खेल है।
जोशू कहता हैः "वहां से तुरंत हट जाना, जहां बुद्ध पुरुष न हों।"
तुम जानोगे कैसे कि बुद्ध पुरुष कहां है और कहां नहीं है? तुम्हारे पास मापदंड क्या है? तुम्हारे पास कोई थर्मामीटर है? कोई तापमान नापने की व्यवस्था है? तुम कैसे जानोगे कि यहां बुद्ध पुरुष है, और यहां बुद्ध पुरुष नहीं है? एक बहुत गहरा तापमान है, अगर थोड़ा उसका उपयोग सीखो, तो हमेशा तुम बेचूक जान लोगे।
जिस व्यक्ति के पास जाकर, तुम अचानक, अकारण शांति अनुभव करते हो-- अचानक और अकारण--जानना कि वहां बुद्धत्व या तो निकट है या घट गया है। अकारण इसलिए कि उसका कारण तुम्हारे भीतर अगर हो--शांत होने का, तब तो कोई बात न हुई। कारण तुम्हारे बाहर है।
बुद्ध पुरुष की मौजूदगी में तुम अचानक अपने आपको शांत होता हुआ पाओगे। तुम अचानक हलके हो जाओगे, निर्भार हो जाओगे। तुम्हारी चिंताएं, तुम्हारी समस्याएं जैसे व्यर्थ हो गईं, जैसे उनमें कोई मूल्य न रहा, निर्जीव हो गईं। तुम अचानक पाओगेः कोई समस्या नहीं है। जीवन कोई प्रश्न नहीं है। तुम हलके हो, तुम उड़ सकते हो।
बुद्ध पुरुष से दूर हटते ही तुम्हारी समस्याएं वापस लौट आएंगी। तुम फिर भारी हो जाओगे। फिर जिंदगी एक उलझन मालूम पड़ेगी।
जैसे ही तुम बुद्ध पुरुष के पास जाओगे तो जैसे कोई व्यक्ति झरने के करीब जाए और हवाएं ठंडी हो जाएं; जैसे कोई व्यक्ति बगीचे के करीब आए और फूलों की सुगंध आने लगे, ऐसी एक भीतरी सुगंध मालूम पड़ेगी, वह सुगंध की पहचान इतनी है कि तुम अकारण अपने को पाओगे कि तुम शांत हो रहे हो। तुम, जो कि अशांत हो, तुम जो कि हर घड़ी अशांत हो, बुद्ध पुरुष के पास तुम एक शांति पाओगे।

जोशू कहता हैः जहां ऐसी शांति मिले वहां रुकना, लेकिन ज्यादा देर मत रुकना। और ज्यादा देर की कसौटी यह है कि जैसे ही तुम्हारा राग बनने लगे, जैसे ही तुम इस "व्यक्ति को" प्रेम करने लगो, इस "देह को" प्रेम करने लगो, इस "पुरुष को" प्रेम करने लगो, जैसे ही निराकार बुद्ध के साथ तुम्हारा संबंध न जुड़ कर, आकार से जुड़ने लगे, जैसे ही तुम मूर्ति-पूजक होने लगो, जैसे ही बुद्ध की प्रतिमा महत्वपूर्ण होने लगे, बस, वैसे ही हट जाना। समय आ गया; क्योंकि तुम राग में गिर जाओगे। अच्छा होगा कि तुम दूर हट जाओ।
इसलिए सदगुरु निरंतर अपने शिष्यों को अनेक बार दूर भेजता रहता है। जैसे ही वह देखता है... तुम भला न देख पाओ--लेकिन, जैसे ही वह देख लेता है कि अब राग निर्मित होगा, वह दूर भेज देता है। तुम्हें शायद कष्ट भी मालूम पड़े, तुम्हें शायद यह कठोर भी मालूम पड़े। बहुत बार ऐसा भी होता है कि तुम इतने नाराज हो जाओ कि दुबारा लौटो ही न। ये सब घटनाएं घट सकती हैं।
लेकिन सदगुरु जानता है कि कब तुम्हें दूर भेज देना जरूरी है। क्योंकि जैसे ही ज्यादा देर होने लगे, और जैसे ही उसे लगे कि तुम्हारी आंखों में राग का अंधापन आने लगा, जैसे ही उसको लगे कि अब तुम्हारे भीतर राग के पंजे फैलने लगे हैं, अब तुम मोहग्रस्त हो रहे हो, अब तुम सत्य से नहीं, व्यक्ति से बंध रहे हो, अब निराकार तुम्हारी खोज न रही, आकार महत्वपूर्ण हो गया है... ।
बुद्ध से सारिपुत्र ने कहा है कि "तुम्हें पाकर अब मुझे कुछ भी पाने
को न बचा; अब मेरी कोई सत्य की खोज नहीं है। तुम्हें पा लिया, सब पा लिया।" बुद्ध ने कहा। "मत कहो ऐसे वचन, क्योंकि यह भ्रांति है। मैं आज हूं, कल नहीं हो जाऊंगा। फिर तुम क्या करोगे? यह देह आज है, कल जल जाएगी, राख हो जाएगी, फिर तुम क्या करोगे? फिर तुम भटकोगे। मुझको नहीं, सत्य को ही खोजो। मुझे भी मार्ग बनाओ--सत्य तक पहुंचने का। मुझे सत्य मान कर मत बैठ जाओ। मैं तुम्हारे लिए सीढ़ी बन सकूं, इतना काफी है। मुझे तुम मंदिर मत बनाओ। तुम्हारा ही सत्य तुम्हारे साथ सदा रहेगा।"
"... और जहां बुद्धपुरुष न हों, वहां से तुरंत हट जान।" जिन व्यक्तियों
के पास जाकर तुम्हारी अशांति और बढ़ती हो--अकारण; जिनके पास जाकर तुम्हारी बेचैनी सघन होती हो--अकारण; जिनके पास पहुंचते ही भारीपन आता हो, वहां ज्यादा देर रुकने का तो सवाल ही नहीं है; वहां थोड़ी देर भी मत रुकना। क्योंकि खतरा वहां यह है कि अगर तुम थोड़ी देर भी वहां रुक गए, तो तुम एक भारीपन और एक अशांति के आदी हो जाओगे।
और लोग बीमारियों तक के आदी हो जाते हैं। और लोग बीमारियों तक से जुड़ जाते हैं। तो जब बीमारियां हमें छोड़ती हैं, तो बड़ी बेचैनी होती है, बड़ी मुश्किल होती है। अगर तुम दस बारह साल तक बीमारी खाट पर पड़े रह गए, फिर तुम्हें बीमारी छोड़नी मुश्किल होगी। क्योंकि दस-बारह साल एक ढंग का जीवन तुमने जी लिया, इस जीवन में अब तुम्हारे स्वार्थ जुड़ गए। इस बारह साल में कोई आदमी तुमसे बुरा नहीं बोला। किसी आदमी ने तुम पर नाराजगी नहीं की। तुम बीमार थे; पत्नी लड़ी नहीं, उसने सदा पैर दबाए। जो भी आया सहम कर आया, जैसे तुम कोई सम्राट थे। तुमने कोई काम न किया। दूसरे लोग काम में लगे, सेवा की। तुम बाजार न गए; कोई जिम्मेदारी तुम्हारे सिर पर न रही। बीमार होकर तुम काफी बड़ा काम कर रहे थे! और किसी काम की जरूरत न थी। कोई चिंता न पकड़ी। बारह साल तुम सुस्त काहिल बने रह कर सबका सम्मान, सेवा पाते रहे; इनवेस्टमेंट भारी हो गया। बारह साल के बाद जब डाक्टर तुमसे कहेगा कि "तुम ठीक हुए, उठो बिस्तर से।" तुम्हारी पूरी आत्मा कहेगीः "अब कैसा उठना, कहां जाना! जब बाजार में फिर खड़े होना, फिर वे चिंताएं, समस्याएं, संघर्ष, दायित्व?" तुम गिर पड़ोगे।
इसलिए एक दफा आदमी लंबी देर तक बीमार रह जाए, तो बीमारी में उसके मनोवैज्ञानिक राग हो जाते हैं, फिर वह ठीक होना नहीं चाहता। और जब तुम ठीक होना नहीं चाहते, तो दुनिया का कोई चिकित्सक तुम्हें ठीक नहीं कर सकता। एक बार तुम्हें बीमारी में रस आ गया, एक बार तुम्हें लग गया कि बीमारी बड़ा गहरा और अच्छा "धंधा" है, फिर तुम क्यों मुक्त होना चाहोगे! फिर तुम बीमारी से बंध गए। लोग बीमारी से बंध जाते हैं।

तो जब तुम गैर-बुद्ध पुरुष के पास रहते हो, तब उससे पैदा होती अशांति, पीड़ा, चिंता--वे सब भी बंधन के हिस्से हो जाते हैं। फिर जब तुम्हें बेचैनी नहीं होती, तो तुम बेचैन होते हो कि क्या बात है! जब अशांति नहीं होती, तब तुम मुश्किल में पड़ते हो कि क्या बात है! मैं, और अशांत नहीं! जब तुम्हें क्रोध नहीं होता, तो तुम्हें लगता है कि कुछ अनहोना घट रहा है।
आदमी एक लीक पर चलता है। लीक धीरे-धीरे सुगम हो जाती है। तुम कितनी ही कठिन लीक चुन लो, वह सुगम हो जाती है। तुम गंदगी में रहने लगो, तो गंदगी गंदगी नहीं मालूम पड़ती। तुम अगर दुर्गंध में रहने लगो, तो दुर्गंध दुर्गंध नहीं मालूम पड़ती। तुम अगर रेलवे स्टेशन पर सोने लगो, फिर तुम घर पर आराम से न सो सकोगे। फिर ट्रेनों का निकलना जरूरी है, शोरगुल होना जरूरी है। जो लोग रेलवे स्टेशन पर सोने में समर्थ हो जाते हैं, फिर उन्हें घर का आराम बहुत मुश्किल है।
हम गलत के भी आदी हो जाते हैं। और जिस चीज की भी आदत बन जाती है, उसको छोड़ना कठिन है। इसलिए तो लोग सिगरेट पीए जाते हैं, शराब पीए जाते हैं।
एक छोटे बच्चे को सिगरेट दो पीने को; क्या होगा? खांसेगा, आंख में आंसू
आ जाएंगे, गला रुंध जाएगा, घबड़ा जाएगा, पसीना-पसीना हो जाएगा। और उसकी समझ में न आएगा कि लोग इसको रस से क्यों पीते हैं! जब कि डब्बियों पर लिखा भी हुआ है कि "यह स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है।" जब कि सारी दुनिया के चिकित्सक चिल्लाए जाते हैं कि "यह जहर है!" लेकिन लोग आदी हो गए हैं। पहली बार तो उनको भी पीते समय ऐसा ही हुआ था। धीरे-धीरे आदी हो गए हैं।
पहली बार जब उन्हें पीते समय ऐसा हुआ था, तो उनके अहंकार ने कहा कि "यह
तो बात उचित न होगी। इतने लोग पी रहे हैं, क्या मैं इतना कमजोर हूं कि आंसू आएं, खांसी आए, यह कोई अच्छा लक्षण नहीं है। अभ्यास करना ही होगा।" वे अभ्यास कर लेंगे।
शराब जब भी कोई पहली दफा पीता है, तो बेस्वाद, तिक्त अनुभव करता है; कोई स्वाद अनुभव नहीं करता। लेकिन पीता जाए, तो बेस्वाद-स्वाद हो जाता है। और ध्यान रहे, जब तुम्हें गैर-बुद्ध पुरुष में स्वाद आने लगे, तो तुम बुद्ध पुरुष में स्वाद न ले सकोगे। यह बड़े से बड़ा खतरा है।
जब तुम गलत में रस लेने लगो, तो ठीक के प्रति तुम्हारी आंखें बंद हो जाएंगी। और जब अंधेरे के आदी हो जाओ, तो प्रकाश में तुम्हारी आंखें तिलमिला जाएंगी। तब तुम अंधेरे में सरकना पसंद करोगे। तब तुम सूरज के दुश्मन हो जाओगे। जहां भी तुम प्रकाश देखोगे, वहीं तुम चिल्लाओगे कि गलत है। क्योंकि प्रकाश बेचैनी देगा।
हम सब इतने आदी हो गए हैं, गैर-बुद्ध के पास रहने के और सब तरफ वे मौजूद हैं। बुद्ध पुरुष तो किसी बोधि-वृक्ष के नीचे मिलेंगे--कभी, सदियों खोजने पर। गैर-बुद्ध पुरुष हर वृक्ष के नीचे मौजूद हैं। एक दो भी मौजूद नहीं है, भीड़ की तरह खड़े हैं। तुम जहां भी जाओगे, वे मौजूद हैं। तुम न भी खोजो, तो वे तुम्हें खोज रहे हैं। तुम उनसे बच नहीं सकते। बचना इतना आसान नहीं है। पर अब होश रखना जरूरी है।
जोशू कह रहा हैः "वहां से तुरंत हट जाना, जहां बुद्ध पुरुष न हों।" जहां अकारण तुम्हारे जीवन में कोई चिंता, बेचैनी, तनाव, अशांति, संताप पकड़ता हो, जहां कोई बादल तुम्हें घेर लेते हों और बोझिल करते हों, जहां उदासी छाती पर पत्थर की तरह बैठ जाती हो, जिनके पास होने से ही चित्त रुग्ण होने लगता हो, वहां से एकदम हट जाना। क्योंकि थोड़ी देर तुम रुक गए तो तुम आदी हो जाओगे, उसका खतरा है।
इसी महान गुरु ने दूसरी बार कहाः "यदि बुद्ध का नाम लेना तो पीछे से ठीक से मुंह धो लेना।" सभी शब्द अपवित्र हैं--मंत्र भी, महामंत्र भी। क्योंकि वे भी शब्दों से ही बने हैं।
शब्द का मूल्य ही कुछ नहीं है। शब्द कामचलाऊ है, उपकरण है। एक दूसरे
से बात करने के लिए उपयोगी है। और ध्यान रहे, अगर अस्तित्व से बात करनी हो तो शब्द बिल्कुल उपयोगी नहीं है, बाधा है। वहां निशब्द उपयोगी है।
आदमी से बात करनी हो तो शब्द उपयोगी है, शब्द माध्यम है। आकाश से बात करनी हो तो शब्द माध्यम नहीं है। वृक्षों से बात करनी हो, तो शब्द माध्यम

नहीं है। तारों से बात करनी हो, तो शब्द माध्यम नहीं है। और अगर तारों के साथ भी तुम शब्दों का उपयोग करो, तो तुम पागल हो। क्योंकि तुम अकेले ही बोल रहे हो। वह एकालाप है--मोनोलॉग है, डायलाग नहीं है। वहां कोई संवाद नहीं हो रहा है; दूसरी तरफ से कोई उत्तर नहीं आ रहा है।
लेकिन अगर तुम चुप हो जाओ, तो तारे बोलते हैं, अगर तुम चुप हो जाओ, तो आकाश भी बोलता है। अगर तुम चुप हो जाओ, तो कंकड़-पत्थर भी बोलते हैं--लेकिन चुप हो जाओ तब।
जीसस ने कहा हैः "तोड़ो लकड़ी को, तुम मुझे वहां मौजूद पाओगे।" उठाओ पत्थर को, तुम मुझे वहां छिपा पाओगे।" लेकिन तुमने कई बार लकड़ी तोड़ी है और जीसस वहां मिले! और तुमने कई बार पत्थर उठाया, और सिर्फ गड्ढा हो जाता है; कोई जीसस वहां नहीं मिलते। क्योंकि तुम शब्द से भरे हो। अगर तुम पत्थर उठाओ और तुम मौन हो, तो जीसस ठीक कहते हैं, तुम्हें वे वहां मिल जाएंगे। परमात्मा के लिए किसी मंदिर में जाने की जरूरत नहीं है। तुम जहां मौन
हो गए, वहीं वह मौजूद है। वह हर घड़ी मौजूद है।
अस्तित्व पूरे समय बोल रहा है, पल-पल उसकी वाणी गूंज रही है। वह निनाद
हो ही रहा है। तुम चुप नहीं हो; तुम शब्दों से भरे हो। तुम्हारी खोपड़ी का एक ही रोग है कि तुम शब्द, शब्द और उनकी भीड़ खड़ी किए जाते हो। तुम चुप होना नहीं जानते। उसी से तुम चूक रहे हो।
फिर लोग हैं, जो बाजार से भरे हैं, दुकान से भरे हैं। वे मंदिर जाते हैं। वे वहां भी कहते हैं, "कोई मंत्र दे दो।"
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, "कोई मंत्र दे दें।" मैं उनसे पूछता हूं, "मंत्र से क्या करोगे? मंत्रों से तो तुम भरे ही हुए हो। तुम अब मौन सीखो।" वे कहते हैं, "मौन तो मुश्किल है। मंत्र आप दे दें, तो हम रटते रहेंगे।"
मंत्र आसान है। क्योंकि मन उस काम को भलीभांति जानता है। वह मन के विपरीत नहीं है। पहले कुछ और रटता थाः "रुपया, रुपया, रुपया।" अब रटता हैः "राम, राम, राम।" फर्क कुछ नहीं है। दुकान पर बैठा रटता रहता था, अब मंदिर में बैठकर रटता रहता है। रटन जारी है। मन चुप नहीं होता।
एक बीमारी को छोड़ कर तुम दूसरी पकड़ लेते हो। पहले खाते वगैरह में आंखें गड़ाए रहे, अब गीता, कुरान, बाइबिल में आंखें गड़ाए रखते हो। लेकिन शब्द से छुटकारा नहीं हुआ। और जब तक शब्द से छुटकारा न हो जाए, तब तक सत्य से कोई मिलन नहीं है।
जब तुम पैदा नहीं हुए थे, तब तुम कौन सी भाषा जानते थे? तब भी तुम थे-- निर्भाषा में, मौन में। जब तुम मरोगे, तब तुम्हारी सब भाषा यहीं छूट जाएंगी; तुम्हारे शब्द सब यहीं बिखर जाएंगे। तुम फिर खाली होकर जाओगे। खाली तुम आए, खाली तुम जाते हो। बीच में थोड़ी देर के लिए शोरगुल है। काश, तुम बीच में खाली होना सीख लो, तो तुम्हें ध्यान आ गया।
जोशू कह रहा है... । और जिनसे वह कह रहा है, वे दुकानों पर बैठे हुए लोग नहीं थे। वे संन्यासी थे, भिक्षु थे। वे सुबह से शाम तक "नमो बुद्धों, नमो बुद्धाय" रट रहे थे। वे बुद्ध ही बुद्ध से अपने को भर रहे थे। उनसे वह कह रहा है कि "अगर बुद्ध का नाम लो, तो समझ लेना कि मुंह अपवित्र हो गया है। धो देना, कुल्ला कर लेना।" और यही जोशू प्रातः संध्या समय बुद्ध की प्रतिमा के सामने फूल चढ़ाते, सुगंध जलाते और सिर टेकते भी देखे जाते थे।
एक बार जोशू को एक नये अतिथि ने पकड़ लिया। उसने सुना जोशू को सुबह और
वह बात उसको बिल्कुल ठीक लगीः कि सबसे छुटकारा पा लेना है। --न शास्त्र, न शब्द, न पूजा, न प्रार्थना। यह ठीक कह रहा है। वह आदमी नास्तिक था। वह पहले से मानता था कि यह सब व्यर्थ है। और जब जोशू के मुंह से उसने सुना कि बुद्ध से भी बचना, बुद्ध के नाम से भी बचना, तो उसे बात बिल्कुल ठीक लगी।
यह एक बड़ी कठिनाई है शब्दों की। कभी-कभी बहुत एक जैसे दिखाई पड़ने वाले शब्द बड़े विभिन्न अर्थ रखते हैं और कभी-कभी बड़े विभिन्न दिखाई पड़ने वाले शब्द बिल्कुल एक अर्थ रखते हैं।

कहां जोशू! इससे बड़ा आस्तिक खोजना मुश्किल है। और कहां यह नास्तिक! लेकिन नास्तिक को लगा, जोशू बिल्कुल ठीक कह रहा है। उसने सोचा "यही तो मैं मानता हूं कि यह सब बकवास है। व्यर्थ है।"
सांझ को वह खुश लौट रहा था, तो उसने मंदिर में देखा कि जोशू पूजा कर रहा है। वह तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। यह अंतर्विरोध है; यह आदमी तो धोखेबाज है। सुबह उसने क्या कहा और सांझ क्या कर रहा है!
वह अंदर गया और उसने कहा, "यह मेरी समझ के बाहर है!" जोशू ने आंख खोली
और कहा, "समझ के बाहर तो यह मेरे भी है। यह बात ही समझ के बाहर है। इसमें तुम क्या करोगे?" और उस आदमी ने कहा, "मुझे मुश्किल में डाल दिया। मैं तो निश्चित लौटता था, कि मेरे और आपके विचार मेल खाते हैं! लेकिन यह आचरण? सुबह तुमने ही कहा कि बुद्ध से बंध मत जाना, फिर पूजा क्यों कर रहे हो?" जोशू ने कहा, "इसी बुद्ध ने जगाया मुझे; सभी कारागृहों से मुक्त होने की खबर दी। इसी बुद्ध ने यह भी अनुकंपा की कि स्वयं अपने से भी मुझे न बंधने दिया। यह मैं धन्यवाद दे रहा हूं। यह पूजा मेरा बंधन नहीं है। सब बंधनों से जिसने मुझे छुड़ाया, उसको धन्यवाद है।"
अब जरा बारीक हो गई बात। पूजा बंधन भी हो सकती है, धन्यवाद भी हो सकती है।
मेरे पास लोग आते हैं। एक साहित्यकार मेरे पास आते थे। ऐसी ही एक घटना घटी। एक शिविर चलता था माथेरान में। और सुबह ही मैं बोला। मैंने कहा, "किसी की पूजा मत करना। क्योंकि पूजा से तुम बंधोगे।" दोपहर को मैं आ रहा था रास्ते से, सभा के लिए। एक सज्जन झुके और मेरे पैर छुए; वे साहित्कार मेरे साथ थे। उन्होंने उस सज्जन से कहा, "रुको; सुबह ही कहा है कि किसी की पूजा मत करना!" और मुझसे बोले, "आप उन्हें रोकते क्यों नहीं? इसमें अंतर-विरोध है। आचरण में उलटा हो गया। सुबह ही आपने कहा है... !"
पूजा धन्यवाद अगर हो, तो अंतर्विरोध नहीं है। पूजा अगर राग हो, तो अंतर्विरोध है। लेकिन दोनों पूजाएं एक जैसी दिखाई पड़ती हैं ऊपर से। पूजा पूजा में क्या अंतर है? जब कोई राग से भरकर फूल चढ़ाता है, तब तुम कैसे पहचानोगे? और जब कोई सिर्फ धन्यवाद देने जाता है, कि धन्यवाद, तब तुम कैसे पहचानोगे?
चीन में एक गुरु हुआ। वह मर गया। उसकी मरण-तिथि पर उसका शिष्य समारंभ
कर रहा था। वैसा समारंभ केवल उसी गुरु के लिए किया जाता है, जिससे तुमने दीक्षा ली हो। लेकिन गांव के लोगों को पता था कि इस आदमी ने कभी भी दीक्षा नहीं ली! और यह समारंभ मना रहा है! और कुछ लोगों को यह भी पता था कि इसने प्रार्थना भी की थी उस गुरु से कि मुझे दीक्षा दे दो। लेकिन उसने इनकार कर दिया था।
तो लोगों ने पूछा कि "हमारी समझ के बाहर है। न तुमने कभी दीक्षा ली, न तुम कभी उसके शिष्य थे। और यह समारंभ तो सिर्फ शिष्य ही मनाते हैं--गुरु के लिए। तुम क्यों मना रहे हो? और फिर हमें यह भी खबर है--गांव के बड़े-चढ़े कहते हैं कि तुमने अनेक बार उससे प्रार्थना की थी कि मुझे दीक्षित करो, और वह हमेशा इनकार करता रहा। तुम कभी दीक्षित किए भी नहीं गए। तो, न केवल तुम शिष्य ही नहीं हो, इस गुरु ने तुम्हें इनकार भी किया था। तुम शिष्य होने के योग्य भी कभी नहीं माने गए। यह समारंभ तुम्हें मनाना नहीं चाहिए।"
वह आदमी हंसने लगा। उसकी आंखों से खुशी के आंसू बहने लगे। उसने कहा, "इसीलिए तो मैं मना रहा हूं कि मैंने कई बार उससे बंधना चाहा, पर उसने हर बार इनकार कर दिया। और उसका इनकार मुझे मुक्त कर गया है। अब धन्यवाद मैं किसको दूं? यह उसकी ही कृपा है। दुनिया कुछ भी कहे, मैं उसका शिष्य हूं। और दीक्षा मुझे नहीं दी गई। लेकिन इनकार करके उसने मुझे दीक्षा दे दी। उसका हर इनकार एक एक कदम था। और मैंने हर चेष्टा की बंधने की; उसने एक चेष्टा न चलने दी। सब चेष्टाएं तोड़ दीं। तो उसकी कृपा है कि मैं बंधा नहीं और मुक्त हुआ। अब मैं धन्यवाद किसको दूं? धन्यवाद उसी को देना पड़ेगा।"
नास्तिक ने कहाः "यह कैसी पूजा है? कैसा अर्चना है? यह फूल किसको चढ़ाते हो? जब कोई गुरु नहीं है, किसी का अनुसरण नहीं करना है, किसी पर

श्रद्धा नहीं रखनी है, जब अपना दीया खुद ही जलाना है, तो यह तो मूर्तिपूजा है।"
यही झंझट है।
इस्लाम कभी भी नहीं समझ पाया कि ऐसी मूर्तिपूजा भी हो सकती है, जो मूर्तिपूजा न हो। पूजा अगर धन्यवाद है, तो पूजा है ही नहीं। पूजा अगर राग है, पूजा अगर मांग है, और पूजा से अगर किसी वासना का फैलाव होता है, तो मूर्तिपूजा है। लेकिन पूजा अगर सिर्फ सारी वासनाओं की समाप्ति पर दिया गया धन्यवाद है, अगर पूजा अंत है, प्रारंभ नहीं, तो वह मूर्तिपूजा नहीं है। इसलिए हम फूल चढ़ाते हैं। फूल प्रतीक है; वह वृक्ष की अंतिम घटना है। वहां वृक्ष जाकर पूरा होता है। इसलिए हम फूल चढ़ाते हैं, कोई सौंदर्य के कारण नहीं--कि फूल सुंदर है। इसलिए पूजा में कोई बहुत कीमती फूल लाओ, वह सवाल नहीं है; घास का फूल भी काम देता है। लेकिन फूल चाहिए। क्योंकि फूल आखिर घटना है। बस, उस पर जाकर वृक्ष पूरा होता है।
अर्चना आखिरी घटना होनी चाहिए, पूजा के आगे मांग नहीं होनी चाहिए--कि "यह मुझे मिल जाए--इसलिए मैं पूजा कर रहा हूं--कि यह मुझे दो। हे परमात्मा, यह कृपा करो।" नहीं, पूजा का अर्थ हैः "तुमने सब कृपा कर दी, अब मैं धन्यवाद दे रहा हूं। सब कृपा हो चुकी है। यह आखिरी कृत्य है। यह अध्याय मैं पूरा कर रहा हूं। यह इतिश्री है। यह प्रारंभ नहीं है।
जोशू चढ़ा रहा है--बुद्ध के सामने फूल। सिर झुका रहा है, सुगंध जला रहा है, सिर टेक रहा है। और हमें अंतर्विरोध निश्चित ही दिखाई पड़ेगा। धार्मिक व्यक्ति में हमें अंतर्विरोध दिखाई पड़ेगा ही। क्योंकि धार्मिक व्यक्ति नास्तिक और आस्तिक दोनों का जोड़ है। धार्मिक न तो आस्तिक है, न नास्तिक। आस्तिक आधा है। वह कहता हैः "हां।" नास्तिक भी आधा है। वह कहता हैः "ना।" धार्मिक दोनों है। वह "ना" भी कहता है--जो व्यर्थ है उसे। और वह "हां" भी कहता है--जो सार्थक है उसे। उसकी पूजा दोनों है। वह "ना" भी कहता है--राग को, वह "हां" भी कहता है--अनुग्रह को।
नास्तिक की समझ में आता है कि "ना" कहते हो, मत करो पूजा। आस्तिक की समझ में आता है, "हां" कहते हो तो करो पूजा। फिर यह "ना" की बातचीत बंद करो। फिर मत कहो, कि मुंह में नाम आ जाए बुद्ध का, तो साफ कर लेना; फिर दोहराओ नाम अहोभाव से, आनंद से। फिर मत कहो यह बात। फिर मत कहो कि बुद्ध मिल जाएं तो ज्यादा देर मत रुकना। फिर तो पकड़ लेना--उनका पल्ला और पीछा मत छोड़ना। फिर जन्मों-जन्मों तक उनके पीछे रहना। फिर पीछा छोड़ना ही मत।
दोनों बातें साफ हैं। आस्तिक का गणित सीधा है, नास्तिक का गणित भी सीधा है। धार्मिक का गणित बड़ा उलटा है। वह दोनों है। और जब तक तुम दोनों न हो जाओगे, तब तक तुम्हें धर्म की झलक भी न मिलेगी।
जिस दिन तुम नास्तिक जैसे होओगे, कि बुद्ध का नाम भी तुम्हें अपवित्र करेगा; और जिस दिन तुम परम आस्तिक जैसे होओगे कि नाच कर तुम धन्यवाद भी दे सकोगे, उस दिन धर्म का फूल तुम्हारे जीवन में खिलेगा। और वही फूल मंदिर में चढ़ाने जैसा है।
जिन फूलों को तुम वृक्षों से तोड़ लाते हो, वे तो केवल प्रतीक हैं। तुम्हारे व्यक्तित्व का फूल। और उसमें "हां" और "ना" दोनों सम्मिलित हैं। कभी तुमने ख्याल किया है कि "हां" अकेला फीका-फीका होता है; "ना" अकेली बेजान होती है। अगर दोनों मिलते हैं, तो दोनों की विपरीतता के कारण, दोनों के खिंचाव और तनाव के कारण एक ऊर्जा पैदा होती है।
अकेला पुरुष अधूरा-अधूरा है। अकेली स्त्री अधूरी-अधूरी है। और बच्चे
का जन्म दोनों के मिलन से होता है। अकेला आस्तिक अधूरा-अधूरा है। अकेला नास्तिक अधूरा-अधूरा है। दोनों के मिलन से जिस बच्चे का जन्म होता है उसीकी ही तलाश है। वही सत्य है, वही मोक्ष है।
नहीं, जोशू में कहीं अंतर्विरोध नहीं है। तुम्हें दिखाई पड़ सकता है।
पर जिस दिन तुम्हें जोशू में अंतर्विरोध नहीं दिखाई पड़ेगा, उस दिन तुम्हारे कदम सम्हल गए और ठीक रास्ते पर चलने लगे।
धार्मिक व्यक्ति अंतर-विरोध जानता ही नहीं। सभी को दिखाई पड़ता है कि धार्मिक व्यक्ति बड़ा असंगत है। उसमें विरोधों का अंत नहीं है!

इधर बुद्ध कहते हैंः "अपने दीए खुद बनो" और लोग उनके चरणों में सिर झुका रहे हैं और कह रहे हैंः "बुद्धं शरणं गच्छामि"। और वे इनकार नहीं करते हैं। इधर वे कह रहे हैं कि "किसी के पीछे मत चलो"। और दीक्षा दे रहे हैं, हजारों लोगों को--पीछे चलने की! इधर बुद्ध कह रहे हैंः "वस्त्रों को बदलने से क्या होगा", और हजारों लोगों को पीत वस्त्र के भिक्षु बना रहे हैं! उधर बुद्ध कहते हैंः "संगठन, संप्रदाय सब व्यर्थ है।" फिर भी एक संघ निर्मित हो रहा है!
धार्मिक व्यक्ति बड़े अंतर-विरोधों से भरा हुआ है। क्योंकि बुद्धि आधे को देख पाती है और धार्मिक व्यक्ति पूरा है। और "पूरा" तुम्हारी बुद्धि की पकड़ से छूट जाता है।
तुमने कभी ख्याल किया है! एक छोटा सा कंकड़ तुम्हारे हाथ में दे दूं, तो क्या तुम उसे पूरा देख पाओगे? छोटा सा कंकड़ जो तुम्हारी हथेली पर रखा है, तुम उसे पूरा न देख पाओगे। जो ऊपर का हिस्सा है, वही दिखाई पड़ेगा। नीचे का नहीं दिखाई पड़ेगा। तुम उलटा दो, तो दूसरा हिस्सा दिखाई पड़ेगा; पहला हिस्सा खो जाएगा। और अगर तुम बिल्कुल निश्चित तर्कवादी हो, तो तुम्हें आधे की ही बात कहनी चाहिए, पूरे की नहीं। तुम्हें यह नहीं कहना चाहिए कि पूरा कंकड़ मेरी मुट्ठी में है। आधा दिखता है, तो आधा ही कहना।
एक बहुत बड़ा गणितज्ञ हुआ; तार्किक था। ट्रेन से यात्रा कर रहा था। भागती ट्रेन के किनारे, खेत में हजारों भेड़ें खड़ी थीं। पास के यात्री ने कहाः "देखते हैं, इस वर्ष ऊन बहुत अच्छी आई मालूम होती है। भेड़ों के शरीर ऊन से भरे हैं।" उस आदमी ने कहा, "केवल इस तरफ के बाबत हां कह सकता हूं--आधी भेड़ की बाबत। उस तरफ? उस तरफ की बाबत कुछ नहीं कह सकता। सच तो यह है कि आधी भेड़ें ही हैं, यही कह सकता हूं। क्योंकि आधी भेड़ हो या न हो--उस तरफ!"
तुम मेरी तरफ देख रहे हो, तुम्हारा चेहरा दिखाई पड़ रहा है, तुम्हारी पीठ है भी या नहीं, इस संबंध में मैं कुछ कह नहीं सकता, अगर तर्क को ही मान कर चलूं तो हो भी, न भी हो! और कभी किसी ने भी तो तुम्हें पूरा नहीं देखा है। या तो तुम्हारी पीठ दिखाई पड़ती है या तो तुम्हारा चेहरा दिखाई पड़ता है। फिर दोनों को जोड़ कर हम पूरा बना लेते हैं; वह कल्पना है। लेकिन पूरा आदमी आज तक किसी ने नहीं देखा है। पूरे कंकड़ को नहीं देखा, तो पूरी जिंदगी तो कैसे देख पाओगे? और जोशू पूरी जिंदगी है।
संतत्व का अर्थ ही यह है कि जो पूरा है, जिसने सब आधे-आधे इकट्ठे कर लिए हैं। जिसमें सब रेखाएं वर्तुल बन गई हैं। जो पूर्णता है। एक कोने से तुम देखोगे तो लगेगाः "आधा ठीक है।" दूसरे कोने से देखोगे तो लगेगाः "आधा ठीक है।" और अगर तुम दोनों तरफ जाकर देखोगे तो मुश्किल पड़ेगी।
जो सुबह ही जोशू को सुन कर चले गए होते और सांझ को उसकी पूजा ही देखी होती, तो दिक्कत न होती। तुम तय कर लेते कि आदमी नास्तिक है। अपने ही जैसा है। जिन्होंने सांझ की पूजा ही देखी थी और सुबह की बात न सुनी थी, उनके लिए भी ठीक था। वे समझते कि आदमी धार्मिक है, आस्तिक है। लेकिन जिन्होंने दोनों ही देख लिए, उनके लिए अंतर्विरोध पैदा हो रहा है।
जोशू के लिए कोई अंतर्विरोध नहीं है। जब वह बोल रहा था। तब भी पूरा था। और जब पूजा कर रहा है, तब भी पूरा है। वह कहीं कटा-बंटा नहीं है। तुम्हारे लिए अंतर्विरोध है। क्योंकि दोनों बातें विपरीत दिखाई पड़ती हैं; "हां" और "ना" में विरोध दिखाई पड़ता है। यह तुम्हारी सोचने की प्रक्रिया का परिणाम है। और अगर तुम सोचते ही रहे, तो अंतर्विरोध दिखता ही रहेगा।
रख दो सोच-विचार को उतार कर और फिर जोशू को देखो, तब तुम्हें वह पूरा दिखाई पड़ेगा। और तब तुम उसकी महिमा को समझ पाओगे।
महिमा यही है कि पीछे चलना मत बुद्ध के--यही बुद्ध के पीछे चलने का ढंग है। बुद्ध को पूजना मतः यही बड़ी से बड़ी पूजा है। बुद्ध का नाम मत लेना, क्योंकि नाम लिया, तो ओछा हो जाएगा; मुंह बेस्वाद हो जाएगा; कुल्ला कर लेना। बुद्ध जैसे महिमाशाली व्यक्ति का नाम नहीं लिया जा सकता। तुम सिर्फ स्मरण करना--बिना नाम के; वही उसका नाम है।

यहूदियों में एक व्यवस्था है, कि परमात्मा का नाम लिया नहीं जा सकता। परमात्मा के लिए उन्होंने कामचलाऊ शब्द बना लिया है, लेकिन वह कामचलाऊ है। असली शब्द बोला नहीं जाता। जो भी नाम हैं परमात्मा के, वे कामचलाऊ हैं। असली शब्द बोला नहीं जाता।
पुराने दिनों में जब यहूदियों का मंदिर जेरुसलम में था, तो एक वर्ष तक पुजारी मौन रहता था, लंबे उपवास करता था। सब भांति शून्य हो जाता था। तब पवित्र दिन पर, वर्ष में एक बार सिर्फ वही पुजारी ईश्वर का नाम लेता था; लोग सुनते थे। फिर वर्ष भर वह शुद्ध होता था।
यह बड़े मजे की बात है। शुद्धि दो तरह की थी। साल भर शुद्ध और मौन होता था, चुप होता था, ध्यान करता था, ताकि नाम लेने में समर्थ हो सके। और फिर नाम ले लिया, इसलिए अशुद्ध हो गया, तो साल भर फिर निखारता था, शुद्ध करता था, क्योंकि परमात्मा का नाम लेना, उसे अशुद्ध कर देना है। वह नाम के पार है, रूप के पार है। उसे कोई भी सीमा देते ही, वह अशुद्ध हो जाता है।
और सिर्फ मंदिर के बड़े पुरोहित को अधिकार था। और बड़ा पुरोहित होना बड़ा मुश्किल था। कभी-कभी वर्षों तक कोई पुरोहित नहीं होता था। तो नाम छूट जाता था। फिर मंदिर ही गिर गया। तब से यह परंपरा यहूदियों में खो गई। यहूदी अकेला धर्म है, जिसके पास परमात्मा का कोई नाम नहीं है। परमात्मा का नाम किसी के पास भी नहीं है। सब नाम कामचलाऊ हैं।
जोशू ठीक कह रहा है। कोशिश करना देखने की। और अगर तुम्हें अंतर्विरोध दिखता ही रहे, तो समझना कि तुम अभी नहीं समझे। ऐसे क्षण आएंगे--झलक के-- भीतर, जब तुम्हें अंतर्विरोध नहीं दिखाई पड़ेगा। बस, वही क्षण समझ होगी, वही अंडरस्टेंडिंग होगी, वहीं प्रज्ञा आविर्भूत होगी।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
ग्यारहवां प्रवचन

विचार नहीं--अनुभव ही नाव है

एक परंपरावादी दरवेश नैतिक प्रश्नों पर विचार करता हुआ नदी किनारे से
जा रहा था। अचानक दूर से आती हुई "ऊ हू" की आवाज उसके कानों में पड़ी और उसकी विचार-धारा टूट गई। कहीं दूर कोई आदमी दरवेश-मंत्र का पाठ कर रहा था; लेकिन उच्चारण बहुत गलत था।
दरवेश ने सोचा कि एक जानकार के नाते मेरा कर्तव्य है कि मैं जाऊं और मंत्र-पाठ की सही विधि उसे बता दूं। और वह नाव खेकर उस छोटे से द्वीप पर पहुंचा, जहां एक दूसरा दरवेश अपने झोपड़े में सूत्र-पाठ कर रहा था। पास जाकर पहले दरवेश ने उसे सही पाठ बताया और दिल में नेक काम करने की खुशी भर कर अपनी नाव में लौट आया।
इस मंत्र की बड़ी महिमा थी और समझा जाता था कि इसके पाठ से आदमी पानी की लहरों पर भी चल सकता है। पहले दरवेश को, लेकिन इसका विश्वास भर था, अनुभव नहीं था।
दरवेश थोड़ी ही दूर गया होगा कि उसे मंत्र का गलत पाठ फिर सुनाई पड़ने लगा। और उस आदमी की भूल करने की जिद्द पर उसे क्रोध आया। तभी एक चकित करने वाला दृश्य सामने था। दूसरा दरवेश उसकी ओर भागा आ रहा था--पानी पर चलता हुआ। और पास आकर उसने कहाः "माफ करना भाई, शुद्ध मंत्रोच्चार की विधि एक बार फिर बताने की कृपा करो।"
ओशो, कृपापूर्वक इस बोध-कथा का मर्म हमें बताएं।

सत्य यदि शब्द से पाया जा सके, तो भाषाशास्त्री धर्मशास्त्री हो जाए। सत्य तक अगर शब्द की सीढ़ी पहुंचती हो, तो व्याकरण काफी है, योग और ध्यान की कोई भी जरूरत नहीं है; क्योंकि तब शुद्ध भाषा ही मार्ग होगी। लेकिन सत्य का शब्द से कोई संबंध नहीं है, न भाषा से कोई नाता है। व्याकरण से तो कोई दूर का... दूर का संबंध भी नहीं हो सकता। लेकिन अक्सर यह हुआ है कि धर्म, भाषा में कैद हो गया। सत्य, सिद्धांत की कारागृह में बंद हो गया। और लोगों ने समझा कि शास्त्र को पढ़ लिया तो जो जानने योग्य था, वह जान लिया। लोगों ने सिद्धांतों की समझ को सिद्धावस्था समझ लिया।
इस भ्रांति के पीछे कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि सत्य को पाना अति कठिन है; शब्दों को समझ लेना बहुत सरल है। कोई भी समझ ले सकता है। सत्य की व्याकरण तो बड़ी कठिन है, शब्द की व्याकरण बड़ी सुगम है। सत्य तक जाना हो, तो जीवन का व्याकरण बदलना पड़े। शब्दों को समझ लेने के लिए भाषा-विज्ञान पर्याप्त है। भाषा की शिक्षा दी जा सकती है, धर्म की कोई शिक्षा नहीं होती। भाषा दूसरा भी समझा सकता है, धर्म को दूसरे के द्वारा समझाए जाने का कोई उपाय नहीं है।
धर्म तो गूंगे का गुड़ है; जिसने स्वाद लिया, वह गूंगा हो गया। उसे बोलना मुश्किल है, बताना मुश्किल है। उस संबंध में कुछ भी कहने की सुगमता नहीं है। जो कहे, समझ लेना उसने जाना नहीं है।
बुद्ध भी बोलते हैं, लाओत्से भी बोलते हैं, कृष्ण भी बोलते हैं। लेकिन
जो भी वे बोलते हैं, वह धर्म नहीं है। वह धर्म तक पहुंचने का सिर्फ इशारा मात्र है, इंगित मात्र है। वे मील के पत्थर हैं, जिन पर तीर बना होता है। लेकिन मील के पत्थर को कोई मंदिर समझ कर बैठ जाए, तो पागल हो जाएगा। पर बहुत लोग बैठते हैं। गीता के पास जो बैठे हैं, वे मील के पत्थर के पास बैठे हैं। कुरान पर जो सिर टेके बैठे हैं, मील के पत्थर के पास बैठे हैं। उन्होंने मील के पत्थर पर लगे तीर को मंदिर समझ लिया है, फिर वे वहीं रुक गए हैं।
सब शास्त्र इंगित करते हैंः शून्य की तरफ। लेकिन, शून्य का तो कोई भी शास्त्र नहीं हो सकता है। सभी शास्त्र कहते हैंः "मौन हो जाओ", लेकिन मौन को प्रकट करने वाला तो कोई शब्द नहीं हो सकता। इस बात को ठीक से समझ लें, तो यह दरवेश-कथा समझ में आ जाए।

दूसरी बात ख्याल में ले लेनी जरूरी हैः क्या तुम कहते हो, वह सवाल नहीं है; क्या तुम्हारा भाव है, यह सवाल है।
ऐसा हुआ। एक यहूदी था। बालसेम एक फकीर, यहूदियों के पवित्र दिन पर बोल रहा था। फिर बोलने के बाद नियमानुसार दो मिनट के लिए सभी लोग प्रार्थना के लिए खड़े हुए। काफी समय बीतने लगा; बालसेम आंख बंद किए ही खड़ा है। लोग घबड़ा गए, कुछ ही क्षण में। जैसा हम भी कभी कोई मर जाता है, तो दिवंगत को श्रद्धांजलि देने के लिए दो मिनट के लिए मौन खड़े हो जाते हैं।
दो मिनट भी लंबे मालूम पड़े। क्योंकि मौन होने की आदत नहीं है। दो क्षण मौन होने की भी आदत नहीं है। और वह समय तो सच में ही लंबा होता गया! कोई एक घंटा बीत चुका। लोग बिल्कुल बेचैन हो चुके थे। लोग जा भी नहीं सकते थे। क्योंकि जब तक बालसेम न कहे कि प्रार्थना पूरी हो गई, तब तक नियमानुसार जा भी नहीं सकते। और बालसेम आंख बंद किए है। ऐसा कभी उसने पहले किया भी नहीं था। फिर वह आदमी भी कीमती था। लोग उसे आदर भी करते थे। वह एक सिद्ध पुरुष था।
जब बालसेम ने आंख खोली, तो एक आदमी से न रहा गया। उस बूढ़े आदमी से, जो सामने ही खड़ा था और रुक गया था। उसने कहा, "दो मिनट की प्रार्थना, एक घंटा लगा दिया! क्या कह रहे थे?" बालसेम ने कहा, "मैं क्या करूं? बड़ी उलझन खड़ी हो गई। मैं खुद उलझन में था। आज हमारी इस सभा में एक गैर पढ़ा-लिखा आदमी आ गया है। उसने परमात्मा से बड़ी उलटी प्रार्थना कर दी। वह गैर-पढ़ा-लिखा है, उसे प्रार्थना नहीं आती, उसे प्रार्थना के शब्द नहीं आते। तो उसने यहां दो मिनट के बीच खड़े होकर यह परमात्मा से कहा कि "मुझे प्रार्थना तो नहीं आती। मुझे तो वर्णमाला आती है--ए बी सी डी ई एफ जी... । तो मैं वर्णमाला दोहरा देता हूं, बाकी प्रार्थना तू जमा ले। तुझे तो सब पता है और भाव मेरा तू समझता है!
"तो भगवान को घंटा भर लग गया; वे जमा रहे थे प्रार्थना। और जब तक वे न जमा लेते, मैं भी कैसे आंख खोलूं? और ऐसा काम कभी उन पर छोड़ा नहीं गया। कौन है यह आदमी, जिसने यह प्रार्थना की है?"
सच में ही एक आदमी ने हाथ उठाया। उसने कहा, "बड़ी मुश्किल है। वह आदमी मैं ही हूं। मुझे प्रार्थना नहीं आती। मैं अजनबी हूं--इस गांव में। और जिस गांव से आता हूं, वहां कोई सिनागाग भी नहीं है, कोई मंदिर भी नहीं है, कोई पुजारी भी नहीं है। वहां मैं अकेला ही यहूदी हूं। किसी ने मुझे कभी प्रार्थना सिखाई ही नहीं है। जब सब आंख बंद करके प्रार्थना करने लगे, तो मैंने सोचा, मैं क्या कहूं? तो मैंने कहा कि, तू तो सब जानती ही है; तो वर्णमाला पूरी बोले देता हूं, प्रार्थना के शब्द इसमें सब आ ही जाते हैं। तू जमा लेना।"
भाव मूल्यवान है, तो वर्णमाला भी मंत्र बन जाती है। और भाव भीतर न हो
तो महामंत्र भी राख हैं, उनमें कोई जीवन नहीं है। और धर्म का संबंध "क्या तुम सोचते हो"--इससे नहीं; "क्या तुम हो, क्या तुम्हारी भावना है, क्या तुम्हारा हृदय है"--इससे है।
तुम्हारे मस्तिष्क में कितने विचार हैं, कितना तर्क है, कितनी समझ है, इसका कोई मूल्य धर्म के बाजार में नहीं है। तुम्हारे हृदय में कितनी प्यास है, कितनी प्रार्थना है, कितना प्रेम है... ?
परमात्मा को खरीदने जो चला हो, वह हृदय की पूंजी पर भरोसा रखे। बुद्धि
की पूंजी वहां नहीं चलती। वे सिक्के वहां काम नहीं आते। वहां पंडित पिछड़ जाते हैं। वहां कभी-कभी हृदयपूर्वक अज्ञानी भी प्रवेश कर जाता है।
अब हम इस कहानी को समझने की कोशिश करें।
"एक परंपरावादी दरवेश नैतिक प्रश्नों पर विचार करता हुआ नदी तट से जा रहा था।"
पहली बात "परंपरावादी" है।
परंपरावादी और धार्मिक भिन्न बातें हैं। अक्सर जो परंपरावादी है, वह धार्मिक समझा जाता है। अक्सर हम ऐसा समझते हैं कि जो पुराने को मानता है, वह धार्मिक है। लेकिन धार्मिक पुराने को जानता ही नहीं। धार्मिक का पुराने से कुछ लेना-देना नहीं है, न धार्मिक का नए से कुछ लेना-देना है।

धार्मिक की खोज का आयाम सनातन है--न पुराना, न नया। धर्म तो उसकी खोज करता हैः जो सदा रहेगा, जो सदा है--जो कभी पुराना नहीं पड़ता और जो कभी नया नहीं होता।
जो पुराना पड़ जाता है, वह कभी नया रहा होगा। जिसको आज तुम परंपरा कहते हो, वह कभी फैशन रही होगी। जिसको तुम आज फैशन कहते हो, वह कल परंपरा बन जाएगी। जिसको तुम आज पूछते हो कि "बहुत पुराना है", वह भी कभी नया था। और लोग उस पर हंसे थे कि क्या नये की बात कर रहे हो?
बुद्ध ने जब पहली दफा बातें कहीं, तो लोग हंसे। उन्होंने कहा, "यह परंपरा नहीं है। यह तो नई बात कह रहा है। नई बातों को कौन मानेगा?" लेकिन आज बुद्ध की बातें परंपरा हैं।
जब जीसस ने पहली दफा कुछ कहा, तो यहूदियों ने उन्हें सूली लगा दी। क्योंकि यह आदमी नई बातें कह रहा था। आज जीसस की बातें परंपरा हैं।
समय सभी नई बातों को पुराना कर देता है। तो क्या समय का गुजर ही सत्य
की पहचान है? क्या बूढ़ा हो जाना ही सिद्धावस्था है? समय की जितनी धूल जम जाए, क्या उससे कोई फैशन मंदिर की महिमा पा लेगा? लेकिन सभी धार्मिक-- तथाकथित धार्मिक लोग ऐसा ही सोचते हैं।
सभी धर्म दावा करते हैं कि हमारी किताब से ज्यादा पुरानी कोई किताब नहीं है। हिंदुओं से पूछो, वे कहते हैं; "वेद से पुरानी कोई किताब नहीं है।" जैनों से पूछा, जैन कहते हैंः "वेद कितने ही पुराने हों, लेकिन हमारे पहले तीर्थंकर का नाम वेद में सम्मान से उल्लिखित हुआ है। तो एक बात तो पक्की है, कि जिस तीर्थंकर का नाम वेद में सम्मान से उल्लिखित हो, वह वेद से पुराना है।" क्योंकि सम्मान पाने में समय लगता है। समसामयिक व्यक्ति को कोई सम्मान नहीं देता! पैगंबर को भी पूजा पाने में समय लगता है, जब तक वह परंपरा न बन जाए।
अगर जैनों के पहले तीर्थंकर का नाम बहुत सम्मान से वेद में लिया गया है, तो उसका अर्थ है कि वेद जब लिखा जा रहा होगा, उस समय तक यह आदमी काफी पुराना हो चुका था। यह कोई जवान, क्रांतिकारी नहीं रहा होगा। तब तक इसकी परंपरा गन गई थी। तो जैन कहते हैंः "जैन धर्म से पुराना कोई धर्म नहीं है।" यही सभी धर्मों के दावे हैं।
पुराने का दावा किसलिए किया जाता है? क्योंकि हम सबकी मान्यता है कि "जितना पुराना, उतना बेहतर।" धर्म कोई शराब थोड़ी है कि जितनी पुरानी उतनी बेहतर! धर्म तो शराब से बिल्कुल उलटी चीज है। वह जगाती है, सुलाती नहीं है; होश में लाती है, बेहोश नहीं करती है। लेकिन सभी धार्मिकों ने उसे शराब की दुकान समझ रखा है। वे दावा करते हैं--पुराने का। जितना पुराना है, लगता है, बहुत महत्वपूर्ण है। परंपरावादी धार्मिक नहीं होता, पुराणपंथी होता है। पुराने को मानना आसान है। क्योंकि उसे खोजना नहीं पड़ता। उसे दूसरे खोज चुके हैं, तुम्हें खुद कोई चिंता करने की, साधना करने की, किसी अग्नि से गुजरने की जरूरत नहीं है। दूसरे जान चुके हैं; वह उधार है।
तुम उधार को स्वीकार कर लेते हो। फिर इतने लोगों ने स्वीकार किया है...
! जितना पुराना है, उतने ज्यादा लोग स्वीकार कर चुके हैं। हजारों लोग उसको मान चुके हैं। इससे महिमा मिलती है और लगता हैः जिसको हजारों ने माना, वह सच होगा ही। इस भ्रांति में मत पड़ना।
सत्य कोई लोकतांत्रिक व्यवस्था नहीं है कि अधिक मत सत्य के पक्ष में पड़ने हैं। बहुमत से सत्य का कोई संबंध नहीं है।
अक्सर ऐसा होता है कि सत्य को भीड़ कभी भी नहीं मानती। सत्य को अक्सर खोजने वाले व्यक्ति होते हैं--भीड़ नहीं। सत्य अक्सर ही भीड़ को चौंकाता है, तिलमिलाता है। लेकिन परंपरावादी मानता है कि जितने ज्यादा लोगों ने माना है--सदा-सदा से माना है, इसी को पाकर लोग ऋषि-मुनि हुए, तो यह सत्य होना चाहिए।
"लंबा समय" सम्मोहित करता है; क्योंकि इतनी बार दोहराया गया है-- तुम्हारे मस्तिष्क पर इतनी बार सुझाव दिया गया है कि दोहरते, दोहरते, दोहरते निशान पड़ गए हैं।

कबीर ने कहा है कि जैसे कुएं के पाट पर रस्सी बार-बार आती और जाती है, पानी खींचा जाता है, तो पत्थर पर भी निशान पड़ जाते हैं। ऐसा ही अगर कोई शब्द, कोई शास्त्र बार-बार तुम्हारी खोपड़ी पर से गुजरता रहे, गुजरता रहे, तो निशान छोड़ जाता है।
सत्य का कोई "निशान" नहीं होता। सत्य तो तभी उपलब्ध होता है, जब तुम्हारी चेतना से सभी निशान पुंछ जाते हैं; तुम कोरे हो जाते हो।
पुराने का सत्य से कोई संबंध नहीं है। लेकिन यह दरवेश परंपरावादी है-- दरवेश नहीं है। दरवेश का मतलब होता हैः सूफी; दरवेश का मतलब होता है-- इस्लाम में--योगी। लेकिन जो परंपरावादी है, वह योगी तो हो ही नहीं सकता। परंपरावादी कभी योगी नहीं होता। योगी सदा क्रांतिकारी है। धर्म से बड़ा कोई विद्रोही नहीं है, उससे बड़ी कोई क्रांति नहीं है, उससे बड़ा कोई रूपांतरण नहीं है।
"वह नैतिक प्रश्नों पर विचार करता हुआ, नदी तट से जा रहा था।" परंपरावादी विचार ही करते रहते हैं। "करते" नहीं--सिर्फ विचार करते हैं। बदलते नहीं--बदलाहट का सिर्फ हिसाब लगाते हैं।
परंपरावादी अक्सर "मकान" बनाने के नक्शे बनाते हैं, मकान कभी नहीं बनाते। मकानों के संबंध में सब जानते हैंः कैसे बनाया जाए, यह भी जानते हैं। सब ब्लू-प्रिंट तैयार रखते हैं, मकान कभी नहीं बनाते। लेकिन कोई ब्लू-प्रिंटो में रह तो नहीं सकता। वर्षा होती हो तो ब्लू-प्रिंट पानी को नहीं रोकेंगे। और धूप पड़ती हो, तो ब्लू-प्रिंट छाया नहीं देंगे। मकान चाहिए--झोपड़ा भी काफी है। कोई बहुत बड़े आर्किटेक्चर की जरूरत नहीं है। लेकिन झोपड़ा भी छाया देगा। परंपरावादी झोपड़ा भी नहीं बनाते, बड़े महलों के नक्शे उनके पास होते हैं! वे बड़े-बड़े प्रश्नों पर विचार करते हैं और जीवन में छोटा सा प्रश्न भी हल नहीं हो पाता।
वे सोचते हैंः नीति-अनीति, शुद्ध-अशुद्ध, सत्य-असत्य, शिव-अशिव; लेकिन
यह सब विचार का ताना-बाना होता है। ये सब मन में चलती हुई बातें होती हैं। उनके जीवन में अगर खोजने जाओ तो तुम वहां इनकी कोई भी झलक न पाओगे। "झोपड़ा" भी उनके पास तुम्हें न मिलेगा।
असल में झोपड़ा पास में नहीं है, इस बात को भुलाने का सबसे आसान रास्ता
यह है कि तुम महल बनाने का "विचार" करो। इसे ठीक से समझ लेना।
अगर झोपड़ा भी पास में न हो और वृक्ष के नीचे सोना पड़ता हो, तो सबसे बेहतर यह है कि सपना तुम महलों का देखो, तो फिर झाड़ के नीचे रहना आसान हो जाएगा। उससे, "झोपड़ा" मेरे पास नहीं है, यह बात भूलना सुगम हो जाएगी। क्योंकि महल का सपना जगह को घेर लेगा। अक्सर क्षुद्र जीने वाले लोग बड़े विराट प्रश्नों का चिंतन करते हैं।
यह दरवेश न तो दरवेश है, न तो धार्मिक है। लेकिन नैतिक प्रश्नों पर विचार करता हुआ नदी तट से गुजर रहा है।
एक बात और ख्याल में ले लेनी चाहिएः धार्मिक व्यक्ति के लिए नीति कोई विचारणा नहीं है, साधना है। वह यह नहीं चिंता करता है कि क्या ठीक है, क्या गलत है।
मैंने सुना हैः एक सूफी फकीर जुन्नैद के पास एक आदमी आया और उस आदमी
ने कहा कि "मैं बड़ा पापी हूं। और तुम्हारी बात मैंने सुनी है। तुमने कहा है, "पश्चात्ताप करो, सब पाप क्षमा हो जाएंगे। परमात्मा दयालु है, रहीम है, रहमान है; उसकी दया का कोई पारावार नहीं है।" तो मैं यही सुन कर चला आया हूं। मैं बड़ा पापी हूं। लेकिन पश्चात्ताप कैसे करूं, यह मुझे मालूम नहीं है! तो तुम मुझे बता दो, पश्चात्ताप क्या है।"
जुन्नैद ने बड़ा अजीब सवाल किया। जुन्नैद ने कहा, "और पाप करने के पहले तुम्हें पता था कि पाप क्या है?" वह आदमी थोड़ा चौंका। उसने कहा, "पाप करने के पहले मुझे यह भी पता नहीं था कि पाप क्या है। करके ही पता चला।" तो जुन्नैद ने कहा, "पश्चात्ताप कर। पाप करते वक्त किसी से तूने न पूछा कि पाप क्या है; कर गया! सोचा भी न; करके पता चला! पश्चात्ताप--पहले तू सोचेगा-- क्या है। तू पहले पश्चात्ताप कर ले, फिर बाद में तू जान लेगा।" जुन्नैद ने

कहा "यह आदमी की बड़ी गहरी तरकीब है। जो उसे करना है, उसे बिना सोचे करता है।
और जो नहीं करना है, उसके संबंध में सोच-विचार करता है।"
इसे तुम ठीक से समझ लेना, क्योंकि तुम भी यही कर रहे हो।
जो तुम्हें नहीं करना है, उसके संबंध में तुम काफी सोच-विचार करते हो। क्योंकि इससे ज्यादा, एस्केप करने का और कोई अच्छा उपाय नहीं है--कि सोचो और कहो कि जब तक सोच न लेंगे, करेंगे, कैसे?
और ध्यान रहे कि सोचना कभी भी निष्कर्ष नहीं बनता--कभी भी नहीं। सोचने
का कोई अंत ही नहीं है। वह अंधी दौड़ है; वह कहीं पहुंचती नहीं है। न तुम कहीं पहुंचोगे, न करने की झंझट आएगी।
पश्चात्ताप क्या है? मुश्किल है मामला। और फिर "पश्चात्ताप क्या है"--इसके जवाब से हजार सवाल उठेंगे और प्रश्नों का जाल खड़ा होगा, जिनको कभी कोई हल नहीं कर पाया है।
सारे दुनिया के शास्त्र तुम्हारे उन प्रश्नों को हल करने में चुक गए हैं और हल नहीं कर पाए हैं, जो प्रश्न तुमने इसलिए उठाए हैं कि तुम "करने" से बचना चाहते हो। मन की इस बेईमानी को पकड़ रखना, गांठ बांध लेना।
ध्यान रखना कि जो भी तुम करना चाहते हो। तुम कर ही लेते हो। क्रोध करना है--तुम करते हो। तुम कभी नहीं पूछते कि क्रोध क्या है--कि पहले उसका मनोवैज्ञानिक अर्थ समझें। क्रोध क्या है--इसकी जैविक प्रक्रिया समझें। क्रोध क्या है--उसका रासायनिक रूप समझें। क्रोध क्या है, उसका अस्तित्व में क्या प्रयोजन है? --पहले हम यह सब समझ लें, तब करेंगे। कोई भी इसकी फिकर नहीं करता। छोटा बच्चा भी उसकी फिकर नहीं करता, बड़े-बूढ़े भी इसकी फिकर नहीं करते।
क्रोध तुम करते हो। लेकिन अगर कोई कहेः "करुणा", तो तुम पूछते हो, "करुणा यानी क्या?" और बुद्ध भी थक जाते हैं--समझा-समझा कर और करुणा समझ में नहीं आती।
जुन्नैद ने ठीक कहा। उसने कहा, "पहले तू कर। और जैसे पाप करके तूने जाना, ऐसे ही पश्चात्ताप करके तू जानेगा।" करने के अतिरिक्त जानने का कोई उपाय नहीं है।
नदी के किनारे टहल रहे हैं, सोच रहे हैं... ! यह आदमी "करने" से बच रहा होगा। क्योंकि जिसे करना है, उसके पास खोने को समय कहां हैं? जिसे करना है, उसे नदी तट पर टहल कर नैतिक विचार करने की सुविधा कहां है! यहां फांसी लगी है, यहां गले पर तलवार लटकी है, प्रतिपल मौत दरवाजे पर दस्तक दे रही है-- किसी भी क्षण तुम समाप्त हो जाओगे। सुविधा कहां है--दर्शनशास्त्र में उतरने की? किसके पास समय है? लेकिन लोग सोचते हैं--जिंदगी भर।
एक सज्जन मेरे पास आते हैं। वे कम से तीन साल से कई बार आए गए हैं। सोच रहे हैंः संन्यास के संबंध में। जब वे इस बार आए तो मैंने उनको कहा, "तुम जिंदा रहते सोच पाओगे? कहीं ऐसा न हो कि तुम रहो ही न! और सोचते-सोचते तीन साल तुमने गंवा दिए। तुम तीन सौ साल भी गंवा सकते हो। और क्या सोच रहे हो? मुझे साफ कहो। कहीं धोखा तो नहीं है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि सोचने की आड़ में तुम संन्यास से बचना चाह रहे हो?"
"नहीं", उन्होंने कहा, "बात तो बिल्कुल ठीक ही लगती है। लेकिन यह तो ज्ञानियों ने भी कहा कि बिना सोचे कदम नहीं उठाना।" मैंने कहा, "और बाकी कदम तुम रोज उठाते हो, और तब तुम ज्ञानियों को बिल्कुल एक तरफ रख देते हो। सिर्फ संन्यास के संबंध में ज्ञानियों की बात समझ में आ रही है!"
पर आदमी अपने को धोखा दे सकता है। और विचारणा सबसे बड़ा धोखा है। विचार
का जाल ऐसी एक धुएं की स्थिति चारों तरफ पैदा कर देता है कि करने का उपाय नहीं रह जाता है।
अक्सर इसलिए मैं कहता हूं कि कभी-कभी अज्ञानी धार्मिक हो जाते हैं। क्योंकि अज्ञानियों का भरोसा "करने" पर होता है। तथाकथित पंडित चूक जाते हैं, क्योंकि पंडितों का भरोसा "करने" पर होता ही नहीं है।
यह आदमी सोच रहा हैः नैतिक विचारों पर; नदी तट पर टहल रहा है। यह उन सभी की तस्वीर है, जो विचार कर-कर के बच जाते हैं।

धर्म कृत्य है, वह एक्शन है; वह विचार नहीं है। और जो धर्म तुम्हारे विचार तक रह जाए, वह न तो तुम्हारे हृदय तक उतरेगा, न तुम्हारी हड्डी, मांस-मज्जा में प्रवेश करेगा। वह धुएं की तरह है। उसका कोई भी सार नहीं है। वह ज्योति नहीं है, जो तुम्हें बदल दे, जला दे, नया कर दे--नया जन्म दे दे। वह धुआं है, जो तुम्हें और अंधेरे में डालेगा, आंखें अंधी कर देगा।
"... अचानक दूर से "ऊ हू" की आवाज उसके कानों में पड़ी और उसकी विचार-धारा टूट गई। कहीं दूर कोई दरवेश मंत्र का पाठ कर रहा था।"
"अल्लाहू" मंत्र है। तुम ध्यान में जिस मंत्र का उपयोग कर रहे हो--"हू"
का, वह "अल्लाहू" का आखिरी हिस्सा है। वह सूफी मंत्र है।
तो सूफी फकीर "अल्लाहू, अल्लाहू, अल्लाहू" का मंत्र बोलता है। फिर जब मंत्र में निश्चित गति आ जाती है और उसके प्राण मंत्र में डूब जाते हैं और त्वरा बढ़ जाती है--अल्लाहू, अल्लाहू, तेजी से घूमने लगता है, तो "लाहू, लाहू" बचता है; अल्लाह खो जाता है। जितनी तेजी आती है, मंत्र "लाहू लाहू" जैसा मालूम पड़ने लगता है। फिर और गति आती है, मंत्र करने वाला भी खो जाता है; सारी प्राण-ऊर्जा उच्चारण करती है। तब "हू" बचता है। "लाहू" में से "ला" भी खो जाता है। तब "हू, हू, हू" ही गूंजने लगता है।
शुद्ध उच्चारण दूर नदी के पार से आती आवाज में नहीं था। वह "ऊ हू, ऊ हू"
कह रहा था। न तो वह "अल्लाह" था, न "लाहू" था, न "हू" था। वह उलटा "ऊ हू" कह रहा था। "ऊ" उसने न मालूम कहां से जोड़ दिया था।
विचारक रुक गया। उसे ठीक उच्चारण पता है। यद्यपि उसने कभी उस उच्चारण
को खुद किया नहीं है।
ठीक पता होने से जरूरी थोड़े है कि तुम करोगे। ठीक किसको पता नहीं है? ठीक सभी को पता है!
अगस्तीन ने अपने संस्मरणों में--"कनफेशंस" में--एक बात कही है; बात कीमती है। उसने कहा है, "हे परमात्मा, ठीक क्या है, वह मुझे पता है। और गैर-ठीक क्या है, वह मैं करता हूं। अब तू ही मुझे बचा।" क्योंकि "ठीक क्या है", यह भी मैं नहीं कह सकता कि मुझे पता नहीं है। वह बचाव मेरे लिए नहीं है। ठीक क्या है, वह मुझे पता है। मैं यह भी कह सकता कि मैं जो गैर-ठीक कर रहा हूं, जानता नहीं हूं। गैर-ठीक क्या है, वह भी मुझे पता है। अब तू ही बचा। ठीक पता होकर भी मैं करता तो गैर-ठीक ही था।
इस आदमी को ठीक उच्चारण पता है, हालांकि उसने कभी किया नहीं है।
क्योंकि उसने किया होता, तो यह आदमी ही और हो गया होता। फिर यह सोचता नहीं कि "नीति क्या है, अनीति क्या है?" इसके पास आंखें होतीं, यह खुद ही देख लेता कि शुभ क्या है, अशुभ क्या है।
अंधे सोचते हैं, द्रष्टा देखते हैं। विचारक सोचते हैं, ज्ञानी देखते हैं। इसलिए हम दर्शन-शास्त्र को "दर्शन" कहते हैं। दर्शन का अर्थ हैः जिसने देख लिया, वह सोचना-विचारना नहीं है।
अगर इसने देख ही लिया था, तो सोचना, विचारना क्या था! अंधे बैठ कर सोचते हैंः "प्रकाश क्या है, रंग क्या है, इंद्रधनुष क्या है!" लेकिन जिसके पास आंखें हैं, वह देखता है। सोचेगा क्या?
अक्सर तुमने देखा होगा, सोचने वाला लोग आंख बंद कर लेते हैं। सोचते वक्त आंख बंद कर लेना जरूरी है! अंधा हो जाना जरूरी है सोचने के लिए!
"... इसके कानों में आवाज पड़ी। मंत्र का गलत उच्चारण हो रहा है।" उच्चारण अशुद्ध है। पंडितों को अशुद्धि से बड़ा विरोध है--शब्दों की अशुद्धि से--जीवन की अशुद्धि से नहीं। व्याकरण में भूल हो जाए, तो पंडित को ऐसा लगता है कि जैसे कोई महाभूल हो गई। और व्याकरण सिर्फ खेल है।
जमीन पर कोई तीन सौ भाषाएं हैं, तीन सौ व्याकरण हैं। हर भाषा की अपनी व्याकरण, हर भाषा का अपना ढंग है। और सब ढंग कल्पित हैं। क्योंकि आदमी का बच्चा भाषा लेकर तो पैदा होता नहीं, भाषा सिखाई जाती है।
सब भाषाएं बनाई हुई हैं। और सब भाषाएं हमारा आपसी समझौता हैं। हमने
तय किया है कि कुर्सी को कुर्सी कहेंगे, कि चेयर कहेंगे। न तो कुर्सी चेयर है, न कुर्सी है। कुर्सी को पता ही नहीं है कि उसका नाम क्या है! तुम "कुर्सी" कहो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम "चेयर" कहो, इससे कोई फर्क

नहीं पड़ता। और "चेयर" में कोई भीतरी मूल्य नहीं है, जिससे खबर मिलती है; न "कुर्सी" में कोई भीतरी मूल्य है; सिर्फ स्वीकार है, सिर्फ कल्पना और एक समझौता है।
सारी भाषा समझौता है। और भाषा सामाजिक उत्पत्ति है; वह प्राकृतिक नहीं है। उसका प्रकृति से कोई संबंध ही नहीं है। अस्तित्व से संबंध होने का सवाल ही नहीं उठता। भाषा आदमी की ईजाद है। मगर आदमी अपनी ईजादों से बड़ा मोहित हो जाता है।
उसकी विचारधारा टूट गई--दरवेश की, और इस लगाः यह तो मंत्र का अशुद्ध उच्चारण हो रहा है। दरवेश ने सोचाः "एक जानकार के नाते, यह मेरा कर्तव्य है कि मैं जाऊं और मंत्र-पाठ की सही विधि उसे बात दूं।"
"जानकार" और "ज्ञानी" में फर्क करना पड़े; इस जानकार की वजह से जानकार
और ज्ञानी में फर्क करना पड़े। जानकार वह है, जिसे सूचना सही-सही है। और ज्ञानी वह है, जिसे अनुभव सही-सही है। जानकारी का अर्थ हैः इनफर्मेशन। इसको पक्की खबर है, यह जानकार है; यह शुद्ध उच्चारण बता सकता है। हालांकि इसने कभी मंत्र उच्चारित नहीं किया है। यह कभी मंत्र में लीन नहीं हुआ, डूबा नहीं। "अल्लाहू" कभी इसके लिए अनुभव नहीं बना। मगर इसे शास्त्र से पता है। शुद्ध व्याकरण इसने विश्वविद्यालय से सीखी है। पंडितों के चरणों में बैठ कर इसने भाषा का अनुभव लिया है।
इसको लगाः "एक जानकार के नाते, मेरा कर्तव्य है कि मैं जाकर उसे सही विधि बता दूं।" और जब भी तुम में जानकारी होती है, तो अक्सर तुम्हारा अहंकार तुमसे कहता है, जाओ और दूसरों को सही "विधि" बता दो। हालांकि विधि का तुम्हें खुद पता नहीं है। तुमने उसका स्वाद नहीं लिया है।
अहंकार अक्सर तुम्हें सलाहकार बना देता है। इसलिए दुनिया में तुम्हें जितने सलाह देने वाले लोग मिलेंगे, तुम चकित हो जाओगे कि उनकी सलाहों पर वे खुद नहीं चल रहे हैं। मगर दूसरों को सलाहें दे रहे हैं!
हर आदमी सलाह देने को उत्सुक है, तुम मौका भर दो। राह चलता राहगीर तुमको सुझाव देने को उत्सुक है--मुफ्त, और इनकी सलाहें कोई लेता भी नहीं है।
कहते हैंः दुनिया में सबसे ज्यादा चीज जो दी जाती है, वह सलाह है। और सबसे कम जो ली जाती है, वह भी सलाह है। मुफ्त सलाह भी कोई लेने को राजी नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने चिकित्सक के पास गया--एक दिन। बूढ़ा हो गया है। पुरानी आदतें पीछा नहीं छोड़तीं। बुढ़ापे में और भी नहीं छोड़तीं, क्योंकि आदतें छुड़ाने के लिए ताकत चाहिए। बुढ़ापे में वह ताकत भी नहीं रह जाती। और जब ताकत के समय में न छोड़ पाए, तो कमजोरी के समय में कैसे छोड़ोगे, इसे ख्याल रखना।
डगमगाते पैर, मुंह से शराब की बास आ रही है। डाक्टर ने कहा, "नसरुद्दीन, तुम इलाज के बाहर हो। तुम्हें ये आदतें छोड़नी पड़ेंगी। शराब पीना बंद करो। यह हुक्का गुड़गुड़ना बंद करो। यह गलत सही खाना-पीना बंद करो। समय से घर लौटो। अब यह स्त्रियों का पीछा बंद करो।"
नसरुद्दीन उठ खड़ा हुआ। उसने कहाः "धन्यवाद।" छड़ी उठा कर बाहर निकलने लगा। डाक्टर ने कहाः "रुको। मेरी सलाह के पैसे?" नसरुद्दीन ने कहाः "सलाह लूं तो पैसे दूं। सलाह ले कौन रहा है? और ऐसी सलाहें तो मुफ्त हमको देने वाले सब तरफ हैं। इसको पैसा देकर लेने तुम्हारे पास आएं! यह तो जो देखो वही हमको देता है। मुफ्त नहीं ली, पैसा देकर क्या लेना?"
सलाह कोई भी नहीं ले रहा है। और एक लिहाज से यह ठीक ही है। क्योंकि अक्सर जानकार सलाह देते हैं--जिनको खुद कोई अनुभव नहीं है। शायद लोग इसलिए नहीं लेते कि खतरा है--उस आदमी से लेने में, जिसको खुद को अनुभव नहीं है। वह गड्ढे में उतार दे सकता है।
अज्ञान कम से कम तुम्हारा अपना तो है! अपने पैर चलते तो हो। डगमगाते हो, कोई हर्ज नहीं। लेकिन जो सलाह दे रहा है, उसके पास ज्ञान के पैर नहीं हैं, न ज्ञान की आंख है। सिर्फ शब्दों का जाल है। उससे लेना खतरनाक भी है।

उस दरवेश ने सोचाः "जानकार के नाते मेरा कर्तव्य है कि जाऊं, मंत्र-पाठ की सही विधि बता दूं।" और वह एक नाव लेकर उसी छोटे से द्वीप पर पहुंचा। उस द्वीप पर बैठा हुआ वह फकीर गलत सूत्र-पाठ कर रहा था। पास जाकर इस "जानकार" दरवेश ने उसे ठीक सूत्र-पाठ सिखा दिया। और दिल में एक नेक काम करने की खुशी भर कर नाव में वापस लौट आया। एक अच्छा काम किया।
लेकिन क्या कभी तुम सोचते हो, कि जो सलाह तुमने अपने जीवन में नहीं उतारी, उसे दूसरे को देकर अच्छा काम हो सकता है? असंभव है। अगर अच्छा था, तो तुम खुद ही उसे जीए होते। तब शायद तुम्हें सलाह देने की जरूरत ही न रहती। तुम्हारा जीवन एक जीती हुई, जिंदा सलाह बन जाती। तुम एक सबूत होते, तब प्रमाण होते, एक गवाह होते।
लेकिन जिसको तुमने किया नहीं, उस अमृत को तुम दूसरे को देने जा रहे हो! पक्का है कि तुमने उसमें अमृत कभी माना नहीं। अन्यथा तुम खुद ही पी गए होते। तुमने उसका खुद स्वाद नहीं लिया है।
जिस ज्ञान को तुमने नहीं जीया है, उसे कभी किसी को देने की कोशिश मत करना वह ज्ञान है ही नहीं, कचरा है। और यह मत समझाना अपने को कि तुम कर्तव्य पूरा कर रहे हो। तुम सिर्फ अपना कचरा दूसरे के सिर पर डाल रहे हो। अच्छे शब्दों के बहाने बड़े बुरे काम किए जाते हैं।
"इस मंत्र की बड़ी महिमा थी और समझा जाता था कि इसके पाठ से आदमी पानी
की लहरों पर भी चल सकता है। लेकिन पहले दरवेश को इस बात का विश्वास भर था, कोई अनुभव नहीं था।"
ध्यान रखनाः विश्वास का कोई भी मूल्य नहीं है; अनुभव का मूल्य है। और
सच तो यह है कि अनुभव के बिना विश्वास भी कैसे हो सकता है? कहीं न कहीं अविश्वास छिपा ही रहेगा। अगर कोई इस दरवेश को कहता कि "चल जाओ पानी पर", तो यह कहताः "यह नहीं होने वाला है? ऐसा लोग कहते हैं, यह मैंने सुना है, पढ़ा है। इस मंत्र की बड़ी महिमा है, ऐसा मैं विश्वास भी करता हूं।"
लेकिन अगर विश्वास करते हो, तो चल क्यों नहीं जाते! फिर कमी और क्या है? लेकिन यह चलने को राजी नहीं होता। नाव लेकर गया था। नाव से वापस लौट रहा है। मंत्र नाव नहीं बन सका है अभी। अभी पानी पर चलने की कला नहीं आई। लेकिन दूसरे का अशुद्ध पाठ शुद्ध करने की चेष्टा आ गई है।
बड़ा मजा आता है--दूसरे को अज्ञानी सिद्ध करने में। तुम जब सलाह देते
हो तो असली कारण यह नहीं होता कि तुम दूसरे पर दया कर रहे हो। असली कारण यह होता है कि तुम जानकार हो और वह जानकार नहीं है। और बड़ा मजा आता है कि तुम जानते हो और दूसरा नहीं जानता।
यह सूक्ष्म तरकीब है--दूसरे को अज्ञानी सिद्ध करने की। लेकिन जो दूसरे को अज्ञानी सिद्ध करने करने चला है, उससे बड़ा अज्ञानी कौन होगा! क्योंकि ज्ञानियों ने तो सिद्ध किया है कि तुम्हारे भीतर महा-ज्ञान छिपा है। बुद्धों ने तो तुम्हें सचेत किया है कि तुम बुद्ध हो।
पंडित तुम्हें चेताते हैं कि तुम अज्ञानी हो। भटकोगे, नरक जाओगे, सड़ोगे। ठीक मंत्र पाठ करो, ठीक वेद का उच्चारण करो। जरा उच्चारण की भूल हुई कि गिरे नरक में।
पंडित तुम्हें डराते हैं, ज्ञानी तुम्हें जगाते हैं। वे कहते हैंः डरने को कुछ भी नहीं है। नरक कहां है? सिवाय तुम्हारे भयों के और कोई नरक नहीं है।
इसे विश्वास था; लेकिन मैं कहूंगा कि--विश्वास भी हो नहीं सकता--ऊपर-ऊपर था। विश्वास था इसे कि "मुझे विश्वास है", बस! अगर उसमें भी हम थोड़ी चीर-फाड़ करें, थोड़ी सर्जरी करें, तो विश्वास के नीचे अविश्वास छिपा हुआ पाया जाएगा।
पंडित संदेह से मुक्त ही नहीं हो पाता। पंडित के मन में संदेह बना ही रहता है। वह जो भी मानता है, उसके भीतर भी संदेह होता है। नहीं तो, यह पहला दरवेश पानी पर चल जाता।
मैंने सुना हैः एक गांव में वर्षा न हुई। एक वर्ष बीत गया, दूसरी वर्षा का समय भी आ गया और फिर भी वर्षा के कोई लक्षण नहीं। जमीन सूख गई,

दरारें पड़ गईं। लोग मुरझा गए। पानी नहीं, जानवर मर गए। लोग गांव छोड़कर भागने लगे।
गांव के पंडित ने कहा, "प्रार्थना करनी पड़ेगी। और तब तक दैवी शक्ति अवतरित न हो, जब तक भगवान साथ न दे... । अब हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। हम जो कर सकते थे, कर चुके। अब उसका सहारा मांगना होगा। सारा गांव इकट्ठा हो गया गांव के बाहर। सूखी पड़ी नदी के किनारे खड़े होकर हम प्रार्थना करें। काश, हमारी प्रार्थना सुन ली जाए, शायद।"
सारा गांव चला, पंडित चला। लेकिन सब हैरान हुएः एक छोटा बच्चा एक छाता दबाए हुए चला। जिसने भी उस बच्चे को देखा, उसने कहा, "अरे मूर्ख! छाता कहां ले जा रहा है? छाता किसलिए?" पंडित ने भी जब उसको छाता लिए हुए देखा तो उसने कहा "यह छाता कहां लिए जा रहे हो? छाते की क्या जरूरत है? तुझे पता नहीं कि दो साल से पानी नहीं गिरा है? उसी की प्रार्थना के लिए तो हम जा रहे है।" उस बच्चे ने कहा, "इसी ख्याल से मैं ले आया कि जब प्रार्थना होगी और पानी गिरेगा तो लौटते समय छाते की जरूरत पड़ेगी।"
बस, सिर्फ एक बच्चा छाता ले गया। पंडित भी--जो प्रार्थना करने गया था--
वह भी छात्रा लेकर नहीं गया था!
इस बच्चे में विश्वास है। इसकी आस्था निस्संदिग्ध है। और अगर यह बच्चा प्रार्थना करे, तो पानी गिर सकता है। बाकी इन पंडितों की प्रार्थना से कुछ भी न होगा। ये जो प्रार्थना करने जा रहे हैं, उस पर भी उन्हें भरोसा नहीं है। कर रहे हैं, जैसे एक मजबूरी है। एक विवशता है, इसलिए कर रहे हैं। विश्वास अनुभव के बिना हो ही नहीं सकता। अनुभव ही आस्था है। जब तुम अनुभव करते हो, तो ही तुम्हारी आस्था प्रगाढ़ होती है। जैसे-जैसे अनुभव का रस बढ़ता है, वैसे-वैसे आस्था की जड़ें तुम्हारे हृदय में फैलती हैं। जिस दिन अनुभव पूरा होता है, उस दिन तुम पूरे आस्थावान हो जाते हो। श्रद्धा कोई प्रारंभ नहीं है, निष्पत्ति है, अंत है।
दरवेश थोड़ी ही दूर गया वापस, अपनी नाव में, कि उसे फिर सुनाई पड़ा कि मंत्र का गलत पाठ शुरू हो गया है। वह फकीर फिर "ऊ हू" की आवाज कर रहा था। वह फिर भूल गया "अल्लाहूऋ।" वह फकीर कीमती रहा होगा!
एक "ज्ञानी" और एक "जानकार" की मुलाकात है--यह कहानी। जानकार इतने दूर गया बताने और ज्ञानी ने चुपचाप सुन लिया और उसने यह भी न कहा कि "छोड़ो भी, किसको समझाने आए हो?" न, इतना भी कहता, तो वह अज्ञानी सिद्ध होता। वह सीखने को राजी हो गया।
ज्ञानी से ज्यादा सीखने को और कोई राजी नहीं होता है। ज्ञानी जितनी सरलता से सीखने को राजी होता है, उतना इस जगत में कोई भी राजी नहीं होता है।
उसने कहाः "ठीक कहते हो। उच्चार गलत है; सिखा दो।" उसने इतना भी न कहा
कि "कोई जरूरत नहीं है। जैसा है, ठीक है। नाहक परेशान हुए।" वह एकदम राजी हो गया। ज्ञानी सीखने को सदा तैयार है।
इस बात को गहरे में समझ लेने की जरूरत है। और अगर तुम्हारे पास ऐसा ज्ञान हो, जो सीखने को तैयार न होता हो, तो समझना कि वह ज्ञान नहीं है, जानकारी है। ज्ञान कोई संग्रह नहीं है; ज्ञान जानने की, सीखने की उत्सुकता है। ज्ञानी नालेज नहीं है, ज्ञान लर्निंग है।
ज्ञान यह नहीं है कि तुमने जान लिया। वह तो मर चुका। जो जान लिया, वह कचरा हो चुका। वह जा चुका।
ज्ञानी--वह मनोदशा है। इस क्षण खुली, मुक्ताकाश की भांति--सब कुछ लेने
को तत्पर और राजी। जिसके द्वार बंद हों वह पंडित होगा, जानकार होगा। ज्ञानी के द्वार खुले हैं। सब तरफ, सब दिशाओं में--वह जो भी सीख सके, वह जिससे भी सीख सके। वह वृक्षों से सीख लेगा; पक्षियों से सीख लेगा; वह पंडितों तक से सीख लेगा। दूसरे को सीखने को कुछ भी नहीं है। इस पंडित से भी वह फकीर राजी हो गया। और उस फकीर ने न कहा--"छोड़ो भी। मेरा मंत्र सिद्ध हो चुका।" इतना वह कहता तो अज्ञानी सिद्ध होता। उसने कोई बात ही न की। उसने कहा कि, "ठीक कहते हो। अच्छा किया। बड़ी कृपा की। अनुग्रह कि गलत उच्चार कर रहा था, तुमने ठीक बता दिया। अब मैं ठीक ही करूंगा।"

लेकिन नाव थोड़ी दूर ही जा पाई होगी कि गलत उच्चार फिर सुनाई पड़ा।
जानकार को, पंडित को उस आदमी की भूल करने की जिद्द पर क्रोध आया।
पंडित की करुणा सिर्फ धोखा है, क्रोध ही सच है। अभी वह करुणा से भरा हुआ गया था--नाव लेकर, और एक क्षण में करुणा, क्रोध हो गई! करुणा कभी भी क्रोध नहीं होती।
जीसस से उनके एक शिष्य ने पूछा हैः "आप कहते हैं कि कोई हमारे एक गाल
पर चांटा मारे तो दूसरा गाल हम सामने कर दें। ऐसा कितनी बार करें? तीन बार में चल जाएगा?" जीसस ने कहा, "नहीं।" तो उस आदमी ने कहा, "सात बार में चल जाएगा।" जीसस ने कहा, "सात सौ सात बार में भी नहीं चलेगा। तेरा पूछना ही गलत है। उसका कोई अंत है? तू करते ही जाना। जब वह नहीं थक रहा है, तो तू क्यों थकेगा? उसे थका कर ही छोड़ना।"
सीखने का कोई अंत है? कहां चुक जाएगा सीखना? कहीं भी नहीं चुकेगा। करुणा का कोई अंत है? कहां चुक जाएगी करुणा? कहीं भी नहीं चुकेगी। जो चुक जाए, वह करुणा न थी। उसके नीचे क्रोध छिपा ही था। वह करुणा सिर्फ ऊपर का पलस्तर थी, रंग-रोगन था, वह ऐसा ही सौंदर्य था, जैसे कोई स्त्री रंग-रोगन किए जा रही हो। पूना की वर्षा में भी रंग-रोगन धुल जाएगा, और बहुत ज्यादा वर्षा की जरूरत नहीं है। वर्षा भी न हो, थोड़ा पसीना आ जाएगा तो दागें पड़ जाएगी। बस, करुणा ऐसी ही है। भीतर क्रोध भरा है।
तुम जब करुणा भी करते हो, तो क्रोध का ही एक ढंग है। और अगर दूसरा तुम्हारी करुणा को इनकार कर दे, तो वहीं क्रोध आ जाएगा। अब करुणा कोई इनकार करे, उसमें क्रोध का क्या सवाल है?
अगर उस फकीर ने कह दिया होताः "छोड़ो, मुझे सब पता है", यह आदमी वहीं क्रोध से भर गया होता। वह करुणा झूठी थी। वह क्रोध का ही एक रूप थी। वह क्रोध का ही शिष्ट, सुसंस्कृत ढंग था। क्योंकि जो प्रकट हो जाए--जल्दी से, वही तुम्हारी पहचान है। करुणा अगर जल्दी से क्रोध में बदल जाए तो... ।
गजब किया उस फकीर ने, पहले राजी भी हो गया--सीखने को, फिर उलटा पाठ शुरू
कर दिया। वह इस जानकार को जगाने के लिए जैसे पीछे ही पड़ गया हो।
जानकार क्रोधित हो गया। पंडित बड़े जल्दी क्रुद्ध हो जाते हैं। पंडित
का जो "बरतन" है, वह इतना पतला है, जिसका कोई हिसाब नहीं। तुम जरा सी उसकी न मानो, वह नाराज हो जाता है। तुम जरा लकीर से इधर-उधर चलो, वह नाराज हो जाता है।
अब कोई बड़ी गलती न हो गई थी; मंत्र उसका था। सिद्धि उसकी थी, तुम्हें क्रोधित होने की क्या जरूरत? तुमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया था। इसलिए सूफियों की एक कहावत हैः "नेकी कर और कुएं में डाल।" इस आदमी ने नेकी तो की, लेकिन कंधे पर रख ली, कुएं में नहीं डाली। यह बड़ा खुश लौट रहा था। वह खुशी भी अहंकार की खुशी थी--कि "अपना कर्तव्य निभा दिया। एक अज्ञानी को चिता दिया, एक भटके को राह पर ला दिया।" वह अहंकार ही था। और नेकी की है, कुछ भला किया है, मंगल कृत्य किया है, सेवा की है, तो कुछ अर्जित किया है, कुछ कमा कर लौट रहा था।
उस फकीर ने फिर वही पाठ दोहराना शुरू कर दिया। क्रोध आ गया। नेकी कभी क्रोध बन सकती है? लेकिन अगर तुमने कंधे पर रखी, तो बनेगी। इसलिए नेकी करो और कुएं में डाल दो। कुआं न मिले, कहीं और डाल दो। इसलिए यह मत सोचना कि कुआं दूर है, तब तक तो कंधे पर रखना है! सड़क के किनारे डाल दो। कंधे पर भर मत रखो। जब भी तुम भला करो, करते ही भूल जाओ। क्योंकि तुमने याद रखा कि बुराई शुरू हो गई। तुम्हारी "याददाश्त" में बुराई है।
तुमने अगर किसी का भला किया एक क्षण भी याद रखा, तो तुमने भले को पोंछ डाला, मिटा डाला। जो किया था, अनकिया हो गया। भले को करते ही भूल जाओ। जीसस का वचन हैः तुम्हारा दायां हाथ करे तो बाएं को पता न चले; तभी नेकी नेकी है। मगर यह अकड़ से लौट रहा होगा। गजब का काम किया थाः एक भटके को मार्ग पर लगा दिया था।
उस आदमी की भूल करने की जिद्द पर उसे क्रोध आया। लेकिन तभी एक चकित करने वाला दृश्य सामने था। वह चौंक गया! कोई भागा हुआ पानी पर चला आ रहा

है। नाव की जरूरत न थी। जब पास आ गया यह पानी पर दौड़ता हुआ तूफान, तो उसने देखाः यह तो वही फकीर है!
मंत्र की यही सिद्धि थी कि जो उस महा मंत्र को सिद्ध कर ले वह पानी पर
चल सकता है। उसको नाव की जरूरत नहीं है। पानी उसे डुबा नहीं सकता है। वह मंत्र नाव बन जाता है।
बड़ी मुश्किल में पड़ गया होगा--जानकार। और उसकी मुश्किल और बढ़ गई होगी, क्योंकि उस दूसरे फकीर ने उसके पास आते ही कहा, "माफ करना भाई, शुद्ध मंत्रोच्चार की विधि एक बार और बताने की कृपा करो। मैं तो भूल ही गया। तुम बता कर आए, इतना कष्ट किया। पुरानी आदतवश मैं फिर वही "ऊ हू, हू" करने लगा। एक बार और सही मंत्रोच्चार बता दो; बड़ी कृपा होगी।"
बड़ी अनूठी कहानी है। यह दूसरा आदमी अदभुत है! कई बातें समझने जैसी हैं।
पहलाः उच्चारण और व्याकरण का नाता नहीं है--परमात्मा से। तुम क्या बोलते हो, कैसे बोलते हो, यह परमात्मा नहीं सुनता। तुम किस हृदय से बोलते हो, वही सुना जाता है। एक बच्चे का हृदय चाहिए, जिसने अभी भाषा भी नहीं सीखी, जिसको अभी उच्चारण का भी पता नहीं है।
मैंने सुना हैः एक छोटा बच्चा रात अपनी प्रार्थना कर रहा है। उसकी मां ने सुना तो बहुत हैरान हुई। वह अंदर गई और उसने कहा, "क्यों रे नासमझ, यह कोई प्रार्थना का ढंग है?" नियम था घर का कि बच्चा रोज सोने के पहले प्रार्थना करके सोए। तो बच्चा कह रहा था, "आज डिट्टो--वही जो पहले भी कहा था।" और जल्दी से अपने कंबल के भीतर हो गया। क्योंकि स्कूल में उसने सीखा था कि डिट्टो कह देने से काफी हो जाता है। अब बार-बार वही प्रार्थना रोज-रोज कहने से क्या सार है! पहले भी कह चुके हैं। "वही फिर से"--समझ लेना! मां नाराज हो गई। लेकिन मैं जानता हूं, इस बच्चे की प्रार्थना सुनी जा सकती है। क्योंकि हृदय सुने जाते हैं, बुद्धि नहीं सुनी जाती है। वह आवाज जो वहां तक पहुंचती है, वह बच्चे की आवाज है, आस्था की आवाज है।
ये चालाकियां--व्याकरण की और गणित के हिसाब, ये होशियारियां, ये परिष्कार--इन सबका कोई संबंध नहीं है। नहीं तो कबीर और मोहम्मद कभी वहां पहुंच ही न पाएं।
सभी उच्चारण गलत हैं उनके; सारी व्याकरण उलटी-सीधी है। व्याकरण कभी पढ़ी ही नहीं है। कबीर ने कहा है कि कागज तो कभी हाथ से छुआ नहीं। मगर कबीर पहुंच गए।
कबीर जब मरने लगे तो काशी छोड़ दी, और मगहर चले गए। कहावत है कि मगहर में जो मरता है, वह गदहा होता है--मरने के बाद। और काशी में जो मरता है, सीधा मोक्ष जाता है। तो लोग मरने काशी जाते हैं--"काशी करवट"!
जब मरने के करीब होते हैं, तो लोग काशी में बस जाते हैं। इसलिए काशी में तुम्हें मुरदा ही मिलेंगे--या तो वे जो मर चुके हैं या वे जो मरने के करीब हैं--करवट की तैयारी है। तो बस, किसी तरह काशी में मर जाएं। वेश्याएं, विधवाएं, बूढ़े संन्यासी--इस तरह के लोगों का जाल है काशी में। पापी, सह सब तरह के, काशी में इकट्ठे हो जाते हैं, क्योंकि मर कर सीधे मोक्ष पहुंच जाएंगे।
कबीर मरने लगे तो उन्होंने कहा, "जल्दी मुझे मगहर ले चलो।" लोगों ने कहा, "पागल हो गए हैं--मरते वक्त? लोग मरने काशी आते हैं, तुम मगहर जा रहे हो! सुना नहीं है कि मगहर जो मरता है, वह गदहा होता है?" कबीर ने कहा, "अगर उसने आवाज सुनी होगी तो कहीं भी मरूं। और अगर उसने आवाज न सुनी होगी, तो भी क्या फर्क पड़ता है। कहीं भी मरूं। और अगर काशी में मर कर स्वर्ग पहुंचे, तो कबीर न पहुंचना चाहेगा। क्योंकि वह महिमा काशी की हुई, उसमें अपना क्या है? मगहर में मर कर पहुंचे, तो कुछ अपना है। आवाज सुनी गई--इसका पता चलेगा-- प्रार्थना पूरी हुई, जो किया था, वह सार्थक हुआ। मगहर ही मरूंगा। गदहा होना ठीक है, लेकिन अपने ही कारण होऊंगा। पक्का पता तो चले कि मेरी आवाज पहुंची वहां तक कि नहीं पहुंची।"
कबीर को पक्का भरोसा है, इसलिए मगहर जाकर मरे। जिनको भरोसा नहीं है,
वे काशी जाकर मरते हैं।

यह आदमी, यह फकीर, जो पानी पर चल कर आया है, इसकी विनम्रता का क्या हिसाब है! मंत्र सिद्ध हो गया है, फिर भी सीखने को तैयार है। अब और कुछ इस मंत्र में है नहीं। मंत्र नाव बन गया है। यह आदमी पहुंच ही गया है। यह पानी पर चल लेता है।
पानी पर चलना तो प्रतीक है। सिद्ध का लक्षण है कि इस जगत में उसे कोई चीज डुबा नहीं सकती। जगत भवसागर है--एक प्रतीक है कि समुद्र की तरह है जगत। इसमें तुम नाव पर भी चलो, तो भी डूबते हो।
तुम्हारी नाव भी डूब जाती है। क्योंकि कागज की नावें हैं। कितनी देर चलाओगे? और अक्सर तो यह होता है कि नाव में तुम इतना सामान भर लेते हो कि उसी के कारण वह डूब जाती है।
कागज की भी चल जाती है, लेकिन इतना परिग्रह (इकट्ठा)कर लेते हो, इतना धन, इतनी तिजोरियां रखते जाते हो--नाव में--कि आखिर में वही डुबाने का कारण हो जाती हैं, तुम क्या इकट्ठा करते हो, वही डुबा देता है। तुम्हारा साज-सामान, तुम्हारा साम्राज्य डुबा देता है।
यह तो प्रतीक है कि मंत्र सिद्ध हो जाए, तो सिद्ध पानी पर चल जाता है। फिर इस संसार में उसे कोई चीज डुबा नहीं पाती। फिर उबर ही गया वह। वह जहां भी चले--पानी भी उसके पैरों को नहीं छूता।
लेकिन सिद्ध होकर भी सीखने को राजी है--यह विनम्रता धार्मिक आदमी का लक्षण है। यह निरहंकार भाव है कि जब सीखने को भी कुछ नहीं बचा है, तब भी वह सीखने को राजी है।
और तुम्हारी हालत? जब सीखने को सब बाकी है, तब भी सीखने को राजी नहीं हो। सब बाकी है, अभी कुछ नहीं सीखा है; अभी क ख ग भी शुरू नहीं हुआ है। अभी पहली सीढ़ी पर भी पैर नहीं पड़ा है; लेकिन तुम सीखने को राजी नहीं हो, सिखाने को उत्सुक हो!
झेन फकीर बोकोजू के आश्रम में एक आदमी आया। और उसने कहाः "मैं भी आश्रम में ही रहना चाहता हूं।" फकीर बोकोजू ने कहा "आश्रम में रहने के दो ढंग हैं। या तो गुरु होकर रह सकते हो या तो शिष्य होकर। तुम क्या चुनोगे?" उस आदमी ने थोड़ा सोचा। सोचने का तो सिर्फ दिखावा किया। उसने कहाः "अगर यह मेरे हाथ में ही है चुनना, तो फिर गुरु होकर ही रहना ठीक रहेगा! जब मुझे ही पूछ रहे हैं कि क्या होकर रहना है, तो फिर गुरु ही होकर रहना ठीक रहेगा।" अब यह आदमी आया है आश्रम में, मगर गुरु होकर रहना चाहता है! इस मूढ़ को
यह ख्याल भी न आया कि बोकोजू मजाक कर रहा है।
तो बोकोजू ने कहाः "फिर यह आश्रम तेरे लिए नहीं है। तू कोई और आश्रम खोज। क्योंकि तू सिखाने आया है। अभी तूने सीखा भी नहीं है और सिखाने का वहम तेरे ऊपर सवार हो गया है!"
जो सीख लेते हैं, जो जान गए हैं, वे हमेशा विनम्र हैं। और जानने को तैयार हैं। यह सिद्ध पुरुष खड़ा हो गया, पानी में आकर, पास नाव के, और उसने कहा, "मेरे भाई, शुद्ध उच्चारण बता दो। मैं भूल गया। मेरी बुद्धि जरा कमजोर है, स्मृति जरा दीन है।"
कहानी यहां पूरी हो जाती है। सूफियों ने बड़ी दया की उस "जानकार" पर, इसलिए कहानी यहीं पूरी कर दी। जहां तक मुझे पता है, उसने फिर से शुद्ध उच्चारण बताया होगा! वह तो क्षमा कर दिया उसे, इसलिए कहानी पूरी कर दी। लेकिन पंडित चूक नहीं सकता--ऐसा मौका कि कोई पूछ रहा हो, और वह सलाह न दे। और पंडितों से अंधे आदमी खोजना कठिन है। यह चमत्कार उसे शायद ही ठीक
से दिखाई पड़ा हो--कि "यह आदमी पानी पर चल कर आ रहा है। और उचित हो कि अब मैं इसके सामने झुकूं और इससे सीख लूं। क्योंकि मंत्र सही है या गलत--यह सवाल नहीं है। यह आदमी सही है। और यह गलत से सही तक पहुंच गया और मैं सही हाथ में लिए चल रहा हूं और अभी तक नहीं पहुंच पाया। अभी मुझे नाव करनी पड़ती किराए की--उस तरफ जाने के लिए। मैंने भूल की जो इसे सिखाने का दंभ किया!"
गिर पड़ना था उसे, चरणों में इस फकीर के, और कहना था, "मुझे क्षमा कर दो। मैं ठीक को जान कर भी नहीं पहुंच पाया। तुम ठीक को न जानते हुए पहुंच गए।" रास्ते का सवाल नहीं है; चलने वाले का सवाल है। मंत्र का कोई सवाल नहीं है; मंत्रोच्चार करने वाले का सवाल है। गलत मंत्रों से लोग पहुंच गए

हैं, ठीक मंत्रों से भी लोग नहीं पहुंच पाए हैं। बिना मंत्र के लोग पहुंच गए हैं, महामंत्रों को कंठस्थ करके भी लोग नहीं पहुंच पाए हैं।
हृदय आंका जाता है; प्रेम कूता जाता है। तुम्हारे भाव सब कुछ हैं।
मंत्रों की चिंता छोड़ो। शास्त्रों की फिकर मत करो। शब्द दो कौड़ी के हैं।
तुम भावना को जगाओ; तुम भाव से जीयो। जरूरी नहीं है कि तुम राम-राम-राम दोहराओ। जरूरी यह है कि तुम उठो, बैठो, चलो, फिरो--राम न भूले।
दोहराने का सवाल नहीं है। तुम दोहराते रहो शब्द को, इसका कोई मूल्य नहीं है। यह तो ग्रामोफोन को रिकार्ड भी बिगड़ जाता है, सुई खराब हो जाती है, दरार पड़ जाती है, तो वह भी एक ही लकीर को दोहराता है। तो ग्रामोफोन के टूटे हुए रेकार्ड होने से कुछ तुम पहुंच न जाओगे। कि सुई अटक गई है एक ही जगह और एक ही लकीर दोहराने लगेः राम, राम, राम, राम। उससे कुछ न होगा।
भाव रहेः चलते-फिरते, उठते-बैठते राम ही दिखाई पड़े। वृक्ष में, पक्षी में, पौधे में, पत्थर में, मित्र में, शत्रु में उसकी ही झलक आए। जो भी तुम करो, उसकी सुगंध तुम्हें मालूम पड़ती रहे--उठो, बैठो, सोओ, उसकी ही सुरति बनी रहे।
भाव द्वार है, बुद्धि नहीं। उस कहानी का यही सार है।
तुम्हारी जानकारी नाव न बनेगी। तुम्हारे विश्वास भी तुम्हें पत्थरों
की तरह डुबा देंगे। अनुभव ही नाव बनेगी। और अनुभव की नाव ही आस्था लाती है।
तुम कितना जानते हो, इस कचरे पर बहुत भरोसा मत करना। यही तुम्हें डुबाएगा, इस कचरे को हटाओ।
पांडित्य से ज्यादा व्यर्थ और कुछ भी नहीं है। इसे हटा दो, खाली हो जाओ। निर्मल हो जाओ, और विनम्र हो जाओ।
उस निर्मलता और विनम्रता में सब कुछ घट जाता है--वह सिद्धि है, जो तुम्हें ताकत देगी कि तुम "नदी" पर बिना "नाव" के चल जाओ। यह पूरा भवसागर-- संसार का, तुम्हें डुबा न सकेगा। तुम्हारा हृदय, तुम्हारा होना ही नाव बन जाता है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
बारहवां प्रवचन

विचार की बोतल और निर्विचार की मछली

रीको ने एक बार अपने गुरु नानसेन से कहा कि बोतल वाली मछली की समस्या क्या है, कृपा कर मुझे समझा दें!
उसने कहाः "अगर कोई आदमी बोतल के भीतर मछली का एक बच्चा रख दे और बोतल
के मुंह के द्वारा उसे भोजन देता रहे, तो मछली बढ़ते-बढ़ते इतनी बड़ी हो जाएगी कि बोतल के भीतर उसके बढ़ने की और जगह न रहेगी।
उस हालत में वह आदमी उस मछली को किस तरह बाहर निकाले कि मछली भी न मरे
और बोतल भी न टूटे।
"रीको!" नानसेन चिल्लाया और जोर से उसने हाथों की ताली बजाई।
"हां गुरुदेव!" रीको चौंक कर बोला।
"देखो," नानसेन ने कहाः "मछली बाहर निकल आई।"
ओशो, इस झेन पहेली को हमें भी समझाने की कृपा करें।

जीवन की बड़ी से बड़ी पहेली यही है, कि जो कभी हुआ ही नहीं है, वह हो गया लगता है। तुम कभी सोए नहीं, और तुम रोज सो गए लगते हो। तुम कभी मरे नहीं, हर जीवन में तुम मरे हुए लगते हो। तुम कभी जन्मे नहीं, फिर भी कितनी बार तुमने जन्म लिया है! तुम क्षण भर को भी भटके नहीं, और अनंत जन्मों से तुम भटके हुए हो!
जीवन की बड़ी से बड़ी पहेली यही है कि जो कभी नहीं हुआ है, वह हो गया लगता है।
हिंदुओं ने इस राज को बड़ी गहराई से पकड़ा और उन्होंने कहा कि यह पूरा "खेल" एक बड़ी गहरी मजाक है। अगर परमात्मा कहीं है, तो उसकी हंसी रुकती ही न होगी। वह हंसता ही चला जा रहा होगा। क्योंकि कितनी गहरी मजाक हो गई। बुद्ध पुरुष जो भी पा लेते हैं वह उन्होंने सदा से पाया ही हुआ है।
बुद्ध को ज्ञान हुआ तो पूछा किसी ने "क्या मिला?" तो बुद्ध ने कहा, "मिला कुछ भी नहीं; जो मिला हुआ था, उसकी स्मृति आ गई। जिसे कभी खोया ही नहीं, उसे पहचान लिया।" जैसे एक खजाना तुम लेकर चलते हो और रास्ते पर भीख मांग रहे हो। और जैसे कोई तुम्हें चौंका दे और याद दिला दे कि "तुम और भीख मांग रहे हो! पागल हो गए हो! तुम सम्राट हो।" और तुम्हें याद आ जाए। परमात्मा सिर्फ याद आ जाने की बात है।
परमात्मा कहीं और नहीं है; तुम्हारा "होना" ही परमात्मा है। तुम परमात्मा हो।
और इससे ज्यादा पहेली की बात क्या होगी कि परमात्मा, परमात्मा को ही खोजने निकल गया हो! फिर अगर परमात्मा न मिलता हो, तो आश्चर्य क्या है? तुम्हें कभी भी परमात्मा न मिलेगा, क्योंकि तुम वही हो।
यह ऐसे ही है, कि मैंने सुना हैः एक आदमी आग खोज रहा था--घर में। अंधेरा था, इसलिए निश्चित ही दीया लेकर खोज रहा था! आग की बड़ी जरूरत थी। दीया लेकर आग खोज रहा था। पड़ोसी हंसने लगा और उसने कहा, "तू पागल है! क्योंकि आग तू हाथ में लिए है, अब खोजने की जरूरत क्या है? इस दीये से तो जितनी आग पैदा करनी हो, हो जाएगी।" तब उसे याद आया।
कई बार तुम्हारे जीवन में ऐसी घटनाएं घट जाती हैं कि तुम चश्मा लगाए-- चश्मा खोज रहे हो, चश्मे से ही। नहीं तो तुम खोजोगे ही कैसे? बहुत बार ऐसा हो जाता है कि लिखने-पढ़ने वाले लोग--क्लर्क, मास्टर, लेखक--कलम को कान पर खोंस लेते हैं, फिर खोजने लगते हैं। अब जो कान पर ही खुसी हो, वह खोजने से न मिलेगी।
कथा है--मुल्ला नसरुद्दीन के संबंध में कि भागा जा रहा था बाजार से अपने गधे पर। बड़ी तेजी में था। बाजार में लोगों ने भी पूछाः "नसरुद्दीन इतनी जल्दी कर कहां चले जा रहे हो?" उसने कहाः "अभी मत रोको, लौट कर बताऊंगा।" लौट कर जब आया तो लोगों ने पूछाः "इतनी जल्दी क्या थी?" उसने कहाः "मुझे दूसरे गांव जाना है और मैं अपने गधे को खोजने जा रहा था। फिर

मुझे गांव से बाहर जाकर याद आई कि मैं गधे पर बैठा हुआ हूं!" नसरुद्दीन ने कहाः "खैर, मैं तो नासमझ हूं। लेकिन मूर्खों, तुम्हें तो बताना था! मैं तो गधे पर बैठा था, इसलिए मुझे दिखाई भी नहीं पड़ रहा था! और मेरी नजरें तो आगे लगी थीं। लेकिन तुम्हें तो गधा दिखाई दे रहा था!" बाजार के लोगों ने कहाः "हमें तुमने मौका ही कहां दिया! हमने पूछा भी था कि नसरुद्दीन, कहां जा रहे हो?" नसरुद्दीन ने कहाः "उस वक्त मैं जल्दी में था।"
यह अनुभव तुम्हारे जीवन में भी कभी न कभी घटा होगा; घटा हो तो इसे समझना आसान हो जाएगा।
जब तुम कोई चीज खोजते हो, जो तुम्हारे पास है, इसका अर्थ हुआ कि चेतना में संभावना है--विस्मरण की। विस्मरण संसार है, स्मरण मोक्ष है।
तुम जिसे खोज रहे हो, उसे अगर तुमने सच में ही खो दिया, तो वह तुम्हारा स्वभाव नहीं हो सकता। स्वभाव को खोया नहीं जा सकता, ज्यादा से ज्यादा भूला जा सकता है।
यह संपदा कुछ ऐसी नहीं है कि तुम इसे छोड़ दो और भूल जाओ और यह चोरी चली जाए। यह संपदा तुम ही हो।
जैसे आग अपनी गरमी नहीं खो सकती, ऐसे ही तुम अपने चैतन्य को नहीं खो सकते हो। जैसे पानी अपनी शीतलता नहीं खोता, ऐसे ही तुम अपने सच्चिदानंद को नहीं खो सकते हो।
पर यह हो गया है। यह अनहोनी घटी है--कि तुम भूल गए हो। और इतने दिनों से भूले हो, इतनी परतें हो गई हैं भूल की बीच में--कि जब तक तुम उनको न तोड़ डालो, स्मृति का झरना वापस नहीं मिल सकता।
मुल्ला नसरुद्दीन से उसका मकान मालिक कह रहा है, "नसरुद्दीन, रुपये तुमने उधार लिए थे, क्या बिल्कुल भूल गए? आज छह महीने होने आ गए हैं, वापसी का कोई नाम नहीं है!" नसरुद्दीन ने कहा, "बड़े मियां, थोड़ा समय तो दो, निश्चित ही भूल जाऊंगा। तुम हर महीने याद दिलाए चले जाते हो; भूलने ही नहीं देते। थोड़ा समय दो।"
थोड़ा समय चाहिए--भुलाने के लिए; कुछ नहीं--सिर्फ थोड़ा समय चाहिए। राख
जम जाती है; रास्ते की धूल तुम्हारे चित्त पर बैठ जाती है। समय धूल इकट्ठी कर देता है। फिर भूल जाना कुछ कठिन नहीं है। सिर्फ समय के अंतराल के साथ ही स्मृतियां इकट्ठी हो जाती हैं
और बड़ी हैरानी की बात यह है कि तुम्हारी स्मृतियां जगत के संबंध में जितनी गहन हो जाती हैं, उतनी ही तुम्हारी "अपनी" विस्मृति गहरी हो जाती है। तुम्हें जानने में--तुमने जो-जो जान लिया है, वही बाधा है। तुम्हारे आत्मज्ञान में तुमने जो-जो जान लिया है, वही बाधा है।
और तुम इतना जानते हो कि उस जानने की पर्त बन गई है और उससे आत्मज्ञान
तक पहुंचना मुश्किल होता है। इसलिए ज्ञानियों ने कहा हैः "अज्ञान तो छोड़ो ही, ज्ञान को भी छोड़ोगे--तभी आत्मज्ञान होगा।"
जब तक तुम्हारी "जानकारी" न मिट जाए, जब तक तुम सब न भूल जाओ--जो तुमने सीख लिया है, जब तक अनलघनग न हो जाए--व्यर्थ की, सांसारिक की, बाहर की--तब तक आत्म-स्मृति न आएगी, तब तक सुरति न जगेगी।
तुम्हें खाली होना पड़े। खाली होने का इतना ही अर्थ है कि बीच में तुमने जो-जो सीख लिया है--समय के अंतराल में, उसे तुम हटा दो। और तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर कल-कल निनाद करता हुआ झरना बह रहा है। वह झरना ही परमात्मा है।
तुम "उसे" कहीं और खोज रहे हो। और कहीं भी तुम उसे न पा सकोगे; क्योंकि
वह तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है। तुम उसे घर के बाहर खोज रहे हो, वह घर के भीतर विश्राम कर रहा है। यही जीवन की पहेली है।
इस पहेली को ख्याल में रखें, तो फिर यह छोटी सी झेन कथा समझ में आ जाएगी।
झेन कथा के कई पहलू हैं, कई तल हैं। सभी धार्मिक कथाओं के कई पहलू और
कई तल होते हैं। कथाएं एक कीमती तकनीक हैं। जो बड़े-बड़े शास्त्रों में नहीं कहा जा सकता, वह एक छोटी सी कथा में कहा जा सकता है। क्योंकि कथा में चित्र उभर आते हैं; शब्द ही नहीं रह जाते, चित्र बन जाते हैं।

जब मैं इस कहानी को पढूं, तो तुम चित्र बनाने की कोशिश करना; ताकि तुम इसे "देख" भी सको--मात्र सुनो ही मत। क्योंकि अगर देख सकोगे तो ही इसका राज पकड़ में आएगा। और कहानी की खूबी यही है कि वह देखी जा सकती है; सोचना जरूरी नहीं है; उसका दर्शन किया जा सकता है।
सत्य और कहानी में यही जोड़ है। सत्य भी सोचा नहीं जा सकता है, देखा जा सकता है। कहानी को भी सोचने की जरूरत नहीं है, उसे तुम देख सकते हो। वह पिक्चोरियल है, उससे चित्र उभर आता है। और जब चित्र उभरता है, तब तुम जो देख पाते हो, जो तुम समझ पाते हो, वह अकेले शब्द से समझ न पाओगे।
मैं कहूं कि "सुबह बहुत सुंदर है", और तुमने कभी सुबह न देखी हो, तो तुम शब्द तो सुनोगे, लेकिन कोई चित्र न उभरेगा। और ये शब्द क्या कहेंगे--सुबह के संबंध में? "सुबह बहुत सुंदर है", ये शब्द बड़े फीके हैं। जिसने सुबह "देखी" है, उसके लिए अनंत आयामी है--सुबह का होना। वह ताजगी, वह हवा, वृक्ष, फूलों की गंध, पक्षियों के गीत, सूरज का उगना, अंधेरे का टूट जाना, आकाश का नये जीवन से भर जाना, सब तरफ पुलक जीवन की, सब तरफ अहोभाव, आनंद--इस सब को कैसे कहें?
"सुबह सुंदर है", इतना कहने से क्या पता चलता है? लेकिन जिसने सुबह देखी है और जो चित्र पैदा करने की कला नहीं भूल गया है "सुबह सुंदर है", यह सुनते से ही, शब्द तो खो जाएंगे, सुबह उभर आएगी। सब तरफ वृक्ष, हरियाली, सुबह की ताजी हवा, सोंधी गंध जमीन की, पक्षियों के गीत, सुबह का उठता हुआ नाद, सूरज का उगना, उसका फेंक देना प्रकाश के जाल को--सारी पृथ्वी पर, यह सब उसे दिखाई पड़ जाएगा।
चित्र बहुआयामी है। शब्द एक आयामी है, शब्द वन-डायमेंशनल है। जीवन मल्टी-डायमेंशनल है। इसीलिए जब तक तुम किसी चीज को देख न लो, तब तक उसकी ठीक झलक तुम्हारे भीतर नहीं आती। यही कारण है कि बुद्ध ने, जीसस ने, झेन और सूफी गुरुओं ने बड़ी से बड़ी बातें छोटी-छोटी कहानियों में कही हैं। क्योंकि कहानी चित्र बन जाती है। और अगर तुम जानते हो--चित्र को देखने की कला, तो तुम कहानी को जी सकते हो--समझना जरूरी नहीं है। और जीकर समझ आएगी-- जो स्वाद आएगा, वह बात ही अलग है।
इस कहानी को जीने की कोशिश करो। भूल जाओ क्षण भर को यह जगह, भूल जाओ क्षण भर के लिए तुम्हारा होना; ले चलो अपने को वहां, जहां रीको अपने गुरु नानसेन के पास बैठा है।
नानसेन एक सदगुरु है, एक बुद्ध पुरुष है। पृथ्वी पर थोड़े से ही ऐसे लोग हुए हैं, जिनमें नानसेन की गिनती की जा सकती है। बहुत अनूठा आदमी है। रीको अपने गुरु के पास बैठा है। और रीको ने अपने गुरु से कहा, "बोतलवाली मछली की समस्या क्या है? कृपा करके मुझे समझा दें।"
यह एक पुरानी पहेली है--झेन गुरुओं की। ध्यान के लिए झेन गुरु पहेली देते हैं, मंत्र नहीं देते। यह फर्क है।
झेन गुरु ध्यान करने के लिए पहेली देते हैं और पहेली ऐसी है, जो हल न
हो सके। क्योंकि झेन गुरु कहते हैंः "जो पहेली हल हो जाए, वह ध्यान नहीं बन सकती।" उसे तो तुम्हारी बुद्धि ही निपटा देगी। उसको तुम हल कर लोगे, बात खत्म हो जाएगी।
ऐसी पहेली जो हल न हो पाए, जिसको हल करने में तुम्हारी बुद्धि थक जाए, जिसको हल करने में तुम्हारा अहंकार गिर जाए, जिसको तुम हल करो, और करो, और करो, और फिर भी न कर पाओ, और हर बार दीवाल से टकरा जाओ। कहीं से दरवाजा न मिले और तुम इतने पीड़ित हो जाओ कि तुम चीखो और कहो कि "यह हल न होगा। यह मेरी बुद्धि की क्षमता के बाहर है।" जहां तुम्हारी बुद्धि थक जाए और गिर जाए और चिल्लाने लगे कि "यह मेरी सीमा के बाहर है"--वहीं द्वार खुलता है। क्योंकि बुद्धि जिसको हल कर लेती है, उसमें और गहरे जाने की जगह समाप्त हो जाती है। जिसको बुद्धि हल नहीं कर पाती, वहीं हृदय पुकारा जाता है। जिसको बुद्धि हल नहीं करती, वहीं तुम्हारे पूरे प्राण संलग्न होते हैं। जब बुद्धि हल नहीं कर पाती, तब तुम पूरे के पूरे जुट जाते हो--अकेली बुद्धि से नहीं जुटते। जिसको बुद्धि हल कर लेती है, उसे "तुम" निपटा देते

हो। बौद्धिक समस्या तो हल हो गई, लेकिन पूरे प्राणों को चुनौती नहीं मिलती।
झेन पहेली साधारण पहेली नहीं है। साधारण पहेली हल हो जाती है। थोड़ा सोचो, थोड़ा विचारो, थोड़ा इस कोने, उस कोने से मेहनत करो, साधारण पहेली हल हो जाती है। झेन पहेली ऐसी है कि जो हल हो नहीं सकती। यह पहेली एब्सर्ड है; यह बेबूझ है। अगर यह हल हो जाए, तो ध्यान करोगे? ध्यान का मतलब ही है--जहां बुद्धि न रह जाए।
मंत्र तो ध्यान नहीं बन सकता, क्योंकि मंत्र को बुद्धि ही दोहराती है। पुनरुक्ति तो बुद्धि से होती है। इसलिए सभी मंत्रों से बुद्धि की शक्ति बढ़ती है--ध्यान की नहीं। बुद्धि मजबूत होती है, नष्ट नहीं होती। मंत्र से तुम्हारा सोच-विचार प्रगाढ़ हो जाएगा--तीखा हो जाएगा, तर्कयुक्त हो जाएगा। मंत्र तुम्हारी बुद्धि को धार दे देंगे; लेकिन तुम्हारी बुद्धि को मिटाएंगे नहीं।
और जब तक तुम्हारी बुद्धि न मिटे, जब तक तुम अबोध न हो जाओ--बच्चे की भांति, तब तक इस जगत का रहस्य नहीं खुलेगा। यह जगत अपना रहस्य उनके सामने खोलता है, जो निर्दोष हैं। और बुद्धि कभी निर्दोष नहीं है। बुद्धि चालाक है। वह निर्दोष हो ही नहीं सकती। वह सदा सोच-विचार में लगी है।
सब सोच-विचार चालाकी है। सब सोच-विचार के पीछे संदेह है--आस्था नहीं है। और सब सोच-विचार के पीछे तुम अपने अस्तित्व से ज्यादा बुद्धिमान सिद्ध करने में लगे हो। एक संघर्ष है--सोच-विचार में, जैसे कि तुम जबरदस्ती ताला तोड़ देना चाहते हो--प्रकृति के रहस्य का।
बुद्धि एक हथौड़े की तरह है। लेकिन जितना तुम यह हथौड़ा पीटोगे, उतना ही ताला खुलना मुश्किल हो जाएगा। फिर शायद चाबी भी लगनी मुश्किल हो जाए। चाबी भी मिल जाए, तो भी न लगे। क्योंकि तुमने हथौड़े से इतना पीट दिया है ताले को!
इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि बहुत विचार करने वाले लोग, जब ध्यान करने
के लिए उत्सुक भी होते हैं, तो ध्यान नहीं लगता--चाबी भी हाथ में हो, तो ताला नहीं खुलता। क्योंकि ताले को इस बुरी तरह पीटा है। इसलिए बहुत विचारक लोगों को ध्यान बड़ा मुश्किल हो जाता है।
ध्यान का अर्थ साफ समझ लेना। ध्यान का अर्थ हैः जहां तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारी अस्मिता--तुम्हारा सब थक गया; जहां तुम्हारी चालाकी काम न आई और जहां तुम्हें हाथ जोड़ कर कहना पड़ा कि "यह मेरे वश के बाहर है।" तुम विवश, हेल्पलेस, असहाय हो गए। और जहां तुम असहाय हुए, वहीं सब द्वार खुल जाते हैं। जब तक तुम समझते हो कि मैं खुद ही काफी हूं, तब तक परमात्मा नहीं दौड़ता।
तुमने एक छोटी सी बच्चों की कहानी पढ़ी होगी। वह कहानी धर्म की दृष्टि
से बिल्कुल उलटी है। लगती धार्मिक है। सभी छोटे बच्चों की किताबों में वह कहानी हैः एक गाड़ीवान पार कर रहा है एक रास्ते को और एक नाले में उसकी गाड़ी उलझ गई, चाक फंस गए। तो वह बैठ कर प्रार्थना करने लगा। लेकिन भगवान की कोई सहायता न आई।
पास से निकलते एक फकीर ने कहा, "यह प्रार्थना काम न करेगी। आओ, चाक में जुटो; मैं भी जुटता हूं।" दोनों चाक में जुटे, गाड़ी नाले के बाहर आ गई। फकीर ने कहा, "अब हमारी प्रार्थना ने काम किया है।" लेकिन उस गाड़ीवान ने कहा, "यह क्या प्रार्थना हुई! हमने खुद ही गाड़ी निकाली है!" फकीर ने कहा, "जब तुम पूरी ताकत लगाते हो--गाड़ी निकालने में, तभी परमात्मा तुम्हारी प्रार्थना सुनता है।"
यह साधारण दिखने वाली कहानी धार्मिक मालूम पड़ती है, लेकिन है नहीं। क्योंकि परमात्मा की शक्ति तुम्हें उपलब्ध होती है, जब तुम सब भांति असहाय होकर गिर पड़ते हो; नहीं कि तुम आलस्य में पड़े होते हो। तुम अपनी पूरी ताकत लगाते हो। लेकिन पूरी ताकत लगाने से परमात्मा की सहायता नहीं मिलती, पूरी ताकत के चुक जाने से मिलती है।

तुम अपनी पूरी ताकत लगाते हो, फिर भी नहीं हल होता, तुम थक जाते हो, तुम कहते होः "अब मुझसे न होगा।" तुम्हारा अपने पर विश्वास उठ जाता है। इसे थोड़ा समझ लेना।
जब तक तुम्हें अपने अहंकार पर विश्वास है, तब तक तुम्हारी प्रार्थना
सच हो ही नहीं सकती; तब तक तुम कह रहे हो कि मैं कर लूंगा। प्रार्थना भी "तुम" ही कर रहे हो। और प्रार्थना सच कैसे होगी--जहां "तुम" हो?
प्रार्थना वहीं शुरू होती है, जहां तुम नहीं हो, जहां तुम असहाय बच्चे
की भांति चिल्लाते हो। और जहां तुम रोते हो, जहां तुम गिड़गिड़ाते हो और तुम कहते होः "अब मेरे किए कुछ न होगा। तुझे कुछ करना हो तो कर।"
इतनी गहरी असहाय अवस्था में ही तुम्हारा अहंकार बिखरता है, टूटता है, विसर्जित होता है। तुम पहली दफा खुलते हो। और जैसे ही तुम खुलते हो, परमात्मा की ऊर्जा उपलब्ध हो जाती है।
यह एक पुरानी झेन पहेली है। पहेली सदियों से चलती रही है। जितना पुराना झेन है, उतनी पुरानी यह कहानी है। कहानी यह है--और झेन गुरु अपने शिष्यों को यह पहेली देते रहे हैं--कि एक बोतल में मछली बंद कर दी गई; भोजन दिया गया। बोतल तो उतनी ही रही, मछली बड़ी होती गई। आखिर समय आ गया कि मछली इतनी बड़ी हो गई कि बोतल में एक रत्ती जगह न रही। अब मछली मरेगी, अगर बाहर न निकाली जाए तो। क्योंकि अब जगह नहीं बची।
ध्यान रहे, जहां बढ़ती बंद हो जाती है, वहीं मौत हो जाती है। जब तक बढ़ने
को जगह होती है, तब तक जीवन होता है। जब तक तुम बढ़ते हो, तभी तक जीवन होता है। जीवन "बढ़ने" का ही नाम है। और जिस दिन तुम्हारे पास बढ़ने को कोई जगह-- आयाम नहीं बचता, सब जगह भर जाती है, उसी दिन तुम मर जाते हो।
तो तुम ध्यान रखनाः "जिस दिन से तुमने बढ़ना बंद कर दिया है, उसी दिन तुम मर चुके हो। तुम्हारी बोतल चुक गई है। भला तुम अभी कब्र में न दफनाए गए हो, यह दूसरी बात है।
लोग मरते हैं और काफी समय लगता है--कब्र तक दफनाने में। मरने में और कब्र तक दफनाने में अक्सर तीस-चालीस साल का फर्क होता है। लेकिन मरने की भीतरी घटना उसी दिन घट जाती है, जिस दिन तुम बढ़ते नहीं। बढ़ने का अर्थ हैः जिस दिन तुम्हारा नया जन्म होना बंद हो जाता है; उसी दिन तुम मर गए, मौत पूरी हो गई। अब तुम व्यर्थ हो। अब तुम हो या नहीं हो, क्या फर्क है?
कल और आज में कुछ बढ़ती हुई? अगर बढ़ती हुई, तो तुम जीवित थे। और अगर बढ़ती नहीं हुई, तो तुम कल ही मर गए। आज तक आने का उपाय कहां है?
तुम अगर कल ही मर जाते, तो क्या हर्ज होता? अगर तुम आज तक बढ़े नहीं, इन चौबीस घंटों ने तुम्हें बढ़ाया नहीं, तो कल ही मर जाने में हर्ज क्या था? फर्क क्या था?
तुम सोचोः किस दिन तुम्हारी बढ़ती रुक गई? उस दिन के बाद तुम जीए? उस दिन बोतल की जगह समाप्त हो गई। तुम उसमें मरे हुए सड़ रहे हो।
जो व्यक्ति रोज जन्मता है, वही जीता है। जीने की कला तो उसे ही आती है,
जो प्रतिपल नया जन्म ले लेता है। उसकी बोतल आकाश जैसी बड़ी है, वह कभी नहीं चुकती। उसका खाली आकाश सदा शेष रहता है, वह बढ़ता ही जाता है--वह बढ़ता ही जाता है।
सभी बोतलें चुक जाती हैं, सिर्फ आकाश नहीं चुकता। इसलिए आकाश से छोटा जिसने आयाम चुना है, वह किसी न किसी दिन मर जाएगा। इसलिए हम कहते हैं कि परमात्मा से कम लक्ष्य मत चुनना। उससे कम चुना तो तुमने कोई न कोई छोटी बोतल चुन ली। वह कितनी ही बड़ी हो, आज नहीं कल बंद हो जाएगी।
परमात्मा को ही चुनना, क्योंकि वही अनंत है, असीम है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं, असीमता का नाम है, निराकारता का नाम है, महा-आकाश का नाम है। "उसको" ही चुनना, ताकि तुम सदा ही बढ़ते रहो, जन्मते ही रहो। और अनंत रहे यह जन्म की प्रक्रिया। तुम्हारी नदी बहती ही रहे, बहती ही रहे। परमात्मा में ही नदी सदा बह सकती है।
यह बोतल की कथा है। रीको पूछता है--अपने गुरु सेः यह पुरानी कहानी मैंने सुनी है। इसका राज मुझे समझा दें। यह समस्या क्या हैः कि बोतल में मछली बंद है, फिर इतनी बड़ी हो गई कि अब निकल नहीं सकती, न भीतर बढ़ सकती है।

और कठिनाई इससे खड़ी हो गई कि बोतल को भी तोड़ने नहीं देते। कहते हैंः बोतल भी कीमती है। बोतल को तोड़ना नहीं है, मछली को निकालना है! कहीं से रास्ता दिखता नहीं है।
रास्ता तो साफ है।
अगर बुद्धि से पूछो तो क्या रास्ता है? बुद्धि के पास दो विकल्प हैं। पहला रास्ता तो यह है कि बोतल तोड़ दो--मछली को बचाना हो तो। दूसरा रास्ता यह है कि बोतल बचाना हो तो मछली को मर जाने दो।
बुद्धि के विकल्प साफ हैं, बड़े ऊपरी हैं। और झेन कहता हैः यह भी कोई रास्ता हुआ! बोतल टूट गई, यह कोई रास्ता हुआ? कि मछली मर गई, यह कोई रास्ता हुआ? कुछ ऐसी तरकीब खोजो कि न बोतल टूटे, न मछली मरे! बस, बुद्धि मुश्किल में पड़ जाती है।
बुद्धि को दो विपरीत में से एक को चुनना सदा आसान है। लेकिन अगर दोनों विपरीत एक साथ बचाना हो, तो बुद्धि मुश्किल में पड़ जाती है। यही इस कथा का गहरा राज है।
ध्यान कहता हैः कोई कारण नहीं है; बोतल भी बच सकती है, मछली भी बच सकती
है और दोनों हाथ लड्डूखाए जा सकते हैं।" ध्यान का यही रहस्य है कि "लड्डू" तुम भी खा सकते हो, बचा भी सकते हो।
बुद्धि कहती हैः लड्डू खाओगे, तो बचेगा नहीं। बचाना हो तो खा नहीं सकते। इसलिए बुद्धि को ध्यान बिल्कुल समझ में नहीं आता। ध्यान बेबूझ है। क्योंकि ध्यान कहता हैः विपरीत एक साथ हो सकते हैं। लड्डू खा भी सकते हो, बचा भी सकते हो।
और ध्यान कहता हैः अंधे हो तुम, इसलिए तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा है। विपरीत एक साथ घट ही रहे हैं। जिस क्षण तुम मरते हो, उस क्षण तुम जी भी रहे हो। जिस क्षण तुम जीते हो, उसी क्षण तुम मर भी रहे हो। जीवन-मृत्यु दो घटनाएं नहीं हैं, एक ही गाड़ी के दो चाक हैं, और एक साथ घट रहे हैं।
तुम जवान हुए; तुमने कभी ख्याल किया कि तुम्हारे भीतर का बच्चा मरता गया! अन्यथा तुम जवान कैसे होते। तुम एकतरफा देख रहे हो कि जवानी हो रही है। तुम यह नहीं देख रहे कि बचपन मर रहा है। हर पल बचपन मर रहा है और हर पल जवानी पैदा हो रही है। इसलिए तो तुम जवान हुए। फिर तुम बूढ़े हो गए, तो बुढ़ापा पैदा हो रहा है और जवानी मर रही है।
अतीत मर रहा है, भविष्य जन्म रहा है। और दोनों के मध्य में तुम हो। दोनों तुम्हें सम्हाले हैं; दोनों के बीच तुम सेतु की भांति हो। दोनों किनारे तुम्हारे हैं।
लेकिन बुद्धि ने समझा रखा है कि जन्म हुआ सत्तर साल पहले, अब मौत हो रही है, दोनों अलग हैं। लेकिन कभी तुमने सोचा कि अगर दोनों अलग हों, तो हो कैसे सकते हैं? अगर दोनों इतने अलग हैं, तो तुम दोनों के बीच में यात्रा कैसे कर सकते हो?
तुम जन्म से लेकर मृत्यु तक पहुंच जाते हो तो जन्म और मृत्यु भीतर जुड़े होने चाहिए, सेतु होना चाहिए, अन्यथा तुम पहुंचोगे कैसे? जीवन मृत्यु तक पहुंचेगा कैसे? तुम जाओगे कैसे वहां?
तुम नीचे से ऊपर तक आ गए हो--चढ़ कर, क्योंकि सीढ़ियां बीच में जुड़ी हैं। तुम अपने घर से यहां तक आ गए हो, क्योंकि रास्ता बीच में जुड़ा है। तुम जन्म से मौत तक पहुंच जाते हो, तो जन्म और मृत्यु कहीं भीतर जुड़े होने चाहिए। वे भिन्न-भिन्न नहीं हो सकते, अभिन्न होने चाहिए। जन्म और मृत्यु एक ही चीज के दो छोर होने चाहिए।
घट ही रहा है; अस्तित्व में विपरीत साथ-साथ घट रहे हैं। जीवन और मृत्यु साथ-साथ घट रहे हैं। प्रेम और घृणा साथ-साथ घट रहे हैं। विवाह और तलाक साथ-साथ घट रहे हैं। लेकिन बुद्धि तोड़ कर देखती है। बुद्धि एक हिस्से को देखती है, दूसरे की तरफ आंख बंद कर लेती है।
बुद्धि के देखने का ढंग अधूरा है; वह आधे को देखती है। आधे को ही देख सकती है, पूरे को चूक जाती है। इसको जिसे भी पूरा देखना हो, उसे बुद्धि के पार जाना पड़े।

पूछा रीको नेः "यह समस्या क्या है?" समस्या यही है कि क्या विपरीत साथ-साथ हो सकते हैं या हमें चुनाव करना ही पड़ेगा? यही समस्या है--इस मछली और बोतल की।
शिष्य अक्सर गुरु के पास आ जाते हैं--वापस लौट कर वे कहते हैंः "यह तो बात ही फिजूल है, मूढ़तापूर्ण है। बोतल तोड़नी पड़ेगी। और अगर बोतल बहुत कीमती है, तो मछली को मरना होगा। और कोई रास्ता नहीं है।"
बुद्धि के पास विपरीत के बीच से जाने वाला रास्ता है ही नहीं। क्योंकि बुद्धि गणित को मान कर चलती है। गणित विपरीत को स्वीकार नहीं करता।
गणित का नियम ही यही है कि यदि रात है, तो दिन नहीं हो सकता। दिन है, तो रात नहीं हो सकती। अगर तुम अमीर हो, तो साथ ही गरीब कैसे हो सकते हो। लेकिन हम जानते हैं, तुम भी जानते हो कि अमीर गरीब हो सकता है। और तुम उससे उलटा भी जानते हो कि गरीब भी अमीर हो सकता है। हमने बुद्ध जैसे भिखारी को भी देखा है। और उनसे बड़े अमीर को तुम कहां खोजोगे? उनको देख कर सम्राट फीके पड़ जाएं। उनको देख कर सम्राट झेंप जाएं।
बुद्ध बैठे थे, काशी के बाहर, एक वृक्ष के नीचे; विश्राम कर रहे थे। काशी का सम्राट आत्महत्या करने, अपने रथ पर, गांव के बाहर निकला। घबड़ा गया था--महल, धन, समस्याएं, उलझनें; कोई रास्ता नहीं सूझता था; आत्महत्या का सोच लिया।
सम्राट फांसी पर लटके ही रहते हैं। तुम्हें उनकी फांसी नहीं दीखती! तुम उसे सिंहासन समझते हो। क्योंकि तुम इतने दूर हो कि तुम्हें वहां से कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन सम्राटों से पूछो--सिंहासन फांसी बन जाता है।
वह जा रहा था जंगल की तरफ, पहाड़ की तरफ, जहां से गिर कर आत्महत्या कर ले।
सांझ का वक्त, सूरज डूबता है, और आखिरी किरणें बुद्ध के ऊपर पड़ रही हैं। और अचानक इस दुख-संताप से ग्रसित सम्राट की आंखें वृक्ष के नीचे बैठे हुए बुद्ध पर पड़ीं। एक क्षण को मोहित हो गया, एक क्षण को भूल ही गया कि वह आत्महत्या करने निकला था। सारथी से कहाः "रुक। यह कौन आदमी है? आदमी नहीं मालूम पड़ता! जैसे वृक्ष का देवता हो! ऐसी सुंदर काया मैंने देखी नहीं। और भिखारी मालूम पड़ता है! भिक्षापात्र पास में रखा है। वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हैं, फटे-पुराने हैं। लेकिन भीतर से जो झांक रहा है, वह बड़ा महिमापूर्ण है। रुक, इस आदमी को शायद जिंदगी का राज मिल गया हो। जिस जिंदगी को मैं गंवाने जा रहा हूं, लगता है, इस आदमी ने उस जिंदगी में कुछ पा लिया है। यह इतना तृप्त है; यह इतना आनंद-विभोर है, जैसे कहीं जाने को नहीं है; कुछ पाने को नहीं है। जैसे उसकी कोई चाह नहीं, कोई वासना नहीं है। जैसे यह पहुंच गया है--मंजिल पर। यह कौन है!"
सम्राट रथ से उतर कर नीचे आया और उसने बुद्ध से कहाः "मैं आत्महत्या करने जा रहा हूं। मैं काशी का सम्राट हूं, लेकिन मुझसे दीन, भिखारी तुम दूसरा न पाओगे। और तुमने मुसीबत कर दी। तुम बिल्कुल विपरीत मालूम पड़ते हो! तुम बिल्कुल भिखारी हो, भिक्षापात्र रखा है, वस्त्र तुम्हारे जीर्ण-शीर्ण हैं, थेगड़े लगे हैं। और तुममें देखता हूं, तुम्हारे चेहरे पर यह डूबता हुआ सूरज जो किरणें डाल रहा है, तुम ऐसी महिमा से मंडित मालूम पड़ते हो! क्या है राज जिंदगी का?"
बुद्ध ने आंखें खोली और कहाः "तू जैसा है, ऐसा कभी मैं भी था। और जैसा मैं हूं, ऐसा तू भी कभी हो सकता है।"
बुद्ध भी कभी सम्राट थे और इतने ही दीन थे। और बुद्ध उससे कह रहे हैं
कि तू कितना ही दीन हो, जैसा सम्राट मैं आज हो गया हूं, वैसा तू भी हो सकता है।
"मैं अनुभव से कह रहा हूं", बुद्ध ने कहाः "क्योंकि जहां से तू गुजर रहा है, मैं भी वहां से गुजरा हूं। ये अंधेरी रातें मैंने भी देखी हैं--जब आत्महत्या का भाव पकड़ता है, खुद को मिटा लेना चाहते हैं; जब सब अंधकारपूर्ण दिखता है; सिवाय चिंता के जीवन में कुछ नहीं दिखाई पड़ता। कोई

फूल नहीं खिलते; सब कांटे ही कांटे चुभते हैं। मैंने भी चिंता जानी है, गहन पीड़ा जानी है।"
जिंदगी में अगर देखो, तो यहां भिखारी मिल जाते हैं, जो सम्राट हैं! लेकिन गणित से पूछो, तो गणित कहेगाः "जब रात है, तब रात है; जब दिन है, तब दिन है। गरीब गरीब है; अमीर अमीर है। गणित साफ है।" और गणित चीजों को दो हिस्से में बांट देता है।
जिंदगी बड़ी पहेली जैसी है। जिंदगी में सब इकट्ठा है; सब यहां जुड़ा है। इसलिए यहां जिन्होंने खोया, उन्होंने पा लिया। और यहां जिन्होंने बचाया, उन्होंने खो दिया।
जीसस कहते हैं निकोडेमस से, "निकोडेमस, जो बचाएगा जिंदगी को, वह उसे खो देगा। और जो खो देगा, वह बचा लेगा।" वह जीसस यही कह रहे हैं--मछली और बोतल का राज निकोडेमस से कह रहे हैं।
राज क्या है? राज इतना है कि बुद्धि कहती है "एक को बचाया जा सकता है।
एक को छोड़ना ही होगा।"
विपरीत एक साथ नहीं बच सकतेः यह बुद्धि की निष्पत्ति है। और जिंदगी विपरीत से बनी है। इसलिए जो बुद्धि की मान कर चलेगा, वह जिंदगी को गंवा देगा। और अगर तुम्हें दिखाई पड़ जाए कि जिंदगी विपरीत, पोलर अपोजिट्स से बनी है, तो तुम बुद्धि को छोड़ने को राजी हो जाओगे। क्योंकि जिंदगी महामूल्य है। बुद्धि का मूल्य ही क्या है? एक छोटा सा शोरगुल है--तुम्हारे भीतर।
पूछा रीको ने गुरु नानसेन सेः "बोतलवाली मछली की समस्या क्या है? कृपा कर मुझे समझा दें।" सदियों से सुनते रहे हैं, इस कहानी को, इसमें भीतरी राज क्या है?
रीको ने कहाः "अगर कोई आदमी बोतल के भीतर मछली का एक बच्चा रख दे और बोतल के मुंह द्वारा उसे बराबर भोजन देता रहे, तो मछली बढ़ते-बढ़ते इतनी बड़ी हो जाएगी कि बोतल के भीतर उसके बढ़ने की और जगह न रहेगी। उस हालत में वह आदमी उस मछली को किस तरह बाहर निकाले कि मछली भी न मरे और बोतल भी न टूटे।" यह तो कहानी है।
यह कहानी सुनते ही नानसेन ने जोर से आवाज दीः "रीको?" नानसेन चिल्लाया। रीको के मस्तिष्क से कहानी तो छिटक गई होगी--उस आवाज को सुन कर। क्योंकि यह इतनी आकस्मिक थी।
ध्यान रहे, आकस्मिक घटना ही तुम्हें थोड़ी देर के लिए बुद्धि से बाहर
ले जाती है--अचानक। क्योंकि बुद्धि कोई तारतम्य नहीं बना पाती।
अगर कभी तुम कार से चल रहे हो, और अचानक देखते हो कि दुर्घटना होने के करीब है--बस एक्सिडेंट हुआ; उस क्षण बुद्धि तारतम्य छोड़ देती है। उस क्षण तुम देखते रह जाते हो, सोचने का कोई उपाय नहीं होता।
जहां तुम पाते हो कि कुछ आकस्मिक है, वहां सोचने का उपाय नहीं होता।
और जहां तुम पाते होः कुछ व्यवस्थित है--आकस्मिक नहीं, कार्य-कारण में बंधा है, वहां सोचने का उपाय होता है। क्योंकि सोचने के लिए समय चाहिए। सोचना बिना समय के नहीं हो सकता। सोचने के लिए जगह चाहिए। बिना जगह के सोचना नहीं हो सकता। और सोचने के लिए अतीत से तारतम्य चाहिए, परंपरा चाहिए, सिलसिला चाहिए। अगर सिलसिला न हो, तो सोचना नहीं हो सकता।
इस गुरु ने क्या किया? इसने कहानी नहीं समझाई। वह कहानी के संबंध में कुछ बोला ही नहीं। अचानक कहानी सुन कर उसने जो किया, वह बड़ी बेबूझ बात मालूम पड़ती है। कहानी सुन कर कहानी के संबंध में कुछ कहता। रीको उसे समझता, सोचता।
नानसेन जोर से चिल्लायाः "रीको!" जैसे घर में अचानक आग लग गई हो! कहानी अभी व्यर्थ है। अभी कहानी का वक्त नहीं है। मानो जैसे गुरु अचानक मर रहा हो; उसकी सांस रुंध गई हो, कि हृदय का दौरा पड़ा हो। कि जैसे कुछ ऐसा घट रहा है कि अभी कहानी की बात बंद कर।
उसने जोर से चिल्लायाः "रीको!" नानसेन चिल्लाया, और जोर से उसने हाथों
की ताली बजाई--न केवल चिल्लाया, बल्कि दोनों हाथों से जोर से ताली बजाई।

चौंका दिया होगा। ताली बजा दो अचानक, तो वृक्ष पर झपकी मारता पक्षी जैसे चौंक जाता है, ऐसे ही कहानी में डूबी रीको की बुद्धि चौंकी होगी। आवाज दीः "रीको!" और उसने कभी सोचा न था कि कहानी के बाद आवाज दी जाएगी। सोचा होता तो कोई अड़चन न होती।
तुमने कहानी सुन ली और अगर तुम नानसेन के पास जाओ और तुम पूछोः "इस बोतल वाली मछली का राज क्या है?" और तुम कहानी बताओ। और नानसेन कहे, "रीको!" तो कुछ परिणाम न होगा।
कहानी तुम जानते हो। रीको को कहानी पता नहीं थी। इसलिए सदगुरुओं को रोज--रोज नई-नई विधियां ईजाद करनी पड़ती हैं। क्योंकि जो भी कहानी तुम्हें पता हो, वह बेकार हो गई। क्योंकि जो भी तुम्हें पता है, बुद्धि उसके साथ इंतजाम जमा लेगी।
अगर तुम पूछो "कहानी का राज क्या है?" और नानसेन कहे, "रीको!" तो तुम जानते ही हो कहानी को। तुम कहोगे, "जी।" पर वह "जी" बुद्धि से आएगा, वह झूठा होगा, वह कहानी का हिस्सा होगा। वह वास्तविक नहीं होगा। तुम कहानी की पुनरुक्ति कर रहे हो। तुम नाटक के हिस्से हो, प्रामाणिक नहीं हो।
लेकिन रीको के साथ वह पहली दफा घटा था। उसे पता ही नहीं था कि नानसेन क्या करेगा। और जो भी वह सोच सकता था, वह, यह नहीं था। सोच सकता था कि नानसेन कुछ कहेगा, समझाएगा।
नानसेन ने सिर्फ आवाज दी। न केवल आवाज दी, जोर से हाथ की ताली बजाई। टूट गई होगी नींद--एक क्षण को, चौंक गया होगा। कहानी छिटक गई होगी। भीतर कहानी का जो सिलसिला था, वह एकदम टूट गया होगा। एक क्षण को अंतराल पैदा हुआ होगा। सुना होगा--"रीको!"--और हाथ की ताली। उत्तर जो आया होगा, वह बुद्धि से नहीं आ सकता। वह बीच के अंतराल से, खाली जगह से आया होगा। उसने कहा, "गुरुदेव!" रीको चौंक कर बोला।
यह तो कोई कहानी का हिस्सा ही न था। कहानी से इसका कोई जोड़ न था। यह कहानी से बिल्कुल टूटी हुई बात थी, अलग ही थी, गैर-सिलसिले में थी।
ध्यान रहे, सदगुरु तुम्हें गैर-सिलसिले में ले जाने के लिए निरंतर नई विधि खोजेगा। क्योंकि सब पुरानी विधियां बेकार हो जाती हैं। मन इतना होशियार है कि पुरानी विधियों को सीख लेता है वह कहता हैः मैं पारंगत हो गया। करवाओ--मैं करने को तैयार हूं। जपवाओ--राम-राम, मैं जपूंगा। आसन करवाओ, शीर्षासन लगवाओ मैं लगाऊंगा। यह सब मुझे पता है। पतंजलि के सभी योगसूत्र मैंने पढ़ लिए हैं।
लोग आकर मुझे पूछते हैं कि "आप नई-नई विधियां क्यों ईजाद करते हैं? क्या पुरानी काम नहीं देंगी?" पुरानी काम न देंगी, क्योंकि मन जिसको भी जान लेता है, उसी को व्यर्थ कर देता है। इसलिए जब भी पतंजलि पैदा होंगे, उन्हें नई व्यवस्था करनी पड़े; उन्हें फिर से योगसूत्र लिखना पड़े। पुराना योगसूत्र काम न आएगा। तुम जानकार हो गए हो। तुम भलीभांति जानते होः यम, नियम--अष्टांगिक मार्ग--तुम्हें पता है। पतंजलि बोलें, उसके पहले तुम बता दोगे कि यह हमें मालूम है।
जिस चीज को भी तुम कह सकते होः "यह हमें मालूम है", वह व्यर्थ हो गया। तुम्हारा "मालूम होना" ही तो उपद्रव है। तुम्हारे अज्ञान को उठाना पड़े; तुम्हारे "ज्ञान" से उत्तर नहीं आना चाहिए। तुम्हें इतना चौंका देना पड़े कि तुम्हारी बुद्धि छितर-बितर हो जाए और भीतर से--तुम्हारे प्राण का उत्तर आए।
रीको ने सुनाः जोर से आवाज, हाथ की ताली। उसने कहाः "हां गुरुदेव!" वह चौंक कर यह बोला। जैसे कोई दुर्घटना घटने को है। "देखो!" नानसेन ने कहा, "मछली बाहर निकल गई!"
जब भी तुम चौंक कर प्रत्युत्तर दे सकते हो--जब भी तुम बुद्धि के बाहर
से उत्तर दे सकते हो, मछली बाहर निकल गई।
बुद्धि की बोतल है। बोतल टूटती नहीं, सिर्फ खुलती है। बोतल को तोड़ने
की जरूरत भी नहीं है।
लेकिन जब भी तुम्हारे भीतर से कोई आकस्मिक उत्तर आता है, वह बुद्धि से नहीं आता। बुद्धि से नया तो आ ही नहीं सकता। बुद्धि सदा पुरानी है; उससे

हमेशा पुराना आता है। बुद्धि पुनरुक्ति है; वह यांत्रिक है। उससे नया तो पैदा हो ही नहीं सकता। उसमें तुमने जो डाला है, वही निकलता है। जो नहीं डाला है, वह नहीं निकलता।
तुमसे कोई पूछेः "ईश्वर है?" बुद्धि फौरन उत्तर देती हैः "हां या न।"
वह तुम्हारा डाला हुआ उत्तर है; उसका कोई मूल्य नहीं है। तुम हां कहो कि न कहो--सब कचरा है। तुम कहो कि मैं आस्तिक हूं, तो दो कौड़ी का है। तुम कहो कि मैं नास्तिक हूं, तो दो कौड़ी का है। बुद्धि से उत्तर आया, तो उसका कोई संबंध तुम्हारे पूरे प्राणों से नहीं है। लेकिन जहां बुद्धि ठिठक जाए, जहां बुद्धि से उत्तर न आए, जहां तुम्हारा अतीत न बोले, जहां तुम्हारा मृत अनुभव न बोले, जहां "तुम" बोलो--अभी और यहीं, जहां उत्तर जीवंत हो, सहज हो, स्पांटेनियस हो, स्व-स्फूर्त हो, बस-बोतल खुल गई। उसे तोड़ने की जरूरत न रही। थोड़ी देर को बादल छंट गए और सूरज बाहर निकल आया।
बादल, सूरज को घेरे हैं। बादलों को तोड़ने की जरूरत थोड़ी है, उन्हें सिर्फ छिटका देने की जरूरत है। और एक बार तुम्हें अनुभव हो जाए, तब तुम बादलों के भीतर भी मुक्त हो।
सूरज यह भलीभांति जानता है कि बादल उसे नहीं घेर सकते हैं। बादलों की सामर्थ्य क्या? इसलिए ज्ञानी विचार का भी उपयोग करने लगता है। ज्ञानी बोतल का भी उपयोग करने लगता है। बोतल उसे बांधती नहीं; बोतल भी उसके लिए उपकरण हो जाती है।
"देखो," नानसेन ने कहा, "मछली बाहर निकल गई!"
यह और मुसीबत खड़ी कर दी। यह और भी चौंकाने वाला है। उसने दूसरी दफे "तारी" (नींद) तोड़ दी होगी। क्योंकि पहली दफा तो रीको ने समझा होगा कि कुछ ऐसी दुर्घटना घट रही है कि नानसेन कहानी भूल गया है। घर में आग लग गई, कि मरने जा रहा है, कि कुछ हो रहा है, कि वह चिल्लायाः "रीको।" जैसे कोई डूबता हो! कहानी उसे भूल ही गई। उसकी बुद्धि से उत्तर न आया। उसके प्राण बोलेः "हां, गुरुदेव!" और नानसेन ने फिर कहानी वापस जोड़ दी। नानसेन ने कहाः "देखो, मछली बाहर निकल गई।" यह फिर आकस्मिक है।
इस कहानी के दो तल हैं। एक तल पर सब सीधा जा रहा था। एक गड्ढा आ गया, एक दचका लगा। जब नानसेन ने कहाः "रीको!" और ताली बजाई, तब सब तारतम्य अतीत से टूट गया। और जब रीको ने उत्तर दिया और नानसेन ने कहाः "देखो, मछली बाहर निकल गई!" तो उसने फिर सारा तारतम्य जोड़ दिया।
रीको के लिए यह फिर आकस्मिक है। क्योंकि सिर्फ कहानी समझाने के लिए इतने जोर से चिल्लाने की कोई जरूरत न थी और न ताली बजाने का कोई प्रयोजन था। नाहक चौंकाया। यह तो नींद में ही चल जाता। लेकिन नानसेन ने रीको के अनुभव में कहानी को डाल दिया। अब रीको भीतर से जानता है कि मछली क्षण भर को बाहर निकली थी इसमें कोई शक नहीं है। इसका स्वाद उसे आ गया।
गुरु समझाते नहीं, दिखाते हैं। जैसे कि मैं तुम्हें द्वार पर ले जाऊं
और दिखाऊं कि देखो बाहर। कि खिड़की खोलूं और बताऊं कि देखो, बाहर सूरज निकला है।
समझाया क्या जा सकता है? सब समझाना तुम्हें केवल खिड़की तक ले आने के लिए फुसलाना है--बस।
सब समझाना ऐसे है, जैसे छोटे बच्चों को मिठाई देकर हम कहीं ले जाएं। मिठाई के मोह में वे चले जाते हैं। खिड़की भी खुल जाती है। वे मिठाई पर ही नजर रखते हैं। लेकिन जब खिड़की खुल जाती है, तब बाहर भी देखना पड़ता है।
अब तक जो भी गुरु ने समझाया है, वह सिर्फ खिड़की पर लाने के लिए। फिर अचानक वे आवाज देंगेः "रीको!" ताकि तुम चौंक जाओ, तुम्हारी नींद टूटे तुम्हारी बुद्धि का सिलसिला टूटे। तुम गैर-सिलसिले में बाहर झांक पाओ--एक क्षण को भी, तो मछली बाहर निकल जाती हैः बोतल टूटती नहीं, सिर्फ खुलती है। रीको तो और मुश्किल में पड़ा होगा। कहानी हल कर दी गई और कहानी के संबंध में एक शब्द भी न कहा गया। और जिंदगी की कहानी भी ऐसे ही हल होती है। मुझसे लोग पूछते हैं, "ये ध्यान की प्रक्रियाएंः लोग चीखते हैं, चिल्लाते हैं, हुंकार मचाते हैं, नाचते हैं, रोते हैं, गाते हैं--यह क्या है?" यह तुम्हारी भीतर की बुद्धि के सिलसिले को तोड़ना है। यह मैं क्या कर

रहा हूं। तुम नहीं सोचते; तुम्हारी बुद्धि कहती हैः यह तुम क्या कर रहे हो! लोग क्या कहेंगे! यह तुमने कभी नहीं किया; इज्जत है, प्रतिष्ठा है--सब नष्ट किए दे रहे हो? कोई क्या कहेगा? तुम--और रो रहे हो? कोई क्या कहेगा कि नाच-कूद--चिल्ला रहे हो--पागलों की भांति!
बुद्धि जीवन को पागलपन समझती है। क्यों? क्योंकि विपरीत जीवन में जुड़े हैं, इसलिए बुद्धि को जीवन पागलपन जैसा मालूम पड़ता है।
अगर बुद्धि की चले, तो वह तुम्हें मरने के लिए तत्काल राजी कर ले। वह कहे कि यह जिंदगी तो गणित के हिसाब से चल नहीं रही है, बेहतर है कि तुम मर जाओ। मरा हुआ आदमी बिल्कुल गणित से चलता है। लेकिन जिंदगी बड़ी बेबूझ जा रही है, रहस्यपूर्ण है।
और अक्सर जिसको हम बुद्धिमान कहते हैं, धीरे-धीरे वह अपने को मार लेता है। वह बोतल में बंद हो जाता है।
किसी भांति तुम्हें चौंकाना जरूरी है।
झेन गुरु, जब उसके शिष्य ध्यान करते हैं, तो डंडा लेकर घूमता रहता है।
वह डंडा मारता भी है। कभी भी किसी के सिर पर उसका डंडा पड़ जाता है। लेकिन वह डंडा उन्हीं क्षणों में मारता है, जब वह देखता है कि भीतर बोतल बहुत मजबूत है, विचार बहुत घने हैं या कोई विचारों में बिल्कुल सो गया है, तब वह डंडा मारेगा। उस डंडे में एक क्षण को बोतल खुलती है।
जिन लोगों ने झेन के संबंध में सिर्फ पढ़ा है और जिन्हें उसका कोई अनुभव नहीं है, बड़े हैरान होते हैं कि "कैसे दुष्ट गुरु हैं!" ये दुष्ट नहीं हैं। ये महा करुणावान हैं।
तुम्हें एक झलक भी मिल जाए, स्वाद एक दफा मिल जाए--बोतल के बाहर मछली
के होने का--फिर तुम खोज कर लोगे। क्योंकि तुम जानते हो, खजाना भीतर है-- अपने ही भीतर है। तुम्हें कहीं खोजना नहीं है।
बोतल भी अपनी है, मछली भी मैं हूं। और बोतल विचारों की है। विचारों को हटाना है। अब कोई मामला कठिन नहीं है। अब कहीं किसी हिमालय पर जाने की जरूरत नहीं है। बस, अब आंख बंद करके इस बोतल को ही चौड़ाने की जरूरत है। इन बदलियों को ही छांटना है।
कभी झेन गुरु शिष्य को उठा कर खिड़की के बाहर भी फेंक देते हैं, जो कि बिल्कुल अनहोना लगता है।
नानसेन के गुरु ने उसे खिड़की के बाहर फेंक दिया था। वह गया था गुरु से पूछने कि "बुद्धत्व क्या है? कैसे उपलब्ध होगा?" गुरु एकदम पगला गया। उसने उसकी एकदम से गरदन पकड़ ली।
वह एकदम घबड़ाया, उसने कहा कि "मैं सिर्फ सवाल ही पूछ रहा हूं।" मगर उसने एक न सुनी। और गुरु मजबूत था। उसने उसे उठा कर खिड़की से बाहर फेंक दिया। और जब वह नीचे गिरा--जमीन पर धड़ाम से, तब उसके गुरु ने कहा, "समझ में आया? अब फिर से भीतर आकर पूछ।"
तुम होते तो भाग गए होते; दुबारा उस दरवाजे पर न गए होते। नानसेन फिर भीतर आया। उसने झुक कर गुरु को प्रणाम किया। और उसने कहा, "थोड़ी सी झलक तो मिली।"
कैसे मिली होगी झलक--खिड़की से गिरने में? जब तुम्हें कोई अचानक खिड़की
से बाहर फेंक दे, तो यह तो बड़ा असंगत काम हो गया। तुम सीधा सवाल पूछ रहे थे कि बुद्धत्व क्या है? इसमें कोई लड़ाई-झगड़े की बात नहीं थी। इसमें कोई कुश्ती का सवाल नहीं था और इस आदमी ने अचानक तुम्हें फेंक दिया! सिलसिला टूट गया होगा; बुद्धि एकदम चकरा गई होगी; सोच-विचार को कुछ बचा न होगा। बुद्धि के पास कोई उत्तर नहीं है--इस घटना का। अगर नानसेन बुद्धि की सुनता गिरने के बाद, तो लौट जाता। समझताः यह आदमी पागल है। मैंने इसके पास जाकर गलती की। और दूसरों को बताता कि कभी भूल कर इसके पास मत जाना; उसने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया है। या पुलिस में रिपोर्ट करता, अदालत में मुकदमा चलाता।
लेकिन नानसेन जब नीचे गिरा, तब गुरु ने खिड़की से झांक कर पूछा, "नानसेन, पता चला? कुछ समझ में आया?" उस समय विचार लौटे नहीं थे, अंतराल था।
उस अंतराल में गुरु का खिड़की पर से झांकता हुआ चेहरा बुद्ध का चेहरा था।

उस अंतराल में नानसेन को दिखाई पड़ी वह आंख जो बुद्ध की आंख थी। दिखाई पड़ी वह करुणा, जिसने उठा कर फेंका और भीतर क्षण भर को, विचार नहीं थे; मछली बाहर थी; बोतल खुली थी।
नानसेन लौट कर दरवाजे से आया, गुरु के चरण उसने छुए। और उसने कहा, "समझ में आया। अब सदा मुझ पर कृपा करना। अब जब भी मैं पूछूं, उत्तर मत देना, खिड़की के बाहर उठा कर फेंक देना। उत्तर तो बहुतों ने दिए थे और उत्तर मुझे न मिला था।"
अगर तुम सच में ही खोज में हो, तो उत्तर शब्दों से नहीं दिए जा सकते। आकस्मिक घटना तुम्हें खोलेगी।
और कठिनाई यही है कि हजारों साल में हजारों तरह की घटनाएं घट चुकी हैं, हजारों कहानियां निर्मित हो चुकी हैं और तुम उन सब कहानियों से परिचित हो। इसलिए रोज नये को ईजाद करना जरूरी है, जिसका तुम्हारे पास कोई हिसाब-किताब न हो, जो तुम्हें चौंका दे और अंतराल में गिरा दे।
कहते हैं, नानसेन ने बहुत लोगों को जगाया। लेकिन कृपा उस गुरु की थी, जिसने खिड़की के बाहर नानसेन को फेंका था।
कई बार झेन गुरु बहुत दुष्ट मालूम पड़ सकते हैं।
एक शिष्य नानसेन से कुछ पूछने आया। जैसे ही वह दरवाजे में प्रवेश कर रहा है कि नानसेन ने जोर से दरवाजा बंद कर दिया। उसका हाथ दरवाजे में दब गया और पिचक गया और लहूलुहान हो गया।
हाथ भीतर दबा है और नानसेन दरवाजे को दबाए हुए है। बाहर शिष्य चिल्ला रहा है और नानसेन कह रहा है, "चिल्लाना बंद कर, हाथ को छोड़, भीतर देख। यह क्षण चूका जा रहा है। तू हाथ को देख रहा है, दरवाजे को देख रहा है, खून को देख रहा है। क्षण चूका जा रहा है। यह सब पीछे सोच लेंगे। इतनी जल्दी क्या है। समय बहुत पड़ा है। तू इस समय भीतर देख।" क्योंकि जब भी कोई ऐसी घटना घटती है, तभी थोड़ी देर के लिए बोतल खुलती है। तुम चूक जा सकते हो।
और अगर तुम्हें ख्याल हो तो जरूरत नहीं है कि नानसेन दरवाजा बंद करे। नानसेन का गुरु बाहर फेंके। जिंदगी बहुत मौके दे रही है। साइकिल का एक्सीडेंट हो गया है, कार का एक्सीडेंट हो गया है; तुम सड़क के किनारे पड़े हो। इस मौके को मत चूकना। खुद परमात्मा ने तुम्हें फेंका है, एक अवसर दिया है कि मछली बोतल के बाहर हो जाए।
इसलिए ज्ञानियों ने कहा है कि दुर्घटनाएं भी सौभाग्य हैंः अगर तुम्हें अक्ल हो! तुम्हें अक्ल न हो, तो सौभाग्य को भी दुर्भाग्य बना लेने में तुम कुशल हो।
दुर्घटनाओं में भी झलक मिल सकती है। लेकिन रोना, चीखना, चिल्लाना मत शुरू कर देना। अंतराल मिला है--तुम सड़क के किनारे पड़े हो। एक क्षण को सब बुद्धि अस्त-व्यस्त हो गई है; अराजकता आ गई है। सब टूट गए बादल, तुम खाली हो, कुछ सोचने को नहीं बचा है। बस, उसी समय भीतर देख लेना।
जिंदगी भी बहुत मौके देती है, लेकिन तुम चूकने में कुशल हो। तुम ध्यान
ही नहीं देते--अंतराल पर। जब भी कभी मन के दो विचार दूर होते हों और बीच में खाली जगह होती हो, तभी तुम कुछ और काम में लग जाते हो। शायद तुम भयभीत हो, खुद से मिलने से डरे हुए हो। यह भय छोड़ो।
ध्यान में भी जैसे ही अंतराल आता है, लोग भयभीत होते हैं। मेरे पास आते हैं और कहते हैंः "बहुत डर लगता है।" जब भी तुम्हें डर लगे, तब समझना कि ठीक जगह के करीब हो। क्योंकि बुद्धि आश्वस्त तब तक रहती है, जब तक उसका सिलसिला चलता है। जैसे ही उसका सिलसिला टूटता है, बुद्धि भयभीत होती है। वह कहती हैः "अब अज्ञात में, अनजान में प्रवेश हो रहा है। अब मुझ पर भरोसा मत करो; लौट आओ वापस। यह जाना-माना रास्ता ठीक है। उसी कोल्हू के बैल के रास्ते पर चलो, जिस पर हम सदा चले हैं। वहां सब पहचाना हुआ है। वहां कोई खतरा नहीं घटता। वहां कोई दुर्घटना नहीं है।"
बुद्धि वहीं भयभीत होती है, जहां वह पाती है कि दुर्घटना घट सकती है; अज्ञात करीब आ रहा है। अनजान और अपरिचित को देख कर भीतर बुद्धि बेचैन होने लगती है।

जब भी तुम्हारे ध्यान में बेचैनी आने लगे, भय आए, परमात्मा को धन्यवाद देना। ठीक घड़ी करीब आ रही है। जल्दी ही परमात्मा तुम्हें खिड़की के बाहर फेंकेगा। सिर पर डंडा उतरेगा। या तुम्हारा गुरु आवाज देगा, "रीको!" ताली बजाएगा और एक क्षण मछली बोतल के बाहर हो सकती है।

मछली सदा से बोतल के बाहर है। तुम बड़े कलाकार हो; कैसे तुमने उसे बोतल में कर लिया! वस्तुतः मछली सदा से बाहर है और तुमने उसके चारों तरफ बोतल बनाई है। लेकिन बोतल मजबूत बन गई है और अब तुम छटपटा रहे हो। और अब तुम चिल्लाते हो कि मैं स्वतंत्रता, मोक्ष चाहता हूं। कैसे इस परतंत्रता के बाहर निकलूं? और निकल नहीं पा रहे हो। और बोतल तुम्हारी अपनी बनाई हुई है! इस कहानी का शब्द में क्या सार हुआ? जब चिल्लाया नानसेन, "रीको!" और उसने ताली बजाई तो क्या हुआ? एक क्षण को होश आया रीको को। बस, होश के क्षण में बोतल के बाहर हो जाती है मछली।
जिस क्षण तुम होश में हो, उस क्षण तुम परमात्मा हो। उस क्षण कुछ पाने
को नहीं है, उस क्षण कुछ खोने को नहीं है। उस क्षण कहीं जाने को नहीं है। उस क्षण तुम सिद्ध हो। उस क्षण तुम सिद्ध-शिला पर हो। पर फिर खो जाएगा वह क्षण; उसे तुम्हें बार-बार खोजना पड़ेगा। और जितना तुम खोजते रहोगे, उतना ही आश्वस्त होते जाओगे। जितना बार-बार उसका स्वाद लोगे, उतना स्वाद गहरा होता जाएगा। जितना बार-बार उसे पहचानोगे, उतनी प्रत्यभिज्ञा गहरी होगी, सुरति मजबूत होगी। और एक दिन ऐसा आएगा कि तुम पाओगे कि बोतल तो कभी थी ही नहीं, मछली सदा से मुक्त है।
मछली बाहर है--इस क्षण भी। देखो, मछली बाहर है। थोड़ा सा अंतराल है।
कहां समस्या है? समस्या बनाई हुई है। और इसलिए हल नहीं हो सकती।
समस्या झूठी है। समस्या है ही नहीं, सिर्फ बनाई गई है। मछली बाहर ही है।
जागो और मछली बाहर है।
ये जो पहेलियां हैं, सोचने के लिए नहीं--जागने के लिए हैं। विचार करने
के लिए नहीं--होश से भरने के लिए हैं। ये कहानियां तुम्हें चौंकाने के लिए हैं। तुम्हारे भीतर जो बुद्धि का प्रवाह है, उसे रोक देने के लिए हैं।
यह तुम्हारे भीतर भी घट सकता है। कोई भी बाधा नहीं है। तुम चाहो तो इसी क्षण घट सकता है। कोई तुम्हें रोक नहीं रहा है। तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं है। चाहो तो रोक लो, चाहो तो घट जाने दो।
एक ताली बजने से घटना घट सकती है। और यह भी हो सकता है कि तुम जन्मों- जन्मों तक शीर्षासन और हठयोग करो और घटना न घटे। ताली बजने से रीको चौंक गया और घटना घट गई।
जागने से घटना घटती है। आसन लगा कर भी तुम सोए रह सकते हो। आसन भी तुम्हारे नींद के ही हिस्से हो सकते हैं, तब आसन भी बोतल बन जाएंगे। तुम रोज आसन कर लोगे और बोतल मजबूत होती चली जाएगी।
गुरजिएफ एक अनूठा प्रयोग करता था, जैसा प्रयोग किसी दूसरे गुरु ने कभी नहीं किया। और इसलिए नये गुरु को समझना मुश्किल हो जाता है। और ध्यान रखो कि नया गुरु ही जगाता है, पुराने गुरु तो तुम्हारी बुद्धि के हिस्से हो जाते हैं।
मैं तुमसे कहता हूं कि मेरे पास तुम जाग सकते हो, कभी तुम्हारी बोतल
के बाहर आ सकती है मछली, क्योंकि तुम्हारी बुद्धि अब मेरा हिसाब लगाने में असमर्थ है।
भारत में सैकड़ों गुरु हैं, तुम उनके पास जाओगे--मैं कहता हूंः तुम्हारी बोतल से मछली बाहर नहीं आएगी। नहीं आएगी इसलिए, कि तुम्हारी बुद्धि में और उन गुरुओं की बुद्धि में कोई भी भेद नहीं है। तुम एक ही सिलसिले के हिस्से हो। वे तुम्हें चौंका न सकेंगे। वे जो कहेंगे, उस पर तुम्हारा सिर भी हिलेगा; तुम कहोगेः "बिल्कुल ठीक है। यही तो हम मानते हैं।" वे तुम्हें शास्त्र समझाएंगे। तुम कहोगेः "यह बिल्कुल ठीक है। यही तो हमारी भी व्याख्या है।" वे तुम्हें चौंका नहीं सकते, तो जगा भी नहीं सकते। तुम्हारी और उनकी बुद्धि में तालमेल है, क्योंकि वे परंपरागत हैं।

गुरजिएफ ने बड़े अनूठे प्रयोग किए। एक प्रयोग उसका यह था कि जो भी व्यक्ति उसके पास आता, वह पहला काम यह करता कि उसका भोजन बदल देता। अगर वह शाकाहारी था, तो उसे मांसाहारी कर देता। अगर वह मांसाहारी था, तो शाकाहारी कर देता। तो पूरे शरीर की केमिस्ट्री, पूरे शरीर का रसायन झंझट में पड़ जाता। शरीर का रसायन एक दिन का काम नहीं है। शरीर बनता है पूरे जीवन में। एक जैन को, जिसने कभी मांस-मछली नहीं खाई, मांस-मछली खाना पड़े! खोपड़ी
पर लट्ठ पड़ गया। किसी ने खिड़की से फेंका, उससे भी ज्यादा खतरनाक हो गया यह मामला। क्योंकि खिड़की से फेंकने में शरीर की केमिस्ट्री को थोड़ा बहुत धक्का लगता है--ज्यादा नहीं। क्या होगा, थोड़े हाथ-पैर छिल जाएंगे, तुम उसे ठीक कर लोगे--मलहम लगा कर। कोई ऐसी जान नहीं निकली जा रही है।
लेकिन गुरजिएफ शाकाहारी को कहता कि मांसाहार करो। तुमने अगर कभी मांस नहीं खाया, तो खाने की सोच के भी बेचैनी खड़ी होती है। सारा रोआं-रोआं कंपता है। और तुम्हारी बुद्धि कहेगीः "भागो इस आदमी के पास से। कहां के नासमझ के पास पड़े हो। गुरुओं ने कभी मांसाहार करने को कहा है? सदगुरु सदा समझाते रहे हैं कि शाकाहार करो। और यह आदमी समझा रहा है--मांसाहार।
जिसने कभी शराब नहीं पी, गुरजिएफ इतनी शराब पिला देता उसको, जितना कि पीने वाला भी पी ले तो पागल हो जाए। पीने वाला तो बिल्कुल ही विक्षिप्त हो जाता। दो-चार दिन के लिए बिल्कुल डांवाडोल हो जाता। इस तरह गुरजिएफ धक्का दे दिया करता उसे।
वह ब्रह्मचारी को कहता--संभोग! वेश्यागामी को कहता--ब्रह्मचर्य। शराब
जो पीता था, उससे शराब छीन लेता। अस्त-व्यस्त करता।
नियम साफ था कि तुम जैसे चलते रहे हो, अगर वैसे ही चलते जाओ--उसी ही सिलसिले में--तो तुम कभी भी न पहुंचोगे।
तुम्हें डांवाडोल कर देना पड़ेगा। तुम्हें इस बुरी तरह फेंकना है-- खिड़की के बाहर, कि तुम्हारे भीतर की सब हड्डी--पसलियां अस्त-व्यस्त हो जाएं।
गुरजिएफ के पास से लोग अक्सर भाग जाते थे, क्योंकि समझ ही न पाते थे। गुरजिएफ को न तो शराब में रस था, न मांसाहार में रस था। कुछ कह ही नहीं रहा था। उसकी बात तो सीधी-साफ थी कि तुम्हें चौंकाना है। तुम जैसे हो, अगर उसी सिलसिले में तुम बढ़ते हो, तो तुम्हारी भ्रांति बढ़ती जाएगी, तुम चौंकोगे नहीं। तुम्हारी बोतल मजबूत होती जाएगी, मछली बाहर न आएगी।
जो सुस्त और काहिल होते, उनको वह घंटों श्रम में लगा देता--सुबह छह बजे
से शाम छह बजे तक। जो मेहनती होते, उनको वह बिस्तर पर सुला देता, कि बिल्कुल आराम करो। नियम व्यक्तियों को देख कर तय होते।
एक सुस्त और काहिल आदमी आया, जिसको उसने सुबह से काम पर लगा दिया। जिद्दी आदमी था। उसने कहा, "आप कहते हो तो करेंगे।" वह सुबह से शाम तक काम करता रहा। शाम को वह लौट कर आ रहा था; गुरजिएफ फिर बाहर आया और उसको कहा कि चल, थोड़ा काम और करना है। वह बिल्कुल टूटा जा रहा था। कभी उसने किया नहीं था। कभी बारह घंटे उसने काम नहीं किया था। बारह मिनट भी नहीं किया था! पैर लहूलुहान थे; हाथ में छाले पड़ गए थे, क्योंकि लकड़ी काट रहा था दिनभर से। गुरजिएफ उसको फिर वापस काम पर ले चला। एक हॉल बनाया जा रहा था--ध्यान-प्रार्थना के लिए, उसमें कुछ बीम कसने थे। गुरजिएफ ने उसको ऊपर चढ़ा दिया। वहां से अगर वह गिरे, तो जान का खतरा है। और वह इतना थका-मांदा था कि अब वह जग भी नहीं सकता। वह बिल्कुल सोई हालत में है। और वह बीम को लगाते--लगाते वहीं बैठा-बैठा सो गया--इतना थक गया था कि वह बिल्कुल सो गया। और जब वह सोया, तब गुरजिएफ चिल्लाया।
रीको ने भी क्या वैसी आवाज सुनी होगी, क्योंकि तब कहानी चल रही थी। और
यह आदमी बारह घंटे का थका-मांदा और यह नींद कोई साधारण नींद नहीं है। यह नींद गहरी से गहरी नींद है, क्योंकि वह इतना थक गया है और जान खतरे में है, तो भी नींद आ गई।
और जब गुरजिएफ चिल्लाया और उस व्यक्ति ने आंख खोल कर देखा होगा, तो उसे समझ में न आया होगा कि वह कहां है? कौन है? क्या है? सब रूप, सब पहचान खो

गई होगी, सब आइडेंटिटी खो गई होगी। उसने देखा भी होगा। उसे यह समझ में न आया होगा कि यह आदमी जो चिल्ला रहा है, यह कौन है; यह जगह क्या है!
कभी तुम्हें ख्याल है कि गहरी नींद से तुम्हें कोई जगा दे, तो तुम्हें एकदम से समझ में नहीं आता कि तुम कौन हो, कहां हो, क्या मामला है? मिनट, दो मिनट लग जाते हैं, तब तुम्हारी बुद्धि फिर से सिलसिला पकड़ती है, पटरी पर आती है।
और यह आदमी तो भयंकर थका हुआ था। कहते हैंः वह उसी क्षण सतोरी (समाधि
की झलक) को उपलब्ध हो गया। वहीं बीम पर बैठे-बैठे वह हंसने लगा और उसने गुरजिएफ से कहा, "कमाल! जिसकी मैं जिंदगी भर से तलाश में था, वह हो गया।" चौंकने में कुंजी है। इसलिए उस आदमी की तलाश करना जो तुम्हें चौंका दे।
बहुत बार मैं तुमसे ऐसी बातें कहना चाहता हूं, जो मैं कभी कहना नहीं चाहता था। उनकी सचाई और झूठ का सवाल नहीं है। उनके ठीक और गलत होने की बात ही फिजूल है। वे सिर्फ तुम्हें चौंकाने के लिए कही गई हैं। अगर तुम चौंक गए, तो वे सार्थक हैं। अगर तुम नहीं चौंके और सोच-विचार में पड़ गए तो वे व्यर्थ हो गईं।
गुरजिएफ जैसे व्यक्तियों की बातों से तुम हिसाब मत लगाना कि उनका प्रयोजन क्या है। उनके प्रयोजन बहुत भिन्न हैं। अगर वे तुमसे कहते हैंः "मांसाहार करो", तो इसका मतलब यह नहीं है कि वे महावीर के दुश्मन हैं, और मांसाहार करवाना चाहते हैं। अगर वे तुमसे कहें कि "शाकाहार करो", तो तुम यह मत समझना कि वे महावीर के अनुयायी हैं, और तुमसे शाकाहार करवाना चाहते हैं। उनका प्रयोजन ही भिन्न है।
और महावीर ने जब लोगों को कहा कि शाकाहार करो, तब उनका भी प्रयोजन यही था। महावीर क्षत्रिय घर में पैदा हुए, जहां मांसाहार जीवन की व्यवस्था थी। और महावीर जिनके बीच थे, वे सभी मांसाहरी थे। अचानक उनके बीच इस आदमी ने शाकाहार की बात कही; इसने उन सबके जीवन की केमिस्ट्री बदल दी। उन सबके भीतर के रसायन को तोड़ दिया। और जब पुराना रसायन टूटता है, तब पुराना मन भी टूटता है। क्योंकि सब जुड़े हैं।
तो भीतर की रासायनिक प्रक्रिया को बदलने से मन की प्रक्रिया टूट जाती है।
तो फायदा हुआ। लेकिन अब जैनियों को शाकाहार से कोई फायदा नहीं हो रहा है। क्योंकि अब उनकी रासायनिक प्रक्रिया शाकाहार से नहीं टूटती, अब तो कोई मछली डाल दे उनके मुंह में तो शायद टूटे। क्योंकि अब तो वह झपकी गहरी लग गई, अब तो रोज शाकाहार कर रहे हैं! और ठीक उसी हालत में हैं, जिस हालत में महावीर ने मांसाहारियों को पाया था। अब वे शाकाहारी हैं, अब शाकाहार बुद्धि का हिस्सा हो गया है।
जो चीज बुद्धि का हिस्सा हो जाए, वह व्यर्थ हो जाती है। क्योंकि उससे बुद्धि चलती जाती है।
किसी साधु को कहो कि जाओ और चोरी करो। जिसने कभी चोरी नहीं की--थोड़ा सोचो, कैसी साधना होगी, जब वह चोरी करने जाएगा! बुद्धि चलेगी वहां? बुद्धि बिल्कुल नहीं चलेगी। बुद्धि तो कहेगीः "वापस।" कहां जा रहे हो? यह तुम क्या कर रहे हो? अनीति हो रही है!" अगर वह चलता ही चला जाए, तो बुद्धि पीछे छूट जाएगी; वह उसके साथ नहीं जाएगी। वह कहेगीः "तुम पागल हो गए। जाओ, जहां तुम्हें जाना है, अब मैं तुम्हारे साथ नहीं आती। पछताओगे पीछे, कहे देती हूं।" लेकिन अगर वह हिम्मत रखे और चोरी करने चला जाए, तो बुद्धि के सारे तारतम्य टूट जाएंगे। हो सकता है, चोरी में ही समाधि फलित हो।
जिंदगी बड़ी रहस्यपूर्ण है। वहां तुम्हारा सिलसिला टूटना जरूरी है। कैसे टूटेगा? --कहना मुश्किल है। लेकिन एक बात यह है कि जब वह टूटेगा, तब ही तुम जागोगे। वह नहीं टूटेगा, तो तुम जाग नहीं सकते।
सदगुरुओं ने अनेक उपाय किए हैं, वे उन लोगों को देख कर किए गए हैं, जिनके बीच वे थे। कोई उपाय शाश्वत नहीं है। सब उपाय उपयोगी हैं कभी, और कभी निरुपयोगी हो जाते हैं। व्यक्तियों पर निर्भर है।

अगर कोई गुरु रोज ही तुम्हें खिड़की के बाहर फेंकता रहे, तो तुम अभ्यासी हो जाओगे। तुम समझोगे कि गुरु व्यायाम करवा रहा है। तुम रोज जाकर खड़े हो जाओगे कि "अब फिर से फेंकिए!" तुमने व्यर्थ कर दी बात। क्योंकि यह कोई अभ्यास का मामला नहीं था। अभ्यास में कभी कोई चौंक ही नहीं सकता। जिस चीज का अभ्यास हो, वह बुद्धि का हिस्सा हो जाती है।
इसलिए कबीर कहते हैंः "साधो सहज समाधि भली।" अभ्यास किया कि भटके। सहज का अर्थ हैः जो अभ्यास से नहीं होता--जो सहज होता है, तो अभ्यास के बाहर होता है। तो कबीर कहते हैंः न तो मैं सिर मुडाता, न मैं उलटे-सीधे आसन करता, मैं कुछ भी साधन-यत्न नहीं करता हूं, क्योंकि यत्न तो अभ्यास हो जाएगा। अभ्यास मन का हिस्सा हो जाता है। इस प्रक्रिया को ठीक से समझ लें।
जो भी तुमने साधा, वही मन का हिस्सा हो गया। क्योंकि वह फिर तुम्हें चौंकाएगा नहीं। जो भी अनसधा है, जो चौंका देता है, जो प्रयत्न के बाहर है, जो तुम्हारी समझ, तुम्हारे यत्न, तुम्हारी प्रक्रिया और अभ्यास के बाहर है, वही तुम्हें चौंकाएगा, वही तुम्हारी नींद को तोड़ेगा। वही तुम्हारे कारागृह के बाहर से आई आवाज है।
कबीर ठीक कहते हैं। समाधि तो सहज ही हो सकती है, साधी हुई समाधि-समाधि नहीं होगी।
पतंजलि भी जानते हैं, इसलिए पतंजलि ने समाधि के दो हिस्से किए हैं।
पतंजलि एक समाधि को कहते हैंः सविकल्प समाधि और दूसरी समाधि को कहते हैंः निर्विकल्प समाधि।
जो भी तुम साध रहे हो, उससे सविकल्प समाधि आएगी। वह वास्तविक समाधि नहीं है। वह समाधि का धोखा ही है। वह तुमने ही चुनी है, तुमने ही साधी है। वह समाधि की छाया है, वास्तविक समाधि नहीं है। वास्तविक समाधि तो निर्विकल्प होगी; वह तुम्हारे साधने से न आएगी। वह कभी आएगी, जब "तुम" मौजूद न होओगे। जब कभी तुम किसी क्षण में खो गए होओगे, तब वह आएगी। जब भी पाएगी कि तुम घर में नहीं हो, वह आ जाएगी।
पहली समाधि घर में तब आती है, जब तुम होते हो; तुम जितने होते हो, उतनी
ही ज्यादा आती है। पहली समाधि साधने से आती है, प्रयत्न करने से आती है, अभ्यास करने से आती है।
दूसरी समाधि घटती है; वह तुम्हारे हाथ में नहीं है। तुम उसे ला नहीं सकते, तुम सिर्फ प्रतीक्षा कर सकते हो। और तुम्हारी प्रतीक्षा इतनी गहरी हो जाए कि धीरे-धीरे तुम प्रतीक्षा करने वाले को ही भूल जाओ--कि कौन प्रतीक्षा कर रहा है। तब अचानक तुम पाओगे, वह उतर आई। वह तुम्हारा उपाय नहीं है, वह अस्तित्व का प्रसाद है। वह तुम्हारी मुट्ठी में नहीं है। तुम्हारी मुट्ठी में जो भी होगा, वह तुमसे बड़ा नहीं हो सकता, वह तुमसे छोटा होगा। जिसे तुम ला सकते हो, वह तुमसे छोटा होगा, क्षुद्र होगा। वह तुम्हारा ही फैलाव होगा। जो तुम्हारे बिना लाए आता है, वही विराट होगा। इसलिए साध-साध कर जो तुम ले आओगे, वह सिर्फ छाया है। जिस दिन तुम साधना
भी छोड़ दोगे, उसी दिन सिद्ध होने की घटना घटती है। जिस दिन तुम ध्यान भी छोड़ देते हो... करते हो, करते हो, करते हो--कर-कर के छाया निर्मित होती है, कुछ और निर्मित नहीं होता--अंत में तुम छोड़ देते हो। पहले साधते हो, साधते हो, साधते-साधते थक जाते हो, उसे भी छोड़ देते हो। एक ऐसी घड़ी आती है, जब तुम कुछ भी नहीं करते हो। बस, होते हो। उसी घड़ी निर्विकल्प समाधि उतरती है। उसी को कबीर कह रहे हैंः "साधो सहज समाधि भली।"
और ऐसी ही सहज समाधि रीको को घटी होगी, जब गुरु सिर्फ चिल्लाया, ताली बजाई, और रीको चौंका। उस चौंकने में घट गई।
मछली बोतल के बाहर हो गई। इसे रीको ने जान लिया, उसे रीको ने अनुभव किया।
और अनुभव ही बताएगा अर्थ। अनुभव के बिना सब व्याख्याएं हैं।
व्याख्याएं व्यर्थ हैं; उनमें कुछ सार नहीं है, क्योंकि वे जीवंत नहीं हैं।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
तेरहवां प्रवचन

आत्मघाती संदेह और आस्था का अमृत

नूरी बे अलबानिया का निवासी था--विचारवान और प्रतिष्ठित। अपने से बहुत छोटी उम्र की युवती से उसने विवाह किया।
एक संध्या वह समय से पहले घर लौटा, तो उसके वफादार नौकर ने आकर उसे कहाः "आपकी पत्नी, मेरी मालकिन, बहुत संदेहजनक ढंग से पेश आ रही हैं। उनके कमरे में एक बड़ा संदूक है--इतना बड़ा है कि एक आदमी उसमें समा जाए। पहले वह आपकी दादी के पास था और उसमें थोड़े से जड़ी के सामान थे। लेकिन अब उसमें शायद बहुत कुछ है। मैं आपका सबसे पुराना नौकर हूं, लेकिन मालकिन मुझे भी उस संदूक के भीतर झांकने नहीं देती हैं।"
नूरी बे अपनी पत्नी के कमरे में जा पहुंचा और देखा कि वह एक लकड़ी के संदूक के पास उदास बैठी है। "क्या मैं देख सकता हूं कि इस संदूक में क्या है?" उसने पूछा।
पत्नी ने उत्तर दियाः "क्या एक नौकर के संदेह के कारण पूछते हो या इस कारण पूछते हो कि तुमको ही मुझ पर भरोसा नहीं रहा?"
नूरी बे ने कहाः "इन बातों में गए बगैर संदूक को खोलना क्या मुमकिन नहीं होगा?"
"नहीं।"--पत्नी ने कहा।
"क्या इसमें ताले लगे हैं?"
"हां।"
"चाबी कहां है?"
चाबी दिखाते हुए पत्नी ने कहाः "नौकर को बरखास्त कर दो और मैं तुम्हें
यह दे दूंगी।"
नौकर बरखास्त कर दिया गया और पत्नी ने चाबी सौंप दी। और फिर दुखी मन
से वह वहां से विदा हुई।
और नूरी बे बहुत दिनों तक सोचता रहा, सोचता रहा। आखिर उसने चार नौकर बुलवाए। वे संदूक को बिना खोले बहुत दूर ले गए और जमीन के अंदर उसे गाड़ आए। उसके बाद यह बात फिर कभी नहीं उठाई गई।
ओशो, कृपा कर इस सूफी बोध-कथा का अर्थ समझाएं।

इस बोध-कथा में प्रवेश के पहले कुछ बातें समझ लेनी चाहिए। पहली बातः संदेह, जहां हो, वहां प्रेम की
कोई संभावना नहीं रह जाती। संदेह की मौजूदगी के साथ ही प्रेम तिरोहित
हो जाता है।
संदेह के साथ भय होता है--प्रेम नहीं। संदेह और भय संगी-साथी हैं। प्रेम के साथ भय कभी नहीं होता; प्रेम के साथ अभय होता है। अभय के साथ संदेह की कोई संभावना नहीं है, क्योंकि जब तुम भयभीत नहीं हो तो कैसा संदेह?
भय का अच्छा नाम है--संदेह। और अभय का नाम होगा--आस्था। इसलिए नास्तिक कभी भी अभय नहीं हो सकता। और अगर आस्तिक भयभीत हो, तो समझना कि वह आस्तिक नहीं है। क्योंकि भय का आस्था से क्या संबंध? और जहां प्रेम है, वहां न संदेह होगा, न भय होगा। और अगर भय और संदेह हों, तो समझ लेना प्रेम नहीं हो सकता।
मैंने सुना है कि एक युवक विवाह करके लौटता था। वह जहाज से अपने घर वापस आ रहा था--परदेश से। जोर का तूफान उठा; अब डूबा जहाज, अब डूबा--ऐसी घड़ी आ गई। लोग भयभीत होकर कंपने लगे। घुटने टेक कर प्रार्थना करने लगे। जिन्होंने कभी ईश्वर का नाम न लिया था, वे भी जोर-जोर से ईश्वर का नाम पुकारने लगे। जिस लड़की को विवाह कर लाया था युवक, वह रोने लगी, चीखने- पुकारने लगी, लेकिन यह युवक शांत बैठा रहा। उस युवती ने कहा, "तुम भयभीत नहीं हो रहे हो! जहाज डूबने के करीब है और किसी भी क्षण हमारा अंत हो सकता है!" उस युवक ने अपनी म्यान से तलवार निकाली। चमकती धारवाली तलवार, जिससे

एक क्षण में गरदन अलग हो जाए। और उस युवती के कंधे पर रखी। गरदन को तलवार छूने लगी। युवती मुस्कुराती रही। उस युवक ने कहा, "तुम मुस्कुरा रही हो? भयभीत नहीं होती?" उसने कहा, "तलवार तुम्हारे हाथ में हो तो भय कैसा?" युवक ने तलवार म्यान में वापस रख ली। और कहा, "तलवार परमात्मा के हाथ में हो तो भय कैसा? तूफान उसके हाथ में है। तूफान का भय नहीं है; भय तो अनास्था का है। अगर तेरे हृदय में भी प्रेम न हो--मेरे लिए, तो भय पैदा होगा। लेकिन अगर प्रेम हो तो तलवार गरदन पर भी हो तो फूल जैसी ही मालूम पड़ेगी। संदेह हो तो फूल भी गरदन पर हो तो तलवार जैसा मालूम पड़ेगा।"
तलवारें बाहर नहीं हैं, फूल भी बाहर नहीं हैं। तुम्हारी आस्था में, तुम्हारे संदेह में उनका अस्तित्व है।
तो पहली बात यह समझ लें कि प्रेम और संदेह का कभी मिलन नहीं होता। जिस
पर तुम प्रेम करते हो, उस पर तुम संदेह कर ही नहीं सकते। और जिस पर तुम संदेह करते हो, उस पर कभी प्रेम न कर सकोगे।
दूसरी बातः संदेह बड़े काम का सेवक है, बड़ा वफादार नौकर है। बड़ा उपयोगी है--निरुपयोगी नहीं है। उसने जिंदगी में बड़ा साथ दिया है। सारा विज्ञान संदेह से निर्मित हुआ है। तुम विज्ञान का जो भी लाभ उठा रहे हो, वह संदेह का वरदान है। विज्ञान खड़ा ही संदेह पर है। और विज्ञान से बेहतर वफादार नौकर तुम खोज सकोगे? चाहे चिकित्सा-शास्त्र हो, चाहे रसायन-शास्त्र हो, चाहे भौतिक-शास्त्र हो, चाहे दवाओं की ईजाद हो और चाहे अणुबमों की, सब संदेह से हुई है। संदेह ने तुम्हारे घरों को रोशन किया है--बिजली से। संदेह ने रेगिस्तान में पानी के झरने निकाल दिए हैं। संदेह ने मरुभूमियों को हरे बगीचे में बदल दिया है। आज आदमी के पास जो भी है, वह निन्यानबे प्रतिशत संदेह के कारण है। तो "नौकर" तो कीमती है--वफादार है, पुराना है। काम उसने बहुत दिया है। इसलिए उसका साथ छोड़ना भी आसान नहीं है।
और विज्ञान पर जिसका एक बार भरोसा आ गया, उसका धर्म में प्रवेश इसीलिए मुश्किल हो जाता है। क्योंकि धर्म के जगत में चाहिए--आस्था, श्रद्धा, भरोसा, ट्रस्ट; और विज्ञान के जगत में चाहिए--संदेह, शंका, प्रश्न। वह मार्ग अलग है।
तो विज्ञान में जितनी गति हो जाए, उतनी ही धर्म में गति मुश्किल हो जाती है। जितनी धर्म में गति हो जाए, उतनी विज्ञान में गति मुश्किल हो जाती है। इसलिए पूरब के मुल्कों में धर्म पैदा हुआ, तो विज्ञान पैदा न हो सका। पश्चिम में विज्ञान पैदा हुआ, तो धर्म के प्राण निकल गए। वहां ईश्वर मरी हुई घटना है। वहां मंदिर, मस्जिद और चर्च आभूषण से ज्यादा नहीं हैं; वे सजावटें हैं, डेकोरेशंस हैं; उनकी प्राणप्रतिष्ठा खो गई है। वहां भी लोग प्रार्थना करते हैं, लेकिन उस प्रार्थना में भी पीछे संदेह है।
तो दूसरी बात यह ख्याल में ले लें कि संदेह अगर व्यर्थ ही होता तो लोग करते ही क्यों? उसकी सार्थकता है, पर सार्थकता की एक सीमा है और अस्तित्व उस सीमा पर समाप्त नहीं होता। अस्तित्व उस सीमा से बहुत बड़ा है। और अगर तुम संदेह की मान कर चले, तो तुम सीमा में ही बंद हो जाओगे।
नौकर की कीमत है; लेकिन प्रेयसी की कीमत के आगे नौकर की क्या कीमत है! --चाहे वह कितना ही वफादार हो। इसलिए नूरी बे की पत्नी ने ठीक ही पूछा कि "एक नौकर की बात मान कर संदेह कर रहे हो या तुम्हारा खुद का ही भरोसा उठ गया है? और नौकर की बात तुम मान कैसे सके! क्योंकि नौकर की बात को मानने का अर्थ ही यह है कि पत्नी पर भरोसा उठ गया है। नहीं तो तुम हंसते और नौकर को टाल देते। तुम उसकी सुनते ही न।"
नौकर की एक सीमा है; प्रेम की तो कोई सीमा नहीं है। विज्ञान की एक सीमा है; धर्म की कोई सीमा नहीं है।
तो विज्ञान का तुम उपयोग कर लेना--पदार्थ के लिए, लेकिन उसकी मान कर तुम अपने प्रेम को नष्ट मत कर लेना। विज्ञान की बात सुन कर तुम यह बात कह देना कि "ईश्वर नहीं है।" यह तो ऐसा हुआ कि नौकर की बात मान कर किसी ने प्रेम के द्वार बंद कर दिए।
अब हम इस कहानी को पढ़ें। अब तुम्हारे हाथ में यह कुंजी है, यह कहानी खोली जा सकेगी।

"नूरी बे अलबानिया का निवासी था--विचारवान और प्रतिष्ठित।" ध्यान रहे, जो भी विचारवान हैं, वे एक दुधारी तलवार अपने हाथ में लिए हुए हैं। विचारवान के हाथ में तलवार है, जिसके दोनों तरफ धार है। वह तलवार दूसरे से रक्षा भी कर सकती है; वह तलवार आत्महत्या भी बन सकती है। विचारवान बुद्ध बन सकता है और विचारवान नीत्शे भी बन सकता है। वे दोनों धारें उसमें हैं। बुद्ध और नीत्शे--दोनों ही विचारवान हैं। लेकिन बुद्ध ने विचार का उपयोग आत्महत्या के लिए नहीं किया। बुद्ध ने विचार को नौकर से कभी ऊंची जगह पर न रखा। विचार कभी भी मंदिर में प्रतिष्ठित होकर परमात्मा न बना। परमात्मा होने की क्षमता तो निर्विचार की ही है।
तो बुद्ध ने अपने विचार का उपयोग किया--निर्विचार तक पहुंचने में। उन्होंने विचार को भी ध्यान तक ले जाने का साधन बनाया, सीढ़ी बनाई। और जब मंजिल आ जाती है, तो सीढ़ी भूल जाते हैं। और जब मछलियां पकड़ ली जाती हैं, तो जाल फेंक दिया जाता है। जब हम नदी पार हो जाते हैं, तो नाव को कौन लौट कर देखता है? तो विचार की नाव से वे निर्विचार के तट तक पहुंचे। यह एक उपयोग है। लेकिन विचार कभी मालिक न हुआ; मालिक वे खुद रहे।
विचार का एक उपयोग नीत्शे कर रहा है। विचार मालिक हो गया है; अब यह तलवार खतरनाक है और आत्मघाती है। नीत्शे उसी क्षमता का व्यक्ति था, जैसे गौतम बुद्ध। उससे रत्ती भर भी कम नहीं। वह भी किसी वृक्ष के नीचे बोधि को उपलब्ध हो सकता था। लेकिन तलवार का गलत उपयोग हो गया। और तलवार खतरनाक चीज है। विचार से वह और विचार, विचार से वह और विचार की तरफ गया। नाव "किनारे" पर न ले गई। नाव मझधार में भंवर खाने लगी। नाव गोल-गोल वर्तुल में घूमने लगी--एक दुष्चक्र निर्मित हो गया। लगता रहा कि जा भी रहे हैं, और कहीं जाना भी न हुआ।
कभी तुमने देखा हैः अगर तुमने कभी नाव खेई हो, तो दोनों पतवार चलाने पड़ते हैं। अगर तुम एक ही पतवार चलाओ, तो नाव गोल-गोल घूमने लगती है। फिर तुम कितनी ही यात्रा करो, पहुंचोगे कहीं भी नहीं। थक कर डूबोगे और मरोगे। जो लोग भी विचार को मालिक बना लेते हैं, उनके भीतर एक ही पतवार घूमने लगी--विचार की। जो लोग विचार को मालिक नहीं बनाते, वे निर्विचार की भी दूसरी पतवार को हाथ में रखते हैं। वे सोचते हैं, लेकिन सोचने को अपना अस्तित्व नहीं बनाते। वे विचार की पतवार के साथ इतने आत्मसात नहीं हो जाते कि निर्विचार की पतवार न चला सकें। वे विचार के साथ इतने विक्षिप्त नहीं हो जाते कि शांत होकर ध्यान में न जा सकें। और विचार और निर्विचार की दोनों पतवारें जब साथ-साथ चलती हैं, तो एक दूसरे को संतुलित करती हैं और किनारा नजदीक आता है। किनारे पर उतर कर तुम नाव भी भूल जाते हो, पतवार भी भूल जाते हो।
ध्यान रखना, जिस दिन विचार छूटता है, उस दिन निर्विचार भी छूट जाता है। निर्विचार का अर्थ ही क्या है--जब विचार न बचा! और जिस दिन विचार छूटता है, उस दिन ध्यान भी छूट जाता है। क्योंकि ध्यान का प्रयोजन ही क्या है--जब विचार न बचा? जब बीमारी ही न रही, तो औषधि की बोतल तुम कितनी देर ढोते रहोगे? और किसलिए?
जिस दिन संसार छूटता है, उसी दिन धर्म भी छूट जाता है। और जिस दिन पदार्थ भूल जाता है, उसी दिन परमात्मा को भी याद करने की जरूरत नहीं रह जाती। तुम स्वयं वही हो गए; मंजिल आ गई।
लेकिन नीत्शे विचार की एक पतवार चलाता रहा। नाव गोल-गोल घूमने लगी। श्रम उसने बहुत किया, किनारा पास न आया। और जब भी तुम बहुत श्रम करो और किनारा पास आता न लगे, तो क्या होगा? तुम विक्षिप्त हो जाओगे, तुम पागल हो जाओगे। नीत्शे पागल होकर मरा। बुद्ध भी मरे--मुक्त होकर, विमुक्त होकर।
नीत्शे भी मरा--विक्षिप्त होकर।
विचार की तलवार की दो धारें हैंः एक तुम्हें विमुक्त कर सकती है, एक तुम्हें विक्षिप्त कर सकती है।
यह नूरी बे विचारवान था--"विचारवान" से कुछ पता नहीं चलता कि तुम किस तरफ जाओगे, दोनों तरफ जा सकते हो--और प्रतिष्ठित भी।

प्रतिष्ठा भी बड़ी खतरनाक चीज है। और प्रतिष्ठा भी दो तरह की होती है।
एक तो प्रतिष्ठा होती है, जिसका आधार तुम्हारी भीतरी गरिमा में होता है, जिसका आधार तुम्हारी भीतर की ज्योति में होता है। और एक प्रतिष्ठा होती है, जिसका आधार लोगों के मत--पब्लिक ओपिनियन में होता है, "लोग क्या कहते हैं"--इसमें होता है।
जो प्रतिष्ठा सोचती है कि "लोग क्या कहते हैं", वह प्रतिष्ठा भीतरी नहीं है। इसका कोई मूल्य नहीं है। ऐसी प्रतिष्ठा सदा भयभीत रहती है। क्योंकि अनेक हैं लोग, उनका भरोसा क्या? और जितने जल्दी लोगों का मन बदलता है, उतनी जल्दी कोई भी चीज नहीं बदलती! वह तो हवा के जैसा है। सुबह कुछ, सांझ कुछ। कभी हवा दक्षिण को बहती तो कभी पश्चिम को बहती है। कल जो प्रतिष्ठित थे, आज धूल-धूसरित हो जाते हैं। आज जो कुछ भी नहीं हैं, कल प्रतिष्ठित हो जाते हैं।
बाहर से आने वाली प्रतिष्ठा का कोई मूल्य नहीं है। और जिसकी प्रतिष्ठा बाहर से आती है, वह हमेशा भय-कंपित रहेगा। तुम्हारे बड़े से बड़े नेता छोटे से छोटे अनुयायी से डरे रहते हैं। क्योंकि वही उनकी ईंट है। वह खिसक जाए तो पूरा भवन गिरता है। तुम्हारे तथाकथित गुरु छोटे से छोटे अनुयायी से भयभीत रहते हैं, क्योंकि उसके मंतव्य में ही उनकी प्रतिष्ठा है। वह मंतव्य बदल ले, तो उनकी प्रतिष्ठा खो जाए। जो प्रतिष्ठा दूसरे के हाथ में है, वह तुम्हें अभय नहीं कर सकती; क्योंकि लगाम किसी और के हाथ में है।
यह आदमी बड़े खतरे में था--नूरी बे। यह विचारवान था। यह विमुक्त भी हो सकता है, विक्षिप्त भी। और यह प्रतिष्ठित था। और कहानी अभी कुछ भी नहीं कहती है कि इसकी प्रतिष्ठा कैसी थी। सौ में से निन्यानबे मौके पर तो वह बाहर होती है, तो नौकर भी मालिक हो जाते हैं।
नौकर इसे डरा सका, क्योंकि उसने कहा कि "सुनो मालिक, यह जो हो रहा है घर में--यह जो संदूक है, यह आदमी को छिपा सकती है, इतनी बड़ी है। और जवान पत्नी तुम ले आए हो। तुम्हारी उम्र ज्यादा है और पत्नी की बहुत कम है। खतरा है। प्रतिष्ठा दांव पर लग जाएगी, अगर जरा भी खबर लोगों को मिल गई।"
नौकर भी डरा सकता है, अगर प्रतिष्ठा बाहरी है। और जिस व्यक्ति की बाहरी प्रतिष्ठा है, वह कभी प्रेम नहीं कर सकता। क्योंकि प्रेम के लिए भीतरी आधार चाहिए। प्रेम के लिए तुम्हारे भीतर जड़ें चाहिए। और प्रेम के लिए दूसरे तुम्हारे मालिक नहीं होने चाहिए।
अब यह बड़े मजे की बात है कि जब तुम अपने विचार के मालिक नहीं होते, तो दूसरे तुम्हारे मालिक होते हैं। और जिस दिन तुम अपने विचार के मालिक होते हो, उस दिन तुम्हारा कोई मालिक नहीं रह जाता।
महाराष्ट्र में बिठोबा का मंदिर है। यह मंदिर एक बड़ी मीठी कहानी पर खड़ा है। और ऐसा मंदिर पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। क्योंकि ऐसी कहानी किसी मंदिर के साथ नहीं है। कहानी है कि एक भक्त अपनी बूढ़ी मां के पैर दबा रहा है। वह बीमार है। यह कोई कर्तव्य नहीं निभा रहा है। यह कोई "प्रतिष्ठित काम करना चाहिए"--ऐसा करके नहीं कर रहा है। यह मां की सेवा इसलिए नहीं कर रहा है कि लोग कहते हैं कि मां की सेवा न करोगे, तो अप्रतिष्ठा मिलेगी। इसकी सेवा भीतरी प्रेम पर खड़ी है, इसकी जड़ें भीतर हैं। यह मां के पैर दबा रहा है।
इसकी सेवा से कृष्ण प्रसन्न हो गए। और कृष्ण इसे दर्शन देने आए। तो इसने लौट कर देखा नहीं। इसने कृष्ण से कहा, "अभी रुको। जब तक मैं मां की सेवा पूरी न कर लूं, तब तक अभी मिलना नहीं हो सकता।" कृष्ण दरबार से भक्त लौटे होंगे, लेकिन किसी भक्त के दरबार से कृष्ण को लौटना पड़ा। यह कहानी बड़ी अनूठी है।
उस भक्त ने कहाः "अभी वक्त नहीं है, अभी समय नहीं है, अभी सुविधा नहीं है। अगर जल्दी हो, तो लौट जाओ। अगर रुक सकते हो।" उसके पास एक ईंट पड़ी थी, उसने उसे पीछे सरका दिया और कहा कि "इस ईंट पर बैठ जाओ; विश्राम करो।" इसलिए बिठोबा के मंदिर की जो मूर्ति है, वह एक ईंट पर रखी हुई है। वह वही ईंट है। कृष्ण रात भर वहां बैठे रहे--उस ईंट पर--प्रतीक्षा करते हुए। कृष्ण

रात भी जिसके प्रेम को न डिगा सके, उसका प्रेम धन्य है; क्योंकि उसका प्रेम अलौकिक हो गया। इस भक्त को भगवान की जरूरत ही नहीं है; इस प्रेम को प्रार्थना अनावश्यक है। इसका प्रेम ही प्रार्थना हो गया।
लेकिन तुम्हें तो नौकर डिगा देगा। कृष्ण की तो बात ही और है। अगर जगत
का परमात्मा, जगत का मालिक तुम्हारे दरवाजे पर दस्तक दे, तो तुम हिम्मत न जुटा सकोगे--नौकर दस्तक दे दे, तो तुम कंप जाते हो--तो सारे जगत का मालिक दस्तक दे और तुम ईंट सरका दो और कहो कि "रुको, आराम कर लो, अगर आराम करना है। जाना हो, चले जाओ। लेकिन अभी मैं मां के पैर दाब रहा हूं। जब तक उसकी नींद न लग जाए, तब तक मिलने का कोई उपाय नहीं है!
यह नूरी बे प्रतिष्ठित था, विचारवान था। अपने से बहुत छोटी उम्र की युवती से उसने विवाह किया! एक संध्या नूरी समय से पहले घर लौटा तो उसके वफादार नौकर ने उससे कहाः "आपकी पत्नी मेरी मालकिन, बहुत संदेहजनक ढंग से पेश आ रही हैं। उनके कमरे में एक बड़ा संदूक है, इतना बड़ा कि एक आदमी उसमें समा जाए। पहले वह आपकी दादी के पास था और उसमें थोड़े से जड़ी के सामान थे, लेकिन अब उसके भीतर शायद बहुत कुछ है। मैं आपका सबसे पुराना नौकर हूं, लेकिन मालकिन मुझे भी उस संदूक के भीतर नहीं झांकने देती।"
नूरी बे अपनी पत्नी के कमरे में जा पहुंचा और देखा कि एक लकड़ी के संदूक के पास उदास बैठी है। सारी स्थिति संदेहजनक है। नौकर वफादार है। उससे झूठ बोले जाने की आशा नहीं है, कोई कारण भी नहीं है। पुराना नौकर है। अनेक घड़ियों में जांचा-परखा है। उस पर भरोसा रखा जा सकता है। वह सदा सही साबित हुआ है। वह कह रहा है कि स्थिति संदेहजनक है। फिर पत्नी संदूक में झांकने ही नहीं देती, तो स्थिति और भी संदेहजनक हो गई। अगर कुछ भी नहीं है संदूक में, तो झांकने न देने का आग्रह क्यों! फिर नूरी बे भीतर गया तो देखा, उसी संदूक के पास पत्नी उदास बैठी है। सारी स्थिति संदेह की है।
ध्यान रहे, स्थिति संदेह की न हो और आप आस्था करें, वह आस्था दो कौड़ी
की है। उसका क्या मूल्य? जिस आस्था को टूटने का कोई कारण ही न हो, संदेह जिसमें कोई संध न खोज पाए, फिर आप आस्था करें, उस आस्था का कोई भी मूल्य नहीं। वह आस्था संदेह की ही निष्पत्ति है। इसे थोड़ा समझ लें।
अनेक लोगों की आस्था संदेह की ही निष्पत्ति है; वह संदेह का ही सोच-विचार है। तुमने सब तरफ से जांच-पड़ताल की और ठीक पाया, इसलिए तुम श्रद्धा करते हो। मगर यह श्रद्धा कहां है? यह तो संदेह ने ही तुम्हें समझाया है कि "हां, बिल्कुल ठीक है।" संदेह तुमने सब तरह से किया, कसौटी तुमने सब कसी, परिस्थितियां तुमने सब जांची, एक-एक झरोखा तुमने झांक कर देखा, फिर संदेह में अपने को असफल पाया। कोई जगह न थी, जहां संदेह किया जा सके। सब तरफ से बात ठीक थी, तब तुमने स्वीकार किया।
इसलिए विज्ञान में आस्था जैसी चीज नहीं होती; हो ही नहीं सकती। क्योंकि विज्ञान तभी किसी चीज को मानता है, जब सभी संदेह की जांच पूरी हो जाती है। इसलिए विज्ञान में श्रद्धा जैसी कोई चीज नहीं होती।
ईसाई फकीर हुआ--तरतूलियन। तरतूलियन ने कहा हैः "परमात्मा, मैं तुझमें विश्वास करता हूं। विश्वास का कोई कारण नहीं है। सच तो यह है कि अविश्वास के सब कारण होते हैं और विश्वास का कोई कारण भी नहीं है। लेकिन मैं तुझमें आस्था रखता हूं।" तभी आस्था आस्था है।
संदेह की सुन कर, मान कर, खोज कर--संदेह के ही निष्कर्ष से अगर आस्था आती हो, तो वह दो कौड़ी की है। वह तुम्हें कहीं भी न ले जाएगी। लेकिन संदेह सब सुझाता हो, और संदेह सब तरफ ठीक मालूम पड़ता हो, फिर भी तुम मानते हो, तो छलांग है। उसका अर्थ हुआ कि तुमने मन को छोड़ा, तुमने संदेह को छोड़ा।
यह जो आस्था है, संदेह को छोड़ कर है; यह संदेह का सिलसिला नहीं है। तुम संदेह से छलांग लगा गए। तुमने कहा, "तू चुप रह! तुझसे पूछ कर आस्था हमें करनी नहीं है।" तब तुम्हारे जीवन में एकशृंखला टूटती है। संदेह एक तरफ रह जाता है, तुम छलांग लगा कर बाहर निकल जाते हो। यह ऐसे है, जैसे सांप केंचुली के बाहर निकलता है। केंचुली पीछे पड़ी रह जाती है, सांप यात्रा पर चला जाता है। संदेह केंचुली की तरह पीछे पड़ा रह जाए, वह तुम्हारे गणित का आधार न हो, तुम्हारी आस्था की बुनियाद न हो।

यह तो सीधी सी बात है कि जिस आस्था की बुनियाद संदेह पर खड़ी हो, वह आस्था नहीं हो सकती। इसलिए विज्ञान अपनी निष्पत्तियों को अंतिम निष्पत्तियां कभी भी नहीं कह सकता। वे अस्थायी निष्कर्ष हैं। आज तक संदेह ने कहा है कि कोई गड़बड़ नहीं है, लेकिन कल का क्या पता? न्यूटन कभी सही था, अब गलत हो गया। आइंस्टीन कभी सही था, अब गलत हुआ जाता है।
विज्ञान में कोई चीज सदा के लिए सही नहीं हो सकती, क्योंकि तर्क, संदेह कुछ नये रास्ते खोज लेगा। अब तक सफल नहीं हो पाया, लेकिन तर्क की असफलता से, संदेह की असफलता से आस्था तो निर्मित नहीं होती; अस्थायी आस्था निर्मित हो सकती है। इसलिए विज्ञान कहता हैः कोई सिद्धांत स्थायी नहीं है; सब परिकल्पना है, हाईपोथेसिस है। जब तक संदेह कुछ नहीं कर पा रहा है, तब तक ठीक। जब संदेह एक दरवाजा खोज लेगा, तभी गलत हो जाएगा।
संदेह पर जिसने महल बनाया--आस्था का, उसने रेत पर भवन खड़ा किया है, जो कभी भी गिर सकता है। जैसे छोटे बच्चे ताश का भवन बनाते हैं। हवा का कोई भी झोंका कभी उसे गिरा देगा। जब तक नहीं गिरा, नहीं गिरा, तब तक भवन है। लेकिन तुम्हारी ही सांस का झोंका गिरा दे सकता है, तुम्हारे हाथ की जरा सी टकराहट गिरा दे सकती है।
स्थिति पूरी थी नूरी बे के सामने। संदेह साफ था। आस्था का कोई कारण नहीं दीखता। वफादार नौकर है, झूठ बोलेगा नहीं, कभी बोला नहीं। बापदादों के जमाने से घर में काम कर रहा है; पुराना। और हमारी पुराने पर सदा आस्था होती है--बजाय नये के। पत्नी नई है, अपरिचित है, अनजान परिवार और घर से आई है। क्या है उसका अतीत--हमें ज्ञात नहीं है। चाल-चलन कैसा है, कुछ कहा नहीं जा सकता। आचरण कैसा है, कुछ पक्का नहीं। उसका हमारे पास कोई प्रमाण, सबूत नहीं है। नौकर का आचरण पक्का है; सबूत है। हम उससे परिचित हैं, जानते हैं; और जो उसने कभी नहीं किया, आज कोई कारण नहीं कि वह करेगा।
तर्क कार्य-कारण में मानता है। जो कभी नहीं हुआ, वह आज कैसे हो जाएगा।
जो सदा हुआ है, वही आज भी होगा। जिंदगी बड़ी अनूठी है। जो कि कभी न हुआ हो, वह हो सकता है। जो सदा हुआ हो, वह भी न हो।
जिंदगी छलांग लेती है। तर्क छलांग कभी नहीं लेता। तर्क की दुनिया में छलांग होती नहीं। वहां सब चीजें जुड़ी होती हैं।
नूरी बे ने पूछा पत्नी को, "क्या मैं देख सकता हूं कि संदूक में क्या है?" पत्नी ने कहा, "क्या एक नौकर के संदेह के कारण पूछते हो?" तो तुमने मालकियत खो दी। नौकर मालिक बन बैठा। "या इस कारण पूछते हो कि तुमको ही मुझ पर भरोसा न रहा?" यह संदेह तुम्हारे भीतर से आता है या तुम्हारे बाहर से? यह थोड़ा सोचने जैसा है। "संदेह भी तुम्हारा अपना नहीं है"--कितनी दरिद्रता है! संदेह भी उधार है! आस्था तो तुम्हारी अपनी क्या होगी, संदेह भी दूसरे तुम्हें दे जाते हैं। रास्ते पर तुम जा रहे हो, कोई कुछ कह देता है और संदेह जन्म जाता है। कोई किताब तुम पढ़ लेते हो, और संदेह पैदा हो जाता है। अनजान आदमियों की बातचीत सुन लेते हो और संदेह पैदा हो जाता है। संदेह तक प्रामाणिक नहीं है; वह भी तुम्हारा अपना नहीं है। और जिनका संदेह अपना न हो, क्या कभी ऐसा क्षण आ सकता है कि उनकी अपनी आस्था हो? सब उधार है। पत्नी ने बड़ी ठीक बात पूछी। उसने ठीक जगह चोट की। उसने कहा, "क्या एक नौकर के संदेह के कारण पूछते हो या कि इस कारण कि तुमको ही मुझ पर भरोसा न रहा?" दोनों में फर्क है। अगर नौकर के संदेह के कारण पूछते हो, तो तुम्हारा संदेह भी दो कौड़ी का है। उसका मूल्य उतना ही है, जितना नौकर का मूल्य हो सकता है। या तुम अपने ही कारण पूछते हो, तब तुम्हारे संदेह का मूल्य है। फिर वैसा मैं उत्तर दूं। पत्नी यही पूछ रही है कि किस तरह तुम्हारे संदेह का पता चल जाए कि कितना गहरा है।
ध्यान रहेः सभी संदेह समान गहराई के नहीं होते। और संदेह की गहराई पर निर्भर करता है कि तुम्हारी खोज कितनी गहरी है, तुम कितना गहरा प्रत्युत्तर चाहते हो।
किसी ने तुम्हें कुछ कह दिया है, इसलिए संदेह पैदा हुआ है, तो उत्तर के लायक भी नहीं है; क्योंकि कोई कल फिर कुछ कह देगा; फिर संदेह पैदा हो जाएगा। यह बात ही व्यर्थ है। इसमें पड़ने की कोई जरूरत ही नहीं है। अगर

संदेह तुम्हारा अपना है, तो उत्तर देने योग्य है। और उतने ही गहरे उत्तर की मांग करता है, जितना तुम्हारा गहरा संदेह है।
बुद्ध से एक बार सारिपुत्र ने पूछा कि "अलग-अलग लोग आते हैं, अक्सर उनके प्रश्न समान होते हैं। लेकिन आपके उत्तर अलग-अलग?" बुद्ध ने कहाः "उनके संदेह की गहराई पर निर्भर करता है।" क्योंकि जिसको प्यास ही चुल्लू की लगी हो, उसको सागर में डुबाने का क्या प्रयोजन! जिसकी प्यास ही झूठी हो, उसको असली जल दिखाने का क्या प्रयोजन! जो यों ही चला आया हो--कुतूहल के वश, उसको उतना ही उत्तर चाहिए। जो जिज्ञासा लेकर आया हो, उसे गहरा उत्तर चाहिए। जो मुमुक्षा से आया हो, उसे अंतिम उत्तर चाहिए।
नासमझ है वह आदमी, जो कुतूहल वाले को मुमुक्षा का उत्तर दे दे; उसमें कोई संबंध ही न बनेगा। जहां सुई की जरूरत हो, वहां तलवार का क्या प्रयोजन? जहां सुई से काम हो जाता हो, वहां तलवार घुमाना पागलपन है।
वह पत्नी ठीक बात पूछ रही है। वह यह पूछ रही है कि "मैं जान तो लूं, तुम्हारा संदेह कहां से आया है--अपना है, तो फिर वैसा उत्तर दूं। और अगर नौकर का है, उधार है--राह चलते लोग, घर के नौकर तुम्हें संदेह से भर देते हैं--तो फिर वैसा उत्तर दूं।" वह प्रेम की कितनी गहराई है।
नूरी बे विचारशील आदमी है। उसने जो उत्तर दिया, वह साधारणतया विचारशील आदमी का उत्तर है। उसने कहाः "इन बातों में गए बगैर संदूक को खोलना क्या मुमकिन नहीं होगा?" यह बड़ी चालाकी का उत्तर है। वह बच रहा है। उसने उत्तर दिया नहीं। बात सीधी सी पूछी गई थी कि "नौकर ने संदेह उठाया है या संदेह तुम्हारा अपना है?" इसमें ऐसी चाल करने की क्या जरूरत है! वह वकील का उत्तर दे रहा है, जिसमें वह पकड़ा नहीं जा सकता। वह कुछ भी नहीं कह रहा है। वह कह रहा हैः "इन बातों में गए बगैर संदूक को खोलना क्या मुमकिन नहीं होगा?" उसकी पत्नी ने कहाः "नहीं।" क्योंकि इन बातों में गए बगैर इंच भर भी सत्य को जानने का कोई उपाय नहीं है। सत्य को जिन्हें जानना हो, उन्हें इन सभी बातों में जाना पड़ेगा।
सत्य कोई वकील की खोज नहीं है। तुम बच कर नहीं जा सकते। तुम किन्हीं प्रश्नों को टाल नहीं सकते। तुम किन्हीं तथ्यों से आंख नहीं बंद कर सकते। वे चाहे कितने ही कष्टदायी हों और चाहे कितना ही दुख और पीड़ा उनसे पैदा हो, तथ्यों को जानना ही होगा, तो ही सत्य तक पहुंचने का कोई उपाय है। तथ्य से गुजरे बिना कोई सत्य तक नहीं पहुंचता। संदूक में झांकोगे कैसे? संदूक जीवन ही है।
वकील जीवन से अपरिचित रह जाते हैं, क्योंकि वे हमेशा चालाकी से सोच रहे हैं। मैंने सुना हैः एक आदमी कब्रिस्तान से निकल रहा था। उसने एक कब्र पर लिखा हुआ देखाः "यह कब्र एक बहुत बड़े वकील और ईमानदार आदमी की कब्र है।" उस आदमी ने कहा, "कब्र इतनी छोटी है, दो आदमी इसमें हो कैसे सकते हैं? क्योंकि वकील और ईमानदार! एक आदमी में तो हो ही नहीं सकती हैं--ये दो घटनाएं। और दो आदमी के लायक यह कब्र बहुत छोटी है!"
वकील का अर्थ हैः विचार की बेईमानी। और विचार तुम्हें बेईमान बनाता है। इसलिए अक्सर यह देखा जाता है कि जितने लोग शिक्षित होते हैं, विचारवान होते हैं, उतने ही बेईमान हो जाते हैं। गांवों के ग्रामीण में तो ईमानदार मिल जाएं, लेकिन शहर के सुशिक्षित में ईमानदार आदमी मिलना मुश्किल है। क्योंकि तुम विचार का दुरुपयोग कर रहे हो; अन्यथा ईमानदार तुम होते; तुम्हारी ईमानदारी और भी गहरी हो जाती; वह सिर्फ भोलापन नहीं होता, बुद्धूपन नहीं होता; उसमें गहराई आ जाती। लेकिन विचार के दो उपयोग हैं और एक उपयोग हमेशा खतरनाक है, आत्मघाती है।
नूरी बे विचारशील आदमी था। प्रतिष्ठित था। क्योंकि जो उत्तर दिया उसे समझ में तो आ गया होगा। पत्नी की आंखों ने जिस ढंग से देखा होगा, पत्नी की आंखों ने जिस ढंग से उसके भीतर प्रवेश किया होगा और उसने पूछा होगा कि "मैं जानना चाहती हूं, यह नौकर संदेह पैदा कर रहा है या संदेह तुम्हारा खुद है।" क्योंकि उसके पहले कोई उत्तर देने का अर्थ नहीं है। पहले प्रश्न का ठीक पता चल जाए, कहां से आता है, तभी ठीक उत्तर दिया जा सकता है।

जितना गहरा प्रश्न हो, उतने ही गहरे उत्तर की अपेक्षा होती है। नूरी
बे ने कहा, "इन बातों में गए बगैर संदूक को खोलना क्या मुमकिन नहीं होगा?" पत्नी बोली, "नहीं।" "क्या इसमें ताले लगे हैं?" नूरी बे यह पूछ रहा है कि अगर तू न भी खोलने दे तो मैं जबरदस्ती खोल सकता हूं। विचार की हमेशा यही चेष्टा होती है कि जो सहजता से न खुले, उसे जबरदस्ती खोल ले।
पहले उसने पूछा कि "संदूक को खोलना मुमकिन नहीं होगा?" पत्नी ने कहा, "नहीं।" तो तत्क्षण उसने दूसरी बात पूछी, "क्या इसमें ताले लगे हैं?" नहीं तो वह खोल ही लेगा। वह पत्नी से बिना पूछे खोल लेगा।
विचार हमेशा इस तलाश में है कि जीवन के रहस्यों को तोड़ दे--खोल ले-- जबरदस्ती, हिंसात्मक ढंग से। विज्ञान एक हिंसा है। धर्म भी जीवन के रहस्यों को खोलता है, लेकिन जीवन से ही पूछ कर। वह एक संवाद है। वह जीवन को ही राजी करके रहस्यों को खोलता है। विज्ञान तोड़ता है; अगर ताले लगे हैं और चाबी हाथ में न हो तो हथौड़े चलाता है। विज्ञान से बड़ी हिंसा खोजनी कठिन है। और इसलिए विज्ञान से जो भी पैदा होता है, उससे हिंसा बढ़ती है। धर्म से जो भी पैदा होता है, उससे अहिंसा बढ़ती है। क्योंकि धर्म का मौलिक सूत्र अहिंसा है। तोड़ना नहीं है, राजी करना है--प्रकृति को, ताकि वह अपने द्वार खुद खोल दे।
विज्ञान एक तरह का बलात्कार है--रेप। और धर्म है--प्रेम। और बलात्कार
और प्रेम में जो अंतर है, वही अंतर विज्ञान और धर्म में है। एक सुंदर स्त्री रास्ते से गुजर रही है; इसके साथ बलात्कार किया जा सकता है। तब इसकी स्वीकृति की कोई जरूरत नहीं है; इसके प्रेमपूर्ण प्रत्युत्तर की कोई जरूरत नहीं है। तुम इस पर हमला कर सकते हो। तुम इसके वस्त्र चीर-फाड़ कर इसे नग्न कर सकते हो। तुम बलात्कार कर सकते हो। यह स्त्री वहां नहीं होगी। एक लाश के साथ तुम्हारा आलिंगन होगा। लेकिन तुम इस भ्रांति में हो सकते हो कि तुमने प्रेम किया। विज्ञान बलात्कार की तरह है।
धर्म का व्यवहार प्रेम का है। लेकिन "स्त्री" पर हमला नहीं करता; वह "स्त्री" को निमंत्रण देता है; वह स्त्री को राजी करता है। लंबी कोर्टशिप है धर्म की। जिसमें वह फुसलाता है, राजी करता है। और एक दिन यह स्त्री अपने जीवन के रहस्य को उसके सामने खोल देती है। यह खुद ही नग्न हो जाती है। लेकिन इस नग्नता में और बलात्कार में--जब कि एक स्त्री नग्न की जाती है-- क्या तुम सोचते हो, दोनों नग्नताएं एक सी हैं? इनमें जमीन-आसमान का अंतर है। इससे बड़ा अंतर और किन दो चीजों में होगा--जब एक स्त्री स्वयं नग्न होती है--किसी प्रेम के क्षण में अपना सब रहस्य खोल देती है और जब तुम जबरदस्ती वस्त्र फाड़ डालते हो तब।
विज्ञान का व्यवहार बलात्कार का है, धर्म का व्यवहार प्रेम का है। धर्म भी रहस्य को खोज लेता है--प्रकृति के। लाओत्सु ने भी जाना है, बुद्ध ने भी, कृष्ण ने भी। न्यूटन भी जानता है, आइंस्टीन भी जानता है। लेकिन उनके जानने में बलात्कार और प्रेम का अंतर है। गुणधर्म बदल जाते हैं।
विचार ने तत्क्षण पूछा--नूरी बे ने कहा "क्या इसमें ताले लगे हैं?" वह जबरदस्ती करेगा। अगर ताले ना लगे हों, तो वह अभी इसे खोल कर देख लेना चाहता है। वह पूछने को भी राजी नहीं है। अब वह आज्ञा भी नहीं लेना चाहता। उसके पूछने में झूठ था। उसका पूछना वास्तविक नहीं था। वह पूछना ऊपरी था। वह बिना पूछे खोलने को राजी है।
पत्नी ने कहा, "हां।" नूरी बे ने पूछा, "फिर चाबी कहां है?" पत्नी ने एक बहुत अनूठी बात कही; यह जीवन की गहरी से गहरी बात है और इतने सरल ढंग से इस कहानी में है कि शायद तुम चूक ही जाओ। "नौकर को बरखास्त कर दो और यह मैं तुम्हें दे दूंगी," चाबी दिखाते हुए पत्नी ने कहा।
सारा जगत, अस्तित्व यही कह रहा हैः संदेह को बरखास्त कर दो और यह रही चाबी। नौकर को हटाओ और द्वार खुले हैं। चाबी छिपाई नहीं गई है, संदेह के कारण तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रही है। चाबी पूरे समय "पत्नी" के हाथ में है-- सामने है। प्रकृति के दरवाजे बंद कहां हैं? लेकिन संदेह के कारण तुम्हारी आंखें धुंधली हैं; तुम देख नहीं पा रहे हो। सारे धर्म यही कहते हैंः "नौकर को बरखास्त कर दो और यह चाबी रही। यह चाबी तुम ले लो और सब ताले खोल डालो।"

लेकिन संदेह के रहते तुम भीतर प्रवेश न पा सकोगे। यह मंदिर संदेह के लिए नहीं है।
प्रेम का द्वार, आस्था का द्वार कैसे खुल सकता है, अगर संदेह हो? जहां भरोसा न हो, वहां हृदय खुलेगा कैसे? संदूक तो तुम तोड़ लोगे, लेकिन हृदयों को कैसे तोड़ोगे? अगर हृदय को तोड़ कर तुम देखोगे, तो क्या पाओगे? कुछ भी न पाओगे। जो था, वह जा चुका--तोड़ने में ही जा चुका।
कुछ चीजें हैं, जो तोड़ने में खो जाती हैं। और जो भी चीजें तोड़ने में खो जाती हैं; विज्ञान उनको इनकार करता है, इसलिए कि वह उनको पाता नहीं है। और उसकी तरकीब एक ही है कि तोड़े। तुम्हारे भीतर अगर तोड़ेंगे तो हड्डियां मिलेंगी, मांस-मज्जा सब मिल जाएगी, हृदय नहीं मिलेगा। फेफड़ा मिलेगा। फेफड़ा बात ही और है, हृदय बात ही और है। हृदय कुछ भीतरी बात है। फेफड़ा जैसे मंदिर की बाहर की दीवार है। हृदय जैसे भीतर प्रतिष्ठित मूर्ति है। और जब भी तुम तोड़ते हो, बस, मंदिर की दीवाल मिलती है, मूर्ति खो जाती है।
कुछ चीजें हैं, जो तोड़ने से खो जाती हैं। क्योंकि उनका होना, उनकी समग्रता है। आस्था--तुमने सोचा कि खो जाएगी; क्योंकि सोचने का अर्थ सदा तोड़ना होता है--एनालिसिस। सोचने का अर्थ है--विश्लेषण, काटो, तोड़ो, देखो। विज्ञान का अर्थ हैः डिसेक्शन। सर्जन की टेबल पर जो होता है, वही विज्ञान पूरी प्रकृति के साथ कर रहा है, "काटो और देखो--भीतर क्या है।" इसलिए विज्ञान जीवन को पा ही नहीं सकता। जीवन--जैसे ही तुम तोड़ते हो--खो जाता है। यह वृक्ष सामने अभी जीवित है, लहलहा रहा है, हरा है। तुम तोड़ डालो इसको। एक-एक खंड-खंड करके खोजो कि कहां है वह वृक्ष--जो हरा था, लहलहा रहा था, जो जीवित था। तुम कुछ भी न पाओगे। वहां मौत मिलेगी।
एक आदमी अभी जीवित है, तोड़ डालो, खोल डालो--इसके सब अस्थिपंजर को; तब तुम अस्थिपंजर को पाओगे, आत्मा खो जाएगी। यह फूल अभी सुंदर है। इसका विभाजन कर डालो, तो तुम्हें रासायनिक पदार्थ मिल जाएंगे, खनिज मिल जाएंगे, पानी-मिट्टी सब मिल जाएगा--फूल भर नहीं मिलेगा। और फूल का सौंदर्य तो कहीं भी नहीं मिलेगा।
विश्लेषण से सिर्फ मृत्यु को--मरे हुए को जाना जा सकता है। संश्लेषण
से जीवन को जाना जाता है। इसलिए विज्ञान का ढंग है--एनालिसिस, विश्लेषण। धर्म का ढंग है, संश्लेषण, सिंथेसिस। धर्म परम संश्लेषण है। वह आखिरी सिंथेसिस है, अल्टिमेट सिंथेसिस है। उसके पार फिर कुछ नहीं। उस परम संश्लेषण को हम परमात्मा कहते हैं। जहां सब खंड इकट्ठे हमने कर लिए, सब जोड़ लिए--जो भी था; कुछ छोड़ा नहीं, सब इकट्ठा कर लिया। "वह" आखिरी जोड़ है; उससे पार कुछ भी नहीं है। क्योंकि उसके बाहर कुछ भी नहीं है; और जोड़ने को कुछ न बचा।
इसलिए धर्म तो परमात्मा पर पहुंच जाता है और विज्ञान परमाणु पर पहुंच जाता है--अपने आप। उनकी प्रक्रिया का ढंग ऐसा है कि क्षुद्रतम पर पहुंचेगा विज्ञान। और पाए गा क्षुद्र को--और क्षुद्र को। उसकी सारी तलाश यह है कि क्षुद्रतम को कैसे पहुंच जाए; क्योंकि खंडन करने से तुम क्षुद्र को ही पा सकते हो। जोड़ने से विराट पाया जा सकता है। तोड़ने से तो विराट नहीं पाया जा सकता!
उसकी पत्नी ने ठीक ही कहा। वही तो प्रकृति सदा से कह रही है। "नौकर बरखास्त कर दो और यह रही चाबी। यह मैं तुम्हें दिए देती हूं।" चाबी को देने में जरा भी अड़चन नहीं है। पर संदेह अगर साथ है, तो चाबी देने योग्य नहीं है। समझा होगा नूरी बे ने--वह विचारशील व्यक्ति था। पत्नी की आंखों से, पत्नी के ढंग से, पत्नी के भरोसे में, उसमें भी भरोसे की लहर दौड़ आई होगी। और पत्नी छिपा नहीं रही है; चाबी सामने है। पत्नी मना भी नहीं कर रही है। और उसकी शर्त भी गलत नहीं है। क्योंकि जहां संदेह का कोई कारण नहीं है, वहां जिसने संदेह पैदा किया हो, उसे बरखास्त कर दो। उसके रहते चाबी न दी जाएगी।
नौकर बरखास्त कर दिया गया। नूरी बे ने समझा। बात सीधी-साफ है। नौकर बरखास्त कर दिया गया और पत्नी ने चाबी सौंप दी। और फिर बहुत दुखी मन से विदा हो गई।

दो बातें हैंः विचार समझ सकता है--अगर तुम चेष्टा करो। तो विचार समझ सकता है कि निर्विचार की जरूरत है। विचार समझ सकता है कि विचार के पार जाना है। यह विचार की भीतरी क्षमता है कि तुम यह समझ सकते हो कि संदेह से क्या मिलेगा--श्रद्धा चाहिए।
नूरी बे समझ सका कि संदेह से द्वार नहीं खुलेगा, चाबी न मिलेगी। नौकर
को बरखास्त कर दिया। लेकिन पत्नी उदास होकर हट गई--वहां से। यह उदासी इसलिए है कि नौकर तुमने बरखास्त तो किया, लेकिन संदेह के बाद। काश, इस नौकर को माना ही न गया होता, तब यह पत्नी प्रफुल्लित होती। अब यह उदास है। ध्यान रहे, वही घटना दो ढंग से घट सकती है। अगर किसी दिन विज्ञान विचार करते-करते, संदेह करते-करते उस जगह भी पहुंच जाएगा, जहां उसे लगेगा कि संदेह व्यर्थ है और संदेह को बरखास्त कर दो प्रयोगशाला से; तो भी प्रकृति रहस्य खोलेगी, लेकिन वह उदास होकर। कृष्ण की बांसुरी उसमें न सुनी जा सकेगी। बुद्ध की आनंदमग्न प्रतिमा उसमें न मिलेगी। सत्य आएगा, लेकिन उस सत्य में हर्षोंमाद न होगा। वह नाचता हुआ न आएगा। सत्य उपलब्ध होगा, लेकिन एक कोरे तथ्य की भांति। उससे समाधिस्थ स्थिति फलित न होगी। क्योंकि तुमने सब तरफ से कोशिश की, सब तरह से कोशिश की।
क्या थी स्थिति? स्थिति यह थी कि नौकर अगर बरखास्त कर दिया होता नूरी
बे ने, और चाबी हाथ में लेने से इनकार कर दी होती तो पत्नी आनंदित होती। क्योंकि भरोसा आया। नौकर तो बरखास्त किया, लेकिन चाबी ले ली। चाबी का लेना बता रहा है कि बाहर से संदेह गया--भीतर से नहीं गया। अन्यथा चाबी लेने की जरूरत क्या? वह जो नौकर दिखाई पड़ता था, उसको हटाने की थोड़ी बात थी। वह जो "नौकर" दिखाई नहीं पड़ता और भीतर छिपा है, उसको हटाने की बात थी।
बाहर से तुम संदेह को हटा भी दो तो भी पक्का नहीं है कि भीतर से संदेह जाए। भीतर संदेह था, इसलिए तो चाबी हाथ में ली। अन्यथा नूरी बे चाबी को फेंक देता या कहताः "सम्हाल; तेरी चाबी--तेरे पास। क्या करना है! बात खतम हो गई।" लेकिन भीतर संदेह था।
नौकर को हटाया है सशर्त। उसमें एक कंडीशन हैः चाबी लेने के लिए ही हटाया है। उसमें एक भीतरी शर्त है। भीतर संदेह है, उसकी खोज के लिए ही नौकर को हटाया है।
जिस दिन तुम संदेह को हटाते भी हो, उस दिन भी भीतर तुम्हारे अगर संदेह बना रहा, तो परमात्मा प्रसन्न नहीं है; प्रेम प्रसन्न नहीं है। समाधि न फलेगी। सत्य भी तुम जान लोगे, तो भी उदासी न मिटेगी।
और उस सत्य को जान कर भी क्या करोगे, जिससे नृत्य फलित न होता हो! जो सत्य आनंद न बनता हो, उस सत्य को जान कर क्या करोगे! इसलिए हिंदुओं ने उसे कहा हैः "सच्चिदानंद"। उसमें आनंद को जोड़ ही दिया है। क्योंकि अकेला सत्य--कोरा सत्य है--रूखा। उसका तुम क्या करोगे? और वैसा सत्य तुम बेहोश पड़े हो, तब भी मिल सकता है। तो हिंदू लोग कहते हैंः उसको पाकर क्या करेंगे, जब हम उदास हैं, बेहोश हैं। और वैसा सत्य मिल सकता है, बिना आनंद दिए, तो हिंदू कहते हैंः उसे हम पाकर क्या करेंगे?
तो हिंदुओं ने सत्य के दो अनिवार्य लक्षण बताए हैं। वे लक्षण हैं कि तुम चैतन्यपूर्ण हो, तुम जागे हुए हो और तुम आनंद से नाच रहे हो, तो ही सत्य पाने योग्य है। सच्चिदानंद बनता हो सत्य, तो ही पाने योग्य है। उससे कम में हल नहीं होगा।
चाबी तो हाथ में मिल गई, लेकिन पत्नी उदास होकर हट गई। आनंद हट गया। अब
वह खोल ले पेटी को और देख ले। लेकिन नूरी बे विचारशील आदमी है। उसको भी समझने में देर न लगी होगी कि अब पेटी को खोलने में कुछ रस न रहा।
पत्नी उदास होकर हट गई। और नूरी बे बहुत समय तक सोचता रहा, सोचता रहा। उसने पेटी खोली नहीं। आखिर उसने चार नौकर बुलवाए। नौकर बिना खोले, संदूक को बहुत दूर तक ले गए और जमीन के अंदर उसे गाड़ आए। और फिर उसके बाद कभी यह बात नहीं उठाई गई।
अब इसके कई पहलू हैं--इस अंत के। पहला पहलू तो यह है कि विचार कर-कर के
भी उसने पाया कि खोलने में कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि अगर प्रेम खो गया है, तो खो गया है। संदूक खोलने से प्रेम वापस नहीं लौटेगा। अगर प्रेम नहीं है,

तो नहीं है। अगर पत्नी किसी और के प्रेम में है, तो है। संदूक खोलने से कुछ भी हल न होगा। हम जीवन में सोच कर भी इसको नहीं सोच पाते।
जो नहीं है, वह नहीं है। जो है, वह है। जो नहीं है, उसको लाने का कोई उपाय नहीं है।
अगर पत्नी पर संदेह आ गया है तुम्हें, तो क्या करोगे? अगर प्रेम नहीं है, तो कैसे लाओगे? प्रेम कोई वस्तु तो नहीं है कि तुम बाजार से खरीद लाओ! कोई जबरदस्ती तो प्रेम पैदा नहीं किया जाता। और जहां-जहां जबरदस्ती की जाती है, वहां-वहां प्रेम के पैदा होने की सब संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं।
और जब तुम जबरदस्ती में किसी को प्रेम करते हो, तो वहां प्रेम कैसे होगा? सिर्फ अभिनय हो सकता है। इसलिए सौ में निन्यानबे पति-पत्नी अभिनय कर रहे हैं। वे एक दूसरे को जतला रहे हैं कि प्रेम है। लेकिन प्रेम नहीं है। प्रेम हो भी नहीं सकता; क्योंकि जबरदस्ती की जा रही है।
प्रेम स्वेच्छा से दिया गया दान है; जबरदस्ती मांगा कि खो जाता है। तुम उसकी भिक्षा नहीं ले सकते। तुम उसे लूट नहीं सकते। तुम उसका शोषण नहीं कर सकते। वह स्वेच्छा से दिया गया दान है। वह दूसरा देना चाहे, तो मिलता है। वह न देना चाहे, तो तुम ले नहीं सकते।
नूरी बे ने सोचा होगा; सोचा-बहुत सोचा; फिर उसने चाबी का उपयोग नहीं किया। वह व्यर्थ था। तो उसने चार आदमी बुलवाए और संदूक को दूर गड़वा दिया। यह विचार की दशा है। उसे कुछ झलक भी मिली, फिर भी झलक न मिली। फिर भी उसने चालाकी की। वह चालाकी यह थी कि अगर आदमी इसके भीतर है भी, तो जमीन में गड़ा दो। बात ही खतम करो।
उसने खोला तो नहीं। इतनी तो उसको झलक मिली कि खोलने से अब कुछ स्थिति सुखद नहीं हो सकती। पत्नी उदास हो गई है। खोलने से बातें और बिगड़ जाएंगी। अगर खोला, और वहां आदमी न पाया, तो भी चीजें अब सुधर नहीं सकतीं। क्योंकि जहां संदेह की गंध आ गई, वहां से प्रेम तिरोहित हो जाता है। अब यह बात सदा के लिए दीवाल बनी रहेगी कि "तुमने चाबी ली और संदूक खोली। तुमने संदेह किया।" इसलिए पत्नी अब उदास ही रहेगी; अब प्रफुल्लित नहीं हो सकती। अगर मैंने संदूक खोली।
लेकिन संदूक बिना खोले भी यह आदमी रह नहीं सकता; यह रात-रात भर सोचता रहा होगा। इसने हजार तरकीबें सोची होंगी कि इस तरह से खोलूं कि पत्नी को पता भी न चले कि संदूक खोली गई है; इस तरह से खोलूं कि किसी को पता भी न चले। लेकिन यह कोई तरकीब न खोज पाया होगा। तब विचार ने एक रास्ता खोज लिया और उसने सोचा कि निपटारा इसमें सीधा है। पत्नी की तरफ यह भी साफ रहेगा कि तूने चाबी दी, लेकिन हमने खोला नहीं है। हमारा भरोसा तुम पर है।
लेकिन यह भरोसा पूरा नहीं है अन्यथा चाबी वापस लौटा देनी थी। संदूक
की चर्चा समाप्त हो जानी थी। संदूक वहीं छोड़ देना था। यह भरोसा अधूरा है। इंतजाम भी इसने कर लिया। और वह यह कि "इस संदूक को गहरे जमीन में गाड़ दो। अगर आदमी होगा, तो खतम हो जाएगा। नहीं होगा, तो झंझट समाप्त हुई। चाबी से संदूक को खोलने का आरोपण भी हम पर न रहा। और अगर कोई दुश्मन वहां छिपा था-- पत्नी का कोई प्रेमी, तो उसको हमने सस्ते में समाप्त भी कर दिया।"
कहानी यहां पूरी हो जाती है। कहानी इसके बाद कुछ कहती नहीं है। नूरी
बे विचारशील है। जहां-जहां विचारशीलता है--जिसको हम विचारशीलता कहते हैं-- वहां-वहां सदा डांवाडोलपन रहता है। कभी इधर झुकता है, कभी उधर झुकता है। एक झलक मिलती भी है, तो खो जाती है। रास्ते पर एक कदम पड़ता है, तो दूसरा गैर रास्ते पर पड़ जाता है। नाव पश्चिम जाती है आधा, फिर पूरब की तरफ मोड़ लेती है।
उसे दो-तीन बार झलकों के मौके आए; जब पत्नी ने कहा कि "यह संदेह तुम्हारा है कि नौकर ने जगाया है?" तब उसे झलक तो मिल गई थी कि बात तो सीधी पूछी गई है। सीधा उत्तर चाहिए--प्रामाणिक। वह चूक गया। उसने कहा, "क्या यह नहीं हो सकता कि इन बातों में गए बगैर संदूक खोला जा सके?"
पत्नी ने दुबारा मौका दिया कि "नौकर को बरखास्त कर दो, यह चाबी तुम्हारे हाथ में रही।" लेकिन तब भी उसने बाहर के नौकर को बरखास्त किया--

भीतर के संदेह को नहीं। तब भी वह चूक गया। आधी झलक तो उसे मिली, इसलिए बाहर के नौकर को बरखास्त किया। अगर आधी न मिलती, तो वह उसको भी बरखास्त नहीं करता। वह कहताः "यह वफादार आदमी है, इसको मैं बरखास्त करूं? तुझे तलाक दे सकता हूं; इस वफादार नौकर को बरखास्त नहीं कर सकता।"
आधी झलक तो मिली, लेकिन आधी। तो बाहर का रूप तो पूरा हुआ, भीतर संदेह जारी रहा। उसने नौकर को बरखास्त ही इसलिए किया, ताकि चाबी मिल सके। बाहर के संदेह को इसलिए छोड़ा ताकि भीतर का संदेह अपनी खोज पूरी कर सके। वहां भी वह चूक गया।
पत्नी ने चाबी भी दे दी--लेकिन उदासी से। वह उदासी साफ कह रही थी कि अब तुम जान भी लोगे, तो जानने का कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि जो जानना संदेह पर खड़ा हो, वह उदासी ला सकता है--आनंद नहीं। जो जानना आस्था पर खड़ा हो, वही परम प्रफुल्लता लाता है।
इसलिए तुम वैज्ञानिकों को देखो। कितना जान लेते हैं, फिर भी कहीं नृत्य नहीं है। कोई एक वैज्ञानिक भी तो सूफी फकीर जैसा नहीं नाचता है। कितने वैज्ञानिक हैं आज! आज जमीन पर सबसे बड़ी जमात उनकी है; लाखों की संख्या में वैज्ञानिक हैं। आज सबसे बड़ा प्रतिष्ठित वर्ग उनका है। सबसे ज्यादा तनख्वाहें उनको मिलती हैं। सबसे ज्यादा समादृत वे हैं; क्योंकि सबसे ज्यादा खतरनाक वे हैं। और उनके हाथ में ताकत है। और ताकत इतनी होती जा रही है कि वैज्ञानिक सोचते हैं कि आज नहीं कल इस बात की संभावना है कि राजनीतिज्ञों को वे अपदस्थ कर दें। और उनकी जगह पर बैठ जाएं।
तो वैज्ञानिक के पास इस वक्त भारी ताकत है, प्रतिष्ठा है, सम्मान है, शक्ति है, धन है। लेकिन तुम एक वैज्ञानिक तो बता दो जो बाउल फकीर की तरह एकतारा लेकर नाच रहा हो--आनंदित हो! तुम एक वैज्ञानिक तो बता दो, जो सूफियों की तरह आनंदमग्न हो--जिनके पास कुछ भी नहीं है, और जो इस तरह चल रहे हैं, जैसे सारे जगत के सम्राट हों। तुम एक वैज्ञानिक तो बता दो, जो मीरा जैसा गा सके, नाच सके, जिसके पैरों में घुंघरू बंधे हों; वह तुम्हें नहीं मिलेगा।
तुम वैज्ञानिकों को सदा उदास पाओगे; उनके चेहरे लटके हुए पाओगे, जैसे जीवन उनका सूख गया है। तथ्य तो उन्हें मिल रहे हैं, लेकिन उनके पाने का ढंग कुछ गलत है। उस ढंग में तथ्य भी मिल जाता है और जान भी निकल जाती है। उन्हें भी ईर्ष्या पैदा होती है।
बर्ट्रेंड रसल बड़ा विचारक है, वैज्ञानिक बुद्धि का व्यक्ति है। इस सदी ने जो दस-बीस बड़े लोग पैदा किए हैं, उनमें से एक है। उसने लिखा है कि पहली दफे मैंने जब एक जंगली द्वीप पर आदिवासियों को नाचते देखा तो मैं ईर्ष्या से भर गया कि मेरी सारी उपलब्धि दो कौड़ी की है। नोबल प्राइज मिले, कि सैकड़ों सम्मान मिलें, लेकिन वृक्षों के तले, चांद की पूरी रात में नाचते हुए ये लोग--अर्धनग्न, जिनके पास कुछ भी नहीं है और बर्ट्रेंड रसल ईर्ष्या से भर गया है।"
आइंस्टीन मरते समय इसी ईर्ष्या से भरा हुआ है। क्योंकि उसे दिखाई पड़ रहा है कि जीवन ऐसे ही गया। आइंस्टीन से किसी ने पूछा कि "तुम्हारा दुबारा जन्म हो, तो तुम क्या होना चाहोगे?" उसने कहा, "आइंस्टीन तो नहीं होना चाहूंगा। इससे तो बेहतर है कि मैं एक प्लंबर हो जाऊं।"
इतना बड़ा वैज्ञानिक--जिससे बड़ा वैज्ञानिक कभी नहीं हुआ--प्लंबर होना चाहता है! लेकिन अब वैज्ञानिक नहीं होना चाहता है। प्लंबर होना भी बेहतर है! शायद इसने प्लंबर को अपने बाथरूम में गीत गुनगुनाते सुना होगा, जो यह नहीं गुनगुना सकता है। शायद सुबह जब प्लंबर इसके घर काम करने आता होगा, तो उसकी चाल इसने देखी होगी। सांझ जब अपने झोले को लटका कर वापस जाता होगा, तो उसकी मौज--घर जाने की खुशी देखी होगी।
आइंस्टीन प्लंबर से ईर्ष्या करे! तो जरूर कहीं कुछ गड़बड़ है-- आइंस्टीन--जिसको कहा जाता है इस जगत के सर्वाधिक सत्यों का बोध हुआ है, जिसने सर्वाधिक तथ्यों में जांच-पड़ताल की है। लेकिन "पत्नी" चाबी देकर हट गई मालूम होता है। जिसके प्रेम को पाने के लिए सारी कोशिश थी, वह उदास होकर हट गया है।

वैज्ञानिक के सामने से परमात्मा हट जाता है। वही दिक्कत है। चाबी हाथ में आ जाती है, लेकिन जिस खजाने के लिए चाबी थी, वह हट जाता है।
सत्य का क्या मूल्य है, अगर उससे आनंद का झरना न फूटता हो? इसलिए जो जानते हैं, वे कहते हैंः आनंद को खोजो, सत्य की बात क्यों करते हो। आनंद के मिलते ही सत्य मिल जाएगा। इससे उलटा जरूरी नहीं हैः सत्य शायद मिल भी जाए, आनंद न मिले। तो सारी खोज व्यर्थ हो जाएगी।
वह मौका था कि नूरी बे चाबी फेंक देता और पत्नी को गले लगा लेता। और संदूक को वहीं रहने देता और उसकी चर्चा कभी न उठाता। लेकिन विचारशील आदमी, प्रतिष्ठित आदमी, कैसे यह कर सकता है! वह अवसर चूक गया।
फिर नूरी बे ने बहुत सोचा, सोचता रहा, सोच कर भी उसको इतनी बात तो समझ में आ गई कि चाबी का उपयोग करना और संदूक को खोलना इससे मेरे और पत्नी के बीच अनंत फासला हो जाएगा; फिर उसे पूरा नहीं किया जा सकता। फिर संदेह परिपक्व हो गया। और हो सकता है संदूक खाली हो! और वहां कुछ भी न हो। और खाली संदूक के पीछे मैं पत्नी को गंवा दूं, प्रेम को गंवा दूं। इसलिए संदूक तो नहीं खोली उसने। लेकिन विचार फिर चूक गया। तब उसने एक तरकीब, एक चालाकी की।
उसने संदूक को दूर ले जाकर जमीन में गहरे गड़वा दिया। संदेह तो रहेगा
मन में, कि पता नहीं क्या था! लेकिन झंझट मिटा दी; जो भी हो।
यहां कहानी पूरी हो जाती है, क्योंकि सूफी इससे ज्यादा कुछ कहना नहीं चाहते। लेकिन क्या तुम सोचते हो, प्रेम वापस लौटा होगा! असंभव है। संदेह इतना गहरा है कि प्रेम वापस नहीं लौट सकता। और सच तो यह है कि संदेह संदेह ही न रहा। संदेह, संदेह पर भी आस्था बन जाता है।
अगर तुम बहुत दिन तक संदेह में रहो, तो एक दुर्घटना घटती है। संदेह ही तुम्हारी आस्था बन जाता है। तुम निस्संदिग्ध रूप से संदेह पर भरोसा कर लेते हो।
इस आदमी का संदेह संदेह ही न रहा। सोच-सोच कर इसने पाया कि आदमी तो भीतर है; इसलिए तो गड़वाया। कोई संदूकों को गड़वाता है? आदमी गड़ाए जाते हैं। इस संदूक का इसने ताबूत की तरह उपयोग किया!
सोच-सोच कर संदेह मजबूत होता गया होगा भीतर और इतना पक्का ही हो गया इसे। शायद इसीलिए इसने संदूक खोलना भी ठीक नहीं समझा। क्योंकि अब खोलने को कुछ था भी नहीं। अब तो गड़ा देना उचित है। आदमी इसके भीतर है। पत्नी की उदासी से इसको लगा होगा कि संदेह पक्का है। भीतर कोई है अन्यथा उदास होने का क्या कारण है!
यही हमारे विचार की दिक्कत है कि विचार की एक तर्कसरणी है। पत्नी को उदास देख कर इसे यह तो ख्याल भी नहीं आ सकता कि पत्नी इसलिए दुखी हो रही है कि तुमने संदेह किया है। आस्था खंडित हो गई है। प्रेम दुर्गंध से भर गया है। अब वह बात न रही, वह ताजगी न रही। अब वे दिन फिर कभी वापस न लौटेंगे--जो असंदिग्ध प्रेम के थे। वह निर्दोषता अब न आ सकेगी। मन दोषी हो गया।
यह सब तो न देख सका नूरी बे। उसने उदासी में यही देखा होगा कि जरूर यह उदासी चाबी देने के कारण है--कि अब भंडाफोड़ होगा। खोलेंगे संदूक और आदमी निकलेगा। इसका प्रेमी वहां छिपा है। शायद बहुत सोच-सोच कर संदेह पर आस्था आ गई होगी।
आस्था मनुष्य का स्वभाव है। अगर तुम संदेह के साथ ज्यादा दिन रह जाओ,
तो तुम उसी पर आस्था कर लोगे।
नास्तिक संदेह पर आस्था कर लिए लोग हैं। "ईश्वर नहीं है"--यह उनकी आस्था का विषय हो गया है। वे लड़ने को तैयार हो जाएंगे। अगर ईश्वर नहीं है, तो उसके न होने पर लड़ने की क्या जरूरत है! तलवारें खींच लेंगे। जो नहीं है, उसके लिए तलवार खींचने का क्या प्रयोजन है! जो नहीं है, उसके संबंध में इतने शास्त्र निर्मित करने का क्या प्रयोजन है? जो नहीं है, उसके विरोध में समझाने की क्या जरूरत है? नहीं, उन्हें नास्तिकता पर आस्था आ गई है। वे उतने ही आस्थावान हैं, जितने धार्मिक लोग। सिर्फ धार्मिक लोग ईश्वर के होने पर आस्था कर रहे हैं; नास्तिक ईश्वर के न होने की आस्था कर रहे हैं।

ईश्वर का न होना उनका पीछा कर रहा है। उनकी रात भी बेचैन है। उनके भी मन में चिंता है। और विचार की तरंगें कि "ईश्वर नहीं है"।
मैंने सुना है कि फकीर जुन्नैद से ईश्वर ने कहा एक स्वप्न में कि "तू क्या बनना चाहता है? तू आस्तिक बनना चाहता है कि नास्तिक?" तो जुन्नैद ने कहा कि "तू मुझे नास्तिक बना दे, क्योंकि आस्तिक तो तुझे कभी-कभी भूल भी जाते हैं। नास्तिकों को मैंने तुझे कभी भूलते न देखा।" होशियार आदमी है जुन्नैद। बात उसने ठीक कहीः आस्तिक कभी-कभी भूल भी जाए, नास्तिक कभी नहीं भूलता। वह चौबीस घंटे लगा रहता है कि "ईश्वर नहीं है, नहीं है, नहीं है।" "अगर तेरे स्मरण से ही तेरा द्वार खुलता है, तो मुझे नास्तिक बना दे। क्योंकि उस भांति मैं तेरा ज्यादा स्मरण कर सकूंगा।"
यह आदमी--नूरी बे--सोच-सोच कर अपने ही विचार से दब गया होगा और संदेह इसकी आस्था बन गया होगा। इसे पक्का हो गया कि आदमी तो भीतर है, अब खोलना उचित भी नहीं है। दफना देना उचित है।
संदेह के साथ ज्यादा देर मत रहना, ज्यादा मत सोचना। अन्यथा तुम भूल ही जाओगे कि वह संदेह है, वही तुम्हारी आस्था हो जाएगा।
और इस कहानी को कहानी मत समझना।
सूफियों का एक नियम हैः वे कहते हैं कि दो प्रकार का प्रेम है। एक को
वे कहते हैं--लौकिक प्रेम। दूसरे को वे कहते हैं--अलौकिक प्रेम; इश्क इस दुनिया का और इश्क उस दुनिया का। और वे कहते हैंः इस दुनिया की इश्क की जो कहानियां हैं--उन्हें अगर तुम समझ लो, तो वे दूसरी दुनिया के इश्क की कुंजियां बन जाती हैं। बस, यही इस कहानी का राज है।
यह कहानी तो इस दुनिया के प्रेम की है, लेकिन अगर इसे तुम समझ लो, तो इस दुनिया के प्रेम की कहानी की समझ--दूसरी दुनिया के प्रेम की कुंजी बन जाती है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
चौदहवां प्रवचन

एक साधे सब सधै

याज्ञवल्क्य ने अपनी मित्र-स्त्री मैत्रेयी से कहाः "देखो, मैं गृहस्थाश्रम में ही पड़े रहना नहीं चाहता, मैं ऊपर उठना चाहता हूं। आओ, कात्यायिनी के साथ तुम्हारा निपटारा करा दूं।"
मैत्रेयी ने कहाः "भगवन, अगर यह सारी पृथ्वी वित्त से पूर्ण होकर मेरी
हो जाए, तो क्या मैं उससे अमर हो जाऊंगी?"
याज्ञवल्क्य ने कहाः "उस अवस्था में जैसे साधन-संपन्न लोग चैन से जीवन-निर्वाह करते हैं, वैसा तुम्हारा जीवन होगा। धन-धान्य से अमरता पाने की आशा नहीं हो सकती।"
मैत्रेयी ने कहाः "जिससे मैं अमर न हो सकूं, उसे लेकर मैं क्या करूंगी? भगवन, अमर होने का जो रहस्य आप जानते हों, उसका मुझे उपदेश कीजिए।" याज्ञवल्क्य ने कहाः "तू तो मेरी प्रिय है, और बड़ा प्रिय वचन बोल रही है। आ, बैठ, तुझे मैं सब खोल कर समझाता हूं। ज्यों-ज्यों मैं बोलता जाऊं, मेरी बात ध्यान देकर सुनते जाना।
फिर उन्होंने कहना शुरू कियाः "अरे, पति की कामना के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपनी आत्मा की कामना के लिए पति प्रिय होता है। पत्नी की कामना के लिए नहीं, अपनी आत्मा की कामना के लिए पत्नी प्रिय होती है। पुत्र की कामना के लिए नहीं, अपनी आत्मा की कामना के लिए पुत्र प्रिय होते हैं। वित्त की कामना के लिए नहीं, अपनी आत्मा की कामना के लिए वित्त प्रिय होता है। पुरोहित की कामना के लिए नहीं, अपनी आत्मा की कामना के लिए पुरोहित प्रिय होता है। राजा की कामना के लिए नहीं, अपनी आत्मा की कामना के लिए राजा प्रिय होता है। लोगों की कामना के लिए नहीं, अपनी आत्मा की कामना के लिए लोग प्रिय होते हैं। देवों की कामना के लिए नहीं, अपनी आत्मा की कामना के लिए देव प्रिय होते हैं। भूतों की कामना के लिए नहीं, अपनी आत्मा की कामना के लिए भूत प्रिय होते हैं। और इस सब कुछ की कामना के लिए नहीं, अपनी आत्मा की कामना के लिए सब कुछ प्रिय होता है।
"मैत्रेयी, यह आत्मा देखने, सुनने, चिंतन करने और ध्यान करने योग्य है। जब यह आत्मा देखी जाती है, सुनी जाती है, विचारी जाती है, जानी जाती है, तब सब कुछ जान लिया जाता है।"
ओशो, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी की इस अदभुत परिचर्चा को प्रकाशित करने
की कृपा करें।

याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी मैत्रेयी के बीच जो बात हुई, उसे समझने के पहले कुछ और बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात यह कि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां थींः मैत्रेयी और कात्यायिनी। उपनिषदों का यह बहुत गहरा प्रतीक है। मन सदा दो को चाहता है। मन एक पत्नी के साथ राजी नहीं है। मन अद्वैत के साथ राजी नहीं है, मन द्वैत का आकांक्षी है। दो पत्नियों का अर्थ है कि मन जब भी चाहता है, दो को चाहता है। वहां द्वंद्व है और दो पत्नियों से बड़ा द्वंद्व तुम खोज भी नहीं सकते।
मैंने सुना हैः एक अदालत में एक चोर पर मुकदमा चल रहा था। न्यायाधीश दयावान था और उसने कहा कि "तुम्हारा अपराध तो सिद्ध हो गया, तुमने स्वीकार भी कर लिया। अब तुम जो सजा कहो, वही मैं तुम्हें दे दूं।" उस चोर ने कहाः "और सब सजा देना, दो पत्नियों से विवाह करने की सजा भर मत देना।" थोड़ा न्यायाधीश भी चौंका। उसने कहाः "मैं समझा नहीं--यह बात--अचानक!" उसने कहाः "मैं जिस घर में चोरी करते हुए पकड़ा गया हूं, उस घर में पति की दो पत्नियां हैं। एक पत्नी ऊपर रहती है, एक नीचे रहती है और पूरी रात--इसी में मैं पकड़ा भी गया। पति सीढ़ियों पर था। एक टांग नीचे की पत्नी खींच रही थी, एक टांग ऊपर की पत्नी खींच रही थी। न पति नीचे जा सका, न वह ऊपर जा सका। इसी शोरगुल और उपद्रव में मैं घर से निकल कर भाग न सका। पति तो फंसा ही है--दो पत्नियों

में--मैं गरीब चोर नाहक फंस गया। उस रात जो कष्ट देखा है! बस, और सब सजा, जो आपको देनी हो, दे दें। यह सजा भर मत दें।"
लेकिन जीवन का सारा कष्ट "दो पत्नी का" ही कष्ट है। और मन की सारी पीड़ा यही है कि वह सदा दो को चुन लेता है--सदा विपरीत को चुन लेता है। और दो पत्नियों से ज्यादा विपरीत और क्या हो सकता है! दो पत्नियों का अर्थ हुआः तुमने दो तरफ नावें चला दीं। तुम दोनों पर सवार हो। तुमने बैलगाड़ी में दो तरफ बैल जोत दिए। और तुम दोनों तरफ बैलों को हांके जा रहे हो। तुम्हारा जीवन एक गहरी विडंबना हो जाएगा। चिंता और संताप ही तुम्हारी नियति होगी। शांति का तुम एक क्षण भी न पाओगे। एक ही पत्नी दुख देने के लिए काफी है। "पत्नी" से अर्थ हैः एक ही की "चाह", मन को बहुत पीड़ा दे जाती है, तो दो की चाह तो अनंत पीड़ा दे जाएगी।
मुल्ला नसरुद्दीन से उसका बेटा पूछ रहा है, "कानून में ऐसा क्यों लिखा
है कि आदमी दो विवाह नहीं कर सकता?" तो नसरुद्दीन ने कहा, "बेटा जब बड़े होओगे तब समझोगे। जो लोग अपनी रक्षा नहीं कर सकते, कानून उनकी रक्षा करता है। कानून है ही कमजोरों की रक्षा के लिए। नहीं तो सभी लोग दो पत्नियां कर डालेंगे और मुसीबत में पड़ेंगे!"
मन बहुत गहरे में विपरीत की आकांक्षा एक साथ करता है--एक साथ। जिसे तुम चाहते हो, उसे तुम नहीं भी चाहते हो। जिसे तुम चाहते हो, उससे प्रतिकूल को भी चाहते हो। तुम धन भी चाहते हो और निर्धन की शांति भी चाहते हो। तुम महलों में सोना चाहते हो और ऐसे सोना चाहते हो, जैसे भिखारी वृक्षों के नीचे सोता है। मन सदा ही इस तरह की मांग करता है। और यह मांग कभी पूरी नहीं हो सकती। और इन दोहरी मांगों में जो फंस जाएगा, वह दो तरफ चल रहा है। उसकी आधी जिंदगी एक तरफ और आधी जिंदगी दूसरी तरफ।
"याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां", इसे ठीक से समझ लेना, यह बड़ा गहरा प्रतीक है। उन दो पत्नियों में एक याज्ञवल्क्य की मित्र है। उसका नाम मैत्रेयी है।
तुम्हारे मन के दो विभाजन हैं। एक, जो तुम्हें नीचे की तरफ खींचता है
और एक, जो तुम्हें नीचे की तरफ खींचने के विपरीत ले जाता है। तुम्हारे मन का एक हिस्सा तुम्हें संसार की तरफ खींचता है और तुम्हारे मन का एक हिस्सा तुम्हें मुक्ति की तरफ खींचता है। मन का जो हिस्सा मुक्ति की तरफ खींचता है, वह तुम्हारा मित्र है। मन का जो हिस्सा तुम्हें संसार की तरफ खींचता है, वह तुम्हारा शत्रु है।
एक "पत्नी" उसमें मित्र है। उतनी मित्रता का उपयोग कर लेना है--साधक को। थोड़ी दूर तक तो मन का साथ लेना पड़ेगा। मन को तुम आज ही न छोड़ पाओगे। तुम चाहो तो भी न छोड़ पाओगे। क्योंकि चाह भी मन की ही है। तुम श्रम भी करो, साधना भी करो, योग करो, पूजा-प्रार्थना करो, कुछ काम न आएगा, क्योंकि वह मित्र-मन ही यह सब कर रहा है।
मन के पार जाना आज अचानक न होगा। सहज रूप से तो यही सुलभ होगा कि तुम पहले मन का जो हिस्सा संसार की तरफ ले जाता है, उसका साथ छोड़ दो। उसका साथ छोड़ने में तुम उस मन का उपयोग कर लो, जो तुम्हें जगत के पार ले जाता है। जैसे कोई एक लगे कांटे को दूसरे कांटे से निकाल लेता है, संसार की तरफ खींचते हुए मन को तुम परमात्मा की तरफ जाते हुए मन से खींच कर निकाल लो। लेकिन ध्यान रहे, जब कोई एक कांटे को निकाल लेता है--दूसरे कांटे से, तो फिर दोनों को फेंक देता है। दूसरे कांटे को सम्हाल कर नहीं रखता है। दोनों ही कांटे हैं। जो लगा था, वह भी कांटा है; जिससे निकाला, वह भी कांटा है। उनमें मूल्य का कोई भेद नहीं है। दूसरे को सम्हाल कर मत रख लेना अन्यथा वह भी चुभने लगेगा, वह भी गड़ जाएगा।
तो जैसे ही पहला मन--शत्रु-मन छूट जाए, वैसे ही मित्र-मन को भी त्याग देना है। क्योंकि वस्तुतः तो मन को ही त्याग देना है।
तीसरी बात समझ लेने की हैः याज्ञवल्क्य के पास बहुत धन था। बड़ी सुविधा, संपन्नता थी। बड़े सम्राट उसके चरणों में बैठते थे। वह बड़ा पंडित था। उसके पांडित्य की दूर-दूर तक खबर थी और अपने पांडित्य पर उसे भरोसा था।

एक दफा जनक ने घोषणा की कि "जो व्यक्ति भी सबसे बड़ा ज्ञानी हो, उसे मैं
एक हजार गौवेंः स्वर्ण से मढ़े हुए सींगवाली गौवें, हीरे जवाहरातों की--गले में उनके पड़ी होंगी--माला, बहुमूल्य वस्त्रों से ढंकी होगी उनकी पीठ--ऐसे करोड़-करोड़ रुपये की एक-एक गाय होगी, ऐसी एक हजार गाएं भेंट करूंगा।" दूर-दूर से पंडित इकट्ठे हुए। ध्यान रहे, ज्ञानी तो कोई भी न आया, क्योंकि ज्ञानी प्रतियोगी नहीं हो सकता। और जो प्रतियोगी हो, वह ज्ञानी कैसा? ज्ञानी को विवाद में नहीं उतारा जा सकता। ज्ञानी से केवल संवाद हो सकता है। उसे तुम लड़ा नहीं सकते। और वह भी धन की आकांक्षा से किसी ज्ञानी को तुम प्रतियोगिता में उतार दोगे?
पर बड़े पंडित आए, महापंडित आए, बड़ा विवाद चला। और तब याज्ञवल्क्य आया-- अपने शिष्यों के साथ। उस विशाल मंडप में जहां हजारों पंडित थे, याज्ञवल्क्य ने आकर कहा, "सुनो, गौवें धूप में खड़ी-खड़ी थक गई हैं, तो मैं अपने शिष्यों को कहता हूं कि तुम इन्हें घेर कर आश्रम ले जाओ। विवाद मैं पीछे कर लूंगा।" ऐसा आश्वस्त पंडित था--"विवाद पीछे हो जाएगा। निर्णय पीछे कर लेंगे।"
जनक भी चौंका। और उसके शिष्य गौवों को घेर कर आश्रम ले गए। उसने पुरस्कार पहले ले लिया। जनक ने कहा भी कि "यह आप क्या करते हैं?" उसने कहाः "ऐसा करने में कोई कठिनाई नहीं है। मैं विजेता हूं। और यह सब जो पंडित इकट्ठे हुए हैं, इनको मैं शांत कर दूंगा। मैं आश्वस्त हूं, आप क्यों परेशान होते हैं?" और उसने पंडितों को शांत कर दिया। वह विजेता होकर लौट गया।
बड़ा धन था याज्ञवल्क्य के पास, बड़ी प्रतिष्ठा थी, बड़ा पांडित्य था। लेकिन कुछ भी काम न आया। इतना आश्वस्त व्यक्ति भी एक दिन अनुभव करता है कि मैं अज्ञानी हूं। इतना आश्वस्त पंडित भी एक दिन सोचता है कि नहीं, इन शास्त्रों से कुछ भी न मिला, अब मुझे वन की राह पर जाना पड़ेगा। "वन की राह" का एक ही अर्थ होता है कि अब मुझे शब्द से--शून्य की तरफ जाना पड़ेगा।
समाज से--निर्जन की तरफ जाने का एक ही अर्थ होता है। क्योंकि समाज गहरे में भाषा है। तुम समाज में बिना बोले नहीं जी सकते। बोलने से समाज बनता है। इसलिए जब तुम ट्रेन में सवार हो, और एक अजनबी भी बगल में बैठा है; वह फौरन पूछेगा, "कहां जा रहे हैं?" बोलना शुरू हुआ, समाज निर्मित हुआ। वैज्ञानिक कहते हैं, समाजशास्त्री कहते हैं कि अगर भाषा न हो तो समाज नहीं हो सकता। सोचो, कैसे होगा समाज? जहां सब मौन बैठे हों, वहां कैसे समाज होगा?
मैंने सुना हैः एक संन्यासी एक ट्रेन में यात्रा कर रहा है। उसकी आंखें कोरे आकाश में खिड़की के बाहर टिकी हैं। बगल में एक यात्री और है डिब्बे में केवल दो ही यात्री हैं। बगल का यात्री धीरे-धीरे परेशान होने लगा--इस संन्यासी की चुप्पी से। न तो यह संन्यासी देखता उसकी तरफ, न इसने आंख से भी स्वीकार किया कि तुम हो। इसने समाज न बनने दिया।
कई बार बगल के पड़ोसी यात्री ने कोशिश की कि कुछ चर्चा चलाए, मगर यह आदमी पत्थर जैसा लगा। इससे चर्चा का कोई द्वार न मिला। संन्यासी का अंगोछा हवा में उड़ रहा है--खिड़की के बाहर, तो उस यात्री ने कहाः "देखिए, स्वामीजी, आपका अंगोछा खिड़की के बाहर उड़ रहा है।" कोई रास्ता बनाना चाहा, कोई सेतु--जिससे भाषा चल पड़े, समाज निर्मित हो जाए। अकेलापन अखरता है। और जब कोई दूसरा चुप मौजूद हो, तो अकेलापन और भी अखरता है। तुम बिल्कुल अकेले हो, तो स्वीकार कर लेते हो कि करना क्या है। लेकिन यहां दूसरा मौजूद है। समाज बन सकता है और नहीं बन पा रहा है।
लेकिन संन्यासी ने जैसे सुना, नहीं सुना। अंगोछा उड़ता रहा। इसकी बात आई--गई हो गई। संन्यासी का सिर भी न डोला। तब यह जरा और डरा कि आदमी पागल तो नहीं है! इसने और जोर से कहाः "स्वामीजी सुनते हैं? आपका अंगोछा हवा में उड़ रहा है!" उस संन्यासी ने वहीं देखते हुए कहाः "उड़ने दो, तुम्हारी सिगरेट से तुम्हारा कपड़ा जल रहा है। मैंने तो कुछ नहीं कहा! अंगोछा मेरा उड़ रहा है, तुम क्यों परेशान हो रहे हो?"
यह जो आदमी है, इससे संबंध बनाना कठिन है।

भाषा दूसरे में उत्सुकता है। और भाषा के साथ हम जुड़ते हैं। मौन के साथ
हम टूटते हैं। इसलिए सभी धर्मों ने मौन की महिमा गाई है। क्योंकि मौन ही तुम्हें समाज के बाहर ले जाएगा। भाषा तुम्हें समाज में ले जाती है। इसलिए तुम जितने बोले, उतना फंसे। अगर तुम बोलो ही न, तो तुम्हारी नब्बे प्रतिशत दिक्कतें तो तत्क्षण विलीन हो जाएं; वे बोलने से पैदा होती हैं।
कभी तुमने ख्याल कियाः सुबह से सांझ तक तुम जो बोलते हो, अगर उसको तुम
न बोलो, तो नब्बे प्रतिशत उपद्रव तो तुम्हारे शांत हो जाएं। कितने उपद्रव तुम बोलकर ही खड़े कर लेते हो! अपने हाथ से निमंत्रण दे देते हो। बोले कि फंसे। चुप रह जाते। लेकिन चुप रहने का मतलब यह होता है कि तुम समाज से टूटते हो।
अगर लोग मौन हो जाएं, भाषा खो जाए, तो तुम वृक्षों जैसे हो जाओगे, पहाड़
की चट्टानों जैसे होओगे, झरनों जैसे होओगे, लेकिन "आदमी" तुम्हारा खो जाएगा। इसलिए अगर कोई संन्यासी बहुत दिन तक एकांत में रह कर लौटता है, तो उसकी आंखों में "आदमी" न पाओगे। प्रकृति मिलेगी, परमात्मा मिलेगा, आदमी नहीं मिलेगा। उसकी आंखों में गहरा सन्नाटा होगा। आदमी उथली चिंता का नाम है। तुम उसकी आंखों में पशु की आंखें पा सकते हो, लेकिन तुम आदमी की आंखें न पाओगे।
यह याज्ञवल्क्य बोल-बोल कर थक चुका है। इसकी बड़ी प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा भी दो कौड़ी की सिद्ध हुई है। यह विवादों में जीत कर भी अज्ञानी बना रहा। यह महापंडित था। इसने प्रतियोगिताएं जीतीं, लेकिन आत्मज्ञान न हुआ। धन इसके पास था, लेकिन पाया कि धन असार है, राख है; कुछ उससे मिला नहीं। और एक दिन उसने अपनी मित्र-पत्नी मैत्रेयी को कहा कि "अब मैं सब छोड़ कर जाता हूं।"
याज्ञवल्क्य जैसे व्यक्ति को भी छोड़ कर जाना पड़ता है। तुम्हारी कहां बिसात! उपनिषद जिसका गुणगान गाते हैं, उसको भी छोड़ कर जाना पड़ता है। पंडितों में जिसकी कोई तुलना नहीं है। शायद याज्ञवल्क्य जैसा पंडित फिर भारत में दुबारा पैदा हुआ भी नहीं। ऐसी बारीक पकड़ शब्दों पर और विजय का ऐसा आश्वासन--बड़ा कठिन है, असंभव है। लेकिन एक दिन पाया कि इस भरोसे के नीचे भी संदेह है। और एक दिन पाया कि भवन कितना ही बड़ा हो, आधार रेत पर रखा है। भवन गिरा-गिरा होने लगा। और याज्ञवल्क्य ने एक दिन अपनी पत्नी को सूचना दी कि "अब मैं जाना चाहता हूं।"
अब हम इस कहानी को समझने की कोशिश करें।
याज्ञवल्क्य ने अपनी मित्र-स्त्री मैत्रेयी से कहाः "देखो, मैं गृहस्थाश्रम में ही पड़े रहना नहीं चाहता। मैं ऊपर उठना चाहता हूं। आओ, कात्यायनी के साथ मैं तुम्हारा निपटारा करा दूं।" उसने कहा कि "देखो, मैं गृहस्थाश्रम में ही पड़े नहीं रहना चाहता।"
घर-गृहस्थी एक पड़ाव है--मुकाम नहीं है। वहां से तुम गुजरना जरूर, लेकिन वहीं बस मत जाना। गुजरना तो जरूरी है--अनुभव के लिए। क्योंकि जो वहां से बिना गुजरे निकल जाएगा, वह बड़े अनुभवों से वंचित रह जाएगा। गृहस्थी से गुजरना आवश्यक है। कुछ वहीं मिलेगा देखने को, जो कहीं और न मिलेगा। कुछ पीड़ाएं तुम वहीं झेल सकोगे, जो कहीं और न झेल सकोगे। और पीड़ाएं निखारती हैं, वे आग की तरह हैं। उनमें सोना कुंदन बनता है, शुद्ध होता है। वहीं चमक आती है। तो पीड़ा से बच कर मत निकलना।
हिंदुओं की जीवन व्यवस्था में पलायन की जगह नहीं है। इस बात को समझ लें। हिंदुओं की जीवन व्यवस्था सभी कुछ स्वीकार करती है। बस, इतना ही कहती है कि स्वीकार जरूर करना, लेकिन "पार जाना है", यह स्मरण रखना। पार जाने की चेष्टा क्षीण न हो। तुम रुक न जाओ, अवरुद्ध न हो जाओ। सागर तक पहुंचे बिना, मध्य में कहीं नदी खो न जाए। गुजरना सब जगह से, क्योंकि बिना गुजरे अनुभव न होगा। बिना अनुभव के प्रौढ़ता न होगी। और बिना प्रौढ़ता के तुम परमात्मा को उपलब्ध न हो पाओगे।
क्योंकि अत्यंत प्रौढ़ और पका हुआ हृदय चाहिए। क्योंकि जैसे पका हुआ
फल गिरता है, वैसे ही पका हुआ प्रौढ़ चित्त गिर जाता है।

और जैसे पका हुआ फल अपने आप गिर जाता है; गिराने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती, सहज गिर जाता है। कच्चे फल को तोड़ना पड़ता है। तोड़ने में पीड़ा होती है--वृक्ष को भी, फल को भी। घाव भी छूट जाता है। पका फल चुपचाप गिर जाता है। खबर भी नहीं होती। न घाव छूटता है, न लकीर बनती है, न वृक्ष को पता चलता है कि कब पका फल गिर गया।
कबीर जिसको कहते हैं--"साधो सहज समाधि भली", वह पके फल के गिरने का नाम है। तुम पक कर गिरना। कच्चे गिरोगे तो मेहनत करनी पड़ेगी। सब योग कच्चे फलों के लिए है। सब साधना कच्चे फलों के लिए है। पका फल क्यों साधेगा कुछ। जीवन ही साधना है। वह जहां से गुजरा, वही योग था। उसने जो जाना और जीया, वही तपश्चर्या थी। तपश्चर्या कम है जीवन में, जो तुम अलग से साधो!
हिंदू सब स्वीकार करते हैं। हिंदू-धर्म से बड़ा तथाता का धर्म दूसरा नहीं है। हिंदू कहते हैंः सब स्वीकार कर लो। और सबसे गुजर जाओ। कोई भी सीढ़ी चूको मत, क्योंकि डर है कि जिस सीढ़ी को तुम चूक जाओगे, शायद तुम्हें उस पर वापस लौटना पड़े। जिससे तुम बच कर निकल जाओगे, शायद तुम्हें वापस उस पर आना पड़े। क्योंकि अनुभव की खाली जगह छूट जाएगी।
और जीवन का एक छोटा सा सूत्र सदा याद रखना। खाली जगह सदा ही आकर्षित करती है। एक दांत तुम्हारा टूट जाता है, तो जीभ फिर वहीं-वहीं जाती है। दांत था, तब तक कभी न गई। और अब तुम लाख उपाय करो तो जीभ रुकती नहीं, वह खाली दांत को खोजती है।
जिस सीढ़ी से तुम बच कर निकल जाओगे, वह सीढ़ी खाली दांत की तरह हो जाएगी। तुम्हारा चित्त उसे खोजेगा। इसलिए हिंदू कहते हैंः बच कर मत भागना। भागा हुआ कभी पहुंचता नहीं। क्योंकि जिससे बच जाता है, वह खाली जगह की तरह उसे पकड़े रखता है। उसकी स्मृति बार-बार आती है।
इसलिए हिंदू-विचार, जैन और बौद्धों से राजी न हुआ। जैन और बौद्धों से विरोध का मौलिक कारण यह था कि जैन और बौद्धों ने पलायन की सुविधा दी। महावीर और बुद्ध ने कहाः जब तुम चाहो तब संन्यस्त हो जाओ। छोटा बच्चा भी संन्यस्त हो सकता है। इस बात में बुनियादी भूल तो नहीं है। क्योंकि छोटा बच्चा भी छोटा बच्चा नहीं है। न मालूम कितने जन्मों के बाद यहां आया है। छोटा बच्चा भी बहुत बूढ़ा है। लेकिन हिंदू कहते हैं कि वह फिर से पैदा हुआ है, यह इसी बात का सबूत है कि अनुभव पूरे नहीं हुए हैं। नहीं तो पैदा ही क्यों होता? वह छोटा ही बच्चा है--कितने ही जन्म उसने लिए हों और कितने ही बार बूढ़ा हुआ हो--पका नहीं है। उसका पकापन अभी नहीं आया है। अभी उसे और गुजरना होगा; नहीं तो परमात्मा व्यर्थ वापस नहीं भेजता है। जब तक सीखने को कुछ बाकी रह जाता है, तो ही वापस भेजता है।
एक मां अपने छोटे बच्चे से--जो पहले ही दिन स्कूल गया था--उससे पूछ रही
थी कि "बेटे आज क्या सीखा?" उसने कहाः "ज्यादा नहीं। लगता है कल फिर स्कूल जाना पड़ेगा।"
जब तक सीखने को बाकी है, लौटना ही पड़ेगा। जगत विद्यापीठ है।
तो हिंदू कहते हैंः बच्चा पैदा हुआ है, यह इस बात का सबूत है कि अभी सीखने को बाकी रह गया है। पिछले जन्मों में पलायन करता रहा, भागता रहा। अब उसे पलायन का और मौका मत दो, उसे जीवन को जान लेने दो। इसलिए हिंदुओं ने चार सीढ़ियां बनाई हैं। जीवन की पहली सीढ़ी हैः ब्रह्मचर्य। यह बड़ी उलटी लगती है। क्योंकि पहले ब्रह्मचर्य, फिर गृहस्थ, फिर वानप्रस्थ, फिर संन्यस्त। लेकिन बहुत वैज्ञानिक है।
हिंदू कहते हैंः तुम संभोग का पूरा अनुभव न ले पाओगे, अगर तुम्हारे पास ऊर्जा संगृहीत न हुई। इसलिए संभोग के पहले ब्रह्मचर्य। इतनी ऊर्जा तुम्हारे पास हो कि बहती हो, आपूरित हो। ऊपर से बह रही हो, इतनी अतिरेक में हो तुम्हारे पास। तो जितनी ज्यादा ऊर्जा होगी, उतने ही संभोग का अनुभव गहरा होगा। और अगर परिपूर्ण ऊर्जा से--ठीक कोई आदमी पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य में रहा हो, तो एक ही संभोग पर्याप्त होगा। एक ही संभोग से संभोग का सारा राज जान लेगा।
तुम जीवन भर संभोग का राज नहीं जान पाते, क्योंकि जानने योग्य ऊर्जा
ही नहीं होती। तुम्हारी नदी में कोई पूर नहीं है। तुम एक डबरे के किनारे

चम्मच लिए बैठे हो। वह जो नदी पूर में होती है, वह जो जानती है, तुम्हारी चम्मच में भरा हुआ पानी कभी न जान पाएगा।
लोग कहते हैं कि प्यालियों में भी कभी तूफान आते हैं! कभी आते नहीं।
तो तुम्हारा वीर्य प्याली में अगर है, तो तूफान कभी आएगा नहीं। तुम जानने से वंचित रह जाओगे। और तुम जानने से वंचित रहोगे तो वासना रोज-रोज जगेगी, क्योंकि जो तुमने नहीं जाना है, वह पुकारेगा। जो अनुभव नहीं हुआ है, वह आकर्षित करेगा। तुम फिर से जानना चाहोगे। और तुम कभी भी न जान पाओगे। क्योंकि जीवन में जो भी जाना जाता है, उसके लिए बाढ़ चाहिए--अतिरेक से भरी शक्ति चाहिए। शक्ति जानती है। शक्तिहीनता क्या जानेगी!
ऊर्जा का प्रवाह जब तरंगें लेता है, तो संभोग का एक अनुभव ही समाधि के लिए पहली सीढ़ी बन जाता है।
संभोग का एक अनुभव भी मुक्त कर जाता है, अगर वह पूर्णरूप से जीया गया हो। लेकिन तुम चम्मच-चम्मच जीते हो। जिंदगी भर बूंद-बूंद रिसते हो। अनुभव कभी नहीं हो पाता। और सदा मन में आस बनी रहती है कि कुछ चूक गया; कुछ हो सकता था, जो नहीं हुआ।
मेरे पास सैकड़ों लोग आते हैं, उनकी पीड़ा यही है। संभोग में मन लगा रहता है। और उनको लगता है कि कुछ चूक रहा है। जो हो सकता था, नहीं हुआ है। कोई आनंद का अतिरेक घटना चाहिए था, वह नहीं घट रहा है। उनके पूरे प्राण का रोआं-रोआं कहता है कि कुछ तुम वंचित रहे जा रहे हो। तो रोज-रोज आकांक्षा जगती है। इस स्त्री से पूरा नहीं होता, इस पुरुष से पूरा नहीं होता, तो दूसरी स्त्री खोजो, दूसरा पुरुष खोजो। लेकिन असली कारण वह नहीं है। किसी स्त्री से पूरा न होगा, किसी पुरुष से पूरा न होगा।
तुम्हारी बाढ़ चाहिए। तुम एक भरे हुए शक्ति के कुंड होने चाहिए, ताकि
जब तुम उबलो, तो वह उबाल इतना ऊंचा जाए, इतना गहरा जाए कि एक तूफान बन जाए और उस ऊर्जा के तूफान के क्षण में ही बिजली कौंधेगी--तुम्हें अनुभव होगा। तब एक अनुभव भी मुक्त कर देता है।
ठीक ब्रह्मचर्य पच्चीस वर्ष तक सधा हो, तो संभोग का एक अनुभव संभोग के पार जाने के लिए मार्ग बन जाता है। हिंदू पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पर जोर देते हैं, फिर वे कहते हैंः जब ब्रह्मचर्य सध गया, तो अब ब्रह्मचर्य से जो तुमने इकट्ठा किया है--वीर्य का जो संग्रह तुम्हारे पास है, अब इसे तुम संभोग में, अनुभव में ले जाओ। इसलिए पच्चीस वर्ष गृहस्थ अवस्था के।
पचास वर्ष पूरे हो रहे थे--याज्ञवल्क्य के। उसने मैत्रेयी को बुला कर कहा कि "मैं सदा ही गृहस्थाश्रम में पड़ा नहीं रहना चाहता।"
यह "आश्रम" शब्द बड़ा प्रीतिकर है। आश्रम का वही अर्थ होता है, जो रेस्ट हाउस का। वहां तुम रुकना, विश्राम करना, उसको तुम घर मत समझ लेना। कोई आश्रम घर नहीं है। इसलिए हम संन्यासियों के घर को आश्रम कहते हैं। वे वहां रुके हैं, ठहरे हैं--बसे नहीं हैं। वह उनका आवास नहीं है। वे यात्रा पर हैं। यह बीच का पड़ाव है।
तुम एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने रुक जाते हो, बस, इतना ही घर का उपयोग है। गृहस्थ-आश्रम कोई अंत नहीं है। तो याज्ञवल्क्य ने कहाः "समय आ गया। और अब मैं गृहस्थाश्रम में ही नहीं पड़े रहना चाहता। मैं ऊपर उठना चाहता हूं। आओ, कात्यायिनी के साथ तुम्हारा निपटारा करा दूं।"
और ध्यान रहे, यह प्रक्रिया भी ख्याल में ले लेना कि जिसने पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य जाना है, वह ही गृहस्थाश्रम के ऊपर उठना चाहेगा। जिसने पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य नहीं जाना, उसे गृहस्थाश्रम के ऊपर उठने का ख्याल ही नहीं आएगा; पकेगा नहीं वह। जब तक तुम पकोगे नहीं, तब तक तुम पार न जाओगे।
और दूसरी बात कि जिसने ब्रह्मचर्य जाना है, वह गृहस्थाश्रम में उतरते
ही जान लेगा कि असली चीज तो वही थी। उसके पास तुलना है। तुम्हारे पास तुलना नहीं है।
ब्रह्मचर्य जिसने नहीं जाना, वह कैसे पहचानेगा कि ब्रह्मचर्य कीमती
था कि संभोग कीमती है! उसके पास आधार नहीं है--तौलने का। इस व्यक्ति को समझ में आएगा कि कीमती तो वही था, जो मैं छोड़ आया। और इसकी कीमत पता चलने के लिए

छोड़ना जरूरी था, नहीं तो पता भी नहीं चलता। इसलिए इस अनुभव से भी गुजरना जरूरी है, क्योंकि इसकी पृष्ठभूमि में ब्रह्मचर्य का अर्थ और ब्रह्मचर्य की महिमा पहली दफा प्रकट होगी। वह जो रस तुम्हारे जीवन में था, जिसे तुमने छोड़ दिया, उसे पुनः पाना है।
तो हिंदू कहते हैंः जन्म के बाद ब्रह्मचर्य और मरने तक पुनः पूरा ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो जाना चाहिए।
हिंदुओं का एक आशीर्वाद है, जो गुरु विवाह के समय अपने शिष्यों को देता था। वह कहता था--स्त्री को "तू गर्भवती हो। तेरे दस पुत्र हों और तेरा ऐसा सौभाग्य हो कि जीवन के अंत तक तेरा पति तेरा ग्यारहवां पुत्र हो जाए।" ऐसा आशीर्वाद दुनिया में कहीं भी नहीं है। क्या अर्थ हुआ इसका? कि तू फिर से मां हो जाए--पति की भी। और पति पुनः बच्चा हो जाए। फिर ब्रह्मचर्य की पहली दशा वापस आ जाए जहां से यात्रा शुरू हो, वहीं यात्रा पूरी हो जाए। पच्चीस वर्ष गृहस्थाश्रम, फिर पच्चीस वर्ष वानप्रस्थ। "वानप्रस्थ" शब्द बड़ा कीमती है। उसका अर्थ है--रुख जंगल की तरफ, प्रस्थान जंगल की तरफ; चाहे घर में ही रहो, लेकिन आंख जंगल पर लगी रहे। दुकान पर बैठो, लेकिन मन जंगल की तरफ दौड़ता रहे। काम करो, लेकिन मन वहां न रहे। तुम भले वहां रहो-- शरीर से, लेकिन तुम्हारी आत्मा जंगल चली जाए।
और पचहत्तर वर्ष के बाद, तीसरी सीढ़ी के बाद संन्यास-आश्रम। ब्रह्मचर्य और संन्यास एक ही अवस्था के दो तरफ से नाम हैं। संन्यास का अर्थ हैः फिर ब्रह्मचर्य, फिर बच्चे जैसा भोलापन। लेकिन यह भोलापन बहुत कीमती है। यह बच्चे जैसा है, लेकिन बचकाना नहीं है। बच्चे का भोलापन तो मिटेगा; इसको अब नहीं मिटाया जा सकता। बच्चे का भोलापन अबोध था; यह भोलापन बोधपूर्वक है--बुद्धत्व से भरा है। बच्चे का भोलापन प्राकृतिक था; वह कोई उपलब्धि न थी। यह भोलापन उपलब्धि है। यह जीवन का सार--संचित है। यह सारे जीवन का निचोड़ है। और बूढ़े होकर जब तक बच्चे न हो जाओ, तब तक जानना कि तुम्हारी उम्र तो बढ़ी, तुम न बढ़े। तुम्हारे बाल तो सफेद हुए और पके, तुम न पके।
कहा याज्ञवल्क्य ने, "देखो, मैं गृहस्थाश्रम में नहीं पड़े रहना चाहता, ऊपर उठना चाहता हूं। आओ, कात्यायिनी के साथ तुम्हारा निपटारा करा दूं।" निपटारा यह था कि मेरी संपत्ति है, धन-धान्य है, बड़ा फैलाव है--संसार का, वह मैं आधा-आधा बांट दूं।
मैत्रेयी ने कहा--न तो मैत्रेयी रोयी, न छाती पीटी, न चिल्लाई, न उसने कहा कि "यह क्या करते हो? जीते-जी मुझे विधवा किए जाते हो!" यह कुछ भी उसने न कहा। उसने यह भी न कहा कि "मत जाओ, हमारा क्या होगा?" उसने यह भी सुझाव न दिया कि "यह उचित नहीं है। हमें विवाह कर लाए थे, अब तुम जंगल जाते हो?" नहीं, उसने यह बात ही न उठाई।
मन का एक हिस्सा है--मन का जो ऊपरी हिस्सा है, ऊर्ध्वगामी हिस्सा है,
जब तुम ध्यान में जाने लगोगे, तो वह तुम्हें साथ देगा। मन का अधोगामी हिस्सा है, वह विरोध करेगा। मन के दो हिस्से हैं और अगर तुम ठीक से नहीं पहचानते, तो तुम बड़ी कठिनाई में पड़ोगे। ठीक से पहचानो तो मन के ऊपरी हिस्से का तुम उपयोग कर सकते हो--सीढ़ी की तरह, और ध्यान में जा सकते हो। "मैत्रेयी वाला" हिस्सा भी तुम्हारे भीतर है।
मैत्रेयी ने न तो विरोध किया, न शिकायत की। उसने कोई बात ही न उठाई। उसने यह कहा ही नहीं कि "तुम मत जाओ।" उसने दूसरी ही बात पूछी। उसने कहा, "भगवन, अगर यह सारी पृथ्वी वित्त से पूर्ण होकर मेरी हो जाए, तो क्या मैं उससे अमर हो जाऊंगी?" उसने कहा कि "तुम काफी धन-धान्य हमारे लिए छोड़े जाते हो, आधा मुझे मिलेगा। लेकिन मैं तुमसे यह पूछती हूं कि सारी पृथ्वी मेरी हो जाए, सब कुछ जो है जगत में--मेरा हो जाए, तो क्या मैं उससे अमर हो जाऊंगी? क्या मुझे उससे अमरत्व उपलब्ध हो जाएगा? क्या मुझे शाश्वत जीवन उससे उपलब्ध होगा?" यह जिज्ञासा धार्मिक व्यक्ति की जिज्ञासा है।
धार्मिक व्यक्ति की एक ही जिज्ञासा है कि उसे पाना है, जिसे कभी खोया नहीं जाता। उस जीवन को जानना है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं है। उस दशा को उपलब्ध होना है, जहां फिर कोई डांवाडोल--परिवर्तन नहीं होता। क्योंकि जो

चीज बदल जाती है, उसे पाकर भी क्या करोगे? और जो आज अपनी हो, कल अपनी न रह जाती हो, उसे पाने में किया गया श्रम व्यर्थ है। और जब सारा जीवन ही खो जाता हो तो फिर धन का क्या करेंगे? बड़े भवनों का क्या करेंगे? बड़े साम्राज्य का क्या होगा? जब मैं ही न बचूंगा, तो साम्राज्य का क्या मूल्य है?
मैत्रेयी ने कहा कि "क्या इससे मैं अमर हो जाऊंगी, जो आप मुझे दे जा रहे हैं?" याज्ञवल्क्य बोला, "उस अवस्था में जैसे साधन-संपन्न लोग चैन से जीवन निर्वाह करते हैं, वैसा तुम्हारा जीवन होगा। धन-धान्य से तो अमरता पाने की आशा नहीं हो सकती।" तुम सुविधा से जीओगी। लेकिन अमरता उससे नहीं मिलती। और सुविधा से जीने का क्या अर्थ होता है? सुविधा से जीने का इतना ही अर्थ होता है कि मरोगी तो तुम। अगर धन-धान्य पास न हो, तो असुविधा से जी कर मरोगी। अगर धन-धान्य पास हो, तो सुविधा से जी कर मरोगी।
कोई आदमी पैदल कब्र पर पहुंचेगा, कोई आदमी रथ पर कब्र तक पहुंचेगा। कब्र तक तो पहुंचना ही पड़ेगा। तुम पैदल जाते हो कि बड़े शानदार रथ पर जाते हो, इससे कोई फर्क न पड़ेगा! लेकिन मैत्रेयी कहती है कि रथ और पैदल का सवाल नहीं है। सवाल यह है कि अगर यह रथ भी कब्र पर ही ले जाएगा, तो क्या फर्क पड़ता है कि हम पैदल पहुंचे कि रथ पर सवार होकर पहुंचे! क्या फर्क पड़ता है कि कंधा जिन्होंने दिया--वे सम्राट थे, कि जिन्होंने कंधा दिया, वे भिखारी थे। क्या फर्क पड़ता है कि सोने की डोली ले गई कब्र तक, कि ऐसे ही म्युनिसिपल का ट्रक आया और उठा कर उसने मरघट पर पहुंचा दिया! क्या फर्क पड़ता है? अगर मौत होनी ही है, तो कोई भी अंतर नहीं है। तब सब भेद झूठा है। याज्ञवल्क्य ने कहाः "यह तो न होगा। इससे अमरता नहीं मिलेगी। सिर्फ सुविधापूर्ण जीवन हो सकता है।" लेकिन मैत्रेयी यह पूछती है कि थोड़ा सा जीवन है, यह सुविधापूर्ण कि असुविधापूर्ण, इससे क्या भेद पड़ता है?" रात तुमने सपना देखा, वह सुखद था कि दुखद? सुबह जागकर सपना टूट ही जाता है। तो क्या मूल्य है उस सपने का? ऐसे ही यह जीवन भी सत्तर साल के बाद टूट जाता है। सभी जीवन टूट जाते हैं--सुखद, दुखद। इनमें भेद कहां है?
मैत्रेयी बोली, "जिससे मैं अमर न हो सकूं उसे लेकर मैं क्या करूंगी? भगवन, अमर होने का रहस्य जो आप जानते हों, मुझे उसका उपदेश करें।" मैत्रेयी यह कह रही है कि "जिस धन से तुम्हें कुछ न मिला, तुम उसे मुझे दिए जा रहे हो? और अगर तुम उसे छोड़ रहे हो, तो तुम मुझे इतना पागल समझते कि मैं उसे पकड़ लूं? तुम जैसा बुद्धिमान जब उसे छोड़ कर जा रहा है, तो तुम मुझे उस कचरे को क्यों दे जाना चाहते हो? जब तुमने जान लिया कि वह कचरा है, तो तुम मुझे अब खिलौनों में मत भरमाओ। तुम मुझे भी वही बताओ, जिससे अमरत्व उपलब्ध हो जाए।"
याज्ञवल्क्य ने कहा, "तू तो मेरी प्रिय है और बड़ा प्रिय वचन बोल रही है।" यही याज्ञवल्क्य सुनना चाहता था। मैत्रेयी से यही अपेक्षा थी। कात्यायिनी का कहानी में कोई उल्लेख नहीं है। क्योंकि कात्यायिनी बड़ी प्रसन्न हुई। आधा धन बड़ा धन था। आधी संपदा उसे उपलब्ध हो गई। वह बड़ी निश्चिंत हुई। पति से क्या प्रयोजन था? शायद हो सकता है, इसी धनधान्य के लिए उसने विवाह किया हो! पतियों से कौन विवाह करता है? शायद कभी सौ में कोई एक मैत्रेयी होती है। निन्यानबे तो कात्यायिनी होती हैं।
मैंने सुना हैः मुल्ला नसरुद्दीन एक युवती से विवाह करना चाहता था। युवती बहुत धनी बाप की बेटी थी। एक दिन हिम्मत जुटा कर उसने कहाः "क्या यह सच है कि तुम्हारे पिता के पास करोड़ों रुपये हैं?" उस युवती ने कहाः "निश्चित। करोड़ों रुपये हैं, मेरे पिता के पास। और मैं अकेली उसकी मालिक हूं।" नसरुद्दीन ने हिम्मत जुटाई और कहाः "क्या तुम मुझसे विवाह करोगी?" उस युवती ने स्पष्ट सीधा उत्तर दियाः "नहीं।" नसरुद्दीन ने कहाः "यह मुझे पहले से ही पता था।" उस स्त्री ने कहाः "जब पता ही था, तो यह पूछा ही क्यों?" नसरुद्दीन ने कहाः "सिर्फ यह अनुभव करने को कि करोड़ों रुपये खोकर मन को कैसा लगता है!" स्त्री से तो प्रयोजन भी किसको है? करोड़ों रुपये खोकर मन को कैसा लगता है, यह अनुभव करने के लिए!

कात्यायिनी सीधी सांसारिक स्त्री है, इसलिए कथा में उसका कोई उल्लेख नहीं है। उसने स्वीकार कर लिया, बल्कि वह प्रसन्न ही हुई होगी कि झंझट मिटी। अब सारे धन की मालिक मैं हूं। शायद मैत्रेयी की बातें सुन कर उसको और भी अच्छा लगा होगा कि अब आधे का ही सवाल नहीं है, पूरे की मालिक मैं हूं। लेकिन याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को कहाः "तू मेरी बड़ी प्रिय है। और बड़ा प्रिय वचन बोल रही है।" इसकी गहरे में यही अपेक्षा रही होगी मैत्रेयी से।
मन तुम्हारा एक हिस्सा है, जो श्रेय की तरफ ले जाता है, वही प्रिय है।
मन पूरा प्रेय नहीं है। क्योंकि मन आधा बाहर की तरफ जाता है, आधा भीतर की तरफ जाता है। मन दरवाजे की तरह है। वह भीतर की तरफ भी खुलता है, बाहर की तरफ भी खुलता है। आधा भीतर की तरफ ले जाता है, आधा बाहर की तरफ लाता है। जो भीतर की तरफ लाता है, वह प्रिय है। जो बाहर की तरफ ले जाता है, वह अप्रिय है। यद्यपि दिखाई उलटा पड़ता है। जो तुम्हें बाहर की तरफ ले जाता है, वह प्रिय मालूम होता है। जो भीतर की तरफ लाता है, वह अप्रिय मालूम होता है। जो भी तुम्हें बाहर की तरफ लुभाता है, वह प्रिय मालूम होता है।
याज्ञवल्क्य ने जब मैत्रेयी से कहा कि "तू तो बड़ी प्रिय है।" तो उसने इंगित किया कि संन्यास की तरफ उत्सुक व्यक्ति की भावना होगी कि मन का वह हिस्सा उसे प्रिय मालूम पड़ेगा, जो भीतर की तरफ लाता है। मन का वह हिस्सा अप्रिय मालूम पड़ेगा, जो बाहर की तरफ ले जाता है। तुम भी मन को साफ खोजोगे तो पाओगे कि एक मन का हिस्सा है, जो अशांति में ही सुख पाता है। एक मन का हिस्सा है, जब तक उपद्रव न होता हो, तब तक उसे कुछ रस नहीं आता।
जब तुम सुबह अखबार पढ़ते हो और देखते हो कि कोई उपद्रव नहीं हुआ, तो ऐसे उदास होकर अखबार गिरा देते हो कि "कोई खबर नहीं। कुछ खास नहीं हुआ।" यह भी मन का हिस्सा है, जो देखना चाहता था कि "कहीं आग लगे, किसी की स्त्री भाग जाए, कुछ उपद्रव हो, कोई युद्ध छिड़ जाए।"
जब युद्ध छिड़ जाता है, तब तुम्हारी "कुंडलिनी" जाग्रत हो जाती है, तुम सीधे बैठ जाते हो। तुम्हारी आंखें जो धुंधला देखती थीं, एकदम साफ देखने लगती हैं। तुम चश्मे को ठीक कर लेते हो। तुम एकदम पढ़ने लग जाते हो--एक-एक शब्द, कि कहीं कुछ चूक न जाए।
एक मन का हिस्सा है जो उपद्रवों के लिए बड़ा रस लेता है। इसलिए तुम देखोगे कि जब युद्ध छिड़ता है, तो लोगों के चेहरे पर रौनक आ जाती है। जो सदा मरे हुए और मुरझाए हुए लगते थे, वे भी लगता है कि जीवंत हो गए हैं। जैसे वर्षा हो गई है और वृक्ष हरे हो गए हैं। जिनकी आंखों में कभी तुमने तेज नहीं देखा था, उनकी आंखों में दीये जलने लगते हैं। जो चलते ऐसे थे, जैसे घसिट रहे हों, वे तेजी से चलने लगते हैं। कुछ हो रहा है! युद्ध के कारण लोग उदास नहीं होते, युद्ध के कारण लोग प्रसन्न होते हैं!
तुम जान कर हैरान होओगे कि युद्ध के समय में पागलों की संख्या गिर जाती है। लोग कम पागल होते हैं--पचास प्रतिशत कम। हत्याएं पचास प्रतिशत कम हो जाती हैं। चोरी, व्यभिचार पचास प्रतिशत कम हो जाते हैं। बड़ी हैरानी की बात है कि युद्ध जब फैलता है, तो दुनिया में अपराध कम हो जाते हैं। तुम्हें खुद अपराध करने की--प्राइवेट--जरूरत नहीं है। इतना बड़ा अपराध हो रहा है। तुम उसी में सम्मिलित होकर भाग ले लेते हो, तुम उसी में प्रसन्न हो लेते हो। निजी--अपनी तरफ से--अलग--कुछ करने की जरूरत नहीं होती। ऐसा लगता है कि आदमी जैसा है, उसका आधा हिस्सा निरंतर ही उपद्रव में रस लेता है।
तुम अपने भीतर इस बात को ठीक से पहचानना कि कौन कात्यायिनी है, कौन मैत्रेयी है। और जिस दिन तुम ठीक से पहचान लोगे, उस दिन मैत्रेयी प्रीतिकर मालूम पड़ेगी।
मन भीतर की तरफ भी खुलता है। उस मन का थोड़ा उपयोग करना है--आत्मा तक पहुंचने के लिए। वह भी छूट जाएगा। क्योंकि बाहर-भीतर भी छूट जाने चाहिए। एक ऐसी घड़ी आनी चाहिए, जब न कुछ बाहर बचा, न कुछ भीतर बचा। बस, तुम ही बचे, द्वार ही खो गया। लेकिन उस घड़ी के आने के पहले द्वार का उपयोग अनिवार्य है।

तो कहा याज्ञवल्क्य ने, "तू मेरी बड़ी प्रिय है और तू बड़ा प्रिय वचन बोल रही है। आ, बैठ। मैं तुझे सब खोल कर समझा दूं। ज्यों-ज्यों बोलता जाऊं, मेरी बात ध्यान देकर सुनती जाना।" इसमें एक-एक शब्द कीमती है। पहला शब्द हैः "आ, बैठ।"
यह मन, यह मैत्रेयी अगर बैठे न, तो सुन न पाए, समझ न पाए। तुमसे भी मैं ध्यान के लिए कह रहा हूं तो यही कह रहा हूंः "आ, बैठ। पहले तुम बैठो।" मन का स्वभाव चलते रहना है। मन का स्वभाव गति करना है। मन का स्वभाव चंचलता है। और जब तक मन बैठे न, तब तक अमृत की बात तो कही नहीं जा सकती। सुनेगा कौन? शाश्वत की बात सुननी हो, तो थोड़ा तो शाश्वत जैसा होना पड़े। क्योंकि समान ही समान को समझ सकता है। उसकी बात सुननी हो, जो कभी नहीं बदलता, थोड़ी देर तुम्हें भी बैठना पड़े।
बौद्धों ने जापान में ध्यान के लिए जो शब्द खोजा है, वह हैः झाझेन। "झाझेन" का मतलब होता है--जस्ट सिटिंग--"आ, बैठ"--बस, इतना ही मतलब होता है। गुरु इतना ही कहता है शिष्य से कि "तू बैठना सीख जा, बस। और जब बैठे, तो सिर्फ बैठ। फिर भीतर कोई गति नहीं, बाहर कोई गति नहीं। बस, बैठा है, बैठा है। सिर्फ बैठने की कला आ जाए।"
चलना इतना बीमारी की तरह हो गया है कि पैर रुक जाते हैं, तो मन नहीं रुकता। तुम भला बैठ जाओ, मन चलता जाता है! मन तुम्हें दूर की यात्रा पर ले जाता है; जहां तुम कभी नहीं गए, वहां पहुंचाता है; जिन सपनों को तुमने कभी नहीं देखा, उनको दिखलाता है; जिन वासनाओं को तुम जानते हो कि कभी पूरी न होंगी, उनमें लुभाता है। और क्षण भर को तुम सपनों में जाते हो। मन चलता ही रहता है।
तो याज्ञवल्क्य ने जो पहली बात कही, वह बड़ी कीमती है। कहाः "आ, बैठ।" अगर जो तुझे समझना हो--अमृत का राज, तो पहला सूत्र है--"बैठ"। तू बैठ जाए तो मैं तुझे सब खोल कर समझा दूं। क्योंकि बैठे हुए मन को ही सब खोलकर समझाया जा सकता है।
"ज्यों-ज्यों मैं बोलता जाऊं, मेरी बात ध्यान देकर सुनते जाना।" ध्यान देकर सुनने का क्या अर्थ होता है?
बात तीन तरह से सुनी जा सकती है। एकः सिर्फ सुन रहे हो और मन भीतर चल रहा है। तब तुम सुन भी लोगे और अचानक तुम पाओगे, कुछ नहीं सुना है। तुम यहां थे ही नहीं। दूसरा एक ढंग है--एकाग्रता से सुनना। तुम सारे मन को तनाव से भरकर मेरी तरफ लगाए हुए हो। यह सहज नहीं है। इसके लिए कोई भय या लोभ चाहिए। अगर मैं तुमसे कह दूं कि "अगर तुमने ठीक से न सुना, तो बस, आज सांझ खतम हो जाओगे।" तो तुम सुनोगे। लेकिन वह सुनना--ध्यान से सुनना नहीं होगा, एकाग्रता से सुनना होगा। क्योंकि मृत्यु का भय है।
जैसे कोई आदमी गरदन पर तलवार लिए खड़ा है। वह कहता है कि "सुनो"। तब तुम सुनोगे, लेकिन वह एकाग्रता होगी। क्योंकि तनाव होगा। तब तुम सुन रहे हो जरूर, तुम रुक भी गए हो, लेकिन जबरदस्ती है। जबरदस्ती, भीतर ऊर्जा को भरमाती है, भटकाती है। तुम दौड़ नहीं रहे हो, एक ही जगह पर कूद रहे हो। तुम चल नहीं रहे हो। क्योंकि इतनी भय की स्थिति है कि तुम चल नहीं सकते। लेकिन तुम्हारी पुरानी आदत।
ऐसा हुआ। महाराष्ट्र में एक संत हुए--एकनाथ। वे तीर्थयात्रा को जाते थे, तो गांव का एक चोर था, उसने कहा, "मुझे भी साथ ले लें।" एकनाथ ने कहा, "तुझे साथ लेना खतरनाक है। तू पक्की कसम खा कि तीन महीने, जब तक यात्रा चलेगी, चोरी नहीं करेगा।" उसने कहा, "कसम खाता हूं।" लेकिन दूसरे दिन से मुसीबत शुरू हो गई। यात्रियों की चीजें गुम होने लगीं। पर बड़ी हैरानी की बात थी कि गुम भी हो जातीं, मिल भी जातीं।
आखिर एकनाथ को शक हुआ कि यही आदमी कुछ कर सकता है तो एक रात जगते रहे, चादर ओढ़ कर पड़े रहे। वह आदमी उठा, जब सब सो गए; उसने किसी का बटुआ निकाला और दूसरे के बिस्तर में सरका दिया। किसी का लोटा उठाया और दूसरे की बाल्टी में डाल दिया। एकनाथ ने उसे पकड़ा और कहाः "तू यह क्या कर रहा है?" उसने कहाः "कसम खाई थी कि चोरी न करूंगा, लेकिन अभ्यास तो जारी रखने दें! चोरी कर भी नहीं रहा हूं। इधर की चीज उधर कर रहा हूं। ले नहीं रहा हूं इसमें से।

तीन महीने कसम खाई है, तो पूरा करूंगा। लेकिन महाराज, लौटकर तो चोरी करनी पड़ेगी! और उसका अभ्यास छूट जाए, तो फिर मैं क्या करूंगा? यह सिर्फ अभ्यास के लिए है--बतौर रिहर्सल।" तो अगर भय के कारण यह आदमी चोरी कोई भाव से नहीं छोड़ आया है। इसने तो सिर्फ भय से कि एकनाथ साथ न ले जाएंगे, साथ जाना है, एक शर्त मान ली।
तुम्हारी गर्दन पर कोई तलवार लेकर खड़ा हो जाए, तो तुम भय के कारण एकाग्र हो जाओगे। भय सदा एकाग्रता ले आता है।
बच्चे साल भर यहां-वहां करते रहें, परीक्षा के वक्त एकाग्र हो जाते हैं। और जो साल भर में नहीं समझे, वे एक रात में समझ जाते हैं। साल भर तो सिर्फ नासमझ बच्चे ही मेहनत करते हैं। समझदार बच्चे तो यहां-वहां करते रहते हैं। क्योंकि ऐन वक्त पर, जब परीक्षा का भय सवार होता है, तो चित्त एकाग्र हो जाता है। तुम्हारी सारी विद्या, शिक्षा भय पर खड़ी है या लोभ पर खड़ी है--कि गोल्ड मेडल है; अगर चूके, तो चूके सदा के लिए; मिल गया तो जिंदगी सार्थक है। जब भय और लोभ पकड़ता है, तो चित्त एकाग्र हो जाता है। इस एकाग्रता का भी कोई मूल्य नहीं है। यह भी सांसारिक है।
याज्ञवल्क्य ने कहा कि तू ध्यान से सुन। यह ध्यान बड़ा मुश्किल है। यह तीसरी बात है। ध्यान का अर्थ हैः जबरदस्ती नहीं, किसी लोभ और भय के कारण नहीं। अपने पर कोई तनाव डाल कर नहीं--सहज, शांत भाव से।
ध्यान से सुनना बड़ी कठिन बात है। तब तुम सिर्फ सुनते हो, सुनने में ही
रस होता है। कोई आगे पुरस्कार, कोई फल--कारण नहीं होता। तुम सुनते हो, क्योंकि सुनना प्रीतिकर होता है, रसपूर्ण होता है। और सुनने में तुम पूरे खुल जाते हो। कोई तनाव भी नहीं होता है कि तुम अपने को ताने हुए हो। तुम अपनी मौज से सुनते हो। "ध्यान देकर तुम सुनते जाना, ज्यों-ज्यों मैं बोलता जाऊं।" यही तुम्हें मेरे साथ करना है। बैठना सीखना है। ध्यानपूर्वक सुनना सीखना है।
मैत्रेयी बैठ गई ध्यानपूर्वक सुनने लगी, तो याज्ञवल्क्य ने कहाः "अरे, पति की कामना के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपनी आत्मा की कामना के लिए पति प्रिय होता है!" यह उपनिषदों का सार है--इन वचनों में। इसलिए याज्ञवल्क्य ने बार-बार दुहराया हैः "पत्नी की कामना के लिए नहीं, अपनी कामना के लिए ही पत्नी प्रिय होती है; आत्मा की कामना के लिए ही पत्नी प्रिय होती है। पुत्र की कामना के लिए नहीं, अपनी आत्मा की कामना के लिए ही पुत्र प्रिय होते हैं।"
उपनिषद कहते हैं कि तुम जो भी चाहते हो, वह तुम वस्तुतः किसलिए चाहते हो? क्या चाह का कारण वस्तु में है? या चाह का कारण तुम्हारे भीतर है? तुम पत्नी को चाहते हो--यह तुम पत्नी के लिए चाहते हो? या पत्नी को भी अपनी आत्मा के लिए चाहते हो? यह पत्नी सुख देती है, यह पत्नी प्रीतिकर है। इसके चारों तरफ सदा एक सुगंध बनी रहती है, एक ताजगी बनी रहती है, एक गीत गूंजता रहता है--यह तुम्हें प्रीतिकर है, यह तुम्हारा आनंद है। इसलिए यह पत्नी प्रीतिकर है। "अपने ही आनंद के लिए पत्नी प्रीतिकर है। अपने ही आनंद के लिए सब कुछ प्रीतिकर है।"
इस जगत में तुमने जो भी चाहा है, वह अपने लिए चाहा है। तुम कितना ही कहो कि मैं तेरे लिए ही चाहता हूं, तुम भी जानते हो, सुनने वाला भी जानता है कि वह "मधुर-असत्य" है। झूठ है, लेकिन कभी-कभी झूठ सुनना भी अच्छा लगता है। अगर दो प्रेमियों की बातें सुनो, तो तुम्हें पता चलेगा कि मधुर-असत्य
का क्या अर्थ होता है। दोनों झूठ बोल रहे हैं। जरूरी नहीं है कि जान कर बोल रहे हों। धोखा दे रहे हों, ऐसा भी नहीं है। खुद धोखे में हो सकते हैं।
यही तो मजा है, यही तो नशा है--प्रेम का। कि ऐसा नहीं है कि कोई तुम झूठ बोल रहे हो--जान कर--कि "तुझसे सुंदर कोई स्त्री नहीं है। कि तेरे बिना मैं एक क्षण न जी सकूंगा।" ऐसा नहीं है कि तुम जान कर झूठ बोल रहे हो। तुम इतने नशे में हो कि तुम्हें लगता है कि तुम ठीक ही बोल रहे हो। तुम्हें लगता हैः तुम भीतर से ही बोल रहे हो। लेकिन होश नहीं है। अगर होश हो, तो तुम्हें लगेगाः सारा प्रेम, सारा राग, सारी आसक्ति, सारी चाह, सारी वासना अपने ही सुख के लिए है। तुम सबको अपना साधन ही बना रहे हो। साध्य तुम ही हो।

तुम कितना ही कहो कि मैं कुर्बान हो जाऊंगा--तुम्हारे लिए, लेकिन यह
भी हो सकता है कि तुम कुर्बान भी हो जाओ, लेकिन उस कुर्बानी में भी तुम्हें ही सुख आ रहा है, इसलिए तुम कुर्बान हो रहे हो।
इमैनुएल कांट ने एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही है और इमैनुएल कांट पर उपनिषदों का बड़ा प्रभाव है। उसने कहा है कि एक आदमी नदी में डूब रहा है; तुम किनारे पर खड़े हो। तुम छलांग लगा कर, अपनी जान को जोखिम में डाल कर उस आदमी को बचाते हो। सारी दुनिया कहेगी कि यह परार्थ है, कि परोपकार किया तुमने, कि तुमने अपनी जान को दांव पर लगाया। तुम साधन बने हो, दूसरे को साध्य बनाया है। लेकिन इमैनुएल कांट कहता है कि बहुत सोचने पर ऐसा नहीं लगता। बहुत खोजने पर ऐसा लगता है कि वहां खड़े रहना--किनारे पर, तुम्हें दुखद हो गया। "यह आदमी डूब रहा था", यह दुख नहीं है। इसका डूबना "तुम्हें" दुखद हो गया। अपना दुख मिटाने के लिए तुम कूदे।
लेकिन यह तो बहुत विश्लेषण करोगे तो समझ में आएगा। और जब तुमने इसे बचा लिया, तो तुम प्रसन्न हुए। और तुमने अपनी जान दांव पर लगाई। इससे भी तुम प्रसन्न हुए कि तुम जान दांव पर लगा सकते हो, कि तुम कुर्बानी कर सकते हो, कि तुम शहीद हो सकते हो। लेकिन सब चीजें घूम कर आत्मा पर आ जाती हैं। तुम ही केंद्र हो अपने जगत के। कोई दूसरा केंद्र हो भी कैसे सकता है!
कोई उपाय भी नहीं है कि तुम किसी दूसरे को अपना केंद्र बना दो। तुम कितना ही दूसरे का चक्कर लगाओ, लेकिन अंततः गहरे में तुम ही अपने केंद्र रहोगे। तुम ही साध्य हो।
उपनिषद इस पर जोर क्यों दे रहे हैं? याज्ञवल्क्य इसको क्यों इतना दुहरा रहे हैं? इसको दुहराने का कारण है। याज्ञवल्क्य यह कहना चाहता है कि अगर सभी चीजों का अंत तुम ही हो तो पहले इसका तो पता लगा लो कि तुम कौन हो? जो सभी चीजों का अंत है और जो सभी चीजों का साध्य हैः इसे बिना जाने तुम क्यों जीवन को खराब कर रहे हो!
जिसके आनंद के लिए सब कुछ चाहा गया है, तुमने उसको ही नहीं जाना है अभी तक, तो तुम उसका आनंद कैसे उपलब्ध कर पाओगे? जो अंतिम सिंहासन पर विराजमान है, उससे पहचान तो कर लो।
आत्म-ज्ञान की इतनी आकांक्षा का कारण ही यही है कि जब तक तुम आत्मज्ञानी न हो जाओ, तब तक तुम जो भी करोगे, वह गलत होगा, वह भ्रांति में होगा। क्योंकि तुमने एक मौलिक सत्य जीवन में नहीं देखा--कि तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी तुम्हारा केंद्र नहीं हो सकता।
और पति-पत्नी की ही बात नहीं है; देवता भी देवता के लिए नहीं, अपनी ही आत्मा के लिए प्रिय होता है। भगवान भी भगवान के लिए नहीं, अपनी ही आत्मा के लिए प्रिय होता है। इसलिए उपनिषद कहते हैंः आत्मा से बड़ा कोई भी सत्य नहीं है। इसलिए वे परमात्मा को भी आत्मा से बड़ा सत्य नहीं कह सकते। क्योंकि परमात्मा भी परिधि पर ही रह जाता है; केंद्र पर तो तुम्हीं हो। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारी जीवन ऊर्जा का कोई भी साध्य नहीं है। तो तुम कौन हो, जिसके लिए यह सारा जगत चारों तरफ घूम रहा है?
रामतीर्थ ने कहा हैः "मैं कौन हूं--जिसके चारों तरफ चांद-तारे घूम रहे हैं? मैं कौन हूं--जिसके लिए सुबह होती है, सांझ होती है, आकाश में तारे उगते हैं?"
"मैं कौन हूं?" इसको बिना जाने, सब अधूरा है। और तब तक मैं जो भी करूंगा, वे कदम--अंधेरे में उठाए गए कदम हैं। वे मुझे मंजिल पर नहीं ले जाएंगे।
मंजिल यहां भीतर छिपी है। और हम सदा मंजिल बाहर देखते हैं। पति देखता है--पत्नी में, पत्नी देखती है--पति में। दोनों चूक जाते हैं। ऑब्जेक्ट में, वस्तु में, कहीं बाहर, बाह्य में मंजिल दिखाई पड़ती है। जब कि मंजिल है--सब्जेक्ट में--भीतर अंतस में। जब कि मंजिल तुम हो।
"मंजिल बाहर है"--इस धोखे को जो व्यक्ति तोड़ लेता है, उसके जीवन में पहली किरण उतरती है--ज्ञान की। इसलिए दुहराए जाता है याज्ञवल्क्य, ताकि मैत्रेयी को सब तरफ से ख्याल में आ जाए कि "इस सब कुछ की कामना के लिए नहीं, अपनी आत्मा के लिए ही सब कुछ प्रिय होता है।"

एक बात याज्ञवल्क्य कहता है कि मैत्रेयी, तू ठीक से समझ ले, बैठ कर समझ ले, ध्यान से समझ ले कि तेरे भीतर ही केंद्र छिपा है--सारे अस्तित्व का। और तू उसे बाहर खोजती फिरे, तो अनंत-अनंत जन्मों तक भटकती रहेगी--परिधि पर। वह केंद्र तुझे मिलेगा नहीं। क्योंकि वह खोजने वाले में छिपा है।
हमारी सारी कठिनाई यही है--सारी अड़चन, उलझन यही है, पहेली यही है कि हम जिसे खोज रहे हैं, वह भीतर छिपा है। काश, वह बाहर होता, तो हम कभी का उसे पा लेते। दिखाई पड़ता होता, तो हम कभी का उसे देख लेते। मुट्ठी में आता, तो हमने कभी का उसे मुट्ठी में ले लिया होता। लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता। वह वहां छिपा है, जहां से हम देखते हैं। वह मुट्ठी की पकड़ में नहीं आता, क्योंकि वह वहां छिपा है--मुट्ठी के भीतर, अंगुलियों में। उसे छूने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि वह छूने वाला है। यह जो शिफ्ट करना है ध्यान का--बाहर से भीतर की तरफ, कि वह चाह के विषयों में नहीं, चाहने वाले में छिपा है--यह घटना जिस दिन घटती है, उसी दिन व्यक्ति वानप्रस्थ हो जाता है।
वानप्रस्थ होने के क्षण में याज्ञवल्क्य ने ये सत्य कहे। यह उसे दिखाई पड़ रहा था, यह उसके जीवन का अनुभव था। जीवन में--गृहस्थी में रह कर उसने जाना था--धन, संपत्ति, यश, कीर्ति इकट्ठी करके उसने जाना था कि "सब कुछ चाहा जाता है--अपने लिए। और अपने को ही हम भूल जाते हैं। जो सब चाहने के भीतर छिपा है, उसकी विस्मृति हो जाती है।"
"मैत्रेयी, यह आत्मा देखने, सुनने, चिंतन करने और ध्यान करने योग्य है। जब यह आत्मा देखी जाती है, सुनी जाती है, विचारी जाती है, जानी जाती है, तब सब कुछ जान लिया जाता है।"
कहते हैं उपनिषद कि उस एक को जानने से सब जान लिया जाता है। और जो सबको जानने में लगा रहता है, वह उस एक से भी वंचित रह जाता है।
"यह आत्मा देखने, सुनने, चिंतन करने, ध्यान करने योग्य है।" यही तो जीवन का सारा आधार है, जिस पर सब खड़ा है। वही है देखने योग्य, बाकी कुछ भी देखने योग्य नहीं है। इसलिए ज्ञानी की आंखें धीरे-धीरे संसार के प्रति झपती जाती हैं। बाहर की तरफ उसकी आंख का परदा गिरने लगता है। क्योंकि अब सारी ऊर्जा भीतर की तरफ बहती है। अब उसे देखना है, जो सबका देखने वाला है। ध्यान में अगर तुम आंख बंद करके बैठते हो, तो उसका प्रयोजन यही है, ताकि ऊर्जा बाहर न जाए। देखने की शक्ति भीतर की तरफ बहे।
"वही" सुनने योग्य है, इसलिए ध्यानी धीरे-धीरे बाहर के सुनने की तरफ
रस को क्षीण करता है। और भीतर के नाद की तरफ प्रवाहित होता है। वह अंतर्नाद--उसको हिंदुओं ने ओंकार कहा है--वहां ओंकार की ध्वनि निरंतर गूंज रही है। ओंकार कोई मंत्र नहीं है, वह तुम्हारे भीतर गूंजती हुई ध्वनि है। वह तुम्हारे अस्तित्व का संगीत है। वह तुम्हारे भीतर का सन्नाटा है, जो ओंकार जैसा मालूम पड़ता है।
लेकिन जब तक तुम्हारे कान बाहर की आवाज से भरे होंगे, तब तक तुम भीतर
की उस छोटी, धीमी, सूक्ष्म आवाज को कैसे सुनोगे? इसलिए कान को बाहर की भीड़, और बाहर के बाजार, और बाहर की आवाज से खाली कर लेना है।
आंख को बाहर के रूप-रंग-आकृति से खाली कर लेना है। जीभ को बाहर के स्वाद से, नाक को बाहर की गंध से, हाथ को बाहर के स्पर्श से खाली कर लेना है।
जब तुम बाहर की समस्त संवेदनाओं से खाली हो जाते हो, तब तुम्हें जीवन
के केंद्र की संवेदना पहली दफा होती है। तब तुम पहली दफा अपने को सुनते हो, तब तुम पहली दफा अपने को देखते हो, तब पहली दफा तुम्हें अपना स्पर्श होता है, अपना स्वाद आता है। और यह स्वाद सच्चिदानंद का है। क्योंकि जिसने इस "एक" को चख लिया, उसने जीवन का सारा रहस्य चख लिया। क्योंकि तुम्हारे भीतर स्रोत छिपा है, जड़ें छिपी हैं; तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है।
"यह आत्मा देखने, सुनने, चिंतन करने और ध्यान करने योग्य है।" तुम अपनी जीवन की ऊर्जा को--चाहे वह देखने की हो, चाहे सुनने की हो, चाहे चिंतन करने की हो, चाहे ध्यान करने की हो--सबको भीतर लगा दो।

अभी भी तुम चिंतन तो करते ही हो, लेकिन बाहर की चीजों का करते हो। कभी दुकान, कभी बाजार, कभी मित्र, कभी शत्रु, कभी धन--अनेक समस्याएं हैं--तुम उनके चिंतन में लीन होते हो।
मैंने सुना हैः ऐसा हुआ एक दिन, एक मस्जिद में नमाज पढ़ी जा रही थी। वह बड़ा दिन था, बड़ी नमाज का दिन था। वर्ष का सबसे बड़ा उत्सव था। हजारों लोग इकट्ठे हुए थे। जो मौलवी था मस्जिद का, उसके घर एक फकीर जुन्नैद ठहरा हुआ था।
जुन्नैद कभी मस्जिद नहीं जाता था। कई बार मौलवी ने कहा भी, तो जुन्नैद हंसता और टाल जाता। जवाब न देता। लेकिन इस बड़े दिन पर, मौलवी ने कहा, "आज तो चलना ही पड़ेगा।" मौलवी ने जब बहुत ही आग्रह किया तो जुन्नैद ने कहा, "ठीक, जैसे यहां, वैसे वहां। हमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन तुम्हें आनंद आता हो, तो चलो, चले चलते हैं--तुम्हारी खातिर। लेकिन ध्यान रहे, तुम भी चलना!"
वह मौलवी थोड़ा चौंका। उसने कहा, "मैं तो जाऊंगा ही; रोज ही जाता हूं-- पांच बार।" जुन्नैद ने कहा, "व्यवसाय के लिए जाना और मस्जिद में जाने में फर्क है। तुम्हारी दुकान है--मस्जिद, इसलिए तुम जाते हो; जैसे दुकानदार अपनी दुकानों में जाते हैं। अब आज मैं चल रहा हूं, तो तुम भी साथ चलना। आज तक मैंने बात न छेड़ी। तुम रोज कहते थेः चलो, चलो। लेकिन मैंने तुम्हें कभी मस्जिद जाते न देखा। इसलिए मैंने सोचा कि तुम्हारे साथ कहां जाऊं! पर आज तुम खुद अपने हाथों उलझ गए।"
"और ध्यान रहे, चलता तो हूं, लेकिन नमाज पढ़ना, तो ही मैं साथ दूंगा अन्यथा मैं उपद्रव कर दूंगा।" मौलवी ने सोचाः "नमाज तो मैं पढूंगा ही।" इधर मौलवी ने नमाज पढ़नी शुरू की; वहां जुन्नैद खड़ा था--सामने ही, वह जोर-जोर से ऐसी आवाज करने लगा, जैसी भैंसें आवाज करती हैं। सारी मस्जिद को उसने चकित कर दिया। लोग आंख खोल-खोल कर देखने लगे। जुन्नैद बड़ा प्रतिष्ठित फकीर था--सम्मानित था। मौलवी भी थोड़ा बेचैन हुआ कि इस नासमझ को मैं कहां ले आया! और जुन्नैद बड़े जोर-जोर से आवाज करने लगा, जैसे भीतर उसके भैंस बोल रही है।
आखिर उस मौलवी ने कहा, "जुन्नैद, बहुत हो गया। सबकी नमाज खराब किए दे रहे हो! यह क्या खेल है? और तुमसे कभी ऐसी नासमझी की आशा न थी!" जुन्नैद ने कहा, "मैंने पहले कह दिया था कि अगर तुम नमाज पढ़ोगे, तो मैं नमाज में साथ दूंगा अन्यथा मैं उपद्रव कर दूंगा। अब तुम भैंस ही भैंस के संबंध में सोच रहे हो, तो मैं क्या कर सकता हूं! मैं तुम्हारा साथ दे रहा हूं। और तुम्हीं ने कहा था कि साथ चलो।"
मौलवी चौंका। वह निश्चित ही सोच रहा था--वह भैंस के संबंध में ही सोच रहा था। बहुत दिन से भैंस खरीदना चाहता था। पैसे नहीं जुड़ रहे थे और आज बड़े दिन की नमाज पर काफी पैसे आ गए थे। तो वह हिसाब कर रहा था भीतर कि अब इतने पैसे हो गए हैं कि कल बाजार जाकर पहला काम भैंस को खरीद लेने का है। कई तरह की भैंसें दिखाई पड़ रही थीं। वह उनमें से चुन रहा था कि कौन सी खरीदूं, कौन सी न खरीदूं! कई बार भैंस-बाजार से गुजरा था, देखी थी भैंसें, लेकिन पास पैसे नहीं थे। अब पैसे हैं। तो वह उनका विचार कर रहा था।
जुन्नैद ने कहा, "तू सच बोल?" उस मौलवी ने कहा, "मुझे माफ कर दें; भूल मेरी है। मैं जुन्नैद को गलत जगह ले आया। और जब यह जोर मारता है तो मुझे भी सच कहने को मजबूर करता है। यह बात ठीक है। मैं नमाज ऊपर-ऊपर पढ़ रहा हूं, भीतर तो भैंस का ही ख्याल चल रहा है। और आप भी आदमी हद के हैं! जब भी मैं एक भैंस का चेहरा देखता हूं, तब ही आप आवाज करने लगते हैं!"
ऐसी ही घटना नानक के साथ घटी। नानक कहते थेः हिंदू-मुसलमान सब एक, मंदिर-मस्जिद सब एक। तो एक मुसलमान ने जो गांव का नवाब था, उसने नानक को यह कहते सुनकर कहा, "अगर यह सच है तो आप मंदिर तो जाते हैं, लेकिन मस्जिद कभी नहीं आते। और कहते हैं कि मस्जिद मंदिर एक! तो मेरे साथ मस्जिद चलें।" नानक ने कहा, "तुम चलोगे तो मैं चलूंगा।"
फकीरों की जिंदगी में अक्सर तुम्हें एक सी घटनाएं होती मिल जाएंगी। क्योंकि सभी फकीरों का स्वाद एक है। फकीरी का ढंग एक है।

कहा नानक ने "तुम चलोगे तो मैं भी चलूंगा।" उसने कहाः "साफ बात है। मैं
तो जा ही रहा हूं। आओ।" सारे गांव के मुसलमान इकट्ठे हो गए। रास्ते में नानक ने कहाः "और देखो, नमाज पढ़ना, नहीं तो मैं न पढूंगा।" उसने कहाः "यह क्या कहने की बात है! नमाज हम पढ़ेंगे ही!"
नानक सामने ही खड़े हैं, वे नमाज पढ़ते नहीं, झुकते नहीं। नवाब बेचैन हो गया। जल्दी-जल्दी उसने नमाज पूरी की और टूट पड़ा नानक पर, "सब बकवास है, सब झूठ है, कि हिंदू और मुसलमान एक हैं। फर्क तुम भी मानते हो। तुम नमाज में सम्मिलित न हुए!" नानक ने कहाः "मैं क्या कर सकता था; क्या तुम नमाज पढ़ रहे थे? तुम बार-बार आंख खोल कर मुझे देख रहे थे। मुझे देखना नमाज है? कि परमात्मा को देखना नमाज है? तुम मेरे संबंध में सोच रहे थे। तुमने एक क्षण को भी परमात्मा की याद न की!"
सोच तुम भी रहे हो, चिंतन तुम भी कर रहे हो, मनन-ध्यान चल रहा है--लेकिन संसार का। "कात्यायिनी" के पीछे तुम यात्रा कर रहे हो। मन को भीतर की तरफ मोड़ो। मित्र को तलाशो मन में। उस मित्र का उपयोग करना है। उसको सीढ़ी बनाना है।
याज्ञवल्क्य ने कहाः "मैत्रेयी, यह आत्मा देखने, सुनने, चिंतन करने और ध्यान करने योग्य है।" शेष सब व्यर्थ है; शेष सब भटकाव है। कितना ही समय गंवाओ, कुछ सार हाथ नहीं आता। क्योंकि तुम परिधि पर ही घूमते चले जाते हो; केंद्र से संबंध ही नहीं जुड़ता।
तो सारी जीवन की ऊर्जा को जो इंद्रियों से बाहर जाती है--देखने में, सुनने में, स्वाद में--उसे मोड़ दो भीतर की तरफ। और "जब यह भीतर की आत्मा सुनी जाती है, विचारी जाती है, जानी जाती है, तब सब कुछ जान लिया जाता है।" धर्म एक को जानने पर जोर देता है, विज्ञान अनेक को जानने पर जोर देता है। इसलिए विज्ञान अनेक है, धर्म एक ही है। विज्ञान शाखाओं-प्रशाखाओं में बंटता जाता है। धर्म जड़ को पकड़ता है। इसलिए वैज्ञानिक बहुत जान लेता है, फिर भी अज्ञानी रह जाता है। और धार्मिक एक को जानता है और ज्ञानी हो जाता है।
बुद्ध को, याज्ञवल्क्य को, नानक को, कबीर को क्या पता है? क्या जानते हैं वे? पर हमने उन्हें "महाज्ञानी" कहा है। अगर तुम उनसे कामचलाऊ दुनिया की कुछ बात पूछो, तो तुम उन्हें निपट अज्ञानी पाओगे। तुम उनसे यह आशा मत रखना कि वे तुम्हें यह बताएंगे कि हाइड्रोजन और आक्सीजन मिल कर पानी बनता है। यह उनको पता ही नहीं है। तुम उनसे संसार की बातें मत पूछना। संसार के संबंध में उन्हें कुछ भी पता नहीं है। उनके ज्ञान का इससे कोई नाता नहीं है। उन्होंने "कुछ और" जान लिया है--जिसके लिए सब कुछ जाना जाता है, उसे जान लिया है। उन्होंने मालिक को पकड़ लिया है। तुम नौकरों के पीछे दौड़ रहे हो। नौकर बहुत हैं और तुम उनको पकड़ भी लोगे तो भी कुछ पकड़ में न आएगा।
सुना है मैंनेः एक सम्राट विजय-यात्रा से वापस लौटता था। उसकी सैकड़ों पत्नियां थीं। और उसने घर खबर भेजी कि "मैंने बड़ी विजय की है, बड़ा साम्राज्य फैलाया है और अब मैं वापस लौट रहा हूं वर्षों के बाद।" तो हर पत्नी को उसने पुछवाया कि "तू क्या चाहती है, वह तेरे लिए मैं ले आऊंगा। अब मेरे पास सुविधा है।" सभी पत्नियों ने बड़ी फेहरिस्तें भेजीं। किसी को हीरे चाहिए थे, किसी को माणिक चाहिए थे, किसी को स्वर्ण चाहिए था, किसी को दूर देश की सुगंध चाहिए थी। किसी को कुछ, किसी को कुछ--वस्त्र। सब तरह की बातें थीं। एक पत्नी ने कोरा कागज भेजा और साथ में एक पत्र भेजा कि तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिए। तुम आ जाओ घर वापस।
और ऐसा हुआ संयोग, कि जिस जहाज में यह सम्राट वापस लौटता था, वह डूब गया। और जो भी वह लेकर आया था, वह सब डूब गया। सिर्फ सम्राट ही बामुश्किल, किसी तरह किनारे लग सका। जिन पत्नियों ने संसार की चीजें मांगी थीं, उनके हाथ कुछ भी न आया। जिसने सम्राट को मांगा था, उसके हाथ सब आ गया।
आखिर में ऐसा होता है कि जब तुम्हारी नाव डूबेगी, तो सब संसार उसमें डूब जाएगा; सिर्फ मालिक बचेगा। और अगर उस मालिक को ही तुमने कभी नहीं मांगा, तो तुम दरिद्र मरोगे। अगर तुमने उस मालिक को मांगा है, उसको तुमने

खोज लिया है, तो नाव डूबे, न डूबे, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी मालकियत नहीं छिन सकती। तुम्हारा सम्राट होना सुनिश्चित है।
मौत से सभी नावें डूब जाती हैं। "सिर्फ तुम" किनारे लगोगे; बाकी कुछ
भी किनारे नहीं लगेगा। क्या तुमने इकट्ठा किया, जो तुमने पाया--सब जाएगा। लेकिन तुमने अपने को तो कभी मांगा नहीं, खोजा नहीं, पूछा नहीं। जब तुम्हारा सब खो जाएगा, नाव डूबेगी, तब तुम छाती पीटोगे और रोओगे। तुम कहोगेः "सब गया।" कुछ भी नहीं गया है। जो गया, वह तुम्हारा कभी नहीं था; छीना-झपटी थी। जो तुम्हारा सदा था, उस पर तुमने आंख न की थी, उसे तुमने कभी पहचाना न था।
इसलिए याज्ञवल्क्य कहता हैः "उस एक को जान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है।" मैत्रेयी, अगर तू अमृत को जानना चाहती है, तो उस एक को जान ले, जो तेरे भीतर छिपा है। अगर सुख-चैन से रहना चाहती है, तो इस संसार की सारी चीजें हैं, वे सुख-चैन दे सकती हैं। लेकिन उनसे कभी सच्चिदानंद नहीं मिला है, उनसे कभी अमृत नहीं मिला है।
और याज्ञवल्क्य की बात समझ में आई होगी मैत्रेयी को, क्योंकि याज्ञवल्क्य अनुभव से गुजर कर कह रहा है। वह उस सब कुछ को छोड़ कर जा रहा है, जिसे कचरा पाया है। पूरी नाव को खुद ही छोड़ रहा है। भरा हुआ जहाज खुद ही छोड़ रहा है। उसकी तलाश में जा रहा है--सारा ध्यान उसको देना चाहता है--जो केंद्र है।
कहते हैंः मैत्रेयी भी उसकी यात्रा में संलग्न हो गई। कहते हैंः उसने
भी उसे पा लिया--जिसे याज्ञवल्क्य ने पाया। कात्यायिनी कहां भटक गई, उसकी कोई खबर नहीं है।
तुम "कात्यायिनी जैसे" मत बनना। भीतर "मैत्रेयी" को जन्माना, ताकि एक दिन तुम उसे पा लो, जिसे पाए बिना सब पाया हुआ व्यर्थ है, और जिसे पाकर अगर सब खो भी जाए, तो कुछ भी नहीं खोता है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
पंद्रहवां प्रवचन

बुद्धपुरुष अर्थात जीवित मंदिर--मौन का

एक झेन गुरु थे--सोइची। जिस दिन से सोइची ने तोफुकु के मंदिर में शिक्षण देना शुरू किया, उसी दिन से मंदिर का रूपांतरण हो गया।
दिन आता, दिन जाता; रात आती, रात जाती; लेकिन तोफुकु का मंदिर सदा मौन
ही खड़ा रहता। मंदिर एक गहन सन्नाटा ही हो गया। कहीं से कोई आवाज न उठती थी। सोइची ने सूत्रों का पाठ भी बंद करा दिया। यहां तक कि मंदिर के घंटे भी सदा सोए हुए रहते; क्योंकि सोइची के शिष्यों को सिवाय ध्यान के और कुछ नहीं करना था।
फिर बरसों तक ऐसा ही रहा। लोग भूल ही गए कि पड़ोस में मंदिर है। और सैकड़ों संन्यासी थे वहां; आत्मज्ञान के दीये जलते थे; और समाधि के फूल खिलते थे।
और अचानक एक दिन लोगों ने सुना कि मंदिर के घंटे बज रहे हैं और शास्त्रों के सूत्र पढ़े जा रहे हैं। लोग भागे मंदिर की तरफ। सोइची ने संसार छोड़ दिया था। उसके शव पर ही सूत्र पढ़े जा रहे थे, घंटे बज रहे थे। ओशो, इस कथा पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

मौन की महिमा अपार है। उससे ज्यादा महिमावान कुछ और नहीं। जिसने उसे
पा लिया, उसे पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता। क्योंकि मौन के क्षण में ही पता चलता है--तुम परमात्मा हो।
परमात्मा का अर्थ हैः जिसे पाने को कुछ भी शेष नहीं; जो सब पाया ही हुआ है। परमात्मा का अर्थ हैः जिसे कहीं जाना नहीं; जो अपनी मंजिल पर ही विराजमान है। परमात्मा का अर्थ हैः जो भी है, वह उससे परम तृप्त है; कोई अतृप्ति नहीं, कोई चाह नहीं; कोई प्यास नहीं, कोई क्षुधा नहीं; कोई मांग नहीं, कोई प्रार्थना नहीं। जिस दिन प्रार्थना मिट जाती है, उसी दिन तुम परमात्मा हो जाते हो। जिस दिन मांग खो जाती है, उसी दिन जो भी न पाने योग्य है, जो भी पाया जा सकता है, वह तुम्हें मिल गया। लेकिन मौन के क्षण में ही यह पता चलता है। मौन के बिना तुम अपने से अपरिचित ही रह जाते हो।
बहुत से तलों पर इस बात को समझ लो। फिर यह कहानी खुल जाएगी, जैसे कोई बंद द्वार खुल जाए; जैसे अंधेरे में कोई अचानक दीया जला दे और सब प्रकाशित हो जाए।
पहली बातः बोलते हो तुम, जरूरी है। क्योंकि दूसरे से संबंधित होने का
और कोई उपाय नहीं है। लेकिन अकेले में, जब दूसरा नहीं है, तब तुम क्यों बोले चले जाते हो? भीतर तुम क्यों बोले चले जाते हो? दूसरे से तो बोलना माध्यम है, लेकिन स्वयं से बोलना पागलपन है।
एक आदमी रास्ते पर चलता है, तो उसके पैर चलते हैं। लेकिन तुम बैठे हुए पैरों को हिलाते रहो और तुम रोकने में ही असमर्थ हो जाओ; और कोई तुम्हारे से कहे कि "अब तुम क्यों पैर हिला रहे हो! क्योंकि कहीं तुम जा नहीं रहे। जाने के लिए तो पैर चलाना जरूरी है। लेकिन बैठे-बैठे क्यों पैर हिलाते हो? सोते-सोते क्यों पैर हिलाते हो?" और तुम कहो कि "मैं क्या करूं; पैर रुकते ही नहीं!" तो तुम्हारा शरीर अस्वस्थ है। और तुम्हारा नियंत्रण खो गया; तुम मालिक नहीं हो। लेकिन मन की यही हालत है।
दूसरे से बोलते हो, समझ में आता है। लेकिन अपने से क्यों बोलते हो? भीतर क्यों बोलते हो? अंतरालाप क्यों चलता है? और क्या तुम्हारे वश में है कि तुम चाहो--मन को रोकना, तो रुक जाए! जब तुम कहो, तब रुक जाए। तुम्हारे वश में नहीं है। मन तुम्हारी सुनेगा नहीं। मन मालिक हो गया है। तुम उपेक्षित--तुम्हारी मालकियत उपेक्षित। मन ने सब नियंत्रण ले लिया है। तुम्हारा कोई काबू नहीं है।
पागल का और अर्थ क्या होता है? "पागल" का इतना ही अर्थ होता है कि "जिसका अपने पर कोई काबू नहीं।" जो हो रहा है--होगा; वह उसे बदल नहीं सकता।
जो नहीं हो रहा है, वह नहीं होगा; वह उसे कर नहीं सकता। उसकी मालकियत खो गई

है। इस अर्थ में तो हम सभी पागल हैं; मात्राओं के भेद होंगे; कम और ज्यादा पागल होंगे; लेकिन पागल सभी हैं।
जरूरत है दूसरे से बोलने के लिए--भाषा की, शब्द की। अपने से बोलने के लिए न भाषा की जरूरत है, न शब्द की। अपने से अगर बोलना हो, तो मौन की जरूरत है। पदार्थ को जानना हो, तो शब्द का उपयोग करना पड़ेगा। विज्ञान बिना शब्द के नहीं जी सकता।
कभी तुमने सोचाः सारे पुस्तकालय जल जाएं, सारे शास्त्र नष्ट हो जाएं,
तो विज्ञान नष्ट हो जाएगा, धर्म नष्ट नहीं होगा। क्योंकि धर्म का शास्त्रों से कुछ लेना-देना नहीं है। वे हैं या नहीं हैं, कोई फर्क न पड़ेगा। अगर विज्ञान के सारे शास्त्र जल जाएं, तो तुम आइंस्टीन को पैदा न कर सकोगे आज। आइंस्टीन को पैदा होने में फिर कोई पांच हजार साल लगेंगे। जब पांच हजार साल तक फिर शास्त्र इकट्ठे होंगे, तब कहीं आइंस्टीन फिर से पैदा हो सकेगा। लेकिन सारी दुनिया के शास्त्र जल जाएं, तो भी बुद्ध को तुम आज ही पैदा कर सकोगे।
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि लोग धर्म को परंपरा समझते हैं, लेकिन धर्म परंपरा नहीं है। विज्ञान परंपरा है। और लोग धर्म को शास्त्र में आबद्ध समझते हैं। धर्म-शास्त्र में बिल्कुल आबद्ध नहीं है; विज्ञान शास्त्र में आबद्ध है। इसलिए विज्ञान की शिक्षा हो सकती है; धर्म की शिक्षा नहीं हो सकती। और तुमने अगर विज्ञान की किताब समझ ली तो और कुछ समझने को नहीं बचता। धर्म की किताब तुम कितनी ही समझ लो, सब कुछ ही बाकी रहता है।
पदार्थ को जानना हो, तो शब्द साधन है। परमात्मा को जानना हो, तो शून्य साधन है। वहां चुप होकर पहुंचना पड़ेगा। वहां बोलते हुए गए कि चूक जाओगे। क्योंकि जो बोल रहा है, वह अपने ही शब्दों से इतना भरा है--वह स्थूल से इतना भरा है कि सूक्ष्म कैसे उसकी पकड़ में आएगा?
बाजार का शोरगुल तुम अपने भीतर लिए चल रहे हो। तुम्हारे मंदिर भी बाजार के हिस्से हो गए हैं, तुम्हारी मस्जिदें भी बाजार के हिस्से हो गए हैं। वे भी दुकानें हैं; वहां भी बड़ा शोरगुल है। मंदिर तो मौन होना चाहिए। वहां तो जाने का अर्थ ही यह होना चाहिए कि तुम बाजार को पीछे छोड़ आए। वहां तो सन्नाटा होना चाहिए; वहां तो जहां तुम जूते उतारते हो, वहीं तुम्हें शब्द भी उतार देने चाहिए। मंदिर में शब्द ले जाने का क्या अर्थ है? और शब्द से बासा और क्या है?
कितनी बार तुम एक ही शब्द का उपयोग कर चुके हो! उससे ज्यादा गंदा और क्या है? जूता भी उतना गंदा नहीं है, शब्द जितना गंदा हो गया है।
शब्द का ही उपयोग करते हो। तुम गौर करो, तो तीन सौ से ज्यादा शब्द न पाओगे--जिनका तुम दिन-रात उपयोग करते हो। तीन सौ भी--जो बहुत ज्यादा शब्दों का जानकार हो। इसलिए कोई नई भाषा सीखना कठिन नहीं होना चाहिए। तीन सौ शब्द तुम ठीक से सीख लो, नई भाषा आ जाएगी। क्योंकि तीन सौ से ज्यादा शब्दों का कोई उपयोग ही कहां होता है! उन्हीं का तुम दिन-रात उपयोग करते रहते हो। वे बासे हो गए हैं; सड़ गए हैं। तुम्हारे ओंठों से गुजर-गुजर कर गंदे हो गए हैं।
जैसे कोई रुपया बाजार में चलते-चलते गंदा हो जाता है, घिस जाता है, ऐसे
ही तुम्हारे शब्द घिस गए हैं। चांदी के भी नहीं हैं वे, कागज के नोट हैं; बहुत गंदे हो गए हैं। इनको लेकर तुम मंदिर में प्रवेश करते हो। इन्हें तुम मंदिर के बाहर छोड़ जाना, तो ही तुम्हारा प्रवेश हुआ; तो ही होगा प्रवेश। वहां तो तुम मौन होकर जाना। इसलिए वस्तुतः जो मौन हो गया, वह मंदिर में है। और जो बोलता रहा, वह मंदिर में बैठा हो, तो भी दुकान में है। तुम कहां हो, इससे फर्क नहीं पड़ता है। तुम्हारे भीतर क्या है, इससे ही फर्क पड़ता है। लेकिन हमारे मंदिर और मस्जिद बाजार के हिस्से हैं। मंदिर और मस्जिद तुम्हें नहीं बदल पाए, तुमने उन्हें बदल दिया है।
एक बहुत बड़ा धनपति--रथचाइल्ड--बहुत परेशान था। अनेक तरह के लोग, अनेक तरह की चीजें बेचना चाहते--इंश्योरेंस के एजेंट, हजार तरह के सेल्समैन दरवाजे पर दस्तक देते। एक सेल्समैन महीनों से आता था। वह उसे कई दफा धक्के

देकर निकलवा चुका था। लेकिन वह फिर-फिर आ जाता था। वह चाहता था, उसके धंधे का विज्ञापन, पत्रों में छापने के लिए। आखिर रथचाइल्ड ने कहाः "आज कोई मैं चालीस साल से धंधे में हूं--और बिना विज्ञापन के। तुम देख रहे हो कि मैंने बहुत कमाया है। और जो भी मैं बनाता हूं, वह बिकता है। अब मुझे विज्ञापन की कोई जरूरत नहीं है। विज्ञापन उनके लिए हैं, जिनकी चीजें बिकती न हों। तुम्हें हजार दफे कह दिया, तुम बार-बार मत आओ।"
सांझ का वक्त था, तभी पास के पहाड़ पर चर्च की घंटियां बजीं। उस विज्ञापन मांगने वाले ने कहाः "सुनें, क्या मैं आपसे पूछ सकता हूं कि यह चर्च कितने साल से है--इस पहाड़ पर?" रथचाइल्ड ने कहाः "होगा कोई पांच सौ साल पुराना।" पर उसने कहाः "यह चर्च अभी भी रोज शाम घंटियां बजाता है, और खबर देता है कि मैं हूं। और आप केवल चालीस साल से धंधे में हैं। यह पांच सौ साल से धंधे में है; लेकिन विज्ञापन इसने बंद नहीं किया! जिस दिन इसकी घंटियां बंद होंगी, लोगों का जाना बंद हो जाएगा। लोग भूल जाएंगे कि मंदिर है अब।"
और कहते हैं, रथचाइल्ड प्रभावित हुआ और उसने विज्ञापन देना शुरू किया। उसको लगा कि भगवान की दुकान के लिए भी विज्ञापन की जरूरत होती है-- घंटा बजाना पड़ता है!
घंटा बहुत पुराना विज्ञापन है। घंटा बजता रहता है, ताकि तुम्हें खबर रहे कि मंदिर है। बुलावा है कि आओ। अगर मंदिर घंटा बजाना बंद कर दें, तो तुम उन्हें भूल जाते हो।
तुम्हारे मंदिर-मस्जिद भी बाजार के हिस्से हो गए हैं। वे भी बिक्री
के नियम मान कर चलते हैं। लेकिन तुम उनके द्वारा नहीं बदले जा सके हो। तुम उनके द्वारा तभी बदले जा सकोगे, जब तुम्हें मौन की महिमा समझ में आ जाए। दूसरी बात ख्याल में ले लोः बच्चा पैदा होता है, तब वह मौन होता है। फिर मरेगा, तब भी मौन हो जाएगा। जीवन के इस छोर के पहले मौन है, जीवन के उस छोर के बाद मौन है। मौन से तुम उठते हो, मौन में तुम खो जाते हो। शब्द बीच का खेल है; जिंदगी का, समाज का, सभ्यता का दूसरे संबंध का नाता है। लेकिन तुम अपने निपट अकेलेपन में सदा मौन थे। जब तुम पैदा हुए तब, जब तुम मरोगे तब।
दूसरे से बातचीत उपयोगी है, लेकिन उससे तुम्हारा स्वभाव प्रकट न होगा। स्वभाव तो तुम्हारा तभी प्रकट होगा, जब तुम "दूसरे" को बिल्कुल भूल जाओगे।
"शब्द" को भूलने का अर्थ है--दूसरा भूल गया। शब्द को छोड़ने का अर्थ है-- समाज छूट गया। शब्द को हटाने का अर्थ है--सभ्यता हट गई। इधर शब्द गया, भाषा गई, वहां सब जो तुमने सीखा था--गया।
शब्द के बिना तो तुमने कुछ भी नहीं सीखा है। सभी सिखावन शब्द पर खुदी है। शब्द को छोड़ते ही सब सिखावन छूट जाती है। सब लघनग चली जाती है, सब पांडित्य, सब ज्ञान--सब चला जाता है। तुम रह जाते हो--निपट-निर्दोष, जैसे तुम थे--जन्म के पहले, और जैसे तुम हो जाओगे--मृत्यु के बाद। और अगर तुम इसमें एक डुबकी भी लगा लो--इस स्रोत में, मूल स्रोत में तो फिर तुम हंसोगे। तो फिर तुम कहोगे कि न कोई जन्म है और न कोई मृत्यु। मैं सदा था और सदा रहूंगा। मैं सनातन हूं, मैं शाश्वत हूं।
यह धारा अजस्र बन रही है। यह जन्म के पहले भी बहुत थी--छिपी होगी। जैसे नील नदी बहती है--इजिप्त में। सैकड़ों मील तक जमीन के नीचे बहती है; दिखाई नहीं पड़ती। फिर अचानक प्रकट होती है। लेकिन प्रकट कोई चीज शून्य से तो नहीं होती। जो भी प्रकट होता है, वह पहले अप्रकट रहा होगा। ऐसे ही एक दिन अचानक तुम्हारा जन्म होता है। जो नदी भूगर्भ में थी, छिपी थी, वह प्रकट हो गई। फिर एक दिन अचानक तुम भूगर्भ में खो जाते हो। फिर मौत तुम्हें समा लेती है।
जो जन्म के पहले था, जो मौत के बाद था, उसको ही पहचानो। वही धर्म है, वही ध्यान है। लेकिन तुम अपना सारा समय समाज में खोए दे रहे हो। तुम अपनी सारी ऊर्जा शब्द में चुकाए डाल रहे हो। तुम बोल-बोल कर नष्ट हुए जा रहे हो; सोच-सोच कर नष्ट हुए जा रहे हो!

ध्यान से बड़ा समाज विरोधी और कोई तत्व नहीं है। क्योंकि ध्यान का अर्थ है--पूरा समाज तुमने छोड़ा। शब्द छोड़ा कि समाज गया। तुम बाहर उतर जाते हो।
शब्द से उतर जाने की कला, समाज से बाहर उतर जाने की कला है। कोई हिमालय जाने की जरूरत नहीं है। हिमालय तो वे जाते हैं, जो नासमझ हैं। जो इस कला को नहीं जानते, वे हिमालय में भी उतर न पाएंगे।
तुम्हें पता हैः तुम अगर अकेले छोड़ दिए जाओ, तो पहले धीरे-धीरे अपने
से बात करोगे। फिर जोर-जोर से बात करने लगोगे। फिर तुम पौधों से, पहाड़ों से बात करने लगोगे। कोई भी न मिलेगा, तो तुम परमात्मा से बातचीत शुरू कर दोगे। तुम्हीं बोलोगे, तुम्हीं जवाब दोगे! तुम "दूसरे" को कल्पना से निर्मित कर लोगे।
हिमालय पर जाने से कुछ भी न होगा। जाते ही वे हैं, जो नहीं जानते। उन्हें छोटी सी कला आ गई--शब्द की नाव से उतर जाने की कला--वे ठीक यहीं, बीच बाजार में, जब चाहें तब हिमालय को खोज ले सकते हैं। जैसे ही वे शब्द का द्वार बंद करते हैं, मौन हो जाते हैं--बाहर हो गए।
संसार के हर स्थान से संसार के बाहर होने का द्वार है। कुंजी चाहिए।
वह कुंजी मौन है। चुप होना इस जगत में सबसे बड़ी कला है। शेष सारी कलाएं शब्द पर निर्भर हैं।
बच्चा पैदा होता है, तो हम उसे शब्द सिखाते हैं। इसलिए जो बच्चा जितने जल्दी शब्द बोलता है, मां-बाप उतने ही ज्यादा प्रसन्न होते हैं। और ध्यान रहे, जो बच्चा जितने जल्दी शब्द बोलता है, उतना ही बुद्धिमान सिद्ध होता है; क्योंकि सारी कला शब्द से ही सीखनी है। जो बच्चा जितने देर से बोलेगा, उतना ही बुद्धू सिद्ध होगा। अगर पांच-सात आठ-दस साल तक बिना बोले रह गया, तो फिर आशा खो जाती है।
जितनी जल्दी बच्चा बोलता है, उतनी खबर देता है कि वह प्रतिभाशाली है।
और तुम्हें ख्याल हैः समाज में सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली कौन लोग हैं? वे ही जो शब्द के कुशल कारीगर हैं। वे चाहे नेता हों, चाहे वैज्ञानिक हों, चाहे गुरु हों। जो शब्द के जितने कुशल कारीगर हैं, जो शब्द का जितना ढंग से उपयोग कर सकते हैं, वे ही तुम्हारी दुनिया में महान हैं!
तुम्हारा सारा खेल शब्दों का है। जो यहां अच्छा बोल सकता है, ढंग से बात कर सकता है, वह हर तरह की चीजें बेच पाता है। बोलने की कला जैसे संसार की सारी कलाओं का आधार है।
लेखक हैं, कवि हैं, संगीतज्ञ हैं--सभी, शब्द, ध्वनि उसका उपयोग कर रहे हैं। यहां अगर कोई बिल्कुल ही चुप रह जाए, तो तुम समझोगे कि जड़ है, तुम समझोगे कि मूढ़ है। इसलिए जल्दी से जल्दी मां-बाप कोशिश करते हैं कि बच्चा शब्द सीखे।
पहले बच्चे सात साल में स्कूल जाते थे, अब वे ढाई साल, तीन साल के हुए
कि मांटेसरी में उनको प्रवेश मिल जाता है। और रूस में वे फिकर कर रहे हैं कि बच्चे को गर्भ में कैसे शिक्षण दिया जा सके। कुछ चीजें उसको गर्भ से सिखाई जा सकती हैं। कुछ कंडीशनिंग की जा सकती है--गर्भ में भी। और वे जल्दी उपाय खोज लेंगे। उनके परिणाम आ रहे हैं, उनके प्रयोग सफल हो रहे हैं--बहुत सी बातें बच्चे को गर्भ में ही सिखाई जा सकती हैं। उनके लिए क्यों रुकना! सिखाने की जल्दी है।
क्या सिखाते हैं हम? हम शब्द सिखाते हैं; फिर शब्द के माध्यम से सब कुछ सिखाते हैं। लेकिन ध्यान रहे, एक चीज शब्द के माध्यम से नहीं सिखा सकते--वह स्वभाव है, वह अस्तित्व की गहराई है। वह शब्द के पहले है। उसको शब्द से सिखाने का कोई मार्ग नहीं है। उसे अगर सीखना हो, तो जो भी तुमने सीखा है, उसे भूलना सीखना पड़ेगा। इसलिए रमण बार-बार दुहराते हैं, कि सारे धर्म की कला अनलघनग है।
तो एक तरफ संसार की सारी कलाएं हैं, उनको हम लघनग कहें--सीखना। और उन सबके मुकाबले दूसरे तराजू पर धर्म की कला है, उसे हम अनलघनग कहें--भूलना।
स्मृति उपयोगी है--संसार में; विस्मृति उपयोगी है--धर्म में।

और ध्यान रहे, तुम्हारी स्मृति जितनी संसार से भर जाएगी, उतना ही परमात्मा विस्मरण हो जाएगा। और जितना तुम संसार को विस्मरण करोगे, उतना ही परमात्मा का स्मरण आएगा। क्योंकि जगह खाली होगी।
जो लोग भी ईश्वर को याद करना चाहते हैं, तो राम-राम दोहराने से कुछ न होगा। उन्हें संसार को भूलना सीखना पड़ेगा। पहले जगह खाली करो।
कहां है, वह रिक्त स्थान, जहां परमात्मा को निमंत्रण दिया जा सके? कहां है तुम्हारे घर में अतिथिगृह, जहां उसे ठहराया जा सके? तुम भरे हो-- बुरी तरह भरे हो और कचरे से भरे हो। इस कचरे को हटाना ही होगा। इस कचरे को एक बार भी तुम हटा दोगे, तो तुम बहुत हंसोगे कि जिसको हमने ज्ञान समझ कर इकट्ठा किया था, वह कूड़ा था। उसका कोई भी मूल्य नहीं था।
इसलिए उपनिषदों ने शब्दों से जो सीखा जा सके, उसे "अविद्या" कहा है। बड़े अदभुत लोग थे; उसको "विद्या" नहीं कहा, उसको "अविद्या" कहा है--जो शब्द से सीखा जा सके। तो तुमने जो भी सीखा है अब तक, वह सभी अविद्या है। और तुम्हारे विश्वविद्यालय अविद्यालय हैं--विद्यालय नहीं। क्योंकि वहां सभी कुछ शब्द से सिखाया जा रहा है।
उद्दालक का बेटा श्वेतकेतु लौटा सीख कर, गुरु के घर से, तो उसको बाप ने पूछाः "तुमने वह सीखा या नहीं, जिसे सीखने से सब जान लिया जाता है?" उसके बेटे ने कहाः "वह तो कुछ गुरु ने बात नहीं की! वैसे तो सब सीख कर आ गया हूं-- जो भी सीखा जा सकता है।" बाप ने कहाः "तू वापस लौट जा। असली बात तो चूक ही गई। असली बात--उसको सीखा है या नहीं, जिसको सीख लेने से सब कुछ सीख लिया जाता है?" मगर वह सीखना शब्द से हो ही नहीं सकता।
जब श्वेतकेतु वापस लौट गया और उसने अपने गुरु से कहा कि "मेरे पिता तो बहुत दुखी और नाराज हुए और उन्होंने कहा कि यह क्या कचरा लेकर तू आ गया! यह तो अविद्या है!" और यह लड़का वेद में पारंगत होकर गया था! जो भी जाना जा सकता था वह कंठस्थ कर लिया था। गुरु ने कहा, "तेरे पिता ठीक कहते हैं। लेकिन अब अगर तुझे वह सीखना है, जिसे सीखने से सब सीख लिया जाता है, तो वह मेरे बस के बाहर है; उसे कोई नहीं सिखा सकता।"
वह श्वेतकेतु को गौवों के साथ जंगल में भेज देता है--तू वर्षों तक वहां गौवों जैसा हो जा--मौन। बोलना मत, सोचना मत। और सब करना; सोचना, बोलना--दो काम मत करना। उठना, बैठना, भूख लगे--भोजन करना, प्यास लगे--पानी पीना, मगर भीतर शब्द को निर्मित मत होने देना। प्यास लगे तो भीतर शब्द मत बनाना कि "मुझे प्यास लगी।" उठना-जाना सरोवर के तट पर। पानी पी लेना। पानी पी ले और प्यास बुझ जाए, तो भीतर शब्द को बीच में मत बनाना कि "प्यास बुझ गई।" प्यास लगे, प्यास का बुझना हो, लेकिन शब्द को बीच में मत लाना। सुबह सूरज निकले, तो देखना; लेकिन मत कहना कि "सुबह हुई।" रात सूरज ढल जाए, तो देखना; मगर मत कहना कि "रात हो गई"। कहना मत, बोलना मत, सोचना मत, गाय जैसा हो जाना।
वर्षों तक श्वेतकेतु गायों के साथ रहा। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे शब्द गिरते गए। उनकी कोई जरूरत न थी। गौवों से बोलने का कोई अर्थ भी न था। सारा पांडित्य जो सीखा था, वह जैसे झड़ गया। स्मृति संसार की, शब्द की मिट गई। वह मौन हो गया।
जब वह वापस लौटा वर्षों के बाद, तो गुरु ने कहाः "अब यहां आने की कोई जरूरत नहीं श्वेतकेतु! दूर से ही मैं देख रहा हूं कि तूने उसे जान लिया, जिसे जानने से सब कुछ जान लिया जाता है। अब तू अपने घर लौट जा।" गुरु के चरण छुए--बिना बोले। श्वेतकेतु धन्यवाद देने के लिए भी नहीं बोला।
चरण छूना बड़ा सार्थक है। वह बिना बोले कुछ कहना है। इसलिए भारत ने उस कला को खोजा। भारत के बाहर चरण छूने की कोई बात नहीं है। और पश्चिम के लोग समझ ही नहीं पाते कि चरण छूने का राज क्या होगा। वह बिना बोले कुछ कहना है। धन्यवाद देना है, लेकिन शब्द को नहीं बनाना है। क्योंकि गुरु को शब्द से धन्यवाद अगर दिया जा सकता, तो शब्द बना लेते। जिससे निःशब्द सीखा है, उसको शब्द में धन्यवाद कैसे देंगे!
इसलिए झुक कर--बिना कुछ कहे, धन्यवाद देकर श्वेतकेतु चल पड़ा। जब वह अपने घर के करीब पहुंचने लगा और उसके पिता ने खिड़की से देखा तो उसके पिता

ने सोचा कि अरे, यह तो उस एक को जानकर लौट रहा है! इसकी गरिमा, इसका प्रकाश! दूसरी खिड़की से कूद कर पिता भाग गया। उसने अपनी पत्नी को कहा, "मैं जाता हूं; क्योंकि अभी मुझे इस एक का खुद ही पता नहीं चला। और यह उचित न होगा कि श्वेतकेतु आकर मुझ अज्ञानी के पैर छुए। अब मैं लौटूंगा तब, जब मैं भी इस एक को जान लूंगा। वह तो जो मैंने श्वेतकेतु को कहा था कि "उस एक को जान कर लौट, जिसको जानने से सब जान लिया जाता है, वह भी मैंने शास्त्र में पढ़ा था। उसे भी मैं जानता नहीं हूं। और मैंने सोचा नहीं था कि यह लड़का कर गुजरेगा। यह असंभव को संभव करके चला आ रहा है। अब मेरा रुकना उचित न होगा। अब मैं तभी लौटूंगा, जब मैं भी उस एक को जान लूं।"
अब हम इस कहानी को--इस छोटी सी कहानी को समझने की कोशिश करें। यह मौन
की महिमा है।
एक झेन गुरु था--सोइची। जिस दिन से सोइची ने तोफुकु के मंदिर में शिक्षण देना शुरू किया, उसी दिन से उस मंदिर का रूपांतरण हो गया।
तुम मंदिर में जाते हो, तो भी मंदिर का रूपांतरण होता है; क्योंकि मंदिर भी तुम्हारा गुण-धर्म ले लेता है। क्योंकि मंदिर तो एक ग्राहकता है। उसी मंदिर में रावण प्रवेश करता है; तब वह मंदिर रावण जैसा हो जाता है। उसी मंदिर में राम प्रवेश करते हैं; तब वह मंदिर राम जैसा हो जाता है। मंदिर तो एक ग्राहकता है, एक पैसिविटी है। अगर तुम ठीक से समझ लो, तो तुम जहां हो, वहीं मंदिर बना सकते हो। तब पत्थर की दीवारों के मंदिर का कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि तब तुम जानते हो, तुम्हारा होना ही तुम्हें घेरे हुए है। और अगर तुम्हारा होना विकृत है, तो तुम मंदिर में जाकर क्या करोगे? तुम मंदिर को विकृत करोगे और क्या करोगे? अगर तुम बीमार हो, तो तुम्हारी बीमारी मंदिर को छुएगी और क्या होगा! और अगर तुम दुख से भरे हो, तो मंदिर विषाद से डूब जाएगा और क्या होगा!
मंदिर तुम्हें नहीं बदलता; तुम्हीं मंदिर को बदलते हो। और जब सोइची जैसा ज्ञानी किसी मंदिर में प्रवेश करता है, तो मंदिर सोइची जैसा हो जाता है; रूपांतरण शुरू हो जाता है।
ये जो मंदिर खड़े हैं सारी पृथ्वी पर, ये जो तीर्थ हैं--मक्का है, मदीना है, काशी है, जेरुसलम है और सारे जमीन पर मंदिरों का इतना बड़ा विस्तार है, ये हमने क्यों बचा कर रखे हैं? इनके बचाने का कारण है। कभी न कभी इन मंदिरों में सोइची जैसे आदमी ने प्रवेश किया। और उसके साथ मंदिर की जो महिमा प्रकट हुई थी, वह हमसे भूले नहीं भूली है। इसलिए हमने इनको बचाया है, हालांकि अब वह कहानी रह गई है, क्योंकि सोइची जैसे लोग रोज नहीं पाए जा सकते।
जिस दिन मोहम्मद मदीना में थे या मक्का में थे, उस दिन जो गरिमा थी, वह भूलती नहीं है। इसलिए मुसलमान के जीवन कृत्यों में--एक बार हर मुसलमान को हज करनी चाहिए। एक बार हर मुसलमान को उस जगह पहुंच जाना चाहिए, जिसने कभी मोहम्मद का गौरव जाना। शायद वह जगह अब भी कुछ गुनगुनाती हो! शायद उस जगह की हवाएं और पत्थर अभी भी कुछ कहें! वह सिर्फ याददाश्त है। लेकिन मोहम्मद जिस दिन प्रवेश किए काबा में, उस दिन काबा बदल गया। उस दिन काबा का रूपांतरण हो गया।
पत्थरों की क्या बिसात है जो तुम्हें बदल दें? तुम ही बदलोगे। और तुम अगर भरोसा करते हो कि पत्थर तुम्हें बदलेंगे, तो तुम पत्थरों से गए बीते हो। दीवारें तुम्हें बदलेंगी, कि मंदिर का घंटनाद तुम्हें बदलेगा, कि मंदिर में प्रतिष्ठित पत्थर की प्रतिमाएं तुम्हें बदलेंगी! तो तुम हो क्या? तुम पत्थर-कंकड़ हो? क्या हो? वे तुम्हें नहीं बदल सकते। तुम ही उन्हें बदलोगे।
तुम अपने मंदिर को अपने साथ लिए चलते हो। तुम्हारा मंदिर तुम्हारे "होने" का ढंग है। इसलिए जब कभी सोइची जैसा आदमी किसी मंदिर में प्रवेश कर जाता है, तो मंदिर का सौभाग्य है।
मंदिर बदल गया, उसका रूपांतरण हो गया, उसी दिन से। दिन आता, दिन जाता; रात आती, रात जाती; लेकिन तोफुकु का मंदिर सदा मौन ही खड़ा रहता।

सोइची मंदिर पर छा गया। मंदिर की पत्थर की दीवारें सोइची को नहीं बदलेंगी, सोइची ने मंदिर को बदला। और जैसा सोइची चुप था, मौन था, ऐसा ही मंदिर भी मौन रहने लगा। सोइची का गुण-धर्म मंदिर पर छा गया। वह मंदिर सोइची का ही विस्तार हो गया।
दिन आता, दिन जाता; रात आती, रात जाती; लेकिन तोफुकु का मंदिर सदा मौन
ही खड़ा रहता। वह मंदिर एक गहन सन्नाटा हो गया। कहीं से कोई आवाज न उठती। सोइची ने सूत्रों का पाठ भी बंद करा दिया। मंदिर के घंटे भी सदा सोए रहते। क्योंकि सोइची के शिष्यों को सिवाय ध्यान के और कुछ भी नहीं करना था।
ऐसा उल्लेख है कि बुद्ध एक राजधानी के करीब आए। उस राजधानी का सम्राट
था अजातशत्रु। उसके मंत्रियों ने अजातशत्रु को कहा, कि बुद्ध मिलने जैसे हैं। नाम तो उसका था अजातशत्रु--जिसका कोई शत्रु पैदा नहीं हुआ है; लेकिन यह अजातशत्रु शत्रुओं से डरता बहुत था। उसने कहाः "बुद्ध आए हैं, लेकिन क्या वहां जाना सुरक्षित है?" मंत्रियों ने कहाः "वहां क्या खतरा है!" अजातशत्रु ने कहाः "लेकिन फौजी टुकड़ी मेरे साथ चलनी चाहिए।" मंत्रियों ने कहाः "यह बेहूदा लगेगा। बुद्ध जैसे व्यक्ति के पास आप फौजी टुकड़ी को लेकर जाएंगे--तलवारें लेकर--यह अच्छा नहीं लगेगा। डर कुछ भी नहीं है। बुद्ध आप पर हमला नहीं करेंगे!" अजातशत्रु ने कहा, "बात ठीक है। पर रास्ते में तो साथ ले चलें।" तो रास्ते में उसकी फौजी टुकड़ी गई। फिर मंत्रियों ने उसे बगीचे के बाहर, जहां बुद्ध ठहरे थे, फौजी टुकड़ी को छोड़ देने को कहा। डरता, भयभीत--क्योंकि कुछ खतरा न हो। वह फौज को छोड़ कर किसी भांति मंत्रियों के साथ चला। थोड़ी ही दूर जाकर वह ठिठक कर खड़ा हो गया। उसने कहा, "मुझे संदेह होता है। क्योंकि तुम कहते थे, दस हजार भिक्षु बुद्ध के साथ हैं। और यहां सन्नाटा है। तुम मुझे किसी उपद्रव में तो नहीं ले जा रहे हो! तुम्हारा कोई शड्यंत्र तो नहीं है? और तुम कहते हो, यह जो वृक्षों की कतार है, बस, इसके ही पार दस हजार भिक्षु ठहरे हुए हैं! दस हजार! जहां दस हजार आदमी हों, वहां शोरगुल होगा।" मंत्री हंसने लगे, उन्होंने कहा, "आप अकारण चिंतित हो रहे हैं। यह दस हजार आदमी नहीं हैं। आदमी तो यहां एक भी नहीं है। ये भिक्षु हैं। ध्यान ही इनका एकमात्र कर्म है। वे उठते हैं, बैठते हैं, तो चुप्पी साधते हैं। यह कोई बाजार नहीं है।"
अजातशत्रु गया--भयभीत, डरता हुआ। जाकर बहुत चकित हुआ। उसे भरोसा ही न आया कि दस हजार लोग उन वृक्षों के नीचे बैठे हैं। और सन्नाटा है, जैसे एक भी आदमी न हो।
जैसे ही सन्नाटा होता है तुम्हारे भीतर, तुम्हारी आदमीयत खो जाती है, दिव्यता प्रकट होती है। क्योंकि आदमी तुम अपनी भाषा के कारण हो। इस परिभाषा को ध्यान में रख लेना।
पशु पशु हैं, क्योंकि बोल नहीं सकते। आदमी आदमी हैं, क्योंकि बोल सकते हैं। देवता देवता है, क्योंकि बोलने के पार चला गया। बीच में आदमी है-- पशुओं और परमात्मा के, जहां भाषा की कड़ी है। और आदमीयत को पार करना है, तो ही तुम्हारी दिव्यता का अवतरण हो।
सोइची जैसे ही मंदिर में आया, मंदिर का रूपांतरण शुरू हो गया। वहां सन्नाटा रहने लगा। मौन खड़ा रहता मंदिर, घंटे भी बजाने बंद कर दिए। क्योंकि जिसे आना है, उसे अपने आप आना चाहिए। निमंत्रण की क्या जरूरत? और जो निमंत्रण से आएगा, वह आएगा ही कैसे! फिर यह कोई घर तो नहीं, जहां निमंत्रण दिया जाए। यह मंदिर है; यहां जिसको आने की प्यास जग गई हो, वही आएगा। और अगर सरोवर घंटे नहीं बजाते कि प्यासे आएं, तो मंदिर क्यों बजाएगा!
सोइची ने कहा कि बंद कर दो घंटी। हमें उन्हें नहीं बुलाना है, जो अभी आने को तैयार नहीं हैं। जिन्हें आना है, वे आ जाएंगे--वे खोजते हुए आ जाएंगे। और उन लोगों की भीड़ इकट्ठी कर लेना, जिनको नहीं आना था, बड़ी खतरनाक है। क्योंकि उनके बीच में वे लोग भी खो जाते हैं, जिनके कि आने का क्षण आ गया था। उस भीड़ में वे भी दब जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं।
तो मंदिर के घंटे बंद कर दिए गए। सूत्रों का पाठ तक बंद करवा दिया। अब बुद्ध के वचन वहां न पढ़े जाते। रोज सुबह से जो सूत्रों का नियमित पाठ था, वह भी बंद हो गया। वह मंदिर पहली दफा मंदिर बना।

शास्त्र भी छोड़ दिया गया। सोइची ने सूत्रों का पाठ भी बंद करा दिया।
लोगों ने कहा होगा जरूर कि यह सोइची नास्तिक है।
इस जगत में जो परम आस्तिक पैदा हुए हैं, वे सभी समझे गए हैं कि नास्तिक हैं। यहां छोटे-मोटे आस्तिकों को ही लोग आस्तिक समझ पाते हैं। यहां बड़ा आस्तिक तो नास्तिक जैसा मालूम पड़ता है।
सोइची ने पाठ बंद कर दिया--सूत्रों का। तुम सोचो, मंदिर के ट्रस्टियों
का कैसा रुख रहा होगा! यह मंदिर भ्रष्ट हो गया! इस मंदिर में न अब पूजा होती है, न प्रार्थना होती है। सब कृत्य बंद हो गया!
लोगों ने कहा होगाः सब संन्यासी खाली बैठे रहते हैं; निठल्ले बैठे रहते हैं; कुछ भी काम करते नहीं। कुछ काम तो चाहिए।
सारा कर्म का जाल--कोलाहल--सब सोइची ने बंद कर दिया।
झेन की मौलिक प्रक्रिया है कि तुम चुप बैठना सीख जाओ। इसलिए झेन, हर साधक को कम से कम छह घंटे खाली बैठने की साधना देता है। कम से कम छह घंटे सिर्फ बैठे रहो। कुछ भी मत करो। यह कठिन से कठिन कृत्य है--इस जगत में।
कुछ करने में तुम्हें तकलीफ नहीं होती। कुछ करने के तुम आदी हो। आदतें यांत्रिक हैं। उन्हें करने के लिए न तो सोचना पड़ता है, न विचारना पड़ता है। आदतें तुमसे काम करवाती रहती हैं। आदतें इतनी गहन हैं कि "तुम्हारी" जरूरत ही नहीं, तुम्हारे बिना भी आदतें चलती रहती हैं।
तुमने कई बार अनुभव किया होगा कि पता नहीं कब तुम पैकेट से सिगरेट निकाल कर मुंह में लगा लेते हो, कब तुम जला लेते हो, कब तुम धुआं खींचने- छोड़ने लगते हो! जैसे तुम्हारी कोई जरूरत ही नहीं। यह आदत ही कर लेती है।
अचानक तुम चौंकते हो कि तुम धूम्रपान कर रहे हो।
तुम कार चलाते हो। तुम कब बाएं घूम जाते हो, कब दाएं घूम जाते हो; इसके लिए कुछ सोचने की जरूरत नहीं है। आदतों का जाल तुमसे कराए जाता है।
जिन लोगों ने मन की गहरी खोज की है, वे कहते हैंः सब छूट जाता है।
आदतें दूसरे जन्म में भी पीछा करती हैं। वह जो आदमी उदास पैदा होता है, वह उदास मरता है; और फिर उदास पैदा होता है। वह जो आखिरी घड़ी की स्थिति थी--वह जो जिंदगी भर की आदत का सार निचोड़ था--वह पीछा करती है। इसलिए हर बच्चे में जन्म के साथ भेद है। भेद क्या है? भेद आदतों का है, जो पहले उसने बनाईं। मैंने सुना हैः एक आदमी मरा। वह आदमी एक होटल में बैरा था। और उस होटल में आने-जाने वाले लोग उसे बड़ा प्रेम करते थे। उस जैसा सेवक खोजना कठिन था--विनम्र, हर वक्त दौड़ा हुआ; जो भी कहो बेहतर से बेहतर करने को तत्पर। उसकी टेबल पर बड़ी भीड़ रहती थी। अक्सर क्यू लगी रहती थी, उसकी टेबल के लिए। फिर वह मरा। उसकी पत्नी बड़ी दुखी थी, तो एक प्रेतात्मविद के पास गई। बड़ी कोशिश की प्रेतात्मविद ने--उसकी आत्मा को बुलाने के लिए, लेकिन उसकी आत्मा नहीं आ सकी। तो प्रेतात्मविद ने कहा, "तेरा पति करता क्या था?" तो उसने कहाः "कोई तीस साल से वह एक होटल में बैरा था--एक ही होटल में।" तो प्रेतात्मविद ने कहाः "तो उसे यहां बुलाना कठिन होगा। बेहतर होगा, हम होटल में ही चलें। आशा इस बात की है कि आत्मा वहीं आस-पास भटक रही हो। पुरानी आदत! तीस साल!"
वह प्रेतात्मविद उस स्त्री को लेकर उस होटल में गया। एक कोने में बैठ
कर एक टेबल पर उन्होंने उसे बुलाने की कोशिश की। तत्क्षण आवाज उत्तर में आई कि "हां, मैं हूं।" लेकिन बड़ी धीमी आवाज थी। होटल में बहुत शोरगुल था। तो पत्नी ने बड़ी खुश होकर कहाः "मैं बड़ी प्रसन्न हूं कि तुम हो। वहां के संबंध में कुछ और कहो। लेकिन जरा जोर से बोलो।" उसने कहाः "और जोर से मैं नहीं बोल सकता। बहुत भीड़-भाड़ और शोरगुल है यहां।" तो पत्नी ने कहाः "तुम थोड़े करीब क्यों नहीं आ जाते?" उसने कहाः "मैं तुमसे काफी दूर हूं।" पत्नी ने कहाः "करीब आ जाओ।" उसने कहाः "वह मैं न कर सकूंगा। वह मेरी टेबल नहीं है।" वह अपनी ही टेबल के आस-पास है!
आदमी मर जाए, तो भी साथ ले जाता है संस्कार। संस्कार यानी आदत--बहुत गहरी चली गई आदत।

सबसे गहरी आदत तुम्हारे भीतर उलझे रहने की है--काम में उलझे रहने की।
काम बदल जाते हैं। जन्मों-जन्मों में तुमने न मालूम कितने काम किए हैं।
लेकिन एक आदत हमेशा मौजूद रही है--कुछ न कुछ करने की--व्यस्त, आक्युपाइड।
काम बदलने से तुम्हें अड़चन नहीं होती। तुम अखबार छोड़ कर रेडियो सुन सकते हो। रेडियो बंद करके तुम कार साफ कर सकते हो। काम तुम बदल सकते हो, लेकिन अकाम की हालत में तुम नहीं हो सकते हो। एक काम से दूसरे में जाने में इतनी अड़चन नहीं है, क्योंकि व्यस्तता जारी रहती है।
झेन कहता हैः धर्म की सारी कला--अव्यस्त, अनआक्युपाइड होना है। इसलिए साधारण कर्म लोगों को, कर्मठ लोगों को तो झेन फकीर आलसी और काहिल मालूम होते हैं कि सिर्फ बैठे हैं--निठल्ले। कुछ भी नहीं कर रहे हैं! जापान में भी उनकी निंदा और आलोचना होती रही है। भारत में भी होती है।
जहां भी धर्म पैदा होता है, वहीं खाली बैठने की कला की शुरुआत होती है। संन्यास का अर्थ हैः खाली बैठने की कला। समाज में आलोचना होती है। कर्मठ लोग हैं, वे कहते हैंः "कुछ न करो; कम से कम सेवा तो करो! इतने गरीब हैं, इनकी सेवा करो। बीमार हैं, इनकी सेवा करो; अस्पताल चले जाओ। खाली बैठने से क्या होगा!"
लेकिन सेवा भी व्यस्तता है। तुमने दुकान छोड़ दी, अस्पताल जाने लगे। तुमने अपना धंधा छोड़ दिया, तो तुम सेवा में लग गए। लेकिन धंधा जारी है। तुम व्यस्त हो, व्यस्तता जारी है। सेवा तो वही कर सकता है, जिसने अव्यस्त होना पहले सीख लिया।
अगर एक काम से तुम दूसरा काम बदल लेते हो, तो तुम ध्यान को कभी उपलब्ध
न होओगे। ध्यान के लिए बीच में अंतराल चाहिए। तुमने सब काम छोड़ दिया और तुम बिल्कुल बेकाम होकर बैठ गए। और इस बेकाम हालत में तुम्हारे मन में कोई बेचैनी पैदा नहीं होती। धीरे-धीरे मन की दौड़ सिकुड़ती जाती है। मन का जाल सिकुड़ता जाता है। तुम संसार से टूटते जाते हो। तुम्हारी जड़ें उखड़ती जाती हैं। तुम्हारा रुख इस दुनिया से दूसरी दुनिया की तरफ होने लगता है।
जब तुम बिल्कुल व्यस्त नहीं होते, तब तुम्हारी जीवन ऊर्जा कहां जाएगी? वह अपने में ही ठहर जाएगी। और जब जीवन ऊर्जा अपने में ही ठहरती है, उस स्थिति का नाम ध्यान है।
तो छह घंटे--झेन कहता है कि हर आदमी को बैठे रहना चाहिए। अगर तुम कभी बोध-गया गए हो और तुमने बोधि-वृक्ष देखा है, तो बोधि-वृक्ष के पास एक छोटी सी टहलने की जगह है, उसको बुद्ध का चर्यापथ कहते हैं, जहां बुद्ध चंक्रमण करते थे। क्योंकि बुद्ध घंटों बैठे रहते--छह घंटे, आठ घंटे--फिर पैर जड़ हो जाते, तो उठ कर वह मंदिर के बगल में जो थोड़ी सी जगह है, वहां वे चल लेते। वे चलते, ताकि पैर में खून फिर चल जाए, फिर शरीर ढंग पर आ जाए, फिर जाकर बोधि- वृक्ष के नीचे बैठ जाते।
बैठ-बैठ कर बुद्ध ने बुद्धत्व पाया। चल-चल कर किसी ने बुद्धत्व नहीं पाया है। वे चलते भी थे थोड़ा सा, तो सिर्फ इसलिए कि फिर से बैठ सकें। और तुम अगर बैठते भी हो थोड़ा सा, तो सिर्फ इसलिए कि फिर चल सको। बस, वहीं बुनियादी फर्क है। तुम अगर रात आराम भी करते हो, तो इसलिए कि सुबह धंधे में ठीक से लग जाओ। तुम्हारा आराम भी काम में नियोजित है।
बुद्ध का इतना ही कुल काम था कि वे कभी चार-छह घंटे के बाद दस-पचास कदम चलते थे। वह चलना सिर्फ इसलिए था, ताकि शरीर फिर बैठने में सक्षम हो जाए। सारी प्रक्रिया बदल गई। श्वास भी इसलिए ले रहे हैं। चल भी रहे हैं इसलिए। भिक्षा मांगने भी जाते हैं, पानी भी पीते हैं। लेकिन सारी प्रक्रिया--जो कुछ भी करते हैं--वे इतना सा ही करने के लिए है कि खाली होकर बैठ सकें, अव्यस्त होकर बैठ सकें। तब बड़ी थोड़ी सी व्यस्तता बचती है--न्यून, अति न्यून, अत्यंत आवश्यक। उतनी न्यून व्यस्तता के साथ और अव्यस्त रहने में राजी होने के साथ ध्यान का फूल लगता है।
तोफुकु के मंदिर में सोइची ने सूत्रों का पाठ भी बंद करा दिया। मंदिर
के घंटे सो गए। सोइची के शिष्य सिवाय ध्यान के कुछ न करते। फिर वर्षों तक ऐसा ही रहा। लोग भूल गए कि पड़ोस में मंदिर है। भूल ही जाएंगे। क्योंकि

मंदिर भी मौन से नहीं पहचाना जाता। मंदिर भी शोरगुल से पहचाना जाता है। मौन जो है, उसको तो हम भूल ही जाएंगे।
तुमने कभी ख्याल किया है कि अगर तुम्हारे घर में कोई मौन हो जाए, तो थोड़े दिन में तुम उसे भूल जाओगे कि वह है। क्योंकि न बोलेगा, न उपद्रव करेगा। उपद्रव से पता चलता है। बोलने से अड़ंगा डालता है। बोलने से बीच में आता है, दूसरों के रास्ते के आर-पार पड़ता है। बोलता ही नहीं, तो मार्ग के बाहर हो जाता है। अगर कोई आदमी घर में बिल्कुल मौन हो जाए, तो वह रहेगा भी और तुम उसे भूल जाओगे, जैसे वह है ही नहीं। हम भाषा से ही पहचानते हैं कि कोई है।
मंदिर है, ऐसा लोग भूल गए। सैकड़ों संन्यासी थे वहां। आत्मज्ञान के दीये जलते थे; समाधि के फूल खिलते थे। फिर भी लोगों को पता न रहा कि मंदिर है। क्योंकि न तो आत्मज्ञान का दीया तुम्हें दिखाई पड़ता है, न समाधि के फूल की सुगंध तुम्हें मिलती है। तुम्हें तो सिर्फ शोरगुल सुनाई पड़ता है। तुम पागलपन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझ पाते। इसलिए पागल तुम्हें बहुत ज्यादा होकर दिखाई पड़ता है। और उसका कारण है।
तुम वही समझ पाते हो, तुम जो हो। हमारी समझ हमसे ज्यादा कभी नहीं होती। हो भी नहीं सकती। तुम एक किताब पढ़ते हो। उस किताब में तुम वही पढ़ जाते हो, जो तुम पहले से ही जानते थे। तुम उतना ही ज्ञान उस किताब में से लोगे, जो तुम्हारे पास था ही। नये को तुम पहचानोगे कैसे? नये को तुम आत्मसात कैसे करोगे? नये का तुम्हें पता ही नहीं चलेगा। नये में तुम्हें शोरगुल ही मालूम नहीं होगा।
इस जगत में हम वही देख पाते हैं, जो हम हैं। वही पहचान पाते हैं, जो हमारी पहचान है। यह जगत हमारी सीमा से बंधा है।
मैंने सुना हैः एक संध्या मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनोवैज्ञानिक के पास गया--बहुत चिंतित और परेशान। और जाकर उसने कहा, "बहुत हो गया। अब कुछ करना ही पड़ेगा। बहुत दिन टाला, लेकिन टाल न सका।" मनोवैज्ञानिक ने पूछा, "क्या तकलीफ है?" उसने कहा, "तकलीफ मुझे नहीं है। मेरी पत्नी को है। उसे ख्याल हो गया है, एक वहम सिर पर सवार हो गया है कि वह रेफ्रिजरेटर है।" पागलों को हो जाता है। तो उस मनोवैज्ञानिक ने सांत्वना दी और कहाः "इसमें कुछ घबड़ाने की बात नहीं है और यह बड़ा निर्दोष वहम है। इसमें हर्ज भी क्या है?" नसरुद्दीन ने कहाः "तुम समझे नहीं। हर्ज है, क्योंकि रात वह मुंह खोल कर सोती है और प्रकाश--छोटा प्रकाश रेफ्रिजरेटर का, रात भर जलता रहे तो मैं कैसे सोऊं?"
अब यह आदमी खुद पागल है। लेकिन अपना पागलपन दूसरे में झलकता है।
हर आदमी दर्पण है उसमें हम अपनी ही शकल देखते हैं। और यह दर्पण, वह दर्पण--थोड़े बहुत फर्क दर्पण में होते हैं। कोई बेल्जियम का बना है, कोई शुद्ध देशी है। दर्पण में थोड़े-बहुत फर्क होते हैं, इसलिए थोड़ा बहुत शकल में फर्क मालूम पड़ता है। लेकिन मौलिक अंतर नहीं आता। शकल तो तुम्हारी ही रहेगी।
तुम एक मित्र को बदल कर दूसरा मित्र कर लो; एक पत्नी छोड़ दूसरा विवाह
कर लो; एक घर छोड़ कर दूसरे घर में चले जाओ; एक नौकरी छोड़ दूसरी नौकरी कर लो, बहुत फर्क न पड़ेगा; क्योंकि हर जगह दर्पण रहेगा। शकल तो तुम अपनी ही देखोगे!
इसलिए दुखी आदमी झोपड़े से महल चला जाए, तो भी दुखी रहता है। सुखी आदमी महल से झोपड़े में चला जाए, तो भी सुखी रहता है। क्योंकि सवाल दर्पण का नहीं है; चेहरा तो तुम अपना ही देखोगे। दर्पण छोटा हो, बड़ा हो, कीमती हो, गैर-कीमती हो, टूटा-फूटा हो, लेकिन चेहरा तो तुम्हारा ही तुम देखोगे। हम सब जगह अपने को ही देखते हैं। हम उसी को पहचानते हैं, जो हम जैसा है। हम पागल हैं, तो हमें पागलपन पहचान में आता है।
यह जो सोइची का मंदिर था, इतना शांत हो गया कि लोग भूल गए कि वह है। लोग उसके सामने से ही गुजरते होंगे। उसमें हजारों भिक्षु थे। वे भिक्षु भिक्षा मांगने बाहर जाते होंगे, भीतर आते होंगे, लेकिन वे बिल्कुल शांत थे। वे मौन थे। ध्यान उनके जीवन की एकमात्र शैली थी। लोग उन्हें देखते भी

होंगे, फिर भी नहीं देख पाते होंगे। क्योंकि अपना ही चेहरा हम देख सकते हैं। लोगों को वह मंदिर दिखाई भी पड़ता होगा, फिर भी दिखाई नहीं पड़ता होगा। आंखों में तस्वीर तो बनती होगी, भीतर पहचान नहीं आती होगी। इसलिए बहुत बार ऐसा हुआ है--बहुत बार क्या, सदा ऐसा हुआ है--कि इस जगत में जो भी बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति पैदा हुए हैं--ध्यान के--ध्यानी जो पैदा हुए हैं, वे करीब-करीब इतिहास के बाहर छूट गए हैं।
बहुत लोग पूछते हैं कि बुद्ध का इतिहास में क्या प्रमाण है? बहुत लोग पूछते हैं कि महावीर का इतिहास में क्या प्रमाण है? इतिहास में न के बराबर प्रमाण है। क्योंकि ये "मंदिर" इतने सन्नाटे से भरे थे कि हमने कभी जाना भी नहीं कि ये हैं; हमने कभी पहचाना भी नहीं कि ये हैं।
इतिहास में तो हम उसको लिखते हैं, जिसको हम पहचानते हैं, जानते हैं। इतिहास में पागलों की कथाएं बड़ी मेहनत से लिखी गई हैं। हिटलर हैं, तैमूर हैं, चंगीज हैं, नेपोलियन हैं, सिकंदर हैं--इनकी इतिहास में कथाएं हैं-- विस्तार से। सारा इतिहास "पागलों" से भरा पड़ा है!
तुम्हारा अखबार भी है--उसमें कभी तुम्हें कोई खबर मिलती है कि कोई आदमी शांत है--कि कोई आदमी शांत बैठा है किसी वृक्ष के नीचे? बुद्ध अखबार के बाहर छूट जाएंगे। लेकिन दिल्ली में जो सारे पागल इकट्ठे हो गए हैं, उनकी अंगुली में चोट लग जाए, कि किसी का जूता खो जाए, कि किसी को छींक आ जाए, वह सब अखबार में इतिहास बन रहा है। इतिहास तो रोज बन रहा है। यही कल इतिहास हो जाएगा! इसमें बुद्धों का पता नहीं चलेगा। इसमें जिन्होंने जितना शोरगुल मचाया और जितना उपद्रव खड़ा किया, उनका पता चलेगा।
बुद्ध खड़े भी रहें तुम्हारे पास, तो तुम नहीं देख पाते, क्योंकि तुम पहचानोगे कैसे! इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लेना।
हमारी चाह, हमारी वासना ही पहचानती है। जिस चीज की वासना होती है, उसी
की पहचान होती है। अगर तुम घर की तलाश में हो, तो रास्ते से निकलते वक्त, सब जगह तुम्हें दिखाई पड़ेगा--कौन-कौन सा घर किराए पर है, कौन-कौन सा घर बिकाऊ है, कहां कहां "तख्ती" लगी है। अखबार तुम पढ़ोगे तो तुम्हें दिखाई पड़ेगा, कौन-कौन से घर बिक रहे हैं, कौन-कौन सा घर खाली है। तुम्हें घर की जरूरत नहीं है--अचानक ये सब खो जाएंगे। इनका तुम्हें पता ही नहीं चलेगा।
तुम वासना ग्रस्त हो। तुम्हारी जो वासना है, वह तुम्हें दिखाई पड़ेगी। बुद्ध होने की वासना जब तक तुम्हारे भीतर न हो, तब तक बुद्ध तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेंगे? जिस दिन यह वासना होगी, उस दिन तुम पाओगे कि जगत सदा बुद्धों से भरा है, कभी खाली नहीं रहा। सदा लोग रहे हैं--जिन्होंने "जाना" है। सदा लोग रहे हैं, जिन्होंने सत्य को जीया है। जिस दिन तुम्हारी प्यास जगेगी, अचानक वे तुम्हें दिखाई पड़ने लगेंगे।
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि अब कोई बुद्ध पुरुष नहीं हैं! मैं उनसे कहता हूंः "तुम जब भी होते, तभी ऐसा होता।"
मैं एक विश्वविद्यालय में पढ़ता था। तो उस विश्वविद्यालय के जो वाइस चांसलर थे, एक बड़े कीमती इतिहासशास्त्री थे, इतिहासज्ञ थे बड़े। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के आदमी थे। बुद्ध की जयंती पड़ी, तो वे बोले। तो उन्होंने कहाः "कई बार मेरे मन में ऐसा उठता है कि कितना बड़ा सौभाग्य होता, अगर मैं बुद्ध के समय में पैदा हुआ होता। उनके चरणों में जाकर बैठता।" तो मैंने उनसे खड़े होकर कहाः "ये शब्द आप वापस ले लें। क्योंकि मुझे पक्का पता है कि आप उस समय थे।" वे थोड़े चौंके। उन्होंने समझा कि मैं पागल हूं। मैंने कहाः "आप उस समय भी नहीं गए। और मैं आपसे कहता हूं, अभी भी बुद्ध पुरुष हैं। आप उनके पास अभी भी नहीं जा रहे।" थोड़ी देर वे सोचते रहे। उन्होंने कहाः "हो सकता है, यह बात ठीक है। क्योंकि जैसा मैं हूं, शायद मैं तब भी न जाता।"
तुम्हारी प्यास, तुम्हारा होना ही तुम्हें कहीं ले जाएगा। अगर तुम्हें प्यास है, तो तुम्हें मंदिर ही मंदिर दिखाई पड़ेंगे--जहां तुम जाओगे। और तुम्हारी प्यास नहीं है, तो तुम्हें वेश्यालय दिखाई पड़ सकते हैं। प्यासे को पानी दिखाई पड़ता है। जिसको प्यास नहीं, उसे पानी दिखाई नहीं पड़ता।

वह मंदिर दिखाई पड़ना बंद हो गया। और वहां बड़ी अनूठी घटनाएं घट रही थीं, जैसी कभी-कभी घटती हैं। वह मंदिर उस समय सारे जगत का केंद्र था जैसे। वहां अनेक लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हो रहे थे; सोइची के पास चुप होना सीख रहे थे। वहां समाधि के फूल खिल रहे थे। लेकिन हमारी नाक उस सुगंध को पकड़ नहीं सकती। वह सुगंध अपरिचित है। नाक के पास से गुजर जाती है, हमें उसकी कोई पहचान नहीं होती।
वहां दीये जल रहे थे--आत्मज्ञान के। लेकिन हमारी आंखें उसके लिए अंधी हैं; वह प्रकाश हमें दिखाई नहीं पड़ता। या वह प्रकाश इतना ज्यादा है कि उसे देखकर हमारी आंखें बंद हो जाती हैं। हम अपने अंधेरे में खो जाते हैं। उस प्रकाश को देखने के लिए आंखों की तैयारी चाहिए।

मैंने सुना है कि दो छोटे बच्चे--एक लड़की और एक उसका छोटा भाई--लड़की की उम्र रही होगी कोई आठ साल, छोटे भाई की कोई छह साल। वे दोनों रास्ते से गुजर रहे हैं--भरी दुपहरी में; तेज सूरज है। वह जो छोटा भाई है, दोनों आंखों को मींच कर बंद किए हुए है--जैसे अपने खिलाफ। खोलना चाहता है, लेकिन ताकत लगा कर बंद किए हुए है। और वह लड़की उसको हाथ पकड़ कर ले जा रही है।
एक स्त्री ने उन्हें देखा और उसने समझा, क्या गड़बड़ हो गई है! आंख को चोट लग गई है? इस बच्चे को क्या हुआ है? तो उसने पूछा, "क्या हुआ है इस बच्चे की आंख को? कोई चोट लग गई है?" तो उस लड़की ने कहा, "नहीं, चोट नहीं लगी है। ऐसा हम हमेशा ही करते हैं--जब भी मेटनी शो सिनेमा देखने जाते हैं।" तो उसने पूछा, "मैं समझी नहीं। मतलब क्या है?" लड़की बोली, "धूप बड़ी तेज है। और हमेशा ही जब हम मेटनी शो देखने जाते हैं, तो यह छोटा भाई ऐसे ही आंख बंद करके जाता है, तो फिर सिनेमा हाल में सीट का नंबर खोजने में सुविधा रहती है। यह वहां सीट का नंबर खोज लेता है। इतना प्रकाश हो, तो फिर अंधेरे में जाकर कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।"
जो व्यक्ति संसार में बहुत आंखें खोल कर चल रहा है, वह संसार की चकाचौंध से इतना परेशान हो जाता है कि अगर बुद्ध के पास जाएगा तो वहां इस तरह की चकाचौंध तो नहीं है। वहां तो बड़ा शांत प्रकाश है, जिसको आलोक कहते हैं--प्रकाश नहीं।
आलोक बड़ा मधुर शब्द है। उसमें चोट नहीं है। आलोक उस क्षण होता है, जब सुबह-रात जा चुकी होती है और सूरज नहीं निकला होता है। उस समय जो प्रभात का प्रकाश होता है, वह आलोक है। सूरज की त्वरा नहीं होती है उसमें, तेजी नहीं होती, रात का अंधेरा भी नहीं होता। सिर्फ हलकी आभा होती है।
तो जो व्यक्ति संसार की रोशनी से बहुत भरा है, बुद्ध के पास जाकर वह देख ही नहीं पाएगा। वहां उसे अंधेरा मालूम पड़ेगा।
अगर बुद्ध को देखना हो, तो बाजार में थोड़ी आंख बंद करके चलना पड़े; ताकि तुम जब बुद्ध के पास पहुंचो, तो तुम्हारी आंखें बाहर के प्रकाश से इतनी ज्यादा पीड़ित न हों, कि भीतर की आभा को पहचानना असंभव हो जाए।
घटनाएं वहां--तो फुकु मंदिर में, घटती थीं, लेकिन दिखाई नहीं पड़ती थीं। और अचानक लोगों ने एक दिन सुना कि मंदिर के घंटे फिर बज रहे हैं। तभी उन्हें याद आया कि मंदिर है। इतने दिन अंतराल पड़ गया था। शास्त्रों के सूत्र पढ़े जा रहे हैं। तभी उन्हें समझ में आया कि अरे! हम भूल ही गए थे कि पड़ोस में मंदिर है। वे भागे।
इतने दिन से वे मंदिर नहीं गए थे। जब कि मंदिर जाने योग्य था, तब वे चूक गए। और जब कि अब मंदिर के प्राण उड़ चुके थे, जब कि मंदिर अब खाली था, तब वे भागे।
ऐसा अक्सर हुआ है। हमेशा हुआ है ऐसा। और दुर्भाग्य है कि हमेशा ऐसा ही होगा।
जब बुद्ध पुरुष खो जाते हैं, तब तुम्हें खबर मिलती है। जब वे देह छोड़ देते हैं, तब तुम्हें स्मरण आता है। तब तुम रोते हो, छाती पीटते हो। जब वे थे, तब तुम्हें दिखाई नहीं पड़े या तुम्हें अगर मिल भी जाते--रास्ते पर, तो तुम बच कर निकल गए या तुमने तरकीबें खोज लीं या तुमने तर्क खोज लिए और तुमने अपना बचाव कर लिया।

बहुत कम लोग हैं, जो जीवित बुद्ध पुरुषों के पास पहुंच पाते हैं। जब
मर जाते हैं, तभी तुम्हें खबर मिलती है। तभी तुम्हें याद आती है कि अरे! कुछ था। लेकिन तब सार नहीं है।
लोग मंदिर की तरफ भागे। उन्हें याद आया कि हम इतने दिन से मंदिर भी नहीं गए। और मंदिर जाना रोज का नियम था। लेकिन घंटे ही बंद हो गए थे बजने; शोरगुल ही नहीं होता था, तो मंदिर भूल गया था। वहां जाकर शब्दों का, सूत्रों का पाठ सुनाई पड़ा। उन्हें फिर से लगा कि अब मंदिर जीवित हुआ!
आज मंदिर मर गया था। पर आज उन्हें लगा कि मंदिर जीवित हुआ! भीतर जाकर उन्होंने देखा कि सोइची ने संसार छोड़ दिया है। उसकी देह पड़ी थी। और उसके शव पर ही सूत्र पढ़े जा रहे थे, घंटे बज रहे थे। और जैसे ही सोइची जैसे व्यक्ति संसार छोड़ते हैं, वैसे ही जो भी वे चाहते थे, उससे उलटा होना तत्क्षण शुरू हो जाता है।
जीवन भर सोइची ने मंदिर के घंटे बंद करवा दिए थे। सूत्रों का पाठ बंद
हो गया था। मरते ही पाठ फिर शुरू हो गया, घंटे फिर बजने लगे! बुद्ध पुरुष जो भी जीवन भर करते हैं, उनके मरते ही तत्क्षण सब उलटा हम शुरू कर देते हैं। क्योंकि उनके मरने के बाद सब कारोबार हमारे हाथ में आ जाता है। अब मरा हुआ सोइची तो नहीं कह सकता है कि घंटे मत बजाओ। मरा हुआ सोइची तो नहीं कह सकता है कि सूत्रों का पाठ क्यों कर रहे हो! बंद करो। मरा हुआ सोइची तुम्हारे शोरगुल को बंद तो नहीं कर सकता!
और सारे धर्म इसी तरह निर्मित होते हैं। सभी धर्मों के नीचे सोइची जैसे पुरुषों की लाशें पड़ी हैं। और जो उन्होंने कहा था, ठीक उसके विपरीत परिणाम होते हैं।
बुद्ध ने कहाः "मेरी मूर्ति मत बनाना।" बुद्ध की मूर्तियां बनीं। उनकी पूजा होने लगी। बुद्ध ने कहाः "मेरे शब्दों को कंठस्थ मत करना।" बुद्ध का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि "मैं जो कहता हूं, तुम इसलिए मत मानना कि मैं बुद्ध पुरुष हूं। मैं जो कहता हूं, तुम इसलिए मत मानना कि शास्त्र सम्मत है। मैं जो कहता हूं, तुम इसलिए मत मानना कि मैं तर्क से प्रमाण देता हूं। मैं जो कहता हूं, उसे तुम तभी मानना, जब वह तुम्हारा अनुभव हो जाए। तुम्हारे अनुभव के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं है।"
लेकिन बुद्ध के वचनों को लोग कंठस्थ कर रहे हैं, दुहरा रहे हैं। कोई जरूरत भी नहीं है, उनका अर्थ जानने की! कोई प्रयोजन भी नहीं है कि उन शब्दों में क्या छिपा है। एक मृत प्रक्रिया शुरू होती है। और मृत प्रक्रिया बिल्कुल उलटी ले जाती है।
अगर तुम धर्मों को ठीक से समझना चाहो, तो तुम उन्हें उलटा कर लेना-- जैसे वे हैं। तब शायद तुम्हें ठीक बात समझ में आ जाए। जो भी हो रहा हो मंदिर में--सूत्रों के पाठ पढ़े जा रहे हों, तो समझना जरूर सूत्र के पाठ बंद कर देने से मंदिर का संबंध होगा। घंटे बज रहे हों, तो समझ लेना कि घंटे बंद कर देने से मंदिर का प्रयोजन होगा। जो भी हो रहा है, उससे उलटा शायद सही हो। लेकिन जो हो रहा है, वह तो सही नहीं है।
पर यह स्वाभाविक है। यह दुर्भाग्य है, लेकिन स्वाभाविक है। क्योंकि बुद्ध पुरुष के मरने के बाद कारोबार तो गैर-बुद्ध पुरुषों के ही हाथ में आएगा। इससे बचने का कोई उपाय भी नहीं है। बुद्ध पुरुष कभी होता है। हम सदा मौजूद हैं, इंतजाम करने को। जब तक वह जिंदा रहता है, तब तक भी इंतजाम करने की हम पूरी कोशिश करते हैं। सफल नहीं होते हैं, यह दूसरी बात है। लेकिन उसके हट जाने पर तो फिर हम पूरा इंतजाम करते हैं। और वह इंतजाम निश्चित ही उलटा होने वाला है। इसमें हमारा भी कोई कसूर नहीं है। यह सीधी सी बात है कि उलटा होगा ही।
बुद्ध ने कहाः "वेद व्यर्थ हैं।" महावीर ने कहाः "वेदों में कुछ भी नहीं है।" लेकिन महावीर के भक्त महावीर के वचनों को वेद जैसा ही पूज रहे हैं। वे समझ गए कि वेद में कुछ नहीं, वेद कचरा हैं, लेकिन महावीर के वचन वेद हैं। तो क्या फर्क पड़ा! महावीर ने जब कहाः "वेद व्यर्थ हैं", तो वे यही कह रहे थे कि ज्ञान-शब्द-शास्त्र--सब व्यर्थ हैं। लेकिन जैनों ने समझा, हिंदुओं के वेद व्यर्थ हैं। अपना शास्त्र, महावीर के वचन--वे कैसे व्यर्थ

हैं! हिंदू के वेद में भी महावीरों के ही वचन लिखे हुए हैं। वे भी बुद्ध पुरुषों के ही वचन हैं। अगर वे व्यर्थ हैं तो तुम्हारे बुद्ध पुरुषों के वचन सार्थक नहीं हो जाएंगे। लेकिन हमारा मोह है, ममता है।
तो हम वेद को फेंक सकते हैं। लेकिन जिसने समझाया "वेद को फेंको", हम उसके वचनों को वेद की जगह रख कर पूजा शुरू कर देते हैं।
अज्ञानी आदमी की बड़ी तकलीफ है; जैसे लकड़ी को पानी में डालो, तो वह तिरछी दिखाई पड़ने लगती है, ऐसे, जैसे ही बुद्ध पुरुषों के वचन अज्ञानी आदमी में प्रवेश करते हैं, एकदम तिरछे हो जाते हैं; तिरछे ही नहीं उलटे हो जाते हैं। उनका शीर्षासन लग जाता है।
सोइची जिंदगी में मौन था। उसका मंदिर मौन था, उसके शिष्य मौन थे। शब्द छोड़ दिए गए थे। भाषा का खेल बंद था। तर्क का कोई प्रश्न नहीं उठता था। कोई ऊहापोह नहीं चलता था, कोई विवाद नहीं था, कोई सिद्धांत नहीं थे। अचानक उसकी लाश पर सब सिद्धांत वापस लौट आए; शास्त्र पुनरुज्जीवित हो गए। सोइची मरा नहीं कि शास्त्र जीवित हो गए! सोइची मरा नहीं कि शब्द पुनरुज्जीवित हो गए। सोइची मरा नहीं कि मंदिर के घंटे बजने लगे!
यह निरंतर होता रहा है। इसे तुम भी स्मरण रखना। जितनी दूर तक बन सके, इसे दुबारा न होने देना। जितनी देर तक स्मरण रह सके, इसे स्मरण रखना। लेकिन बड़ा कठिन है। करीब-करीब असंभव है। क्योंकि मन की प्रक्रिया के प्रतिकूल है। मन पकड़ना चाहता है। मौन को पकड़ा नहीं जा सकता। शब्द को पकड़ा जा सकता है।
मन जब सोइची मर जाएगा, तो सोइची की जगह कुछ रखना चाहेगा। क्योंकि खाली जगह अखरती है। तो सोइची के शब्द रख लेगा। सूत्र बनाएगा। पाठ करेगा। कंठस्थ करेगा; स्मरण करेगा। ध्यान भर चूक जाएगा। शायद यह भी हो सकता है कि जो वह सूत्र का पाठ करे, उसमें सोइची ने यही कहा हो कि ध्यान करो--ध्यान करो--ध्यान करो। और वह उसका पाठ करेगा।
अभी एक युवक जापान से आया है। खोजी है, सरल है। अमेरिका से जापान गया-- झेन सीखने। अब तो झेन को जापान में खोजना भी मुश्किल है। ध्यान को कहीं भी खोजना मुश्किल है। वह सभी जगह से खो जाता है। वह फूल इतना असंभव है कि कभी- कभी खिलता है, फिर खो जाता है। और उसके बीज पड़ते हैं जमीन में और फिर दुबारा नहीं उग पाते।
अब तो जापान में भी झेन के नाम पर धंधा है।
वह युवक मोनेस्टरी में गया और वहां उसने दीक्षा ली। और उसने पढ़ा तो किताबों में यह लिखा था कि सब किताबें व्यर्थ हैं। झेन का प्राथमिक सूत्र यही है कि सब शास्त्र, सब शब्द व्यर्थ हैं। और शून्य होना एकमात्र प्रक्रिया है। लेकिन वहां जब मोनेस्टरी में दीक्षा ली, तो बुद्ध के जो वचन हैं, वे उसको कंठस्थ करने को दिए गए। वह थोड़ा हैरान हुआ। फिर भी उसने सोचा कि जो कहा जाए, उसे करके देखना चाहिए। छह महीने, साल भर बीत गया। और जापानी भाषा में बुद्ध का पूरा एक शास्त्र उसे याद करवा दिया। वह उसका अर्थ भी नहीं जानता! वह उसे बिल्कुल तोते की तरह दुहरा देता है।
वह जब यहां मेरे पास आया, तो मैंने उससे पूछा कि "तू क्या सीख कर लौटा है?" उसने कहाः "लोटस सूत्र। वह मैंने कंठस्थ कर लिया है।" मैंने पूछाः "तुझे उसका अर्थ पता है?" "अर्थ कहां से मुझे पता होगा, वह जापानी में है", उसने कहा। तो मैंने उससे कहाः "तू उसे दुहरा।" वह फौरन खड़ा हो गया। उसने आंखें बंद कर लीं और पूरा लोटस--सूत्र दुहराने लगा। उसे शब्दों का कोई पता नहीं है--उसे अर्थ का पता नहीं है। मगर उसे बिल्कुल कंठस्थ है।
मैंने उससे कहाः "यह अच्छा है। मैं एक ध्यान करवाता हूं--जिबरिश, उसके काम आएगा। यह अर्थहीन बकवास है। और तू हैरान होगा कि इस पूरे सूत्र में बुद्ध यही दुहराते हैं कि सूत्रों में कुछ भी नहीं है, शब्दों में कुछ भी नहीं है। उन्हें छोड़ना। उन्हें पकड़ना मत। और किसी ने तुझे यही पकड़ा दिया!" यही मजे का मामला है। हम "ध्यान करो, ध्यान करो, ध्यान करो"--इस शब्द को
भी कंठस्थ कर ले सकते हैं। फिर हम सुबह रोज बैठ कर सोच सकते हैं, विचार कर सकते हैं--ध्यान करो, ध्यान करो, ध्यान करो! और ध्यान हम कभी न करेंगे। क्योंकि यह जो दोहराना है--यह ध्यान में बाधा है।

सभी मंदिर सोइची की लाशों पर खड़े हैं। सभी शास्त्र सोइची की लाशों पर बने हैं।
इस छोटी सी कहानी को ठीक से समझना और जीवित सोइची का अनुकरण करना, जीवित बुद्ध का अनुकरण करना। उनके मरने के बाद क्या उनके चारों तरफ बन गया है, उस जाल से बचना। वही जाल हिंदू धर्म है, वही जाल जैन धर्म है, वही जाल ईसाइयत है। उस जाल को फाड़ना, अलग करना। पकड़ना जीसस को, खोजना--जीसस को, सोइची को, बुद्ध को। तब तुम पाओगे कि वहां सिवाय मौन के और कोई संदेश नहीं है।
तुम्हारे मन के सब घंटे बंद हो जाएं, तुम्हारे मन में चलते सब सूत्र-पाठ बंद हो जाएं, तभी तुम्हारे मन के भीतर मंदिर का उदय होगा। तभी तुम्हारे भीतर फूल खिलेंगे--समाधि के। तभी तुम्हारे भीतर दीये जलेंगे-- आत्मज्ञान के। वह दीया जल ही रहा है। वह फूल खिल ही रहा है। तुम्हें उसका कोई स्मरण नहीं है। तुम किसी पाठ में खोए हुए हो।
रामतीर्थ एक कहानी कहते थे। वे कहते थेः एक प्रेमी प्रतीक्षा कर रहा है, अपनी प्रेयसी की। वर्षों से दूर चला गया है। न प्रेयसी आ सकी उसके गांव तक, न वह जा सका वापस। बस, पत्रों का लेन-देन है। पत्र लिख देता है, पत्र आ जाते हैं। पत्रों से क्या पता चलता है! पत्रों से कोई प्रेम घट सकता है, कि पत्रों से कोई प्रेम की चरमता, कोई उत्कर्ष आ सकता है? लेकिन पत्र मन को उलझाए रखते हैं। भरे रखते हैं।
राह देखता रहता है पत्र की, पत्र लिख देता है। वर्ष पर वर्ष बीतते जाते हैं। अब तो उसे याद भी नहीं आता कि प्रेयसी का चेहरा कैसा है! अब तो उसे यह भी डर है कि वह जाएगा तो प्रेयसी उसे पहचान पाएगी या नहीं। और उसे एक नया भय भी समा गया है। क्योंकि वह प्रेयसी को जो पत्र लिखता है, वे सच्चे नहीं हैं। जो बातें उसे ख्याल में आती हैं, वह लिखता है--अच्छी-अच्छी बातें लिखता है। लेकिन वे सच नहीं हैं।
वह अब भी कहता है कि तुम्हारे बिना एक क्षण जीना मुश्किल है। लेकिन वह
जी रहा है। कुछ भी मुश्किल नहीं है। वह लिखता है कि तुम्हीं मेरे सपनों में छाई रहती हो। लेकिन वह देखता है कि अब तो उसको प्रेयसी का चेहरा भी ठीक से याद नहीं आता, सपनों में आने का कोई सवाल नहीं। तब एक डर उसके मन में पकड़ता है कि प्रेयसी के पत्र जो उसके लिए आते हैं, उनमें भी ये ही बातें होती हैं। कहीं यही हालत, जो मेरी है, वह प्रेयसी की न हो!
पत्र सब झूठे हो जाते हैं। आज नहीं कल शब्द झूठे हो जाएंगे। जो शब्दों
पर बहुत निर्भर रहेगा, वह झूठ में खोता जाएगा।
और शब्द बड़े चालाक हैं। जब तुम लिखते हो, तब भूल ही जाते हो। लिखते वक्त तुम्हें ऐसा लगता है कि बड़ा ठीक है। शायद लिखते वक्त तुम जान कर धोखा भी नहीं देते। तुम किसी को पत्र लिखते हो और लिखते हो कि काश, तुम आ जाओ और कभी यहां कुछ देर रहो, तो बड़ा सुख हो। और जिस दिन वह मेहमान सूटकेस लिए घर उतरता है, उस दिन तुम्हारे चेहरे पर कोई सुख नहीं दिखाई पड़ता। और जब तुमने लिखा था, तो जान कर तुमने झूठ लिखा हो, ऐसा नहीं है। जब तुमने लिखा था, तो तुमने सहजता से ही लिखा था।
शब्द झूठे हैं। उनके झूठ लिखने की जरूरत नहीं है, शब्दों के होने में झूठ है। उनसे तुम कविताएं बना सकते हो और कविताएं बना कर तुम खुद ही सम्मोहित हो सकते हो।
तो वह प्रेमी डरने लगा था कि जो मैं लिखता हूं, कहीं ऐसा ही मेरी प्रेयसी तो नहीं लिखती है। हो सकता है, उसको भी मेरा चेहरा भूल गया हो।
और एक दिन वह पत्र लिख रहा है! वह लंबा लिखता जा रहा है, और प्रेयसी आ
गई है। उसने दरवाजा खोला तो दरवाजा अटका था। प्रेमी को उसने देखा कि वह पत्र लिखने में लीन है, दीये के पास झुका है, तो वह द्वार पर ही बैठ गई। समझा कि कोई जरूरी काम कर रहा है, वह पूरा कर ले, तो फिर बाधा डाले। प्रेयसी को ही पत्र लिख रहा है और प्रेयसी द्वार के सामने बैठी है। वह आंख नहीं उठाता है। प्रेमियों के पत्र लंबे होते चले जाते हैं। दस-बारह पेज लिख कर वह आंख उठाता है, तो उसे भरोसा नहीं आता। वह आंख मीड़ कर देखता है। तो भी उसे भरोसा नहीं आता है। वह कहता हैः "क्या?" वह थोड़ा डरता भी है।

क्योंकि कोई अपेक्षा ही नहीं है कि प्रेयसी यहां आ जाएगी। और वह प्रेयसी कहती हैः "तुम इतने भयभीत क्यों दिखाई पड़ रहे हो! तुमने मुझे पहचाना नहीं? मैं मौजूद हूं! तुम न आ सके; मैं थक गई, तो मैं खुद चली आई।"
और वह प्रेमी रोने लगता है और कहता हैः "तूने मुझे चौंकाया क्यों नहीं! पहले ही तूने क्यों नहीं कहा? घंटों से तू बैठी है और तुझे पत्र लिख रहा हूं!"
रामतीर्थ कहते थेः परमात्मा के सामने जब हम शब्द लेकर खड़े रहते हैं,
तो हमारी हालत यही है। वह मौजूद है--घंटों से नहीं, सदा से। वह द्वार पर ही बैठा है और हम प्रार्थना कर रहे हैं!
प्रार्थना-पत्र लिखने जैसी है, ध्यान--उसको देखने जैसा है। ध्यान का अर्थ हैः बंद करो शब्दों की बकवास। सीधा देखो। वह दरवाजे पर मौजूद है। वह सदा से मौजूद है। वह कभी गया ही नहीं है--वहां से। और तुम बड़ा शोरगुल मचा रहे हो! घंटा बजा रहे हो। धूप-दीप जला रहे हो। बड़ी प्रार्थना कर रहे हो। और उसी की वजह से तुम चूक रहे हो, देख नहीं पा रहे हो। और तुम बड़े प्रसन्न हो कि परमात्मा को पत्र लिख रहे हो!
प्रेम की पाती जो तुम लिख रहे हो, यही तुम्हारी बाधा है। तुम कृपा करो। व्यस्तता छोड़ो। यह घंटनाद बंद करो। ये पूजा-अर्चना हटाओ, और देखोः वह सामने मौजूद है। वह सदा से मौजूद है।
प्रार्थना और ध्यान का यही अंतर है। प्रार्थना फिर भी शब्द दुहराना है। ध्यान-शब्द का छोड़ देना है। इसलिए जो धर्म प्रार्थना पर खड़े हैं, वे ध्यान को समझ ही नहीं पाते। और जो धर्म ध्यान पर खड़े हैं, वे हैरान होते हैं कि प्रार्थना से कोई कभी कैसे पहुंचेगा! ईसाइयत, हिंदू, यहूदी--सब प्रार्थना पर खड़े हैं। जैन, बौद्ध, सूफी, हसीद--ध्यान पर खड़े हैं। और दोनों के बीच बड़ी दरार है।
लेकिन जब मैं ऐसा कहता हूं कि जैन, बौद्ध, सूफी, हसीद--ध्यान पर खड़े हैं, तो तुम यह मत समझना कि आज के जैन ध्यान कर रहे हैं। वे महावीर के सामने प्रार्थना कर रहे हैं--जिसने उन्हें ध्यान समझाया। बौद्ध हैं--वे बुद्ध के सामने थाली लिए खड़े हैं; आरती उतार रहे हैं। जिसने उन्हें कहा कि ध्यान करो, वे उसकी प्रार्थना कर रहे हैं। वे कहते हैं, गजब किया तुमने कि तुमने ही ध्यान समझाया। हम कैसे तुम्हारे उऋण हों! हम तुम्हारी प्रार्थना कर रहे हैं।
और तुम यह मत समझना कि जब मैं कहता हूंः हिंदू, ईसाई, मुसलमान-- प्रार्थना के धर्म हैं, तो कृष्ण, क्राइस्ट या मोहम्मद प्रार्थना के लोग थे। वे ध्यान के ही लोग थे। उन्होंने ध्यान करके ही जाना था--परमात्मा को। और जब परमात्मा को जाना, तो धन्यवाद दिया। उनकी प्रार्थना धन्यवाद थी। वह उन्होंने धन्यवाद दिया है। जो मौन से जाना है, उसे उन्होंने अनुग्रह में प्रकट किया है। वे नाचे, आनंदित हुए, प्रफुल्लित हुए और उन्होंने अस्तित्व को धन्यवाद दिया है।
बुद्ध, महावीर धन्यवाद भी नहीं देते। वे ध्यानस्थ हो गए हैं। ध्यान
ही उनका अनुग्रह भाव है। वे धन्यवाद भी नहीं देते। वे उतना भी शब्द का उपयोग नहीं करते। लेकिन क्राइस्ट, जरथुस्त्र, मोहम्मद, मूसा--धन्यवाद देते हैं।
यह व्यक्तियों पर निर्भर करेगा। धन्यवाद तुम दे सकते हो। चाहो, न दो। परमात्मा की कोई अपेक्षा नहीं है कि तुम धन्यवाद दो। दो या न दो--यह तुम पर निर्भर है। तुम्हारा ध्यान ही धन्यवाद हो जाएगा। या तुम धन्यवाद देने के लिए प्रार्थना कर सकते हो। लेकिन प्रार्थना को ध्यान मत बनाना।
प्रार्थना ध्यान नहीं बन सकती। शून्य से ही पहुंचा जाता है।
सोइची के मंदिर की तलाश करना। और अगर वहां घंटनाद हो रहा हो, शास्त्र
का पाठ हो रहा हो, तो समझना कि सोइची मर चुका है। और किसी और जीवित मंदिर की खोज करनी है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
सोलहवां प्रवचन

ब्राह्मणत्व का निखार--प्रामाणिकता की आग में

एक किशोर, ऋषि हरिद्रुमत गौतम के आश्रम में पहुंचा था। वह सत्य को जानना चाहता था। ब्रह्म के लिए उसकी जिज्ञासा थी। उसने ऋषि के चरणों में सिर रख कर कहा थाः "आचार्य, मैं सत्य को खोजने आया हूं। मुझ पर अनुकंपा करें और ब्रह्म-विद्या दें। मैं अंधा हूं और आंखें चाहता हूं।"
उस किशोर का नाम था--सत्यकाम।
ऋषि ने उससे पूछाः "वत्स, तेरा गोत्र क्या है? तेरे पिता कौन हैं? उनका नाम क्या है?"
उस किशोर को अपने पिता का कोई ज्ञान न था, न ही गोत्र का पता था। वह अपनी मां के पास गया और उससे पूछ कर लौटा। और उसकी मां ने उससे जो कहा, उसने जाकर ऋषि को कहा।
वह बोलाः "भगवन, मुझे अपने गोत्र का ज्ञान नहीं है। न ही मैं अपने पिता
को जानता हूं। मेरी मां को भी मेरे पिता का ज्ञान नहीं है। उससे मैंने पूछा तो उसने कहा कि युवावस्था में वह अनेक भद्र पुरुषों के साथ रमती और उन्हें प्रसन्न करती रही। उसे पता नहीं है कि मैं किससे जन्मा हूं। मेरी मां का नाम जाबाली है। इसलिए मैं सत्यकाम जाबाल हूं। ऐसा ही आपसे बताने को भी उसने कहा है।"
हरिद्रुमत इस सरल सत्य से अभिभूत हो उठे। उन्होंने उस किशोर को हृदय
से लगा लिया और बोलेः
"मेरे प्रिय, तू निश्चय ही ब्राह्मण है। सत्य के लिए ऐसी आस्था ही ब्राह्मण का लक्षण है। तू ब्रह्म को जरूर ही पा सकेगा; क्योंकि जिसमें स्वयं के प्रति सच्चा होने का साहस है, सत्य स्वयं ही उसे खोजता हुआ उसके द्वार आ जाता है।"
ओशो, "मिट्टी के दीये" में लिखित उपनिषद की इस कथा को हमें समझाने की कृपा करें।

सत्य जिसे जानना हो, उसकी पहली शर्त, उसकी पहली भूमिका क्या है? सत्य
की यात्रा पर पहला कदम--अपने प्रति सत्य होना है।
तुम जिसे जानने निकले हो, उसे तुम "उस जैसा" होकर ही जान सकोगे। और अगर तुम अपने प्रति ही असत्य हो--तुम अपने होने के प्रति ही झूठे हो--तुम्हारे भीतर ही अप्रामाणिकता है--तो सत्य से तुम्हारा संबंध कैसे तय होगा? कैसे निर्धारित होगा?
सत्य को खोजने बहुत लोग जाते हैं, लेकिन प्रामाणिक होने की चेष्टा बहुत कम लोग करते हैं। जो सत्य को खोजने जाते हैं, वे कभी न पा सकेंगे, लेकिन जो "सत्य होने" की चेष्टा करते हैं, वे सदा पा लेते हैं।
सत्य को खोजने कहीं जाना नहीं है; स्वयं को असत्य होने से बचाना ही उसकी खोज है।
कोई सत्य कहीं छिपा नहीं है--पहाड़ों में, कंदराओं मेंः तुम असत्य हो, इसलिए तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा है। असत्य की आंखें सत्य को देख भी कैसे सकती हैं! तुम सत्य होते ही उसे जान लोगे। रोएं-रोएं को वही स्पर्श कर रहा है। श्वास-श्वास में उसी की धुन है। सब ओर उसी ने तुम्हें घेरा है। लेकिन तुम असत्य की एक रेखा बनाकर उसके भीतर खड़े हो। तुमने असत्य से अपने को ढांक लिया है। सत्य तो अनढंका है; तुम ढंके हुए हो। सत्य को खोलने की भी कोई जरूरत नहीं है; तुम बंद हो। इस फासले को, फर्क को--ठीक से समझ लो।
सत्य के साथ कुछ भी नहीं करना है। जो कुछ भी करना है, वह तुम्हें अपने साथ ही करना है। और सबसे पहली जरूरत है कि तुम अपने संबंध में जो भी सत्य है, उसे स्वीकार करने में समर्थ हो जाओ।
तुम बेईमान हो और ईमानदारी की खोज करोगे! कैसे यह होगा? बेईमान आदमी कैसे ईमानदारी की खोज करेगा? उसकी खोज में भी बेईमानी होगी; वह खोज में भी धोखा देगा।

मैंने सुना हैः एक आदमी ने आठ महीने तक किराया नहीं चुकाया--किसी मकान का, जिसमें वह रह रहा था। आखिर मकान मालिक परेशान हो गया। और एक दिन सुबह आकर उसने कहा, "अब बहुत हो गया। अगर किराया नहीं चुका सकते हो, तो अब तुम मकान छोड़ दो।" उस आदमी ने कहा, "क्या आठ महीने का किराया बिना दिए चला जाऊं! यह नहीं होगा। चाहे आठ साल चुकाने में क्यों न लग जाएं, लेकिन किराया चुकाकर ही जाऊंगा। तुमने मुझे समझा क्या है?"
ऊपर से तो दिखता है, यह आदमी बड़ी प्रामाणिकता की बात कर रहा है, लेकिन भीतर गहरे में यह आठ साल मुफ्त रहने का इंतजाम कर रहा है। यह आठ साल बाद कहेगा कि "अस्सी साल भले लग जाएं, लेकिन बिना किराया चुकाए क्या मैं जा सकता हूं! तुमने मुझे समझा क्या है?"
यह भी भलीभांति जानता है। लेकिन यह जो प्रामाणिक होने की चेष्टा कर रहा है, उस चेष्टा में भी इसकी अप्रामाणिकता तो छिपी ही रहेगी। अप्रामाणिक आदमी कुछ भी करे, उसमें अप्रमाण होगा। वह सच भी तभी बोलेगा, जब सच का उपयोग झूठ की तरह हो सकता हो। वह सच भी तभी बोलेगा, जब सच से भी वह तुम्हें नुकसान पहुंचा सकता हो। और तुम्हें याद हैः तुम बहुत बार सच बोलते हो, लेकिन वह तुम तभी बोलते हो, जब सच से भी तुम दूसरों की हानि कर सको।
हिंसक आदमी सत्य का उपयोग भी हथियार की तरह करता है। यह स्वाभाविक है। क्योंकि अगर तुम्हारा व्यक्तित्व हिंसक है, तो तुम अहिंसा भी साधोगे, तो उसमें हिंसा प्रवेश कर जाएगी। साधेगा कौन? क्रोधी आदमी अगर अक्रोध साधेगा, तो उसकी अक्रोध की साधना में भी क्रोध का ही बल होगा।
पहली बात ठीक से समझ लेनी जरूरी है कि बेईमान को ईमानदार बनने की सीधी कोई सुविधा नहीं है। पहले तो बेईमान को अपनी बेईमानी स्वीकार करनी होगी। उस स्वीकार में ही आधी बेईमानी तिरोहित हो जाती है, उसका बल खो जाता है। बेईमान सदा इनकार करता है कि "मैं और बेईमान! क्या समझा है तुमने मुझे?" इस इनकार में ही बेईमानी की ताकत छिपी है। यह इनकार ही बेईमान का गढ़ है। और वह तुमसे इनकार नहीं करता, वह अपने से भी इनकार करता है कि "मैं और बेईमान? कभी-कभी जरूरत पड़ जाती है, बात और है। ऐसे मैं आदमी ईमानदार हूं।" बेईमान का भी मन राजी नहीं होता--यह स्वीकार करने को कि "मैं बेईमान हूं।" मानता तो वह भी अपने को ईमानदार है। ऐसे कभी-कभी परिस्थिति या संयोग के कारण बेईमान हो जाता है!
क्रोधी आदमी भी यही नहीं समझता है कि मैं क्रोधी हूं। वह भी समझता है
कि कभी-कभी अवसर ऐसे आ जाते हैं कि क्रोध करना पड़ता है। क्रोधी मैं हूं नहीं। और जो आदमी समझता हैः "मैं क्रोधी नहीं हूं", वह क्रोध को बदलेगा कैसे? बदलेगा कौन?
पहली बात जरूरी है कि तुम जो हो--बुरे-भले--बिना निर्णय के उसे स्वीकार
कर लेना। निर्णय लिया कि अस्वीकार शुरू हो जाता है। तुम निर्णय भी मत करना। तुम सिर्फ खोज-बीन करना कि तथ्य क्या है? मैं बेईमान हूं? चोर हूं? झूठा हूं?
अगर तुमने इतना भी कहा कि "झूठा होना बुरा है", तो तुम पूरा स्वीकार न
कर पाओगे। क्योंकि बुरा कैसे स्वीकार करोगे? अगर तुमने निंदा की कि बेईमानी पाप है, तो तुम फिर बेईमानी को भी स्वीकार न कर पाओगे। क्योंकि पाप को कैसे कोई स्वीकार कर सकता है! तुम निर्णय मत लेना, निंदा मत करना। पहले सिर्फ तथ्यों की खोज करनाः "क्या है?" और जो हो, उसे स्वीकार कर लेना। बदलने की जल्दी मत करना; क्योंकि बदलना बचने की तरकीब है।
बेईमान जिंदगी भर ईमानदार होने की कोशिश करता रहता है और बेईमान ही मरता है। हिंसक अहिंसक होने की जन्मों से कोशिश कर रहे हैं और अभी तक अहिंसक नहीं हो पाए हैं! वे कभी हो भी नहीं पाएंगे। क्योंकि वे पहला कदम ही चूक गए। और जो पहला कदम चूक गया, उसकी मंजिल कैसे आएगी? उसकी यात्रा ही शुरू नहीं हुई।
पहला कदम हैः प्रामाणिक स्वीकृति। प्रामाणिक स्वीकृति का पहला हिस्सा हैः तुम निंदा मत करना; तुम बुरे-भले का विचार मत करना। तुम पहले तो खोज लेना "क्या है।" तुम अपनी तस्वीर को नग्न देख लेना। तुम जल्दी से यह मत

कहना कि "यह बुरा है।" क्योंकि जिसको भी तुम बुरा कह देते हो, उसको तुम अपने से ही छिपाने लगते हो; दूसरों से ही नहीं--अपने से भी छिपाने लगते हो। और जब तुम अपने से ही छिपाने लगते हो, तो अप्रामाणिक हो जाते हो। वहीं तुम्हारी आथेंटिसिटी खो जाती है। और जब तुम प्रामाणिक नहीं, तो सत्य से संबंध कैसे होगा? सत्य के द्वार तुम्हारे लिए बंद ही रहेंगे; क्योंकि तुम ही सत्य के लिए बंद हो।
दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि जो तुम अपने तई स्वीकार करो, उसे तुम दूसरों के प्रति भी प्रकट कर देना। प्रकट करना एक बड़ी कला है। खुद स्वीकार करते, आधी ताकत समाप्त हो जाती है। अगर तुम बेईमान हो और तुमने खुद स्वीकार कर लिया कि "मैं बेईमान हूं" तो तुम पाओगे--आधी ताकत बेईमानी की खो गई। अब उतना आसान न रहा--बेईमान होना। पर आधी ताकत अभी भी बची है, क्योंकि दूसरों को पता नहीं है। तुम दूसरों के सामने भी प्रकट कर देना कि तुम बेईमान हो।
तुम झूठा सम्मान मत मांगना। झूठे सम्मान का मूल्य भी क्या है? वह कचरा है। तुम कह देना वह--तुम जो हो। अपमान मिले, निंदा मिले; स्वीकार करना। वह तुम्हारा भाग्य है। वह बेईमानी की नियति है। अगर तुम चुपचाप स्वीकार कर लो--सबके सामने--"तुम जैसे हो" तो बची आधी ताकत भी खो जाएगी। यह स्वीकार बड़ा क्रांतिकारी है। अचानक तुम पाओगे कि तुम सबल हो गए। अब बेईमान होने की कोई जरूरत न रही। अचानक तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर एक नया बीज टूटा, एक नया अंकुर आया है--जो अब तक छिपा था भूमि में; इस स्वीकृति की वर्षा के नीचे अंकुरित हो उठा था। तुम पाओगेः ईमानदारी के पौधे की बढ़ती शुरू हो गई है। बेईमानी गई।
जिसे तुम छिपाते हो, वह बचता है। और तुम पाप को छिपाते हो, इसलिए पाप बचता है। जीसस ने इसी प्रक्रिया को कनफेशन कहा है--स्वीकार। तुम जैसे हो, वैसे ही तुम स्वीकार कर लेना। लेकिन हम तर्क खोजते हैं, हम तरकीबें खोजते हैं, हम बचने के मार्ग खोजते हैं, हम रेशनेलाइज करते हैं। हम कहते हैं कि आदमी तो मैं अच्छा हूं, लेकिन स्थिति ऐसी आ गई कि मुझे बुरा व्यवहार करना पड़ा। और अगर मैं बुरा व्यवहार न करता, तो दूसरों का बुरा होता।
तुम आदमी क्रोधी हो, अपने बच्चे को पीटते हो, लेकिन तुम समझाते हो अपने को कि "मैं पिता हूं और प्रेमी हूं। पीटता हूं बच्चे को--इसलिए--उसी के हित में। नहीं पीटूंगा, बिगड़ जाएगा।" पूरा इतिहास कहता है कि पीट-पीट कर एक भी बाप बच्चे को बचा नहीं पाया। लेकिन तुम अंधे हो--इतिहास की तरफ। तुम वही दलील दिए जा रहे हो, जो सब बापों ने दिए! और सब बाप अपने बेटों को बिगाड़ गए।
क्रोध से कभी कोई बदला है? दुष्टता से कभी कोई क्रांति घटित हुई है? क्रोध तो बच्चे के अहंकार को भी जगाता है। और बच्चा भी भीतर निर्णय लेता है कि "ठीक है, पीट लो, मार लो। लेकिन तुम देखोगे कि तुम मुझे बदल नहीं पाओगे।" और तुम जो चाहते हो, उससे विपरीत वह करता है। करना ही पड़ेगा। अगर वह उससे विपरीत न करे, तो वह खड़ा ही न हो सकेगा--अपने पैरों पर। वह बगावत न करे, तो उसकी अपनी अस्मिता कहां खड़ी होगी? उसका अपना अहंकार कहां बचेगा? लेकिन बाप समझाता है कि "मैं बच्चे के ही हित में कर रहा हूं।" ये तरकीबें हैं--अपने भीतर झूठ, बेईमानी, क्रोध को बचाने की। इन तरकीबों को तोड़ना, तब तुम प्रामाणिक हो पाओगे। और प्रामाणिकता से बड़ा कोई गुण नहीं है।
ध्यान रहेः प्रामाणिकता का संबंध तुम्हारे ईमानदार होने से नहीं है। प्रामाणिकता का संबंध तुम्हारे अचोर होने से नहीं है; अहिंसक होने से नहीं है। प्रामाणिकता का संबंध इस बात के स्वीकार से है कि तुम जो भी हो-- अच्छे-बुरे, चोर-अचोर, साधु-असाधु--तुम उसे स्वीकार करते हो, तुम उसे छिपाते नहीं। तुम वस्त्रों में अपने को ढांकते नहीं। तुम नग्न खड़े हो। तुम जैसे हो, वैसे ही तुमने अपने को खोल दिया है।
यह प्रामाणिक आदमी है। और ऐसे प्रामाणिक आदमी को सत्य को खोजने कहीं जाना नहीं पड़ेगा; सत्य उसे खोजता हुआ आ जाएगा। ऐसे प्रामाणिक आदमी के जीवन में ऐसी आग जलती है कि सब कचरा जल जाता है। प्रामाणिकता अग्नि है। सब

बेईमानी, सब चोरी, सब झूठ जल जाता है। उठता है--एक सरल, सौम्य, विनम्र जीवन-- वह--जिसे हम "धार्मिक आदमी" कहते हैं।
अब इस कहानी को समझने की कोशिश करें। यह मधुरतम कथाओं में से एक है। उपनिषदों का जब पहली बार पश्चिम में अनुवाद हुआ, तो पश्चिम के विचारकों को लगा कि उपनिषद नीति की शिक्षा नहीं देते! टेन कमांडमेंटस, दस आज्ञाओं जैसी कोई बात उपनिषद में नहीं है। चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, झूठ मत बोलो, पर स्त्री को आकांक्षा से मत देखो--ऐसी कोई आज्ञाएं उपनिषद में नहीं हैं। और पश्चिम तो सिर्फ बाइबिल से परिचित था। बाइबिल ही धर्म-शास्त्र है। उसी एक किताब को वे जानते थे। और अगर बाइबिल ही धर्म-शास्त्र का नमूना है, आदर्श है, तो उपनिषद को धर्म-शास्त्र नहीं कहा जा सकता। क्योंकि कहां हैं--आज्ञाएं! हालांकि उन आज्ञाओं को कोई मानता नहीं है। लेकिन उनके आधार पर लगता है कि बाइबिल धार्मिक है। तो फिर उपनिषद को क्या कहें? --जहां कुछ भी नहीं कहा है कि क्या करो। ब्रह्म की चर्चा है, लेकिन बेईमानी छोड़ने की चर्चा नहीं है। क्योंकि उपनिषद मानते हैंः "सवाल बेईमानी का नहीं है, प्रामाणिक होने का है।"
ईमानदार भी अप्रामाणिक हो सकता है। ईमानदारी भी सौदा हो सकती है। तुम इसलिए ईमानदार हो सकते हो कि स्वर्ग की आकांक्षा है; तब तुम गहरे में तो बेईमान हो। तुम स्वर्ग को खरीदने चले हो। तुम इसलिए सच्चे हो सकते हो-- सत्य बोल सकते हो कि इससे परमात्मा मिलेगा। तो सत्य का उपयोग तुम सिक्कों की तरह कर रहे हो; परमात्मा को खरीदने का इरादा है। धार्मिक आदमी परमात्मा को खरीदने नहीं चला है; न ही वह परमात्मा के दरवाजे पर सिक्के फेंकेगा कि "ये रहे सिक्के। अब मुझे स्वर्ग का राज्य चाहिए।" यह तो संसार का ही ढंग है।
तुम्हारी नीति भी सांसारिक सिक्के बन जा सकती है, बन गई है। इसलिए पश्चिम को भरोसा ही नहीं आता कि बुद्ध जैसा व्यक्ति या महावीर जैसा व्यक्ति कैसे धार्मिक हो सका! क्योंकि न तो कोई मोक्ष है--बुद्ध के लिए; न कोई परमात्मा है, न कोई परलोक है, न कोई स्वर्ग है--जो मिलना है। और फिर भी बुद्ध ईमानदार हैं, अहिंसक हैं, करुणा से भरे हैं। पश्चिम समझ ही न पाया। ये सिक्के तो आदमी इसीलिए इकट्ठे करता है, ताकि स्वर्ग खरीद सके! और स्वर्ग है ही नहीं, तो सिक्के किसलिए इकट्ठे कर रहे हो? पश्चिम समझ न पाया बुद्ध की आंतरिक कीमत को।
बुद्ध कहते हैंः "सत्य का आनंद अपने में ही है; सत्य का स्वर्ग सत्य में ही है; उसके पार कोई स्वर्ग नहीं है।" सत्य कोई साधन नहीं है कि तुमने सत्य बोला कि तुम स्वर्ग में प्रवेश कर गए। यह कोई सिक्का नहीं है। ईमानदार जानता है--उस आनंद को, जो स्वर्ग का है। ईमानदारी कोई हिसाब-किताब नहीं है कि तुमने पहले ईमानदारी की, फिर पीछे तुम हाजिर हुए--स्वर्ग के दरवाजे पर और तुमने कहा कि "यह रही मेरी ईमानदारी।"
मैंने सुना है, एक आदमी मरा; वह एक बड़ा धनपति था--पर बड़ा कृपण। जैसा कि अक्सर हो जाता है। असल में कृपण हुए बिना धनपति होना बहुत मुश्किल है। इकट्ठा ही कैसे करोगे, अगर कंजूस न होओगे? जिंदगी में कभी उसने कोई दान नहीं किया। सिर्फ एक बार एक पैसा उसने एक बूढ़ी औरत को दिया था।
स्वर्ग के दरवाजे पर--ईसाइयों की स्वर्ग की धारणा के अनुसार--सेंट पीटर ने उसे रोका और कहा, "रुको। हम निर्णय करें। तुम्हारा हिसाब-किताब देखना पड़ेगा कि तुम्हें कहां भेजना है। तुमने कभी कोई पुण्य कार्य किया?" उसने कहा, "हां, एक बार एक मैंने बूढ़ी औरत को एक पैसा दिया था।" सेंट पीटर भी थोड़ा हैरान हुआ। इस आदमी के पास अरबों-खरबों रुपये थे और पुण्य कार्य इसने एक पैसा एक बूढ़ी औरत को देकर किया है! पूछा, "और भी कुछ किया है?" उसने कहा, "और तो मुझे कुछ याद नहीं आता।" तो सेंट पीटर ने अपने सहयोगी से पूछा, "क्या करें?" तो उसने कहा, "यह अच्छा होगा, एक पैसा इसे लौटा दें और नरक भेजें। एक पैसा ही उसने पुण्य किया है, उससे यह स्वर्ग खरीदने चला है! तो एक पैसा इसे वापस दे दें। और ब्याज मांगता हो, तो ब्याज भी दे दें और नरक इसे पहुंचा दें।"

लेकिन धारणा ही "सिक्कों" की है! फिर सवाल यह है कि एक पैसा तो छोटा लगता है--स्वर्ग खरीदने को; एक करोड़ रुपया काफी है? अगर इस आदमी ने कहा होता कि मैंने एक करोड़ दान किया है; अस्पताल बनवाया है, धर्मशाला बनवाई है, तब क्या यह स्वर्ग जाने के योग्य था? अगर एक पैसा छोटा है, तो करोड़ रुपया भी बड़ा तो नहीं हो सकता। वह भी एक ही पैसे का विस्तार है, एक ही पैसे कीशृंखला है। और अगर एक पैसे से स्वर्ग नहीं खरीदा जा सकता, तो करोड़ रुपये से कैसे खरीदा जा सकता है!
मूल्य की बात ही मूर्खतापूर्ण है। मूल्य से कुछ भी नहीं खरीदा जा सकता। मूल्य से जो भी खरीदा जा सकता है, वह इस जगत का है। उस जगत में सिक्के नहीं चलते। उस जगत में तुम प्रवेश करते हो, अपनी प्रामाणिकता से; अपने सिक्कों से नहीं। और प्रामाणिकता पोस्टपोन नहीं करती, स्थगित नहीं करती। कल स्वर्ग नहीं है, स्वर्ग अभी है।
उपनिषद बहुत इम्मॉरल पश्चिम में लगे--परा-नैतिक। उनमें कोई नीति नहीं मालूम पड़ती है। और यह कहानी तो बड़ी हैरान करने वाली है। उपनिषद के ऋषि ही ऐसी हिम्मत कर सकते थे; बड़े हिम्मत के लोग थे। इसको समझने की कोशिश करें। एक किशोर ऋषि हरिद्रुमत गौतम के आश्रम में पहुंचा। वह किशोर सत्य को जानना चाहता था। ब्रह्म के लिए उसकी जिज्ञासा थी। उसने ऋषि के चरणों में सिर रख कर कहाः "आचार्य, मैं सत्य को खोजने आया हूं। मुझ पर अनुकंपा करें और ब्रह्मविद्या दें। मैं अंधा हूं और आंखें चाहता हूं।"
उन दिनों--और आज भी, और सदा ही रहेगा--नियम था कि केवल ब्राह्मण को ही ब्रह्मविद्या दी जा सकती है। भारतीय विश्लेषण कहता है कि जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं। फिर कृत्य से, जीवन के निखार से आदमी ऊपर उठने शुरू होते हैं। जो ऊपर नहीं उठते, वे शूद्र ही रह जाते हैं।
ब्राह्मण के घर में भी ब्राह्मण पैदा नहीं होता। पैदा तो सभी शूद्र होते हैं। शूद्रता लेकर हम सब पैदा होते हैं। फिर ब्राह्मणत्व तो पाना होता है। वह उपलब्धि है; वह अर्जित करना होता है।
तो जन्म से कोई विभाजन नहीं है। विभाजन तो जीवन से होता है। पर नियम था--और नियम ठीक है कि ब्राह्मण ही ब्रह्मविद्या का अधिकारी है। ब्राह्मण का अर्थ हैः जिसकी ब्रह्म की जिज्ञासा है। कुतूहल काम न करेगा। कुतूहल तो कोई भी कर लेता है।
लोग मेरे पास आते हैं। वे पूछते हैंः "ईश्वर क्या है? और उनके पूछने में कहीं कोई प्राण नहीं होते, कोई जिज्ञासा नहीं होती। वे ऐसा पूछते हैं, जैसे पूछना भी नहीं चाहते। मेरे पास आ गए हैं, कुछ पूछ लेना जरूरी है। प्रश्न कहीं गहरे में नहीं है; ऊपर--खोपड़ी पर तैर रहा है।
ऐसा हुआ। एक बड़ी अदभुत कथा मैं पढ़ रहा था। एक वैज्ञानिक खोज में लगा था--पत्थरों को हीरे में बदलने की। आखिर उसने सभी सूत्र खोज लिए, सिर्फ एक छोटी सी बात रह गई। अगर वह पता चल जाए, तो चट्टानों की चट्टानें हीरे हो जाएं। सब पता चल गया, कुछ काम बाकी रहा नहीं। बस, जरा सा एक सूत्र खो रहा था और उस सूत्र की वजह से जारी जानकारी बेकाम थी। वह सूत्र मिल जाए तो सब चीजें उपयोग हो जाएं। वह थक गया, परेशान हो गया। आखिर किसी ने उसे कहा, "तुम ऐसा करोः सुना है कि तिब्बत में एक स्त्री परम ज्ञानी है, वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गई है। तुम तिब्बत चले जाओ, तुम उससे पूछ लेना। वह छोटी सी बात उसके ध्यान में फलित हो जाएगी; वह कह देगी। उसने बड़े-बड़े कठिन प्रश्नों के जवाब दे दिए हैं।"
वह वैज्ञानिक बोरिया-बिस्तर बांध कर बड़ी कठिनाई से तिब्बत पहुंचा।
उन दिनों तिब्बत पहुंचना बहुत मुश्किल था। पैदल यात्रा थी; खतरनाक जंगल थे, पहाड़-पर्वत थे। और तिब्बत विदेशियों को पसंद नहीं करता था। तो बड़ी कठिन यात्रा थी। बामुश्किल, कोई आठ वर्ष के श्रम के बाद वह तिब्बत पहुंच पाया। वह उस स्त्री के द्वार पर पहुंच गया। उसने जाकर द्वार पर दस्तक दी। जब वह भीतर गया तो चकित हो गया। ऐसी सुंदर स्त्री अपने जीवन में उसने कभी देखी नहीं थी। उसने अपनी जिज्ञासा की कि मैं आठ वर्ष से परेशान हूं। किसी तरह मरता-जीता पहुंच गया हूं। उस स्त्री ने कहाः "ध्यान रहेः मेरा एक नियम है। मैं एक ही प्रश्न का उत्तर देती हूं। तो तुम सोच कर प्रश्न कर लेना।

क्योंकि दूसरे का उत्तर में नहीं देती। एक ही प्रश्न का उत्तर देती हूं; और मेरे पति आज बाहर गए हैं; मैं खाली हूं; कोई काम भी नहीं है। कितना ही बड़ा और कितना ही गहरा प्रश्न हो; बस, पर एक।" और तुम हैरान होओगे, उस वैज्ञानिक ने क्या पूछा! उसने कहा, "तुम्हारे पति वापस कब आएंगे?"
वह सुंदर स्त्री को देख कर भूल गया--जीवन भर की जिज्ञासा, खोज, बहुत गहरी नहीं थी। और ब्रह्म को उपलब्ध स्त्री के सामने भी उसने पूछा क्या! "तुम्हारे पति वापस कब आएंगे?" कामवासना गहरे में रही होगी। बाकी सब जिज्ञासा उथली-उथली थी।
ईश्वर को तुम पूछते हो, लेकिन उसमें प्राण नहीं है। ब्राह्मण हम उसको कहते हैं, जिसकी ईश्वर की जिज्ञासा इतनी गहरी हो कि वह जीवन खोने को राजी हो, लेकिन ब्रह्म पाने को तैयार। जीवन को दांव पर लगाने को जो तैयार है-- सत्य की खोज में--उसको हम ब्राह्मण कहते हैं।
तो नियम ठीक था कि केवल ब्राह्मण ही खोज सकेगा। इसलिए ब्राह्मण को ही ब्रह्मविद्या दी जाएगी।
खोज के सूत्र उसी को दिए जा सकते हैं, जो जीवन को दांव पर लगाने को तैयार है। वह जुआ बड़ा है। यहां अपने को चुकाए बिना मिलने वाला कुछ भी नहीं है। सिक्कों से काम न चलेगा; जब तक तुम ही सिक्के न बन जाओ। यहां सौदा ऊपर-ऊपर होने वाला नहीं है; तुम्हारी जेब से होने वाला नहीं है; तुम्हारे प्राण से होने वाला है। यहां तुम्हें अपने को ही दांव पर रख देना होगा। इससे कम में नहीं होने वाला है।
ब्राह्मण वह है, जो ब्रह्म के लिए मिटने को तैयार है। उसको ही चाबियां
दी जा सकती हैं।
उस किशोर का नाम सत्यकाम था। ऋषि ने उससे पूछाः "वत्स, तेरा गोत्र क्या है? तेरे पिता कौन हैं? उनका नाम क्या है?" यह भी समझ लेना जैसा है। पूछाः "तेरा गोत्र क्या है? तेरी जाति क्या है? तू ब्राह्मण है? शूद्र है? वैश्य है? --कौन है?" क्योंकि वैश्य की खोज धन की है। शूद्र की खोज आराम की है। शूद्र का लक्षण आलस्य है। कुछ न किए बिना सब कुछ हो जाए, ऐसी शूद्र की आकांक्षा है। इसलिए क्षुद्रतम काम कर लेता है। पेट भर जाए, बस, काफी है। इसलिए कोई बड़ी विराट महत्वाकांक्षा नहीं है उसकी। मरा-मरा जीना उसका लक्षण है। वह कहीं पहुंचना नहीं चाहता, कुछ खोजना नहीं चाहता। इसलिए वह क्षुद्रतम काम से राजी है। और जीवन उसका कीड़े-मकोड़ों जैसा है।
वैश्य धन के लिए दौड़ना चाहता है। अगर धन का ढेर लगा हो और सामने ब्रह्म मौजूद हो, तो वह धन को चुनेगा। वह कहेगाः "ब्रह्म को फिर पीछे देखेंगे। और धन पास है, तो कभी भी खरीद लेंगे।" उसकी पकड़ हमेशा साधन की है। साधन पास होना चाहिए, तो साध्य को भी भी ले लेंगे। लेकिन कुछ साध्य ऐसे हैं कि साधनों से मिलते ही नहीं। कुछ जीवन के मूल्य ऐसे हैं कि धन से खरीदे ही नहीं जा सकते।
जो भी बहुमूल्य है, वह धन से खरीदा ही नहीं जा सकता। इसलिए वैश्य बहुमूल्य से वंचित रह जाता है; आत्मा, परमात्मा, प्रेम, प्रार्थना--सबसे वंचित रह जाता है। क्योंकि जो धन से खरीदा जा सकता है, वह इनमें से कोई भी नहीं है। इसलिए वैश्य प्रेम नहीं कर पाता है। प्रेम असंभव है; क्योंकि धन से तुम प्रेम कैसे खरीदोगे? वह कोशिश करता है--धन से प्रेम खरीदने की। स्त्रियां खरीद लेता है; प्रेम नहीं खरीद पाता है। स्त्रियों की कतार लगा लेता है। लेकिन धन से खरीदी गई स्त्री--क्या तुम्हें प्रेम करेगी?
वह मंदिर खड़े कर लेता है। उसके पास धन है। पुजारी खरीद लेता है; लेकिन प्रार्थना नहीं खरीद पाता। प्रार्थना को तुम कैसे खरीदोगे? पुजारी मिल जाएंगे और जो मिलेंगे, वे दो कौड़ी के होंगे। क्योंकि तुम उसी पुजारी को कैसे खरीदोगे--जो प्रार्थना को उपलब्ध हो गया हो? असंभव है।
वह धन से सब खरीद लेगा, लेकिन जो भी खरीदने जैसा था, उसे चूक जाएगा। इसलिए वैश्य का जितना दुख है, उतना दुख किसी का नहीं है। आज अमेरिका में जो दुख है, वह वैश्य का दुख है।
अमेरिका वैश्य की सभ्यता है। वहां "दुकानदार" प्रमुख हो गया है; सब चीजों पर छा गया है। वह हर चीज को धन से खरीदना चाहता है। धन है, तो वह

सोचता है, सब है। यही उसकी पीड़ा है। धन तो हो गया है अब, और वह कुछ भी नहीं खरीद पा रहा है, जिसका कि कोई मूल्य हो। एक गहरा विषाद अमेरिका में है; वह वैश्य का विषाद है--सफल वैश्य का विषाद है।
फिर क्षत्रिय है। क्षत्रिय हमेशा हिंसा से पा लेने की आकांक्षा रखता है। वह आक्रामक है। वह तलवार लेकर स्वर्ग के राज्य में भी प्रवेश करना चाहता है। छीन-झपट पर उसका भरोसा है।
शूद्र श्रम पर भरोसा करेगा। विश्राम उसका लक्ष्य है। थोड़ा श्रम करके विश्राम उपलब्ध हो जाता है। वैश्य बेईमानी पर ताको करेगा, शोषण पर भरोसा करेगा। क्योंकि अगर वह बेईमानी न करे और शोषण न करे, दूसरे को चूसे न, तो धन इकट्ठा नहीं होता। क्षत्रिय हिंसा पर भरोसा करता है; तलवार पर भरोसा करता है; ताकत पर भरोसा करता है। इस दुनिया में भी वह तलवार से राज्य निर्मित करता है, उस दुनिया में भी वह तलवार लेकर जाना चाहता है! वह परमात्मा के दरवाजे पर भी तलवार लेकर ही खड़ा रहता है, कि "खोलो अन्यथा दरवाजा तोड़ देंगे।" हिंसक है--उसकी वृत्ति।
ये तीनों ही ब्रह्म के अधिकारी नहीं हैं। ब्राह्मण ब्रह्म का अधिकारी है। न तो वह आलसी है। न श्रम करके थोड़ा-बहुत जीवन को गुजार देना उसकी आकांक्षा है। क्योंकि ऐसे जीवन को वह कहेगा--मृत, मरा हुआ।
इसलिए शूद्र को अछूत कहा जाता है। अछूत का मतलब यह नहीं है कि वह जो शूद्र है--जाति से, जन्म से--वह अछूत है, छूने योग्य नहीं है। शूद्र अछूत है, क्योंकि उसके जीवन में कोई भी खोज नहीं है। इसलिए वह छूने योग्य भी नहीं है। वह हुआ, न हुआ, बराबर है। उसका जीवन एक डबरे की भांति है--जो सड़ता है। नदी की भांति नहीं, जो सागर की तरफ जाती है। शूद्र सूखता है, सड़ता है, गंदा होता है। बस, उसका जीवन मरने का एक नाम है। वह एक लंबी बीमारी है, जो एक दिन समाप्त हो जाएगी। इसलिए शूद्र को कहा गया--अछूत।
और जब तक तुम्हारा जीवन डबरे की भांति है, समझना कि तुम शूद्र हो। जब
तक तुम एक सरिता नहीं बन जाते--सागर की खोज में, तब तक तुम शूद्र हो।
वैश्य को शूद्र के जरा ही ऊपर रखा है कि कम से कम उसके जीवन में एक महत्वाकांक्षा है। गलत है महत्वाकांक्षा, लेकिन है। धन की है, धर्म की नहीं है। लेकिन कम से कम महत्वाकांक्षा है, तो महत्वाकांक्षा का रुख बदला जा सकता है। वैश्य कभी धार्मिक बन सकता है। शूद्र की धार्मिक बनने की संभावना न के बराबर है।
जिस दिन वैश्य धन से थक जाएगा, उस दिन धार्मिक होने लगेगा। इसलिए अमेरिका में आज धर्म की इतनी ऊहापोह है। हजारों पूरब से संन्यासी, ऋषि-- अमेरिका के ऊपर छा गए हैं--टिड्डी-दल की भांति। क्योंकि वैश्य जिसको धन मिल गया है, धन के विषाद से भर गया है; उसकी महत्वाकांक्षा अब धर्म की तरफ जाने की है। लेकिन ढंग वैश्य का, वैश्य का ही होगा। वह वहां भी खरीद लेना चाहता है। "खरीदने" की वृत्ति मिटनी चाहिए, तो वह भी ब्राह्मण हो जाए। क्षत्रिय को हमने वैश्य के ऊपर रखा है। खरीदने की बात नहीं करता वह। खरीदने को अपने से नीचे समझता है। अपने को दांव पर लगाने की उसकी तैयारी है। क्योंकि जब तुम हिंसक हो और तलवार लेकर चलते हो, तो तुम मारने की ही तैयारी नहीं रखते, मरने की भी तैयारी रखते हो। वह अपने को दांव पर लगा सकता है; लगाता है; लेकिन उसकी ढंग सांसारिक है। दांव तो अपने को लगाना है। लेकिन तलवार हाथ में लेकर अपने को दांव पर लगाना--क्या लगाना है? अपने को दांव पर लगा देना है--बिल्कुल असुरक्षित; कोई सुरक्षा का उपाय नहीं करना है। तब वह ब्राह्मण हो जाएगा।
शूद्र से ब्राह्मण की यात्रा काफी लंबी है; वैश्य से थोड़ी कम है; क्षत्रिय के बहुत करीब है। इसलिए क्षत्रिय कभी भी ब्राह्मण हो सकता है। धन की उसकी पकड़ नहीं है। दांव पर लगाने को उसका साहस है। वह कभी भी ब्राह्मण हो सकता है।
ब्राह्मण कौन है? ब्राह्मण वह है, जिसको इस संसार की कोई आकांक्षा नहीं है, जो इस संसार में दीन-हीन जीता है, जो इस संसार में एक भिखारी है; लेकिन उसकी आंखें कहीं दूर के तारे पर टिकी हैं। वह ब्रह्मज्ञान चाहता है। वह चाहता है, उसको जान लेना, जिसको जान लेने के बाद फिर कुछ जानने को

शेष न रहे। वह उस जगह पहुंच जाना चाहता है, जहां से फिर कोई यात्रा नहीं होती; जहां परम विश्राम है। बस, उस अंतिम मुकाम को पा लेना चाहता है।
तो पूछना जरूरी है--सत्य के खोजी से--कि "तेरा गोत्र क्या है? तेरी जाति क्या है?" और यह भी पूछना जरूरी है कि "तेरे पिता कौन हैं?" क्योंकि भारतीय गणित इस संबंध में बहुत गहरा है। क्योंकि तुम किसी मां-बाप के पास आकस्मिक पैदा नहीं होते। मां-बाप से तुम जन्म लेते हो, मां-बाप से तुम्हारा संबंध सांयोगिक, एक्सिडेंटल नहीं है। तुम जिस तरह के मां-बाप चुनते हो, वे तुम्हारी आत्मा के संबंध में खबर देते हैं। क्योंकि आत्मा चुनाव करती है। आत्मा उसी गर्भ में जाती है, जहां उसकी आकांक्षाओं को पूरा होने का उपाय हो।
इसलिए हमने यह भी धीरे-धीरे पाया कि ब्राह्मण की आत्मा ब्राह्मण के
घर जन्म लेगी--सामान्यतया। शूद्र की आत्मा शूद्र गर्भ को खोज लेगी-- सामान्यतया। अपवाद होंगे, क्योंकि कभी-कभी कोई शूद्र अपने जीवन के प्रयास से ब्राह्मण हो जाएगा। तब किसी की आत्मा भी उसके घर में गर्भ खोज सकती है। लेकिन सामान्य नियम साफ है। और सामान्य नियम यह है कि आत्मा अपने ही योग्य गर्भ को खोजती है, जहां उसकी जीवन आकांक्षा तृप्त हो सके।
तुम जिस घर में पैदा हुए हो, वह आकस्मिक नहीं है। वह अंधापन नहीं है। तुम ऐसे ही पैदा नहीं हो गए हो; वह तुमने चुना है। तो "तुम्हारे पिता कौन हैं" इससे खबर मिलती है, तुम्हारे संबंध में सूचनाएं मिलती हैं।
तो गुरु ने यह पूछा, यह पूछताछ किसी दफ्तर में भरे जाने वाले फार्म की नहीं थी। दफ्तर में भी पूछते हैं कि "तुम्हारे पिता का क्या नाम है।" उसका कोई मूल्य नहीं है। गुरु ने यह पूछा--कुछ सोच कर। हिसाब है कुछ कि तुम किस पिता के घर जन्मे हो? किसको तुमने पिता की तरह चुना है? अगर तुमने गलत पिता चुना है, तो तुम ठीक गुरु न चुन सकोगे। संभावना कम हो गई है। तुम्हारे साथ ज्यादा मेहनत उठानी पड़ेगी। और अगर तुमने ठीक पिता चुना है, तो ठीक गुरु आसानी से चुन सकोगे। क्योंकि गुरु एक नया जन्म देगा; वह नया पिता है। तो पूछा कि "तेरे पिता कौन हैं? उसका नाम क्या है?"
उस किशोर को अपने पिता का कोई ज्ञान नहीं था। न ही गोत्र का कोई पता था। वह अपनी मां के पास गया और उससे पूछ कर लौटा। और उसकी मां ने जो उससे कहा, उसने जाकर ऋषि को कहा।
वह बोलाः "भगवन, मुझे अपने गोत्र का ज्ञान नहीं है। न ही मैं अपने पिता
को ही जानता हूं। मेरी मां को भी मेरे पिता का ज्ञान नहीं है। उससे मैंने पूछा, तो उसने कहा कि युवावस्था में वह अनेक भद्र पुरुषों में रमती और उन्हें प्रसन्न करती रही। उसे पता नहीं है कि मैं किससे जन्मा हूं। मेरी मां का नाम जाबाली है। इसलिए मैं सत्यकाम जाबाल हूं। ऐसा ही आपने भी बताने को उसने कहा है।"
मैं जिस नगर में बीस वर्षों तक रहा--जबलपुर, वह जाबाली के नाम पर है।
वह सत्यकाम जाबाल की स्मृति में बना हुआ नगर है। पहले उसका नाम जाबालीपुर था। फिर बिगड़ कर वह जबलपुर हुआ।
यह सत्यकाम जाबाल ऐतिहासिक व्यक्ति है, सिर्फ कहानी नहीं है। पर बड़ा हिम्मत का युवक है। और युवक से भी ज्यादा हिम्मत की उसकी मां है। उसकी मां ने यह कहा कि "जब मैं युवा थी, तब मैं बहुत भद्र पुरुषों में रमती रही, उन्हें प्रसन्न करती रही। मैं एक वेश्या हूं।
वेश्या भी अपने को छिपाना चाहती है। वेश्या तो अपने को छिपाना ही चाहेगी। वह कुछ भी कहानी गढ़ ले सकती थी; कोई भी नाम बता सकती थी। कोई ऋषि खोज-बीन करने नहीं जा रहा था। कोई पुलिस इंक्वायरी नहीं बिठाई जाने वाली थी। कोई भी नाम ले सकती थी कि "यह" तेरे पिता का नाम है। यह कह सकती थी, पिता तेरे मर गए हैं, "यह" उनका नाम है, "यह" उनकी जाति है।
लेकिन उसकी मां ने कहा कि "जब मैं युवा थी, तो मैं बहुत से भद्र पुरुषों में रमती और उन्हें प्रसन्न करती रही हूं। मैं एक वेश्या हूं। मुझे पता नहीं कि तू किससे जन्मा। कौन तेरा पिता है। कोई हिसाब नहीं। मेरे पास कोई रूप-रेखा नहीं कि जिससे अंदाज लगाऊं कि कौन तेरा पिता है। न मालूम कितने लोगों से मैंने संभोग किया। तू किसके संभोग से आया है, अनजान रह गई

है यह बात। तो तू जा और अपने गुरु कहना कि पिता का तो नाम मुझे याद नहीं है। मेरी मां का नाम जाबाली है।" तो मेरे नाम के पीछे पिता का नाम या गोत्र तो जोड़ने का कोई उपाय नहीं है। आप मुझे सत्यकाम जाबाल कह सकते हैं; जाबाली का बेटा--सत्यकाम। मेरी मां से ही बस, मेरी जानकारी है। और मेरी मां युवा थी तो वेश्या थी। ऐसा मेरी मां ने मुझसे कहा है। और उसने यह भी कहा है कि यही सब जाकर मैं आपको बता दूं।
स्त्री के लिए कठिन से कठिन बात वेश्या होना है। --कठिन से कठिन बात। स्त्री के व्यक्तित्व में उससे बड़े अपराध की और कोई संभावना नहीं है। इसे समझ लें।
पुरुष का वेश्या जैसा होना कठिन नहीं है। पुरुष का चित्त वस्तुतः वेश्या का चित्त है। पुरुष बदलना चाहता है; स्त्रियों को बदलना उसका सहज भाव है। क्योंकि पुरुष के लिए प्रेम एक खिलवाड़ है--"फन"; उससे ज्यादा नहीं है। क्योंकि सारी प्रकृति में पिता जैसी कोई घटना नहीं है। पिता आदमी की ईजाद है। पशुओं में, पक्षियों में, पौधों में पिता कोई भी नहीं है। पिता का कोई पता नहीं है; मां का भर पता है। पूरी प्रकृति मां को जानती है। आदमी ने पिता की ईजाद की है। वह ईजाद की हुई बात है--"इंवेंटेड" है। इसलिए पुरुष की प्रकृति में नहीं है वह बात।
पुरुष स्वभाव से स्त्रियां बदलना चाहता है। एक स्त्री से ऊब जाता है-- दूसरी चाहता है, तीसरी चाहता है। उसके लिए प्रेम एक क्षणिक खेल है। स्त्री के लिए प्रेम उसका पूरा जीवन है; वह क्षणिक खेल नहीं है। स्त्री का प्रेम-- उसका पूरा अस्तित्व है। वह एक के साथ रमना चाहती है। वह सदा-सदा एक को प्रेम करना चाहती है। वह बदलना नहीं चाहती। बदलाहट में उसका रस नहीं है। वह ऊबती ही नहीं एक से। उसका प्रेम इतना गहरा है कि उसे एक से ऊब पैदा नहीं होती। वह जन्मों-जन्मों प्रार्थना करती है कि जो मुझे इस जन्म में प्रेमी मिला, वही अगले जन्म में मिले।
पुरुष चाहता है कि इस जन्म में भी अनेक स्त्रियां मिल जाएं तो बड़ी कृपा हो। कोई पुरुष प्रार्थना नहीं करता कि "जो पत्नी इस जन्म में मिली, अगले जन्म में भी यही मिले।" अगर प्रार्थना भी करेगा तो इतनी करेगा कि "कोई भी मिल जाए, यह भर न मिले।"
मुल्ला नसरुद्दीन से उसका एक मित्र कह रहा था कि "मेरी पत्नी तो देवी है--देवी।" मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः "तुम भाग्यशाली हो। मेरी तो अभी तक जीवित है!"
मुल्ला नसरुद्दीन मानता है कि जिंदा पत्नी तो देवी हो ही नहीं सकती है। कोई सवाल ही नहीं है। मर जाए, तभी देवी होती है, उसके पहले तो हो ही नहीं सकती है।
पुरुष की सहज वृत्ति भागती हुई है--चंचल है; थिर नहीं है। प्रेम उसके लिए ध्यान नहीं बन पाता। अनेक कामों में एक काम है--प्रेम भी; सौ काम हैं उसके लिए। और प्रेम काफी नहीं है। उन सौ कामों में एक प्रेम भी है। और अगर चुनाव ही करना हो--अगर वैज्ञानिक के सामने चुनाव हो कि मैं अपने विज्ञान की प्रयोगशाला चुनूं या प्रेम, तो वह प्रयोगशाला चुनेगा। प्रेम गौण है। प्रेम के बिना जीया जा सकता है। इसलिए हजारों पुरुष, किसी दूसरे काम में लगे रहने की वजह से, अविवाहित रह जाते हैं।
लेकिन स्त्री के लिए प्रेम कोई काम नहीं है--दूसरे कामों में एक काम नहीं है। प्रेम अलग ही विभाजन है। उसका काम से कोई लेना-देना नहीं है। वह उसका हृदय है, वह उसका जीवन है। और गौण तो कतई नहीं है। वह सब छोड़ सकती है, प्रेम को नहीं छोड़ सकती।
पुरुष प्रेम को किसी भी चीज के लिए छोड़ सकता है--दुकान कि लिए, राजनीति
के लिए, पद के लिए, धन के लिए, किसी भी चीज के लिए प्रेम को छोड़ सकता है, हटा सकता है कि "कल देखेंगे। इतनी जल्दी कुछ है नहीं।"
शायद प्रेम एक विश्राम है--पुरुष के लिए। जब वह थका होता है, तब उसे प्रेम की याद आती है। तब वह चाहता है--"एक स्त्री का उसके निकट, ताकि वह विश्राम कर सके।" लेकिन उसकी असली जिंदगी काम में है।

स्त्री के लिए प्रेम विश्राम नहीं है। प्रेम के बाहर कोई भी घटना महत्वपूर्ण नहीं है। उसका सब कुछ प्रेम के आस-पास घिरा हुआ है। इसलिए स्त्री को वेश्या होना बड़ा सुखद है, बड़ी आत्मग्लानि का है। उससे बड़ा कोई भीतरी पाप उसे अनुभव में नहीं आता।
लेकिन उस भीतरी पाप को भी इस स्त्री ने छिपाया नहीं। अपने बेटे को कहा कि, तू जाकर कह देना कि जब मैं युवा थी, तो मैं एक वेश्या थी। बहुत पुरुषों में रमती रही, उनको प्रसन्न करती रही। तू पैदा हुआ; तेरे पिता का कोई पता नहीं है। तू किससे जन्मा, मुझे कुछ पता नहीं है। तो क्या तेरा गोत्र! क्या तेरी जाति! कौन तेरा पिता! मेरा नाम जाबाली है, तेरा नाम सत्यकाम है। तो तू जा और गुरु को सारी बात बता दे। और कहना कि मुझे आप सत्यकाम जाबाल कह सकते हैं। यही मेरा पता-ठिकाना है; यही मेरा परिचय है।"
इस बेटे ने जाकर ठीक जैसा मां ने कहा था, वैसा ही दुहरा दिया। यह और भी कठिन है।
पहले तो स्त्री का यह स्वीकार करना कि वह वेश्या है--वेश्या भी--अति कठिन है। फिर बेटे का यह स्वीकार करना कि मेरी मां वेश्या है, उससे भी ज्यादा कठिन है। क्योंकि मां पवित्रतम है--बेटे के लिए। और जहां मां का स्रोत गंदा हो जाए, वहां बेटे की ग्लानि का कोई अंत नहीं है, कोई सीमा नहीं है।
बेटा सब स्वीकार कर ले सकता है--"मरी हुई मां" स्वीकार कर सकता है, लेकिन "वेश्या-मां" स्वीकार नहीं कर सकता है। यह सोचना ही उसे असंभव है कि मेरी मां और अपवित्र हो सकती है; कि मेरी मां और बहुत पुरुषों को रमा सकती है और बहुत पुरुषों के साथ लीन हो सकती है; कि मेरी मां एक गंदा स्रोत है, जहां बहुत लोग स्नान करते हैं! मेरी मां सार्वजनिक है; उसकी कोई निजता नहीं है-यह बात ही सोचना बेटे के लिए बहुत कठिन है।
मां स्वीकार करे वेश्या होना, यह बड़ा कठिन था; उससे भी महा कठिन यह था
कि बेटा स्वीकार करे। और सबसे कठिन बात यह थी कि वह जाकर यह बात प्रकट करे। खुद भी स्वीकार कर ले, उससे भी कठिन है कि जाकर प्रकट करे। लेकिन सत्यकाम ने जाकर सारी बात अपने गुरु कह दी!
गुरु निश्चित ही ज्ञानी रहा होगा। अगर सिर्फ गुरु होता, तो उसने सत्यकाम को निकाल बाहर किया होता कि "तू वेश्या--पुत्र, बाहर हो। तूने आश्रम गंदा कर दिया।" सफाई करवाई होती। लेकिन हरिद्रुमत गौतम निश्चित ज्ञानी पुरुष रहा होगा--बुद्ध पुरुष रहा होगा।
हरिद्रुमत इस सरल सत्य से अभिभूत हो उठे। उन्होंने उस किशोर को हृदय
से लगा लिया और कहाः "मेरे प्रिय, तू निश्चित ही ब्राह्मण है।"
बड़ी मीठी कथा है। कहा कि "तू निश्चित ही ब्राह्मण है। तुझे पता न हो कि तेरे पिता कौन हैं, मैं कहता हूं कि तेरे पिता ब्राह्मण रहे होंगे। तू ब्राह्मण है; क्योंकि सत्य की स्वीकृति ब्राह्मण का लक्षण है। और तू सत्य को इतनी सरलता से स्वीकार कर रहा है कि मैं मान नहीं सकता कि जिस स्रोत से तू आया आया है, वह ब्राह्मण न रहा होगा। यह असंभव है। तेरी मां न जानती हो, तू न जानता हो, मैं जानता हूं कि तेरे पिता ब्राह्मण हैं। तू ब्राह्मण है। "सत्य के लिए ऐसी आस्था ही ब्राह्मण का लक्षण है। तू ब्रह्म को जरूर
ही पा सकेगा। क्योंकि जिसमें स्वयं के प्रति सच्चा होने का साहस है, सत्य स्वयं ही उसे खोजता हुआ, उसके द्वार आ जाता है।"
सिर्फ ज्ञानी पुरुष--पंडित नहीं। पंडित तो सदा ही नीति-नियम से बंधा होता है। पंडित और ज्ञानी में यही फर्क है। पंडित लकीर का फकीर होता है। उसकी एक बंधी रेखा है। उस बंधी रेखा से जो भिन्न होता है, वह अंगीकार नहीं हो सकता।
लेकिन ज्ञानी की कोई बंधी रेखा नहीं है। उसके पास तो प्रकाश से भरी आंखें हैं। वह देख सकता है। वह किसी नियम को नहीं मानता। वह अपवाद को भी पहचान सकता है। और जब तुम अपवाद को पहचान सको, तो तुम्हारे पास ज्ञान है।
और जब तुम नियम को ही पहचान सको, तो तुम अज्ञानी हो।

गौतम देख सका, इस व्यक्ति को; किसी नियम से इसने तौला नहीं। किसी बंधे हुए शास्त्र से परख न की। सीधा इस युवक को देख सका--इस सरल किशोर को। जो खुद कह रहा हैः"मैं वेश्या का पुत्र हूं।" ऋषि कह सका कि "तू ब्राह्मण है।" वेश्या के पुत्र होने से कोई ब्राह्मणत्व में बाधा नहीं पड़ती। और तुम वेश्या के पुत्र नहीं हो, इससे मत सोच लेना कि तुम ब्राह्मण हो! तुम्हारे बाप ब्राह्मण, तुम्हारी मां ब्राह्मण। दोनों नियम से विवाह में बंधे। कभी नियम से यहां-वहां नहीं हटे। तो भी पक्का नहीं है कि तुम ब्राह्मण हो। क्योंकि हो सकता है कि सिर्फ नियम को मान कर ही यह संबंध चलता हो और इसमें कोई प्रेम न हो। यह सारा तुम्हारे माता-पिता का संबंध सामाजिक हो, औपचारिक हो, इसमें कोई अंतस की बात न हो, इसमें अंतस जुड़े ही न हों; एक व्यवस्था चल रही हो। घर तुम्हारा एक संस्था हो, जो नियम से विपरीत नहीं जाता। लेकिन इससे ही तुम ब्राह्मण न हो जाओगे।
वेश्या का पुत्र भी ब्राह्मण हो सकता है। क्योंकि ब्राह्मणत्व एक भीतरी घटना है; वह एक प्रामाणिकता का सबूत है। सिर्फ ब्राह्मण ही इतनी हिम्मत कर सकता है--सत्य होने की, सीधा कह देने की। अगर यह युवक ब्रह्म की खोज में न होता, तो छिपता।
तुम छिपाओगे, तो ब्रह्म की खोज न हो सकेगी।
मेरे पास लोग आते हैं। मैं देखता हूं--सामने, साफ--कि वे छिपा रहे हैं। मेरे सामने बहाने, तरकीबें! उनको इतना भी ख्याल नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं!
मैं उनसे पूछता हूं, और कुछ बुराई छिपाते हैं, ऐसा भी नहीं है। बुराई
तो छिपाते ही हैं। उन्हें पता ही नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं!
मैं उनसे पूछता हूं कि "ध्यान कैसा चल रहा है?" तो वे कहते हैंः "बिल्कुल ठीक।" और मैं देख रहा हूं कि "बिल्कुल ठीक" नहीं चल रहा है। मगर इतनी सी भी बात छिपाते हैं; क्योंकि उन्हें लगता है, शायद प्रतिष्ठा दांव पर है! अगर ठीक नहीं चल रहा है, तो प्रतिष्ठा गई। शायद मेरी आंखों में उनकी इज्जत कम हो जाए!
जो भी कहते हैं, उसे गोलमोल कहते हैं। उसे स्पष्ट नहीं करते, उसे खोलते नहीं। और तुम मेरे सामने खुल न सकोगे, तो फिर तुम कहां खुलोगे?
और तुम्हारी हालत ऐसी है कि तुम चिकित्सक के पास गए हो और बीमारी छिपा रहे हो। तो निदान कैसे हो? इलाज कैसे हो? फिर तुम परेशान होते हो कि इलाज नहीं हो रहा है; तुम परेशान होते हो कि कोई क्रांति नहीं हो रही है। और तुम्हीं कारण हो।
चूक जाता यह युवक--सत्यकाम, अगर इसने छिपाया होता। तो भला यह कहता कि मैं बड़े प्रसिद्ध ब्राह्मण का बेटा हूं; बड़े परिवार से आता हूं; कुलीन घर का हूं; परंपरा से सैकड़ों मेरे परिवार में ज्ञानी हुए--यह कितना ही सब कुछ कहता, चूक जाता। क्योंकि बुद्ध पुरुष के सामने छिपाने का उपाय नहीं है। तुम भला छिपाओ, तुम उसके सामने नग्न ही हो। वह तुम्हें देख रहा है कि तुम्हारा छिपाना सिर्फ नासमझी है। उस छिपाने में तुम खो रहे हो, वंचित हो रहे हो।
इस युवक ने सरलता से खोल दिया। गौतम ने देखा--गुरु ने देखा कि जैसा वह देख रहा है--इस युवक को--वैसा ही इसने खोल दिया; रत्ती भर फर्क नहीं है। यह ब्राह्मण की कसौटी है। सदगुरु के सामने--जैसा दिखाई पड़ता था--वैसा ही उसने प्रकट भी किया; उसने उसमें रत्ती भर हेर-फेर नहीं किया।
कठिन न था--हरिद्रुमत को--जान लेना कि यह वेश्या का पुत्र है। बहुत सरल
सी बात है। इसके छिपाने से छिपती न।
कुछ छिपाने से नहीं छिपता। छिपाने से चीजें उघड़ती हैं। जिस चीज को तुम छिपाते हो, उससे पता चलता है कि वह है। इसलिए तुम छिपाते हो। तुम जो-जो ढांकते हो, उसके प्रति तुम लोगों को आकर्षित करते हो। क्योंकि लगता हैः वहां तुम कुछ छिपा रहे हो।
और गुरु के सामने तुम छिपा कर चल भी नहीं सकते, उठ भी नहीं सकते। क्योंकि तुम्हारे उठने में फर्क होगा, तुम्हारे चलने में फर्क होगा। तुम

चोर की तरह आओगे, तुम चोर की तरह जाओगे। तुम कुछ छिपाओगे। तुम्हारा पूरा आचरण, व्यवहार, उठना-बैठना--सब जाहिर करेगा कि तुम छिपा रहे हो।
शरीर की भाषा है, उससे पता चलता है। तुमने कभी ख्याल किया है कि अगर तुम चोरी करके चलते हो, तो तुम और ढंग से चलते हो। तुम वैसे तो चल ही नहीं सकते, जैसे तुम अचोर होने पर चलते। जब तुम झूठ बोलते हो, तब तुम्हारी आंखें वैसी ही नहीं हो सकतीं, जैसी तुमने जब सच बोला था। जब तुम सच बोलते हो, तब तुम्हारी आंखें पारदर्शी होती हैं। उनमें कोई धुआं नहीं होता। वे कोरी होती हैं, जैसा पशु की, पक्षी की, गाय की, छोटे बच्चे की। क्योंकि उस क्षण में तुम बच्चे की तरह निर्दोष होते हो।
जब तुम झूठ बोलते हो, तब सब सिकुड़ जाता है, तन जाता है--चेहरा, आंख, भाव--सब सिकुड़ जाता है। तुम्हारा अपराध जाहिर है।
तो जिनको साधारण मुखाकृति को पढ़ना आता है, जो साधारणतया "बॉडी लैंग्वेज" को, शरीर की भाषा को समझते हैं, वे भी बता देंगे। लेकिन सदगुरु तो तुम्हारी आत्मा की भाषा को समझता है। हो सकता है, तुम अभ्यास करके शरीर से भी धोखा दो। लेकिन उससे भी कोई फर्क न पड़ेगा। सदगुरु को धोखा नहीं दिया जा सकता। और अगर पहले चरण पर ही तुमने धोखा दिया, तो सदगुरु से संबंध ही कभी निर्मित नहीं होता। तुम फिर चूकते ही चले जाते हो।
सत्यकाम चूका नहीं। उसने खोल दिया अपने को--जैसा था--बुरा था, भला था। कुछ भी ढांका नहीं। जैसा था तथ्य, उसने उघाड़ कर रख दिया।
इस तथ्य को उघाड़ने से सत्यकाम का ही पता न चला, ऋषि गौतम का भी पता चला। अगर यह पंडित के सामने किया गया होता, तो सत्यकाम निकाल बाहर किया गया होता। यह गुरु-सदगुरु था। वह गुरु ज्ञान को उपलब्ध था। इसने अपवाद में भी झांक कर देख लिया। इसने सीधा व्यक्ति को देखा--समाज के नियम और सूत्र को नहीं देखा। क्योंकि किसी शास्त्र में नहीं लिखा है कि जब तक बाप का पता न हो, तब तक कोई व्यक्ति कैसे ब्राह्मण हो सकता है।
हिंदुओं ने चार वर्ण बनाए हैं--शास्त्रों में और एक पांचवां वर्ण बनाया है--अंत्यज। वह पांचवां वर्ण, उनके लिए है, जिनके चारों वर्णों को कोई पता न हो।
यह अंत्यज था--नियम से। यह शूद्र से भी गया-बीता था। शूद्र तो गांव की परिधि पर रहता है; अंत्यज गांव के बाहर रहता है। अंत्यज का मतलब होता है-- सबसे अंत में, आखिर में।
ब्राह्मण शिखर पर हैं, शूद्र भूमि पर हैं, अंत्यज जैसे जमीन के भीतर है--भूगर्भ में है। उसे बाहर आने का भी हक नहीं। अंत्यज को गांव में आने का हक नहीं। वह पांचवां वर्ण है--जिसका कुछ ठिकाना न हो, पिता का; मां का सूत्र कुछ मिलता न हो, गोत्र का पक्का न हो।
तो हिसाब से तो यह सत्यकाम अंत्यज था। इसको गुरु ने आश्रम में तो जगह मिलने का सवाल ही न था। यह गांव में भी नहीं रुक सकता था। यह शूद्रों से गया-बीता था। अंत्यज का काम है कि वह शूद्रों की सेवा करेगा। वह गांव के बाहर रहता है, जैसे मनुष्य नहीं है। यह तो शास्त्र के अनुकूल थी बात।
अगर हरिद्रुमत पंडित होता, सिर्फ शास्त्र का ज्ञाता होता, तो सत्यकाम अंत्यज सिद्ध होता। लेकिन वह ज्ञानी था। शास्त्र का ज्ञाता नहीं, सत्य का ज्ञाता था। और सत्यकाम को उसने ब्राह्मण कहा।
बड़े हिम्मत के लोग रहे होंगे--उपनिषद ऋषि। और जब उपनिषद जिंदा था, तब हिंदू जिंदा थे। जिस दिन उपनिषद के ऋषि और हिम्मत खो गई, उसी दिन हिंदू मर गए। हिंदू अब एक सड़ी हुई लाश हैं। वे सिर्फ नियम से चलते हैं। अब उनके पास शस्त्र हैं--सत्य नहीं।
लेकिन जिस दिन गौतम ने यह वक्तत्व दिया कि तू "ब्राह्मण है" और हृदय
से लगा लिया--सत्यकाम को। और कहाः "सत्य के लिए ऐसी आस्था ही ब्राह्मण का लक्षण है। तू कहां पैदा हुआ, किससे पैदा हुआ--यह बात व्यर्थ है। तू ब्राह्मण है। यह बात पक्की है। क्योंकि मैं तुझे देखता हूं।"
एक तो रास्ता है कि तुम जहां से पैदा हुए, वहां से पता लगाया जाए कि तू कौन है। और एक रास्ता है कि तू कौन है, उससे पता लग जाए कि तू किस स्रोत से आया होगा। पहला रास्ता शास्त्र का है--दूसरा रास्ता ज्ञानी का है।

"तू कौन है, यह मैं तुझे सीधा देखता हूं। तेरा स्रोत भी तेरे कारण सम्मानित हो गया। तू जहां से भी आ रहा है--ब्राह्मण से ही आ रहा है, श्रेष्ठतम स्रोत से आ रहा है।"
नहीं, जरा भी निंदा न उठी ऋषि के मन में कि तेरी मां वेश्या है, पापिनी है। जिन साधु-संन्यासियों के मन में निंदा उठे, जानना कि वे ज्ञानी नहीं हैं। जिनके सामने जाकर तुम भयभीत हो जाओ और जिनके सामने तुम अपने पाप को प्रकट करने में डरो--कि वे निंदा करेंगे, कि उनकी आंखों में तुम्हारे प्रति घृणा का भाव पैदा होगा, तुम नीचे मालूम पड़ोगे, पतित मालूम पड़ोगे, अपराधी सिद्ध हो जाओगे--तो समझना कि वे ज्ञानी नहीं हैं।
ज्ञानी के समक्ष तुम्हारी प्रामाणिकता का मूल्य है। तुमने क्या किया, क्या नहीं किया--इसका कोई मूल्य नहीं है। तुम्हारी स्वीकृति--सत्य की स्वीकृति का मूल्य है।
सत्यकाम ने न केवल अपने को सिद्ध किया, बल्कि अपने कारण गुरु को भी प्रकट किया। सच्चा शिष्य जब उपलब्ध होता है, तो सच्चे गुरु को भी उघाड़ देता है। सच्चे शिष्य के बिना सदगुरु का पता भी तो नहीं चलता है। कैसे पता चलेगा? शिष्य की झलक ही खबर देती है--गुरु की भी।
"जिसमें स्वयं के प्रति सच्चा होने का साहस है, सत्य स्वयं उसे ही खोजता हुआ उसके द्वार आ जाता है।" ब्राह्मण को कहीं भी खोजने जाने की जरूरत नहीं। बस, वह ब्राह्मण है, यह काफी है। इससे ज्यादा और क्या चाहिए। वह ब्रह्म के लिए प्यासा है, जिज्ञासा से भरा है, मुमुक्षा से भरा है--यह पर्याप्त है। इससे ज्यादा और क्या चाहिए! ऐसे व्यक्ति के पास सत्य खुद खोजता हुआ चला आता है। सत्य तुम्हारी तलाश में है।
यहूदियों में एक कीमती सिद्धांत है, जो दुनिया के किसी धर्म में नहीं है। पर बड़ा बहुमूल्य है और सभी धर्मों में होना चाहिए। यहूदी कहते हैंः मनुष्य परमात्मा को कैसे खोजेगा? न हमें उसका पता मालूम है--न ठिकाना, न नाम, न द्वार, न रास्ता। वह कहां है, इसका भी हमें पता नहीं है। हम उसे खोजेंगे कैसे? खोज तो उसकी हो सकती है, जो कहीं हो--एक जगह हो, जिसका कोई घर हो, जिसका कोई नाम हो। पूछोगे कैसे? किससे पूछोगे कि वह कहां है? कौन है? यहूदी कहते हैंः "उसका नाम नहीं है, रूप नहीं है, तो हम उसे खोज न सकेंगे। आदमी परमात्मा को कैसे खोजेगा।" वे कहते हैंः "नहीं, आदमी परमात्मा को नहीं खोज सकता। आदमी तो सिर्फ तैयार हो सकता है! परमात्मा आदमी को खोजता है।" और बात बड़ी ठीक है।
परमात्मा ही आदमी को खोज सकता है। उसे हमारा पता-ठिकाना मालूम है। हम कहां हैं--उसे पता है। हम कैसे हैं--उसे पता है। जिस दिन हम तैयार होंगे, वह खुद ही आएगा। हम उसे खोजने कहां जाएंगे!
ऐसे ही, जैसे, एक छोटा बच्चा एक बाजार में खो जाए, तो वे कैसे खोजेगा कि उसकी मां कहां है! और वह जितना खोजेगा उतना ही भटकेगा। अगर छोटा बच्चा होशियार है, तो वहीं खड़ा हुआ रोता रहेगा; हटेगा नहीं--यहां-वहां। जहां से मां का हाथ छूट गया है, वहीं खड़ा होकर रोएगा, चिल्लाएगा। हटेगा नहीं उस जगह से; क्योंकि हटने में खतरा है। अगर मां खोजने भी आएगी तो इसी जगह खोजने आएगी--जहां वह है। और बच्चा अगर मां को खोजने निकल जाए, तो फिर मिलना बहुत मुश्किल हो जाएगा।
तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं। तुम जहां हो, वहीं रहो। तुम जहां हो, वहीं पुकारो। तुम जहां हो, वहीं जन्म दो--तुम्हारी प्रार्थना को, तुम्हारे ध्यान को। न तुम घर छोड़ो, न तुम द्वार छोड़ो, न तुम हिमालय जाओ।
तुम कहीं मत जाओ। तुम जहां हो, ठीक वहीं परमात्मा तुम्हें खोजता आ जाएगा।
जिस दिन तुम तैयार हो, उसी दिन तुम पाओगे--उसने द्वार पर दस्तक दी।
तुम्हारी तैयारी होते ही वह मौजूद हो जाता है।
ठीक कहा ऋषि गौतम ने कि तू "ब्राह्मण है, यह बात पक्की हो गई। तू अपने प्रति सच्चा और प्रामाणिक है, यह बात पक्की हो गई। अब ज्यादा कठिनाई है।
तुझे मैं कुंजियां दूंगा। तू योग्य है, तू पात्र है।"
तुम कुंजियों की तलाश करते हो, लेकिन कभी नहीं सोचते कि तुम पात्र हो
या नहीं!

मेरे पास लोग आते हैं, वे प्रश्न पूछते हैं--बिना समझे, बिना सोचे कि
वे पात्र हैं या नहीं। अगर उनको जवाब न दिया जाए, तो नाराज होते हैं। और जवाब दिया जाए, तो वह व्यर्थ है, क्योंकि वे पात्र नहीं हैं।
तुम पूछते होः "ईश्वर है?" तुम क्या पूछ रहे हो, तुम्हें पता है! यह कोई इतिहास का प्रश्न है, कि भूगोल का, कि गणित का? यह प्रश्न तो जीवन के गहनतम सत्य का प्रश्न है--आत्यंतिक प्रश्न है। तुम तैयार हो? यह प्रश्न भी पूछो, इसकी तुम्हारी तैयारी है? ये शब्द भी तुम ओंठ पर लाओ, इसकी तुम्हारी योग्यता है, प्रामाणिकता है? लेकिन उत्तर तुम चाहते हो! उत्तर दे भी दिया जाए, तो तुम्हें मिलेगा नहीं। क्योंकि जो अभी प्रश्न के लिए ही तैयार नहीं है, वह उत्तर के लिए कैसे तैयार हो सकता है!
और ध्यान रखनाः अगर तुम प्रश्न के लिए तैयार हो, तो उत्तर तुम्हारे भीतर से ही आ जाएगा; कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं। जो प्रश्न पूछने में समर्थ है, उसे उत्तर मिल जाएगा।
तुम्हारी तैयारी असली बात है। तैयारी का पहला कदम हैः आथेंटिसिटी-- प्रामाणिकता। और प्रामाणिकता का अर्थ समझ लेना। प्रामाणिकता का अर्थ यह नहीं कि तुम ईमानदार बनो। प्रामाणिकता का अर्थ यह नहीं कि पहले तुम अचोर बनो। प्रामाणिकता का अर्थ यह नहीं कि पहले तुम अहिंसक बनो। प्रामाणिकता का अर्थ हैः तुम जो हो--जैसे हो, काने-लूले-लंगड़े--जैसे हो, इसको ऐसा ही स्वीकार कर लो। इसको तुम अपने प्रति भी मत छिपाओ, दूसरे के प्रति भी मत छिपाओ। छोड़ो भय-निंदा का। करेंगे लोग निंदा, ठीक है; जो जानते हैं, वे तुम्हें ब्राह्मण कहेंगे। जो नहीं जानते, उनकी प्रशंसा लेकर भी क्या करोगे! जो नहीं जानते हैं उनकी प्रशंसा का मूल्य क्या है? जो जानते हैं, उनकी "नजर" का मूल्य है। और उनकी नजर हो जाए, तो सब हो जाए।
तुम खोल दो अपने को। कहने दो, लोग क्या कहते हैं। सोचने दो, लोग क्या सोचते हैं। गाली देते हैं, अपराधी मानते हैं, तुम्हें पापी मानते हैं--डरो मत, स्वीकार कर लो। ब्राह्मणत्व का जन्म हो जाएगा--उसी क्षण। और वहीं से तुम्हारी यात्रा शुरू होती है।
और तुम जब ब्राह्मण हो, तो ध्यान रखना, ब्रह्म तुम्हें खोजेगा। और ज्यादा दूर नहीं है ब्रह्म--कहीं आस-पास ही है तुम्हारे घर के। जैसे-जैसे तुम्हारी तैयारी होती जाएगी, वह करीब आता जाएगा। जिस दिन तुम तैयार हो, अचानक तुम पाओगे कि वह तुम्हारे भीतर उदभासित हुआ है, तुम्हारे भीतर उसका आविर्भाव हुआ है। वह तुम्हारे ही प्राणों का जलता हुआ दीया है। प्रामाणिक व्यक्ति के लिए समाधि बड़ी सहज है। वह जो कबीर कह रहे हैंः "साधो सहज समाधि भली", उसकी सहजता तुममें तभी पैदा होगी, जब तुम पहले झूठ-- अपने बाबत--त्याग दो। लेकिन आदमी इतना बेईमान है कि वह उलटी दिशा में तक बेईमानी कर देता है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि टाल्सटाय, रूसो, अगस्तीन, गांधी--इस तरह के कुछ बड़े महत्वपूर्ण लोगों ने अपने पापों की स्वीकृति की है--अपनी आत्मकथाओं में। लेकिन मनोवैज्ञानिक को शक है कि उन्होंने उन पापों को भी स्वीकार कर लिया है, जो उन्होंने कभी किए ही नहीं! यह दूसरी अति है। और यह फिर गड़बड़ हो गया।
तुम्हारी मां अगर वेश्या न हो, तो अकारण जाकर किसी को मत कहना। तुम्हें अगर पिता का पता हो, तो जाकर गुरु को मत बताना कि "कोई पिता का पता नहीं, क्योंकि युवावस्था में मां भद्रजनों में रमती रही!" तब यह भी झूठ है और यह भी अप्रामाणिक है। और ध्यान रखनाः इस कारण गुरु तुम्हें गले से नहीं लगा लेगा।
शक है टाल्सटाय पर कि उसने ऐसे पाप कभी किए नहीं--जिनके वह उल्लेख करता है! लेकिन वह उल्लेख करता है, क्योंकि ख्याल है कि जब तुम अपने को पूरा पापी स्वीकार कर लोगे, तो परमात्मा तुम्हारे पास आएगा। लेकिन "पूरे पापी" का मतलब यह नहीं कि ज्यादा पाप स्वीकार कर लेना--जो तुमने किए ही नहीं!
आदमी अतिशय में बढ़ जाता है। या तो तुम घोषणा करते हो कि "मुझ जैसा पुण्यात्मा कोई नहीं।" तब भी अकड़ है। और या तुम घोषणा कर सकते हो कि "मुझ

जैसा पापी कौन है?" कोई भी नहीं। तब भी अकड़ है। अकड़ को मिटाने से प्रामाणिकता आती है। अकड़ को बचाए रखोगे; तो अप्रामाणिकता नहीं होगी।
तुम वही हो जाना, जो तुम हो। और उतना ही स्वीकार कर लेना, जितना तुम हो--न रत्ती भर इधर, न रत्ती भर उधर। क्योंकि जरा भी तुम यहां से वहां हुए कि तुम चूक जाओगे। तुम ठीक बीच में हो, बीच के मध्य बिंदु में हो, जहां अतिशय नहीं, अतिरेक नहीं, अतिशयोक्ति नहीं।
अतिशयोक्ति दोनों तरह की हो सकती है। तुम जाओ कभी कारागृह में, तुम वहां पाओगे कि कैदी वहां बढ़-चढ़ कर बातें करते हैं। जिसने दो-चार रुपये की चोरी की है, वह कहता है कि "लाखों का डाका डाला।" क्योंकि वहां वही अकड़ है। जो किसी को डंडा मारने में पकड़ा गया, वह कहता हैः "खून कर दिया--खून-खराबा कर दिया।" और वहां जो थोड़ी सी सजा लेकर आता है, उसका सम्मान नहीं होता। वहां बड़े-बड़े कैदी हैं। कोई बीस साल, कोई तीस साल, कोई चालीस साल, कोई आजन्म कारावास के लिए आया हुआ है। और तुम केवल पंद्रह दिन के लिए! सिर्फ दो सप्ताह! किया भी तो कुछ कर न पाए!
मैंने सुना हैः एक कारागृह में ऐसा हुआ कि एक नया कैदी आया। एक ही खोली में दो कैदी रहने को थे। तो पुराने कैदी ने--पुराने अंतेवासी ने पूछा, "कितने दिन की सजा हुई है?"--अपने बिस्तर पर लेटे हुए। तो उसने कहा, "ज्यादा नहीं, बस पंद्रह साल।" तो उसने कहा, "फिर ठीक है; तुम दरवाजे पर ही रहो, क्योंकि मुझे तीस साल रुकना है। तुम पहले निकलोगे।" कोठरी को बांटना है-- तो हिस्सों में। तुम दरवाजे के हिस्से पर रुको। मैं तीस साल... । तुम पहले जाओगे, वहीं ठहरो। अंदर ज्यादा आने की जरूरत नहीं।" तीस साल जिसको सजा हुई है, वह महापुरुष है! कारागृह के महापुरुष अलग हैं।
मंदिरों में जाओ; जिसने तीस दिन का उपवास किया है, वह महापुरुष है; जिसने पंद्रह दिन का किया है, वह "दरवाजे" पर ही रुकेगा। गणना वही है; हिसाब-किताब वही है। गणित में जरा फर्क नहीं। अकड़ वही है।
तुम अपने पापों की घोषणा करके भी अकड़ सकते हो, तब समझ लेना कि गलती हो गई। क्योंकि पाप को स्वीकार करने से विनम्रता आनी चाहिए--अकड़ नहीं। पुण्य करने से विनम्रता आनी चाहिए--अकड़ नहीं; नहीं तो, पाप और पुण्य का कोई भेद नहीं है। दोनों से तुम अकड़ को--अहंकार को भर ले सकते हो।
अहंकार मिटे, तो आदमी प्रामाणिक होता है। यह जो हरिद्रुमत गौतम ने कहा कि "तू ब्राह्मण है"--इसलिए कहा कि तू निर-अहंकारी है। तूने कुछ भी छिपाया न, तूने बचाया न, तूने अपने को उघाड़ दिया--बिना चिंता किए कि मैं क्या कहूंगा, मेरा क्या निर्णय होगा! तू जानता है--भलीभांति कि सिर्फ ब्राह्मण को ही प्रवेश मिल सकता है--आश्रम में। तू जानता है कि ब्राह्मण की ही चाबियां दी जा सकती हैं--ब्रह्मविद्या की। फिर भी तूने घोषणा की कि तू वेश्या-पुत्र है। तू जानता है कि सब तरफ निंदा है वेश्या की, वेश्या- पुत्रों की; फिर भी तूने सरलता से कह दिया। तू निर-अहंकारी है। निर-अहंकारिता ब्राह्मण का गुण-धर्म है। और जो निर-अहंकारी है, उससे ब्रह्म कितने दिन बचेगा; खोजने जाने की कोई भी जरूरत नहीं; तुम अपने घर में बैठे रहो; उसे आना ही पड़ेगा। वह सदा आता है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
सत्रहवां प्रवचन

अहंकार के तीन रूप--शिकायत, उदासी और प्रसन्नता

एक बार राबिया बीमार थी।
सहानुभूति में दो फकीर देखने आए। एक थे हसन और दूसरे मलिक।
हसन ने कहाः राबिया, अल्लाह जो भी सजा दे, फकीर को कोई शिकायत नहीं होती। वह उसे चुपचाप सह लेता है।
फिर मलिक बोलेः राबिया, फकीर शिकायत तो मानता ही नहीं, बल्कि मिले हुए दंड में भी खुशी मानता है।
राबिया थोड़ी देर चुप रही।
फिर वह बोलीः मुझे माफ करना; लेकिन जब मैंने खुदा को जाना है, तब से मुझे दंड जैसी कोई प्रतीति नहीं होती। तो फिर कैसी शिकायत? क्या सहना? और किसकी खुशी?
ओशो, तीन फकीरों की इस परिचर्चा पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

राबिया उन थोड़ी सी अत्यल्प, अंगुलियों पर गिनी जा सकें, ऐसी थोड़ी सी स्त्रियों में एक है जो बुद्धत्व को उपलब्ध हुई। पुरुषों में बड़ी संख्या है बुद्धत्व को पाने वाले लोगों की। स्त्रियों में वैसी बड़ी संख्या नहीं है। इसलिए राबिया का उठना-बैठना, उसका बोलना--कहनासब मूल्यवान है। और यह छोटी सी चर्चा उसके बुद्धत्व की खबर देती है।
फकीरी के तीन तल है; फकीरी के तीन मुकाम हैं। पहले तो हम साधारण आदमी
को समझ ले, फिर इन तीन स्थितियों को समझ लेंगे। इस कहानी में ये तीन फकीर तीन स्थितियों के फकीर हैं। साधारण आदमी की स्थिति क्या है, मनोदशा क्या है?
साधारण आदमी जब उसके जीवन में दुख आता है, तब शिकायत करता है। सुख आता है, तब धन्यवान नहीं देता। जब दुख आता है, तब वह कहता है कि कहीं कुछ भूल हो रही है। परमात्मा नाराज है। भाग्य विपरीत है। और जब सुख आता है, तब वह कहता है कि यह मेरी विजय है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक प्रदर्शन में गया अपने विद्यार्थियों को साथ लेकर। उस प्रदर्शनी में एक जुए का खेल चल रहा था। लोग तीर चला रहे थे धनुष से और एक निशाने पर चोट मार रहे थे। निशाने पर चोट लग जाए तो जितना दांव पर लगाते थे, उससे दस गुना उन्हें मिल जाता था। निशाने पर चोट न लगे, तो जो उन्होंने दांव पर लगाया, वह खो जाता।
नसरुद्दीन अपने विद्यार्थियों के साथ पहुंचा; उसने टोपी सम्हाली; धनुषबाण उठाया; दांव लगाया। और पहला तीर छोड़ा। तीर पहुंचा ही नहींनिशान तक। लगने की बात दूर, वह कोई दस-पंद्रह फीट पहले गिर गया। लोग हंसने लगे। नसरुद्दीन ने अपने विद्यार्थियों से कहा, इन नासमझों की हंसी की फिकर मत करो। अब तुम्हें समझाता हूं कि तीर क्यों गिरा। लोग भी चौंक कर खड़े हो गए। वह जो जुआ खिलाने वाला था, वह भी चौंक कर रह गया। बात ही भूल गया। नसरुद्दीन ने कहा, देखो यह उस सिपाही का तीर है, जिसको आत्मा पर भरोसा नहींजिसको आत्म विश्वास नहीं। वह पहुंचता ही नहीं हैलक्ष्य तक; पहले ही गिर जाता है। अब तुम दूसरा तीर देखो।
सभी लोग उत्सुक हो गए। उसने दूसरा तीर प्रत्यंचा पर रखा और तेजी से चलाया। वह तीर निशान से बहुत आगे गया। इस बार लोग हंसे नहीं। नसरुद्दीन ने कहाः देखो, यह उस आदमी का तीर है, जो जरूरत से ज्यादा आत्म विश्वास से भरा हुआ है। और तब उसने तीसरा तीर उठाया और संयोग की बात की कि वह जाकर निशान से लग गया। नसरुद्दीन ने जाकर अपना दांव उठाया और कहा, दस गुने रुपये दो। भीड़ में थोड़ी फुसफुसाहट हुई और लोगों ने पुछा, और यह किसका तीर है? नसरुद्दीन ने कहाः यह मेरा तीर है। पहला तीर उस सिपाही का था, जिसको आत्म विश्वास नहीं है। दूसरा, उस सिपाही का था, जिसको ज्यादा आत्म विश्वास है।
और तीसराजो लग गया, वह मेरा तीर है।

यही साधारण मनोदशा है। जब तीर लग जाए, तो तुम्हारा; चूक जाए, तो कोई और जिम्मेवार है। और जब तुम किसी को जिम्मेवार न खोज सको, तो परमात्मा जिम्मेवार है! जब तक तुम दृश्य जगत में किसी को जिम्मेवार खोज लेते हो, तब तक अपने दुख उस पर डाल देते हो। अगर दृश्य जगत में तुम्हें कोई जिम्मेवार न दिखाई पड़े तब भी तुम जिम्मेवारी अपने कंधे पर तो नहीं ले सकते; तब परमात्मा तुम्हारे काम आता है। वह तुम्हारे बोझ को, दुख को अपने कंधे पर ढोता है।
तुमने परमात्मा को अपने दुखों से ढांक दिया है। अगर वह दिखाई नहीं पड़ता है, तो हो सकता है, सबने मिलकर इतने दुख उस पर ढांक दिए हैं कि वह ढंक गया है; और उसे खोजना मुश्किल है।
हम शिकायत तो करते हैंसाधारण जन धन्यवाद कभी नहीं देते। सुख से अपने अहंकार को भर लेते हैं; दुख में परमात्मा से शिकायत कर देते हैं।
यह साधारण सांसारिक व्यक्ति की दशा है। इससे ऊपर उठी दशा फकीर की है,
उस संन्यासी की है, जो दुख को स्वीकार कर लेता है; शिकायत नहीं करता। लेकिन स्वीकार में भी दुख तो दुख ही है। बे-मन से ही तुमने स्वीकार किया है; तुम किसी अहोभाव से नहीं भर गए हो। चाहते तो तुम थे कि यह न होता, लेकिन हुआ तो ठीक; जैसी परमात्मा की मर्जी। लेकिन विवशता है, मजबूरी है। तुम्हारे हृदय से कोई अहोभाव नहीं उठ रहा है तुमने ऊपर से शिकायत नहीं की है, भीतर शिकायत दबी पड़ी है।
तुम कितना ही कहो कि मेरी कोई शिकायत नहीं है लेकिन तुम्हारी आंखें, तुम्हारा व्यक्तित्व सब कहेगा कि शिकायत है। तुम यह कह रहे हो चीज तो बुरी है; न होती तो अच्छा था। अब हो गयी है, तो हम स्वीकार करते हैं। लेकिन यह स्वीकार अधूरा है; ऊपर-ऊपर है। भीतर गहरे में इसका कोई अस्तित्व नहीं है। और अगर तुम झांकोगे, तो तुम पाओगे कि भीतर कहीं इनकार है। उस इनकार को दबाने के लिए ही तुमने स्वीकार का उपयोग किया है। क्योंकि जब स्वीकार होता है, तो जीवन का फूल खिलता है। जब स्वीकार होता हैबिना इनकार के, तो तुम उस जगह पहुंच गए, जिसके आगे जाने को कोई जगह ही नहीं।
इसलिए फकीरों को तुम नाराज न देखोगे, लेकिन उदास देखोगे। मुनियों को साधुओं को तुम नाराज तो न देखोगे, लेकिन हताश देखोगे। नाराजगी सांसारिक आदमी का लक्षण हैवह शिकायत कर रहा है। उसकी जो उदासी है, वह परमात्मा पर फेंक रहा है।
फकीर ने, संन्यासी ने यह काम बंद कर दिया। वह उदासी को परमात्मा पर नहीं फेंकता। वह राजी है कि ठीक है, लेकिन प्रसन्न नहीं है। न होता तो अच्छा था; हो गया तो राजी है। भीतर अस्वीकार है बहुत गहरे में शिकायत है। ऊपर से आवरण है कि मेरी कोई शिकायत नहीं।
असल में जब तुम कहते हो कि मेरी कोई शिकायत नहीं तो तुमने शिकायत कर दी। अन्यथा तुम कहते क्यों? अगर सच में ही कोई शिकायत न थी, तो शिकायत नहीं है मेरी मेरी कोईयह बात भी क्यों उठती? शिकायत हो गई जब तुम किसी से कहते होः मैं नाराज नहीं हूं तो तुम अगर सच में ही नाराज नहीं थे, तो यह बात क्यों उठती? यह तुमने कहा क्यों होता? कहने में तुमने नाराजगी ही जाहीर की है। लेकिन यह जाहिर करना अब सूक्ष्म है।
सांसारिक आदमी की नाराजगी स्थूल है; तुम्हारी नाराजगी सूक्ष्म है। सांसारिक आदमी इतना कुशल नहीं है, तुम ज्यादा कुशल हो। लेकिन परमात्मा की आंखों को धोखा देना तो इतना आसान न होगा। वह तुम्हारे भीतर छीपी हुई शिकायत को भी देख रहा है। तुम उसे कितने वस्त्रों में ओढ़ लो और तुम कितने ही सुंदर आभूषणों में सजा लो, तो भी इतना हो सकता है कि शिकायत नाराजगी न बने; लेकिन वह प्रसन्नता कभी नहीं बन सकती। और जब तक एक उत्फुल्लता का प्रवाह न हो, जब तक तुम नाच ही न उठोतब तक कैसी फकीरी! तब तक कैसा संन्यास! दूसरी स्थिति हैः जब शिकायत के लिए प्रसन्नता है; जब शिकायत के लिए धन्यवाद है; जब दंड भी मिलता है, तो तुम पुरस्कार समझते हो। और जब परमात्मा तुम्हें गिराता भी है गड्ढों में, तो तुम बहुत गहरे में जानते हो कि उठाने के लिए ही उसने गिराया। तुम्हारी नजर उठाने पर रहती है। उसने कुछ सिखाने के लिए ही मिटाया है। उसकी अनुकंपा है कि उसने तुम्हें चुना गिराने के

लिए। तुम पर उसका ध्यान है। उसने तुम्हें दुख दिया, तो तुम्हें ध्यान दिया; उसने तुम्हारी तरफ नजर की।
उसकी तरफ से आया हुआ दुख भी सौभाग्य है। तब अभिशाप वरदान बन जातें हैं; तब जीवन में एक प्रसन्नता आती है।
पहली घड़ी हैः नाराजगी की। दूसरी घड़ी हैः उदासी की। तीसरी घड़ी हैः प्रसन्नता की कि तुम अहोभाव से भरते हो। एक अनुग्रह हैतुम्हारे भीतर कि तूने मुझे दुख दिया; मेरी तरफ नजर की। मुझे इस योग्य माना कि दुख दे। मुझे बदलने योग्य समझामुझे काटने, निखारने योग्य समझा। मुझे पीड़ा दी, ताकि मैं निखर के निकल सकूं; जैसे सोना निखरता है आग से। तूने आग फेंकी, ताकि कचरा जल जाए और मेरा स्वर्ण प्रकट हो जाए। एक प्रसन्नता है।
ऐसा फकीर तुम्हें नाचता हुआ मिलेगा। तुम उसे दुख में न पा सकोगे। उसे दुख देने का कोई उपाय ही नहीं है। क्योंकि वह दुख को भी सुख में बदलने की कीमिया जानता है। अनुग्रह का भाव वह कीमिया है, वह जादू है, जिससे दुख सुख बन जाता है; अभिशाप वरदान हो जाते हैं; मृत्यु जीवन जैसी मालूम पड़ती है और अंधकार रोशन हो जाता है।
यह दूसरी स्थिति है; लेकिन यह अंतिम स्थिति नहीं है। क्योंकि जब तुम शिकायत में भी प्रसन्न होते हो, तब भी तुमने शिकायत तो स्वीकार कर ली। पहला आदमी नाराज हुआ, दूसरा आदमी उदास हुआ, तुम प्रसन्न हुए; प्रतिक्रिया हो गई। माना कि तुम्हारी प्रतिक्रिया प्रसन्नता की है और पहले आदमी की प्रतिक्रिया नाराजगी की थी और दूसरे आदमी की प्रतिक्रिया उदासी की थी। लेकिन एक बात तीनों में है कि तुम तीनों ने रिएक्ट किया, प्रतिक्रिया की; तुमने कुछ किया। तुम्हारे करने में ही भूल है। चोट तो लगी है; एक नाराज हो गया है; एक उदास हो गया है। एक ने चोट पर फूल रख लिए है; उसने चोट को ढांक लिया। लेकिन ढांक तुम क्या रहे हो! तुम्हारी प्रसन्नता के पीछे क्या छिपा है? तुम किस बात का धन्यवाद दे रहे हो? अगर शिकायत ही न उठी थी, तो धन्यवाद कैसा!
सब धन्यवाद शिकायत का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है। जब तुम धन्यवाद देते हो, तब तुम यही कह रहे हो कि तेरी बड़ी कृपा है। लेकिन अगर अकृपा मालूम नहीं पड़ी, तो कृपा कैसे मालूम पड़ेगी। और उसकी तरफ से आती हुई चोट नहीं दिखाई पड़ी, तुम उसे सुख में कैसे बदलोगे? माना कि अनुग्रह का भाव दुख को सुख में बदल देता है, अभिशाप को वरदान बना देता है; लेकिन इस कीमिया का उपयोग तो तुम तब भी करोगे, जब अभिशाप दिखाई पड़ जाए। फिर तुम उसे बदलोगे वरदान में। दुख पकड़ में आ जाए, फिर तुम उसे सुख में बदलोगे। लेकिन पहली चोट दुख की हो गई। माना कि तुमने उसे बदला और तुम बड़े कारीगर हो, और तुम्हारे पास एक महामंत्र है। तुम्हारे जीवन में दुख न आएगा। तुम्हें कोई दुखी न कर सकेगा। तुम प्रसन्न रहोगे नाचते रहोगे। लेकिन तुम्हारे नाच, तुम्हारे पैरों में बंधे हुए घुंघरू से भी अंतिम अवस्था का आदमी जानता है शिकायत का स्वर उठ रहा है। अन्यथा तुम नाचोगे क्यों?
जिसने शिकायत ही नहीं की, वह धन्यवाद भी नहीं दे सकता। वह चौथी दशा हैवह बुद्धत्व की दशा है। वहां बुद्ध प्रतिक्रिया ही नहीं करते। न नाराज हैं, नाराजगी का अर्थ हैः आक्रमण। न उदास हैं, उदासी का अर्थ हैः अनाक्रमण। न वे प्रसन्न हैं; क्योंकि प्रसन्न व्यक्ति फिर आक्रमक हो गया। उदासी मध्य में है। एक तरफनकारात्मक उदासी है, जो नाराजगी बनती है; शिकायत बनती है। एक तरफ विधायक स्थिति है, जिसको कि हम प्रसन्नता बना देते हैं। फिर बुद्धत्व हैजो दोनों से शून्य है।
बुद्ध को किसी ने नाचते नहीं देखा। बुद्ध को किसी ने प्रसन्न भी नहीं देखा; उदास भी नहीं देखान कभी दुखी, न कभी सुखी; न कभी हंसते हुए, न कभी रोते हुए। बुद्ध को लोगों ने ऐसे देखा, जैसे वे हों ही न। क्योंकि जब तुम मिट जाओगे, तो कौन प्रतिक्रिया करेगा! कौन धन्यवाद देगा?
इन तीनों स्थितियों में एक बात समान है, वह है प्रतिक्रिया, रिएक्शन।
और तब तीनों के पीछे अहंकार मौजूद है। क्योंकि प्रतिक्रिया कौन करेगा? तुम मौजूद हो, अभी तुम मिटे नहीं। कभी तुम नाराज थे, तब भी तुम थे। कभी तुम प्रसन्न हो, तब भी तुम हो; अहंकार मौजूद है।

ये अहंकार की ही तीन दशाएं हैं। अभी निर-अहंकार फलित नहीं हुआ, अन्यथा कौन कहेगा! राबिया उस चौथी दशा की सूचक है।
अब हम इस कहानी को पढ़ें।
एक बार राबिया बीमार थी। सहानुभूति में दो फकीर उसे देखने आए; एक थे हसन और दूसरे मलिक। दोनों प्रसिद्ध सूफी फकीर हैं। हसन ने कहाः राबिया, अल्लाह जो भी सजा दे, फकीर को उससे कोई शिकायत नहीं होती। वह उसे चुपचाप सह लेता है।
ये शब्द समझने जैसे हैं। क्योंकि हसन ने समझा होगा कि राबिया की बीमारी परमात्मा के द्वारा दिया गया कोई दंड है। तो हसन ने सांत्वना देने के लिए राबिया को कहाः राबिया, अल्लाह जो भी सजा दे... । लेकिन बीमारी हसन को सजा मालूम पड़ती है! यह हसन पहली दशा में है। यह सांसारिक तो नहीं रहा, संन्यासी हो गया है। लेकिन अभी संन्यासी पूरा नहीं हो पाया है; रास्ते पर है। अभी मंजिल नहीं आई है; अभी उसने पहला कदम ही उठाया है। और इसे पता भी नहीं है कि जिससे बात कर रहा है, वह मंजिल पर पहुंच गई है।
इसी हसन और राबिया के संबंध में एक घटना और है। हसन एक बार राबिया के
घर मेहमान हुआ तो उसने सुबह ही कहा, कुरान कहां है? सुबह की प्रार्थना के बाद मैं सदा कुरान से कुछ पढ़ता हूं। तो राबिया ने कहा, तुम ढूंढ़ो। कहीं न कहीं घर में होगा! हसन को हैरानी हुई, उसने कहा, कुरान! और क्या इस तरह व्यवहार किया जाता है, कि कहीं न कहीं होगा! और क्या तुम रोज कुरान नहीं पढ़ती हो, जो तुम्हें पता न हो कि कुरान कहां रखा है? राबिया ने कहा, पढ़ लिया एक बार। समझ लिया एक बार। फिर दुबारा पढ़ने का तो अर्थ यह होता है कि पहली दफा समझ नहीं आया। फिर बात हो गई; फिर तब से कुरान नहीं पढ़ी हूं। तुम्हीं ने पुछा है, इसलिए कहती हूं कि होगा कहीं। था जरूरइस घर में। अगर कोई ले गया हो, तो जरूर कहीं पड़ा होगा।
हसन को बड़ी पीड़ा हुई। उसने कहा, पड़ा होगा! कुरान के लिए ऐसे शब्द। और
जब हसन ने ढूंढा, तो निश्चित ही कुरान एक कोने में पड़ा था, उसमें बहुत दिन की धूल जम गई थी; किसी ने उसे छुआ भी नहीं था। उसने कुरान के ऊपर की धूल झाड़ी और कहा, राबिया, यह तो उचित नहीं है। फिर उसने कुरान पढ़ा, तो और हैरान हुआ; क्योंकि कई जगह कुरान में तरमीम संशोधन? जैसे मोहम्मद से कुछ भूलें हो गई हों! उसने कहा, यह किस नासमझ ने कुरान में सुधार किए हैं? लकीरें कटी हैं! राबिया ने कहा, वे मैंने ही किए हैं। क्योंकि जब मुझे कुरान समझ में आया, तो लगा कि ये वचन ठीक नहीं हैं। जब तक समझ में नहीं आया था, तब तक सब ठीक था। क्योंकि लिखा हैइस वचन में कि शैतान को घृणा करो। लेकिन जब से मैंने परमात्मा को जाना, तो घृणा असंभव हो गई। अब शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो, तो घृणा करने का कोई उपाय नहीं है। अब तो शैतान खड़ा हो कि परमात्मा खड़ा हो, मैं तो प्रार्थना ही और प्रेम ही कर सकती हूं। इसलिए लकीर काट दी। हसन, कहते हैं, छोड़ कर चला गया उस कुरान को। उसने कहा, यह कुरान अपवित्र हो गया। सुधारा हुआ कुरान किसी ने सुना है! और राबिया, तू भ्रष्ट हो गई है।
पहली सीढ़ी पर खड़े हुए संन्यासी को, फकीर को अंतिम अवस्था का संन्यासी भ्रष्ट मालूम पड़ सकता है। क्योंकि जिसको वह बड़ी मुश्किल से साध रहा है, उसको यह आखिरी अवस्था का आदमी साधता ही नहीं। जिसके लिए वह चेष्टा कर रहा है, उसके लिए यह आखिरी अवस्था का आदमी चेष्टा ही नहीं करता।
जो नाच रहा है, वह अगर बुद्ध के पास जाएगा, तो वह यही साचेगा कि शायद यह आदमी उदास बैठा है, इसलिए नाचता नहीं है। वह बुद्ध से कहेगा, उठो भी, नाचो भी, परमात्मा को धन्यवाद दो! उसे पता नहीं आखिरी अवस्था में धन्यवाद खो जाते हैं, नाच खो जाते हैं।
एक बात समझ लें; उदासी के साथ ही प्रसन्नता जुड़ी है। जब उदासी खो जाती है, तब प्रसन्नता भी खो जाती है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो आदमी उदास नहीं हो सकता, वह प्रसन्न कैसे होगा? और जिसकी आंखो से आंसू नहीं गिर सकते, वह हंसेगा कैसे? कठिन है? ये दोनों जुड़े हैं।
तुम रोते हो, तुम हंस सकते हो। तुम्हारी हर हंसी के पीछे आंसुओं का स्वाद है। और अगर तुम गौर से देखोगे, तो तुम आंसुओं को भीतर छुपा पाओगे।

गांव में ग्रामीण स्त्रियां बच्चों को ज्यादा नहीं हंसने देतीं; वे कहती हैंः ज्यादा मत हंसो, नहीं तो रोओगे। बच्चा अगर ज्यादा हंस ले, तो फिर रोता है। क्योंकि जब एक चीज खतम हो गई, तो दूसरा पहलू प्रकट हो जाता है। तुम भी अगर ज्यादा हंस लोगे, तो आंख में आंसू आने लगेंगे। कभी हंस के देखो तो तुम धीरे से पाओगे कि जब हंसी चुक जाती है, तो तुम उदास हो जाओगे। शायद इसलिए हम कंजूसी करते हैं, हम उसे रोक-रोक कर खर्च करते हैं। क्योंकि डर है कि पीछे जो छिपा है, वह प्रकट न हो जाए।
नीत्शे का वचन है कि मैं हंसता रहा हूं, तो लोग समझते हैंः मैं बहुत प्रसन्न हूं, लेकिन जहां तक मैं जानता हूं, अपने बाबत, बात बिलकूल उलटी है। मैं इसलिए हंसता हूं कि कहीं रोने न लग जाऊं। तो हंसी में रोने को छिपाए हूं। तुम्हारे सब नाच बहुत गहरे में शिकायत को छिपाए हुए हैं।
कहा हसन नेः राबिया, अल्लाह जो भी सजा दे... ।
आखिरी अवस्था के आदमी को न तो कोई सजा है, न कोई पुरस्कार है। सजा और पुरस्कार तो तभी तक हैं, जब तक पुरस्कार की आकांक्षा है। दुख तो तभी तब दुख मालूम पड़ता है, जब तक सुख की वासना है। जब तक तुम फूल की मांग करते हो, तब तक कांटा कांटा जैसा लगता है। जब फूल की मांग ही छूट गई, तो कांटे की चुभन भी चली गई। कांटे की चुभन फूल की आकांक्षा में छिपी है।
तुम जो मांगते हो, उससे विपरीत मिल जाए, तो सजा मालूम पड़ती है। यह हसन मांगता तो होगा स्वास्थ्य, इसलिए बीमारी सजा मालूम पड़ती है। हसन मांगता तो होगा धन, इसलिए गरीबी सजा मालूम पड़ती है। यह हसन मांगता तो होगा शाश्वत जीवन, इसलिए मृत्यु सजा मालूम पड़ती है। इसका क्या अर्थ हुआ?
कोई चीज न तो सजा है और न पुरस्कार। तुम्हारी व्याख्या पर, तुम्हारी वासना पर निर्भर है कि वह कैसी दिखाई पड़ेगी। राबिया सिर्फ बीमार है। हसन को दिखाई पड़ता है, यह सजा है। तथ्य तो इतना ही है कि राबिया बीमार है। इसमें सजा और पुरस्कार का क्या सवाल है!
तथ्य को हम सीधा क्यों नहीं देख पाते? हम क्यों अपने मंतव्य उसमें जोड़ते हैं?
यह हसन बीमार नहीं होना चाहता। यह हसन बीमारी से डरता है। यह हसन सदा स्वस्थ रहना चाहता है। और जो यह राबिया से कह रहा है, असल में वह अपने से ही कह रहा है। राबिया तो एक निमित्त है। वह अपना मन प्रकट कर रहा है। कह रहा हैः अल्लाह जो भी सजा दे, राबिया, फकीर को कोई शिकायत नहीं होती। शिकायत हो गई। और क्या शिकायत होगी? सजा दी है अल्लाह नेयह शिकायत हो गई। शिकायत नहीं होती, यह कहा कि शिकायत हो गई। बात समाप्त हो गई। वह उसे चुपचाप सह लेता है।
सह लेने का अर्थ क्या होता है? सह लेने का अर्थ होता हैः तुम विरोध में हो। तुम खुशी को तो नहीं सहते! तुम सदा दुख को ही सहते हो। कोई नहीं कहता है कि मैं खुशी को चुपचाप सह लेता हूं। तुम कभी नहीं कहते कि मैं सौभाग्य को चुपचाप सह लेता हूं! तुम सदा दुर्भाग्य को ही चुपचाप सहते हो।
सहने का शब्द ही फकीर के होंठों पर शोभा नहीं देता। सहिष्णुता सह लेना असहिष्णुता का एक रूप है। उसके पीछे विपरीत छिपा हुआ है। और फिर चुपचाप।
चुपचाप का मतलब हैः तुम दूसरे से न कहो, लेकिन अपने तईं तो तुम जानते
ही हो। चुपचाप में दूसरे को पता न चलेगा; लेकिन क्या तुमको भी पता नहीं चल रहा है? यह तो बात सही नहीं है।
चुपचाप सहने का अर्थ होता है कि मैं जानता हूं कि दुख है, लेकिन किसी
को कहता नहीं हूं। क्योंकि क्या शिकायत करनी; फकीर का वह लक्षण नहीं। तब फकीरी सहज नहीं है इस अवस्था में। जिसको कबीर कहते हैः साधो सहज समाधि भलि। यह समाधि नहीं है। हसन उस समाधि से परिचित नहीं है। हसन चेष्टा कर रहा है; और चेष्टा से जीवन की जो परम धन्यता है, वह कभी नहीं खिलती। चेष्टा से यही होने वाला है।
शिकायत करते थे, तो तुम उलटा साध लोगे कि शिकायत नहीं करते। पहले दुख दुख जैसा मालूम पड़ता था, तुम कहते फिरते थे... । साधारण आदमी अपने दुखों का रोना रोता रहता है। अगर तुम लोगों की बातचीत सुनो, तो नब्बे प्रतिशत

बातचीत तो दुख का रोना होती है। लोग अपना दुख बताते फिरते हैं; बढ़ा-चढ़ा कर अपने दुखों की चर्चा करते रहते हैं। जैसे अपने घाव को उघाड़ने में कुछ बड़ा मजा आता है! या जैसे कि कोई दूसरा तुम्हारे घाव को देख लेगा, तो कुछ राहत मिलती है! शायद सहानुभूति की आकांक्षा है कि कोई सहानुभूति दे। कोई कहे कि बहुत बुरा हुआ है, तो तुम्हारे मन पर मल्हम-पट्टी हो जाती है। इसलिए हम अपने दुख का रोना रोते है। लेकिन फकीर इससे उलटा करता है; वह अपने दुख को छिपाता है; वह रोता नहीं। वह किसी से कहता नहीं; वह चुपचाप सहता है। चुपचाप का क्या मतलब है? तुम जानते हो, शायद दूसरे को पता न चले। लेकिन दूसरे को पता चलने का अर्थ भी क्या है? तुम्हें पता चल गया, बात खतम हो गई। जहां तुमने जान लिया कि दुख है, सजा है, वहीं तुम छिपे अर्थों में संसारी हो गए।
फिर मलिक बोलेः राबिया, फकीर शिकायत तो मानता ही नहीं। बल्कि मिले हुए दंड में भी खुशी ही मानता है। मलिक दूसरी अवस्था का फकीर है। हसन से थोड़ी दूर तक उसकी आंखें देखती हैं। हसन से थोड़ी दूर तक उसका हृदय धड़कता है। हसन से थोड़ी दूर तक उसकी समझ जाती है; पूरी नहीं जाती; लेकिन हसन से थोड़ी दूर जाती है। उसे थोड़ा सा साफ दिखाई पड़ा कि हसन थोड़ी गलत बात कह रहा है।
फकीर शिकायत मानता ही नहीं; वह उसका लक्षण ही नहीं है। मिले हुए दंड में खुशी मानता हैधन्यवाद देता है। वह कहता हैः तेरी कृपा है। दुख आता है, तो भी कहता हैः तेरी कृपा है। जो कुछ भी घटता है, सभी को परमात्मा की कृपा मानता है। लेकिन जब सुख आता है तब, और जब दुख आता है तब, दोनों हालत में अंतर होता है या नहीं?
जब सुख आता है, तब वह कहता हैः तेरी कृपा है। और जब दुख आता है, तब भी कहता हैः तेरी कृपा है। शब्द बिलकूल एक जैसे हैं। लेकिन दोनों के पीछे छिपा हुआ मनोभाव भिन्न होगा या नहीं?
दुख आता है, तब चेष्टा से कहना पड़ता है कि तेरी कृपा है। सुख आता है, तब निश्चेष्ट भाव उठता है तेरी कृपा है। सुख आता है, तो कहने की कोई बात नहीं। बात जाहिर है कि तेरी कृपा है। दुख आता है, तो साधना करनी पड़ती है कहने की कि तेरी कृपा है।
दुख में अनुग्रह का भाव साधा हुआ है; वह सहज नहीं है; जैसा सुख में सहज है। अभी भी दुख मौजूद है। तुमने चेष्टा करके उसे छिपा लिया है। तुमने चेष्टा करके उसे छिपा ही नहीं लिया, तुमने चेष्टा करके उसको विपरीत में बदल दिया है।
पहला फकीर छिपाता है, दूसरा विपरीत में बदलता है। विपरीत में बदलना छिपाने की गहरी से गहरी तरकीब है। पहले फकीर में तुम देखो तो थोड़ी उदासी पकड़ में आ जाएगी। दुखी नहीं होगा वह; छाती नहीं पीटेगा, रोएगा नहीं। लेकिन उसकी आंखें बता देंगी कि वह हताश है, उदास है। कहेगा नहीं। लेकिन बिना कहे भी तो कहने के बहुत उपाय हैं! कहना कोई जरूरत तो नहीं।
और जब तुम चुपचाप होते हो, तब भी तो तुम बहुत कुछ कहते हो। कई बार तो ऐसा होता है कि जब तुम चुपचाप होते हो तभी कुछ कहते हो। कुछ बातें ऐसी हैंबड़े सुख, बड़े दुखजो बोल कर कहे ही नहीं जा सकते; तुम चुपचाप हो जाते हो। घर में कोई मर जाए, तो कोई छाती पीट कर रोता है, कोई चुपचाप उदास बैठा है। और ध्यान रखना, जो छाती पीट कर रो रहा है, इसका दुख जल्दी विसर्जित हो जाएगा। या दो-चार दिन में फिर ताजा हो जाएगा। इसने छाती पीट कर मामला हल कर लिया। लेकिन वह जो चुपचाप बैठा है, शायद जिंदगी भर चुपचाप बैठा रहे। उसका दुख स्थायी-भाव हो जाएगा। वह निकल ही नहीं पाएगा। वह उसमें भरा-भरा रह जाएगा। वह उसके रोएं-रोएं में समा जाएगा।
यह जो छाती पीट रहा हैतुम सोचते हो कि दुख के कारण पीट रहा है? यह दुख
को उलीच रहा है। इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब कोई मित्र दुख में हो, तो उसे पूरी तरह दुखी हो जाने दो। जितना वह दुखी हो जाएगा, उतने जल्दी दुख विसर्जित हो जाएगा। आंसू बह जाएंगे, हृदय हलका हो जाएगा। चीख-पुकार मचा लेगा, फिर जिंदगी में वापस लौट आएगा। कोई जिंदगी भर चीख-पुकार नहीं मचा सकता। और जिंदगी भर छाती भी नहीं पीट सकता। जिंदगी भर

चिल्ला-चिल्ला कर रोना तो संभव नहीं है; लेकिन आदमी जिंदगी भर उदास रह सकता है।
तो जो दुख को जोर से शिकायत नहीं बनाते, जो दुख का रेचन नहीं करते, उनका दुख उदासी बन जाता है। इसे छिपाया नहीं जा सकता। दिखाई पड़ती है उदासी। और उदासी से बड़ी शिकायत क्या है? तुम्हारा होने का ढंग कहता है कि सब गलत है। तुम बोलते नहीं, तुम सब सह लेते हो। लेकिन तुम्हारा सहना कहता है कि सब व्यर्थ है।
उसे अगर ठीक से ही छिपाना हो, तो तुम्हें उलटा रूप लेना चाहिएः जहां रोने की जरूरत हो, वहां हंसना चाहिए; जहां लोग उदास बैठ जाते हैं, वहां तुम्हें पुलकित हो जाना चाहिए; जहां लोग छाती पीटते हैं, वहां तुम्हें नाचना चाहिए। ठीक उलटे में छिपाया जा सकता है।
लेकिन तब भी तुम बुद्धत्व की आंखों से न छिपा सकोगे। तब भी तुम साधारणजन की आंखों से छिप जाओगे। उनको लगेगा कि आश्चर्य है कि तुम प्रसन्न हो, आनंदित हो। तुम बड़ी ऊंची अवस्था में पहुंच गए हो! लेकिन बुद्ध की आंखे तुम्हें आर-पार देख लेंगी। और वे जानती हैं, कि विपरीत भीतर छिपा है। उसी को छिपाने की चेष्टा में तुम नाच रहे हो। और तुम डरते हो कि अगर नाच रोका, तो उदासी जाहिर हो जाएगी।
उदासी एक में तो नाराजगी बनती है, वह भी प्रकट करने का एक ढंग है और मुक्त होने का। एक में नाच बन जाती है, वह भी मुक्त होने का एक ढंग है। क्योंकि दोनों ही स्थितियों में रेचन होता है, शक्ति बाहर निकल जाती है। एक रोकर निकालता है, एक गीत गाकर निकालता है। दोनों हालत में शक्ति बाहर चली जाती है; तुम भीतर हल्के हो जाते हो। चोट दोनों को पड़ी। दोनों के ढंग अलग-अलग हैं।
मलिक ने कहाः राबिया, फकीर शिकायत तो मानता ही नहीं। मानो या न मानो, जानते हो या नहीं, सवाल वह है। मानने का कहां सवाल है? फकीर शिकायत मानता नहीं, लेकिन जानता तो है; जानता है, फिर भी मानता नहीं। लेकिन जान ली तो बात खतम हो गई। तुम्हारे मानने का सवाल कहां है? यह कोई विश्वास और आस्था की बात तो नहीं कि तुम मानोगे, तब सवाल है। तुमने जान लिया भीतरपहले क्षण मेंशिकायत हो गई। फिर तुम कुछ भी करो, शिकायत के कांटे को कितने ही आभूषण हीरे-जवाहरातों में ढांक दो, लेकिन वह कांटा तुम्हारे हृदय में लगा हुआ है। हां, जो नासमझ हैं, वे शायद समझें कि कांटा नहीं है हीरे-जवाहरात हैं। लेकिन जो समझदार हैं, वे समझेंगे कि हीरे-जवाहरात हैं ही वहां इसलिए कि कहीं कांटा छिपा है। तुम कुछ छिपाना चाह रहे हो। तुम कुछ बचाना चाह रहे हो। तुम चुपचाप सह रहे हो, लेकिन तुम्हारी चुप्पी भी कहेगी। और तुम्हारा सहना काफी शिकायत है।
फकीर शिकायत मानता ही नहीं है, लेकिन मिले हुए दंड में खुशी भी मानता है।
पर यह मानना ही है। शिकायत मानता ही नहीं; मिले दंड में भी खुशी मानता है। कोशिश करता है मानने कीकि खुशी है। लेकिन कौन मान सकता है खुशी! जब तुम्हें दुख दिखाई पड़ता हो, तब तुम कैसे मानोगे कि यह खुशी है? झूठ होगा सब। तुम अपने को ही धोखा दोगे। तुम तरकीबें करोगे, जिससे कि खुशी मालूम पड़े। डेल कारनेगी जैसे लोग इस तरह की सलाहें देते हैं।
डेल कारनेगी ने लिखा है कि एक आदमी लंगड़ा है और उसकी परमात्मा के प्रति बड़ी शिकायत है, वह बहुत नाराज है, बहुत दुखी है। फिर एक दिन वह एक आदमी को देखता है, जिसके दोनों पैर कटे हैं और वह जो दोनों पैर कटा हुआ आदमी है, एक पहिए से चलने वाली कुर्सी में बैठा हुआ प्रसन्न है। तो वह एक पैर का लंगडा आदमी सोचता है कि इस आदमी के दोनों पैर नहीं हैं! परमात्मा की मुझ पर कितनी कृपा है।
जो लोग कहते हैं कि तुम्हे दुख में भी सुख मानना हो, वे कहते हैंः अपने
से ज्यादा दुखी लोगों की तरफ देखना, तो तुलना से सुख मानने में आसानी हो जाएगी। यह जरा समझ लेने जैसा है।
अगर दुखी होना हो, तो अपने से ज्यादा सुखी लोगों की तरफ देखना; तुलना
से दुख आ जाएगा। तुम्हारे पास झोपड़ा है, तो महल की तरफ देखना; महल से तुलना

करना; तुम दुखी हो जाओगे। लेकिन तुम्हारे झोपड़े से भी छोटे झोपड़े है; झोपड़-पट्टियां है; तुम अपने झोपड़े के साथ उनकी तुलना करनाः सुखी हो जाओगे। लेकिन दोनों अपने जैसे हैं, क्योंकि दोनों तुलना करते है। और पहले के दुख में और दूसरे के सुख में भेद क्या है? प्रक्रिया तो एक ही है। पहले में दुख पैदा हुआ, क्योंकि उसके पास महल है, मेरे पास झोपड़ा है। दूसरे में सुख पैदा हुआ, क्योंकि मेरे पास महल है और उसके पास झोपड़ा है। लेकिन गणित में कहां फर्क है? गणित तो एक ही है।
और तुम अपनी आंखो को कैसे बचाओगे? तुम कब तक झोपड़ों की तरफ देखते रहोगे? महल भी हैं। और वे दिखाई पड़ेंगे। और जब तक तुम खुश होते हो झोपड़े को देख कर कि मेरे पास कम से कम इस झोपड़े से बेहतर मकान है, तो तुम कैसे अपने को दुखी होने से बचा ओगे जब तुम महल देखोगे! और महलों से आंखे चुरा कर जाओगे कहां? तुम्हारे मन का गणित तो एक है।
जहां तुलना है, वहां सुख-दुख दोनों मौजूद रहेंगे। सुख-दुख तो तभी तिरोहित होते हैं, जब तुलना गिर जाती है। लेकिन तुलना कब गिरती है, जब वासना अशेष हो जाती है। जब तक वासना है, तुलना नहीं गिर सकती। जब तक तुम चाहते हो कुछ, तब तक जिनके पास है, उन्हें देख कर तुम पीड़ित होओगे। जब तक तुम चाहते हो कुछ, तब तक जो तुम्हारे पास है, उसे देख कर और वही दूसरों के पास नहीं है, उन्हें देख कर तुम प्रसन्न होओगे। तुम्हारे सुख-दुख दूसरों पर निर्भर हैं। और फकीर वह है, जिसने भीतर देखना शुरू किया; जो तुलना नहीं करता।
मलिक ने कहाः राबिया, फकीर शिकायत तो मानता ही नहीं; बल्कि मिले हुए दंड में खुशी ही मानता है। लेकिन मानता का अर्थ ही होता है झूठ। सत्य को मानना नहीं पड़ता है।
लोग मेरे पास आते हैं; वे कहते हैंः हम ईश्वर में मानते हैं। मैं उनसे पूछता हूंः तुम सूरज में मानते हो? चांद-तारों में मानते हो? वे कहते हैं कि नहीं; क्या जरूरत मानने की! वे हैं। ईश्वर में मानते हैं। ईश्वर पर तुम्हें शक है, इसीलिए मानते हो। शक न होता, तो मानते क्यों!
संदेह मानता है; संदेह विश्वास करता है, ताकि संदेह छिप जाए। अनुभव मानता ही नहीं; अनुभव जानता है।
सूरज को मानने की कोई जरूरत नहीं। और दुनिया में कोई संप्रदाय नहीं सूरज को मानने वाले लोगों का संप्रदाय, सूरज को न मानने वाले लोगों का संप्रदाय! ऐसा कोई संप्रदाय नहीं है। क्योंकि तुम्हें दिखाई तो कुछ पड़ता नहीं। कोई मानता है कि उसके चार हाथ हैंन चार हाथ दिखाई पड़ते हैं। कोई मानता है कि उसके दो हाथ हैं न दो हाथ दिखाई पड़ते हैं। विवाद का कोई निर्णय कभी हो नहीं सकता। उसकी शकल कैसी है? कोई शकल नहीं दिखाई पड़ती। फिर कुछ मानते हैं कि वह है। और आधी दुनिया मानती है कि वह है ही नहीं। इस विवाद का भी निर्णय नहीं हो सकता।
ईश्वर के संबंध में इतना विवाद है, क्योंकि अंधेरे मे टटोल रहे हो। सूरज के संबंध में इस तरह का विवाद नहीं है। क्योंकि अंधेरे में टटोलने का सवाल नहीं है। सूरज को अंधे भी इनकार नहीं करते हैं जिनको दिखाई भी नहीं पड़ता। और ईश्वर को आंख वाले भी इनकार करते हैं। जरूर अंधेरा बड़ा गहरा है। टटोल-टटोल कर कोई बात कही जा रही है, जिसका कोई पक्का भरोसा नहीं है। जो मानता है, उसको भी पक्का भरोसा नहीं है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब तुम अपनी मान्यता की बहुत घोषणा करते हो, तो तुम सिर्फ अपने भीतर के संदेह की खबर देते हो। जब तुम जोर से टेबल पीट कर चिल्लाते हो कि मैं ईश्वर को मानता हूं तो टेबल का पीटना बता रहा है कि तुम किसी और के लिए टेबल नहीं पीट रहे हो; अपने को ही भरोसा दिलाने के लिए टेबल पीट रहे हो।
जिस चीज में तुम्हें जितना शक होता है, उतना ही तुम उस संबंध में विचार करने से भयभीत होते हो। अगर कोई ईश्वर की चर्चा करने लगे और तर्क करने लगे कि ईश्वर है या नहीं तो तुम नाराज हो जाते हो। नाराजगी इस बात की खबर है कि भीतर संदेह है; मान्यता ऊपर-ऊपर है। पतली सतह है उसकी। जरा-सा तर्क उसे तोड़ दे सकता है।

सच्चा आस्तिक कभी भी भयभीत न होगा तुम्हारे तर्कों से; वह आनंदित होगा। लेकिन तुम्हारी आस्तिकता झूठी है।
यह जो हसन कह रहा है कि फकीर दंड में भी खुशी मानता है। दंड तो दिखाई पडता है, लेकिन खुशी मानता है! भीतर क्या है? भीतर दंड का बोध है; ऊपर-ऊपरसतह पर खुशी की धारणा है।
राबिया थोड़ी देर चुप रही। क्यों थोड़ी देर चुप रही? क्या कारण थाचुप रहने का? राबिया को जो कहना था, वह भी सीधा कह देती, जैसा हसन ने कहा, मलिक ने कहा। लेकिन राबिया थोड़ी देर चुप रही। क्योंकि राबिया को जो कहना था, वह कहने में आता नहीं, कठिन है। मलिक ने, हसन ने, जो भी कहा, वह सीधा-सीधा है। वह कहा जा सकता है। वह द्वंद्व के भीतर है। राबिया का जो कहना है, वह निर्द्वंद्व की खबर है। वह अखंड, अद्वैत की बात है। वह कही नहीं जा सकती। इसलिए राबिया थोड़ी देर चुप रही।
इसलिए राबिया थोड़ी देर चुप रही कि कहे या न कहे। क्योंकि ये समझेंगे नहीं। यह हसन बिल्कुल न समझ पाएगा। क्योंकि यह मानता है कि शिकायत न करना, बस, काफी है। यह इसको मंजिल मालूम पड़ रही है। और न केवल यह खुद मानता है, इस मंजिल से इतना अभिभूत हो गया है कि मुझे भी वही सिखाना चाहता है।
और यह हसन अंधा है; नहीं तो राबिया को इसने अगर गौर से देखा होता, तो इसकी वाणी वहीं चुप हो गई होती। क्योंकि राबिया का शरीर होगा बीमार; राबिया जैसी स्वस्थ स्त्री खोजनी मुश्किल है। इसने अगर राबिया की आंख में जरा झांका होता, तो इसे परम स्वास्थ की किरण दिखाई पड़ती। इसने राबिया की जरा सी गंध को अपने नासापुटों में लिया होता; तो यह जानता कि यहां परमात्मा घट रहा है।
राबिया को सिखाने की बात ही यह बताती कि आदमी अंधा है। फिर अंधे से प्रकाश की चर्चा करनी या नहीं करनी?
हसन बोला भी नहीं था कि मलिक ने फौरन उत्तर दिया। यह मलिक विवादी है। इसने सोचा भी नहीं, झिझका भी नहीं। इसने तत्क्षण, जो हसन ने कहा था, उसको खंडित किया। और कहा, फकीर की कोई शिकायत ही नहीं होती। सहने का कोई सवाल नहीं है। फकीर तो दंड को खुशी मानता है। इसने तत्क्षण विवाद मौजूद कर दिया। राबिया चुप रही। क्योंकि राबिया किसी का खंडन नहीं कर रही है। कोई विवाद नहीं कर रही है।
विवादी एक क्षण चुप नहीं रह सकता। क्योंकि तुमने कुछ कहा, तत्क्षण विवादी खंडित करेगा। सिर्फ जानने वाला थोड़ी देर चुप रहेगा। क्योंकि वह स्थिति को पूरा का पूरा देखना चाहेगा। और जानने वाले की बड़ी कठिनाई यह है कि जो वह जानता है, उसे शब्द में रखते ही वह भी विवाद जैसा मालूम पड़ता है। इसलिए राबिया झिझकी।
तुम ध्यान रखना कि सिर्फ ज्ञानी झिझकते हैं। एक-एक शब्द कीमती है। और एक-एक शब्द चुनना है। और हर शब्द अधूरा है। इसलिए जो कहना चाहते हैं, वह पूरा कहा नहीं जाता है। और फिर कहीं शब्द विवाद न बन जाए! तुमने कहा था कुछ बताने को। और कहीं विचार की उलझन खड़ी न हो जाए! शब्द कहीं सिद्धांत न बन जाए, इसलिए ज्ञानी झिझकते हैं।
राबिया चुप रही, फिर वह बोलीः मुझे माफ करना। ज्ञानी का हर वक्तव्यचाहे वह कहे या न कहेइसी से शुरू होता है कि मुझे माफ करना। वह माफी किस बात की मांग है?
जब हसन ने कुछ कहा, तो मलिक ने माफी नहीं मांगी। तत्क्षण खंडन किया। विवाद दूसरे को तोड़ने में रस लेता है। विवाद को सत्य की कोई अभीप्सा नहीं है। दूसरा असत्य है, यह सिद्ध करने में मजा है; मैं सत्य हूं, तुम गलत हो। मुझे सवाल नहीं है कि सत्य क्या है। मैं जो कहता हूं, वह सत्य है। तुम गलत हो, मैं सत्य हूं। मेरा अहंकार सत्य है। इसलिए विवादी माफी नहीं मांगता। माफी का कोई सवाल ही नहीं है, दूसरे को तोड़ देना, गिरा देना है। दूसरे को चारों-खाने चित्त कर देना है।
विवाद एक तरह का युद्ध है। और आदमी ने लड़ना बंद कर दिया हाथों से मल्ल-युद्ध बंद कर दिया, लेकिन युद्ध बंद नहीं होता। युद्ध की आदत बंद नहीं होती; तो शब्दों से लड़ता है। नासमझ लट्ठ लेकर लड़ते हैं; समझदार शब्दों से

लड़ते हैं; लेकिन शब्दों का उपयोग लट्ठ की भांति करते हैं। दूसरे का सिर खोल देना है, वहां माफी क्या मांगनी है! दूसरे को झुकाना है।
लेकिन राबिया जैसे लोग जब बोलते हैं तो चाहे वे कहें या न कहें, लेकिन उनका हर वक्तव्य मुझे माफ करना उससे ही शुरू हो रहा है। क्योंकि वे विवाद के हिस्से नहीं बनना चाहते हैं। वे किसी को गलत सिद्ध करने को उत्सुक नहीं हैं। सत्य को प्रकट करने की तो उत्सुकता हैकिसी को असत्य सिद्ध करने की उत्सुकता नहीं है। इसलिए ज्ञानी बहुत बार तो चुप ही रह जाएगा।
जहां अज्ञानी बहुत मुखर होंगे, वहां वह चुपचाप हट आएगा। वह उस शब्दों
के जाल का हिस्सा न बनना चाहेगा।
राबिया थोड़ी देर चुप रही। उसने तौला होगाः कहूं, न कहूं। कहने पर ये समझ पाएंगे, न समझ पाएंगे? कहा हुआकिसी उपद्रव, विवाद, तर्क में ले जाएगा या सत्य की झलक लाएगा? लेकिन फिर उसने तय किया कि वह कहे। यह तय करना भी बताता है कि उसने हसन और मलिक की काफी इज्जत की।
अगर तुम होते हसन और मलिक की जगह, तो शायद वह बोलती ही नहीं, चुप ही रह जाती। अगर पहले नंबर का आदमी होता, जिसको मैंने सांसारिक कहा है, तो राबिया बोलती ही नहीं। लेकिन ये दोनों खोजी थे। गलत रास्ते पर हों, लेकिन खोजी थे, जिज्ञासु थे। इनकी धारणा भ्रांत हो, लेकिन चेष्टा थी, आकांक्षा थीखोज की। ये उलटे चल रहे हों, लेकिन चल तो रहे थे। इनके चलने को देखने के कारण बोली।
उसने चुप्पी में इनमें झांका होगा। ये भले लोग थे। इनकी धारणा भ्रांत थी, पर लोग बुरे न थे। और किसी दिन उपलब्ध हो सकते हैं। तो इनमें बीज डालने जैसे थे। इस चुप्पी में उसने भूमि की परिक्षा की और फिर उसने कहाः मुझे माफ करना।
यह माफी किस बात की मांग रही है वह! माफी इस बात की मांग रही हूं कि मैं
जो कहूं, उसे तुम मेरे अहंकार की घोषणा मत समझना। माफी इस बात की मांग रही हूं कि मैं जो कहूं, उससे तुम चोट मत ले लेना। तुम यह मत समझना कि मैंने तुम्हें गलत कहा। तुम यह मत समझना कि तुमने जो मुझे सलाह दी, वह मैंने स्वीकार नहीं की। तुम यह मत समझना कि तुम्हें मैं अज्ञानी कह रही हूं। मुझे माफ करना। लेकिन जब से मैंने खुदा को जाना है माफी तुमसे मांगती हूं लेकिन मेरी अड़चन है कि जब से खुदा को जाना है, तब से मुझे दंड जैसी कोई प्रतीति नहीं होती। मुश्किल हैः मुझे कहना ही पड़ेगा। राबिया झिझकती है, न कहना पड़ता, तो अच्छा था। लेकिन सत्य को बिना कहे छोड़ना भी कठिन है। यही सत्य की दुविधा है।
जब तुम सत्य को जानते हो, तब तुम बड़ी मुश्किल में पड़ते हो। उसे कहना कठिन। उसे बिना कहे छोड़ना कठिन! तुम उसे कहो, तो भूल होती है। तुम उसे न कहो, तो भूल होती है; तुम उसे कहो तो डर है कि वह गलत समझा जाए; निन्यानबे मौकों पर गलत ही समझा जाएगा। और तुम उसे न कहो, तो डर है कि जो एक आदमी समझ लेता, उसका लाभ हो जाता, उसका मंगल होता, वह वंचित रह जाएगा। उसका पाप तुम्हारे सिर है। सौ से बोलने पर कोई यह तो आशा भी नहीं करता कि सौ समझ लेंगे। एक भी समझ ले तो बहुत है। लेकिन उस एक के लिए भी बोलना तो पड़ेगा। जब से मैंने खुदा को जाना, तब से मुझे दंड जैसी कोई प्रतीति नहीं होती। जब से मैंने खुदा को जाना है, तब से मैंने दुख को नहीं जाना है। तो शिकायत का तो सवाल नहीं; उदास होने की कोई बात नहीं; प्रसन्नता भी किस बात की? और धन्यवाद किसको देना है?
वस्तुतः ईश्वर को जानना और दुख से अनजान हो जाना, एक ही घटना के दो हिस्से हैं। जिसने ईश्वर को जान लिया है, वह दुख को नहीं जान सकता है। जो दुख को जान रहा है, वह ईश्वर को नहीं जान सकता। दुख संसार है। जब तक तुम दुख को जानते हो, तब तक तुम कैसे परमात्मा को जानोगे?
दुखी चित्त परमात्मा को नहीं जान सकता। दुखी चित्त इतना व्याकुल है, इतना विक्षुब्ध है... दुखी चित्त ऐसा है, जैसे आंधी-तुफान में झील होती है। चांद का प्रतिबिंब बनता नहीं, टूट-टूट जाता है, बिखर-बिखर जाता है।

मौन चित्त ऐसा है, जैसे झील शांत होती है, जब कोई आंधी-तुफान नहीं होता, कोई लहर नहीं होती, और झील दर्पण बन जाती है, तब चांद झलकता है, तब चांद का प्रतिबिंब बनता है।
कहा राबिया नेः जब से मैंने खुदा को जाना, तब से मुझे दंड जैसी कोई प्रतीति नहीं होती। तो कैसी शिकायत! क्योंकि दंड की, दुख की प्रतीति हो, तो फिर हम प्रतिक्रिया कर सकते हैं। प्रतिक्रिया तो नंबर दो है, पहले प्रतीति है।
प्रतीति हो, तो फिर प्रतिक्रियाएं तीन तरह की हो सकती हैं। एक साधारण आदमी की प्रतिक्रियाकि वह नाराज हो रहा है, शिकायत कर रहा है। फिर नंबर एक फकीर की प्रतिक्रिया कि वह शिकायत नहीं कर रहा है, दंड को सौभाग्य मान रहा है कि तूने मेरी तरफ कृपा की।
लेकिन राबिया बड़ी गहरी बात कहती है। वह कहता हैः जब दंड की प्रतीति
ही न हो तो प्रतिक्रिया कैसी? जब बीज ही नहीं है, तो फिर वृक्ष ऐसा हो कि वैसा हो यह बात ही फिजूल है। तो कैसी शिकायत? क्या सह लेना? और किसकी खुशी? तब नाराजगी खो जाती है, उदासी खो जाती है, प्रसन्नता खो जाती है। वे तीनों मन के ही हिस्से हैं। प्रसन्नता भी मन का ही खेल है। उदासी भी मन का ही खेल है। शिकायत, नाराजगी भी मन का ही खेल है इसे तुम ठीक से समझ लेना।
सभी प्रतिक्रियाएं मन का हिस्सा हैं। प्रतिक्रिया मन है। तुम बुद्ध
के पास गए और तुमने गाली दी। बुद्ध के भीतर क्या होता है? अगर कुछ भी होता है, तो वहां बुद्ध ही नहीं हैं। कुछ भी नहीं होता। जैसे सूने मकान से गाली गूंजीएक कोने से प्रवेश की और दूसरे कोने से निकल गई; उस गाली से न तो उस कमरे की दीवालों पर कोई छाप पड़ी, न उस गाली का कोई स्मरण कमरे के भीतर छूटा; न कमरा कंपित हुआ, न कमरे ने कोई रुख लिया, न कमरे ने अपने को बचाना चाहा; न धन्यवाद दिया, न शिकायत की। कमरा खाली था। गाली गूंजी और निकल गई। प्रतीति नहीं होती, इसलिए प्रतिक्रिया नहीं होती है।
कैसी शिकायत? क्या सह लेना? किसकी खुशी! और यह कब होगा? जब प्रतिक्रिया न होगी। यह कब होगा? जब प्रतीति न होगी।
जब तक तुम हो, तब तक तो प्रतीति होगी। कोई गाली देगा, तो तुम कैसे बचोगे? और तुम बचने के लिए जो भी करोगे, वही तो प्रतिक्रिया है; वही तो वे दो फकीर कह रहे हैं। वे कह रहे हैंः कोई गाली दे, सह लेना। वे कहते हैंः कोई गाली दे, धन्यवाद दे देना। लेकिन करना जरूर कुछ! करने वाले को दोनों स्वीकार कर रहे हैं कि तुम वहां हो।
राबिया यह कह रही है कि जब परमात्मा होता है, तो तुम कहां बचोगे? तब वही है गाली देने वाला; वही होगा गाली सहने वाला। सब खेल उसका है, हम बीच में आते नहीं। हम हैं नहीं; नांव खाली है। इसलिए सारे धर्म अहंकार-विसर्जन पर जोर देते हैं। वही एकमात्र साधना है।
अहंकार को मौजूद रख कर तुम जो भी साध लोगे, वह ऊपरी होगा। भीतर तुम मौजूद हो और तुम्हारी ऊपरी प्रतिक्रियाओं से कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम शिकायत करो, कि धन्यवाद दो। तुम नाराज होओ कि खुश होओ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम हो, इससे फर्क पड़ता है। तुम नहीं हो, इससे फर्क पड़ता है।
सारी साधना अहंकार-घात है। खुद को मिटाना है। और जब तुम नहीं रह जाते हो, तो अचानक तुम पाते हो, परमात्मा सदा से विराजमान रहा है। तुम जिस सिंहासन पर बैठे थे, वह उसका ही सिंहासन है। तुम्हारी वजह से वह दिखाई नहीं पड़ता था।
तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं, और कोई परदा नहीं। तुम पर परदा नहीं पड़ा है, तुम ही परदा हो। इसलिए परदे को हटाने से कुछ भी न होगा; तुम्हीं को हटाना पड़ेगा। जिस क्षण भी तुम पाते हो कि भीतर तुम नहीं हो, कमरा खाली है शून्य हो गया तब तुम राबिया को समझ पाओगे।
पता नहीं हसन और मलिक समझ पाए कि नहीं! राबिया जैसा व्यक्तित्व हमेशा अनसमझा रह जाता है।
राबिया को लोग नास्तिक कहते हैं। क्योंकि परमात्मा का धन्यवाद नहीं।
राबिया कभी मसजिद न जाती। राबिया कभी कुरान न पढ़ती, कभी प्रार्थना न करती।

राबिया को किसी ने भी नाचते, गीत गाते नहीं देखा। यह राबिया किस तरह का व्यक्तित्व है?
अगर तुम समझ पाओ, तो राबिया एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसमें कोई केंद्र नहीं रहा; जिसका कोई मैं-भाव नहीं। कौन जाए मसजिद; कौन करे प्रार्थना; कौन पढ़े कुरान?
इसी को कबीर सहज समाधि कहते हैं। कौन... किसकी पूजा? कौन करे पूजा? तो कबीर कहते हैंः उठना-बैठना, खाना-पीना यही मेरी पूजा है। किसको लगाऊं भोग? किस मंदिर की परिक्रमा करूं? चलना, फिरना, डोलना, यही मेरी परिक्रमा है। लेकिन कबीर या राबिया हमारे लिए बड़े दूर मालूम पड़ते हैं। इतनी दूर मालूम पड़ते हैंहमारी पकड़ के बाहर।
तुम हसन को भी समझ सकते हो; तुम मलिक को भी समझ सकते हो। क्योंकि वे भले फकीर हों, संसार के बाहर नहीं हैं। उनकी भाषा तुम्हारी ही भाषा है। कोई कहता हैः शिकायत करो। कोई कहता हैः शिकायत मत करो। कोई कहता हैः शिकायत की स्थिति में प्रसन्नता रखो। यह सब समझ में आता है। राबिया पकड़ के बाहर छूट जाती है। और राबिया ही समझने जैसी है। क्योंकि जो तुम्हारी पकड़ के बाहर छूट जाता है, वही तुम्हें तुम्हारी पकड़ के बाहर ले जाएगा।
सदगुरु की सदा यह चेष्टा होती है कि धीरे-धीरे तुम्हें उस तरफ ले जाने लगे, जो तुम्हारी पकड़ के बाहर छूटता है। नहीं तो तुम्हारी खुद की पकड़ कैसे छूटेगी! तुम्हें धीरे-धीरे ज्ञात से अज्ञात और अज्ञात से अज्ञेय की तरफ ले जाता है। वह धीरे-धीरे तुम्हारे पैर के नीचे की भूमि को सरकाता जाता है और एक दिन सूने आकाश में छोड़ देता है असहाय एक महाखड्ड में जिसका अंत ही नहीं आता। तुम गिरते ही जाते हो, गिरते ही जाते हो। कोई सतह नहीं आती, जहां तुम खड़े हो सको। क्योंकि तुम खड़े हुए कि अहंकार वापस आ जाएगा। तुम गिरते ही जाओगे, गिरते ही जाओगे। तभी तुम एक ऐसी घड़ी में आओगे, जब तुम खड़े होने की फिकर छोड़ दोगे; उसी क्षण अहंकार तिरोहित हो जाएगा।
इस कहानी को ठीक से समझना। हसन और मलिक समझ में आ जाएंगे; वह कचरा हैजो तुम्हारी समझ में आ जाए, वह कचरा है। जो समझ में न आए, उस पर थोड़ा श्रम करना। आंख खोलना, ज्यादा सजग होना, ज्यादा ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करना।
जो तुम्हारी समझ में न आए, वही तुम्हारे लिए सीढ़ी बनेगी; उससे ही धीरे- धीरे तुम अपने से दूर जाओगे। और अपने से दूर जाने का अर्थ हैः परमात्मा के निकट जाना। जितने तुम अपने से दूर जाओगे उतने ही परमात्मा के पास। और जितने तुम अपने पास हो उतने ही हो परमात्मा से दूर। परमात्मा और तुम्हारे बीच यही फासला है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
अठारहवां प्रवचन

आत्मिक विस्फोट की पात्रता

झेन साधक बनजान बाजार से गुजर रहा था। एक कसाई और एक ग्राहक की बातचीत उसके कानों में पड़ी।
ग्राहक ने कहाः मुझे सर्वश्रेष्ठ मांस का टुकड़ा ही देना।
कसाई बोलाः मेरी दुकान में सब कुछ सर्वश्रेष्ठ ही है। यहां कुछ भी नहीं है, जो सर्वश्रेष्ठ नहीं।
बस, इतना सुन कर बनजान ज्ञान को उनलब्ध हो गया।
ओशो, कृपा कर इस कथा का मर्म हमें बताएं।

परम ज्ञान की घटना किसी भी क्षण घट सकती है। कहावत है कि एक छोटा सा तिनका भी उंट को बिठा सकता है; लेकिन वह आखिरी तिनका होना चाहिए। ऊंट पर वजन को रखते जाओ, रखते जाओ, सहता जाएगा, एक सीमा तक। फिर आखिरी तिनका भी उसे बिठा देगा, जब वजन सीमा के पार हो जाएगा। बरतन में पानी को भरते जाओ, भरते जाओ, फिर एक सीमा है, उसके बाद एक बूंद भी ज्यादा, बरतन में न समा सकेगी। फिर एक बूंद भी बरतन के बाहर पानी को ले जाएगी। आखिरी बूंद आखिरी तिनका क्रांतिकारी सिद्ध होता है।
पानी को तुम गरम करते हो; होता है गरमएक डिग्री से निन्यानबे डिग्री तक; लेकिन भाप नहीं बनता। आखिरी डिग्रीसौवीं डिग्री और पानी एक छलांग लेता है; क्रांति घटती है और पानी भाप बन जाता है। आखिरी डिग्री में और पहली डिग्री में क्या फर्क है? गरमी वही हैः पहली डिग्री में भी उतनी ही गरमी है, जितनी आखिरी डिग्री में।
पहले तुम पत्थर भी रखते रहे ऊंट पर, तो वह न बैठा और आखिरी तिनके ने बिठा दिया! तिनके में क्या कोई ज्यादा वजन है? सवाल तिनके का नहीं है; सवाल ऊंट की सामर्थ्य का है। आखिरी सीमा फिर छोटी सी घटना भी क्रांति बन जाती है।
इस बात को ख्याल में ले लो, और फिर यह कहानी समझ में आ जाएगी; अन्यथा कहानी बड़ी बेबूझ है। और झेन में ऐसी बहुत सी कथाएं है। और ध्यान रखना; ये कथाएं ऐतिहासिक घटनाएं है, कहानियां नहीं है। ऐसा हुआ है। और ऐसा झेन साधकों को ही हुआ है, ऐसा नहीं; दुनिया में हर कोने में, जहां भी लोगों को परम ज्ञान उपलब्ध हुआ है, ऐसी घटनाएं घटी है; कोई छोटी सी बात क्रांति बन जाती है।
अगर बात को सीधा समझो, तो वह तिनका है; उससे ऊंट कैसे बैठेगा! अगर गरमी
को सीधा नापा, तो वह एक डिग्री है; चाहे पहली हो, चाहे सौवीं डिग्री हो; उससे पानी भाप कैसे बनेगा? लेकिन देखना पड़ेगा कि जिसके जीवन में क्रांति घटी, वह कहां था।
अगर तुम इनक्यानबे डिग्री पर हो, तो वही डिग्री तुम्हें सिर्फ थोड़ा
सा गरम करके रह जाएगी; तुम बानबे डिग्री पर गरम हो जाओगे। लेकिन जो निन्यानबे डिग्री पर है, वही एक डिग्री, उसमें क्रांति घटा देगी। वह तुम्हारी समझ में न आएगा।
तुम एक तिनका ऊंट पर रख दो। ऊंट पर कोई वजन नहीं है, तो ऊंट को तिनके का पता ही न चलेगा? और वह बहुत चकित होगा सुन कर कि कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि तिनके के बोझ से ऊंट बैठ गए। वह हंसेगा कि पागल हो गए हो! तिनके का वजन पता ही नहीं चलता, ऊंट बैठेंगे कैसे! लेकिन अगर ऊंट पहले से ही लदा हो और आखिरी घड़ी आ गई हो सामर्थ्य की सीमा आ गई हो तो एक तिनका भी काफी है।
सवाल तिनके का नहीं है; सवाल तुम्हारी मनोदशा का है। अगर कोई व्यक्ति खोज रहा है, खोजता जा रहा है और उसने अपनी सारी सामर्थ्य लगा दी है खोज में, कुछ बचाया नहीं है। इसे ठीक से ख्याल में ले लेना।
तुम सदा अपने को बचा कर चलते हो, इसलिए चूक रहे हो जन्मों जन्मों से।
इस जन्म में भी चूक जाओगे अगर बचाया; क्योंकि तुम्हारा ऊंट कभी पूरा लदा हुआ न होगा। आखिरी तिनका, कभी आखिरी तिनका सिद्ध न होगा। तुम्हारा पानी

कुनकुना ही होगा, कभी निन्यानबे डिग्री तक न उबलेगा। इसलिए आखिरी डिग्री तुममें क्रांति न ला सकेगी।
तुम्हें बुद्ध भी मिल जाएं, तो भी तुम बैठोगे नहीं। तुम्हें कृष्ण भी मिल जाएं, तो भी तुम भाप न बनोगे। और कभी-कभी ऐसा हुआ है कि एक कसाई की चर्चा और कोई संबोधि को उपलब्ध हो गया।
कहा जाता है कि लाओत्सु वृक्ष के नीचे बैठा था और एक सूखा पत्ता वृक्ष
से टूटा हवा के झोंक मेंऔर गिरने लगा। उस लंबे वृक्ष से सूखे पत्ते गिरने को देखते-देखते जब तक वृक्ष से पत्ता जमीन तक आया, तब तक लाओत्सु ज्ञान को उपलब्ध हो चुका था। यह ऊंट पूरा लदा होगा; अन्यथा एक सूखा पत्ता किसको ज्ञान दे सकता है! तुम बैठे हो उस वृक्ष के नीचे, सारे पत्ते भी सूख कर गिर जाएं, तो भी कुछ न होगा।
एक झेन फकीर स्त्री पानी भरकर लौटती थी। कंधे पर कांवर रखी थी। दोनों तरफ मिट्टी के घड़े लटके थे और अचानक कांवर टूट गई। पूरे चांद की रात थी। घड़ा गिरा और फूट गया। इधर घड़ा फूटा, उधर उसके भीतर कोई क्रांति घट गई; वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गई। यह घड़े की टूटने की आवाज, यह पानी का बिखर जाना, बस क्रांति घट गई।
तुम कहोगे, अगर क्रांति ऐसे घटती हो, तो हम सारे बाजार में जितने घड़ें
हो जाएं; सभी को तोड़ डालें। नहीं तब तुम चूक गए। और इसी तरह धार्मिक लोग चूकते रहे हैं। सभी रिचुअल, सभी क्रियाकांड इसी भ्रांति से पैदा होते हैं। क्योंकि एक आदमी के जीवन में किसी बात से क्रांति घटती है। कोई आदमी केवल राम-राम-राम कहते क्रांति को उपलब्ध हो जाता है।
कहते हैं कि वाल्मीकि भूल ही गया ठीक उच्चारण, तो राम-राम-राम न कह कर मरा-मरा-मरा कहता रहा और क्रांति को उपलब्ध हुआ। तो तुम भी दुहराते रहो; ठीक वाल्मीकि जैसाः मरा-मरा-मरा कहो या सुधार कर कहोः राम-राम-राम, तो भी तुम क्रांति को उपलब्ध न हो जाओगे। वाल्मीकि के लिए यह घटना आखिरी तिनका थी।
तुम्हारी सारी शक्ति जब लग जाए, कुछ भी न बचे, कुछ लगाने को न बचे, तुमने अपने को पूरा ही दांव पर रख दिया, फिर किसी भी चीज से क्रांति घट जाएगी।
और फिर तुम्हें किसी का अनुसरण करने की जरूरत नहीं है। और प्रत्येक व्यक्ति को क्रांति अनूठे कारणों से घटेगी; क्योंकि जिंदगी बड़ी है, बहुत बड़ी है, बहुत विराट है। यहां प्रतिपल घटनाएं घट रही हैं। कब तुम्हारी क्रांति का क्षण आ जाएगा, यह तुम पर निर्भर है, घटनाओं पर नहीं। घटना तो सांयोगिक है कि तुम्हें बाजार में घटेगी कि जंगल में घटेगी बिल्कुल सांयोगिक है।
बुद्ध सिद्धासन में बैठे थे, तब घटना घटी। फिर हजारों लोग सिद्धासन में बैठे रहते हैंइस आशा में कि घटना घटे। वे पागल हैं। यह तो संयोग था कि बुद्ध सिद्धासन में बैठे थे और उनकी पूरी शक्ति लग गई।
महावीर को तो बहुत अजीब आसन में घटना घटी गोदोहासन में। जैसा कि कोई गाय से दूध दोहता है, तब बैठता है, ऐसे महावीर बैठे थे। पता नहीं क्या कर रहे थे! गोदोहासन में कोई बैठता भी नहीं। शायद बैठे ही रहे होंगे खड़े रहे होंगे, बैठने जा रहे होंगे; और जब स्थिति गोदोहासन की थी, तब क्रांति घट गई। फिर न मालूम कितने लोग गोदोहासन में बैठ कर आशा रखते हैं कि क्रांति घट जाए! भूल हो जाती है।
तुम तिनके की फिकर करते हो! अपनी फिकर करना। तिनके का कोई भी मूल्य नहीं है। मूल्य है कि तुम्हारी सारी शक्ति लग गई हो; कुछ न बचा हो, तो हवा का एक झोंका और तुम दूसरे ही हो जाओगे। एक सूखे पत्ते का गिरनाऔर पुराना मर जाएगा; तुम्हारे भीतर नए का जन्म हो जाएगा। यह तो पहली बात समझ लो। दूसरी बातइसके पहले कि इस कहानी में प्रवेश हो यह समझ लेना जरूरी है
कि मन का सारा खेल तुलना पर, कंपेरिजन पर खड़ा है। जब तक तुम तुलना करते रहोगे, तब तक मन से छुटकारा नहीं है।
मन कहता हैः यह भला, यह बुरा; यह सुंदर, यह कुरूप; यह श्रेयस्कर, यह अश्रेयस्कर; इसे चुनो, इसे छोड़ो। मन कहता हैः यह स्वर्ग, यह नरक। मन कहता

है: यह राम, यह रावण। मन बांटता है। और जब तुम मन की सुन लेते हो, तुम भी बंट जाते हो। तुम तब तक बंटे ही रहोगे, जब तक तुम मन की सुनोगे। क्योंकि मन कहता हैः यह स्वर्ग, यह नरक। मन कहता हैः यह राम, यह रावण। मन बांटता है। और जब तुम मन की सुन लेते हो, तुम भी बंट जाते हो। तुम तब तक बंटे ही रहोगे, जब तक तुम मन की सुनोगे। क्योंकि मन कहता हैः यह ठिक और यह गलत। गलत को नहीं करना है, ठीक को करना है।
यह विभाजनमन बाहर ही नहीं कर रहा है; इस विभाजन के लिए तुम अगर राजी हुए; तो विभाजन भीतर भी हुआ जा रहा है। मन बाहर भी बांटता है, भीतर भी बांटता है। इसलिए कृष्णमूर्ति निरंतर कहते हैंः च्वॉइसलेसनेस। तुम चुनाव मत करो।
चुनाव न करने का मौलिक अर्थ होता है तुम तुलना मत करो। तुलना की, कि चुनाव हो गया। तुम भेद मत करो; और तुम मत कहो कि यह पत्थर है और यह हीरा है। और तुम मत कहो कि यह मूल्यवान है यह निर्मूल्य है। क्योंकि जैसे ही तुमने किसी भी तरह की तुलना खड़ी कीकि तुम बंटे। अनबंटा होना, अविभाजित होना, अद्वैत की उपलब्धि का मार्ग है। तब तुम्हें एक मिलेगा, जब तुम एक हो जाओगे। जब तक तुम दो हो, तब तक सब दो हैं। और तुम हो अनेक, इसलिए सब अनेक हैं। यह जगत तो एक बड़ा परदा है, इस पर तुम ही विराट होकर दिखाई पड़ रहे हो। यह कहानी कठिन लगती है। लेकिन कठिन इसलिए लगती है कि हम यह मान ही नहीं सकते कि एक दुकान में सभी चीजें श्रेष्ठ हैं। और दुकानदार कह रहा है कि यहां तो कोई ऐसी चीज ही नहीं है, जो श्रेष्ठ न हो। सब चीजें सर्वश्रेष्ठ हैं। वह सारी तुलना तोड़ रहा है। क्योंकि हम कहेंगे कि होंगी अच्छी, लेकिन फिर भी तो तुलना होगी। कोई ज्यादा अच्छी होगी, कोई कम अच्छी होगी कोई बहुत अच्छी होगी। यह तो असंभव है कि दुकान पर सभी चीजें सर्वश्रेष्ठ हों! और अगर सभी सर्वश्रेष्ठ हैं, तो उनको सर्वश्रेष्ठ कहने का कारण क्या है? क्योंकि निकृष्ठ के बिना सर्वश्रेष्ठ कैसे होगा! और जब तक सर्वश्रेष्ठ से नीचे की सीढियां न हों, तब तक सर्वश्रेष्ठ की सीढ़ी कैसे निर्मित होगी? जहां शूद्र न हों, वहां ब्राह्मण कैसे होंगे? और जहां नीचे की सीढ़ी न हो, वहां ऊपर की सीढ़ी कैसे होगी? जहां व्यर्थ न हो, वहां सार्थक कैसे होगा?

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन दो स्त्रियों के प्रेम में था; और
तय नहीं कर पाता था कि किसको चुने; क्योंकि एक बहुत सुंदर थी और एक बहुत धनी थी। और दोनों तरफ दौड़ता था। धन का लोभ भी छूटता नहीं था। धन निश्चय ही बहुत था। और मन कहता था कि शरीर का सौंदर्य तो दो दिन में बासा पड़ जाएगा; धन का सौंदर्य टिकता है। दो दिन बाद सुंदर से सुंदर स्त्री भी साधारण मालूम होने लगेगी जब परिचित हो जाओगे। लेकिन धन देर तक काम देगा। रूप से भी ज्यादा रुपया स्थायी है।
और मन का दूसरा हिस्सा कहता थाः क्या करोगे रुपयों का भी? अगर तुम इस कुरूप स्त्री के चक्कर में पड़ गए, तो जिंदगी भर रोओगे। माना कि रूप क्षणभंगुर है, पर मूल्यवान है। सारा जीवन इस क्षणभंगुर पर गंवा देने जैसा है। रुपये को इकट्ठा भी कर लिया, स्थायी भी है, तो भी मुरदा है। शायद इसीलिए स्थायी भी है, क्योंकि जिंदगी तो बदलती है।
मन बड़ी मुश्किल में था; कुछ तय न कर पाता था। वे दोनों स्त्रियां भी बड़ी मुश्किल में थीं कि कैसे तय करें। दोनों को उलझाए हुए था। आखिर उन दोनों स्त्रियों ने कहा कि हमें ही कुछ करना पड़े।
एक दिन नसरुद्दीन को दोनों लेकर नदी पर नाव में बैठ कर गईं। रास्ते में उन्होंने कहाः नसरुद्दीन, अगर नाव डूब जाए और तुम हम दोनों में से एक को ही बचा सको, तो तुम किसको बचाओगे? तुम हम दोनों में से किसको सुंदर समझते हो? किसको योग्य समझते हो? नसरुद्दीन ने कहाः तुम दोनों एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर सुंदर हो। फिर भी उसने कमिट न किया। लेकिन यह कैसे हो सकता है कि दो व्यक्ति एक दूसरे से बढ़-चढ़कर सुंदर हों! यह तभी हो सकता है, जब मन देखने वाला न हो।
जब तक मन है तब तक तो मन कहेगा कि एक कम, एक ज्यादा; एक नीचे, एक ऊपर। मन सीढ़ियां बनाता है, सभी वर्ण, सभी हाईररकी मन के निर्माण हैं। मन कहता हैः

नंबर एक, नंबर दो, नंबर तीन... । मन विभाजित करता है, सीढियां बनाता है, वर्ण निर्मित करता है, वर्ग निर्मित करता है।
कार्ल मार्क्स, लेनिन, स्टैलिन, माओ जगत में वर्ग-विहीन समाज बनाना चाहते हैं; लेकिन उन्हें कुछ पता नहीं है; जीवन के गहरे सूत्रों का कोई पता नहीं है। जब तक मन है, तब तक वर्ग-विहीन समाज बन नहीं सकता; क्योंकि मन वर्ग का निर्माता है।
धन का सवाल नहीं है। धन बंट जाए, तो भी वर्ग-विहीन समाज निर्मित न होगा। क्योंकि मन को ऊपर-नीचे रखने की आदत है। तब भी किसी को सुंदर कहोगे, किसी को असुंदर; किसी को बुद्धिमान, किसी को कुरूप; किसी को योग्य, किसी को अयोग्य। और जल्दी ही जो बुद्धिमान है, वह ज्यादा धन इकट्ठा कर लेगा; जो बुद्धिहीन है, वह धन खो देगा। ज्यादा देर न लगेगी कि सुंदर के पास धन चला आएगा, कुरूप के हाथ से धन खो जाएगा। कितनी देर लगेगीः वर्ग के वापस लौट आने में! जब तक मन है, तब तक वर्ग के आने के लिए दरवाजा खुला है।
वर्गविहीन समाज कम्युनिस्टों के द्वारा निर्मित नहीं हो सकता। वर्गविहीन समाज तो सिर्फ योगियों के द्वारा निर्मित हो सकता है। इसलिए यह करीब-करीब असंभव है, क्योंकि जब सारी पृथ्वी योग में निष्णात हो, जब सारी पृथ्वी अ-मन की हालत में पहुंच जाए जहां मन समाप्त हो जाता है तब वर्ग-विहीनता आएगी। उसके पहले वर्ग-विहीनता का कोई उपाय नहीं है।
यह दूसरा तत्व है समझ लेने जैसा कि क्यों इस फकीर को एक कसाई की बात सुन कर ज्ञान उपलब्ध हो गया! कसाई ने ऐसी बेबूझ बात कही कि मन उसे पकड़ ही न पाया। वह पहेली हो गई। उसी पर ध्यान लग गया।
और कसाई ने ऐसी बात कही जो कि इस संबंध में सत्य है। इस परमात्मा के जगत में सभी कुछ सर्वश्रेष्ठ है; यहां कोटियां है ही नहीं। यहां नीचे-ऊपर रखने का उपाय ही नहीं है। यहां सभी कुछ ऊपर है। यहां नीचे जैसी कोई घटना ही नहीं घटती। यह दूसरी बात है कि तुम्हें कुछ नीचा दिखाई पड़ता है और तुम्हें कुछ उंचा दिखाई पड़ता है।
यह तुम्हारे देखने की बात है, यह तुम्हारा नजरिया है, यह तुम्हारी आंख है, जो कोटियां पैदा करती है। लेकिन ज्ञानी के देखने का ढंग ऐसा है कि कोटियां खो जाती हैं; वह देखता है, और कोटियां खो जाती हैं। इसलिए ज्ञानी निर्णय नहीं लेता; ज्ञानी न्यायाधीश नहीं बनता। जीसस ने जगह-जगह दुहराया हैअपने शिष्यों को कहा है: जज यी नॉट तुम निर्णायक मत बनो; तुम न्यायाधीश मत बनो।
प्रसिद्ध कहानी है कि एक गांव में एक स्त्री को लोग जीसस के पास लेकर
आए, क्योंकि उसने व्यभिचार किया था। और नियम थापुरानी किताब में कि व्यभिचार करने वाली स्त्री को पत्थर मार-मार कर मार डाला जाए। सारा गांव उसे मारने को उत्सुक था। ये वे ही लोग थे, व्यभिचार करने को भी उत्सुक रहे होंगे। शायद मारने को इसीलिए उत्सुक थे, क्योंकि व्यभिचार किसी और ने कर लिया था! उनका मौका चूक गया था। ये सभी व्यभिचार में भी प्रतियोगी थे और क्यू लगा कर खड़े रहे होंगे। ये चूक गए थे और नाराज थे और क्रोधित थे। लेकिन क्रोध भी सुंदर रास्ते खोजता है। ये इसको मार डालना चाहते थे। इस स्त्री ने उन्हें पराजित किया था। और इस स्त्री ने इन्हें प्रलोभित भी किया था, आकर्षित किया था; इनकी वासना को भी जगाया था और इनकी वासना तृप्त भी नहीं हो पाई थी।
सारा गांव नाराज था। बड़े-बूढ़े, जवान सब पत्थर लिए नदी के किनारे उस स्त्री को मारने को तैयार थे। जीसस उस नदी के किनारे बैठे हैं, तो लोगों ने कहा कि जीसस से भी हम पूछ लें। और यह अच्छा मौका है जीसस को भी फांस लेने का। यह स्त्री तो फंस ही गई और इसको हम मार डालेंगे; जीसस को भी फांस लेने का अच्छा मौका है।
अगर जीसस कहें कि पुरानी किताब गलत है, तो पत्थर दोनों का ही अंत कर देंगे। यह आदमी खतरनाक है और इस तरह की बातें बोल रहा है जो कि पुराने शास्त्र के विपरीत हैं। और अगर जीसस कहे कि पुराना शास्त्र सही है, तो हम स्त्री को तो मार डालेंगे। फिर हम जीसस को कहेंगेः तुम्हारी शिक्षाओं का क्या होगा? क्योंकि तुम कहते हो जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, तो तुम

दूसरा सामने कर देना। और तुम कहते हो कि प्रेम ही परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग है। और तुम कहते होः विनम्र की विजय होगी। हिंसा के तुम विरोधी हो, युद्ध के तुम पक्षपाती नहीं हो। शांति का तुम्हारा संदेश है; तो फिर तुम कैसे राजी होते होइस स्त्री को पत्थर मार कर मार डालने के लिए! यह तो हत्या है। यह तो घृणा है। तो हम दोनों तरह से जीसस को फांस लेंगे।
लेकिन लोगों को पता नहीं था कि जीसस को फांसना मुश्किल है। जिसके पास
मन नहीं, उसको फांसना बहुत मुश्किल है। क्योंकि मन ही फंसता है। उन्होंने जाल तो फेंका बढ़िया। सीधा तार्किक जाल था, क्योंकि दो ही उपाय थेः या तो कहो कि पुरानी किताब ठीक है, स्त्री को मार डालें; तो भी फंसते हो। या कहो कि पुरानी किताब गलत है और स्त्री को माफ कर दो; प्रेम करो, सम्मान करो; निर्णय मत करो, जज यी नॉट, तो फिर हम तुम्हें भी मारे डालते हैं; क्योंकि पुरानी किताब के तुम भी दुश्मन हो! तो जैसा व्यभिचार इस स्त्री ने किया है, वैसे ही अनाचार को तुम फैलाना चाहते हो। तुम भी पाप के साथी हो।
लेकिन जीसस ने क्या कहा? जीसस ने कहा कि पुरानी किताब बिल्कुल ठीक है। मैं पुरानी किताब को नष्ट करने नहीं आया हूं। मैं पुरानी किताब को सिद्ध करने आया हूं। लेकिन पुरानी किताब में एक बात छूट गई है, जो मैं तुम्हें बतात हूं। और वह यह है कि पहला पत्थर वही आदमी मारे, जिसने कभी व्यभिचार न किया हो और व्यभिचार का विचार न किया हो। उन आदमियों को तो हक नहीं हो सकता पत्थर मारने का, जो खुद व्यभिचारी हैं। जो तुम्हारे भीतर व्यभिचारी न हो, वह आगे आ जाए। तो जो सामने खड़े थे बड़े बूढ़े, पंचायत के प्रमुख, गांव के मुखिया, वे भीड़ में पीछे सरकने लगे। क्योंकि भीड़ एक-एक को जानती थी।
छोटे गांवो का एक मजा भी था और एक खतरा भी। क्योंकि हर आदमी, हर आदमी
को जानता था। बड़े गावों में तुम शकलें झूठी बना सकते हो; छोटे गावों में तुम्हारा हर दांव-पेंच सब को पता है। छोटे गांव में कुछ भी छिप नहीं सकता है। हर आदमी की जिंदगी खुला अखबार है। लोग इतने करीब-करीब हैं कि तुम क्या करते हो यह हर आदमी जानता है, कौन वेश्या के घर जाता है, कौन पराई स्त्री के प्रेम में है, कौन क्या कर रहा है सबको पता है।
छोटे गांव में एक परिवार जैसा संसार है, जहां छिपाना मुश्किल है। इसका फायदा भी है और खतरा भी है। खतरा यह है कि कोई प्राइवेसी, कोई निजता, कोई स्वतंत्रता छोटे गांव में संभव नहीं है। छोटे गांव में एक तरह की पराधीनता है और गुलामी है। दुनिया में व्यक्ति-स्वतंत्रता आयीबड़े गावों के बनने के बाद। छोटा गांव खतरनाक है; हर आदमी के पंजे तुम्हारी गरदन पर हैं। तुम कोई निजता का जीवन नहीं जी सकते। कुछ भी प्राइवेट नहीं है, सब पब्लिक है।
गांव छोटा था। हर आदमी हर दूसरे आदमी को जानता था। कोई आदमी दावा नहीं
कर सकता था कि मैंने कभी व्यभिचार नहीं किया। पूरा गांव कहता कि अरे! हमारे सामने, और यह कहने की हिम्मत कर रहे हो? न केवल लोग पीछे हटने लगे, लोगों के हाथ में जो पत्थर उठ गए थे, वे भी गिर गए। थोड़ी देर में भीड़ नदारद हो गई। वे जो मारने आए थे व्यभिचारिणी स्त्री को, वे जा चुके थे; क्योंकि उनमें एक भी पत्थर उठाने के योग्य न था।
अकसर ऐसा होता है कि पापी ही पापियों को मार डालने को उत्सुक होते हैं। पुण्यात्मा तो पापी को मारने का विचार भी नहीं कर सकता। सच तो यह है कि पुण्यात्मा, पापी पापी है यह निर्णय भी नहीं दे सकता। वही पुण्य की प्रतिभा है, वही पुण्य की गरिमा है।
जब सभी जा चुके, वह स्त्री ही बाकी रह गयीऔर जीसस उस नदी तट पर, तो उस स्त्री को बोध हुआ कि इस आदमी ने न केवल मुझे बचाया, बल्कि इस आदमी ने ऐसी आंखो से भी मुझे नहीं देखा कि जिसमें निंदा हो, कंडेमनेशन होतो उस स्त्री ने कहा कि तुम्हारे सामने मुझे कहने में संकोच नहीं है। मैं स्वीकार करती हूं कि मैं पापिणी हूं; मैं स्वीकार करती हूं कि मैं व्यभिचारिणी हूं। ध्यान रहे: जब तुम निंदा से नहीं देखते, तो तुम दूसरे को इस योग्य बनाते हो कि वह अपने पापों को स्वयं स्वीकार कर सके। और जब तुम्हारी आंखों में क्रोध नहीं होता है और जब तुम्हारी आंखों में नरक भेज देने का भाव

नहीं होता, तो तुम दूसरे आदमी को सबल बनाते हो कि वह कह सके सत्य; तुम दूसरे को सत्य होने का मौका देते हो; यह भी पुण्य है।
दूसरे को सत्य होने का मौका देना बड़े से बड़ा पुण्य है। लेकिन जब तुम निंदा करते हो, तब तुम दूसरे को, छिपाने के लिए अवसर देते हो; तुम दूसरे को झूठा होने का अवसर देते हो; यह पाप है। इसलिए जीसस कहते हैंः तुम निर्णय मत करो, तुम न्यायाधीश मत बनो। किसने तुम्हें न्यायाधीश बनाया है कि तुम कहोः क्या पाप है, क्या पुण्य है? कौन बुरा है, कौन भला है? कौन साधु, कौन असाधु? तुम चुप रहो।
उस स्त्री ने कहाः मैं पापिणी हूं, मैं व्यभिचारिणी हूं। आप जो भी सजा मुझे देना चाहें, दें। यह मेरी गरदन झुकी है। जीसस ने कहाः मैं कौन हूं, तेरा निर्णय करने वाला! यह तेरे और तेरे परमात्मा के बीच की बात है। इसमें मैं बीच में खड़ा होने वाला कौन? लेकिन अगर तू सोचती है कि तूने कुछ गलत किया, तो अब उस गलत को मत करना। लेकिन अगर यह तू सोचती है; यह मेरा आदेश नहीं। अगर तू सोचती है कि तूने कुछ गलत किया और यह समझ तेरे भीतर जगी है, तो तू गलत अब मत करना। मैं तुझे पापिणी नहीं कहता और व्यभिचारिणी नहीं कहता। मैं कौन हूं!
जीसस जैसे व्यक्ति को सभी कुछ सर्वश्रेष्ठ हैः पापी भी, पुण्यात्मा भी।
सर्वश्रेष्ठता कोई तुलना से मिली हुई बात नहीं है। सर्वश्रेष्ठता प्रत्येक का स्वभाव है। अगर परमात्मा सभी के भीतर है, तो इस कसाई ने गजब की बात कही; सभी सर्वश्रेष्ठ होगा ही। अगर परमात्मा ही धड़कता है तुम्हारे हृदय में, अगर वही देखता है तुम्हारी आंखों से, तो चाहे तुम चोरी करो और चाहे व्यभिचार, और चाहे तुम मंदिर जाओ, मसजिद जाओ या वेश्यागृह, क्या फर्क पड़ रहा है! तुम्हारी सर्वश्रेष्ठता अक्षुण्ण है।
तुम्हारे भीतर जो छिपा है, उसके मैले होने का उपाय नहीं। वह सदा धुला हुआ है, सद्यस्नात, सदा नहाया हुआ है। उसकी पुण्यता में क्षण भर के लिए भी, कण भर की कमी नहीं हो सकती। यही परम ज्ञानी की दृष्टि है परमहंस की।
अब हम इस कहानी को समझने की कोशिश करें।
झेन साधक बनजान बाजार से गुजर रहा था। साधक है, अभी सिद्ध नहीं। अभी
चल रहा है मार्ग पर, पहुंच नहीं गया है। लेकिन साधक है; सोच नहीं रहा है साधना के संबंध में।
कुछ लोग साधना के संबंध में सोच कर सोचते हैं कि साधक हो गए! वे अक्सर सोचते रहते हैं: ध्यान करना है, प्रार्थना करनी है, संन्यास लेना है। और सोचते हैः साधक हैं! साधना के संबंध में सोचने से कोई साधक नहीं होता; साधना करने से कोई साधक होता है। करने से ऊंट पर वजन पड़ता है; फिर कभी तिनका बिठा देता है। करने से आग पैदा होती हैसोचने से नहीं। और कभी आखिरी उष्णता आ जाती है और आदमी भाप हो जाता है।
बनजान बाजार से गुजर रहा था। पहली बातः बनजान साधक है। वह कुछ कर रहा रहा है, वर्षों से शायद जन्मों से। वह बैठ कर सोचता नहीं रहा है, चला है मार्ग पर। और जैसे आखिरी घड़ी करीब आ गई है। साधक वहां है, जहां सिद्ध पैदा हो सकता है।
एक न एक दिन वह घड़ी तुम्हारी भी आएगी। जल्दी आ सकती है, अगर तुम श्रम में अपनी शक्ति पूरी लगा दो; अभी आ सकती है, इसी क्षण आ सकती है, अगर तुम बिलकूल न बचाओ और पूरे के पूरे उसमें प्रवाहित हो जाओ। जितना तुम अपने को बचाओगे, उतनी देर लग जाएगी। क्योंकि बिना तुम्हारे पूरे उतरे घटना नहीं घट सकती।
तुम नदी में उतरते भी हो, तो ऐसे कि जरा सा पंजा तुमने उतार दिया पानी में और बाकी पूरे तुम नदी के बाहर खड़े हो! कैसे होगा स्नान? और यह स्नान ऐसा है कि जब तक डूब कर मिट ही न जाओ, तो स्नान हो नहीं सकता। कभी तुम बहुत हिम्मत भी जुटाते हो, तो गरदन तक जाकर खड़े हो जाते हो। बहुत लोग इतनी हिम्मत जुटा लेते हैं कि गरदन तक... । इसके आगे डरते हैं। लेकिन असली चीज तो खोपड़ी है; जब तक वह न डूबे, कुछ नहीं डूबता है।

गरदन तक तो सब हिस्सा बेकार है। बेकार इस अर्थ में कि उसके डुबाने से कुछ हल नहीं होता है। उसने कुछ सवाल उठाया भी नहीं है। उसकी वजन से कोई झंझट भी नहीं है। असली झंझट तो खोपड़ी की है। लेकिन खोपड़ी को तुम बचाना चाहते हो।
तो तुम पानी में गरदन ते चले जाते हो, साधना में भी गरदन तक चले जाते
हो और जहां गरदन कटने का वक्त आता है, वहीं से लौट आते हो! जहां गरदन डूबने का डर पैदा होता है कि अब तो सांस लेना मुश्किल हो जाएगा, कि अब तो प्राण गए--गए अब तो किसी भी क्षण डूब जाएंगे, बस वहीं से तुम भाग खड़े होते हो। मिटने के डर से तुम भाग आते हो। और मिटे बिना कभी कोई पहुंचा नहीं है। जब तक तुम मिटे नहीं तब तक साधक हो; पर मिटने की चेष्टा कर रहे हो। जिस दिन मिट गए, उस दिन तुम सिद्ध हो।
बनजान बिल्कुल निन्यानबे डिग्री का साधक रहा होगा। और जब तक घटना न घटे, तुम बता नहीं सकते कि कब निन्यानबे डिग्री आई। यह मुश्किल है, इसलिए अनप्रिडिक्टेबल है; कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती है।
मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि कब तक ज्ञान होगा? कुछ नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि कब तुम निन्यानबे डिग्री पर आओगे, अब तक कोई "थर्मामीटर" इसकी जांच का नहीं है। क्योंकि यह कोई शरीर की गरमी नहीं है, जिसको नापा जा सके। यह चेतना की गरमी है, चेतना की उष्णता है। उसको ही हमने तप कहा है। तप का अर्थ हैः गरमी लेकिन भीतर की गरमी। वह शरीर से बिल्कुल नहीं नापी जा सकती। और उसके नापने का अब तक कोई उपाय नहीं है; कभी भी नहीं होगा। क्योंकि चेतना अमाप है--मेजरेबल नहीं है।
तो कोई उपाय नहीं है, जिससे हम नापें। कोई तराजू नहीं है; कोई इंच-फीट नहीं हैं।
और फिर डर यह भी है कि निन्यानबे डिग्री से भी कई बार लोग वापस लौट जाते हैं। वापस लौट सकते हैं--निन्यानबे डिग्री तक से। निन्यानबे डिग्री तक पानी फिर ठंडा हो सकता है। सौ डिग्री हो जाए तो भाप बन जाता है; फिर लौटना मुश्किल हो जाता है, असंभव हो जाता है। क्रांति घट गई।
जब तक क्रांति नहीं घटी, कई बार तुम निन्यानबे डिग्री से होकर लौट आते हो। उबलते हो और फिर कुनकुने हो जाते हो; फिर ठंडे हो जाते हो। तुम्हारी जिंदगी में तुम भी जानते हो कई बार ऐसी घड़ी आती है कि कूद जाओ, कूद जाओ। बिल्कुल आखिरी घड़ी आ जाती है। फिर कोई छोटी सी बात, और फिर तुम अपने को सम्हाल लेते हो। वह सम्हाल लेते हो। वह सम्हाल लेना शत्रुता है। तुम समझते होः तुमने होशियारी की और अपने को बचा लिया! बचाने में ही भूल हो गई। यह बनजान "साधक" था--यह एक बात ध्यान रखना। और दूसरी बात बड़े मजे की हैः वह बाजार से गुजर रहा था। क्योंकि झेन कहता हैः पूरा संसार बाजार है; भाग कर तुम कहीं जा न सकोगे। हिमालय पर भी चले जाओगे, तो भी बाजार से छुटकारा नहीं है। तुम जहां भी रहोगे, बाजार रहेगा। बाजार तुम्हारे भीतर है; इसलिए भागना मत। भागने में कोई सार नहीं है। समय मत खोना।
भाग कर जाओगे भी कहां? जो लोग भी भागते हैं, वे वहीं पहुंचते हैंजहां
से भाग आए थे।
एक बहुत पुरानी सूफी कथा है कि आदमी सुबह-सुबह उठा और उसने अपने नौकरों को कहा, मेरे घोड़े को ले आओ। बस, अब बहुत हो गया। यहां मैं बहुत दुखी हूं। इसलिए अब मैं यहां से दूर चला जाना चाहता हूं, फार अवे फ्रॉम हिअर। नौकर ने कहा, मालिक घोड़ा तो मैं तैयार कर दूं। लेकिन आपकी मंजिल क्या है? आप कहां जाना चाहते है? उस आदमी ने कहाः तुम समझे नहीं। मंजिल यहीं है। यहां से दूर चला जाना चाहता हूं। यह मेरी मंजिल हैपर यहां से दूर... । यह नौकर कोई साधारण नौकर न था; वह एक साधक... बल्कि वह एक सिद्ध पुरुष था। सूफियों का ऐसा ढंग है कि सूफी अपने को छिपाते हैं; वे अपने को जाहिर नहीं करते। तो कोई चमार की तरह छिपा रहता है, कोई नौकर की तरह। कोई गांव में बावर्ची का काम करता करता है; कोई बाजार में सामान बेचता है, सब्जी बेचता है।
सूफी प्रकट नहीं करता है। उसके शिष्य भी होते हैं, पर तुम उनका पता नहीं लगा सकते। क्योंकि चमार की दुकान पर बैठकर शिष्य भी चमारी का काम

करते हैं--दिन भर। रात को उनको पाठ दिए जाते हैं। दिन भर वे संसार से छिपे रहते है; क्योंकि सूफी विचारणा कहती है कि संसार में इतने उपद्रवी लोग हैं कि अगर उनको यह भी पता चल जाए कि तुम शांत हो रहे हो, तो वे सब तरह के उपाय करेंगे कि तुम शांत न हो पाओ! तो उपद्रवियों को अकारण मौका नहीं देना। उनको अगर यह भी पता चल जाए कि तुम शुद्ध हो रहे हो, तो वे तुम्हे अशुद्ध करने के सब उपाय करेंगे। क्यों? क्योंकि तुम्हारे शुद्ध होने से अनके अहंकार को चोट लगती है कि तुम शुद्ध हो गए और हम न हो पाए! तुमने समझा क्या है? कि तुम संन्यास ले लिए और हम न ले पाए। खींचकर टांग तुम्हें वापस जगह पर ला देंगे।
हर जगह उनके मन में प्रतियोगिता है। इसलिए सूफी अपने को छिपाते हैं। इसलिए सूफियों का पता लगाना तुम्हें मुश्किल है, जब तक तुम्हारे पास आंख और कुंजी न हो; जब तक तुम्हें कोई कुंजी न दे, तुम सूफियों का पता न लगा सकोगे। क्योंकि वे जिंदगी में साधारण हैं। वे जिंदगी के बिल्कुल सामान्य हिस्से हैं। बाजार में बैठे हैं और बाजार से भागते भी नहीं हैं। और उनका कहना है कि जो होना है, वह बाजार में ही हो जाएगा। क्योंकि परमात्मा भी बाजार में है। और बाजार परमात्मा में है। इसलिए तुम कहां भागे जा रहे हो? और जिसे तुम यहां न पा सकोगे, उसे तुम वहां कैसे पाओगे? और एक बड़े मजे की बात है कि तुम जहां भी पहुंच जाओगे, वहीं यहां हो जाएगा।
उस आदमी ने कहाः मैं यहां से दूर निकल जाना चाहता हूं। उसके नौकर ने कहा, मालिक तब बड़ा मुश्किल है। मैं कितना ही तेज घोड़ा ले आऊं, आप यहां से दूर न निकल पाएंगे। क्योंकि आप कहीं भी पहुंचेंगे, वहीं यहां होगा। जाएंगे कहां? आप जहां पहुंचेंगे, वहीं यहां होगा।
उस मालिक ने कहाः यह मैंने कभी समझा न था कि तू कोई बड़ा दार्शनिक है!
तू बड़ी ऊंची बातें करता है। तुझसे मैंने कहा है कि तू घोड़ा सम्हाल कर ला, उसे तैयार कर और रास्ते के लिए सामान, भोजन, पाथेय जुटा। उस नौकर ने कहाः यह और मुश्किल है मालिक। यात्रा पर जाएं, तो ठीक है। लेकिन यह यात्रा ऐसी है कि अंतहीन है। इसमें कोई प्रोविजन, कोई पाथेय नहीं ले जाया जा सकता। सब चुक जाएगा। आप कभी पहुंच ही नहीं सकते हैं ऐसी जगह, जो यहां न हो।
आज तक दुनिया में वहां कौन पहुंचा है! जहां जाओगे, वहीं यहां हो जाता है। जो तुम्हारे लिए अभी वहां है, पहुंचते ही यहां हो जाएगा। तुम जहां बैठे हो, दूसरे लोगों के लिए वह जगह वहां है; तुम्हारे लिए यहां है।
उस नौकर ने कहाः नो वन कैन गो अवे फ्रॉम हियर, यहां से दूर कोई नहीं जा सकता। और जाना हो तो आपकी मरजी। लेकिन पाथेय मत ले जाएं। क्योंकि कितना ही पाथेय साथ हो, कितना ही खाना ले जाओ, वह सब चुक जाएगा। मंजिल तो कभी आने वाली नहीं, आ ही नहीं सकती। यह रास्ता लंबा ही नहीं है, अंतहीन है।
बाजार से भाग कर तुम हिमालय जाना चाहते हो, तुम यहां से भाग कर वहां जाना चाहते हो, तुम वहां पहुंचोगे नहीं। तुम ही बाजार हो; तुम्हारे भीतर बाजार भरा है। तुम जहां भी जाओगे, तुम वहां बाजार खड़ा कर लोगे।
अगर तुम्हारे भीतर लोभ है और हिमालय में तुम बैठे हो पहाड़ पर, एकांत में और अगर एक हीरा तुम्हारे सामने पड़ा होगा, तो तुम जल्दी से उसे उठा कर अपनी गुदड़ी में छिपा लोगे। या कि तुम उसे पड़ा रहने दोगे। अगर हिमालय पर तुम हीरे को पड़ा रहने दे सकते हो, तो यहां दुकान में, बाजार में बैठकर तुम्हारी क्या चिंता है!
अगर लोभ नहीं है, तो बाजार यहीं खो गया। और अगर लोभ है तो तुम जहां जाओगे वहीं बाजार होगा। तुम बैठोगे तो जरूर हिमालय पर, लेकिन सोचोगे तुम यहां की ही जहां से तुम आ गए हो। मन पीछे जाएगा या आगे जाएगा। तो फिर सोचोगे कि दुकान फिर चलानी है लौट कर। अब की बार वैसी भूल नहीं करेंगे, जैसे पहले की। फिर घर बसाना है। पहले गलत पत्नी चुन ली थी, अब ठीक पत्नी चुन लेंगे। सुख नहीं मिल सका, क्योंकि स्थिति गलत थी; अब स्थिति बदल लेंगे। इसी ढंग से तो तुम इतने जन्मों से चले आ रहे हो। हर जन्म में तुम यही सोचते हो कि अगले जन्म में सब ठीक कर लेंगे। इस बार भूल हो गई, आगे न होने पायेगी। लेकिन फिर तुम वही भूल करते हो। क्योंकि तुम वही हो, तो

तुमसे भूलें निकलती हैं। जैसे वृक्ष से वही पत्ता निकलता है, जो उसमें छिपा है।
झेन साधक बनजान बाजार से गुजर रहा था। और एक कसाई और एक ग्राहक की बातचीत उसके कानों में पड़ी। और बड़ी अजीब जगह खड़ा था। कसाई की दुकान थी।
कोई सोने-चांदी की दुकान होती तो हम समझ भी लेते कि वहां निर्वाण घट गया। कसाई की दुकान के पास घटा! जिंदगी बेबूझ है। कसाई और एक ग्राहक की बातचीत का टुकड़ा उसके कानों में पड़ा। ग्राहक ने कहा, सर्वश्रेष्ठ मांस का टुकड़ा मुझे देना।
जो भी खरीदने निकलता है, वह सर्वश्रेष्ठ की मांग करता है। खरीददार का
मन श्रेष्ठ की मांग करे, यह स्वाभाविक है। मांग ही सर्वश्रेष्ठ की होती है। इसलिए हर मांग दुख में ले जाती है। क्योंकि तुम मांग भी नहीं पाते कि तुम देखते हो, उससे भी श्रेष्ठ कहीं ज्यादा मौजूद है; दुख फिर शुरू हो जाता है। हीरा हाथ में नहीं आता है कि बड़े हीरे दिखाई पड़ने लगते हैं। पद मिल भी नहीं पाता कि उदासी छा जाती है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने विवाह किया। तो जिस दिन उसके विवाह का समारंभ हो रहा था, उसके रिश्तेदारों ने देखा कि वह बड़ा उदास है, जैसे कुछ खो गया हो। उसकी आंखें कहती हैं कि जैसे वह कुछ खोज रहा है। तो उसके एक मित्र ने कहा, क्या कुछ खो गया है? कहीं विवाह का छल्ला तो नहीं खो गया? नसरुद्दीन ने कहाः छल्ला तो अंगुली में है। लेकिन तुम पूछते ठीक हो, कुछ खो जरूर गया हैविवाह का उत्साह खो गया है। और कल तक यह दीवाना थाउसी स्त्री को पाने के लिए! उस मित्र ने पूछा, लेकिन कल तक तुम पागल थे और हम सोचते थे, विवाह करके तुम्हारी खुशी का कोई अंत न होगा! उसने कहा, वह तो ठीक है। लेकिन आज समारोह में जो अनेक स्त्रियां आईं, उनमें कई इससे भी पहुंची हुई हैं; इससे ज्यादा सुंदर हैं। यह स्त्री कभी की फीकी हो गई। अब मैं डर रहा हूं कि आगे क्या होगा।
पहुंच भी नहीं पाते कि रस खो जाता है। क्योंकि आंखे श्रेष्ठ की खोज कर रही हैं। जब तक आंखे तुलना कर रही हैं, तब तक हमेशा यही होगाः उत्साह खो जाएगा; पहुंच भी नहीं पाए कि उत्साह खो जाएगा। मंजिल मिली नहीं कि दुखी हो गए। इसलिए लोग कहते हैं कि इंतजारी में मजा है, वे ठीक ही कहते हैं। वे ठीक इसलिए कहते हैं कि जब तक इंतजार है, तब तक तुम उस चीज में उलझे रहते हो। जैसे ही मिलना हो जाता है, आंखे और तरफ घूमने लगती हैं तत्क्षण।
गरीब को जो मजा है धन में, वह अमीर को नहीं है। क्योंकि गरीब के लिए धन उपलब्धि नहीं है; अभी इंतजार है। अमीर को धन मिल गया है; धन में अब कोई रस नहीं है। अब वह कुछ और चाहता है कुछ और ज्यादा।
ग्राहक हमेशा श्रेष्ठ की मांग करता है। ग्राहक ने कहा, सर्वश्रेष्ठ मांस का टुकड़ा ही मुझे देना। उससे कम पर मैं राजी नहीं हूं। मन कहता हैः श्रेष्ठतम चाहिए। उससे कम पर मैं राजी नहीं हूं। कसाई बोला, मेरी दुकान में सब कुछ सर्वश्रेष्ठ ही है। कसाई है, पर उसने बात परम ज्ञान की कही। मेरी दुकान में सब कुछ सर्वश्रेष्ठ ही है। यहां कुछ भी नहीं है जो सर्वश्रेष्ठ न हो। बस, इतना सुन कर बनजान ज्ञान को उपलब्ध हो गया।
अब यह भी कोई बात है! और यह भी कोई जगह है, जहां ज्ञान को उपलब्ध हुआ जाए! ठीक है, समझ सकते हैं बोधिवृक्ष के नीचे बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हुए; बोधिवृक्ष समझ में आता है। लेकिन कसाई की दुकान के सामने! कसाई की दुकान बोधिवृक्ष बन गई!
यह समझ में आता है कि कृष्ण के वचन को सुन कर कोई अर्जुन ज्ञान को उपलब्ध हो गया हो। लेकिन कसाई की बात सुन कर बनजान ज्ञान को उपलब्ध हुआ! कोई तार्किक हिसाब नहीं बैठता। बिठाने की जरूरत भी नहीं है। जैसा बोधिवृक्ष, वैसी कसाई की दुकान; कोई फर्क नहीं है। कसाई के छप्पर में क्या खराबी है? और बुद्ध भी बोधिवृक्ष के नीचे बैठे थे, तो किसलिए बैठे थे? सिर्फ छाया के लिए... । कोई बोधिवृक्ष के नीचे बुद्ध होने को तो नहीं बैठे थे! सिर्फ छाया के लिए... । कसाई का छप्पर भी उतनी छाया दे सकता है, ज्यादा ठीक से दे सकता है। और कृष्ण ने जो कहा, कृष्ण के मुंह से जो बोला, वही कसाई के ओंठों से भी वह बोल सकता है; क्योंकि सभी ओंठ उसी के हैं।

हो सकता है, यह कसाई एक छिपा हुआ ज्ञानी हो; इसकी पूरी संभावना है।
एक बहुत प्रसिद्ध कसाई की कथा है चीन में; वह सम्राट का कसाई था। और रोज आकर सम्राट के लिए बैल काटता था। सम्राट बड़ा हैरान था, क्योंकि वर्षों से देखता था; देखते-देखते बूढ़ा हो गया था। वह एक ही फरसा था, उसके पास; वह उसपर कभी धार भी नहीं रखता था! उसने कभी फरसा भी नहीं बदला। और तीस साल से तो यही सम्राट देखता था। वह बूढ़ा हो गया था, लेकिन कभी उसके फरसे को उसने जानवर में अटकते नहीं देखा।
एक दिन उसने पूछा, तू भी अदभुत है; तेरी कुशलता का कोई हिसाब लगाना मुश्किल है! तू कभी फरसे पर धार नहीं रखता और तू कभी फरसा भी नहीं बदलता? तो उस कसाई ने कहाः जो सभी सिक्खड़ हैं, उनको एक सप्ताह में धार रखनी पड़ती है। जो कुशल हैं, उनको तीन सप्ताह में धार रखनी पड़ती है। लेकिन जो ज्ञान को उपलब्ध हो गया, उसको धार फिर कभी रखनी ही नहीं पड़ती। क्योंकि मैं बैल को काटता नहीं। बैल और फरसे के बीच जो खेल चलता है, मैं तो सिर्फ उसका देखने वाला हूं। जब कोई काटता है, तो फरसे को चोट मारता है। जब कोई काटता है, तो बैल और फरसे के बीच संघर्ष होता है; उसी संघर्ष में धार मर जाती है। मैं काटता नहीं हूं। मैं कौन हूं, काटने वाला? और बैल कटता नहीं, क्योंकि इस जगत में कुछ भी नहीं कट सकता।
उस कसाई ने वही कहा, जो कृष्ण ने अर्जुन से कहाः नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि। तो इसे काटा जा सकता कोई अस्त्र इसे काट नहीं सकता; न आग इसे जला सकती है। और अर्जुन को तो उन्होंने यही कहा था कि तू बेफिकरी से काट, क्योंकि न कोई काटने वाला है, न कोई कटने वाला है। एक का ही खेल है। वही छिपा है यहां, वही छिपा है वहां। तू व्यर्थ की चिंता मत ले।
उस कसाई ने सम्राट को कहा, मैं कोई काटने वाला नहीं हूं। मैं कोई इस बैल से लड़ नहीं रहा हूं। मैं कोई इसका दुश्मन नहीं हूं। मैं कौन हूं, बीच में आने वाला! वही इसके भीतर है, वही मेरे भीतर है। वही काटता है, वही कटता है। तो बैल और मेरे फरसे के बीच एक तारतम्य है, एक हारमनी, एक लयबद्धता है। फरसे और बैल के बीच दुश्मनी नहीं है। बैल लड़ता नहीं; फरसा काटता नहीं। बस, फरसा जगह खोज लेता है। और बैल जगह दे देता है। इसलिए धार मरती नहीं है।
उस सम्राट ने कहाः क्या यह कला तू मुझे भी सिखा सकता है? उस कसाई ने कहा, यह असंभव है। कला सिखाई नहीं जा सकती है, सीखी जा सकती है। यह तो मैं अपने बेटे को भी नहीं सिखा सकता हूं। कोई उपाय नहीं सिखाने का, क्योंकि कला के कोई गणित के फारमूले नहीं हैं।
महान से महान चित्रकार भी यह नहीं बता सकता कि उसकी कला क्या है। वह चित्र बना सकता है, तुम सीख सकते हो उसके पास बैठ कर। शायद जैसे इंफेक्शियस संक्रामक बीमारी होती है, ऐसे तुम उसकी कला को भी पकड़ ले सकते हो।
वही गुरु के पास बैठने का उपयोग है कि वह संक्रामक हो जाए। बैठते- बैठते-बैठते तुम उसकी कला पकड़ लो। लेकिन कला को सचेतन रूप से सिखाने का कोई उपाय नहीं है।
कैसे सिखाएगा कोई चित्रकार कि क्या है कला की कुंजी? उसको खुद भी ठीक
से पता नहीं है। वह खुद मौजूद नहीं होता, वही तो कुंजी है। जब वह बिल्कुल खो जाता है बनाने में, तभी तो चित्र बनता है। जब वह होता नहीं है, तभी तो चित्र बनता है।
उस कसाई ने कहा, यह मैं नहीं सिखा सकता हूं। लेकिन तुम चाहो तो सीख सकते हो।
गुरु सिखाता नहीं है, शिष्य सीखते हैं। गुरु बताता नहीं है, शिष्य समझते हैं। गुरु की मौजूदगी एक इशारा है, शिष्य उसको संक्रामक बना लेते हैं; वे गुरु को पी जाते हैं।
कसाई जिसने यह कहा कि मेरी दुकान में सब कुछ सर्वश्रेष्ठ है एक छुपा हुआ सूफी रहा होगा, एक छुपा हुआ झेन फकीर रहा होगा। यहां कुछ भी नहीं, जो सर्वश्रेष्ठ नहीं। उसने तो सारे जगत के संबंध में एक वक्तव्य दिया। उसने कहाः तेरी नजर की भ्रांति है। यहां तो सभी कुछ सर्वश्रेष्ठ है।

ये शब्द सुन कर ग्राहक को तो ज्ञान न हुआ; ग्राहक तुम थे। ग्राहक को तो ज्ञान न हुआ; ग्राहक ने तो समझा होगा कि बकवास कर रहा है; व्यर्थ की बात कह रहा है। सभी कैसे सर्वश्रेष्ठ हो सकता है? जाहिर है कि कुछ श्रेष्ठ होगा, कुछ श्रेष्ठ नहीं होगा। और अगर सभी सर्वश्रेष्ठ है, तो सर्वश्रेष्ठ कहने का प्रयोजन क्या है! श्रेष्ठता तो निकृष्ठता की तुलना में ही होती है। दुकानदार बेचना चाहता है मुझे कुछ भी, इसलिए सभी को सर्वश्रेष्ठ बता रहा है। सभी दुकानदार बताते हैं।
ग्राहक ने तो समझा होगा कि धोखा देने की तरकीब है। लेकिन बनजान, जो राह से गुजर रहा था, यह सुन कर ज्ञान को उपलब्ध हो गया। आखिरी तिनका ऊंट पर पड़ गया।
एक बड़ी प्रसिद्ध कहानी है कि जब सारा संसार डूब रहा था, महाप्रलय हो गई, और नोह को परमात्मा ने आज्ञा दी कि तू हर जाति के पशु-पक्षी, हर कोटि के प्राणियों का एक-एक जोड़ा लेकर नाव में सम्हाल कर उस जगह पहुंच जा, जहां कि प्रलय नहीं होगा एक पहाड़ की चोटी पर। तो नोह ने खबर की सारी प्रकृति में एक-एक जोड़ा आ सकता है नाव में। इतनी बड़ी नाव उसने तैयार रखी थी।
सब जोड़े आए। लेकिन ऊंट तीन एकदम प्रवेश करने लगे। तो नोह ने कहाः रुको, तुमने सुनी नहीं खबर कि सिर्फ एक जोड़ा आ सकता है! ऊंटों ने कहाः हमारे मामले में तुम्हें थोड़ा अपवाद करना पड़े। क्योंकि, पहले ऊंट ने कहाः मैं वही ऊंट हूं, जो आखिरी तिनके से बैठ जाता है। और अगर मैं न रहा, तो कहावत का क्या होगा! दूसरे ऊंट ने कहाः मैं वही ऊंट हूं, जो कि सूई के छेद से गुजर जाए, लेकिन, धनी स्वर्ग के दरवाजे से नहीं गुजर सकता। अगर मैं छूट गया, तो कहावत का क्या होगा? तीसरे ऊंट ने कहाः मैं वही ऊंट हूं, जिसको लोग देखते हैं और कहते हैं कि देखो, ऊंट किस करवट बैठता है। और मैं छूट गया तो लोगों को तापमान का पता चलना मुश्किल हो जाएगा।
कहते हैंः नोह ने बड़ा सोचा-विचारा और कहा कि इन कहावतों के बिना तो आदमी चल ही न सकेगा। इसलिए कहा, अच्छा भाई, तुम तीनों भीतर आ जाओ; तुम्हारे लिए अपवाद है।
उसमें पहला ऊंट वही था, जिसके बाबत यह कहानी है। जिसने कहा कि आखिरी तिनके से जो बैठ जाता है। यह बनजान उस दिन उसी ऊंट की हालत में था। आखिरी तिनके की तलाश थी। और ठीक किया बाजार चला गया। ठीक ही करता, कहीं भी जाता। कोई भी घटनाघटना सांयोगिक है आखिरी तिनका बन सकती थी।
एक कसाई की बातचीत... ! क्या हुआ बनजान के भीतर? जब उसने सुना कि कसाई
कह रहा है: यहां सभी कुछ सर्वश्रेष्ठ है। यह तुम बात ही मत पूछो। यहां हम कुछ बेचते ही नहीं हैं, जो सर्वश्रेष्ठ न हो। इसको सुन कर बनजान के भीतर क्या हुआ? सारी कोटियां टूट गईं मन की! जैसे एक परदा हट गया, तुलना मिट गई। कुछ छोटा न रहा, कुछ बड़ा न रहा। कुछ बुरा-भला न रहा। सभी कुछ सर्वश्रेष्ठ हो गया। कंकड़-पत्थर हीरे हो गए; हीरे कंकड़-पत्थर हो गए। जीवन-मृत्यु हो गया, मृत्यु जीवन हो गई। साधु असाधु, असाधु साधु हो गए। सब मन की कोटियां डांवाडोल हो गईं। एक महाप्रलय हो गया। उस महाप्रलय में उसने देखा कि मैं खों गया, मेरा मन खो गया। यहां सभी कुछ सर्वश्रेष्ठ है।
मेरे पास लोग आते हैं। उनकी चिंता स्वाभाविक है; वे कहते हैंः जब आप कृष्ण पर बोलते हैं, तो ऐसा लगता हैं, कि कृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं। जब आप लाओत्सु पर बोलने लगते हैं, तो ऐसा लगता है कि लाओत्सु सर्वश्रेष्ठ हैं। जब आप पतंजलि पर बोलते हैं, तो लगता है कि पतंजलि सर्वश्रेष्ठ हैं। आखिर सर्वश्रेष्ठ कौन हैं? तो मैं उनसे कहता हूंः इस दुकान में ऐसा कुछ है ही नहीं, जो सर्वश्रेष्ठ न हो। यहां सभी कुछ सर्वश्रेष्ठ है।
तुम्हारे मन को यह मानना मुश्किल होता है। तुम्हारा मन कहता हैः अगर कृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं, तो फिर बुद्ध कैसे सर्वश्रेष्ठ हो सकते हैं? क्या कठिनाई है! कृष्ण ने कोई ठेका लिया है? कृष्ण पर क्या कोई चीज समाप्त हो जाती है? बुद्ध क्यों सर्वश्रेष्ठ नहीं हो सकते? तुम्हारे मन की कठिनाई साधारण है। यह सभी मन की कठिनाई है।
बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि मैं पैदा तो ईसाई के घर हुआ हवा चारों तरफ ईसाइयत की थी। लेकिन परिवार नास्तिक था; तो नास्तिकता साथ में पनपी;

और हवा चारों तरफ ईसाइयत की थी, तो एक ऐसी घड़ी आ गई कि मैं समझने लगा कि मैं ईसाई तो नहीं हूं! और ईसाइयत के खिलाफ भी हो गया।
रसल ने बड़ी कीमती किताब लिखी हैः वॉय आई एम नॉट ए क्रिश्चियन? बड़े तर्क, बड़े विचार से लिखी है। फिर भी रसेल ने एक बात स्वीकार की है सब करने के बाद मैंने चारो तरफ देखा कि फिर कौन? क्राइस्ट की जगह मैं किसको रखूं? मन खाली-खाली है। तो बुद्ध की प्रतिमा उभरी। बुद्ध प्रीतिकर लगे, कीमती लगे बहुत कीमती लगे। लेकिन मन में कहीं अचेतन पीड़ा होती है कि जीसस के ऊपर कैसे रखूं! ज्यादा से ज्यादा करीब रख सकता हूं। बस, एक साथ रख सकता हूं। यह पीड़ा क्या है? रसल की पीड़ा यही है कि उसने कसाई का वचन न सुना। वह
उस दुकान से वंचित रह गया, जहां ऐसी अदभुत घटना बनजान को घटी।
एच. जी. वेल्स ने लिखा है कि गौतम बुद्ध से महान पुरुष पृथ्वी पर दूसरा नहीं हुआ। मुझसे कोई पूछे, तो मैं कहता हूंः कृष्ण से महान पुरुष पृथ्वी पर दूसरा नहीं हुआ। फिर कहता हूंः बुद्ध से महान पृथ्वी पर दूसरा नहीं हुआ। महावीर से महान पुरुष पृथ्वी पर दूसरा नहीं हुआ। तब तुम अड़चन में पड़ोगे। क्योंकि तब तुम्हें लगेगा कि तीन-तीन महापुरुष और उनसे बड़ा कोई भी नहीं हुआ! यह कैसे सही है?
यहां सभी कुछ सर्वश्रेष्ठ है। निकृष्ठ परमात्मा में पैदा ही कैसे हो सकता है? निकृष्ठ तुम्हारी ईजाद है। उसने सभी सुंदर बनाया है; कुरूप तुम्हारा दृष्टिकोण है। उसने सभी साधु बनाया है; असाधु तुम्हारे नियमों के कारण पैदा हो गए हैं। तुम्हारे नीति-नियम तुम्हारे शास्त्र उनके कारण असाधु पैदा हो गए हैं।
उसने बुरा कुछ बनाया ही नहीं; बुरा आदमी की खोज है। यह दिखाई पड़ जाए,
यह समझने की बात नहीं है, दिखाई पड़ने की बात है। और दिखाई तब पड़ेगा, जब तुम्हारे ऊंट पर पूरा वजन होगा।
उसी वजन को रोज रखता जा रहा हूं रखता जा रहा हूं। किसी दिन आखिरी तिनका पड़ेगा; कब पड़ जाएगा, कोई भी कह नहीं सकता; उसी दिन ऊंट बैठ जाएगा। और जिस दिन तुम्हारे मन का ऊंट बैठेगा, उस दिन तुम देखोगे कि जगत इतना हरा है, इतना सुंदर है, इतना ताजा है, इतना नया है अभी-अभी पैदा हुआ है, जैसे सुबह पड़ी ओस की बूंद हो, कि पहली सूरज की किरण हो इतना ताजा है। जरा भी बासा नहीं है। और सभी कुछ ताजा है; कुछ भी बासा नहीं है। और एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक, इस छोर से लेकर उस छोर तक सभी सर्वश्रेष्ठ है।
मन को जो मिटाएगा, उसे यह दिखाई पड़ेगा। तुम ध्यान किए चले जाओ, आज नही
कल किसी बाजार से गुजरते समय, किसी कसाई की बात सुन कर जैसे अचानक बिजली कौंध जाए अंधेरे में और सब कुछ दिखाई पड़ जाए जहां कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था ऐसा ही तुम्हें भी दिखाई पड़ जाएगा।
लेकिन बाजारों में घूमने से न होगा यह। बाजारों मे तुम घूम ही रहे हो जन्मों से। कसाइयों की दुकानों के पास खड़े हाने से भी कुछ न होगा। वहां यह चर्चा भी चल रही हो, तो भी ग्राहक तो वंचित ही रह गया है जिससे चर्चा हो रही थी। और जिससे कोई बात ही नहीं हो रही थी, वह तो राहगीर था, वह उपलब्ध हो गया! असली बात है कि तुम्हारा श्रम इतना हो जाए कि तुम बिल्कुल टूटने के कगार पर हो, तब यह भी हो सकता है कि यह कसाई कोई ज्ञानी न रहा हो। यह सिर्फ एक पक्का दुकानदार हो। यह कसाई सिर्फ दुकानदार की भाषा बोल रहा हो ज्ञानी की नहीं। यह भी हो सकता है कि इस कसाई को तो हर चीज बेचनी होती है। हर दुकानदार यही कहता है कि हमारे लिए तो सभी सर्वश्रेष्ठ है। तुम जो कहो, वही सर्वश्रेष्ठ है। जिसको बेचना है, उसके लिए सभी सर्वश्रेष्ठ है। शायद यह सिर्फ एक दुकानदार रहा होएक अच्छा सेल्समैन। इसको न ज्ञान से कोई संबंध हो; न इसने जो कहा है, उसके अंतिम अर्थ का कोई पता ही हो। तब तो बात और मजे की हो जाती है!
जिसने कहा, वह अज्ञानी; और जिससे कहा, वह अज्ञानी। और दो अज्ञानियों
के बीच बातचीत का टुकड़ा तीसरे के लिए ज्ञान बन गया! यह भी हो सकता है। बंगाल में एक बहुत बड़ा संत हुआ। बूढ़ा हो गया था; काम-धाम से रिटायर हो गया था। सुबह घूमने निकला था। उसके घर का नाम राजा बाबू था। और कोई स्त्री किसी मकान के भीतर अपने बेटे को या अपने देवर को या किसी को उठा रही थी।

उसका नाम भी संयोग की बात की राजा बाबू होगा। राजा बाबू बहुत होते हैं। तो वह कह रही थी भीतर: राजा बाबू, उठो। सुबह हो गई। कब तक सोये रहोगे?
यह बूढ़ा राजा बाबू बाहर से अपनी लकड़ी टेकता हुआ घूमने जा रहा था। दरवाजा बंद था। भीतर स्त्री को इसका कोई पता ही नहीं है; इससे कोई संबंध नहीं है। यह सांयोगिक हैः इसका गुजरना। वह अपने किसी बेटे को या देवर को उठा रही है कि उठो राजा बाबू! सूबह हो गई। कब तक सोए रहोगे? और ठिठक कर यह बूढ़ा आदमी खड़ा हो गया। और इसके कान में आवाज पड़ी कि सुबह हो गई, कब तक सोए रहोगे? उठो, राजा बाबू। कहते हैं: वहां से वह घर न लौटा। वहां से गांव के बाहर एक मंदिर में चला गया। घर के लोग समझाने-बुझाने आए, तो वह हंसता था। और एक ही बात दुहराता था कि उठो, राजा बाबू! सुबह हो गई। कब तक सोए रहोगे? अब बस, बहुत सो लिए!
तो यह जरूरी नहीं है कि दुकानदार ज्ञानी रहा हो। तब एक आखिरी बात ख्याल ले लोः अज्ञानी भी तुम्हें जगा सकता है, अगर तुम्हारी जगने की तैयारी पूरी हो गई है। और ज्ञानी भी कुछ नहीं कर सकता है, अगर तुम्हारी तैयारी पूरी नहीं है। शायद आखिरी बात तुम्हारी तैयारी की है।
कई बार ऐसे गुरुओं के पास लोग ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं, जो गुरु खुद ज्ञान को उपलब्ध न थे। इसलिए तुम इसकी चिंता ही मत करना कि गुरु को ज्ञान मिला है या नहीं। गुरु अज्ञानी थे और उनके पास लोग ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं! उनकी तैयारी थी।
इससे उलटा तो रोज ही घटता है कि ज्ञान को उपलब्ध गुरु के पास सैकड़ों लोग आते हैं, जाते हैं, कुछ भी उनके जीवन में क्रांति नहीं होती। उनकी कोई तैयारी नहीं है। अंतिम निर्णय तुम्हारी तैयारी से होगा।
अपने को पूरा ही लगा दो, ताकि ऊंट आखिरी तिनके की चोट से किसी भी दिन बैठ जाए। बचाया कि चूके। बचाना मत, तब किसी भी बाजार में, कोई भी शब्द का टुकड़ा अनायास कहा गया वेद बन जाता है। अन्यथा तुम्हारे कान में कोई वेद गुनगुनाता रहे; तुम्हें सिर्फ भिनभिनाहट मालूम पड़ती है; तुम समझते हो कि सब शब्दों की बकवास है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
उन्नीसवां प्रवचन

दायित्व की गरिमा और आत्म-सृजन के लिए विद्रोह

एक बादशाह को ख्याल था कि उसने जो जाना और माना है, वह सब सही है। एक अर्थ में वह न्यायप्रिय भी था। उसकी तीन बेटियां थी।
एक दिन राजा ने अपनी सभी बेटियों को बुला कर कहाः मेरी सारी संपदा तुम्हारी होने वाली है। मुझसे ही तुम्हें जीवन मिला और मेरी इच्छा से ही तुम्हारा भविष्य और भाग्य निर्मित होगा।
दो राजकुमारियों ने तो यह बात मान ली; लेकिन तीसरी ने कहाः यद्यपि स्थिति का तकाजा है कि मैं कानून का पालन करूं, तो भी यह नहीं मान सकती कि मेरा भाग्य आपकी मरजी से बनेगा।
हम देखेंगे, यह कह कर राजा ने बागी बेटी को कैद में डाल दिया, जहां वह वर्षों कष्ट झेलती रही। इस बीच उसके हिस्से का धन भी बादशाह और वफादार बेटियों ने मिल कर खर्च कर दिया। और तब बादशाह ने स्वयं कहाः यह लड़की अपनी नहीं, मेरी मरजी से कैद काट रही है। इससे स्पष्ट है कि मेरी इच्छा ही उसकी नियति है।
और प्रजा भी राजा की राय से राजी थी।
बीच-बीच में राजा ने बंदी बेटी से अपनी मनवाने के बहुत उपाय किये, लेकिन सारी यातनाओं के बावजूद राजकुमारी ने विचार नहीं बदला। अंत में राजा ने राज्य के बाहर एक डरावने जंगल में उसको छुड़वा दिया, जहां हिंस्र पशुओं के साथ-साथ ऐसे खतरनाक आदमी भी थे, जिन्हें राज्य देश-निकाले की सजा दिया करता था।
लेकिन जंगल में पहुंच कर राजकुमारी ने पाया कि गुफा घर है और पेड़ों के
फल सोने के थाल वाले फलों जैसे ही हैं। फिर उस जंगल की आजाद जिंदगी का क्या कहना! और उस कुदरती राज्य में कोई भी तो उसके राजा-पिता की आज्ञा नहीं मानता था।
फिर किसी दिन एक भूला-भटका, किंतु समृद्ध यात्री उस जंगल में पहुंचा।
वह राजकुमारी के प्रेम में पड़ा, उसे वह अपने देश ले गया और वहां जाकर उसने उससे विवाह कर लिया।
अरसा बाद दोनों उसी जंगल में वापस आए, जहां उन्होंने अपनी बुद्धि, साधन और श्रद्धा के अनुरूप एक नगर बसाया, जिसकी लयबद्ध जिंदगी में वहां के सारे बहिष्कृत पगले घुल-मिल गए। राजकुमारी और उसके पति उसके प्रधान चुने गए।
धीरे-धीरे नये राज्य का यश सारी दुनिया में फैल गया। और उसके सामने राजकुमारी के पिता का राज्य फीका पड़ने लगा।
अंत में एक दिन बादशाह स्वयं इस नये नगर को देखने आया। और जब वह सिंहासन के पास पहुंच रहा था, तभी उसके कानों में अपनी ही बेटी के ये शब्द सुनाई पड़े:
प्रत्येक नर-नारी की अपनी नियति है और अपना चुनाव है।
ओशो, इस सूफी बोध-कथा का अर्थ क्या है?

सूफी मत एक बगावत है। सभी धर्म बगावतें है। धार्मिक होने का अर्थ ही बगावती होना है। और जो विद्रोह नहीं जानता, वह जीवन के परम सत्यों से सदा वंचित रह जाएगा। भीड़ के पीछे चलने वाला मंदिर तक कभी नहीं पहुंच सकता। वह रास्ता अकेले का है। वह मार्गबीहड़ और निर्जन है। और उस मार्ग से गुजरने का अर्थ है कि मैं अपनी नियति अपने हाथ में लेता हूं। मैं अपने जीवन का सारा दायित्व अपने कंधों पर लेता हूं।
हम भीड़ के साथ राजी होते हैं, क्योंकि वह सुविधापूर्ण है। और धर्म का सुविधा से क्या संबंध! धर्म तपश्चर्या है।
हम समाज के पीछे चलते हैं; क्योंकि यही आसान है। इसमें उपद्रव कम है, मुसीबत नहीं है। भीड़, समाज, समूह, राज्य, राष्ट्र के साथ तुम जितने एक हो

जाते हो, उतने ही तुम अपनी निजता का खो देते हो। और धर्म का मूल्य निजता का मूल्य है।
तो पहली बात यह समझ लेना कि धर्म का अर्थ ही यही होता है कि मैं समाज
से अपने को मुक्त करूं। मैं एक अंधे की भांति भीड़ के पीछे न चलूं।
भीड़ का एक मनोविज्ञान है और भीड़ के पीछे चलने की बड़ी सुविधाएं हैं। इसीलिए तो सारे लोग भीड़ के पीछे चलते हैं। पहली सुविधा तो यह है कि उत्तरदायित्व अपना नहीं रह जाता।
कहा जाता है कि अकेला आदमी इतने भयंकर पाप कभी नहीं कर सकता, जितना भीड़ में सम्मिलित होकर कर सकता है। अकेला मुसलमान मंदिर को जला नहीं सकता; लेकिन मुसलमानों की भीड़ में मंदिर जलाया जा सकता है। अकेला हिंदू मुसलमानों की हत्या नहीं कर सकता है; लेकिन हिंदुओं की भीड़ में व्यक्ति खो जाता है। भीड़ के एक-एक आदमी से पूछो कि जो तुमने किया है, क्या वह ठीक था? अकेले में वह सहमेगा। शायद कहेगा कि भीड़ के साथ मैं कर गुजरा। करना ठीक तो नहीं था।
भीड़ में तुम अपने से कम हो जाते हो। भीड़ में जो सबसे नीचा आदमी है, वह अपने तल पर सभी को खींच लेता है, जैसे पानी एक सतह में हो जाता है। तुम पानी बहाओ तो जो निम्नतम पानी का तल है, वह सारे जल का तल हो जाएगा। क्योंकि कोई पानी का हिस्सा ऊपर नहीं रह सकता।
तो भीड़ में कभी भी महापुरुष पैदा नहीं होता। हो नहीं सकता। क्योंकि भीड़ में जो आखिरी आदमी है, उसके तल पर सभी को आ जाना पड़ता है। महापुरुष सदा एकांत में पैदा होता है। इसलिए महावीर को जंगल जाना पड़ता है। इसलिए बुद्ध को एकांत चुनना पड़ता है। इसलिए मोहम्मद और मूसा को पहाड़ रेगिस्तान में प्रवेश कर जाना होता है। इस दुनिया में जो भी वैभवपूर्ण व्यक्तित्व पैदा हुए हैं ईश्वरीय जिनकी क्षमता है, वे सब एकांत में जन्मे हैं।
भीड़ ने आज तक एक भी महावीर, एक भी बुद्ध, एक भी कृष्ण पैदा नहीं किया। भीड़ क्षुद्र को पैदा करती है।
भीड़ का नियम तुम समझ लो, वह गणित सीधा है। जैसे पानी अपने नीचे से नीचे सतह पर आकर ठहर जाता है, ऐसे ही भीड़ में चेतना निम्नतम आदमी पर आकर ठहर जाती है। जब भी तुम भीड़ में जाते हो, तो थोड़ा सोच कर जाना। भीड़ से लौट कर तुम हमेशा पाओगे कि तुम कुछ खोकर लौटे हो।
भीड़ में दायित्व खो जाता है, इसलिए बड़ा सुख हैभीड़ का; क्योंकि तुम नहीं कहते कि तुम जिम्मेवार हो। जीवन की सबसे बड़ी कठिन साधना जिम्मेवारी का अनुभव है। जब तुम्हें लगता हैः मैं रिस्पांसिबल हूं, तब चिंता पैदा होती है। क्योंकि जहां दायित्व है, वहां चिंता है, तनाव है। भीड़ सारा दायित्व अपने ऊपर ले लेती है।
दूसरे महायुद्ध के बाद नाजी अधिकारियों पर मुकदमे चले। उनके ऊपर खतरनाक अपराध थे। ऐसे खतरनाक अपराध आदमियत के इतिहास में कभी भी किए नहीं गए थे। लाखों यहूदी उन्होंने जलाए थे। लेकिन उन्होंने क्या कहा? उन्होंने यह भी नहीं कहा कि अपराध उन्होंने नहीं किए। उन्होंने कहा: हमने तो सिर्फ आज्ञा का पालन किया है। ऊपर से जो आज्ञा मिली है, हमने उसका पालन किया। हम तो सिपाही हैं।
जब तुम आज्ञा का पालन करते हो, तब तुम्हारा कोई दायित्व नहीं रहता। इसलिए हम सैनिक को आज्ञा-पालन सिखलाते हैं ओबिडियंस। क्योंकि उनसे ऐसे काम करवाने हैं, जो कि अकेला, अपनी निजता के कारण तो वह कभी न कर सकेगा; उससे हमें पाप करवाना हैं; उससे हमें आदमियों की हत्याएं करवानी हैं; उससे निर्दोष बच्चों को जलवाना है; उससे ऐसे सोये नगर पर बम गिरवाने हैं, जिनका कोई भी कसूर नहीं है।
जिस आदमी ने हिरोशिमा पर एटम बम डाला, वह रात बड़े मजे से वापस लौट कर सोया! एक लाख बीस हजार आदमी जल कर राख हो गए; जिनमें से एक आदमी से भी उसकी कोई निजी दुश्मनी न थी; जिनमें से एक आदमी ने भी उसका कभी कुछ बिगाड़ा न था; जिनमें से किसी आदमी से उसका कोई संबंध न था। लेकिन एक लाख बीस हजार आदमी क्षण भर में राख हो गए और आदमी वापस आकर आराम से सो गया! और जब सुबह पत्रकारों ने उससे पूछा कि क्या तुम रात आराम से सोये? तो उसने कहा:

निश्चित; क्योंकि कर्तव्य पूरा किया। फिर मैं निश्चिंत आकर सो गया। इस आदमी को रात जरा भी चिंता न जगी! तुम जानकर एक छोटे से कीड़े-मकोड़े को पैर के नीचे दबा दो, तो भी चिंता पैदा होती है। चिंता तभी पैदा होती है, जब दायित्व होता हैजब तुम्हें लगता है: मैं जिम्मेवार हूं। जब तुम्हें लगता है: मैं जिम्मेवार ही नहीं हूं; ऊपर से किसी ने आज्ञा दी; मैंने पूरी की तुम्हें चिंता नहीं होती। और बड़ा मजा यह है कि ऊपर जो बैठा है, उसको भी आज्ञा कहीं और से मिलती है!
तुम जिम्मेवार आदमी को पकड़ ही नहीं सकते भीड़ में कि कौन जिम्मेवार है। अंततः कौन जिम्मेवार है? कोई जिम्मेवार नहीं है। इसलिए दुनिया में इतना महापाप चलता है। और यह महापाप तब तक चलता रहेगा, जब तक एक-एक व्यक्ति अपने कृत्य के लिए स्वयं को जिम्मेवार नहीं समझता है।
भीड़ के साथ जैसे ही तुम खड़े हो जाते हो, तुम्हारी चिंता मिट जाती है;
तब तुम व्यक्ति नहीं हो, तुम हिंदू हो। तब तुम आदमी नहीं हो, तुम मुसलमान हो। तब मनुष्यता तुम्हारे भीतर बुझ जाती है। तब तुम भारतीय हो, पाकिस्तानी हो आदमी नहीं हो। और धर्म का संबंध तुम्हारी आदमियत से है। इसलिए धर्म डिसओबिडियंस है। यह थोड़ा समझना पड़े।
धर्म बगावत है। सैनिक और संन्यासी बिल्कुल विपरीत हैं, दो छोर हैं। सैनिक है आज्ञा का अनुसरण, पालन, ओबिडियंस। संन्यासी है डिसओबिडियंस समस्त आज्ञाओं का उल्लंघन। सैनिक और संन्यासी विपरीत छोर हैं। इनसे ज्यादा विपरीत छोर तुम न खोज सकोगे।
क्योंकि सैनिक कहता है: जो आज्ञा। जो आज्ञा हो, उसे वह यंत्रवत पूरी करता है। वह जरा भी अनुभव नहीं करता कि मेरा कोई हाथ है या मेरा कोई पाप है। मेरा कोई जुम्मा नहीं है। मैं तो एक यंत्र हूं। तुम आज्ञा देते होः लेफ्ट टर्न, तो लेफ्ट टर्न हो जाता हूं। तुम कहते होः रुक जाओ, तो मैं रुक जाता हूं। और सैनिक यंत्रवत होते चले जाते हैं। क्योंकि जितनी बड़ी चेतना पैदा करनी हो, उतना बड़ा दायित्व लेना जरूरी है।
विलियम जेम्स एक दुकान पर बैठा हुआ था; बड़ा मनोवैज्ञानिक था; और अपने
एक मित्र से बात कर रहा था कि सैनिक कैसे धीरे-धीरे यंत्रवत हो जाता है। तभी बाहर एक सैनिक जा रहा था अंडों की एक टोकरी सिर पर लिए। और विलियम जेम्स ने जोर से चिल्लाकर कहाः अटेंशन। वह आदमी टोकरी को छोड़ कर अटेंशन खड़ा हो गया। सारे अंडे रास्ते पर फूटकर बिखर गए। वह आदमी बहुत नाराज हुआ। उसने कहाः किसने यहां अटेंशन कहा है? किसने कहा: सावधान? उस आदमी को सेना छोड़े दस साल हो चुके थे; वह रिटायर्ड सैनिक था। पहले महायुद्ध के समय की घटना है। लेकिन विलियम जेम्स ने कहा कि हमें हक है, हम कुछ भी कहें। तुम्हें क्या जरूरत है सुनने की या तुम्हें क्या जरूरत है मानने की? उसने कहाः यह हमारे बस में थोड़े ही है। जब सुनाः सावधान, अटेंशन। तो यंत्रवत खड़ा हो गया। यह कोई होश का सवाल नहीं है, बेहोश आदत है।
सैनिक की पूरी तैयारी बेहोशी के लिए है। क्योंकि होश बढ़े तो फिर वह पूछेगा कि इस जिस आदमी को मैं गोली से छेद रहा हूं, इसने बिगाड़ा क्या है? जिस आदमी को मैं मार डाल रहा हूं, इसका कसूर क्या है? अगर सोचेगा तो खतरा है। अगर विचारोगे तो मुश्किल है।
अंधे की तरह अनुसरण--सैनिक का लक्षण है। उतना ही कुशल सैनिक होगा, जितना मुर्च्छित होगा। इस मूर्च्छा को पैदा करने के लिए बड़ा आयोजन करना पड़ता है।
वर्षों तक हम सैनिक को लेफ्ट-राइट करवाते हैं। कोई भी नहीं पूछता कि
यह क्यों? आखिर जिंदगी इस मूर्खता में क्यों खराब की जा रही है? लाखों लोग जमीन पर सिर्फ लेफ्ट-राइट कर रहे हैंबाएं घूमो, दाएं घूमो और वर्षों तक रोज घंटों कर रहे हैं। लेकिन इसके पीछे राज है। यह व्यर्थ नहीं हो रहा है; यह जान-बूझकर करवाया जा रहा है। क्योंकि इस आदमी की चेतना को क्षीण करना है; इसे यंत्रवत बनाना है। इसे मूर्खतापूर्ण आज्ञाओं को मानने के लिए राजी करना है। इसे अर्थहीन आज्ञा के लिए राजी करना है। जब कहा जाता हैः बाएं घूमो, तो सैनिक यह नहीं कहता कि क्यों घूमूं? जरूरत क्या है? घूमना है

यानी घूमना है। प्रश्न नहीं उठाना है। अगर सैनिक ने प्रश्न पूछा, तो वह किसी काम का नहीं है।
मैंने सुना है कि एक दार्शनिक एक बार सेना में भरती हो गया। सोच-विचार
का आदमी था; सेना के बिल्कुल योग्य नहीं था। क्योंकि सोचने विचारने वाले की कहां सेना में जरूरत है! तो जब उससे कहा गयाः बाएं घूमें, तो सारे लोग घूम गए; वह खड़ा ही रहा। तो उसके सेनापति ने पूछाः तुम अब खड़े किस लिए हो? तो उसने कहाः मैं सोच रहा हूं कि क्यों बाएं घूमूं? क्या प्रयोजन है? कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता है! और बिना सोचे मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूं। जब तक मैं सोच न लूं, जब तक मैं निर्णय न करूं, तब तक मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूं। मैं बाएं भी नहीं घूम सकता हूं।
बड़ी कोशिश की गई, लेकिन व्यर्थ थाउस आदमी को बाएं-दाएं घुमाना। लेकिन
वह भरती तो हो गया था; तो उसे सैनिकों का जो भोजनालय था, वहां रख दिया गया। पहले ही दिन उसको मटर के दाने अलग-अलग करने को दिए गएकि बड़े दाने अलग, छोटे दाने अलग। घंटे भर बाद जब उसका सेनापति आया, तब वह आंख बंद किए ध्यान-मग्न मटर के दानों को सामने रखे बैठा था। अभी उसने काम शुरू नहीं किया था! उसके सेनापति ने उसे हिलाया और कहा: क्या कर रहे हो? यह छोटा सा काम भी नहीं होता? उसने कहाः मैं सोच रहा हूं कि कुछ दाने बड़े हैं माना; और कुछ दाने छोटे हैं, वह भी माना। कुछ मंझोले हैंउनको किस तरफ करना है? और जब तक साफ न हो जाए, तब तक मैं हाथ नहीं हिला सकता।
इस आदमी को सेना के बाहर निकालने के सिवाय और कोई उपाय न था। क्योंकि
जो इतना सोचता हो, इसको मूर्खतापूर्ण कृत्यों में लगाया नहीं जा सकता। इसलिए जितनी कम बुद्धि हो, जितना कम विचार हो, उतना अच्छा सैनिक तैयार होता है।
सोच-विचार सैनिक की जरूरत नहीं है, अयोग्यता है। क्योंकि सोच-विचार
का अंतिम अर्थः दायित्व का बोध है; कि मैं जिम्मेवार हूं और अंततः मुझे पूछा जाएगा कि तुमने यह क्यों किया। और तब मैं क्या कहूंगा। परमात्मा के सामने मैं क्या कहूंगा? यह हत्या मैंने की? यह बम मैंने फेंका? सैनिक कहेगाः आज्ञा थी; मैं तो कुछ भी नहीं हूं। जो आज्ञा थी, वह मैंने पूरी की। मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है, मेरा कोई पाप नहीं है।
संन्यासी इससे विपरीत छोर है। संन्यासी कहता हैः आंख की पलक भी मेरी हिलती है और उससे भी अगर कोई किटाणु मर जाता है, तो वह मेरा जिम्मा है। रास्ते पर मैं चलता हूं और चींटी दब जाती है, तो वह मेरा दायित्व है।
एक तरफ महावीर जैसा संन्यासी हैः पैर फूंक-फूंक कर रखता है जो गीली जमीन पर पैर नहीं रखता है, क्योंकि गीली जमीन पर कीटाणुओं के होने की संभावना ज्यादा हैजो सूखी जमीन पर मल-मूत्र विसर्जन करता है, क्योंकि गीली जमीन पर कीटाणु दब सकते हैं, मर सकते हैं; जो रात में करवट नहीं बदलता है, क्योंकि बदलने से हो सकता हैः कुछ कीड़े-मकोड़े इस बीच आ गए हों और तुम करवट बदलो और रात में दब जाएं, तो जो एक ही करवट सोता है; जो रात में चलता नहीं, क्योंकि अंधेरे में किसी के जीवन को खतरा है; जिम्मेवार मैं हूं। यह महावीर संन्यास की परम प्रतिमा है।
संन्यास का अर्थ हुआ कि सारा दायित्व मेरा है। मैं बहाने नहीं जुटा सकता कि किसी ने आज्ञा दी। क्योंकि अंततः आज्ञा दी यह सवाल नहीं है, तुमने मानी यह सवाल है।
जिस आदमी ने हिरोशिमा पर बम फेंका, क्या वह यह नहीं कह सकता था कि मैं
बम नहीं फेंकूंगा? यह हो सकता था। इसका परिणाम होता कि उसे गोली मार दी जाती। लेकिन ठीक था। वह कह सकता था कि मैं गोली से मर जाना पसंद करूंगा, लेकिन एक लाख बीस हजार लोगों को अकारण मारने के लिए मैं तैयार नहीं हूं। लेकिन तब यह आदमी सैनिक नहीं होता, संन्यासी हो जाता। तब इस दुनिया के सामने भला यह अपराधी होता, लेकिन परमात्मा के सामने इसकी गरिमा का कोई अंत न था। इस पृथ्वी पर शायद इसे कोई भी न पूछता, लेकिन उस दूसरे लोक में यह प्रथम होता।

जीसस ने बार-बार कहा हैः जो इस जमीन पर प्रथम खड़े हैं, समझ के रहना कि मेरे परमात्मा के राज्य में वे अंतिम हो जाएंगे। और जो यहां अंतिम खड़े हैं, जिन्हें कोई पूछता नहीं, वे परमात्मा के राज्य में प्रथम हो जाएंगे। तो धर्म का पहला सूत्र हैः अंधी आज्ञा मत मानना; अर्थ हुआ कि दायित्व दूसरे पर डाल देते हो; इसलिए दुनिया में इतने अनुयायी हैं। लोग अनुयायी मुफ्त नहीं हैं। कोई बेकार ही अनुयायी नहीं बनता। अनुयायी बनने का मतलब है कि सारा दायित्व नेता पर है; हम पर कुछ भी दायित्व नहीं है।
और लोकतंत्र ने बड़ी सुविधा जुटा दी। नेता कहता है कि सारा दायित्व मतदाताओं पर है। मतदाता सोचते हैं कि सारा दायित्व नेता पर है। आज दायित्व किसी पर भी नहीं है। एक चक्र है, जिसमें हर एक दूसरे की तरफ इशारा करता है। तुम इस दुनिया में अपराधी को पकड़ ही नहीं सकते। इसलिए अपराध बढ़ते चले जाते हैं।
धर्म की मौलिक खोज यह है कि दायित्व तुम्हारा है। अगर तुम चूके और तुमने किसी और को जिम्मेवार बताया, तो वह किसी और को बताएगा, तो वह किसी और को बताएगा। फिर दायित्व पकड़ में आने वाला नहीं है।
कर्म का सिद्धांत यही है कि तुम जिम्मेवार हो। कुछ भी करो, तुम बच न सकोगे और बचाव का कोई उपाय नहीं है। इसलिए तुम छोटा सा भी कृत्य करो, तो जान कर करना कि मैं कर रहा हूं। तुम्हारा भाग्य, तुम्हारी नियति तुम्हारा ही निर्माण है।
सूफी बगावती लोग हैं। तो यह पहली बात समझ लें, तब यह कहानी आसान हो जाएगी समझना।
दूसरी बात यह समझ लें कि जितना ही तुम सोचोगे कि मैं जिम्मेवार हूं, उतने ही तुम सचेत हो जाओगे, उतनी ही अवेयरनेस बढ़ेगी, उतना ही तुम चौंककर जीओगे, उतनी ही सावधानी सावचेतता रहेगी। जितना ही तुमने सोचा कि कोई और जिम्मेवार है, तुम उतनी ही आसानी से सो सकते हो; तब कोई भय नहीं है। आधुनिक मनोविज्ञान ने दुनिया में अपराध करने के लिए बड़ी सुविधा जुटा दी। इस सदी में जो बड़ी से बड़ी खोजें हुईं, वे तीन हैं। और इस सदी में जिन तीन खोजों का बड़े से बड़ा परिणाम हुआ है, वे परिणाम हैं: मनुष्य को सारे उत्तरदायित्व से मुक्त कर देना।
एक तो खोज की न्यूटन और साथियों नेकि जगत नियमबद्ध हैः और नियम यांत्रिक हैं। अपवाद कोई हो नहीं सकता। नियम के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है। और हर आदमी एक अंधा अनुयायी है; चाहे वह जाने और चाहे न जाने। मनुष्य है ही नहीं, मशीन है। अगर तुम यंत्र हो, तो कैसा अपराध का भाव! तब तुम्हारी चेतना को कोई पीड़ा नहीं होती। चेतना है ही नहीं; सब यंत्र है, पदार्थ है।
फिर दूसरी खोज की फ्रायड ने और वह खोज यह थी कि जब भी तुम पाप करते हो,
तो तुम जिम्मेवार नहीं हो। बचपन से तुम्हें जिस तरह तैयार किया गया है, वह शिक्षण की पद्धति माता, पिता, परिवार वे जिम्मेवार है; तुम जिम्मेवार नहीं हो; माहौल-वातावरण जिम्मेवार है; तुम्हारे आस-पास की हवा जिम्मेवार है। अगर तुम चोरी करते हो, तो तुम कुछ और कर ही नहीं सकते। तुम जिस तरह बड़े किए गए हो, तुम जिस मां के घर पैदा हुए, जिस बाप ने तुम्हें पाला, जिन लोगों के साथ में तुमने सीखा जीवन, बचपन गुजारा, उस सबका इकट्ठा जोड़ है। यह कोई कृत्य नहीं है, जो तुम कर रहे हो। यह फूल है, जो तुममें लग रहा है, और इसके लिए तुम जिम्मेवार नहीं हो।
और तीसरी बात मार्क्स ने कही; उसने कहा कि समाज की आर्थिक परिस्थितियां हर चीज की अंतिम निर्धारक हैं। आदमी चोर है, क्योंकि गरीब है। बेईमान है, क्योंकि भूखा है। शोषण है, इसलिए पाप है। और जब दुनिया में कोई शोषण न होगा, तो कोई पाप न होगा।
इन तीन धारणाओं का प्रभाव है कि आज जमीन पर जितने अपराध हो रहे हैं, उतने कभी भी नहीं हुए थे। और इन अपराधों के सिलसिले को तोड़ना मुश्किल है; क्योंकि यह अपराधी अपने को अपराधी मानता ही नहीं है।
महावीर, बुद्ध, मुहम्मद, कृष्ण, जरथुस्त्रउनकी सारी शिक्षाएं बिलकूल विपरीत हैं। वे कहते हैं कि हर कृत्य के लिए तुम जिम्मेवार हो। और अगर

उनके विश्लेषण को हम समझें, तो वे कहते हैं कि तुम जिस मां-बाप के घर पैदा हुए हो, वह भी तुम्हारा चुनाव है। वह भी तुम्हारी आत्मा ने चुना कि तुम इस गर्भ को ग्रहण करो। वह भी आकस्मिक नहीं है। तुम जिस समाज में आए, वह भी तुम्हारा ही निर्णय है। तुम ब्राह्मण के घर पैदा हुए, कि शुद्र के घर आए, वह भी तुम्हारी आकांक्षाओं का सम्मिलित फल है। जिम्मेवार अंततः तुम ही हो। तुम अगर गरीब हो या अमीर हो, तो यह भी तुम्हारा ही चुनाव है।
तुम अंततः केंद्र में होअपने जीवन के। तुम्हारे सारे कृत्य परिधि पर हैं और तुम निर्णायक की तरह केंद्र में हो।
एक लिहाज से तो यह बड़ा खतरनाक भी लगता है। और भयभीत करने वाला है। क्योंकि सभी चीज के लिए तुम जिम्मेवार हो, तो बड़ी चिंता पैदा होगी। लेकिन दूसरी तरफ से देखने पर यह बड़ी गरिमा की बात है कि तुम ही जिम्मेवार हो। इससे तुम्हारा मूल्य है; तुम किमती हो। और तुम चाहो, तो क्रांति कर सकते हो। और सारी दुनिया में क्रांति की जरूरत नहीं हैतुम्हारी क्रांति के लिए; तुम अपने को बदल सकते हो। तो एक तरफ से तो चिंता पैदा होती है, दायित्व तुम्हारा होता है; और दूसरी तरफ से तुम्हारी गरिमा प्रकट होती है, महिमा प्रकट होती है।
अगर तुम मार्क्स, फ्रायड और अन्यों को मानकर चलते होमहावीर और बुद्ध
के विपरीत, तो चिंता तो तुम्हारी समाप्त हो जाती है, लेकिन तुम्हारी गरिमा भी खो जाती है। तुम्हें कोई चिंता नहीं है, फिर तुम जैसे हो ठीक हो। लेकिन फिर तुम्हारी महिमा क्या है? तुम्हारी स्वतंत्रता भी चली गई।
तुम्हारी चिंता के साथ तुम्हारी स्वतंत्रता चली जाती है। और तुम्हारी चिंता के साथ ही साथ तुम्हारी स्वतंत्रता बढ़ती है। तो धार्मिक व्यक्ति प्रगाढ़ चिंता से गु.जरता है।
कीर्केगार्ड ने लिखा है कि जैसी एंजायटी धार्मिक आदमी को होती है, वैसी किसी को नहीं होती। उस चिंता के बाद शांति का क्षण आता है। लेकिन वह आता है जीवन की क्रांति के द्वारा।
दायित्व दूसरों पर फेंककर भी शांति आती है, लेकिन वह शांति मरघट की शांति है; तब तुम बचे ही नहीं; तुम दो कोड़ी के हो गए। जिस दिन तुमने कहा कि मेरे कृत्यों के लिए कोई और जिम्मेवार है, उस दिन तुम समाप्त हो गए; उस दिन से तुम्हारा कोई मूल्य नहीं है।
तो यह दूसरी बात ख्याल में रख लें कि सारे धर्मों का जोर है कि नियति तुम्हारी है; तुम्हारा भाग्य तुम्हारे ही निर्णय का विस्तार है। तुम नियंता हो, तुम मालिक हो, तुम स्वतंत्र हो। तुम जैसे हो बुरे, भले तुमने ही बनाया है। और तुम चाहो तो बदल सकते हो। और कल जैसा होगा, वह तुम्हारे आज के निर्णय पर निर्भर है।
कोई दूसरा तुम्हें चला नहीं रहा है; तुम अपने ही पैरों पर चल रहे हो। कोई तुम्हें धका (ढकेल) नहीं रहा है, तुम खुद ही अपनी आकांक्षाओं के बल पर यात्रा कर रहे होः यही तुम्हारी महिमा है। तुम मूल्यवान हो; क्योंकि निर्णय का केंद्र तुम्हारे भीतर है।
निर्णय का केंद्र ही आत्मा है। इसलिए मार्क्स और फ्रायड़ आत्मा को नहीं मान सकते। क्योंकि जब निर्णय का केंद्र ही तुम्हारे भीतर नहीं है, तो कैसी आत्मा!
ये दो बातें ख्याल में ले लें, फिर हम इस कहानी के एक-एक शब्द को समझने
की कोशिश करें।
एक बादशाह को ख्याल था कि उसने जो जाना और माना है, वह सही है। एक अर्थ में वह न्याय-प्रिय भी था।
जिनके पास भी शक्ति आ जाती है, उन्हें यह वहम पैदा होना शुरू हो जाता
है कि उन्होंने जो भी जाना और माना है, वह सही है। इसीलिए तो लोग शक्ति की इतनी खोज करते हैं। राजनीति की इतनी दौड़ है; क्योंकि सिंहासन पर पहुच कर तुम जो कहो, वही सत्य हो जाता है।
दुनिया में सत्य की खोज दो तरह से हो सकती है। एक तो, तुम सत्य को खोजने निकलो, तब शायद तुम्हें सब सिंहासन छोड़ देने पड़ें; क्योंकि खोज इतनी कीमती है कि सिंहासनों पर बैठ कर, वह हो नहीं सकती है। और खोज इतनी गहरी है

कि सिंहासन पर बैठा हुआ व्यक्ति वहां तक पहुंच नहीं सकता। जो सत्य की खोज पर जाता है, वह सिंहासन छोड़ देता है।
एक तो खोज है महावीर और बुद्ध की और दूसरी खोज यह है कि तुम सत्य चाहते हो, सिंहासन पर पहुंच जाओ। क्योकि सिंहासन पर पहुंच कर तुम जो भी कहोगेतुम्हारी ताकत की वजह सेलोग उसे सत्य मानेंगे। और तुम्हें भी वहम पैदा होगा कि जब इतने लोग मानते हैं सत्य, तो जो मैं कहता हूं, वह सत्य होना चाहिए।
नेपोलियन का एक प्रसिद्ध वचन हैः आई एम द लॉ, आई एम दि स्टेट, मैं हूं कानून, मैं हूं राज्य। मैं जो कहूं, वही कानून है; कोई और कानून नहीं है। सिंहासन पर पहुंचे आदमी को यह वहम स्वाभाविक हो जाता है कि वह जो कहता है, वही नियम है।
या तो तुम सत्य के अनुसार हो जाओ और या तुम इतने ताकतवर हो जाओ कि तुम दावा कर सको कि सत्य मेरे अनुसार है। बस, ये दो ही खोजें है। राजनीति और धर्म दो ही यात्राएं हैं। राजनीतिज्ञ कभी धार्मिक नहीं हो पाता है। धार्मिक का राजनीतिज्ञ होना असंभव है। यात्रा ही अलग है। एक शक्ति की खोज है और एक शांति की। एक सत्य की खोज है और एक सिंहासन की। सत्य की खोज में सूली तो भला मिल जाए, सिंहासन कभी भी नहीं मिलता। और सिंहासन की खोज में सिंहासन ही मिलता है, सत्य कभी नहीं मिलता। लेकिन जिसके पास ताकत है, वह लोगों को झुका सकता है, मनवा सकता है। और उसकी ताकत के कारण इनकार करना असंभव होगा।
ऐसा हुआ कि मोलोतोवस्टैलिन का एक निकटतम साथीएक बड़ी राजनीतिक काफ्रेंस में आया हुआ था। कोई दूसरी बात थी, जो स्टैलिन से पूछनी थी, तभी वह उत्तर दे सकता था। वह फोन कर रहा था स्टैलिन को। और एक पत्रकार, जो उससे मिलने आया था, वह कमरे में बैठा था। उधर से स्टैलिन जो भी कहता था, मोलोतोव कहता थाः यस सरजी हां, जी हां। लेकिन एक ऐसी घड़ी आई कि इसने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं। पत्रकार चौंका। क्योंकि स्टैलिन को कहनाः नहीं, बिल्कुल नहीं, असंभव बात है! और मालोतोव अनुभवी है कि जिसने नहीं कही, उसकी गरदन गई; वह बचेगा नहीं। तो पत्रकार ऐसे तो सुनता रहा, जब तक मोलोतोव जी हां, जी हां कह रहा था। लेकिन उत्सुक हुआ, जब मालोतोव ने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं एब्सोल्यूटली नो।
जब वार्ता पूरी हो गई, तो उस पत्रकार ने कहाः अगर आप नाराज न हों... बड़ी उत्सुकता पैदा हो गई है। मुझे मतलब नहीं कि आप किन चीजों में जी हां कह रह थे। लेकिन किस बात पर आपने कहा कि नहीं! आश्चर्यजनक! स्टैलिन को और कोई कहे नहीं! मोलोतोव हंसने लगा। उसने कहाः स्टैलिन को नहीं कहना असंभव है। लेकिन स्टैलिन उस समय मुझसे कह रहा थाः मोलोतोव, तुम निर्णय ले लो। इसलिए मैं कह रहा था कि नहीं, बिल्कुल नहीं।
जिसके पास शक्ति है, वह तुमसे हां कहलवा सकता हैचाहे वह तुम्हारे हृदय से आए या न आए। लेकिन वह तुम्हें हां कहने के लिए मजबूर कर सकता है। सिंहासन पर बैठे लोगों को भ्रम हो जाता है कि उनके पास सत्य है।
इस सम्राट को भी ख्याल था कि जो उसने जाना और माना है, वह सही है। इससे कोई इनकार कभी नहीं कर सकता था। और एक खतरा था कि वह आदमी सिंहासन पर ही नहीं था शक्तिशाली ही नहीं था न्याय-प्रिय भी था। और जब कोई आदमी सिंहासन पर भी होऔर साधु हो, तो उससे ज्यादा खतरनाक आदमी नहीं होता। एक तो सिंहासन! और ऊपर से सत्य होने का ख्याल! असाधु हो, तो तुम जानते हो कि ख्याल है सिर्फ, लेकिन वह शासक हो और साधु भी होआदमी अच्छा भी हो तो बहुत मुश्किल हो जाती है।
बुरे आदमी के हाथ में ताकत उतनी खतरनाक नहीं है, क्योंकि तुम जानते हो
कि आदमी बुरा है और अगर हां भी कह रहे हो, तो ऊपर से कह रहे हो। भीतर से तुम इनकार कर रहे हो। लेकिन आदमी अच्छा भी हो, न्याय-प्रिय भी हो, तब अड़चन और ज्यादा हो जाती है। तब तुम भीतर से भी ना कहने में मजबूर हो जाते हो; नहीं, नहीं कह पाते हो; तब तुम्हें सब तरफ से हां कहनी पड़ती है।
न केवल वह राजा शक्तिशाली था, वरन न्यायप्रिय था। उसकी तीन बेटियां थीं। एक दिन राजा ने अपनी सभी बेटियों को बुला कर कहाः मेरी सारी संपदा

तुम्हारी होने वाली है। मुझसे ही तुम्हें जीवन मिला और मेरी इच्छा से ही तुम्हारे भविष्य और भाग्य का निर्माण होगा।
दो राजकुमारियों ने तो यह बात मान ली। लेकिन तीसरी ने कहाः यद्यपि स्थिति का तकाजा है कि मैं कानून का पालन करूं, तो भी मैं यह नहीं मान सकती कि मेरा भाग्य आपकी मरजी से बनेगा।
बुद्ध के पिता ने एक दिन बुद्ध से यही कहा थाः कहा था कि तू मुझसे पैदा हुआ है। और कहा थाएक विशेष परिस्थिति में। बुद्ध ज्ञानी होकर वापस लौटे गांव, तो बुद्ध के पिता नाराज थे कि छोकरा घर छोड़ कर भाग गया था। और नाराज थे, क्योंकि इकलौता बेटा था, इसका ही सारा साम्राज्य था। और नाराज थे कि जिस परिवार ने कभी भींख नहीं मांगी लाखों को भीख दी उसका इकलौता बेटा सड़कों पर भीख मांग रहा था। अहंकार को बड़ी चोट लगी थी। और जब बुद्ध गांव में वापस आए, तो बाप नाराज थे।
और ध्यान रहे, अगर आप बाप हैं, तो बेटा बुद्ध भी हो जाए, तो भी पहचानना बहुत मुश्किल है। क्योंकि बाप का मतलब हैः ताकत की स्थिति।
बुद्ध के बाप को दिखाई नहीं पड़ा कि यह बेटा इतना रोशन होकर लौटा है, इतना ज्योतिर्मय होकर लौटा है! बुद्ध के बाप की आंखों में तो क्रोध था। और जहां क्रोध है, वहां दर्पण साफ नहीं होता। देखते ही उसने कहाः फेंको यह भिक्षापात्र। बहुत हो चुका यह नाटक। और मेरे द्वार अब भी खुले हैं। बाप का हृदय है, कभी बंद नहीं होता। तुम वापस लौट आओ। और मैं तुम्हें माफ कर दूंगा। यद्यपि तुमने पाप गहन किया है, माफी के योग्य नहीं है; लेकिन करुणा के कारण, प्रेम के कारण, मोह के कारण, माफ कर दूंगा।
बुद्ध ने कहाः आप गौर से तो देखें; क्योंकि जो बेटा आपका घर छोड़ कर गया था, वही वापस नहीं लौटा है। यह कोई और आदमी है, जो सामने खड़ा है। क्योंकि मैं आपसे निश्चित कहता हूं, वह मर चुका, जो गया था। और जो आया है, इससे उसका कोई भी संबंध नहीं। देह शायद एक हो, लेकिन भीतर का निवासी बिल्कुल बदल गया है। मकान पुराना हो, मालिक वही नहीं है। आप एक बार गौर से तो देखें। आप मुझे पहचानने की कोशिश करें।
बाप ने कहाः मैंने तुझे पैदा किया और मैं तुझे पहचानने की कोशिश करूं! मुझसे भलीभांति तुझे कौन जानता है? मेरा ही खून है, मेरी ही हड्डी-मज्जा है और मैं तुझे जानता नहीं!
बुद्ध ने कहाः आपने मुझे पैदा किया होगा; लेकिन फिर भी मैं आपसे कहता हूं कि आपने मुझे निर्मित नहीं किया। मैं आपसे गुजरा हूं; आप एक चौराहे थे, जिससे मैं पार हुआ हूं। लेकिन क्या आप सोचते हैं कि जिस रास्ते से यात्री गुजर जाता है, वह रास्ता उस यात्री को जान लेता है? आप सिर्फ रास्ता थे, जिससे मैं आया हूं।
ये अनहोनी सी बातें, जो किसी बेटे ने कभी किसी बाप से नहीं की बुद्ध के बाप ने आंखे पोंछी, जो क्रोध की वजह से आंसुओं से भर गयी थीं और गौर से इस युवक को देखा। निश्चित ही जो लड़का घर से गया था, वह नहीं है।
इस तीसरी बेटी ने कहाः स्थिति का तकाजा है कि मैं कानून का पालन करूं,
तो भी मैं यह नहीं मान सकती कि मेरा भाग्य आपकी मरजी से बनेगा। आप मेरे पिता हैं, आपने मुझे जन्म दिया है, वह सब ठीक है। यह भी हो सकता है कि आप मेरे अतीत है; लेकिन आप मेरे भविष्य हैंयह मैं नहीं मान सकती। और भविष्य मेरा स्वतंत्र है; वह आपकी मरजी से नहीं बनेगा। मैं यंत्र नहीं हूं। मेरा भी अपना जीवन है। और मैं मृत नहीं हूं, मैं चेतन हूं।
मैं एक स्वतंत्र इकाई हूं? यह घोषणा ही आत्मा की घोषणा है। इसलिए महावीर ने परमात्मा को इनकार कर दिया। महावीर ने कहाः कोई परमात्मा नहीं है दुनिया में। क्योंकि अगर परमात्मापरमात्मा यानी पिता तो फिर बेटे की कोई स्वतंत्रता नहीं हो सकती। और अगर परमात्मा ने बनाया हैआत्मा को, तो चीज बनाई गई है, वह कल मिटाई भी जा सकती है। इसलिए फिर आत्मा की कोई शाश्वतता नहीं है।
और अगर परमात्मा ने ही आत्मा को बनाया है, तो प्रयास तुम कितना ही करो व्यर्थ है; क्योंकि परमात्मा तुम्हारी स्थिति को कभी भी बदल दे सकता है। तुम कितना ही पुण्य करो, वह तुम्हें पाप में डाल सकता है। और तुम कितने ही

पाप करो, वह तुम्हें पुण्यात्मा बना सकता है; क्योंकि अंतिम मालिक वही है; उसने तुम्हें बनाया है।
परमात्मा को धार्मिक लोग पिता कहते हैं महापिता कहते हैं। सारी दुनिया में वह प्रतीक हैः पिता का। यह सोचने जैसा है। साधारण पिता तो इतना ही कह सकता है कि तुम मुझसे पैदा हुए हो। मैंने तुम्हें बनाया, यह दावा नहीं कर सकता। अगर बिल्कुल अंधा हो तो ही कर सकता है लेकिन अगर परमात्मा पिता है, तब तो वह यह भी दावा कर सकता है कि मैंने तुम्हें बनाया। तुम मुझसे पैदा ही नहीं हुए हो, तुम मेरे ही निर्माण हो।
सारे धर्म यही तो कथा कहते हैं कि उसने मिट्टी की मूर्ति बनाई, फिर सांस फूंक दी और आदमी निर्मित हो गया। महावीर ने कहाः अगर ऐसा कोई परमात्मा है, तो मनुष्य की सारी गरिमा खो जाती है; क्योंकि तब स्वतंत्रता नहीं है। और तब फिर पाप या पुण्य का कोई अर्थ नहीं। फिर मैं अपने को मुक्त करने की चेष्टा करूं, यह भी व्यर्थ है।
अगर यही सच है कि कोई भीतर से धागे डाल रहा है और मैं कठपुतली की तरह नाच रहा हूं, तो कठपुतली की क्या स्वतंत्रता! फिर कठपुतली चोर हो कि साधु होयह धागे खींचने वाले पर निर्भर है। फिर सब व्यर्थ हो जाता है। फिर यह पूरा जगत एक मूर्खतापूर्ण कथा है, जिसमें कोई सार नहीं है। इसलिए महावीर ने कहाः कोई परमात्मा नहीं है। बस, तुम हो। यह बड़ा सोचने जैसा है।
महावीर ने यह कहा कि तुम ही परमात्मा हो। सूफी भी यही कहते हैं। इसलिए मुसलमान सूफियों पर बहुत नाराज रहे। इसलिए मंसूर जैसे सूफी को मुसलमानों ने सूली पर लटका दिया, मार डाला; क्योंकि सूफियों के पास गहरे से गहरा वेदांत गहरी से गहरी महावीर की वाणी है। सूफियों के पासजो गहरे से गहरा धर्म हैवह है।
गहरे से गहरा धर्म, परमात्मा को तुम्हारे भीतर रखता हैआकाश में नहीं। क्योंकि आकाश में अगर परमात्मा है, तो तुम परतंत्र हो। परमात्मा तुम्हारे भीतर हो, तो ही तुम स्वतंत्र हो, तो ही तुम्हारी मुक्ति कभी संभव है; तो ही मोक्ष का उपाय है अन्यथा गुलामी सदा रहेगी। वह कभी नहीं मिट सकती, अगर परमात्मा ऊपर है।
अगर परमात्मा तुमसे भिन्न है, तो तुम्हारी कोई कीमत नहीं; तुम दो कौड़ी
के हो। और जब तुम्हारी कोई कीमत नहीं, तो धर्म का क्या मूल्य है?
सूफी मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ही अपना नियंता, अपना स्रष्टा है। भाग्य अपने हाथ में है।
यह तीसरी लड़की सूफियों की प्रतीक है; यह सूफियों की प्रतिनिधि है। उस तीसरी लड़की ने कहाः स्थिति का तकाजा है। उसने कहाः परिस्थिति तो यही है, सरल भी यही है, सुगम भी यही है कि जैसे मेरी दो बहनें राजी हो गई हैं, वैसे मैं राजी हो जाऊं। लेकिन यह सत्य नहीं है। और जो परिस्थिति के सामने झुकता है और सत्य को छोड़ता है, वही सांसारिक व्यक्ति है। और जो सत्य को पकड़ता है और परिस्थिति चाहे बदलती हो, टूटती हो, नष्ट होती हो, उसकी चिंता नहीं लेता है, वही संन्यासी है।
तुम परिस्थिति को मूल्यवान समझते हो या सत्य को? इससे ही निर्णय होगा
कि तुम गृहस्थ हो या संन्यासी हो। अगर परिस्थिति मूल्यवान है अर्थात संसार मूल्यवान है, घर मूल्यवान है, परिवार मूल्यवान है, पद-प्रतिष्ठा मूल्यवान है, तो तुम गृहस्थ हो। वे दो लड़कीयां गृहस्थ की प्रतीक हैं। तीसरी लड़कीएक संन्यस्त भाववाली लड़की है। उसने कहाः स्थिति का तकाजा
है कि मैं कानून का पालन करूं। आप जो कहें, वह सत्य है। लेकिन तो भी मैं यह मान नहीं सकती कि मेरा भाग्य आपकी मरजी से बनेगा।
इसलिए धार्मिक आदमी अकसर बगावती दिखाई पड़ता है जीसस, बुद्ध या महावीर। और तथाकथित धार्मि.क आदमी उसकी हत्या करने को उत्सुक हो जाते हैं। जीसस को जिन्होंने मारा, वे तुम जैसे धार्मिक लोग थेजो रोज मंदिर जाते हैं, पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, किताब को मानते हैं, कानून को मानते हैं। लेकिन स्थिति ऊंची है; और स्थिति से ऊपर उनके भीतर कुछ भी नहीं है। परिस्थिति बड़ी है और मनःस्थिति का कोई अर्थ नहीं है।

उन्होंने जीसस को मारा, क्योंकि जीसस ने घोषणा की मनःस्थिति की और परिस्थिति को दो कौड़ी का कहा। महावीर को पत्थर मारे गए; बुद्ध का अपमान किया गया। वह सब स्वाभाविक है। और जिन्होंने कियाध्यान रखनावे कोई अधार्मिक लोग नहीं थे। अधार्मिक को मतलब ही नहीं है। जीसस को जिन लोगों ने मारा, वे कोई नास्तिक नहीं थे। नास्तिक जो थे, उन्हें तो प्रयोजन ही नहीं था कि जीसस क्या बक रहा है। आस्तिक थेवे सारे लोग; वे धार्मिक थे।
तो एक तो दिखाई पड़नेवाला तथाकथित धार्मिक है; वह हमेशा आज्ञा के अनुसार चलता है; परिस्थिति को मानकर चलता है, झुककर चलता है। और एक वास्तविक धार्मिक है, वह अपना सिर उठाता है, तो हमें कष्ट होता है।
उस लड़की ने बड़ी बगावत की बात कही; उसने कहाः यह मैं नहीं मान सकती कि भविष्य तुम्हारी मरजी से बनेगा। हम देखेंगे कह कर बादशाह ने बागी बेटी को कैद में डाल दिया, जहां वह वर्षों कष्ट झेलती रही। इस बीच उसके हिस्से का धन भी बादशाह और वफादार बेटियों ने खर्च कर दिया। और तब बादशाह ने स्वयं से कहाः यह लड़की अपनी नहीं मेरी मरजी से कैद काट रही है। इससे स्पष्ट है कि मेरी इच्छा ही उसकी नियति है।
लेकिन लड़की क्या सोचती रही होगी कारागृह में? यही मजा है कि जीवन बड़ा जटिल है और तुम अपने अनुसार धारणा बना लेते हो। बादशाह का कहना भी तर्कयुक्त है कि लड़की मेरी मरजी से जेल काट रही है। और लड़की सोचती रही होगी कि मेरी मरजी से जेल काट रही हूं। क्योंकि मैं चाहती, तो झुक जाती परिस्थिति के सामने, आज्ञा मान लेती और आज महल में होती, कारागृह में न होती। यह मेरी ही मरजी है कि मैं कारागृह में हूं। और बादशाह सोचता रहा, उसका सोचना भी दुरुस्त है, तर्कयुक्त मालूम पड़ता है कि यह मेरी ही मरजी है कि वह जेल काट रही है। लेकिन अगर तुम गौर करोगे, समझने की कोशिश करोगे, तो लड़की अपनी ही मरजी से जेल काट रही है; बादशाह सिर्फ निमित्त है। दो लड़कियां अपनी ही मरजी से महल में बैठी हैं; बादशाह सिर्फ निमित्त है। धार्मिक व्यक्ति अपने को निमित्त मानता हैकर्ता नहीं। और अगर दूसरों
के जीवन में भी उससे कुछ होता है, तो वह निमित्त मानता है कर्ता नहीं। वह कहता हैः मैं सिर्फ निमित्त हूं। अधार्मिक व्यक्ति अकड़ जाता है। अहंकार घोषणा करता है कि देख, अब तू जेल काट रही है; किसकी मरजी से? तेरा भविष्य कारागृह बन गया मेरी मरजी से। और अहंकार का तर्क ऊपर से ठीक मालूम पड़ता है, फिर भी ठीक नहीं है। जो भी घटता है, अंततः तुम्हारी ही मरजी से घटता है। जिस आदमी ने हिरोशिमा पर बम गिराया, यह भी उसकी ही मरजी थी; क्योंकि यह उसके हाथ में था कि वह आज्ञा माने कि न माने। यह अंतिम रूप से तो तुम्हारी ही मरजी निर्धारक है। दुनिया कितना ही कुछ कहे, आखिर में तो तुम्हीं निर्णय लेते हो कि मैं मानूं या न मानूं; मैं जाऊं या न जाऊं। इसलिए अगर कभी अंतिम कोई अदालत होजैसा कि ईसाई कहते हैं, मुसलमान कहते हैंः लास्ट जजमेंट डेतो जिस आदमी ने हिरोशिमा पर बम पटका है, वह यह न कह सकेगा कि मैंने आज्ञा मानी; क्योंकि इससे पूछा जाएगा कि आज्ञा मानना या न मानना तेरे हाथ में था या नही?
इसलिए तुम अपने को धोखा मत देना। तुम यह मत कहना कि पिता ने कहा, इसलिए मैंने ऐसा किया। तुम यह मत कहना कि समाज ने कहा, इसलिए मैंने ऐसा किया। क्योंकि कोई कुछ भी कहे, आखिरी निर्णायक तो तुम्हीं हो सदा। अंतिम निर्णय सदा तुम्हारे हाथ में है; उससे तुम नहीं बच सकते।
बादशाह का तर्क ऊपर से ठीक दिखाई पड़ता है, भीतर से भ्रांत है।
मुल्ला नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा है कि तेरे भाई में और तेरी उम्र में कितना फासला है? तो नसरुद्दीन ने कहाः मेरा भाई मुझसे तीन साल छोटा है और रोज छोटा होता जा रहा है। वह आदमी थोड़ा चौंका। आधी बात तो ठीक थी कि होगा तीन साल छोटा; लेकिन रोज छोटा होता जा रहा है... ! उसने कहाः मैं समझा नहीं। तुम किस हिसाब से कहते हो नसरुद्दीन? नसरुद्दीन ने कहाः रीजनिंग, तर्क। एक साल पहले मैंने सुना कि मेरा भाई किसी को कह रहा था कि वह मुझसे दो साल छोटा है। एक साल बीत गया। अब वह मुझसे तीन साल छोटा है। और ज्यादा देर न लगेगी कि मैं उसके पिता की उम्र का हो जाऊंगा। वह रोज छोटा होता जा रहा है।
एक साल बीत गया है और मैं एक साल बड़ा हो गया हूं।

अहंकार के तर्क सिर्फ अपनी तरफ देखते हैं। मुल्ला बढ़ रहा है; और दूसरा? उसकी तरफ कोई सवाल नहीं है।
राजा ने अपनी तरफ देखा कि मेरे निर्णय से यह लड़की पड़ी है कारागृह में। उसने यह न देखा कि इसका ही अपना निर्णय है अंततः। और यह आज राजी हो जाए, तो महल में जाएगी। यह निर्णय भी उसका ही होगा। मैं निमित्त से ज्यादा नहीं हूं।
निर-अहंकार पैदा होना शुरू होता हैजब तुम देखते हो कि दूसरे के लिए तुम निमित्त हो, सिर्फ अपने लिए कर्ता हो। और जब तुम सोचते हो कि तुम अपने लिए भी कर्ता हो और दूसरे के लिए भी कर्ता हो, तभी भ्रांति खड़ी होती है और अहंकार निर्मित होता है।
अपने लिए कर्ता होने में कोई अहंकार नहीं है; वह तो दायित्व है। और जरूरी है कि तुम्हारे भीतर हो; अन्यथा तुम भटक जाओगे, खो जाओगे, खंड-खंड होकर गिर जाओगे। तुम्हारे पास जोड़ने वाली कोई चीज ही न होगी। कोई सीमेंट न होगा, तुम्हारे भीतर, जिससे तुम इकट्ठे खड़े रह सको। तुम बिखर जाओगे।
अपने लिए तुम कर्ता हो, तुम्हारा भाग्य तुम्हारा निर्णय है। पर दूसरों का भाग्य तुम्हारा निर्णय नहीं है; वे अपने कर्ता हैं। और अगर उनके जीवन में तुमसे कुछ भी संबंध है, तो वह निमित्त का है।
यह निमित्त शब्द बड़ा कीमती है। निमित्त का अर्थ है कि तुम न होते तो कोई दूसरा भी यही करता; कोई तीसरा करता; तुम्हारा होना अनिवार्य नहीं है। किसी से भी यही घटना घट जाती। यह लड़की कारागृह में होती, कोई भी बाप होता।
बाप का जो भाव है, कर्ता का जो भाव है, अहंकार जो है, उससे इस लड़की की बगावत हो जाती; यह दुख में पड़ती।
और प्रजा भी राजा की राय से राजी थी। प्रजा सदा राजा की राय से राजी है; इसीलिए प्रजा है। जो भी ताकतवर है, उससे वह राजी है।
उन्नीस सौ सत्रह में रूस में क्रांति हुई। उस क्रांति के पहले रूस दुनिया में अधिक से अधिक धार्मिक मुल्कों में से एक था। लोग चर्च जाते, बाइबल पढ़ते, गले में क्रॉस लटकाते। उन्नीस सौ सत्रह में क्रांति हुई और कम्युनिस्ट ताकत में आए। और कानून की एक लकीर और सारा रूस नास्तिक हो गया। यह चमत्कार है। ऐसा चमत्कार दुनिया के इतिहास में दूसरा दिखाई नहीं पड़ता। आखिर ये बीस करोड़ लोग, जो कल तक धार्मिक थे, चर्च जाते थे अचानक पादरियों और पुरोहितों को मारने लगे, हत्या करने लगे, चर्चों को आग लगाने लगे! इन्हीं पुजारियों, इन्हीं पूजा करने वालों ने चर्चों को स्कूल में बदल दिया, अस्पताल बना दिया। सब मूर्तियां ईसा की खो गईं। बाइबिलें जला दी गईंबीच चौराहों पर रख कर। होलियां हो गईं बाइबिलों की। और ये वही लोग थे! यह हुआ क्या? इनकी आस्तिकता कैसी थी! ये आस्तिक नहीं थे। तब.जार राजा था। वह आस्तिकता में मानता था। वह अपने को धार्मिक समझता था। उसकी धारणा थी धार्मिक होने की। ये.जार के साथ राजी थे; ये तब प्रजा थे।
जार की जगह लेनिन, स्टैलिन आ गए; ये नास्तिक थे, ये ईश्वर को नहीं मानते थे। ये चर्च के दुश्मन थे। ये कहते थेः धर्म अफीम का नशा है। प्रजा इनसे राजी हो गई। प्रजा सदा राजी होती है। प्रजा का अर्थ हैः जिसका अपना कोई निर्णय नहीं। जहां ताकत हो, वह उसके साथ राजी हो जाती हैः जिसके पास ताकत हो, वह उससे राजी हो जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक सम्राट के यहां नौकर था। उसकी कुशलताएं, उसकी बुद्धिमत्ताएं, उसकी अनहोनी बातें--राजा उससे प्रेम करने लगा। और रोज खाने के वक्त उसे बुला लेता था। एक दिन भिंडी की सब्जी बनी और राजा ने कहा कि बड़ी अच्छी सब्जी बनी है। मुल्ला ने कहाः गजब की; भिंडी जैसी तो कोई चीज ही नहीं है। सारा वनस्पति शास्त्र खोज डाला, भिंडी का कोई मुकाबला नहीं। यह तो राजा है सब्जियों में।
दूसरे दिन सुन लिया सब्जी बनाने वाले ने। उसने दूसरे दिन फिर भिंडी बनाई; क्योंकि जब ऐसी राजा भिंडी है, तो दूसरे दिन भी बनाई। राजा ने खाई तो, लेकिन कोई चर्चा न की। तो मुल्ला नसरुद्दीन भी चुप रहा। तीसरे दिन फिर भिंडी बनाई गई, तो राजा नाराज हो गया। उसने थाली सरका दी और जमीन पर गिरा दी। उसने कहाः यह क्या पागलपन है रोज भिंडी-भिंडी! ऊब गया।

नसरुद्दीन ने उठ कर एक लात मारी थाली को और कहाः भिंडी! यह भी कोई खाने योग्य है? यह तो जानवरों के लायक है। राजा ने कहाः नसरुद्दीन! दो दिन पहले तो तुमने कहा था कि यह सब्जियों में राजा है। नसरुद्दीन ने कहाः मालिक, मैं आपका नौकर हूं, भिंडी को थोड़े ही हूं। जहां हवा बहती है, उस तरफ हम बढ़ते हैं। हमें भिंडी से क्या लेना देना! भिंडी हमें क्या दे देगी! आप जहर की प्रशंसा करो, हम जहर को अमृत कहेंगे। हम आपके साथ हैं, चाहे कुछ भी हो जाए। हम आपके नौकर हैं।
राजा बदल जाता है, प्रजा बदल जाती है। इसलिए प्रजा का कोई भरोसा नहीं हैं। उसकी अपनी कोई धारणा नहीं है।
बुद्धों का मुल्क, सत्तर करोड़ लोग बौद्ध थे चीन में; माओ ने बदल डाले। बुद्ध की प्रतिमाएं हट गईं। आज चीन में बुद्ध का कोई नाम नहीं लेता। आज कोई नहीं कहताः नमो बुद्धाय! क्या हुआ?
हजारों साल जिन्होंने बुद्ध की पूजा की थी, जिन्होंने बुद्ध के बड़े- बड़े मंदिर बनाए। दस हजार बुद्धों का मंदिर है चीन में, जिसमें दस हजार प्रतिमाएं हैं बुद्ध की। इतना विराट मंदिर जगत में कहीं भी नहीं है, किसी का भी नहीं है। जिन्होंने पहाड़ खोद डाले, सदियों तक श्रम किया; अचानक सब व्यर्थ हो गया!
क्या सच में ही ये लोग बौद्ध थे? भ्रांति थी। बौद्ध भिक्षुओं ने इनको बदला नहीं था। बौद्ध भिक्षुओं ने सम्राटों को बदल लिया था। सम्राट बौद्ध हो गया था, तो ये लोग बौद्ध हो गए थे। प्रजा राजा के पीछे चली गई थी। अब सम्राट माओ है, तो ये सब कम्युनिस्ट हैं।
प्रजा के पास अपनी कोई धारणा नहीं है। इसलिए प्रजा ने भी कहा कि राजा बिल्कुल ठीक है। राजा सदा ठीक है। जिसके पास शक्ति है, वह ठीक है।
जब तक तुम्हारे पास सत्य की आकांक्षा न हो, तब तक तुम प्रजा के तल से ऊपर न उठोगे। जब तुम सत्य की आकांक्षा से भरोगे, तब तुम शक्ति से नहीं झुकोगे; तब तुम्हारे पास अपनी धारणा होगी, अपनी जीवन शैली होगी। उसके पहले सब उधार है। उसके पहले राजा के पीछे तुम चल रहे हो। उसके पहले जिसके पास ताकत है, तुम उसके साथ हो।
स्टैलिन के पास ताकत थी, तो स्टैलिन भगवान था रूस में। फिर स्टैलिन की ताकत चली गई। स्टैलिन मरा, ताकत विरोधियों के हाथ में पहुंच गई। ख्रुश्चेव के हाथ में पहुंच गई। तो स्टैलिन को जहां क्रेमलिन में गड़ाया गया था, वहां से लाश हटा दी गई। मरे हुए आदमी की लाश को वापस निकाला, क्योंकि वह बहुत प्रतिष्ठित जगह है--क्रेमलिन का चौराहा। जहां लेनिन की लाश है, उसके बगल में स्टैलिन की लाश थी, वह हटा ली गई। सब किताबों में से स्टैलिन की तस्वीर काट दी गई। और जो कहते थेः स्टैलिन भगवान, वे सब चुप रहे।
ख्रुश्चेव ने यह सब किया, फिर ख्रुश्चेव की भी तख्ती पलट गई। फिर ख्रुश्चेव की जगह दूसरे लोग ताकत में आ गए। और लोग भूल गए कि ख्रुश्चेव जिंदा है कि नहीं! ख्रुश्चेव एक देहात मेंदूर देहात में, बिल्कुल गुमनाम जिंदगी जीने लगा।
लोग बड़े अजीब हैं! लोग ताकत के पीछे चलते हैं। और जो ताकत का गुलाम है,
वह सत्य की खोज कभी नहीं कर सकता। वह कैसे करेगा? क्योंकि ताकत वाला बदल जाएगा, तो सत्य बदल जाएगा। और सत्य कभी बदलता नहीं। सत्य शाश्वत है और शक्ति तो रोज बदलती है। वह तो मौसम की तरह हैसुबह कुछ, सांझ कुछ।
बीच-बीच में राजा ने बंदी बेटी से अपनी मनवाने के बहुत उपाय किए, लेकिन सारी यातनाओं के बावजूद राजकुमारी ने विचार नहीं बदला। अंत में राजा ने राज्य के बाहर एक डरावने जंगल में उसको छुड़वा दिया, जहां हिंस्त्र पशुओं के साथ-साथ ऐसे खतरनाक आदमी भी थे, जिन्हें राज्य देश-निकाले की सजा दिया करता था।
लेकिन जंगल में पहुंच कर राजकुमारी ने पाया कि गुफा घर है। और पेड़ों
के फल सोने के थाल वाले फलों जैसे ही हैं; शायद और भी बेहतर।
लेकिन यह तभी होगा, जब तुम्हारे भीतर आत्मा का जन्म शुरू हो जाए, तब सोनेवाले थाल में रखे हुए फल से, वृक्षों से गिरा हुआ फल ज्यादा मधुर,

ज्यादा ताजा, ज्यादा स्वस्थ होगा। जब तक तुम्हारे भीतर आत्मा नहीं है, तब तक फल का कोई सवाल नहीं है; सोने के थाल की कीमत है; तब तक जीवन का कोई मूल्य नहीं है, महल का मूल्य है; तब तक प्राण की कोई क्षमता नहीं है, सिंहासन का अर्थ है।
कारागृह में इस युवती ने यातनाएं झेलीं। यातनाओं के सामने जो झुक जाए, उसकी आत्मा मर जाती है। और यातनाओं के जो सामने खड़ा रहे चुनौती स्वीकार कर ले, न झुके उसके भीतर आत्मा का जन्म होता है।
रखनाः यातना बहुमूल्य क्षण है। जब तुम दुख को झेल लेते हा ेबिना झुके, तो दुख तुम्हें महान बना जाता है। और जब तुम दुख से झुक जाते हो, मिट जाते हो, तब दुख तुम्हें तिरोहित कर जाता है।
दुख खतरनाक भी है, दुख प्रीतिकर भी है। दुख दुश्मन भी है, दुख मित्र भी है। तुम पर ही निर्भर है अंततः कि तुम उसका कैसा उपयोग कर लेते हो। अगर तुम दुख के सामने खड़े रहे और दुख तुम्हें न मिटा पाया, तो तुम पाते हो कि तुम्हारे पास इतनी शक्ति, इतनी ऊर्जा आ गई, जितनी कभी न थी।
इसे तुम छोटी-छोटी घटनाओं में भी अनुभव कर सकते हो जब तुम बीमार पड़ते हो, अगर तुम बीमारी से टूट न जाओ, तो तुम पाओगे कि बीमारी के बाद तुम्हारे पास ऐसा ताजा स्वास्थ्य है, जो बीमारी के पहले नहीं था। लेकिन अगर तुम बीमारी से झुक जाओ और टूट जाओ, तो बीमारी भी चली जाएगी और तुम बीमार ही बने रहोगे। बीमारी जा चुकेगी, लेकिन तुम्हें निर्बल कर जाएगी। फिर तुम कभी उस बल को न पा सकोगे, जो बीमारी के पहले था।
खड़े रहने की क्षमता और जब यातना आए, तब उसका साक्षात करने की क्षमतातपश्चर्या है। अपने हाथ से भी साधकों ने यातनाएं पैदा कि हैं, ताकि वे उनके सामने खड़े रहें।
महावीर जंगल में खड़े हैं उपवासे भूखे। वह भूख अपने हाथ से पैदा की गई यातना है। और महावीर उसके सामने खड़े होकर देखने की कोशिश कर रहे हैं कि भूख जीतती है या मैं! भूख जीतती है या चेतना? भूख झुका देती है आत्मा को, कि आत्मा झुका लेती है भूख को? और वे उसी दिन गांव में भोजन मांगने जाते हैं, जिस दिन भूख हार जाती है। तुम भी गए होते गांव में भोजन मांगने; लेकिन उस दिन, जिस दिन भूख जीत जाती। तब बड़ा फर्क हो जाता। इसको थोड़ा ख्याल में ले लेना।
कभी महावीर पंद्रह दिन बाद जाते हैंगांव में भीख मांगने, कभी महीने
भर बाद, कभी दो महीने बाद, कभी दो दिन बाद! राज क्या है? कुंजी क्या है? किस दिन वे जाते हैं गांव में?
साधारणतः तुम अगर सोचोगे, तो यही सोचोगे कि जिस दिन भूख लगती होगी, जिस दिन न सह पाते होंगे भूख को, जिस दिन भूख इतना सता देती होगी कि रुकना मुश्किल हो जाता होगा, उसी दिन उपवास तोड़ते होंगे। नहीं। अगर तुमने ऐसा समझा तो यह तुम्हारे अपने बाबत खबर है, महावीर के बाबत नहीं। महावीर भीख मांगने जाते हैं; लेकिन उस दिन, जिस दिन भूख पक्की पराजित हो जाती है।
जिस दिन भूख गिर ही जाती है, जिस दिन भूख मिट ही जाती है और जिस दिन आत्मा निश्चल खड़ी हो जाती है, उस दिन महावीर गांव में भीख मांगने जाते हैं। उस दिन वे भोजन करते हैं, जिस दिन भूख पराजित होती है। कभी महीना भर लग जाता है उसको पराजित करने में। कभी दो दिन में भी हो जाती हैयह घटना। इसलिए दिन तय नहीं किए जा सकते; अनेक संयोगों पर निर्भर होगा।
वह लड़की यातनाओं को सह गई। उसके भीतर आत्मा पैदा हो गई। आत्मा का अर्थ
ही हैयातनाओं के सामने खड़े होने की क्षमता। और जिसमें ऐसी क्षमता आ जाए, उसके जीवन की दृष्टि बदल जाती है।
उसे जंगल में गुफाएं घर जैसी प्रीतिकर लगीं; शायद ज्यादा प्रीतिकर। क्योंकि कोई घर वैसी स्वतंत्रता नहीं दे सकता, जैसी स्वतंत्रता गुफा दे सकती है। घर कितना ही घर हो, एक तरह का कारागृह होता है। उसमें एक परतंत्रता तो होती ही है। गुफा परम स्वतंत्र है। और जंगल में वृक्षों से गिरे हुए फलों की मिठास, उनकी ताजगी और उनका जीवन-रस, सोने की थालियों से पूरा नहीं किया जा सकता।

फिर उस जंगल की आजाद जिंदगी का क्या कहना! और उस कुदरती राज्य में कोई
भी तो उसके राजा पिता की आज्ञा नहीं मानता था। वहां सभी बगावती थे।
ध्यान रहे, अपराधी में और धार्मि.क आदमी में थोड़ा सा तालमेल है।
क्योंकि धार्मिक भी बगावती होता है, अपराधी भी बगावती है; इतना तालमेल है।
उनकी बगावत की दिशाएं अलग हैं, लेकिन बगावत एक है।
अपराधी भी कानून तोड़ता है; धार्मिक व्यक्ति भी कानून तोड़ता है।
अपराधी कानून तोड़ कर कानून से नीचे गिर जाता है; धार्मिक कानून तोड़ कर कानून से ऊपर उठ जाता है। यह बड़ा भेद है। लेकिन कानून को तोड़ने की प्रक्रिया तो दोनों में है। इसलिए अकसर ऐसा हो जाता है कि वाल्मीकि जैसा अपराधी क्षण में धार्मिक हो जाता है; अंगुलिमाल जैसा हत्यारा क्षण में बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है।
यह कीमिया कैसे घटित होती है कि अंगुलिमाल या वाल्मीकि जैसा दुष्ट हत्यारा एक क्षण में धार्मिक हो जाता है?
लोग सदियों से पूछते रहे हैं कि अपराधी एक क्षण में कैसे धार्मिक हो सकता है! क्योंकि एक सूत्र दोनों में एक जैसा है, वह हैबगावत का।
बगावत का रुख बदलने की बात है। दोनों दौड़ना जानते हैं; सिर्फ दिशा चुनने की बात है। अपराधी भी दौड़ने में कुशल है। एक दफा उसकी दिशा बदल जाए, तो मंदिर तक पहुंचना कठिन नहीं है।
तुम दौड़ना ही नहीं जानते। वह जो मध्यस्थ आदमी हैजो न अपराधी है और न धार्मिक हैजो प्रजा हैवह दौड़ना नहीं जानती। उसके पैर पंगु हैं। उसको बगावत का कोई पता नहीं। उसने किसी तरह की बगावत नहीं की है। उसको बहुत देर लगती हैधार्मिक होने में।
वहां जितने लोग थे, वे देश से निकाले गए थे और यह लड़की थी। उन दोनों के बीच एक तालमेल था। वे सभी बगावती थे।
फिर किसी दिन एक भूला-भटका किंतु समृद्ध यात्री उस जंगल में आया। वह राजकुमारी के प्रेम में पड़ा। उसे वह अपने देश ले गया। वहां उससे उसने विवाह किया। अरसे बाद दोनों उसी जंगल में वापस आए, जहां उन्होंने अपनी बुद्धि, साधन और श्रद्धा के अनुरूप एक नगर बसाया, जिसकी लयबद्ध जिंदगी में वहां के सारे बहिष्कृत पगले घुल-मिल गए।
यही कल्पना हैसूफियों की, समस्त फकीरों की, संन्यासियों की कि कहीं
यह पृथ्वी एक ऐसा नगर बन जाये, जहां पागल भी स्वीकृत हों, जहां अपराधी भी घुलमिल जाएं; जहां साधु-असाधु का भेद न करना पड़े; जहां बुरे और अच्छे में फासला न हों, जहां बुरे भी अच्छे में गति दें और जहां अच्छा भी बुरे में साथ दे; और जहां दोनों दो चाक की तरह गाड़ी को चलाएं; जहां दुश्मनी न हो, एक लयबद्धता हो।
और ध्यान रहे, अगर समाज में सभी अच्छे-अच्छे लोग हों... जैसा अब तक कोशिश की गई हैवह सफल नहीं होगी, क्योंकि तुम एक ही चाक से समाज को चलाने की कोशिश करते हो। वह दूसरा चाक बिल्कुल जरूरी है। और न तो वह सफल होती है, न सफल हो सकती है। लेकिन अगर कभी सफल हो जाए, तो समाज बड़ा ऊब से भरा हुआ होगा।
तुम थोड़ा सोचोएक समाज, जहां सभी अच्छे लोग हैं। उस समाज में कुछ भी रस
न होगा। अच्छे आदमी कीमनोवैज्ञानिक कहते हैंकोई जिंदगी ही नहीं होती है। जिंदगी तो बुरे आदमी की होती है। इसलिए तुम एक उपन्यास लिखोअच्छे आदमी के ऊपरतुम मुश्किल में पड़ जाओगे।
राम की कथा लिखोरावण के बिना! वह कथा रावण की है। पूरी कथा रावण की है। सारा खेल उस पर खड़ा है। और रावण कह देः नहीं चुराते सीता को, तो राम बेकार हैं। सारी गति, सारा प्राण रावण से आता है। असली नायक रावण है। यह तो हम साधु-चित्त लोगों की चेष्टा है कि राम को नायक बना दिया है। लेकिन कथा का नायक रावण है; राम परिधि पर हैं।
और यह बड़े मजे की बात है कि शायद रावण तो हो भी सकता हैबिना राम के; राम नहीं हो सकते हैं। कठिन हैपहली संभावना भी; वह भी नहीं हो सकता। लेकिन शायद इसकी कोई संभावना हो कि रावण राम के बिना हो जाए। क्योंकि हम देखते हैं, इस जमीन पर, रावण तो बहुत हैं, राम दिखाई नहीं पड़ते!

राम नहीं हो सकते, रावण के बिना। और राम की जिंदगी में क्या बचता है, अगर रावण को हटा दो? कुछ नहीं बचता, कोई कथा नहीं बन सकती। इसलिए उपन्यास जिनको लिखना होता है, वे बुरे आदमी के बिना नहीं लिख पाते। और अगर अच्छा आदमी तुम्हारे पास हो, तो चर्चा में भी मजा न आएगा उससे। क्योंकि बात उसकी सब साधारण है; अच्छी-अच्छी है।
अच्छे आदमी की जिंदगी में नमक नहीं होता और नमक के बिना कोई स्वाद नहीं है। नमक स्वाद है। बुरे आदमी में नमक होता है, तेजी होती है। वह चाहे तिक्त और कड़वा भी कभी क्यों न हो, लेकिन एक गरिमा होती है।
सूफियों की, धार्मिकों की जो कल्पना है, वह ऐसे समाज की नहीं है, जहां अच्छे आदमी बचें और बुरे समाप्त हो जाएं। क्योंकि वह समाज तो बेरौनक होगा, उबानेवाला होगा।
बर्ट्रेंड रसल ने ठीक ही कहा है कि मैं स्वर्ग न जाना चाहूंगा; क्योंकि वहां कहते हैंः सभी साधु-संत पहुंच गए हैं। वहां जिंदगी बड़ी बोरडम होगी। नरक में थोड़ा रस भी हो सकता है। क्योंकि वहां गजब के लोग हैं। जिनको ईश्वर को भी नरक भेजना पड़ता है, वे आदमी गजब के ही हैं! जिनको क्षमा करने काउस महाकरुणावान को भी उपाय नहीं है, उनकी बगावत बड़ी गहरी है।
नरक में जरूर गजब की घटनाएं घटती होंगी; क्योंकि सभी उपद्रवी वहां इकट्ठे हैं। स्वर्ग में क्या घटता होगा! वहां लोग अपनी-अपनी सिद्ध-शिलाओं पर बैठे होंगे। और एक दूसरे को देखते होंगे कि वह अपनी सिद्ध-शिला पर बैठा है, हम अपनी सिद्ध-शिला पर बैठे हैं। यह उबानेवाला हो जाएगा। और कहते हैंः यह शाश्वत है।
तो रसेल ठीक कहता है; उसकी बात में जान है कि स्वर्ग मैं न जाना चाहूंगा। वहां सब भले आदमी जा चुके हैं।
तुमने कभी भले आदमी की जिंदगी में कोई रस देखा है? भले आदमी की जिंदगी में रस? असंभव है। तुम्हें बुरा आदमी हंसता हुआ, नाचता हुआ मिल जाएगा। भला आदमी सदा लंबे चेहरे का और उदास होगा। भले आदमी से दोस्ती तक करनी मुश्किल है; वह दोस्ती के योग्य भी नहीं होता।
सूफियों की, ज्ञानियों की कल्पना इस जगत को भले आदमियों का जगत बनाने
की नहीं है। उनकी कल्पना इस जगत में एक ऐसी लयबद्धता लाने की है, एक ऐसी रिदम पैदा करने की है, जहां बुरे और भले में विरोध न रह जाएजहां बुरे और भले एक दूसरे के परिपूरक हों, कांप्लिमेंटरी हों।
और एक ही स्वर से तो संगीत पैदा नहीं होता; अनेक स्वर चाहिए। और एक ही रंग से तो कला निर्मित नहीं होती अनेक रंग चाहिए। और एक ही रंग का होगा स्वर, तो बेरौनक होगा। लेकिन सभी स्वर दो ढंग से हो सकते हैं।
एक तो हो सकता है कि सभी स्वर एक दूसरे के विपरीत हों; तब कोलाहल पैदा होता है। बाजार प्रतीक है, जहां सभी स्वर चल रहे हैं, लेकिन एक कोलाहल है। और फिर एक संगीतज्ञ है, एक आर्केस्ट्रा है; वहां भी न मालूम कितने स्वर चल रहे हैं; पचास संगीतज्ञ हैं और सबके बीच एक लयबद्धता है, एक रिदम है। आर्केस्ट्रा और बाजार ये दो स्थितियां हैं।
अभी संसार बाजार है। धार्मिकों की कल्पना है कि कभी संसार आर्केस्ट्रा बने। वहां हम बुरे का भी उपयोग कर लेंगे। उसको मारेंगे नहीं, काटेंगे नहीं, जेल में नहीं फेंकेंगे। उसका नमक बड़ा कीमती है। वह स्वाद देगा जिंदगी को। उसकी बगावत बड़ी मूल्यवान है। उसकी बगावत मनुष्य को त्वरा देगी, गति देगी, क्षमता देगी। हम उसकी बगावत को आत्म-घात न बनने देंगे। हम फिर उसकी बगावत को आत्म-क्रांति बना लेंगे।
और फिर अरसे बाद दोनों उसी जंगल में वापस आए, जहां उन्होंने अपनी बुद्धि, साधन और श्रद्धा के अनुरूप एक नगर बसाया। जिसकी लयबद्ध जिंदगी में वहां के सभी बहिष्कृत पगले घुलमिल गए। राजकुमारी और उसके पति प्रधान चुने गए।
धीरे-धीरे नये राज्य का यश सारी दुनिया में फैल गया। और उसके सामने राजकुमारी के पिता का राज्य फिका पड़ने लगा।
जहां बुरे और भले में जोड़ हो जाए, वहां भला उसके सामने बिल्कुल फीका पड़ने लगेगा।

राजकुमारी का पिता न्याय-प्रिय आदमी था। उसने बुरे लोगों को काटकर जंगल में फेंक दिया था; कारागृहों में डाल दिया था। उसने भले लोगों को बचाया था। बगावत के सब अंश तोड़ दिए थे, सब अंकुर दबा दिए थे।
उसका राज्य अच्छा था। लेकिन बेरौनक होगा। और जब यह संगीतबद्ध आर्केस्ट्रा पैदा हुआतो जहां पागल भी बहिष्कृत न था, स्वागत था उसका भी। वे उसके पागलपन का भी उपयोग कर रहे थे। वहां उन्होंने बुराई का भी सृजनात्मक उपयोग कर लिया थातो उसके सामने उसके पिता का राज्य फीका पड़ने लगा।
अंत में बादशाह स्वयं एक दिन इस नये नगर को देखने आया; और जब वह सिंहासन के पास पहुंच रहा था, तभी उसके कानों में अपनी ही बेटी के ये शब्द सुनाई पड़ेः प्रत्येक नर-नारी की अपनी नियति है और अपना चुनाव है।
अगर एक अच्छी दुनिया बनानी हो, तो उसका सूत्र यही होगा कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी नियति है और अपना चुनाव है। अगर एक अच्छी दुनिया बनानी हो, तो वह भीड़ पर नहीं बनेगी, प्रजा पर नहीं बनेगी। अगर अच्छी दुनिया बनानी हो, तो वह प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा पर बनेगी।
आज जो दुनिया है, उसमें गरिमा छिन जाती है, बचती नहीं है। सब तरफ गरिमा छीनने वाले लोग हैं। बाप बेटे से छीन रहा है, पत्नी पति से छीन रही है, मालिक नौकर से छीन रहा है। ताकत जिनके पास है, वह ताकतहीनों से छीन रहे हैं। जिनके पास धन है, वे निर्धन से छीन रहे हैं।
सब तरफ छीन-झपट है; गरिमा छीनी जा रही है; किसी को भी व्यक्ति होने का मौका नहीं है। और किसी को आज्ञा नहीं है कि तुम वही हो जाओ, जो तुम होने को पैदा हुए हो। किसी को स्वयं होने की सुविधा नहीं है। सब तरफ धक्के दिए जा रहे हैं कि तुम कुछ और हो जाओ।
मैंने सुना हैः एक नाटक की शुरुआत में एक छोटा सा--कुत्ता बड़ा प्यारा कुछ खेल दिखा रहा है। उसने कई संगीत की धुनें पैदा की। उसने कई गीतों की कडियां गुनगुनाईं और लोग बड़े आनंदित हुए, चकित हुए; क्योंकि कुत्ता और इतने गजब का काम कर रहा था। और तभी बीच मेंसभी लोग चौंक गएएक बड़ा कुत्ता झपट कर आया परदे के पीछे से और छोटे कुत्ते की गरदन उसने मुंह में ली और उसे लेकर बाहर जाने लगा। जाते-जाते छोटे कुत्ते ने चिल्ला कर कहाः यह मेरी मां है। और वह चाहती है कि मैं नाटक में काम न करूं; मैं एक डाक्टर हो जाऊं। यहां मां धक्का दे रही है, बाप धक्का दे रहा है, स्थितियां धक्के दे रही हैंः तुम यह हो जाओ, तुम यह हो जाओ, तुम यह हो जाओ।
कोई भी राजी नहीं है कि तुम वही हो जाओ, जो तुम्हारी नियति हो। तुम जो होना चाहो, हो जाओऐसा कोई भी नहीं कह रहा है। इसलिए सब स्वतंत्रता झूठी है।
स्वतंत्रता का एक ही अर्थ हो सकता हैगहरे से गहरा अर्थकि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं होने की सुविधा हो।
अब तक जमीन पर ऐसी स्वतंत्रता आई नहीं। अभी तक जितनी स्वतंत्रताएं आई हैं, वे सब नाममात्र को हैं। क्योंकि चेष्टा जारी रहती हैतुम्हें कुछ बनाने की। और जिनको हम अच्छे लोग कहते हैं, जो स्वतंत्रता के लिए लड़ते हैं, उनकी भी चेष्टा होती है कि तुम कुछ बनोउनके हिसाब से।
सदगुरु वही है, जो तुम्हें इतनी स्वतंत्रता दे कि तुम वही बन जाओजो तुम्हारे भीतर छिपा था, वह प्रकट हो; जो तुम्हारे बीज में था, वह तुम्हारे फूल तक आ जाए।
तो पिता ने ये शब्द सुने अपनी ही बेटी केकि प्रत्येक नर-नारी की अपनी नियति है और अपना चुनाव है, अपना भाग्य है, अपनी स्वतंत्रता है। और प्रत्येक व्यक्ति अपना मालिक है।
लेकिन तुम दूसरों के मालिक होने में लगे हो, इसलिए अपने मालिक कब हो पाओगे? शायद तुम दूसरों के मालिक होने में इतना रस इसीलिए ले रहे हो कि तुम अपने मालिक नहीं हो पाए हो।
जो व्यक्ति अपना मालिक हो जाता है, वह दूसरे की मालकियत में रस नहीं लेता है। वह क्यों व्यर्थ पंचायत लेगा! जो व्यक्ति अपना मालिक हो जाता है,

उसे इतनी बड़ी मालकियत मिल गई, उसे इतना बड़ा खजाना मिल गया कि वह तुम्हारा मालिक नहीं होना चाहेगा। वह तुम्हें स्वतंत्रता देगा।
इसलिए आत्मवान व्यक्ति ही दूसरों को स्वतंत्रता दे सकते हैं।
आत्महीन व्यक्ति दूसरों की स्वतंत्रता छीनते हैं वे दूसरों को भी आत्महीन बनाते हैं; वे दूसरों से भी रौनक छीन लेते हैं, नष्ट कर देते हैं।
लेकिन यह हो रहा है। हम सब एक दूसरे के पीछे पड़े हैं। और जब तक तुम दूसरे के पीछे पड़े हो, तुम भटकोगे।
तुम अपने पीछे पड़ो। वहीं से साधना शुरू हो जाती है।
और स्मरण रखो कि प्रत्येक कृत्य के लिए तुम्हीं जिम्मेवार हो। और अंतिम गवाही में तुम्हारे अतिरिक्त कोई जिम्मेवार नहीं होगा तुम्हारी जिंदगी के लिए। अगर तुम अंधेरे में गए, तो तुम यह न कह सकोगे कि मेरी पत्नी ने मुझे रोशनी में न जाने दिया। अगर तुम भटके तो तुम यह न कह सकोगे कि क्या करूं, घर-गृहस्थी थी, भटकना पड़ा, परिस्थिति की मजबूरी भी थी।
कोई मजबूरी नहीं है और कोई परिस्थिति नहीं है। क्योंकि तुम जिस चीज
के लिए भी राजी हो, तुम ही राजी हो। वह परिस्थिति तुम्हारी बनाई हुई है। और तुम चाहो, तो उस परिस्थिति के बाहर हो सकते हो; कोई तुम्हें रोक नहीं रहा है।
आकाश सदा खुला है।
और अगर तुम पिंजड़े में बंद हो, तो ध्यान रखनाः पिंजड़े का दरवाजा किसी
ने बंद नहीं किया है। तुम्हीं भीतर से बंद किए हुए हो!
अकसर तो ऐसा हो जाता है कि अगर तुम पिंजड़े को खोलो तोते के और उसे बाहर निकालना चाहो, तो वह बाहर निकलेगा नहीं। वह तड़फेगा, चिल्लाएगा, शोरगुल मचाएगा, सींखचों को पकड़ेगा भीतर से। क्योंकि वह आदी हो गया है। वह उसका घर है।
परतंत्रता तुम्हारा घर है, तो तुम धार्मिक नहीं हो सकते। स्वतंत्रता
के आकाश में ही धर्म खिलता है, फलता-फूलता है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
बीसवां प्रवचन

साक्षित्व, समय-शून्यता और मन की मृत्यु

कहते हैं कि एक वृद्ध स्त्री थी भगवान बुद्ध के समय में। वह बुद्ध के
ही गांव में जन्मी थी और उनके जन्म-दिन पर ही।
लेकिन वह सदा ही बुद्ध के सामने आने से डरती रही तभी से जब कि वह छोटी
सी थी। युवा हो गई, फिर भी डरती रही। और वृद्ध हो गई, फिर भी।
लोग उसे समझाते भी कि बुद्ध परम पवित्र हैं, साधु हैं, सिद्ध हैं।
उनसे भय का कोई भी कारण नहीं। उनका दर्शन मंगलदायी है, वरदान-स्वरूप है।
लेकिन उस वृद्धा की कुछ भी समझ में नहीं आता। यदि वह कभी भूल से बुद्ध की राह में पड़ भी जाती थी, तो भाग खड़ी होती। अव्वल तो बुद्ध गांव में होते, तो वह किसी और गांव चली जाती।
लेकिन एक दिन कुछ भूल हो गई। वह कुछ अपनी धुन में डूबी राह से गुजरती
थी कि अचानक बुद्ध सामने पड़ गए। भागने का समय ही नहीं मिला। और फिर वह बुद्ध को सामने ही पा इतनी भयभीत हो गई कि पैरों ने भागने से जवाब दे दिया।
उसे तो लगा कि जैसे उसकी मृत्यु ही सामने आ गई है।
भाग तो वह न सकी, पर आंखे उसने जरूर बंद कर लीं।
पर यह क्या--! बंद आंखों में भी बुद्ध दिखाई पड़ रहे हैं! और गैरिक वस्त्रों में स्वर्ण सा दीप्त उनका चेहरा सामने है।
फिर उसने दोनों हाथों से अपनी आंखें ढांप लीं।
पर आश्चर्यों का आश्चर्य उस क्षण घटित होने लगा! जितना ही करती है वह बंद आंखों को, बुद्ध उतने ही भीतर आ गए मालूम होते हैं; बुद्ध उतने ही सुस्पष्ट होते चले जाते हैं। आह! जितना ही ढंकती है वह आंखों को, बुद्ध उतने ही भीतर आ गए मालूम होते हैं।
नहीं अब कोई बचाव नहीं है; मृत्यु निश्चित है। और इस प्रतीति के साथ
ही वृद्धा खो जाती है और बुद्ध ही शेष रह जाते हैं।
और झेन फकीर सदियों से पूछते रहे हैंः बताएं वह वृद्धा कौन है?

बुद्ध भी तुम हो और वृद्धा भी। तभी तो दोनों एक साथ, एक ही गांव में, एक
ही दिन पैदा हो सके। तभी तो वृद्धा डरती रहीबुद्ध को देखने से, क्योंकि देखने का अर्थ मृत्यु है।
तुम्हारे भीतर एक तत्व है, जो मरणधर्मा है। अगर वह अमृत को देख ले, तो लीन हो जाएगा। वह डरेगा, वह अमृत को देखने से भयभीत होगा।
तुम्हारे भीतर एक तत्व है, जो बुद्ध को देख ले, तो खोने के अतिरिक्त कोई मार्ग न बचेगा। जैसे नदी सागर के करीब पहुंच जाए, तो क्या करे! फिर गिरने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। गंगा को गंगोत्री तक लौटने का कोई उपाय नहीं है; सागर सामने आ जाए, तो गिरना ही पड़ेगा। जब तक गंगा बचती रहे सागर से दूर, तभी तक बची है।
बुद्धत्व तुम्हारे भीतर की शून्यता है। और वृद्धा तुम्हारा मन हैतुम्हारे विचार। तुम दो में से एक ही हो सकते हो। जब तक तुमने वृद्धा का हाथ पकड़ा है, तब तक तुम बुद्ध न हो सकोगे। क्योंकि वृद्धा तुम्हें भगाए फिरेगी। बुद्ध इस गांव में होंगे, तो वह तुम्हें दूसरे गांव ले जाएगी। बुद्ध यहां होंगे, तो वृद्धा तुम्हें यहां न टिकने देगी। लेकिन जिस दिन तुम मन का, उस वृद्धा का साथ छोड़ोगे, उसी दिन तुम्हारा बुद्धत्व प्रकट हो जाएगा। क्योंकि बुद्धत्व कोई उपलब्धि नहीं है, उसे तुम लेकर ही पैदा हुए हो; वह तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है, वह तुम्हारा स्वरूप है। वह तुम हो। बुद्ध कोई ऐतिहासिक व्यक्ति ही हैं, ऐसा नहीं। गौतम सिद्धार्थ में भी
वह घटना घटी थी, इसलिए वे बुद्ध हुए। वह घटना तुम में भी घट सकती है। बुद्धत्व एक घटना है; कोई किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। वह गौतम सिद्धार्थ में घटी, क्योंकि वृद्धा सामने पड़ गई। तुममें अभी तक नहीं घटी है, क्योंकि वृद्धा कुशल है और अब तक सामने नहीं पड़ी है।
मन का नाम वृद्धा है। और वृद्धा क्यों है नाम?

इसके पहले कि हम कहानी में चलें, थोड़ी परिभाषाएं समझ लेनी जरूरी हैं।
मन सदा वृद्ध है; वह कभी जवान होता ही नहीं। मन सदा बूढ़ा है, क्योंकि
मन सदा पुराना है। नया मन होता ही नहीं। तुम जो भी जानते हो, वह सभी बीत चुका है। मन अतीत की स्मृति है, अतीत का ऊहापोह है। मन है वह धूल, जो यात्री राह पर चल कर अपने कपड़ों पर जमा कर लेता है। मन यानी संस्कार। अनुभव जाना हुआ, सुना हुआवह सब इकट्ठा हो गया है। मन का कोई भविष्य तो नहीं है। मन का कोई वर्तमान भी नहीं है। मन तो सिर्फ अतीत है।
जो बीत गया है, वही तुम जानते हो। जो हो चुका है, वही तुम जानते हो। जो नहीं हुआ, उसे तुम कैसे जानोगे? जो अभी हो रहा है, उसे भी तुम न जान सकोगे; जब वह हो जाएगा, तभी जान सकोगे। मन पकड़ता है तब किसी चीज को, जब वह मर जाती है।
मन मरणधर्मा है; इसलिए मन को कहा हैवृद्धा। वह कभी जवान नहीं होता। छोटे-से बच्चे का मन भी बूढ़ा होता है। जब तक छोटे बच्चे का मन नहीं होता, तभी तक वह निर्दोष है। लेकिन ऐसी कोई घड़ी नहीं होती, क्योंकि छोटा बच्चा भी अनंत जन्मों को अपने पीछे छिपाए है। वह सारा मन, यात्रा करता हुआ, साथ चला आया है।
जब तुम देह छोड़ते हो, तो देह ही छूटती है, मन तो तुम्हारे साथ चलता है।
मन तो तभी छूटता है, जब बुद्ध और वृद्धा का आमना-सामना हो जाता है। लेकिन तब फिर कोई जन्म नहीं होता। इसका अर्थ हुआ कि सभी जन्म मन के होते हैं; तुम्हारा कोई जन्म नहीं; तुम अजन्मा हो। तुम न कभी पैदा हुए, न कभी मर सकते हो, क्योंकि जो पैदा होता है, वह मरेगा भी। मृत्यु तो उसी की होगी, जो जन्मेगा।
मन ही जन्मता है, मन ही मरता है। तुम साक्षी होइस नाटक के; तुम द्रष्टा हो, तुम भागीदार नहीं हो। तुम एक अंश नहीं हो, इस नाटक में। तुम बाहर होसदा बाहर हो। लेकिन अगर तुमने मन को समझा कि यह मैं हूं तुम अगर वृद्धा के साथ एक हुएतो साक्षी खो जाता है; तुम कर्ता हो गए। वही दुख है, वही अज्ञान है, वही संसार है।
मन सदा वृद्ध है। छोटे बच्चे का मन भी वृद्ध है; बूढ़े का मन भी वृद्ध है। बूढ़े का थोड़ा ज्यादा वृद्ध होगा, बच्चे का थोड़ा कम वृद्ध होगा। लेकिन वृद्धता में कोई अंतर नहीं है। और जिस क्षण मन को तुम हटा कर देख सकोगे, उसी क्षण तुम पाओगे कि तुम सद्य-युवा हो। तब तुम्हारी हरियाली ऐसी है, जो कभी सूखेगी नहीं। तब तुम पाओगे कि तुम्हारे बूढ़े होने का कोई उपाय ही नहीं है। तब तुम जीवन होताजे, सदा ताजे; उसमें कभी बासापन नहीं आता।
लेकिन यह तो मन के हटने पर पता चलेगा। और मन हटने से डरता है, भयभीत है। उसका भय भी स्वाभाविक है। क्योंकि मृत्यु से कौन नहीं डरता है! मिटने से कौन नहीं डरता है!
शरीर के मरने से मन उतना ही डरता है, क्योंकि मन जानता है: मैं बचूंगा। लेकिन बुद्ध के सामने आने से डरता है, क्योंकि फिर बचने की कोई गुंजाइश नहीं, जगह नहीं।
तुम भीतर के बुद्ध से भी डरते हो, तुम बाहर के बुद्ध से भी मिलने से डरते हो। अगर कभी कोई बुद्ध पुरुष हो बाहर जिसको हम सदगुरु कहते हैंतुम उससे भी भागते हो, तुम उससे भी बचते हो। अगर तुम भूल-चूक से उसके पास भी पहुंच जाओ, तो तुम उसे सुनते नहीं। तुम कान बहरे रखते हो, आंखें अंधी रखते हो। अगर तुम सुन भी लो, तो तुम समझते नहीं हो; क्योंकि समझे कि खतरा है। तुम जो सुनते हो, उसमें अपना कचरा मिला देते हो। तुम सोने को राख कर देते हो। तुम्हारे अर्थ, तुम्हें बचा लेते हैं। तुम्हारी व्याख्या फिर तुम्हें पुरानी दुनिया में लगा देती है।
सदगुरु से मिलने से तुम डरते हो, क्योंकि वह भी मृत्यु है। शास्त्रों
ने गुरु को मृत्यु कहा है। और जो गुरु तुम्हारी मृत्यु न बन सके, वह गुरु ही नहीं है। जिस गुरु के पास से तुम बच कर आ जाओ, तो या वह गुरु नहीं था या तुम उसके पास ही नहीं गए। अगर तुम पास गए और वह गुरु था, तो तुम लौट न सकोगे। तुम्हारी मृत्यु सुनिश्चित है। क्योंकि गुरु करेगा क्या? गुरु इतना ही करेगा कि तुम्हारी वृद्धा को तुम्हारे बुद्ध के सामने कर देगा।

कुछ और करना नहीं है। तुम्हारे भीतर ही एक छोटी सी घटना जमानी है कि तुम्हारा मन तुम्हारी चेतना के सामने आ जाए, तुम्हारा साक्षी तुम्हारे विचार को देख ले। तुम्हारे मन के बादलों को तुम्हारे भीतर का सूरज साक्षात कर ले। बस, इतना ही।
बाहर का सदगुरु क्या करेगा? तुम्हारे भीतर जिससे तुम बच रहे हो, उसको जमा देगा। और तुम तब तक बाहर भी बचोगे, भीतर भी बचोगे, जब तक तुम्हें यह स्मरण नहीं है कि तुम जिसे बचा रहे हो, वही तुम्हारा दुख है। और जिससे तुम बच रहे हो, वही तुम्हारा आनंद है। लेकिन बिना स्वाद के पता भी कैसे चलेगा? तुम दुख से ही परिचित हो। तो मन कहता है: इतना ही काफी है कि दुख भूल जाए; थोड़ा सुख मिल जाए, इतना ही काफी है।
सुख जिसे हम कहते हैं, वह दुख का विस्मरण है। शराब पी लेते हैं; नृत्य-गान में लीन हो जाते हैं; वेश्या के द्वार पहुंच जाते हैं। थोड़ी देर के लिए मन डूब जाता है; मिटता नहीं है। थोड़ी देर के लिए चिंता विस्मृत हो जाती है। उसको हम सुख कहते हैं।
जिसको तुम सुख कहते हो, वह केवल दुख का विस्मरण है। जैसे छोटा बच्चा
रो रहा हो और उसकी मां ने खिलौना उसके हाथ में दे दिया, तो वह खिलौने को देखने में लग गया; और भूल गया रोने को कारण को। इसलिए छोटे बच्चे के जो खिलौने होते हैं, अकसर घुनघुने होते हैं, उनमें आवाज होनी चाहिए। क्योंकि आवाज बच्चे को चौंकाती है। चौंक कर वह भूल जाता हैजो हो रहा था उसे। जैसे ही वह भूल जाता हैजो हो रहा था उसे, वह सोचता हैः आंसू सूख गए, सुख आ गया। तुम्हारे सभी सुख बच्चों के घुनघुने हैं और इसीलिए वे ज्यादा देर नहीं चलते। बच्चा थोड़ी देर बजाएगा, फिर फेंक देगा खिलौने को। क्योंकि थोड़ी देर तक ही कोई चीज भुला सकती है। सदा के लिए कैसे कोई चीज भुला सकती है!
विस्मरण, बेहोशी क्षण भर को ही हो सकती है। फिर दुख की याद आएगी, क्योंकि दुख वास्तविक है। जब तक मिट न जाए, तब तक तुम कैसे उसे सदा भुलाए रखोगे? नशा भी कर लोगे, तो नशा उतरेगा। शराब पी लोगे, तो कितनी देर चलेगी विस्मृति?
यह विस्मृति सदा चलने वाली नहीं है। इसलिए कबीर ने कहा है कि यह नशा
जो हम पीते हैं, वह ऐसा है कि कभी उतरता नहीं है। ऐसी तारी लगी है कि अब टूटेगी नहीं। अब हम उस नशे में खो गए हैं, जो क्षण-भंगुर नहीं है शाश्वत है। लेकिन शाश्वत नशा तो बुद्धत्व का ही है।
वृद्धा थोड़ी बहुत देर तक को भूल जाएबस; तो तुम्हारा मन दुख को जानता है। और थोड़ी बहुत देर को जब दुख को भूल जाता है, तो सुख को जानता है। तुम्हारा सुख आनंद नहीं है। तुम्हारा सुख, सुख भी नहीं है। तुम्हारा सुख केवल दुख की विस्मृति है; हाथ में दिया हुआ खिलौना है।
थोड़ी देर में तुम खिलौने से ऊब जाओगे और फेंक दोगे। इसलिए नई पत्नी सुखद मालूम पड़ती है। पुरानी पत्नी विस्मृत हो जाती है; खिलौना फेंक दिया गया। नई कार खरीद लाते हो; दो-चार दिन बड़ी प्रसन्नता मालूम पड़ती है। फिर कार पुरानी पड़ जाती है। नया मकान खरीदते हो, नया पद मिलता है; दो-चार दिन घुनघुना बजता है; फिर... हो जाते हो।
तुम्हारे खिलौने बड़े हैं, किमती हैं, पर खिलौने ही हैं। और मन इतना ही
कर सकता हैः या तो दुखया दुख की विस्मृति। उसको वह कहता है: सुख। आनंद तो बुद्धत्व के सामने होने से होगा।
और यह बुद्धत्व कहीं बाहर होता तो भी कोई अड़चन न थी; यह बुद्धत्व तुम्हारे भीतर है; यह तुम्हारे ही मन की गहराई में छिपा है। लेकिन यह तुम्हारा मन, उस गांव में तुम्हें रुकने नहीं देता, जहां बुद्ध हैं; उस जगह नही रुकने देता, जहां बुद्ध हैं।
तुम ध्यान करने बैठते हो, मन तुम्हें कहीं ले जाता है। तुम पूजा करने बैठते हो, मन तुम्हें कहीं ले जाता है। जहां भी बुद्ध का डर पैदा होता है कि आमना-सामना न हो जाए, साक्षात्कार न हो जाए, वहीं तुम भाग खड़े होते हो। मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं कि मंदिर में जाते हैं, तब इतने ज्यादा विचार आते हैं, जितने दुकान पर भी नहीं आते हैं। आएंगे ही। क्योंकि

दुकान पर बुद्धत्व से मिलने की कोई आशा नहीं है। मन निश्चिंत है। ग्राहकों से मिलकर कहीं कोई डर है! लेकिन जब तुम मंदिर में जाते हो, तो मन डरने लगता है; क्योंकि यहां डर हैइस मंदिर के सन्नाटे में; इस मंदिर की शून्यता में, इस मंदिर के वातावरण में कहीं भीतर के बुद्ध से मिलना न हो जाए! मन तत्क्षण तुम्हें कहीं और ले चलता है; वह बड़े सपनों में खो जाता है। तुम जब ध्यान करोगे, तब तुम्हें मन जितना सताएगा, उतना कभी नहीं सताएगा। क्योंकि वहीं मौत का डर है, वहीं मन भयभीत होगा।
ये बातें ख्याल में ले लें। अब यह कहानी बिल्कुल सरल हो जाएगी। और इसके एक-एक शब्द को समझ लेना जरूरी है। क्योंकि झेन, सूफी या हसीद फकीर जब कोई कहानी गढ़ते हैं, तो हजारों-हजारों बुद्धों के अनुभव से गढ़ते हैं। यह कोई कहानी नहीं है। ये किसी लेखक, किसी कहानीकार, किसी कथा लिखने वाले के वचन नहीं हैं।
यह कहानी हजारों-हजारों बुद्धों का सार है। अनेक बुद्धों ने भीतर जो अनुभव किया है, उसको इस कहानी में रख दिया है। यह कहानी कहानी नहीं है। तुम्हारे जीवन का बड़े से बड़ा सत्य है। इसलिए एक-एक शब्द को गौर से समझना। कहते हैं कि एक वृद्ध स्त्री थी भगवान बुद्ध के समय में। वह बुद्ध के गांव में ही जन्मी थी और उनके जन्म पर ही।
तुम्हारा मन तुम्हारे जन्म-दिन पर ही जन्मता है। और तुम्हारा मनइसके पहले कि तुम जागो कि तुम कौन हो, तुम्हें पकड़ लेगा। होश आने के पहले मन से तुम ग्रस्त हो जाते हो। बच्चा पैदा नहीं हुआऔर इधर उसने चीख नहीं लगाई अपनी पहलीऔर पैदा हो गया। मन अनुभव है।
शायद मनोवैज्ञानिक कहेंगे जल्दी हीउनकी खोजें बताती हैंपहले आसार जाहिर हो गए हैं कि मन जन्म के पहले ही पैदा हो जाता है। क्योंकि बच्चा जब गर्भ में होता है, तब भी अनुभव होते हैं। मां गिर पड़े, तो पेट में जो बच्चा हैं, उसको चोट की प्रतीति होती हैसाफ नहीं, बहुत धुंधली, लेकिन प्रतीति होती है। मां बीमार हो, तो बच्चा भी कमजोर होता है; बच्चा भी भीतर बीमारी का अनुभव करता है। मां स्वस्थ हो, प्रसन्न हो, तो बच्चा उसकी प्रसन्नता अनुभव करता है। तो जहां अनुभव शुरू हुआ, वहां मन शुरू हो गया।
बच्चा जब पैदा होता है, तब बूढ़ा हो चुका होता है। कुछ अनुभव लेकर पैदा होता है। उसके कुछ संस्कार निर्मित हो गए। और अब वह इन संस्कारों के आधार पर ही जीएगा। कारागृह निर्मित हो गया, अब आत्मा स्वतंत्र नहीं है।
रूसो ने कहा कि आदमी स्वतंत्र पैदा होता है और परतंत्र मरता है। गलत
है बात। आदमी परतंत्र ही पैदा होता है; आमतौर से परतंत्र ही मरता है। कुछ लोग परतंत्र पैदा होते हैं और स्वतंत्र मरते हैं। वे ही बुद्ध हैं।
सभी लोग परतंत्र पैदा होते हैं, क्योंकि अनुभव परतंत्रता है। तुमने
जो जाना, उसने तुम्हारी आत्मा के आकाश को घेर दिया। तुम्हारा ज्ञान तुम्हारी सीमा बन जाता है। क्योंकि तुम सोचते होः यही मैं हूं।
तुम्हारा हर अनुभव तुम्हें छोटा करता है। तुम्हारा हर अनुभव तुम्हें
यह भ्रांति देता है कि मैं जानता हूं। और जैसे ही तुम्हें यह लगता हैः मैं जानता हूं, तुम छोटे हो गए।
बूढ़े सिकुड़ते जाते हैं। उनके अनुभव की मात्रा बढ़ती जाती है और उनकी आत्मा का आकाश छोटा होता जाता है। एक तरफ तो ढेर लगने लगता है कि मैं इतना जानता हूं; और दूसरी तरफ उनकी आत्मा उतनी ही संकीर्ण होती जाती है। इसलिए बूढ़े आदमी में तुम विराट आत्मा शायद ही पाओगे। बूढ़ा आदमी बहुत संकीर्ण होता है। उसके पक्षपात सुनिश्चित होते हैं। उसकी धारणाएं मजबूतपत्थर की तरह होती हैं। उसका हृदय तरल नहीं होता है, ठोस होता है। क्योंकि वह जानता है; उसे अनुभव है।
छोटे बच्चे का आकाश तरल होता है, अभी दीवालें साफ नहीं होतीं। कहां मैं खतम होता हूं, कहां तुम शुरू होते हो यह बच्चे को अभी बहुत साफ नहीं होता। अभी चीजें तरल हैं, सीमाएं बहती हुईं हैं। अभी सब पत्थर की दीवालें नहीं हैं।
जैसे-जैसे अनुभव मजबूत होगा, वैसे ही वैसे आत्मा छोटी होती जाती है। इसलिए जगत में बड़ी से बड़ी घटना है कि तुम्हारा अनुभव बढ़े और तुम्हारी

आत्मा छोटी न हो, तो तुम साधक हो। अगर तुम्हारा अनुभव बढ़े और साथ में तुम्हारा आकाश छोटा होता जाए, तुम्हारी चेतना का आंगन सिकुड़ता जाए, और जब तुम मरो, तुम अनुभव के ढेर रह जाओ और तुम्हारे भीतर कुछ भी न हो, जो बचाने योग्य था। अकसर बूढ़ा आदमी इसी तरह मरता है। इसलिए बुढ़ापे में एक कुरूपता आ जाती है। वह कुरूपता शरीर से कम संबंधित है; वह कुरूपता तुम्हारी संकीर्ण दृष्टि से संबंधित है। तुम हिंदू हो, तुम मुसलमान हो, तुम जैन हो; तुम यह हो, तुम वह हो; तुम सब जानते हो!
छोटा बच्चा न हिंदू है, न मुसलमान है, न जैन है। अभी मस्जिद के सामने
भी प्रसन्न हो सकता है और अभी मस्जिद में भी जाने की उसकी उत्सुकता उतनी ही है, जितनी मंदिर में जाने की। अभी फासले खड़े नहीं हुए हैं। अभी आंगन बड़ा है। वही उसका सौंदर्य है।
जब कोई बूढ़ा आदमी भी छोटे बच्चे की तरह बड़े आंगन की, बड़े आकाश की संभावना रखता है अपने भीतर, तो बुढ़ापे में एक सौंदर्य प्रकट होता है, जो जवानी में भी नहीं हो सकता है। क्योंकि जवानी के सौंदर्य में थोड़ा तनाव रहेगा, उत्तेजना रहेगी; वासना का खिंचाव रहेगा, दौड़ रहेगी। जवानी का सौंदर्य छिछला होगा; बहुत गहरा नहीं हो सकता।
बच्चे के सौंदर्य में एक भोलापन है; लेकिन बुद्धूपन भी होगा; क्योंकि अनुभव नहीं है। उसके भोलेपन में मूर्खता का अंश भी होगा। उसमें नासमझी की भी संभावना है; क्योंकि समझ अभी फली नहीं है। बड़ा होगा उसका चित्त, लेकिन उस बड़ेपन में अभी मूढ़ता हो सकती है।
जवान सुंदर होगा, लेकिन सौंदर्य शरीर का होगा। और वासना से भरे चित्त में बहुत गहरा सौंदर्य नहीं हो सकता। लेकिन बूढ़ा अगर सच में ही बूढ़ा हो, जीवन प्रौढ़ता बनी होएक मैच्योरिटी, और जीवन में एक विकास हुआ हो और आत्मा छोटी न हुई हो; अनुभव बढ़ा हो, ज्ञान बढ़ा हो, लेकिन फिर भी विनम्रता शेष रही हो; बच्चे की तरह भोलापन कायम रहा होअनुभव के बावजूद; वासनाएं जा चुकी हैं, उनका तूफान, आंधियां खो गई हैं; अब जवानी की पकड़ नहीं है, खींच नहीं है; न धन पर लोभ है न शरीर पर मोह है। चित्त जैसे एक शांत झील हो गया है। तो बुढ़ापे में जो सौंदर्य प्रकट होता है, उसकी कोई उपमा नहीं है। मगर यह होता बहुत मुश्किल से है। लेकिन जब भी होता है, तो इस जगत में वह चरम सौंदर्य है। वह ऐसे ही है, जैसे हिमालय के शिखरों पर शुभ्र बर्फ जमी हो। वैसे ही बूढ़े के शुभ्र, श्वेत केशों मेंअगर जीवन सच में ही विकसित हुआ होतो हिमालय जैसा सौंदर्य प्रकट होता है। लेकिन यह साधारणतः घटता नहीं हैकभी कोई बुद्ध, कभी कोई महावीर... ।
सामान्यतया तो हम परतंत्र पैदा होते हैं, और, और भी बुरी तरह परतंत्र होकर मरते हैं। हम कारागृह में पैदा होते हैं, और भी खतरनाक कारागृह में मरते हैं। जंजीरें लेकर आते हैं और फिर जंजीरों को बढ़ाते जाते हैं। हमारा संग्रह, हमारा ज्ञानसब जंजीरों का वजन बनता जाता है। एक दिन समाप्त हो जाते हैं; जंजीरें ही रह जाती हैं।
कहते हैं कि एक वृद्ध स्त्री थीभगवान बुद्ध के समय में। वह बुद्ध के गांव में ही जन्मी थी और उनके जन्म-दिन पर ही। वह बुद्ध के भीतर ही जन्मी थी। उसे स्त्री क्यों कहा है? उसे पुरुष क्यों न कहा?
मन को जो जानते हैं, वे इसे स्त्रैण कहते हैं। आत्मा को पुरुष कहते हैं। उसका कारण है। आत्मा वृक्ष की भांति है; मन लताओं की भांति है। लताएं वृक्ष के बिना खड़ी नहीं रह सकतीं; वृक्ष लताओं के बिना खड़ा रह सकता है। तुम्हारी आत्मा, बिना मन के हो सकती है, लेकिन तुम्हारा मन, बिना आत्मा के नहीं हो सकता है।
आत्मा बिना मन के हो सकती है। हम जानते हैं बुद्धों को; उनको आत्मा थी बिना मन के थी। लेकिन अब तक ऐसा एक आदमी नहीं जाना जा सकता, जिसमें मन तो हो, और आत्मा न हो। इसलिए मन स्त्रैण है। स्त्रैण का मतलब स्त्री नहीं; स्त्रैण का कुल इतना ही मतलब हैनिर्भर। उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है।
वह छाया की भांति है। वह लताओं की भांति है। उसे पुरुष का सहारा चाहिए।

इसका दूसरा मतलब भी ख्याल में ले लेना कि तुम जब तक सहारा दे रहे हो, तभी तक मन है। तुम जिस दिन सहारा खींच लोगे, मन खो जाएगा। मत पूछो कि मन को कैसे मिटाएं। सिर्फ इतना ही पूछो कि सहारा कैसे अलग कर लें।
तुम्हारे बिना मन रह ही नहीं सकता। और तुम अजीब काम कर रहे हो। एक तरफ
से मिटाने की कोशिश करते हो, दूसरी तरफ से बनाए जाते हो। एक तरफ से सहायता देते हो, दूसरी तरफ से ईंटें खिसकाते हो। एक हाथ से मकान बनाते हो और एक से मिटाना चाहते हो। यह मकान कभी भी न मिटेगा। यह उतना ही बना रहेगा। तुम्हारे सहारे के बिना यह मकान नहीं है। तुम्हारे सहारे के बिना यह
मन नहीं है। तुम इसे बनाते हो, इसलिए यह है। इसलिए यह मन स्त्री है। स्त्रैण का अर्थ हैः जो सहारे के बिना न हो सके; जो लताओं कि भांति है;
जो पुरुष के कंधे पर हाथ रखेगी; झुकेगी, तो ही हो सकता है।
बुद्ध के गांव में ही जन्मी थीवह स्त्री। गांव से मतलब ठीक से समझ लेना। गांव का मतलब, वह गांव नहीं है, जो बाहर दिखाई पड़ता है।
हिंदू बड़े अदभुत हैं। और इन्होंने जो कहानियां गढ़ीं है, उनके एक-एक शब्द में अर्थ है।
हम आत्मा को पुरुष कहते हैं। पुरुष उसी शब्द से बनता हैजिससे पुर।
पुर का मतलब हैः गांव। और पुरुष का मतलब हैः गांव के केंद्र पर जो है।
पुर का मतलब हैः तुम एक नगर हो। और अगर इसे हम ठीक से समझें, तो सच में तुम एक नगर हो। कोई सात करोड़ जीवाणु तुम्हारे भीतर हैं। इतना बड़ा न तो अभी लंदन है और न इतना बड़ा टोकियो है। बड़े से बड़ा नगर एक करोड़ का है।
तुम्हारे शरीर में सात करोड़ जीवित कोष्ठ हैं। बड़ी विस्तीर्ण व्यवस्था है। और इन सात करोड़ में एक को भी पता नहीं है कि तुम हो। इतनी बड़ी भीड़ है तुम्हारे भीतर! इसको हिंदुओं ने पुर कहा है। और तुम जो इसके भीतर छिपे हो, इसको पुरुष कहा है। पुरुष का अर्थ है: जो पुर के भीतर छिपा है। उसी गांव में, उसी जन्म-दिन पर... । बुद्ध के साथ ही बुद्ध का मन जन्मा।
मन स्त्रैण है; उसे सहारा चाहिए; बिना सहारे के वह खो जाता है; बिना सहारे मुरझा जाता है। और अगर ज्यादा सहारा दो, तो खतरनाक भी है; क्योंकि अगर बहुत सहारा दिया जाए, तो लता वृक्ष को सुखा डालेगी, चूस लेगी। धीरे- धीरे लता पूरे वृक्ष पर छा जाएगी। वृक्ष का पता ही न चलेगा। जिसके सहारे लता खड़ी है, उस वृक्ष का पता ही नहीं चलेगा, वह ढंक जाएगा।
अगर मन को तुमने सहारा दिया, तो धीरे-धीरे वह तुम्हें ढंक लेगा। तुम्हारा पता ही न चलेगा। बस, मन का ही पता चलेगा।
लेकिन वह स्त्री सदा ही बुद्ध के सामने आने से डरती रही। साथ पैदा हुई, उसी गांव में पैदा हुई, उसी घर में, उसी देह में, लेकिन बुद्ध के आमने- सामने आने से डरती रही। सदा डरती रही तभी से जब वह छोटी सी थी। वृद्धा नहीं थी छोटी थी। युवा हुई, फिर भी डरती रही। वृद्ध हो गई, फिर भी डरती रही।
मन का एक ही भय हैः वह ध्यान है। ध्यान मन की मृत्यु है। ध्यान का अर्थ हैः अपने आमने-सामने आ जाना। जैसे कोई दर्पण में अपने को देख ले, ऐसा ही कोई मन के बिल्कुल सामने खड़ा हो जाए; इंच भर भी मन को हटने न दे, तो बड़ा चमत्कार घटित होता है। अगर मन बिल्कुल सामने आ जाए, तो तत्क्षण खो जाता है। तुम्हारी आंख काफी है, उसकी मृत्यु के लिए।
तुमने कहानी सुनी है कि कामदेव ने शिव को कामातुर किया। और उन्होंने अपनी तीसरी आंख से कामदेव को देखा और वह भस्म हो गया; तब से वह अनंग है, उसकी कोई देह नहीं है।
तीसरी आंख हैदि थर्ड आई। और अगर तुम कामवासना को तीसरी आंख से देख
लो, ध्यान से देख लो, तो वह राख हो जाती है।
मन क्या है? सारी वासनाओं का जोड़ है। और मन के गहरे में कामवासना है। इसलिए ब्रह्मचर्य पर इतना जोर दिया है। अगर कामवासना चली जाए, तो शेष सारी वासनाएं अपने आप झर जाती हैं। क्योंकि जिसकी कामवासना न हो, उसका लोभ क्या होगा?
जब तक तुम्हारे मन में काम है, तब तक लोभ है। जब तक लोभ है, तब तक क्रोध है। जब तक क्रोध है, तब तक मद-मत्सर हैं। सब जुड़े हैं। लेकिन सबसे गहरी कड़ी काम-वासना की है।

छोटा बच्चा इतना भोला मालूम पड़ता है, क्योंकि वह गहरी कड़ी अभी प्रकट नहीं हुई है; अभी शरीर तैयार नहीं है। अभी चौदह साल लगेंगे, तब शरीर तैयार होगा और कामवासना की पहली कड़ी प्रकट होगी। बस, फिर सारी वासनाएं आस-पास आने लगेंगी। जैसे ही कामवासना मन में आती है, बाकी सारी वासनाएं सहयोग के लिए खड़ी हो जाती हैं।
लोभ का अर्थ है, अगर तुम कामी नहीं हो। अगर तुम कामी नहीं हो, तो तुम क्रोध कैसे करोगे। अगर तुम कामी नहीं हो, तो अहंकार की घोषणा का कोई भी प्रयोजन नहीं है। तब तुम ऐसे जी सकते हो, जैसे तुम हो ही नहीं। और तब तुम्हारे पास कुछ हो या न हो, बराबर अर्थ होगा। तुम सारे संसार को जीत लो हजार-हजार सिंहासन तुम्हारे हों तो, और तुम्हारे पास कुछ भी न हो, सब खो जाए, तो भी तुम्हारी नींद में कोई खलल न पड़ेगी। तुम वैसे ही रहोगे, जैसे सब घटनाएं बाहर-बाहर हैं।
लेकिन अगर काम-वासना भीतर है, तो फर्क पड़ेगा। क्योंकि अगर तुम सिंहासन पर हो, तो तुम सुंदर स्त्रियों को पा सकोगे। अगर सिंहासन गया, तो वह सौंदर्य का सारा राज्य गया। तुम अगर धन वाले हो, तो तुम वासना को खरीद सकते हो। अगर तुम निर्धन हो, तो तुम क्या खरीदोगे? गरीब की क्या क्षमता है खरीद लेने की? तो आदमी धन इकट्ठा करता है, वह भी काम के लिए ही है।
फिर अगर कोई तुम्हारी वासना में बाधा डाले, तो क्रोध आता है। इसलिए हम कहते हैं कि संत अक्रोधी होगा; क्योंकि उसकी कोई वासना नहीं है। तुम बाधा किस बात में डालोगे? वह कुछ मांगता नहीं है। तुम रुकावट क्या खड़ी करोगे? अक्रोध स्वाभाविक हो जाएगा।
काम केंद्र हैसारी वासना का। मन वासना का फैलाव है।
डरता है मनध्यान से, क्योंकि ध्यान तीसरी आंख है। उसकी अग्नि बड़ी प्रखर है। अगर तुम आमने-सामने देख लो, तो राख हो जाएगा मन।
वह स्त्री सदा डरती रहीबुद्ध के सामने आने से। छोटी थी, युवा थी, वृद्ध हुई, लेकिन डर कायम रहा। लोग उसे समझाते भी कि बुद्ध परम पवित्र हैं, साधु हैं, सिद्ध हैं; उनसे भय का कोई कारण नहीं है। उनका दर्शन मंगलदायी है, वरदान-स्वरूप है। लेकिन, उस वृद्धा की कुछ भी समझ में न आता। यदि वह भूल से कभी बुद्ध की राह में पड़ भी जाती, तो भाग खड़ी होती। अव्वल तो बुद्ध गांव में होते, तो वह दूसरे गांव चली जाती।
इसे समझना। लोग समझाते कि बुद्ध परम पवित्र हैं, साधु हैं, उन जैसा कौन साधु है! उनसे क्या भय है? कोई कारण नहीं है, उनसे डरने का। दर्शन मंगलदायी है, वरदान-स्वरूप हैं ये सब बातें ठीक हैं। लेकिन मन के बिल्कुल समझ में नहीं आतीं। मंगलदायी, वरदान-स्वरूप बुद्ध एक बरसते हुए आशीर्वाद हैंसब ठीक है। लेकिन मन की बिल्कुल समझ में नहीं आती; मंगल-दायी होगा, वरदान-स्वरूप होगा, बुद्ध एक बरसते हुए आशीर्वाद होंगे सब ठीक है। लेकिन मन की समझ में नहीं आता। मन के लिए नहीं हो सकते; मन की तो मौत हैं; मन की तो मृत्यु हैं।
मन तुम्हें सब तरह से समझाता है कि बुद्ध के आमने-सामने मत पड़ना। मन ढंग से समझाता है, उसके तर्क कुशल हैं। पहले तो वह यह कहेगा कि इस तरह की बात ही नहीं होती; ध्यान कहीं हुआ है? सब कपोल-कल्पना है। सब कवियों का जाल है। सब कविताएं है। ध्यान वगैरह कभी हुआ नहीं है। इस झंझट में पड़ते ही क्यों हो?
यह परमात्मा और मोक्षये सब सपने हैं। और मन इनके लिए बड़े तर्क देता है। इसीलिए तो बुद्ध पैदा भी हों, तो भी कितने थोड़े से लोग उनका लाभ ले पाते हैं! कितने थोड़े से लोग सरोवर में अपनी प्यास बुझाते हैं! आखिर इतने अधिक लोगजो सोने के पीछे दौड़ते हैं, वे बुद्ध के पीछे क्यों नहीं दौड़ते हैं?
जो धन के पीछे दौड़ते हैं, वे बुद्धत्व के पीछे क्यों नहीं दौड़ते? खुद बुद्ध को गांव-गांव भटकना पड़ता हैलोगों को खोजते। कोई उन्हें खोजते हुए नहीं भटक रहा है! क्या मामला है?
लोग अपने मन को समझाते हैंः यह सब बातचीत है। इसमें कुछ ज्यादा सार नहीं है। समय मत गंवाओ। जिंदगी छोटी है; दुबारा मिलेगी नहीं। पार का कोई

पता नहीं; भोग लो; जो भी क्षण भर हाथ में है, उसे छोड़ो मत। मन का यह गहन तर्क है।
लेकिन उस वृद्धा की कुछ भी समझ में न आता था। यदि वह कभी भूल से बुद्ध
की राह में भी पड़ जाती, तो भाग खड़ी होती। कभी ऐसा आकस्मिक भी हो जाता है कि तुम खाली बैठे हो, अचानक मन आमने-सामने हो जाता है, तो तत्क्षण मन भाग खड़ा होता है; तत्क्षण मन कोई रूप ले लेता है, कोई विचार पकड़ लेता है; किसी विचार की धारा को पकड़कर मन कही चला जाता है।
कभी खुली रात आकाश के नीचे बैठे हुए, कभी नदी के किनारे बैठे हुए, कभी किसी पहाड़ी झरने के कलकल नाद को सुनते हुए, कभी सिर्फ वृक्षों की हरियालियों को आत्मसात करते हुए, कभी किसी पक्षी की आवाज सुन कर एक सन्नाटा छा जाता है। कभी किसी सदगुरु का वचन सुन कर, कभी किसी सदगुरु की मौजूदगी में एक सुगंध भीतर प्रवेश कर जाती है; जैसे अचानक किसी ने धूप जला दी हो। मगर मन तत्क्षण बेचैन हो जाता है, और, कहीं और ले जाता है। मन तत्क्षण तुम्हें मार्ग बता देता है, जिससे तुम भाग खड़े होओ।
ऐसा रोज घटता है; ऐसा हर आदमी की जिंदगी में घटता है। ऐसे क्षण आते हैं, जब तुम आमने-सामने होने के करीब होते हो। लेकिन मार्गमन सदा खोज लेता है; वह कुछ न कुछ उपाय कर लेता है; उसे अपने को बचाना है। आत्म-रक्षा तो सभी करना चाहते हैं: मन भी करना चाहता है।
अव्वल तो बुद्ध गांव में होते, तो वह और किसी गांव चली जाती। यह तुम्हारे मन की जानी-मानी तरकीब है।
तुम मुझे यहां सुन रहे हो; लेकिन तुम्हारा मन किसी और गांव में चला गया हो। तब तुम्हें लगेगा: तुम सुन भी रहे हो। तुम धोखा दे रहे हो। तुम्हारा शरीर भर यहां है; मन कहीं और चला गया है। और शरीर को ले जाने की जरूरत नहीं है। मन बिना शरीर के कहीं भी चला जा सकता है चांद-तारों पर चला जा सकता है।
तुम यहां बैठे हो और तुम्हारी दुकान, तुम्हारा बाजार, तुम्हारी पत्नी, घर-द्वार, मित्र-शत्रु हजार समस्याएं है; अदालत है, मुकदमें हैंतुम उनमें जा सकते हो। और यहां जब तुम बैठे हो, तब तुम अकसर चले जाओगे; क्योंकि यहां खतरा है। और मन खतरे को बड़ी जल्दी पहचानता है; जैसे घोड़ा कान खड़े कर लेता है, खतरे को देख कर। मील-दो-मील दूर खतरा हो। कुत्ता सूंघ लेता है। दो मील फासले पर गंध हो, कुत्ता जान जाता है। ऐसा ही तुम्हारा मन राडार की भांति, चौबिस घंटे भय से चारों तरफ डोलता रहता है; पकड़ता रहता हैः कहां खतरा है। इसका कारण भी है।
मन का सारा उपयोग प्रकृति में खतरे से सावधान होने के लिए है; वह राडार है। इसके पहले कि खतरा आ जाए, तुम्हें पता चल जाना चाहिए। नहीं तो हो सकता हैः खतरा आ जाए और फिर तुम्हें पता चलें; फिर कुछ करने को न बचे। घर में आग लग जाए, तब तुम्हें पता चले; फिर बचना मुश्किल हो जाएगा। आग लगने के पहले आग की शुरुआत में, जब पहला धुआं उठे, तब मन को सचेत हो जाना चाहिए। तब पानी डाला जा सकता है, आग बुझाई जा सकती है। कुछ हो सकता है।
तो मन राडार है। वह चौबीस घंटे तुम्हारे चारों तरफ संवेदनशील घूम रहा
है कि कहीं कोई खतरा तो नहीं है। इसलिए अकसर ऐसा हो जाता है कि जो लोग सदा खतरे में रहते हैं, उनके पास बड़ा तीव्र मन हो जाता है। और जो लोग किसी खतरे में नहीं रहते, उनका मन अकसर डल, मंद हो जाता है। इसलिए धनपतियों के घर बहुत प्रतिभाशाली मन के बच्चे पैदा नहीं होते।
खतरा नहीं है, तो राडार जंग खा जाता है; जरूरत ही नहीं रह जाती है उसकी। दुनिया में जितने बुद्धि और प्रतिभा के लोग पैदा होते हैं, वे अकसर धनपतियों के घरों से नहीं आते हैं, गरीब घरों से आते हैं, जहां चारों तरफ खतरा है।
तुमने यह भी देखा होगा कि इतिहास के वे ही क्षण, जब किसी राष्ट्र के जीवन में बड़े खतरनाक होते हैं, महापुरुषों के जन्म के क्षण होते हैं। अब तुम दुबारा गांधी पैदा न कर सकोगे जल्दी। न तुम दुबारा रवींद्रनाथ पैदा कर सकोगे; न राजा राममोहन राय, न सुभाष, न जवाहर अब तुम जल्दी पैदा न का सकोगे। अब तुम बिल्कुल कचरा पैदा कर रहे हो। कारण क्या है? खतरा नहीं है।

जब भी किसी राष्ट्र के जीवन में खतरा होता है, तो मन सतेज हो जाता है। महापुरुष मन से पैदा होते हैं। वे कोई बुद्ध नहीं हैं; वे मन की ही प्रतिभाएं हैं।
तुमने भी कभी ख्याल किया है कि जब खतरा होता है, तब तुम्हारे मन की प्रतिभा में एक चमक आ जाती है। और जब कोई खतरा नहीं होता है, तो मन सो जाता है। जरूरत ही नहीं है, तो कोई प्रयोजन नहीं है। तुमने कभी ख्याल किया है कि जब तुम खतरे में होते हो, तब तुम में अनजाने स्त्रोत जग जाते हैंशक्ति के। और अगर तुम खतरे में नहीं होते हो, तो कोई स्त्रोत नहीं जगता।
तुम्हें कोई दौड़ाए कि तुम अपनी पूरी ताकत से दौड़ो तुम अपनी पूरी ताकत लगाते हो। तुम्हें ख्याल भी नहीं आता कि कोई भी ताकत बची हैजो तुमने नहीं लगाई हो। फिर तुम्हें एक प्रतियोगिता में लगाया जाए, जहां और दस लोग भी दौड़ रहे हैं, तब तुम दुगुनी ताकत से दौड़ते हो। पहले तुम कहते थे कि पूरी ताकत से मैं दौड़ रहा हूं; अब यह ताकत कहां से आई? जब खतरा है; क्योंकि प्रतियोगिता है; पराजित होने का भय है। लेकिन यह भी कुछ नहीं है। एक आदमी तुम्हारे पीछे बंदूक लेकर लग जाए, तब तुम जो भागोगे, उस भागने का कोई मुकाबला नहीं है; तब तुम ऐसे भागोगे, जैसा कि कोई आदमी कभी नहीं भागा है; तब तुम अपनी पूरी त्वरा में भागोगे।
जब खतरा होता हैशक्ति जगती है।
मन तुम्हारा खतरे का आकलन करने वाला यंत्र है। और सबसे बड़ा खतरा क्या
है, उसकी गंध पाकर भी मन भाग खड़ा होता है? फिर मन उस तरफ जाता नहीं; घोड़ा ठिठक जाता है; फिर वह हजार बहाने खोजता है, लेकिन उस तरफ नहीं जाता।
सबसे बड़ा खतरा है आत्म-साक्षात्कार, आत्मज्ञान। क्योंकि जैसे ही आत्मज्ञान हुआ, मन की कोई जरूरत न रह जाएगी। और मन इसे जानता है कि एक ऐसा बोध का क्षण है, जहां मेरी जरूरत नहीं रह जाती है; जहां मुझे उठा कर फेंक दिया जाएगा कूड़े-कर्कट की भांति।
अव्वल तो बुद्ध गांव में होते, तो वह किसी और गांव में चली जाती। लेकिन एक दिन कुछ भूल हो गई। वह अपनी धुन में डूबी राह से गुजरती थी कि अचानक बुद्ध सामने पड़ गए। भागने का समय न मिला। और फिर वह बुद्ध को सामने ही पा, इतनी भयभीत हो गई कि पैरों ने भागने से जवाब दे दिया।
यह पूरी बात समझ लेना। यह तुम्हारी जिंदगी में कभी न कभी घटने वाली है। जितनी जल्दी घटे, उतना अच्छा है।... एक दिन कुछ भूल हो गई। यह बड़े मजे कि बात है कि तुम भूल से ही जागोगे। होशियारी से तुम जागने वाले नहीं हो। क्योंकि होशियारी तो मन की ही होगी। तुम मन की किसी चूक से जागोगे; तुम मन की किसी कला से नहीं जागोगे। कोई ऐसा क्षण तुम्हें जगाएगा, जहां मन की कुशलता काम नहीं पड़ रही है।
दुर्घटना से तुम बुद्ध बनोगेसाधना से नहीं। क्योंकि साधना तो मन की
ही होगी। तुम्हारा मन ही पतंजलि को पढ़ेगा और यम, नियम साधेगा। फिर कोई डर नहीं मन को। लेकिन किसी दुर्घटना से तुम जागोगे।
इसलिए पुराने शास्त्र कहते हैं कि बिना गुरु के तुम न जग सकोगे। क्योंकि तुम जो भी करोगे, वह साधना होगी। दुर्घटना तो गुरु ही करवा सकता है। एक फॉरेन एलिमेंट (विजातीय तत्व) दुर्घटना ला सकता है; बाहर से कोई दुर्घटना पैदा कर सकता है।
तुम सो रहे हो। और तुम्हें जगाना है। अगर तुम पर ही छोड़ दिया जाए, तो आदमी इतना कुशल है, मन इतना अदभुत है उस जैसा कलाकार नहीं वह नींद में ही सोच सकता है कि मैं जग गया! सपना देख सकता है जगने का। तब बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती है। क्योंकि अब तुम करोगे क्या! जाग गएसपना देख रहे हो कि जाग गए तो एक अलार्म रख देना पड़ता है।
अलार्म एक दुर्घटना है; बाहर से आती है। लेकिन मन बड़ा कुशल है। एक-आध दफा अलार्म से जग जाओगे। फिर धीरे-धीरे मन अलार्म को भी सपना बना लेगा। वह देखेगा सपना कि मंदिर है; मंदिर की घंटियां बज रही हैं। और अलार्म को डुबा देगा। तब तुम्हें जीवित व्यक्ति चाहिए, जो रोज नई तरकीब निकाल सके; जिसके आस-पास तुम सपना न बना सको।

गुरु का इतना ही अर्थ है: वह तुम्हारे लिए बाहर से दुर्घटना खड़ी कर दे। वह तुम्हें ऐसी मुसीबत में डाल दे, जिससे बचने का तुम्हारे पास कोई उपाय न हो। वह तुम्हें एक ऐसे कोने में ले आए, जहां भागने के रास्ते न हों। वह तुम्हें उस जगह ले आए, जहां से तुम कहीं भी जाओ, तो मिटो। पीछे लौटो, तो मिटो; आगे जाओ, तो मिटो।
गुरु का अर्थ हैः दुर्घटना। उसका अर्थ हैः तुम्हारी जितनी जानकारी, तुम्हारी जितनी कुशलता और समझदारी है, उस सबसे भिन्न, पृथक स्थिति मौजूद कर दे।
एक दिन भूल हो गई। वह कुछ अपनी धुन में डूबी राह से गुजरती थी। और वह भूल तभी होगी, जब तुम किसी धुन में होओगे। सभी गुरु तुम्हें कुछ धुन देते हैं। कोई तुम्हें मंत्र पकड़ा देता है; वह मंत्र सिर्फ धुन है मन को उलझाने की। कोई तुमसे कहता है: राम-राम, राम-राम, राम-राम जपते रहो। चलो उठो बैठो राम-राम जपते रहो। वह धुन दे रहा है, ताकि मन काम में लगा रहे और भाग न पाए। और चौबीस घंटे में कई बार तुम उस जगह आते हो, जहां बुद्ध सामने होते हैं। अगर मन अपनी धुन में हो, तो शायद दुर्घटना हो जाए, भूल हो जाए। मन अगर अपनी धुन में चला जा रहा हो, तो देख न पाए पहले सेकि बुद्ध सामने हैं। और भाग न पाए गली आस-पास खोज न पाए। बिल्कुल सामने पड़ जाएं बुद्ध तभी धुन टूटे। अगर बिल्कुल सामने पड़ कर धुन टूटे, तो तुम भाग भी न सकोगे; क्योंकि पैर लकवा खा जाएंगे।
भय अगर बहुत हो, तो दौड़ नहीं हो सकती है। तुम समझ ही नहीं पाते, एक क्षण
को तुम इतनी चौंकी अवस्था में रह जाते हो इतने अवाक कि भागना कैसा? भागे कौन? भागना कहां है? इस सबका मौका नहीं मिल पाता है।
... वह कुछ अपनी धुन में डूबी राह से गुजरती थी। मन को कोई धुन देनी पड़े कोई मंत्र, कोई तंत्र, कोई यंत्र; वे सब धुन हैं।
मैं तुम्हें संन्यास देता हूं। वह एक धुन है। मैं तुम्हें एक धुन पकड़ा रहा हूं, कि तुम कहीं भी जाओ: उठो-बैठोतुम्हें भी याद रहे, दूसरे भी याद दिलाते रहें कि तुम संन्यासी हो। यह एक सतत धुन बन जाए। यह बांसुरी तुम्हारे भीतर बजती ही रहे कि मैं एक संन्यासी हूं।

एक मित्र मेरे पास आए; उन्होंने संन्यास लेने के पहले मुझसे कहा कि एक मुसीबत है। और वह यह है कि मैं शराब पीता हूं, तो मैं क्या करूं? तो मैंने कहा कि तुम फिक्र छोड़ो। पहले तुम संन्यास लो, फिर देखेंगे। संन्यास वे लेकर गए। आठ दिन बाद आए। उन्होंने कहा: झंझट खड़ी कर दी। क्योंकि अब शराब-घर की तरफ जाते पैर रुकते हैं। ये गेरुए वस्त्र... ! अच्छा फंसाया मुझे। क्योंकि शराबी तक ऐसा चौंककर देखते हैं कि मैं कोई अपराधी हूं! शराबीजिनसे अपनी पुरानी जान-पहचान हैवे तक कहते हैं: संन्यासी होकर... ? और खुद भी बड़ी ग्लानि मालूम पड़ती है। हाथ में शराब लेता हूं, पच्चीस दफे सोचता हूं कि पीऊं, न पीऊं? अब शायद यह उचित नहीं है।
एक धुन पकड़ गई। और तुम्हें जब तक धुन न पकड़ जाए, जब तक मन किसी चीज में ऐसा लीन न हो जाए कि भूल जाए: कहां खड़ा है... । वह क्षण तो आता हैचौबीस घंटे में कई बार, जब तुम बुद्ध के सामने पड़ते हो, लेकिन धुन लगी हो।
हजार तरकीबें लोगों ने खोजी हैं दुनिया में। माला ही कोई फेर रहा है, लेकिन वह धुन होनी चाहिए। तुम अगर माला फेर रहे होमुरदे की तरह, यंत्र की तरह, तो वह धुन नहीं है। मन कुछ और काम कर रहा है; तो बेकार है। माला फेरते वक्त अगर माला का फेरना ही सब कुछ हो जाए, वही धुन हो जाए, तो किसी भी क्षण अचानक तुम पाओगे कि भूल हो गई। तुम उसी के सामने खड़े हो, जिससे अब भागने का कोई उपाय नहीं है। तुम अपने ही सामने खड़े हो। सागर आ गया। अब नदी को मिटना पड़े।
... भागने का समय भी न मिला। अवाक होने का यही अर्थ है कि कुछ करने का समय न मिले। तुम चले जा रहे थेअपनी मस्ती में और एक आदमी ने आकर तुम्हारी छाती पर बंदूक रख दी; भागने का समय भी मिला; सोचने का भी समय न मिला। और जहां समय न मिले, वहीं तुम बुद्ध के सामने आ जाओगे। क्योंकि समय मिला कि मन

सोच लेता है। समय मिला कि मन यात्रा पर निकल जाता है। समय मिला कि जगह मिल गई। समय मिला कि तुम दूसरे गांव पहुंच जाओगे।
समय के बिना मन नहीं हो सकता है, जैसे सागर के बिना मछली नहीं हो सकती। मछली को पटक दो किनारे, पानी न होतड़प-तड़पकर मर जाएगी। मन को पटक दो समय के बाहर, उसी वक्त मर जाएगा; तड़पेगा भी नहीं। मछली तो तड़पेगीथोड़ी देर। मन को समय के बाहर रखो कि मरा; क्योंकि तड़पने लायक भी जिंदगी नहीं बचती।
समय मन का प्राण है। इसलिए सभी ज्ञानी कहते हैं कि ध्यान समयातीत हैबियांड टाईमसमय के बाहर है, कालातीत है।
... समय ही न मिला। और फिर वह बुद्ध को सामने पा इतनी भयभीत हो गई कि पैरों ने भागने से जवाब दे दिया। पक्षाघात हो गया, लकवा लग गया। वह रुक गई।
उसे तो लगा कि जैसे उसकी मृत्यु ही सामने आ गई है। भाग तो वह न सकी, पर आंखें उसने जरूर बंद कर लीं। इतना उपाय मन ने जरूर किया।
जब भी तुम भाग नहीं सकते, तब तुम आंख बंद करते हो। वह न कुछ करने से, कुछ करना बेहतर है। ऐसा मन सोचता है।
... भाग तो वह न सकी, पर आंखे उसने जरूर बंद कर लीं। पर यह क्या! बंद आंखों में बुद्ध ही दिखाई पड़ रहे हैं। संसार में यह तरकीब काम आ जाती है। अगर तुम भाग न सको, तो आंख बंद कर लेना; क्योंकि संसार की चीजें बाहर हैं; आंख बंद कर ली, तो संबंध टूट गया। लेकिन यह बुद्ध का होना भीतर है। आंख बंद करने से तो वे और साफ दिखाई पड़ने लगे।
भूलमहा-भूल हो गई। अपने ही हाथ वृद्धा मुश्किल में पड़ गई। उसकी पुरानी तरकीब यह थी कि जिस चीज से भी बचना हो, आंख बंद कर लो। उसी तरकीब का उसने उपयोग किया। और करोगे भी क्या! जो हम जानते हैं, उसी का उपयोग करते हैं।
उसने आंख बंद कर ली। आंख बंद करके पाया कि बुद्ध तो दिखाई ही पड़ रहे हैं। और गैरिक वस्त्रों में स्वर्ण-सा दीप्त उनका चेहरा सामने है। फिर उसने दोनों हाथों से अपनी आंखें ढंक लीं। पर आश्चर्यों का आश्चर्य उस क्षण घटित होने लगा। जितना ही करती वह आंखों को बंद, बुद्ध उतने ही सुस्पष्ट होते चले जाते।
इसलिए ध्यान में आंखें बंद करने की व्यवस्था है; क्योंकि वह स्वयं का साक्षात्कार है; आंखें खुली रखने की जरूरत नहीं है। दूसरे को देखना हो, तो आंख खुली चाहिए। खुद को देखना हो, तो आंख बंद चाहिए। बंद आंख से तुम दूसरे को न देख सकोगे। खुली आंख से खुद को देखना बहुत मुश्किल होगा। इसलिए ध्यान कहता है: आंख बंद कर लो।
जैसे-जैसे आंख बंद की, चमत्कार मालूम होने लगा। आश्चर्य कि बुद्ध उतने ही सुस्पष्ट होते हैं। आह! जितनी ही ढंकती है वह आंखों को, बुद्ध उतने ही भीतर आ गए मालूम होते हैं। अब भागने की कोई भी जगह न बची। पैर ठिठक गए। आंख बंद करने का उपाय थाजाना-माना, परिचितवह व्यर्थ हो गया। संघर्ष टूट गया।
नहीं, अब कोई बचाव नहीं है। और जिस क्षण मन को यह अनुभव होता हैनहीं,
अब कोई बचाव नहीं हैसमर्पण हो जाता है। जब तक उसे लगता है: कुछ बचाव है, तब तक वह प्रयास करता है।
मृत्यु निश्चित है और इस प्रतीति के साथ ही वह वृद्धा खो जाती है। और बुद्ध ही शेष रह जाते हैं।
एक बहुत ही बड़ी महत्वपूर्ण बात समझ लेने जैसी है कि जिस चीज का भी तुम्हें ख्याल हो जाए कि निश्चित है, उस संबंध में तुम्हारा संघर्ष समाप्त हो जाता है। जब तक तुम्हें लगता है कि कुछ बदलाहट हो सकती है, तब तक तुम लड़ते हो, तब तक मन संघर्ष करता है। जैसे ही पक्का हो जाता है कि निश्चित हैअब कुछ नहीं हो सकता, कोई उपाय नहीं हैरत्तीभर हेर-फेर काबात खतम हो जाती है।
युद्ध के मैदान पर लोगों का भय खो जाता है। सभी सैनिकों का अनुभव है
कि युद्ध में जाने के पहले उनको बड़ा भय लगता है। वे सब उपाय करते हैं बचने केकोई बीमार बनने का उपाय करता है, कोई डाक्टर का सर्टिफिकेट लाता है; किसी के घर कोई काम है। वे पच्चीस उपाय करते हैं। सब उपाय कर लेते हैं,

लेकिन जब कोई उपाय नहीं बचता है और युद्ध के मैदान पर जाना ही पड़ता है, तो मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन किया है कि युद्ध के मैदान पर जाते ही सैनिक का भय खो जाता है। क्योंकि जब आ ही गए और अब कोई उपाय ही बचने का नहीं है और जब बात निश्चित ही है, तो मन संघर्ष छोड़ देता है। तब पास ही बम के गोले गिरते रहते हैं, बौछार गोलियों की निकलती रहती है, पास ही मित्र-परिचित मरे पड़े रहते हैं और सैनिक बैठकर आराम से काम करता रहता है। भोजन भी करता है, सिगरेट भी पीता है, रेडियो भी सुनता है, अखबार भी पढ़ता है। सब जैसे जिंदगी यही है; सामान्य है सब कुछ, असामान्य कुछ नहीं हो रहा है।
मृत्यु निश्चित हो गई, फिर स्वीकृति आ जाती है।
जब तक तुम सामने नहीं पड़े हो अपने, तब तक तुम बचाव करोगे। जिस दिन सामने पड़ जाओगे, लगेगा: अब कोई मार्ग नहीं हैतुम हथियार डाल दोगे।
अब कोई बचाव नहीं है, मृत्यु निश्चित है और इस प्रतीति के साथ ही वह वृद्धा खो जाती है। बुद्ध ही शेष रह जाते हैं।
वृद्धा तुम्हारे आत्मा के आस-पास बनी हुई परिधि है। जैसे ही तुम अपना साक्षात्कार करते हो, परिधि खो जाती है, केंद्र ही रह जाता है।
और झेन फकीर सदियों से पूछते आ रहे हैं: बताओ वह वृद्धा कौन है।
तुम ही वह वृद्धा हो, तुम ही वह बुद्ध हो। लेकिन अभी बुद्ध का तुम्हें कोई पता नहीं और वृद्धा की तुम्हें पहचान नहीं। वृद्धा तुम अभी हो, बुद्ध भी तुम अभी हो। लेकिन बुद्ध अंधेरे में छिपे हैं, वृद्धा प्रकाश में है।
और तुम बुद्ध को जानते नहीं। तुम्हारी स्थिति उस भिखमंगे जैसी है, जिसे अपने ही खजाने का कोई पता नहीं है और वह भीख मांग रहा हैभिक्षा-पात्र लिए। और जब तक तुम्हें झलक न मिल जाएअपने खजाने की, तुम भीख मांगते रहोगे और दुखी होते रहोगे।
अब क्या किया जाए कि तुम्हें पता चल जाएतुम्हारे खजाने का?
सब उपाय, सब योग, सब ध्यान, सब पूजा-प्रार्थना-अर्चनासब उपाय, बस, इतनी-
सी बात के हैं कि तुम एक बार भीतर देख लो; अपने आमने-सामने आ जाओ।
क्या किया जाए? बस, मन को दूसरे गांव जाने का मौका मत दो। मन को विचार करने की सुविधा मत दो; मन को समय मत दो। एक क्षण को भी तुम दूसरे गांव न जाओ, एक क्षण को भी विचार की धारा बंद हो जाए, एक क्षण को भी तरंगें न उठेंबुद्ध सामने आ जाएंगे।
सोचे कि तुम भटके। बिना सोचे रहेकि मिलन हुआ।
अब इस दिशा में तुम्हें बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी; क्योंकि मन पुराना है, आदतों के जाल में फंसा हुआ है।
मुल्ला नसरुद्दीन शराब का आदी था। और पत्नी रोज शराब के खिलाफ कुछ न कुछ प्रमाण ले आती थी। कभी अखबार की कटिंग ले आती थी, कभी कोई किताब ले आतीकि देखो। और एक दिन बड़े डाक्टरों का वक्तव्य था अंतर्राष्ट्रीय ख्याति केकि शराब से ये-ये बीमारियां होती हैं। उसने लाकर वह कटिंग नसरुद्दीन को दी, कि देखो। नसरुद्दीन ने कहा: सब बकवास है। सब बातचीत है। सब प्रचार है। मैं खुद इतने दिन से पी रहा हूं और अभी तक कोई बीमारी नहीं हुई है। अनुभव से मैं कहता हूं कि यह सब बातचीत है। नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा: ये कहते हैं कि दस साल उम्र भी कम हो जाएगी। नसरुद्दीन ने कहाः मौत अभी दूर है; जब आएगी, तब निपट लेंगे। और नसरुद्दीन ने कहा, बंद कर ये चीजें मेरे सामने लाना। जब तक मैं मर ही न जाऊं, तब तक मैं शराब पीना बंद करने वाला नहीं हूं। उसकी पत्नी ने कहाः तुम्हें पक्का भरोसा है कि तुम मर के भी शराब पीना बंद करोगे? आदत तुम्हारी ऐसी है कि मुझे शक है कि तुम मरकर भी पीओगे।
आदत पीछा करती है। और आदत से तुम्हारा ऐसा तादात्म्य हो जाता है, कि तुम यह सोच ही नहीं पाते कि आदत और तुम, अलग-अलग हो। तुम आदत ही हो जाते हो; उसी के साथ एक रूप हो जाते हो।
मन की सारी ताकत यही है कि वह तुम्हारी सभी आदतों का जोड़ है। और तुम उसके साथ एक-रूप हो गए हो। तुमने मान लिया है कि तुम वृद्धा हो। यह मान्यता तोड़नी है। और इस मान्यता को तोड़ने का एक ही उपाय है कि तुम चेष्टा में

संलग्न हो जाओ। दूसरे गांव मत जाओ। अभी तुम दस मील दूर जाते थे; कोशिश करोगे तो नौ मील जाओगे, आठ मील जाओगे, एक मील जाओगे।
कोशिश जारी रहे। और धुन पैदा करो, ताकि मन एक गीत में, एक लय में तल्लीन रहे। और कभी आकस्मिक दुर्घटना भी घटती है। कभी, अचानक तुम सामने आ जाओगे। मन लीन रहेगा तो यह कहानी घट जाएगी।
यह घटना ऐसे ही घटती है कि मन लीन हो भूल-चूक हो जाए, तुम आमने-सामने पड़ जाओ; भागने की जगह न बचे; सोचने का उपाय न रहे; मृत्यु निश्चित हो जाए; तुम हथियार डाल दो। और समर्पण होते ही सब कुछ हो जाता है।
नदी डरती हैव्यर्थ ही। सागर में खोती है ऐसी भ्रांति है उसे। नदी रहेगी ही। क्योंकि जो भी है, वह खोता कभी नहीं। नदी सागर होकर रहेगी। अब तक क्षुद्र थी; सीमाओं में बंधी थी, किनारे थे। अब कोई किनारे न होंगे; अब विराट के साथ तादात्म्य हो जाएगा।
नदी मिटती नहीं है, सागर हो जाती है। लेकिन यह तो जो नदी मिट जाती है, उसको पता चलता है। जो नदी अपने किनारे से बंधी है, वह डरती है। वह भयभीत होती है कि मेरा रूप, मेरा तादात्म्य, मेरी आइडेंटिटी, मेरा नाम खो जाएगा, मेरे किनारे खो जाएंगे।
मन भी डरता है। मन नदी है; बुद्धत्व का सागर है।
थोड़ी, एक झलक खोने की, फिर तुम निर्भय हो जाओगे। फिर तुम्हारे पैर में
बल आ जाएगा। फिर तुम छलांग ले सकोगे।
धुन पैदा करोकिसी भी बहाने। वह धुन कोई भी हो, लेकिन सच्ची हो। ऊपर-ऊपर हो, तो कोई सार नहीं। तुम ऊपर-ऊपर राम-राम जपते रहो और भीतर बाजार चलता रहे, तो कोई सार नहीं है। धुन ऐसी हो कि तुम उसमें लग जाओ। धुन ऐसी हो कि तुम्हारा कोई आपरेशन भी करे और तुम अपनी धुन में लगे हो, तो तुम्हें आपरेशन का पता न चले।
काशी के नरेश का आपरेशन हुआ सन 1990 में। उसने कसम ले रखी थी कि वह किसी तरह का मादक द्रव्य नहीं लेगा। तो बड़ी कठिनाई खड़ी हुई। क्योंकि बिना बेहोशी का कुछ इंजेक्शन दिए आपरेशन नहीं हो सकता था। अपेंडिक्स का आपरेशन था; लंबा आपरेशन था, खतरनाक था। और पीड़ा होनी स्वाभाविक थी। तो काशी के नरेश ने कहाः तुम भयभीत न होओ। बस, मेरी गीता मुझे दे दो। मैं गीता को गुनगुनाता रहूंगा, तुम आपरेशन कर लेना।
डाक्टरों को भरोसा न हुआ। क्योंकि आपरेशन अपेंडिक्स का--! पेट पूरा खोलना पड़ेगा। घंटे भर, दो घंटे लगेंगे; क्या भरोसा; इस आदमी की धुन टूट जाए! यह कहता तो है, पर अनुभव क्या है इसको? पहले कभी ऐसा आपरेशन तो हुआ नहीं है। तो उन्होंने कहा कि तुम प्रयोग शुरू करो। और सब तरह से खीलें चुभाईं, छुरियां चुभाईं हाथ में, पैर में; सब तरह की पीड़ा देकर देखी कि किसी पीड़ा से धुन तो नहीं टूटती। धुन टूटी ही नहीं। वह आदमी अपनी गीता ही पढ़ता रहा, जैसे उसे पता ही न चला।
साधारण जीवन में भी ऐसा घटता है। यह कुछ चमत्कार नहीं है। एक बच्चा खेल रहा हैहाकी के मैदान पर। पैर में चोट लग जाती है, खून बह रहा है और वह दौड़ रहा है। उसे पता ही नहीं है। धुन लगी है।
जब धुन लगी होती है, तो न शरीर का पता होता है, न संसार का पता होता है।
धुन लगे होने का यही मतलब है कि सब भूल गया। तुम किसी एक चीज में ऐसे लीन हो गए कि कुछ भी न बचा, बस, यही एक चीज बची। फिर वही मंत्र हो जाता है।
फिर उन्होंने आपरेशन किया और आपरेशन सफल हुआ। और वह आदमी अपनी गीता पढ़ता रहा। वह पहला आपरेशन थाबिना किसी अनेस्थेसिया के।
क्या थी कला? कला कुल इतनी थी कि वह अपनी गीता में लीन था।
जब सारा ध्यान लीन हो कहीं बचता ही न हो कहीं और जाने कोतब धुन... । ऐसी धुन पैदा करो, तो अचानक तुम किसी दिन पाओगे कि तुम बुद्ध के सामने पड़ गए।
वृद्धा अब भाग नहीं सकती। और जब कोई उपाय नहीं रहता है, वृद्धा समर्पण कर देती है।
और समर्पण सत्य का द्वार है।

आज इतना ही।

सहज समाधि भली
इक्कीसवां प्रवचन

सहजै सहजै सब गया

ओशो, आपने इस प्रवचनमाला का आरंभ संत कबीर के पदः सहज समाधि भली के विशद उदघाटन से शुरू किया था। इसलिए इस समापन के दिन हम आपसे प्रार्थना करेंगे कि कबीर के कुछ और पदों का अभिप्राय हमें समझाएंः
सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जा सहजै साहब मिलै, सहज कहावै सोइ।।
सहजै सहजै सब गया, सुत वित काम निकाम।
एकमेक ह्वै मिली रह्या, दास कबीरा नाम।।
जो कछु आवै सहज में, सोइ मीठा जान।
कडुवा लागै नीम-सा, जामें ऐंचातान।
सहज मिलै सो दूध सम, मांगा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम, जामें ऐंचातानि।।

जिन्होंने भी जानाउन्होंने सदा निष्प्रयास से जाना, अप्रयत्न से जाना। ठीक होगा कहना कि उन्होंने खोजा नहीं, उन्हें मिला। वे परमात्मा के मंदिर तक नहीं पहुंचे, परमात्मा उनके हृदय तक आया। और तुम उस तक पहुंच भी कैसे सकोगे! उसके मंदिर का कोई अता-पता, कोई ठिकाना भी नहीं है। तुम उसे खोजोगे कहां? और तुम्हीं तो खोजोगे! और तुम अगर गलत हो, तो तुम्हारी खोज गलत हो जाएगी। यात्रा कौन करेगा? तुम यात्रा करोगे और तुम अगर भ्रांत हो, तो सभी दिशाएं जिनमें तुम जाओगे भ्रांत हो जाएंगी। उसका मंदिर भी सामने आ जाए, तो भी तुम पहचान न पाओगे। वह तुम्हें रास्ते पर भी मिल जाए, तो तुम उससे बचकर निकल जाओगे।
असली सवाल परमात्मा का नहीं है, असली सवाल तुम्हारा है। और अगर तुम्हारे पास आंखें हों, तो इंच भर भी हिलने की जरूरत नहीं, क्योंकि तुम जहां हो, तुम उसे वहीं देख लोगे। पत्ते-पत्ते में, कंकड़-पत्थर में, हवा के हर झोकें में वही मौजूद है; उसे खोजने की जरूरत क्या है! लेकिन तुम उसे देख नहीं पाते; तुम उसके स्पर्श को अनुभव नहीं कर पाते, तब तुम बड़ी ऐंचातान करते हो!
कबीर बड़ा मजेदार शब्द उपयोग कर रहे हैं। तुम बड़ी ऐंचातान करते हो, तुम बड़ा प्रयास करते हो। तुम शीर्षासन लगाते हो, नाक बंद करते हो, आंखें मूंदते हो। तुम उलटे-सीधे होते हो; तुम हजार तरह के अभ्यास और व्यायाम करते हो। तुम न मालूम कैसा-कैसा योग साधते हो! क्योंकि परमात्मा को पाना है। जैसे कि परमात्मा दूर हो और रास्ता हो बीच मेंजिस्को पार करना है! जैसे कि परमात्मा कुछ ऐसा हो कि जैसे तुम हो, उसमें मिल ही न सकेगा।
आखिर तुम में कमी क्या है? तुम्हें परमात्मा ने बनाया है; तुममें कमी
हो भी कैसे सकती है। और तुम्हारी हर कमी, उसकी कमी की खबर देगी। क्योंकि जब गीत में कुछ भूल मिल जाए, तो गीत का कसूर नहीं होता है; कवि फंस जाएगा। और जब संगीत आड़ा-टेढ़ा जाने लगे, तो संगीतज्ञ फंसेगा। तुम अगर जरा भी गलत हो, तो परमात्मा का सृजन ही गलत है। तुम बिल्कुल पूरे हो। अधूरा वह बनाता ही नहीं।
तुम जैसे हो, ऐसे ही काफी होयह सहज-योग की पहली धारणा है। तुम जैसे हो, उसमें रत्ती भर भी ऐंचातान करने की जरूरत नहीं है। उलटे-सीधे होने का कोई अर्थ नहीं है। और तुम्हारी ऐंचातान, तुम्हारा प्रयत्न, तुम्हारा श्रम और उलझाएगा; सुलझाएगा नहीं।
बुद्ध एक रास्ते से गुजरते हैं, दोपहर है घनीतेज है धूप, पसीना बहता है। और उन्हें प्यास लगी है। तो आनंद को उन्होंनेएक वृक्ष के नीचे बैठकरकहा कि तू जा, पीछे हम झरना छोड़ आए हैं, वहां से तू पानी भर ला।
आनंद गया; कोई दो मील दूर था झरना। लेकिन जब पहुंचा तो पाया कि उसके जाने के ठीक पहले ही कुछ बैलगाडियां झरने से निकली हैं। उन बैलगाडियों के निकलने से उस छिछले झरने में बड़ी गंदगी ऊपर उठ आई थी। जो वर्षों से नीचे

बैठा होगा कूड़ा करकट, वह सब ऊपर फैल गया। पानी गंदा हो गया; पीने योग्य न रहा। और फिर बुद्ध के लिए ऐसा गंदा पानी ले जाए आनंद, यह असंभव था।
वह वापस लौट आया। उसने बुद्ध को कहा कि वह पानी पीने योग्य नहीं रहा।
जहां तक मैं समझता हूंआगे मार्ग परकोई चार मील के फासले पर एक नदी है; मैं वहां से पानी ले आऊं। बुद्ध ने कहा कि नहीं; तू वापस जा; पानी वही लाना है। पानी-पानी में क्या भेद है आनंद! बुद्ध ने कहा, तो आनंद को फिर वापस लौट जाना पड़ा।
आनंद बड़ी मुश्किल में पड़ गया। वहां गया; कचरा था; पानी गंदा था, तो सोचाः एक ही उपाय है, उसे ही शुद्ध करके ले जाऊं। तो वह उतर गया झरने में और कोशिश करने लगा कि गंदगी को हटा दे। जितनी उसने कोशिश की, पानी और गंदा हो गया। उसके प्रवेश करने से हीऔर कचरा उठ आया। जो बैठ गया होगा, वह फिर वापस ऊपर आ गया। वह तो और मुश्किल में पड़ गया। अब तो उसने और गंदा कर लिया।
वह फिर वापस लौटा। उसने बुद्ध को कहाः आप मत रोकें। वह पानी पीने योग्य नहीं है। और मैंने कोशिश की प्रवेश करके शुद्ध करने की, तो वह और अशुद्ध हो गया। बुद्ध ने कहाः पागल! जब झरना गंदा हो, तो किनारे बैठ कर चुपचाप राह देखनी चाहिए। उतरा कि और मुश्किल हो जाएगी। तू वापस जा। लेकिन आनंद ने कहाः जो कोशिश करने से भी शुद्ध नहीं हो रहा है, वह सिर्फ बैठने से कैसे शुद्ध होगा!
यही तुम सब कह रहे हो। यही सारी बुद्धि का हिसाब हैकि जो चेष्टा करने
से नहीं हो पा रहा है, वह निश्चेष्टा में कैसे होगा!
आनंद ने कहाः यह होने वाला नहीं है। लेकिन आप कहते हैं, तो मैं जाता हूं। मैं बैठूंगा। वह निराश... यह श्रम व्यर्थ ही जा रहा है आने-जाने का। फिर झरने पर वापस लौटा। अब बुद्ध ने कहा था, तो कोई उपाय भी न था।
आनंद ने तो बुद्ध की वजह से मान भी लिया, किनारे बैठ गया। हालांकि उसकी बुद्धि इनकार करती थी! तुम वह भी मानने को तैयार नहीं हो। और शिष्य जब तक सोचता है, तब तक उसकी बुद्धिगुरु जो कहता है, उसे इनकार करेगी। अगर प्रेम जग गया होगुरु के प्रति, तो वह अपनी बुद्धि की नहीं सुनेगा। बुद्धि तो कहेगी ही कि यह होने वाला नहीं है। लेकिन प्रेम अगर जग गया हो, तो प्रेम कहेगाः कहा है गुरु ने, तो करके देख लो।
अगर गुरु के साथ तुम्हारा हृदय है, तो ही तुम्हारा बुद्धि से संबंध टूटेगा। अगर गुरु से भी तुम्हारा संबंध सिर्फ बुद्धि का है, तो गुरु से तुम्हारा कोई संबंध ही नहीं है। क्योंकि बुद्धि उस पार की बात को समझ ही नहीं सकती।
और गणित साफ है कि मेहनत से नहीं मिल रहा है, तो बिना मेहनत के कैसे मिलेगा! दौड़ कर नहीं पहुंच रहे हैं और तुम कहते होः बैठ कर पहुंच जाओगे! हम पसीने-पसीने हुए जा रहे हैं और मंजिल नहीं आ रही है। और तुम कह रहे होः विश्राम करो और मंजिल आ जाएगी! हम जन्मों से भटक रहे हैं और पहुंच नहीं पाए और तुम कहते होः बैठ जाओ यहीं मंजिल है।
यह बात ही बुद्धि के बाहर हो जाती है। लेकिन गुरु से अगर हृदय का संबंध हो जाए, तो तुम्हारी बुद्धि कहती रहती है, लेकिन तुम अनसुना करते हो।
आनंद को जंची तो नहीं बात; किसी शिष्य को कभी नहीं जंची। लेकिन उसने कहा कि जब बुद्ध ने कहा है, तो पूरा करना ही होगा। भरोसा भी नहीं आया; किसी शिष्य को कभी नहीं आया है। लेकिन भरोसा भी न आता होसंदेह भी होता होतब भी यदि हृदय का तार जुड़ा हो, तो श्रद्धा नष्ट नहीं होती।
श्रद्धा कहीं संदेह से नष्ट हो सकती है! श्रद्धा हो ही न, तो बात अलग है। अन्यथा श्रद्धा बनी रहती है, संदेह किनारे पर रहता है। संदेह गौण रहता है, श्रद्धा केंद्र पर रहती है।
आनंद ने कहाः बुद्ध कहते हैं, तो जरूर कोई मतलब होगा। वह मतलब मेरी समझ में नहीं आ रहा है। और यह भी मैं जानता हूं कि पानी अपने आप शुद्ध होने वाला नहीं है। लेकिन अब उनकी मरजी; प्यासे रहना है, तो प्यासे रहें। मैं तो दूसरी नदी पर जाने को तैयार था।

वह बैठ गया। न मालूम क्या-क्या बातें सोचने लगा होगा। यह तो बात ही सही नहीं थी कि नदी शुद्ध हो जाएगी। घड़ी दो घड़ी बीती होंगी, तब उसने चौंक कर देखा कि वह नदी शुद्ध हुई जा रही है! पत्ते बह गए हैं। गंदगी नीचे बैठ गई है। पानी ऐसा शुद्ध होता जा रहा है, जैसा कि था।
गंदगी विजातीय है; वह पानी का स्वभाव नहीं है। उठ आई थी; बाहर से आई थी; बैठ जाएगी। और जब पानी में गंदगी थी, तब पानी गंदा नहीं था। तब भी गंदगी और पानी अलग-अलग थे। उनका फासला बहुत कम था, लेकिन फासला था। वे एक ही नहीं हो गए थे। अगर पानी ही गंदा हो गया होता, तो फिर शुद्ध होने का कोई उपाय न था। अगर पानी गंदगी के साथ एक हो गया होता, तो फिर कितनी ही ऐंचातानी करते, कुछ होनेवाला नहीं था।
लेकिन बिना ऐंचातानी किए आनंद बैठा रहा। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे झरना साफ हो गया। स्वच्छ जल उभर आया। चकित हुआ। नाचता हुआ पानी लेकर वापस लौटा। नाचता हुआ क्यों? क्योंकि अब उसे ख्याल में आया कि बुद्ध का प्रयोजन क्या था। यह प्यास तो सिर्फ बहाना थी। और इस झरने पर बार-बार भेजना और नदी पर न जाने देना, एक तरकीब एक डिवाइस थी।
बुद्ध ने पूछाः आनंद, इतना प्रसन्न, इतना नाचता हुआ क्यों लौट रहा है?
तो आनंद ने कहाः बात समझ में आई। मैं शुद्ध नहीं हो पा रहा हूं, क्योंकि बड़ी ऐंचातानी कर रहा हूं। मन शुद्ध नहीं हो पा रहा है, क्योंकि मैं घुस-घुस जाता हूं; शुद्ध करने की चेष्टा करता हूं। समझ गया। अब मैं मन के किनारे भी बैठ रहूंगा।
अब बहने दो मन के झरने को; और रहने दो कितनी देर गंदा रहता है। गाडियां गुजर गई हैं बहुत जन्मों की। बहुत चाक गुजर गए हैं, बहुत गंदगियां उठ गई हैं। लेकिन एक बात बिल्कुल साफ हो गई है कि मैं गंदा नहीं हूं। गंदगी कितनी ही आस-पास हो, मेरा स्वभाव गंदा नहीं। तो जो स्वभाव नहीं है, वह अपने आप चला जाएगा, उसे हटाने की कोई जरूरत नहीं है। जो स्वभाव है, वह कभी भी न जाएगा। उसे भुलाने की भी कोई जरूरत नहीं है।
क्रोध आता है; वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है। कोई गाड़ी गुजर गईगंदगी उठ गई; कचरा ऊपर आ गया। वासना उठती है; वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है। बुद्ध ने कहा हैः जो सदा न रहे, वह स्वभाव नहीं है।
कितनी देर वासना रहती है? अंततः छूट ही जाती है। कितनी देर क्रोध टिकता है? करो या न करो। क्रोध को शाश्वत तो न बना सकोगे! सदा तो क्रोधी न रह सकोगे। बड़े से बड़ा क्रोधी भी शिथिल होगा। कितनी देर कोई अपनी प्रत्यंचा को खींचे रख सकता है? हाथ थक जाएंगे। बड़े से बड़ा योद्धा भी अपनी प्रत्यंचा को ढीली करके किनारे रख देता है। तब प्रत्यंचा कातना होनास्वभाव नहीं हो सकता।
तुम तब तने हो, जब कोई गाड़ी गुजर गई, झरना गंदा हो गया। अब करोगे क्या?
दो ही उपाय दिखते हैंः या तो कुछ करो और या किनारे पर बैठे रहो। सहज-योग कहता हैः किनारे बैठे रहो। सिर्फ साक्षी हो रहो। कुछ भी मत करो। बस, देखते रहो। इससे ज्यादा जरूरत नहीं है। सिर्फ तुम देखोगे, तो तुम्हारी आंखें उपद्रव खड़ा नहीं करेंगी। और तुमने कुछ भी कियाजरा-सी भी ऐंचातानी की कि तुम और उलझा लोगे।
तुम्हारी उलझन इतनी नहीं, जितनी तुम समझ रहे हो। जितनी तुम समझ रहे हो, उसमें बहुत-सी तो तुम बड़ी मेहनत से पैदा कर रहे हो। तुम्हारी अड़चन इतनी नहीं है, जितनी दिखाई पड़ती है। हजार-गुना होकर दिखाई पड़ती है; क्योंकि तुम खड़े नहीं हो; तुम सुलझाने में लगे हो। और जितनी ही सुलझाते हो, उतना ही तुम पाते हो कि उलझती जाती है बात। जिंदगी भर का अनुभव है, लेकिन फिर भी निष्कर्ष नहीं लेते हो!
तुमने क्या सुलझा लिया है जिंदगी में? जहां-जहां तुम सुलझाने गए हो, वहां-वहां बात उलझ गई है! क्या सुलझा पाए हो? कामवासना को सुलझाने लगते हो, ब्रह्मचर्य हाथ में नहीं आता; विकृति हाथ आती है परवर्शन हाथ आता है। क्रोध को सुलझाने जाते हो, करुणा हाथ नहीं आती; सिर्फ दमित क्रोध मवाद की तरह पूरी देह और मन-प्राण में भर जाता है।

तुम क्या सुलझा पाए हो? हाथ में एक भी सुलझा हुआ सूत्र नहीं है; हालांकि सुलझाने की तुम बड़ी कोशिश कर रहे हो।
कबीर कहते हैं कि तुम्हारी कोशिश ही तुम्हारी मुसीबत है। मत करो ऐंचातानी। जरा बैठो भी। सुलझाकर नहीं सुलझा पाए, तो अब बैठ कर देख लो। यह भी देख लेने जैसा है।
तुम्हारा मन कहेगा कि यह गणित जंचता नहीं है। जो इतने श्रम से नहीं हो
पा रहा है, वह बिना श्रम के कैसे होगा! इसलिए धर्म गणित के भीतर नहीं है या धर्म को गणित कुछ और ही है। और वह गणित यह है कि संसार में कुछ पाना हो, तो दौड़ना पड़ेगा। वह संसार का गणित है। और परमात्मा में कुछ पाना हो, तो ठहरना पड़ेगा। उलटा है। वे यात्राएं विपरीत हैं।
संसार में कुछ पाना हो, तो मेहनत करनी पड़ेगी, श्रम करना पड़ेगा, प्रयास करना पड़ेगा। यहां बिना प्रयास के कुछ भी न मिलेगा। क्योंकि यहां भारी प्रतियोगिता है। तुम अगर खड़े रहे किनारे, तो दूसरे नहीं खड़े रहेंगे। वे छीन-झपट करके ले जाएंगे। लेकिन परमात्मा में अगर कुछ पाना हो, और तुमने छीन-झपट की कि तुम चूक जाओगे। वहां छीना-झपटी चलती ही नहीं। वहां तुम खड़े ही रहो तो हीतो ही तुम पा सकोगे।
और ध्यान रहेः जगत में प्रतियोगिता है; परमात्मा में कोई प्रतियोगिता नहीं है। अगर किसी दूसरे ने परमात्मा पा लिया, तो परमात्मा कम नहीं हो जाएगा! तुम्हारे लिए उतना ही बचेगा; जितना उसके पाने के पहले था। लेकिन संसार में अगर किसी ने पद पा लिया, तो पद अब बचा नहीं। इसलिए वहां दौड है। इसलिए वहां प्रतिस्पर्धा है, प्रतियोगिता है। वहां तुम अकेले नहीं हो। वहां तुम जो भी पाओगे, वह किसी से छीनकर पाओगे।
संसार की जीवन व्यवस्था शोषण की है। वहां शोषण किए बिना कुछ उपाय ही नहीं है। तुम्हारे पास धन है, तो कोई निर्धन हो जाएगा। तुम्हारे पास महल है, तो किसी का झोपड़ा छोटा हो जाएगा। तुम्हारा महल बड़ा होगा, तो कई मकान छोटे होंगे। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है।
लेकिन परमात्मा में कोई प्रतियोगिता नहीं है। तुम पूरे परमात्मा को
पा लो, तो भी पूरा परमात्मा बाकी रहेगा। वही उपनिषद कहते हैंः पूर्ण से पूर्ण ले लो, तो भी पूर्ण पीछे शेष रह जाता है। कुछ खर्च नहीं हो रहा है; वहां तुम्हारे लेने से, कुछ कट नहीं रहा है, बंट नहीं रहा है। कितने ही लोग परमात्मा को पा लें, परमात्मा का होना सदा उतना का उतना है।
सत्य में कोई शोषण नहीं है। संसार में बिना शोषण कोई उपाय नहीं है। दोनों रास्ते बिल्कुल विपरीत हैं। संसार में श्रम मार्ग है; और परमात्मा में विश्राम।
सहज-योग का अर्थ हैः विश्राम की दशा जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो जब तुम, बस, बैठे हो और देख रहे हो। संसार के देखे तो लगेगा यह आलस्य है। इसलिए संसार ने संन्यासी को सदा आलसी समझा हैजो कुछ भी नहीं कर रहा है। संसार उसको मूल्य भी नहीं देता। और अब तो कठिन हो गया है संन्यासी को जीना। क्योंकि, जो कुछ भी नहीं कर रहा है, उसका क्या मूल्य है? वह जीने का हकदार भी नहीं है। लेकिन पूरब ने इस रहस्य को समझा कि एक और जगत भी है, जहां बिना कुछ किए पाने की संभावना है।
और हमने संन्यासी को गृहस्थ से ज्यादा मूल्य दिया था; यह मूल्य हमारे अनुभव पर आधारित था। जो यहां कुछ भी करता हुआ दिखाई नहीं पड़ता, वह वहां बहुत कुछ पा रहा है। लेकिन वह अदृश्य लोक है, उसको तिजोड़ी में भरकर दिखाया नहीं जा सकती। वह तो उनके ही ख्याल में आएगा, जिनकी आंखें खुलेंगी। उसकी सुगंध तो उनको ही मिलेगा, जो उस लोक की तरफ दृष्टि को उठाएंगे।
सहज-योग का अर्थ है कि तुम जैसे होपूरे हो। रत्ती भर भी कमी नहीं है।
और अगर कचरा कुछ उठ आया है, तो तुमने ही शोरगुल मचा दिया है; तुमने ही श्रम करके उसे उठा लिया है। तुम किनारे बैठ जाओ। चीजों को सहजता से अपनी जगह पहुंच जाने दो, स्वभाव को थिर हो जाने दो।
तुम परमात्मा हो। परमात्मा कोई उपलब्धि नहीं है। परमात्मा तुम्हारा होना हैतुम्हारे होने का ढंग है। पापी भी उतना ही परमात्मा है, जितना पुण्यात्मा। लेकिन फर्क क्या है? पुण्यात्मा बैठा है और पापी कोशिश कर

रहा है। बुरा आदमी उतना ही परमात्मा है, जितना भला आदमी। बुरे आदमी ने उलझन बना ली है। और जितना सुलझा रहा है, उलझता जा रहा है। भला आदमी रुक गया है, तो उलझन अपने आप सुलझ जाती है।
याद रखना उस झरने को, जिसके किनारे बैठ कर आनंद को जीवन का सूत्र मिला। तो तुम्हें सहज-योग की परिपूर्ण प्रक्रिया ख्याल में आ जाएगी।
अब हम कबीर के सूत्र को समझें। एक-एक शब्द बहुमूल्य है। और कबीर से ज्यादा कीमती शब्द खोजना निश्चित ही कठिन है; क्योंकि कबीर जैसा आदमी खोजना कठिन है।
सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोइ। जा सहजै साहब मिलै, सहज कहावै सोइ। कबीर कहते हैः सभी लोगों ने सहज-सहज की रट लगा रखी है, लेकिन सहज कोई पहचानता नहीं।
सहज की पहचान क्या है? वृक्ष की पहचान हैः फल; और कोई पहचान नहीं है।
फल ही बताएगा कि वृक्ष नीम का है, कि आम का है। सहज की पहचान क्या है? जा सहजै साहब मिलै, सहज कहावै सोइ। जिससे परमात्मा मिल जाए, जिसमें परमात्मा का फल लग जाए। साहब कबीर का शब्द है परमात्मा के लिए। जिससे साहब मिले, वही सहज है। बातचीत से कुछ न होगा, फल होना चाहिए। जहां परमात्मा दिखाई पड़े, वहीं समझना कि सहज का कोई अर्थ है। यह समझ लेने जैसी बात है।
कोई आदमी परमात्मा की चर्चा करता रह सकता है जन्मों-जन्मों तक। इससे कोई हल नहीं होता। शायद चर्चा यही बताती है कि जो नहीं मिला है, उसे आदमी शब्दों से भरने की कोशिश कर रहा है, भुलाने की कोशिश कर रहा है।
परमात्मा का सबूत शब्दों में नहीं है; परमात्मा का सबूत व्यक्तित्व में है, आंखों में है, होने के ढंग में है।
बुद्ध परमात्मा की बात नहीं करते; लेकिन पहचानने वालों ने उन्हें पहचान लिया और बुद्ध को भगवान कहा। और बुद्ध कहते हैंः कोई भगवान नहीं है; कोई परमात्मा नहीं है। बस, तुम्हीं सब कुछ हो। लेकिन बुद्ध के होने के ढंग में परमात्मा है; फल वहां लगा हुआ है। आम खुद ही चिल्ला-चिल्ला कर कहे कि आम होता नहीं, तो भी तुम देख पाओगे कि आम लगा है। तुम स्वाद भी ले सकते हो। बुद्ध के शब्द मत पकड़ लेना। वे शब्द बड़ी होशियारी से काम में लाए गए हैं। बुद्ध कहते हैंः कोई परमात्मा नहीं है, कोई आत्मा नहीं है, कोई मोक्ष नहीं है। सब बकवास है। यह उन लोगों से छुटकारा पाने का उपाय है, जो बकवास के बड़े आदी हैं। वे लोग, जो शब्दों में ही जीते हैं, इतना सुनकर ही वापस लौट जाएंगे। जब परमात्मा ही नहीं है, तो यह आदमी नास्तिक है। और उनके द्वार ही बंद हो जाएंगे। जब इस आदमी में परमात्मा का फल लगा है, यह उन्हें दिखाई ही न पड़ेगा।
पंडित वापस लौट जाएंगे। लेकिन जिनकी प्यास सच्ची है, वे कहेंगेः यह आदमी कुछ भी कहता होहम इसकी सुनें या इसको देखें! हम इसके शब्दों को मानें या इसको मानें! और इस आदमी में मीठा फल लगा हैपरमात्मा का। जरूर इसके कहने में कोई तरकीब है। यह व्यर्थ के लोगों से बचने का उपाय है। हम तो स्वाद लेंगे। वे लोग रुक जाएंगे। उनके लिए बुद्ध ही भगवान हैं।
सभी ज्ञानियों को कुछ उपाय करने पड़ते हैं, जिससे व्यर्थ के लोगों को बाहर रोका जा सके। क्योंकि व्यर्थ का एक आदमी भी जैसे एक सड़ी मछली सभी मछलियों को सड़ा दे, वैसे ही व्यर्थ का एक आदमी शेष को भी उलझाने का कारण बन जाता है। जैसे बीमारी संक्रामक होती है, ऐसे ही व्यर्थता भी संक्रामक होती है। जैसे बीमार आदमी के पास बैठकर तुम्हारे बीमार होने का डर पैदा हो जाता है, व्यर्थ आदमी के पास बैठकर तुम्हारे जीवन में व्यर्थता बढ़ने की संभावना बढ़ जाती है।
तो बुद्ध कहे चले जाते हैं कि नहीं कोई परमात्मा, नहीं कोई आत्मा, नहीं कोई मोक्ष। फिर जो रुक जाता है, उसके लिए बुद्ध द्वार खोल देते हैं परमात्मा का, आत्मा का, मोक्ष का। लेकिन वह द्वार भी वे तभी खोलते हैं, जब वह आदमी फल को देखता है। क्योंकि फल ही सबूत है। आम क्या कहता है, इसको सुनिएगा कि आम क्या है, इसको देखिएगा?
कबीर कहते हैंः जा सहजै साहब मिलै, सहज कहावै सोइ। बस, एक ही सबूत है सहज का कि उससे साहब मिल जाए, कि साहब प्रकट हो जाए। जो सहज की बात कर रहा

है, उसे सहज का कोई पता ही नहीं है। क्योंकि सहज का अर्थ है कि साहब भीतर है; खोज बंद हो गई।
रिन्झाई एक फकीर हुआजापान में। जापान के एक पर्वत परजहां एक बड़ा तीर्थ स्थान है हजारों लोग वहां यात्रा करने जाते हैं। रिंझाई उस पर्वत के नीचे रास्ते के किनारे तीस वर्षों तक रहा। कभी पर्वत के ऊपर गया नहीं; वहां से कोई चार-पांच मील का ही फासला था।
हजारों लोग पैदल यात्रा करते। रिंझाई को सैकड़ों लोग पहचानते थे। तीर्थयात्री निकलते थे, तो वे पूछते थेः रिन्झाई, ऊपर नहीं चलोगे? तो रिंझाई कहताः हम ऊपर हैं। कोई पूछताः तीर्थयात्रा न करोगे? रिन्झाई कहताः यात्रा पूरी हो गई; मंजिल आ गई। कोई पूछताः हम जा रहे हैं ऊपर। रिंझाई, अगर तुमसे चलते न बनता हो, दो डोली कर दें। या अपने कंधे पर ले लें। तो रिन्झाई कहता तुम जहां जा रहे हो, वहां मैं हूं। अब जाना कहां है!
जो देख सकता थाक भी हजार में एक में एक आदमी वह फिर तीर्थयात्रा को नहीं जाता था। वह रिंझाई के पास रुक जाता था। इसीलिए रास्ते के किनारे वहां वह बैठा रहता था। जो देख लेता था, जो समझ पाता इस आदमी को, जिसको जरा सी भी इसकी झलक पकड़ में आ जाती, वह इसके पैर पकड़ लेता। वह कहताः अब हम भी वहां न जाएंगे। अब वहां क्या रखा है! और इतने लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं और हजार साल से यह सिलसिला चलता है। लोग आते हैं, जाते हैं... !
तीर्थयात्रा तीर्थों में नहीं है; तीर्थयात्रा तो उनके पास जाने में है, जिनको साहब मिल गया हो। और रिन्झाई सिद्ध कर रहा है कबीर के इस वचन को कि जा सहजै साहब मिलै... । वह कह रहा हैः हम वहां पहुंच गए हैं। यह कहना भी ठीक नहीं है किहम वहां पहुंच गए। सच तो यही कहना ठीक है कि हम सदा वहां थे; इसकी पहचान आ गई।
धर्म एक रिकग्निशन, एक प्रत्यभिज्ञा है। इस बात का स्मरण है कि मैं वही हूं। अहं ब्रह्मास्मि, मैं वहीं हूं। फिर क्या करने को बाकी है! जब तक करने को बाकी है, तब तक तुमको लग रहा है कि साहब दूर है तुमसे अलग।
कभी तुमने सोचा कि अगर परमात्मा तुमसे अलग है अगर सच में ही अलग हैतो तुम उससे एक कैसे हो पाओगे? फिर तुम एक भी न हो पाओगे। ज्यादा से ज्यादा पास पहुंच सकते हो, लेकिन एक न हो पाओगे। लेकिन कहीं पानी के पास जाकर प्यास बुझती है? प्यास तो तभी बुझती है, जब पानी और तुम घुल-मिल जाओ, एक हो जाओ। तुम सरोवर के कितने ही पास पहुंच जाओ, इससे क्या प्यास बुझेगी?
तुम परमात्मा से हजार मील दूर हो कि हजार इंच, कि एक इंच, कि परमात्मा
से तुम्हारी देह टकरा रही है लेकिन इससे क्या होगा? प्यास बुझेगी? जब तक तुम परमात्मा न हो जाओ, तब तक प्यास बुझ नहीं सकती।
इंच भर का फासला भी करोड़ मील का फासला है। सच तो यह है कि जब इंच भर का फासला रह जाता है, तब बहुत अखरता है। हजार मील के फासले पर कम से कम एक आश्वासन तो रहता है कि अभी दूरी बहुत है; यात्रा कर लेंगे, पहुंच जाएंगे। और जब इंच भर का फासला रह जाता है, चलने को जगह भी नहीं रह जाती, जाने का उपाय भी नहीं रह जाता, तब असमर्थता पूरी प्रकट होती है।
भक्त की पीड़ा उस समय आती है, जब भगवान और उसके बीच इंच भर का फासला रह जाता है; तब उसे पता चलता है कि भक्ति इससे आगे नहीं ले जा सकती है। काफी ले आई है; पर इससे आगे नहीं ले जा सकती। इससे आगे तो एक ही कदम है कि भक्त भगवान हो जाए। जा साहब मिलै... ! लेकिन अगर तुम पहले से ही फासला मानकर चल रहे हो, तो तुम एक कैसे हो सकोगे?
कबीर कहते हैं कि तुम अलग हो ही नहीं। इस बिंदु से ही यात्रा करना। तुम परमात्मा के पास नहीं जा रहे हो, वह सदा से तुम्हारे भीतर है; सिर्फ उसकी पहचान बढ़ रही है। कौन तुम्हारे भीतर छिपा है इसकी पहचान बढ़ रही है। परमात्मा के निकट जाने की और कोई यात्रा नहीं है, सिर्फ पहचान की यात्रा है। धीरे-धीरे तुम उघाड़ते जा रहे हो अपने को। और जहां-जहां उघड़ते हो, वहां-वहां परमात्मा को पाते हो। जिस दिन तुम पूरे उघड़ जाओगे, उस दिन तुम हंसोगे कि मैं उसे ही खोज रहा था, जो सदा ही मेरे भीतर छिपा था।

और जो तुम्हारे भीतर छिपा था, उसे तुम खोजकर पाते भी कैसे? तुम जितना खोजते थे, उतनी ही मुसीबत में पड़ते थे। क्योंकि खोज तुम्हें बाहर ले जाती थी।
सब योग बाहर ले जाएगा, सब क्रिया बाहर जाने का द्वार है। सहज-योग का अर्थ हैः अक्रिया। सहज योग का द्वार हैः कुछ करना नहीं, सिर्फ चुप होकर देखना। कठिन है यह। इसे तुम सरल मत समझ लेना।
लोग सहज-योग की बात करते हैं; वे सोचते हैंः बड़ी सरल बात है। सहज शब्द
से ऐसा लगता है कि सरल होगा। सहज का अर्थ सरल नहीं है। इससे ज्यादा कठिन कोई चीज नहीं है।
करना हमेशा आसान हैकितना ही कठिन हो। उसका अभ्यास किया जा सकता है।
सीखा जा सकता है। समय लगाया जा सकता है। लेकिन सहज हैः न करना; उसका कोई अभ्यास नहीं; सीखने का कोई उपाय नहीं। तुम्हें तो धीरे-धीरे-धीरे बैठना ही पड़ेगा।
तो करोगे क्या? कैसे यह सहज सधेगा? तुम जो जानते हो, वह भूलना पड़ेगा। तुम जो सीख गए हो, उसे छोड़ना पड़ेगा। तुमने जो-जो अभ्यास कर लिया है, उससे मुक्त होना पड़ेगा। तुम्हारा सब योग जब खो जाएगा, सब साधना विलीन हो जाएगी, तब तुम अचानक चौंक कर जागोगे, जैसे अंधेरे में अचानक किसी ने दीया जला दिया हो। उस दिन तुम खिलखिला कर हंसोगे कि मैं भी खूब पागल था! मैं जिसे खोज रहा था, वही मैं हूं। खोज-खोज कर खो रहा था।
जा सहजै साहब मिलै, सहज कहावै सोइ। सहजै सहजै सब गया, सुत वित काम निकाम।
और कबीर कह रहे हैं कि किनारे बैठे-बैठे, कुछ न करते, धीरे-धीरे सब गया।
छोड़ने से नहीं जाता। छोड़ने वाले को तो पकड़े ही रखता है। और जिस चीज को तुम छोड़ते हो, वह तुम्हें और जोर से पकड़ती मालूम पड़ती है। छोड़ने में ही कहीं भूल है।
छोड़ने का मनोविज्ञान क्या है? छोड़ने का मतलब हैः तुम जानते हो कि तुम जकड़े हो। तुम जानते हो कि तुम पत्नी के मोह में हो। तुम कहते होः कैसे छोड़ दें। और नासमझ तुम्हें मिल जाएंगेतरकीबें बतानेवाले, कि ऐसे छोड दो। पत्नी थोड़े तुम्हें पकड़े हुए है! उसने पकड़ा होता, तो छोडने की तरकीबें काम आ जातीं। तुमने ही पकड़ा है। अब तुम तरकीबें पूछ रहे हो! तुम भाग जाओ जंगल कोई समझाएगा जंगल चले जाओ। कोई कहेगाः मंदिर में बैठ जाओ। कोई कहेगाः आश्रम में बस जाओ। न देखोगे पत्नी को, न मोह उठेगा। आंखें बंद कर लो।
लेकिन कभी तुमने किसी चीज पर आंखे बंद करके देखी हैं? जिस चीज पर आंख बंद करो, वह और भी साफ होकर दिखाई पड़ने लगती है। इतनी सुंदर तो पत्नी कभी न थी, जितनी दूर जाकर मालूम पड़ेगी। इतना शरीर तो स्वर्ण जैसा कभी न था, जितना आंख बंद करके दिखाई पड़ेगा। पत्नी सपना हो जाएगी।
भागोगे कहां? क्योंकि मन के लिए न तो कोई दूरी है, और न कोई बाधा। तुम हिमालय पर बैठे रहो। मन के लिए कोई दूरी नहीं है घर से। कुछ मन को कोई ट्रेन थोड़े ही पकड़नी पड़ेगीकि तीन दिन लगेंगे, तब वह पत्नी के पास पहुंचेगा! उसे क्षण भी नहीं लगता। उसकी यात्रा बिल्कुल स्वतंत्र है। उस पर कोई बाधा नहीं है। तुम धन को छोड़कर भाग जाओगे, लेकिन जो मनधन को पकड़े था, उस मन को तुम कैसे छोड़ोगे?
छोड़ने का मनाविज्ञान भयभीत आदमी का मनोविज्ञान है। वह डरा हुआ है। और तुम डरते उसी से हो जिसे तुम अपने से ज्यादा ताकतवर मानते हो; नहीं तो तुम डरोगे ही क्यों? इसलिए सिर्फ डरपोक भागते हैं। भगोड़ा भयभीत है।
कबीर कहते हैंः सहजै सहजै सब गया। कबीर ने न तो पत्नी छोड़ी, न बेटा छोड़ा, न धंधा छोड़ा। कबीर घर में रहे। कबीर परम गृहस्थ हैं और उनसे बड़ा संन्यासी खोजना कठिन है। पत्नी है, बेटा है, घर-द्वार है। कपड़ा बुनते हैं, बेचते हैं। जुलाहे का काम है। सब काम वैसे ही चलता है। उसमें कोई फर्क नहीं हुआ।

लेकिन वे कहते हैंः सहजै सहजै सब गया, सुत वित काम निकाम। कुछ किया नहीं, ऐसे ही देखते रहे। धीरे-धीरे पाया कि देखते-देखते उलझनें खुलने लगीं। देखते-देखते क्योंकि जितनी दृष्टि साफ होती है, उतना ही मोह विलीन हो जाता है।
मोह अंधापन है। आंख साफ होती है, मोह खो जाता है। मोह सपना है। साक्षी भाव जगता है; सपना टूट जाता है। सुबह तुम जागते हो; जागते ही सपना टूट जाता है। सपने को तोड़ना तो नहीं पड़ता! जैसे-जैसे सहजता बैठती है, वैसे-वैसे, जहां-जहां राग था, मोह था, क्रोध था, लोभ थावे सब गिरने लगे।
सहजै सहजै सब गया, सुत वित काम निकाम। काम तो गया ही वासना तो गई हीनिष्काम तक चला गया। राग तो गया ही वैराग्य भी चला गया। यह थोड़ा समझने का सूत्र है।
जो आदमी छोड़ कर भागेगा राग तो छोड़ेगा, वैराग्य पकड़ जाएगा। यह कुछ फर्क
न हुआ बड़ा। गृहस्थी छूटी, संन्यास पकड़ गया! पहले गृहस्थी को पकड़े हुए थे, वह मोह था। अब संन्यास को पकड़े हुए हो, वह मोह है। पकड़ कायम है।
पहले एक बड़े मकान में रहते थे, उसकी पकड़ थी; तब अगर कोई कहता कि वृक्ष
के नीचे रुक जाओ, तो अपमान अनुभव होता। अब वृक्ष के नीचे रुकते हैं, और अगर कोई कहे कि मकान में आ जाओ, तो असंभव मालूम पड़ता है कि हम तो विरागी है; हम कैसे मकान में आ सकते हैं!
यह तो राग की पकड़ थी, अब विराग की पकड़ हो गई। पहले काम पकड़े थे, अब निष्काम ने पकड़ लिया। लेकिन पकड़ जारी है। मुट्ठी खुली नहीं, मुट्ठी बंद है।
और ध्यान रहेः उलटे की पकड़ तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती, क्योंकि सूक्ष्म है। एक आदमी धन पकड़ता है; और एक आदमी त्याग पकड़ता है। पहले वह धन इकट्ठा करता था और रात-दिन सोचता थाः यह ढेर कैसे बड़ा हो जाए। अब वह धन इकट्ठा नहीं करता, दान करता है। अब दान का ढेर लगा रहा है! यह दिखाई नहीं पड़ता। धन का ढेर दिखाई पड़ता था; वह प्रत्यक्ष था, वह संसार का था। अब वह दान का ढेर लगा रहा है!
एक सज्जन मुझे मिलने आए; दानी हैं। उनकी पत्नी ने कहाः मेरे पति को बस,
एक ही रस हैअब तक कोई एक लाख रुपया दान कर चुके हैं। पति ने पत्नी को हिलाया और कहाः एक लाख नहीं; एक लाख दस हजार। यह दान का ढेर लग रहा है। वह गिनती उसकी भी जारी है! यह आदमी पहले धन के ढेर को लगा रहा था; अब यह दान के ढेर को लगा रहा है। फर्क क्या है दोनों में? धन से हटा, धन से विराग पकड़ गया।
कबीर कहते हैंः सहजै सहजै सब गया, सुत वित काम निकाम। राग भी गया, विराग भी गया। अब न तो मैं गृहस्थ हूं और न संन्यासी हूं। यही संन्यास का लक्षण है। पहले तुम गृहस्थ थे, फिर संन्यस्त हुए गृहस्थ के विपरीत तो जहां विपरीतता है, वहां द्वंद्व है। जहां द्वंद्व है, वहां द्वैत है। जहां द्वैत है, वहां परमात्मा का प्रवेश नहीं। उसका प्रवेश तो सिर्फ अद्वैत अद्वंद्व की स्थिति में होता है।
तुम्हारा संन्यास अगर गृहस्थ के विपरीत है, तो सच्चा संन्यास नहीं है। इसमें एक छूटा, दूसरा पकड़ा। तुम्हारा संन्यास अगर द्वंद्व का विसर्जन है, तो परम संन्यास है।
काशी में जहां कबीर रहते थे। बड़ी खतरनाक जगह वे रहते थे। वहां संन्यासी ही संन्यासी हैं। और वे संन्यासी कहते थेः यह कबीर! यह भी कोई संन्यासी है। यह ज्ञानी है! यह जुलाहा? पत्नी, बच्चा सब कुछ; घर द्वारसब कुछ है। यह कैसा ज्ञानी है? यह कैसा ज्ञान है! हम सब छोड़ दिए हैं।
अस्मिता त्याग की भी निर्मित होती है; अहंकार उससे भी बन जाता है। और अहंकार गार्हस्थ है और निर-अहंकार भाव संन्यास है।
कबीर के संन्यास को देखना मुश्किल है। बुद्ध का संन्यास देखना बिल्कुल आसान है। अंधा भी देख लेगा; उसमें कुछ बड़ी प्रज्ञा की जरूरत नहीं है। कबीर का संन्यास बड़ा सूक्ष्म है। उसको देखना मुश्किल है। उसको सिर्फ आंखवाला ही देख पाएगा।

महावीर के संन्यास को देखने में क्या अड़चन है? अंधों ने देख लिया।
जिसने महावीर का संन्यास इसलिए समझा कि महावीर नग्न खड़े हो गए सब राज-पाट छोड़ दिया उसने संन्यास समझा ही नहीं। वह कबीर को देख कर कहेगाः यह कोई संन्यासी है? इसके सामने हम नहीं झुक सकते।
मैं नहीं देखता कि एक भी जैन कबीर के पास झुकने गया हो। असंभव। क्योंकि कबीर तो, वह कहेगा, हमारे जैसा गृहस्थ है। जैसे हम, वैसा वह। हममें और इसमें फर्क क्या है? फर्क सूक्ष्म है।
महावीर और तुममें फर्क साफ है, फर्क स्थूल है कि तुम कपड़े पहने हो, और महावीर नग्न हैं! कबीर भी कपड़ा पहने हुए हैं; अब फर्क क्या है? तुम्हारी पत्नी है; कबीर की भी पत्नी है; अब फर्क क्या है? तुम धंधा करते हो, कबीर भी धंधा करते हैं; फर्क क्या है? फर्क है। क्योंकि कबीर में काम भी गया, निष्काम भी गया; राग भी गया, विराग भी गया। कबीर वहां है जैसे एक नाटक जैसे एक अभिनय के हिस्से हैं।
सहजै सहजै सब गया, सुत वित काम निकाम। कुछ किया नहीं। यह बिना किए ही हुआ। तुम्हारे भीतर कोई एक ऐसा सूत्र है, जो बिना किए भी बहुत कुछ करता है। वह क्या सूत्र है? उस सूत्र को उपनिषद साक्षित्व कहते हैं। उसी सूत्र को कबीर सुरति कहते हैं। उसी को बुद्ध ने स्मृति कहा है राइट माइंडफुलनेस कहा है। उसी को महावीर ने विवेक कहा है।
एक सूत्र है तुम्हारे भीतर देखने का। इसे थोड़ा समझो। क्योंकि इस पर
सब कुछ निर्भर करेगा। यह सूत्र समझ में आया, तो सहज-योग समझ में आ जाएगा। एक चीज तुम्हारे भीतर सतत हो रही है, जो करनी नहीं पड़ती, जो तुम्हारे करने पर निर्भर नहीं है। वह है तुम्हारा साक्षित्व वह तुम दिन भर हो। भोजन करना पड़ता है। न करोगे, भूखे मर जाओगे। मनोवैज्ञानिक कहते हैंः श्वास भी लेनी पड़ती है। क्योंकि अगर तुम्हारे जीवन की सारी आशा छूट जाए, तो तुम श्वास भी न लोगे। एक श्वास बाहर जाएगी, तुम भीतर दूसरी क्यों लोगे! क्या प्रयोजन! क्या अर्थ! इसलिए जो आदमी निराश होता है, उसके जीवन की रेखा कम हो जाती है, उम्र कम हो जाती है। दूसरी श्वास को लेने में क्या सार! धीरे-धीरे तुम्हारी श्वास पर पकड़ खो जाएगी। तुम श्वास भी न लोगे। श्वास भी एक सूक्ष्म क्रिया है, जो तुम कर रहे हो।
भोजन न करो, मर जाओगे। श्वास न लो, जीवन चला जाएगा। लेकिन एक चीज तुम्हारे बिना किए हो रही है, जिसको तुम करो या न करो, जो होती रहती है; वह तुम्हारा स्वभाव है; वह क्रिया नहीं है, वह कृत्य नहीं है।
ध्यान रहे, जो भी कृत्य है, उससे तो विश्राम लेना पड़ेगा। अगर तुमने दो घंटे मेहनत की, तो फिर घंटे भर विश्राम करना पड़ेगा। दिन भर जागे, तो रात सोना पड़ेगा। तो जागना एक क्रिया है, थकाती है। क्रिया का लक्षण है कि वह थकाती है। और जब तुम थक जाते हो, तो विपरीत क्रिया करनी पड़ती है, ताकि थकान मिट जाए। जागते हो, सोना पड़ेगा। भूखे हो, भोजन करना पड़ेगा। गंदे हो, स्नान करना पड़ेगा। विपरीत से तुम्हें निश्चित ही अपने को फिर से भरना पड़ेगा। तो क्रिया द्वंद्व के बाहर नहीं ले जा सकती, क्योंकि क्रिया के साथ तुम चौबीस घंटे नहीं रह सकते। क्रिया को छ.ट्टी देनी पड़ेगी। इसलिए जानने वाले कहते हैं कि अगर तुम्हारा संतत्व क्रिया से आया है, तो तुम्हारे संतत्व में भी छुट्टी के क्षण होंगे। अगर कोई आदमी साधु क्रिया से है, तो उसको असाधु भी होना पड़े गालुक-छिप कर; क्योंकि छुट्टी देनी पड़ेगी।
जो चीज क्रिया से की जाती है, उसमें तुम थकोगे; उसको कितनी देर खींचोगे? उसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। अगर तुमने ब्रह्मचर्य को क्रिया बना लिया है, अगर वह सहज-योग नहीं है, तो कितनी देर ब्रह्मचारी रहोगे! छः दिन; फिर सातवें दिन?
और जब संत छुट्टी पर जाता है, तो बड़ा खतरनाक होता है। क्योंकि असंत तो आदि होता हैवहां रहने का, परिचित होता है। और रोज चुकता रहता है। संत इकट्ठा कर लेता हैऊर्जा को। इसलिए जब वह क्रिया में उतरता है, तो उसकी क्रिया बहुत खतरनाक होती है, विक्षिप्त होती है।
क्रिया से जो भी साधा है, उसे तुम चौबीस घंटे और सदा-सदा न साध सकोगे। उसे छोड़ना पड़ेगा; विश्राम जरूरी हो जाएगा। वह इतना बोझिल हो जाएगा कि तुम

क्या करोगे! फिर तुम्हारे भीतर क्या कोई एकाध सूत्र है; अगर है, तो ही सहज-योग हो सकता है। वह सूत्र साक्षी है।
तुम दिन में जगे। सुबह किसी ने गाली दी, तो क्रोध उठा; तुमने इस क्रोध
को देखा। फिर उसने माफी मांग ली; तो क्षमा उठी; तुमने इस क्षमा का देखा।
फिर धूप बढ़ी, गर्मी लगी, पसीना बहा। तुमने गर्मी देखी, तुम छाया में हट आए।
शांति हुई, शीतलता आई; तुमने शीतलता देखी।
दिन भर जागेफिर थक गए। फिर रात सोए, तो रात तुमने सपने देखे। सुबह उठ
कर तुमने कहा कि रात सपने ही सपने में बीती। कोई देखने वाला मौजूद रहा। सुबह तुमने उठ कर कहा कि रात बड़ी सुखद नींद आई। निश्चित ही तुम्हारे भीतर कोई सोया नहीं। नहीं तो पता कैसे चलता? किसको पता चलता? सुबह उठ कर जो कह रहा है कि रात बड़ी सुखद नींद आई; तुम्हारे जीवन के किसी कोने में कोई जागता रहा और रात भर देखता रहा। और यह जो देखने वाला तुम्हारे भीतर हर घड़ी काम कर रहा है, यह तुम्हारी कोई क्रिया नहीं है। इससे तुम कभी भी थकते नहीं हो; नींद में भी जब सब थक जाता है, तब भी यह जागा रहता है। दुख में, सुख में, होश में, बेहोशी तक में भी... । जब तुम बेहोशी के बाद उठते हो, तब तुम कहते हो, बड़ी देर तक बेहोशी चली। क्या हो गया था! बिल्कुल बेहोश हो गया था। बेहोशी को भी भीतर से कोई न कोई... ।
अगर कभी तुमने अनेस्थीसिया लिया हैआपरेशन के वक्त, तो डाक्टर तुम्हें अनेस्थीसिया देते वक्त कहता है कि अब तुम गिनती करो; एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात कहते जाओ; क्योंकि डाक्टर देखता है कि जैसे ही अनेस्थीसिया का प्रभाव शुरू होता हैतुमने कहाः एक, दो, तीनतुम्हारी आवाज धीमी, मंदी और लथड़ाई हुई होने लगती है। चा... र तुम ऐसे कहते हो, जैसे कि बहुत समय लगा। पां... च और भीतर तुम भी सुनते हो कि आवाज लथड़ा रही है।
भीतर तुम भी सुनते हो कि अब तुम कह रहे हो, लेकिन बड़ा समय लग रहा है।
पांच... छह... सात... अब तुम सोचते हो कि आठ कहें, लेकिन आठ नहीं आ रहा हैभीतर।
लेकिन कोई जागा हुआ देख रहा है कि गिनती में फर्क पड़ गया है। फिर तुम देखते हो कि सब खो गया; वह भी तुम देखते हो कि सब खो गया।
फिर तुम होश में आते हो, तब फिर यह प्रक्रिया दोहरती है। धीरे-धीरे तुम्हें दिखाई-सुनाई पड़ता है कि टांके लगाए जा रहे हैं। आवाज सुनाई पड़ती है; टांके लगने का धीमा सा बोध होता है। कैंची उठाई जा रही है; सामान रखा जा रहा है। नर्स, डाक्टर आस-पास घूम रहे हैं। उस सबका तुम्हें धीरे-धीरे बोध होना शुरू होता है। फिर तुम आंख खोलते हो।
होश से बेहोशी तक जाने मेंफिर बेहोशी मेंऔर बेहोशी से होश तक आने में कोई एक तत्व सदा ही बना रहता है; वही तुम्हारा साक्षीभाव है; वही तुम्हारी आत्मा है; वही तुम्हारी चेतना है।
तो कबीर कहते हैंः सहजै सहजै सब गया, सुत वित काम निकाम। बस, देखते रहे, कुछ किया नहीं। और देखते-देखते ही सब चला गया। न बेटा अपना रहा, न पत्नी अपनी रही; न राग अपना रहा, न विराग अपना रहासब गया।
एकमेक ह्वै मिली रह्या, दास कबीरा नाम। बस, एक बचासब गया और एक बचा। सब द्वंद्व, अनेकता, द्वैत खो गया; एक बचा।
जो कछु आवै सहज में, सोइ मीठा जान। कबीर कहते हैंः जो सहज जा जाए, उसी
को जानना मधुर। कडुवा लागै नीम-सा, जामें ऐंचातान। और जो खींचतान के आए, वह नीम जैसा कडुवा लगेगा।
अगर तुमने किसी तरह उलटे-सीधे खड़े होकर, नाक-आंख बंद करके परमात्मा को
पा भी लिया, तो वह जहर होगा, अमृत नहीं। तुम्हारे करने से जो मिलेगा, वह जहर होगा। तुम्हारे करने से जो मिलेगा, वह मृत्यु जैसा होगा; क्योंकि जीवन बिना तुम्हारे किए मिला है।
तुमने क्या किया है जीवन को पाने के लिए? तुमने कैसे जीवन अर्जित किया? तुम होयह कैसे घटा? तुम्हारे कौन से कृत्य तुम्हें जीवन तक ले आए? तुम्हारे होने के लिए तुमने क्या कमाई की है? जीवन घटा है; तुम्हारा कोई कृत्य नहीं है। हां, मृत्यु के लिए तुम जो कुछ भी करोगे, उससे मृत्यु आएगी। जो कुछ आवै सहज में, सोइ मीठा जान। और कबीर कहते हैंः धर्म मिठास देगाअगर सहज आए। नहीं तो धर्म भी कडुवी नीम जैसा होगाअगर साध-साध कर आए।

तुम जाओ, देखो आश्रमों में, तीर्थस्थलों में उन लोगों को, जिन्होंने कठिन श्रम करके कुछ पाया है। तुम उनके आसपास नीम से भी ज्यादा कडुवाहट पाओगे। उनकी मौजूदगी मधुर न होगी। उनका स्वाद तिक्त होगा, जहरीला होगा। इसमें उनका कसूर नहीं है। उन्होंने खींचातान की है। और जितनी खींचातान करते हो, जीवन उतना मृत हो जाता है। जितनी तोड़-मरोड़ करते हो, उतना ही जीवन का जो स्वाद है, वह खो जाता है।
तुम अपने अनुभव में समझने की कहीं कोशिश करो। तुम्हारा किसी से प्रेम
हो जाएस्त्री से, पुरुष से, मित्र सेकिसी से भी, तो क्या तुमने कभी ख्याल किया है कि प्रेम सहज घटता है! घट जाता है, तब उसकी मिठास है। और फिर घटता नहीं, मांग होती हैऐंचातान होती है। तुम कहते होः तू मेरी पत्नी है, मुझे प्रेम दे। तुम मेरे पति हो, मुझे प्रेम दो। यह तुम्हारा कर्तव्य है। और एक कलह शुरू होती है। ऐंचातान शुरू होती है कि प्रेम दिया जाना चाहिए। फिर चुंबन भी नीम जैसा कडुवा हो जाता है, फिर आलिंगन भी जहरीला हो जाता है; क्योंकि कर्ता आ जाता है। और जहां कर्ता आया, वहां जहर आया। तब करते हो तुम। जैसे ही तुम करते हो, वैसे ही सब स्वाद खो जाता है।
प्रेम का तुम्हें अनुभव होगा, इसलिए उसका उदाहरण लेता हूं। प्रार्थना
का तुम्हें कोई अनुभव नहीं। मगर तुम प्रेम को समझ जाओ, तो वही प्रार्थना का सूत्र है। तुम्हारी प्रार्थना भी कडुवी हो गई है; क्योंकि वह भी तुम भय के कारण करते हो। वह भी सहज नहीं है। डरते हो, नरक... ।
मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र मर रहा था। मित्र धार्मिक था। गांव का
जो मौलवी था, बाहर गया था। तो मुल्ला ही एक, गांव में पंडित जैसा आदमी था, वही बचा था; उसको बुलाया आखिरी प्रार्थना के लिए।
तो नसरुद्दीन ने उस आदमी को गौर से देखा और कहाः घड़ी तो आखिरी आ गई, इसलिए कोई भी मौका खोना ठीक नहीं। उसने जोर से कहाः हे अल्लाह! हे शैतान! उस आदमी ने कहाः क्या मतलब? उसने कहाः दोनों पार्टियों से निवेदन कर लेना ठीक है। क्या पता, तुम कहां जाओ! और यह भी पक्का नहीं है कि दोनों में कौन सा... । इसलिए यह कोई... यह अवसर ऐसा नहीं है कि दांव पर लगाओ। आखिरी वक्त है; हम दोनों से प्रार्थना किए देते हैं। जहां भी जाओगे, वहीं तुम्हारे सुख का इंतजाम रहेगा।
तुम्हारी प्रार्थनाएं भी ऐसे ही गणित पर खड़ी हैं। तुम्हारे मन में कोई प्रेम नहीं जन्मा है। परमात्मा की तरफ तुम्हारा प्रेम ऐसा नहीं जन्मा है, जैसा कभी तुम एक स्त्री के प्रेम में गिर गए थे... । ऐसी कोई घटना नहीं घटी है। यह प्रेम कोई पुकार नहीं है।
डरे हुए हो। नरक का भय है। क्योंकि सदियों से समझाया जा रहा है कि सड़ोगे नरक में। स्वर्ग का प्रलोभन भी है मन में। कि अगर उसकी प्रार्थना कर ली; पता नहीं हो, शायद हो। तुम्हारी प्रार्थना भी शायद है! तो अपने को भी कोई थोड़ी ठीक जगह मिल जाएगी।
इस संसार ने वैसे ही काफी कष्ट झेल लिया है। अब और आगे झेलने की हिम्मत भी नहीं है। इसलिए मार्क्स कहता है कि धर्म गरीब के लिए अफीम का नशा है, क्योंकि इस संसार में उसके पास कुछ नहीं है। तो इसी अफीम को पी रहा है कि अगले संसार में सब कुछ होगा। अपने मन को राजी कर रहा है कि जो यहां महलों में रह रहे हैंवे नरक में सड़ेंगे। और मैं तो झोपड़े में रह रहा हूं, इसलिए स्वर्ग में महल मुझे मिलने वाला है। मैं दीन, गरीब हूं; परमात्मा मुझ पर करुणा करेगा। ये दुष्टये नरक में सड़ाए जाएंगे।
तो वह प्रार्थना चाहे गरीब की हो या अमीर की होया तो लोभ पर खड़ी है। या
भय पर खड़ी है।
प्रेम नहीं घटा है; फिर बड़ी ऐंचातान होती है। अगर तुम भयभीत हो, तो भी तुम चेष्टा करते हो कि किसी न किसी तरह परमात्मा को पा लें। अगर तुम लोभ से भरे हो, तो भी चेष्टा करते हो।
भयभीत और लोभ से भरा हुआ आदमी निश्चेष्ट नहीं हो सकता। निश्चेष्ठ तो वही हो सकता है, जो प्रेम से भरा है।
जब तुम किसी व्यक्ति को सच में ही प्रेम करते हो कभी-कभी ऐसी घटना घटती हैएक क्षण को भी घट जाए, तो भी जीवन का अर्थ तो समझ में आ जाता है। फिर

खो भी सकता है। क्योंकि कोई ऐसी बात भी नहीं है। कभी तुम एक ऊंचाई पर होते हो चेतना की, तब प्रेम घटता है। उस ऊंचाई पर सदा नहीं रह पाते; प्रेम खो जाता है।
लेकिन अगर एक बार भी घटा है, तो जब तुम प्रेम में होते हो, तब तुम क्या करते हो? तब सब चेष्टा खो जाती है। दो प्रेमी एक दूसरे का हाथ हाथ में लिए नदी के किनारे ही बैठे रहते हैं; कुछ भी नहीं करते। तुम्हें लगेगा कि इनका दिमाग खराब है।
तुम दो पति पत्नी को पास बैठे देखो। वे कुछ न कुछ करते हुए नजर आएंगे।
नहीं तो बातचीत ही करेंगे, क्योंकि एक दूसरे को बरदाश्त करना मुश्किल है।
बातचीत में समय व्यतीत हो जाता है। इधर-उधर की चर्चा करेंगे।
पति पत्नी मेंजब आपस में प्रेम खो जाता है, तो वे हमेशा पसंद करते हैं
कि कोई मेहमान घर आ जाए, कोई मिलने-जुलने वाला आ जाए, कोई तीसरा मौजूद हो।
उस तीसरे की वजह से दोनों में रस आ जाता है। खुद दोनों में कोई भी रस नहीं रह जाता है।
परमात्मा के साथ भी तुम अकेले नहीं होते; पुजारी को बीच में बुला लेते हो; पुरोहित को खड़ा कर लेते हो। वह तीसरा है। प्रेम तो कुछ है नहीं! इस तीसरे के माध्यम से चर्चा होती है। और यह व्यवसायी है; इसका कुछ ईश्वर से लेना-देना नहीं है।
जब दो व्यक्ति प्रेम में होते हैं, तो चुपचाप बैठे रहते हैं। सिर्फ बैठना ही इतना सुखद होता है कि कुछ करके उस सुख को नष्ट करना नहीं चाहते हैं। सिर्फ पास होना ही इतना बहुमूल्य होता है कि कुछ करने सेहिलने से, वह बहुमूल्य क्षण कही छिटक न जाए हाथ से... । वह पारे की तरह है। छिटक गया, गिर गया, बिखर गयातो बात करते नहीं, चुपचाप बैठे रहते हैं।
प्रेमी बोलते तक नहीं। वे यह भी नहीं कहते कि मुझे तुमसे बहुत प्रेम है। क्योंकि यह भी बकवास है; क्योंकि जब प्रेम है, तो यह बकवास है। यह तो तभी शुरू होती है बातचीत जब प्रेम खो जाता है। तब एक दूसरे को भरोसा दिलाना पड़ता है कि बहुत प्रेम है। भरोसा हम दिलाते ही तब हैं, जब बात समाप्त हो जाती है।
जब परमात्मा का प्रेम घटित होता हैसहजता सेकिसी भय से नहीं, किसी लोभ
से नहीं, किसी चेष्टा से नहीं, तो कोई आदमी जीवन को देखते-देखते-देखते दृष्टि को उपलब्ध हो जाता है। दृष्टि उसकी दर्शन बन जाती है।
सहजै सहजै सब गया, सुत वित काम निकाम।
एकमेक ह्वै मिली रह्या, दास कबीरा नाम।
जो कछु आवै सहज में, सोइ मीठा जान।
कडुवा लागे नीम-सा, जामें ऐंचातान।
प्रेम को भी तुम जहर कर लेते हो, जैसे ही तुम ऐंचातान शुरू करते हो।
जैसे ही मांग करते हो कि होना चाहिए प्रेम। तू मेरा बेटा है। बेटे का कर्तव्य हैः प्रेम करो। लेकिन कोई दुनिया में कर्तव्य से प्रेम कर सका है कभी! और कोई चेष्टा करेगा प्रेम करने की तो प्रेम झूठा ही हो जाएगा।
घृणा भी बेहतर, अगर सच्ची हो। प्रेम भी बदतर, अगर झूठा हो। सच्चे में
कम से कम सचाई तो है। दुश्मन बेहतर, अगर सच्चा हो; मित्र बेहतर नहीं, अगर झूठा हो। क्योंकि सचाई से कोई कभी नहीं भटका; झूठ से ही लोग भटकते हैं। अगस्तीन की प्रार्थनाओं में एक वचन है कि हे परमात्मा, शत्रुओं की फिकर तो मैं कर लूंगा; मेरे मित्रों की फिक्र तू करना। शत्रुओं से मैं निपट लूंगा, मित्रों से मैं न निपट पाऊंगा। उनका तू ध्यान रखना। प्रार्थना ठीक है। क्योंकि मित्रता भी हमारी एक चेष्टा है।
हमारे सभी संबंध चेष्टा से हैं। जहां चेष्टा है, वहां बुद्धि होती है। हृदय के सभी संबंध निश्चेष्ट होते हैं। इसलिए प्रेम अनहोनी घटना है। वह घटती है, तो घटती है; नहीं घटती है, तो नहीं घटती है। और घटती है, तो क्यों का कोई उत्तर नहीं है।
और तुम जो भी बातें खोजते हो, वह सब बकवास है। तुम कहते होः यह स्त्री बहुत सुंदर थी, इसीलिए प्रेम हो गया। लेकिन यह स्त्री सुंदर थी तुमसे प्रेम नहीं हुआ था, तब भी बहुतों को मिली और किसी को प्रेम नहीं हुआ। तुम

कहते होः इस जैसी बुद्धिमती स्त्री नहीं है। लेकिन तुम पहले नहीं हो, जो इसकी बुद्धि का परखे हो। और भी लोग थे। किसी को इसमें बुद्धि न दिखाई पड़ी।
और कुछ दिन बाद तुम्हें भी दिखाई न पड़ेगी। पर आज दिखाई पड़ रही है।
तुम जो कारण बताते हो, वे कारण नहीं है। वे सिर्फ युक्तियां हैं, जिनसे तुम प्रेम की अनहोनी घटना को समझने की कोशिश कर रहे हो। अनहोने को तुम जल्दी से तर्कयुक्त कर लेना चाहते हो।
अनहोने के साथ बड़ी तकलीफ है, क्योंकि तुम्हें लगता है कि मेरे बाहर घट रहा हैमेरे नियंत्रण के बाहर है। तुम चाहते हो नियंत्रण; नियंत्रण के भीतर लाने के लिए तुम व्याख्या करते हो। तुम कहते होः इसकी नाक ऐसी है, इसकी आंख ऐसी है, इसकी देह ऐसी है, इसलिए मैं प्रेम में पड़ गया।
तुम प्रेम के लिए कारण खोज रहे हो, वहीं तुम भूल कर रहे हो। प्रेम अकारण है। और जैसा प्रेम अकारण है, वैसे ही प्रार्थना अकारण है।
कारण का संबंध तो बुद्धि का व्यवसाय है। तुम जब बाजार में कोई चीज खरीदते हो, तो कारण होता है। प्रेम को तुम खरीद नहीं सकते; यह तुम्हारे हाथ में नहीं है। यह घटता है। यह तुमसे पार है; तुमसे कुछ बड़ा है। घट जाता है, तभी तुम्हें पता चलता है। तब रोआं-रोआं इससे भर जाता है। लेकिन तुम इसके मालिक नहीं हो।
और आदमी के अहंकार को इससे बड़ी चोट लगती है। जहां-जहां वह पाता है कि मैं मालिक नहीं हूं, वहां-वहां वह चेष्टा करता है कि मालिक मैं हूं। तो वह समझाता है। इसलिए अहंकारी व्यक्ति प्रेम नहीं कर पाते; क्योंकि अहंकारी को सदा यह डर लगा रहता है कि अपने से बड़ी घटना को कभी नहीं घटने देना है। जिसके सामने तुम छोटे हो जाओ एक तूफान बहे और तुम एक पत्ते हो जाओहिलते हुए; ऐसा कोई काम नहीं करना।
तो अहंकारी व्यक्ति तूफानों में जाता ही नहीं है, जहां उसे पता चले कि मैं एक पत्ता हूंकंपता हुआ, मेरी कोई सामर्थ्य नहीं; मैं असहाय हूं। अहंकारी व्यक्ति छिप कर रहता है। और छिपने का एक ही उपाय हैमरने के पहले मर जाना। अन्यथा जीवन सब तरफ तूफान की तरह है। वहां प्रेम भी घटता है; वहां ज्ञान भी घटता है; वहां प्रार्थना भी घटती है। वे सभी हमसे बड़े हैं। तुम्हारी चेष्टा से वे नहीं घटते। तुम्हारी चेष्टा से तो जो भी घटेगा, वह तुमसे छोटा होगा। इस गणित को सदा याद रखना।
कोई मूर्तिकार अपने से श्रेष्ठ मूर्ति नहीं बना सकता। कैसे बनाएगा? कोई चित्रकार अपने से बड़ा कोई चित्र नहीं बना सकता। पिकासो लाख उपाय करे; कितना ही बड़े से बड़ा चित्र हो; पिकासो से बड़ा नहीं हो सकता। कैसे होगा? तुम जो भी बनाओगे, वह तुमसे बड़ा न होगा।
इसलिए तुम्हारी प्रार्थना दो कौड़ी की है; उसका कोई मूल्य नहीं है। वह घटनी चाहिए। कंठस्थ करके तुम उसे ने कर सकोगे। मंदिर तुम्हारा जाना व्यर्थ है।
एक दिन तुम अचानक पाओगे, कोई खींचे लिए जा रहा है। पैर मंदिर की तरफ बढ़ रहे हैं। तुम लाख बाजार की तरफ जाना चाहो, तो नहीं जा सकते। एक तूफान ने तुम्हें पकड़ लिया है। तुम एक अंधड़ पर सवार हो गए हो। अब तुम एक कंपते हुए पत्ते हो असहाय। और विराट तुम्हारे चारों तरफ है। उस वर्तुल के बाहर तुम्हारे जाने का कोई उपाय नहीं है। तुम कुछ न कर सकोगेसिवाय बहने के।
वह जो आदमी बैठता हैसाक्षी होकर, उसे यह रहस्य पता चल जाता है किजीवन तेरे बिना बहा जा रहा है। तू व्यर्थ परेशान हो रहा है। तेरे कर्तृत्व की कोई भी जरूरत नहीं है। तेरे होने, न होने से भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। तू अकारण ही कर्ता बन रहा हैजब कि जीवन में सभी चीजें घट रहीं हैं। तू सिर्फ देखता रह।
कर्ता जो बन जाता है, वह गृहस्थ है। द्रष्टा जो बन जाता है, वह संन्यासी है।
द्रष्टा सहज भाव है, उसके लिए कुछ किया नहीं जा सकता। सिर्फ देखते रहो। देखने के लिए क्या करना है? देखने के लिए कुछ भी नहीं करना है। देखना तुम्हारा स्वभाव है।
जो कछु आवै सहज में, सोइ मीठा जान। कडुवा लागे नीम-सा, जामें ऐंचातान।

किसी चीज में ऐंचातान मत करना। अगर प्रेम खो जाए, तो ऐंचातान मत करना; स्वीकार कर लेना। हमारे हाथ के बाहर घटा था, हमारे हाथ के बाहर है खो गया, खो गया।
फकीर जुन्नैद के घर बेटा पैदा हुआ। बड़ा प्यारा बेटा था। दूर-दूर के गांव तक खबर पहुंच गई। ऐसा सुंदर बच्चा कभी देखा नहीं गया था। कुछ बात ही अनूठी थी। और फिर बच्चा कुछ ही महीने का हुआ और मर गया। जब लोग जुन्नैद के पास आए थेपहली दफाबेटे की प्रशंसा लेकर, तो जुन्नैद ने ऊपर देखा था और कहाः सब उसका है। न जुन्नैद प्रसन्न दिखाई पड़ाजब बेटा हुआ था। और न उदास दिखाई पड़ा जब बेटा मर गया।
लोगों ने कहाः जुन्नैद, इतना प्यारा बेटा खोकर तुम दुखी नहीं हो रहे हो? जुन्नैद ने कहाः हमारी सामर्थ्य के बाहर था जिसका आना, उसका रुकना हमारी सामर्थ्य के भीतर नहीं। जितनी देर रुका, उसका धन्यवाद है। जिसने भेजा, उसने वापस ले लिया। हम बीच में कौन हैं? हम अकारण ही प्रसन्न और दुखी, उदास और सुखी हों, वह हमारे हाथ में है। लेकिन उसमें अर्थ नहीं है। वह सब व्यर्थ है।
जिसने दिया था, उसने वापस बुला लिया। देने में उसकी कृपा थी, तो बुलाने में भी उसकी कोई कृपा होगी। यह वही समझे; हम इस चिंता में क्यों पड़ें! तुम जब आए थे, तब भी मैंने ऊपर देखा था। अब भी मैं ऊपर देख कर ही उत्तर दे रहा हूं। मैं बीच में खड़ा नहीं हूं।
जब प्रेम खो जाए, तो स्वीकार कर लेना कि खो गया; तब खींचना मत। सारी पृथ्वी प्रेम की लाशों से भरी है। जहां कभी झलक मिली थी, वहां अब कुछ भी नहीं है। लेकिन तुम कभी स्वीकार नहीं करते कि वह खो गया है। तुम खींचे चले जा रहे हो। बड़ी ऐंचातान है। नहीं हैउसको भी माने चले जा रहे हो। और चेष्टा कर-करके जमाए जाते हो।
कभी तुम नाचते हुए घर आए थे; अब पैर का नाच खो गया है। लेकिन फिर भी तुम दौड़ते हुए घर आते हो; उससे सिर्फ तुम थकते हो। नाच थकाता नहीं है, व्यक्तित्व का खिलाता है। और जब तुम जबरदस्ती चलते हुए आते हो, तो एक बोझ हो जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन को उसकी पत्नी ने अपने मायके भेजा था। कुछ जरूरी समाचार था, लेकर जल्दी ही लौटने को कहा था। दो महिने तक उसका कोई पता न चला; दो महिने बाद एक आदमी ने उसे गांव के बाहर देखा कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने जूते उतारकर हाथ में ले रहा है। जूते उसने हाथ में ले रहा है। जूते उसने हाथ में लेकर भागना शुरू किया एकदम गांव के भीतर। उस आदमी ने कहाः क्या मामला है नसरुद्दीन? नसरुद्दीन ने कहाः वैसे ही काफी देर हो गई है। अब और देर न करवाओ। पत्नी वैसे ही नाराज हो रही होगा।
गांव के बाहर से जूते हाथ में लेकर दौड़ शुरू हो जाती है। वह दौड़ झूठी है; वह सिर्फ दिखावा है। और जितना तुम दिखावा कर लोगे, उतना ही तुम दिखावा कर लोगे, उतना ही तुम बोझ से भर जाओगे।
तुम्हारे सिर पर दिखावे का वजन बढ़ता जाता है। तुम जो इतने दबे-दबे दिखाई पड़ते होतुम्हारे दिखावे के कारण। तुम हल्के हो जाओ, अगर तुम दिखावे को उतारकर रख दो और तुम स्वीकार कर लो कि जीवन के सामने तुम असमर्थ हो। प्रेम घटा था, अब नहीं है। फिर घटेगा ठीक। नहीं घटेगा तुम्हारे हाथ में नहीं है। यह प्रेम कोई बिजली का स्विच नहीं है कि तुम दबाओ आ जाए; तुम दबाओ बुझ जाए।
यह प्रेम तुमसे बड़ा है। और तुमसे बड़ा जो भी है, उसे तुम नहीं बुला सकते। इसलिए परमात्मा को बुलाने का तो कोई भी उपाय नहीं है। तुम सिर्फ प्रतीक्षा कर सकते हो। प्रतीक्षा ही एकमात्र प्रार्थना है। तुम बैठ कर धैर्य रख सकते हो कि जब उसे आना होगा, तब वह आ जाएगा।
नहीं, कोई ऐंचातान नहीं की जा सकती। सहज मिलै सो दूध सम, मांगा मिलै सो पानि। कह कबीर वह रक्त सम, जामें ऐंचातानि।
सहज मिलै सो दूध सम... । जो सहज मिल जाए, वही तुम्हें पुष्ट करेगा इसलिए दूध। जो सहज मिल जाए, वहीं तुम्हें भरेगा इसलिए दूध। जो सहज मिल जाएउससे

ही तुम शक्तिशाली होओगे इसलिए दूध। जो सहज मिल जाए, वही तुम्हारा जीवन बनेगाइसलिए दूध।
मांगा मिलै सो पानि... और जो मांग के मिलेमांग करनी पड़े, वह तुम्हें पुष्ट नहीं करेगा; वह तुम्हारे जीवन का भोजन नहीं बनेगा; वह तुम्हें जीवन नहीं देगा; वह सिर्फ धोखा होगा। पीओगे तुम पानी और समझोगे कि तुम दूध पी रहे हो। और वह धोखा खतरनाक है।
कह कबीर वह रक्त सम, जामें ऐंचातानि। और जो छीन-झपटकर मिले, वह तो रक्त
हो गया; वह तो पीने योग्य भी न रहा; वह पानी भी न रहा। और ये तीन ही दशाएं हैं।
क्या परमात्मा से तुम ऐंचातान करके जीवन के सत्य को पा लेना चाहते हो? जैसा कि हठयोगी कर रहे हैं। वह ऐंचातान है। कबीर उसको ऐंचातान कहते हैं वह जो हठयोगी कर रहे हैं कांटे पर लेटे हैं, धूप में खड़े हैं, वर्षों से सोए नहीं हैं। वे जबरदस्ती कर रहे हैं। वे छीन-झपट कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैंः तुझे देना ही पड़ेगा।
वह ऐसे ही है, जैसे तुम्हारे दरवाजे पर कोई आदमी खड़ा है, और वह कहता हैः हम हटेंगे न, धूप में खड़े रहेंगे, भूखे खड़े रहेंगेदेना ही पड़ेगा। तुम घर के भीतर भी चले जाओ, तो भी ऐंचातान मालूम पड़ती है कि वह आदमी खड़ा है। वह चिल्ला रहा है, वह रो रहा है, वह छाती पीट रहा है। तुम खाना भी नहीं खा सकते, विश्राम भी नहीं कर सकते। वह दरवाजे पर खड़ा ही है। उससे जब तक छुटकारा न हो, तब तक तुम शांति से नहीं जी सकते।
हठयोगी परमात्मा के दरवाजे पर यही कह रहा है। वह कह रहा हैः हम इतना उपद्रव मचाएंगे... ।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मसजिद जा रहा था और एक भिखारी ने उससे कहाः नसरुद्दीन, मैं बड़ी तकलीफ में हूं। ऐसे मैं भिखारी हूं, मगर अब क्या करूं! लड़की बड़ी हो गई है, उसकी शादी करनी है। तीस दीनार भी मिल जाएं, तो मेरा काम हो जाए। कोई बड़ी भारी शादी भी नहीं करनी है, लेकिन इतना तो लग जाएगा। भिखारी के ही लड़के से करनी है; लेकिन फिर भी थोड़ा बैंड-बाजा वह तो करना ही पड़ेगा। और मुझे तो एक पैसे से ज्यादा कोई कभी देता नहीं है। बड़ी मुश्किल है। लड़की जवान हो गई, वह कब तक रुकेगी? और जो मिलता है, वह तो खाने-पीने में खर्च हो जाता है, जुड़ नहीं पाता है। कुछ करो। नसरुद्दीन ने कहाः तू ठहर यहीं।
और नसरुद्दीन ने मसजिद के सामने जोर-जोर से चिल्लाना-चीखना और लोटना शुरू कर दिया। तो मसजिद में जो भी लोग आए थेनमाज पढ़ने, वे सब परेशान हुए। और उन्होंने कहाः भई, यह क्या उपद्रव मचा रखा है! तुम प्रार्थना करने दोगे कि नही? नसरुद्दीन ने कहाः तीस दीनार जब तक न मिल जाएं... । और वह चिल्लाता ही रहा, चीखता ही रहा। आखिर मौलवी ने कहाः भई, इतने लोग हैंतीन सौ आदमी के करीब आए हैं, थोड़ा-थोड़ा भी पैसा दोगे, तो झंझट मिटेइस आदमी से। और यह छोड़ने वाला नहीं है। और अगर यह रोज आने लगा और अगर इसकी आदत हो गई और इसे और रस आने लगा, तो हम बहुत झंझट में पड़ जाएंगे।
तीस दीनार नसरुद्दीन को मिले। उसने उन्हें भिखारी को दिए और भिखारी
से कहाः यह हठयोग है। ये लोग सहज माननेवाले नहीं है। ऐंचातान!
परमात्मा के दरवाजे पर कुछ लोग हठयोग कर रहे हैं। कबीर उनके बड़े विरोध में हैं। मिल भी जाएगारक्त सम। न; उसमें मजा ही खो गया। जो इतने उपद्रव से मिला, उसमें कोई अर्थ ही न रहा। परमात्मा भी मिल जाएगा, तो जीवन में नृत्य न आएगा। वह आ भी जाएगा, तो भी समाधि न आएगी। वह मरा मराया होगा। वह जबरदस्ती, खींचातान की गई है। वह ऐसा ही होगा, जैसे गर्भपात हो जाए। संन्यासी के जीवन में, साधक के जीवन में भी परमात्मा का गर्भपात हो सकता है। वह ऐंचातान होगी, वह जबरदस्ती होगी। मरी हुई लाश पैदा होगी। देखने को लगेगा कि बच्चा पैदा हुआ है, लेकिन वह मरा हुआ पैदा होगा।
फिर दूसरे वे लोग हैं, जो मांग रहे हैं। प्रार्थना कर रहे हैं, पूजा कर रहे हैं। यह दा, वह दो। वे हठयोगी नहीं हैंन कांटों पर सो रहे हैं, न लोट-पोट कर रहे हैं, न शीर्षासन कर रहे हैं, उलटे-सीधे काम भी नहीं कर रहे हैं;

लेकिन मांग लगाए हुए हैं। मंदिर उनका मांग-गृह है, जहां जाकर वे अपनी सब मांगे पेश कर देते हैं। लिस्ट उनके मन में तैयार है!
प्रार्थना तो सिर्फ स्तुति है, खुशामद है; वह ब्राइबरी है; वह तो तरकीब है। जिस तरकीब को संसार में उन्होंने सीखा है, उसी तरकीब का उपयोग वे परमात्मा के लिए कर रहे हैं। वे कह रहे हैंः तू परम है। तू महान है। तू पतित-पावन है, हम पापी हैं। जैसे कि उस पर वे बड़ी कृपा कर रहे हैं! कि जैसे आपका बड़ा अनुग्रह है कि आप पापी हैं! और अब यह उसका कर्तव्य है कि आप पर कृपा करे। और नहीं तो फिर राम, रहीम नहीं; फिर वह रहमान नहीं, फिर वह महा करुणावान नहीं, वह दो कौड़ी का है। आप एक मौका दे रहे हैं उसकाेसिद्ध करने का कि तू रहीम है, रहमान है, करुणावान है, तू दयालू है सिद्ध कर। यह हम पाप करके आ गए हैं, अब तू दया करके सिद्ध कर। यह एक मांगने वाला है; भिखारी है। तुम्हारी प्रार्थना भिखारी की प्रार्थना न हो। क्योंकि मिल भी जाएगा,
तो वह पानी होगा; वह तुम्हें पुष्ट न करेगा; क्षुद्र ही होगा। भिखारी मांग भी क्षुद्र ही करता है।
मांगोगे भी क्या तुम? तुम्हारी क्षुद्रता से ही तुम्हारी मांग आएगी। कोई धन मांगेगा। कोई मकान मांगेगा। कोई बेटा मांगेगा। कोई अदालत में मुकदमा जीत जाऊंयह मांगेगा। तुम मांगोगे क्या? और यह मिल भी जाएगा, तो इससे क्या जीवन पुष्ट होने वाला है? तुम प्रार्थना को भी दो कौड़ी में बेच दोगे।
कहा जाता है कि जीसस को जुदास ने तीस रुपए में बेचा। बड़ी कठिन बात है। क्योंकि ज्यादा पैसे मिल सकते थे! जीसस जैसे आदमी को बेचना और तीस रुपये? सस्ते में बेच दिया।
सदा से ईसाइयत के सामने सवाल रहा है कि यह बात सच है कि कपोल-कल्पित है। क्योंकि जीसस के तो बहुत पैसे मिल सकते थे!
एक ईसाई साधक मुझसे मिलने आया था और उसने कहा कि यह बात समझ में नहीं आती कि जुदास वर्षों तक जीसस के पास रहाउनके अनुयायियों में एक खास अनुयायी था। और सबसे ज्यादा पढ़ा-लिखा था। बाकी जितने ग्यारह और उनके विशेष अनुयायी थे, सब बेपढ़े-लिखे गंवार थे। जुदास ही उनमें सबसे ज्यादा पंडित और कुशल था। और इस आदमी ने सिर्फ तीस रुपए में बेच दिया तीस चांदी के टुकड़े?
तो मैंने उनको कहा कि यह हम रोज ही कर रहे हैं। वह कहानी तो केवल प्रतीक है। जिस प्रार्थना से परमात्मा मिल सकता है, उसको हम तीस रुपये में बेच रहे हैं!
मांगनेवाला ज्यादा मांग ही क्या सकता है? उसकी बुद्धि कितनी है? मांग
ही क्षुद्रता से उठती है। और फिर जुदास पंडित था। और पंडित से बुद्धू आदमी धर्म के जगत में खोजना मुश्किल है। क्योंकि वह शब्दों से जी रहा है। वह समझ ही नहीं पाता। उसने तो यही सोचा होगा कि तीस रुपये भी मिले, तो काफी मिले। कौन देता है आजकल आदमी के तीस रुपये! हम भी वही कर रहे हैं।
जो आदमी मांगता हुआ खड़ा है परमात्मा के द्वार पर, वह पानी पा लेगा; जहां से दूध मिल सकता था, वहां से वह पानी लेकर लौट आएगा। उसने खुद ही खो दिया अवसर। सहज मिलै सो दूध सम, मांगा मिलै सो पानि। वह कबीर वह रक्त सम, जामें ऐंचातानि।
और ये तीन ही तरह के लोग हैंउस द्वार पर; एकजो मांगता नहीं है, जिससे परमात्मा ही पूछता हैजो प्रतीक्षा करता है। और एकजो मांगता है। वह क्षुद्र को मांग लेता है। जल्दबाजी कर लेता है। और एकजो उपद्रव मचाता है, अराजकता खड़ी करता है, जो खींचतान करता है।
बस, ये तीन तरह के लोग हैं। तुम इसमें पहले तरह के आदमी बनना। तुम मांगना मत अन्यथा तुम क्षुद्र लेकर वापस लौट आओगे। तुम तीस रुपयों में बेच दोगे जीसस को। जिस प्रार्थना से परमात्मा मिलता है, तुम किसी दफ्तर मेंउसी प्रार्थना से क्लर्क हो जाओगे। जिस परमात्मा से आत्मा भर जाती है, तुम अपने पेट को भर लोगेजो कि फिर खाली हो जाएगा।

बेचना मत; मांगना मत और उपद्रव मत मचाना। क्योंकि तुम्हारे उपद्रव से तुम पर अगर दया भी हो, तो वह दया विषाक्त हो जाती है तुम्हारे उपद्रव के कारण।
जब कोई रास्ते पर भिखारी तुम्हें पकड़ लेता है और उपद्रव मचाने लगता है, तो तुम दो पैसे दे देते हो। लेकिन तुम्हारे भीतर क्या दशा होती है? तुम क्रोध से देते हो, तुम नाराजगी से देते हो, तुम सिर्फ छुटकारा पाने के लिए देते हो।
तुम परमात्मा के सामने ऐसी स्थिति मत कर देना कि वह तुमसे छुटकारा पाना चाहे।
तुम सहज को साधना। और सहज की साधना बड़ी सीधी और साफ हैकि तुम द्रष्टा बनना, साक्षी-भाव को जगाना; तब तुम्हें दूध मिलेगा, तब तुम्हारे जीवन में अमृत की वर्षा होगी।
कहीं जाने की जरूरत नहीं है। कुछ करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ एक होने का शांत ढंग पकड़ना है; एक होने का ढंग जिसमें प्रतीक्षा है, धैर्य है; एक होने का ढंगजो प्रार्थनापूर्ण, प्रेमपूर्ण है; एक होने का ढंग जिसका केंद्र दृष्टि है, देखना है, अवेयरनेस है।
तुम कुछ भी करना, बिना देखे मत करना। बस, इतना ही सहज-योग है। तुम देखते हुए करना। देखना सधता जाए। क्रोध करना तो भी देखते हुए करना कि मैं क्रोध कर रहा हूं। जरूरत नहीं है कि तुम क्रोध मत करना; क्योंकि उसमें ऐंचातानि कर लोगे तुम। उलटा-सीधा हो जाएगा। क्रोध आ रहा है, तो करना। वह आता है, तो तुम क्या करोगे!
आकाश में बादल आते हैं, बिजली कड़कती है; क्या करेगा आकाश। तुम क्या करोगे क्रोध आता है, तो करना; फल भोगना। लेकिन देखते हुए करना। बिना देखे मत करना।
देखना कि क्रोध उठ रहा है। देखना कि क्रोध पकड़ रहा है। देखना कि क्रोध बेहोश कर रहा है। देखते जाना। आखिरी एक दो तीन... अनेस्थीसिया दिया जा रहा है। तुम गिनती करते जाना भीतर कि कब सात पर तुम खो जाते हो। अगर तुम बिल्कुल न खोओ क्रोध आए, चला जाए और तुम्हारी गिनती भीतर जारी रहे, तो तुम समझना कि सहज-योग का तुम्हें सूत्र हाथ में आ गया।
अब वासना पकड़े फिक्र न करना। तुम क्या करोगे? तुम वासना को पकड़ने नहीं गए। वासना आती है, तुम क्या करोगे? तुम भीतर द्रष्टा बने रहना। भोग से गुजरना, लेकिन देखते हुए गुजरना। जल्दी ही तुम पाओगेजो कबीर कहते हैंः सहजै सहजै सब गया, सुत वित काम निकाम। सब चला जाता है देखते-देखते-देखते; सिर्फ द्रष्टा रह जाता है; एक बचता है।
और जिस दिन एक बच गया साहब मिल गया। साहब मिल गया कहना ठीक नहीं, तुम साहब हो गए। इसलिए कबीर कहते हैंः एकमेक ह्वै मिली रह्या, दास कबीरा नाम। और जो मिला है, उसका नाम कबीरदास है; वह तुम्हीं हो।
जो मिलेगा, वह कोई और नहीं है। जब एक बचेगा, वह तुम्हीं बचे। तब तुम्हीं इन वृक्षों में हरे हो; तुम्हीं इन पक्षियों में उड़े हो; तुम्हीं इन चांद-तारों में चले हो। तो तब तुम्हीं हो। तब तुम्हीं सब तरफ सांस ले रहे हो। सब तुम्हीं हो। उस दिन एक ही बचता है तुम्हीं बचते हो। दास कबीरा नाम।
तुम सहज को सहज के सूत्र को धीरे-धीरे पकड़ना।
आकर्षण बड़ा होगा कि हठयोग पकड़ लो। क्योंकि उसमें अहंकार को बचने की बड़ी सुविधा है। हठयोगी और निर-अहंकारी तुम न पा सकोगे। जितना हठयोग सधेगा, जितनी शक्ति आएगी, सिद्धि आएगी, ऋद्धि आएगी, उतना ही अहंकार बढ़ता जाएगा। सरल लगता हैमांग लेना। अन्यथा दुनिया में इतने भिखारी क्यों हों! और जितने भिखारी दिखते हैं, उतने नहीं हैं, बाकि जो दिखते नहीं हैं, वे भी भिखारी हैं। ढंग अलग-अलग हैं, पर सब मांगने वाले हैं; क्योंकि जब तक मांग है, तब तक तुम मांगने वाले हो।
जब तक तुम्हारे भीतर आकांक्षा हैः यह मिल जाए, वह मिल जाएढंग अलग-अलग हैं मांगने केः कोई दुकान करके मांग रहा है, कोई प्रार्थना करके मांग रहा

है, कोई सड़क पर उपद्रव करके मांग रहा है। लेकिन लोग मांग रहे हैं। सिर्फ जब मांग खो जाती है, तभी तुम्हारे भिखारी का अंत होता है।
न तो तुम अहंकारी बनना ऐंचातान करके। मत बदल देना जीवन की पुष्टता को रक्त में कि वह पीने योग्य भी न रह जाए। न तुम भीख मांगना; क्योंकि उस पर परम सम्राट से मिलना हो, तो सम्राट जैसा ही होना चाहिए।
उससे भिखारी होकर मिलने का क्या रस! उपाय ही नहीं है। उसके दरवाजे पर तुम भिखमंगे की तरह जाओगे, तो तुम स्वीकार न किए जाओगे। उसके दरवाजे पर तुम्हारा सम्राट की तरह जाना ही ठीक होगा। सम्राट ही सम्राट से मिल सकता है; समान ही समान से मिल सकता है।
सहज-योग सम्राट होने की कला है। तुम न खोजने जाते; न तुम चिल्लाते, न तुम पुकारते। जिंदगी ने दिया है, तुम उसी को देखते चले जाते हो। धीरे-धीरे जीवन की नदी का कचरा बैठ जाता है। चेतना शुद्ध हो जाती है। स्वभाव बचता है; विभाव खो जाता है। एक बच रहता है। वह एक तुम ही हो।

आज इतना ही।